ब्रह्माण्ड पुराण

(प्रथम खण्ड)

॥ कृत्य-समुद्देश्य ॥

नमोनमः क्षये सृष्टौ स्थितौ सत्त्वमयाय वा ।
नमो रजस्तमः सत्त्वत्रिरूपाय स्वयंभुवे ॥१
जितं भगवता तेन हरिणा लोकधारिणा ।
अजेन विश्वरूपेण निर्गुणेन गुणात्मना ॥२
ब्रह्माणं लोककर्त्तारं सर्वज्ञमपराजितम् ।
प्रभुं भूतभविष्यस्य साम्प्रतस्य च सत्पतिम् ॥३
ज्ञानमप्रतिमं तस्य वैराग्यं च जगत्पतेः ।
ऐश्वर्यं चैव धर्मश्च सद्भिः सेव्यं चतुष्टयम् ॥४
इमान्नरस्य वै भावान्नित्यं सदसदात्मकान् ।
अविशन्ध्य: पुनस्तान्वै क्रियाभावार्थमीश्वरः ॥५
लोककृल्लोकतत्त्वज्ञो योगमास्थाय योगवित् ।
असृजत्सर्वभूतानि स्थावराणि चराणि च ॥६
तमहं विश्वकर्माणं सत्पतिं लोकसाक्षिणम् ।
पुराणाख्यानजिज्ञासुर्गच्छामि शरणं विभुम् ॥७

संसार के सृजन, उसके पालन अथवा उसके संहार काल में सत्व स्वरूप वाले के लिए बारम्बार नमस्कार है। रजोगुण-तमोगुण और सत्व-गुण के तीन स्वरूप वाले भगवान् स्वयम्भू के लिए नमस्कार है।१। जन्म न धारण करने वाले, विश्व के स्वरूप वाले, गुणों से रहित और गुणों के रूप वाले, विश्व के स्वरूप वाले, गुणों से रहित और गुणों के रूप वाले, लोकों के धारण करने वाले उन भगवान् हरि ने जय प्राप्त किया है।२। समस्त

लोकों के रचने वाले, सबके ज्ञाता, पराजित न होने वाले, भूत-भविष्यत् और वर्त्तमान काल के प्रभु सत्पति ।३। अनुपम ज्ञान के स्वरूप और उन जगतों के स्वामी का ज्ञान, वैराग्य तथा ऐश्वर्य और धर्म्म ये चारों सत्पुरुषों के द्वारा सेवन करने के योग्य हैं ।४। नित्य ही भले और बुरे स्वरूप वाले मनुष्य के इन भावों की क्रिया के भाव के लिए ईश्वर ने फिर रचना की थी ।५। लोकों की रचना करने वाले और लोकों के तत्वों के ज्ञाता, योग के जानने वाले भगवान् ने योग में समास्थित होकर समस्त स्थावर (अचर) और जङ्गम (चर) जीवों की रचना की थी ।६। पुराण के आख्यान की इच्छा वाले मैंने व्यापक सत्पति लोकों के साक्षी विश्वकर्मा उन प्रभु की शरण ग्रहण की है ।७।

पुराणं लोकतत्त्वार्थमखिलं वेदसंमितम् ।
प्रशशंस स भगवान् वसिष्ठाय प्रजापतिः ।।८
तत्त्वज्ञानामृतं पुण्यं वसिष्ठो भगवानृषिः ।
पौत्रमध्यापयामास शक्तेः पुत्रं पराशरम् ।।९
पराशरश्च भगवान् जातूकर्ण्यमृषिं पुरा ।
तमध्यापितवान्दिव्यं पुराणं वेदसंमितम् ।।१०
अधिगम्य पुराणं तु जातूकर्ण्यो विशेषवित् ।
द्वैपायनाय प्रददौ परं ब्रह्म सनातनम् ।।११
द्वैपायनस्ततः प्रीतः शिष्येभ्यः प्रददौ वशी ।
लोकतत्त्वविधानार्थं पंचभ्यः परमाद्भुतम् ।।१२
विख्यापनार्थं लाकेषु बह्वर्थं श्रुतिसंमतम् ।
जैमिनिं च सुमन्तुं च वैशंपायनमेव च ।।१३
चतुर्थं पैलवं तेषां पंचमं लोमहर्षणम् ।
सूतमद्भुतवृत्तान्तं विनीतं धार्मिकं शुचिम् ।।१४

लोकतत्व के अर्थ वाले, वेद के समान सम्पूर्ण पुराण की भगवान् प्रजापति ने वसिष्ठ मुनि के आगे प्रशंसा की थी अर्थात् उनको पढ़ाया था ।८। भगवान् वसिष्ठ ऋषि ने परम पुण्यमय अमृत के सदृश इस तत्व ज्ञान को शक्ति के पुत्र अपने पौत्र पराशर को पढ़ाना था ।९। प्राचीन काल में

भगवान् पराशर ने इस परम दिव्य और वेद के ही सदृश पुराण को जातूकर्ण्य ऋषि को पढ़ाया था ।१०। विशेष ज्ञान रखने वाले जातूकर्ण्य ऋषि के इसका ज्ञान प्राप्त करके इस सनातन पर ब्रह्म को द्वैपायन के लिए प्रदान किया था ।११। परम संयमी द्वैपायन ऋषि ने अत्यधिक प्रसन्न होकर अत्यन्त अद्भुत इस पुराण को लोक तत्व के विधान के लिए अपने पाँच शिष्यों को दिया था अर्थात् पढ़ाया था ।१२। विपुल अर्थों से समन्वित श्रुति के समान इसके लोकों में विख्यापन के लिए पढ़ाया था जिनमें जैमिनि, सुमन्तु और वैशम्पायन थे ।१३। चौथे पैलव और पाँचवें लोमहर्षण थे। सूत परम विनम्र, धार्मिक और पवित्र थे अतः उनको यह अद्भुत वृत्तान्त वाला पुराण पढ़ाया था ।१४।

अधीत्य च पुराणं च विनीतो लोमहर्षणः ।
ऋषिणा च त्वया पृष्टः कृतप्रज्ञः सुधार्मिकः ॥१५
वसिष्ठश्चापि मुनिभिः प्रणम्य शिरसा मुनीन् ।
भक्त्यो परमया युक्तः कृत्वा चापि प्रदक्षिणम् ॥१६
अवाप्तविद्यः सन्तुष्टः कुरुक्षेत्रमुपागमत् ।
सत्रे सवितते यत्र यजमानानृषीञ्शुचीन् ॥१७
वियेनोहसंगसंम्य सत्त्रिणो रोमहर्षणम् ।
विधानतो यथाशास्त्रं प्रज्ञयातिजगाम ह ॥१८
ऋषयश्चापि ते सर्वे तदानीं रोमहर्षणम् ।
दृष्ट्वा परमसंहृष्टाः प्रीताः सुमनसस्तथा ॥१९
सत्कारैरर्च्यंयामासुरर्घ्यपाद्यादिभिस्ततः ।
अभिवाद्य मुनीन्सर्वान् राजाज्ञामभिगम्य च ॥२०
ऋषिभिस्तैरनुज्ञातः पृष्टः सर्वमनामयम् ।
अभिगम्य मुनीन्सर्वांस्तेजो ब्रह्म सनातनम् ।
सदस्यानुमते रम्ये स्वास्तीर्णे समुपाविशत् ॥२१

परम विनयी लोमहर्षण मुनि ने इस परम श्रेष्ठ पुराण का अध्ययन करके जब समाप्त किया था तो ऋषि आपने उनसे पूछा था जो कि भली प्रकार से धर्म के समाचरण करने वाले और परम प्रज्ञावान् थे ।१५। अनेक

मुनियों के साथ संयुत होकर समस्त मुनियों को शिर झुकाकर प्रणाम किया था और परम भक्ति भाव से युक्त होकर प्रदक्षिणा की थी ।१६। सम्पूर्ण विद्या को प्राप्त करके ये परम सन्तुष्ट हुए और फिर वे कुरुक्षेत्र में पहुँच गये थे । जहाँ पर एक विशाल यज्ञ होरहा था और पवित्र बहुत से यजमान तथा ऋषिगण विद्यमान थे ।१७। सब याज्ञिकों ने परम नम्रता से रोमहर्षण ऋषि से भेंट की थी । शास्त्रों के अनुसार विधि पूर्वक प्रज्ञा से अतिगमन किया था ।१८। उस समय में उन समस्त ऋषियों ने भी रोमहर्षण मुनि का दर्शन प्राप्त कर अत्यन्त हर्ष प्राप्त किया था और सबके मन में विशेष प्रसन्नता हुई थी ।१९। सब ऋषियों ने उनका विशेष समादर एवं सत्कार करके अर्घ्यपाद्य आदि के द्वारा उनका समर्चन किया था । राजा के द्वारा आज्ञा प्राप्त करके समस्त मुनिगणों को प्रणाम किया था ।२०। कुशल-क्षेम पूछे जाने पर समस्त ऋषियों के द्वारा आज्ञा प्राप्त की थी । सनातन ब्रह्म के तेज स्वरूप उन सब ऋषियों के समीप जाकर सदस्यों के द्वारा अनुमत अपने आसन पर विराजमान हो गये थे ।२१।

उपविष्टे तदा तस्मिन्मुनयः शंसितव्रताः ।
मुदान्विता यथान्यायं विनयस्थाः समाहिताः ॥२२
सर्वे ते ऋषयश्चैनं परिवार्य महाव्रतम् ।
परमप्रीतिसंयुक्ता इत्यूचुः सूतनंदनम् ॥२३
स्वागतं ते महाभाग दिष्ट्या च त्वां निरामयम् ।
पश्याम धीमन्नत्रस्थाः सुव्रतं मुनिसत्तमम् ॥२४
अशून्या मे रसाद्यैव भवतः पुण्यकर्मणः ।
भवांस्तस्य मुनेः सूत व्यासस्यापि महात्मनः ॥२५
अनुग्राह्यः सदा धीमाञ्छिष्यः शिष्यगुणान्वितः ।
कृतबुद्धिश्च ते तत्त्वमनुग्राह्यतया प्रभो ॥२६
अवाप्य विपुलं ज्ञानं सर्वतश्छिन्नसंशयः ।
पृच्छतां नः सदा प्राज्ञ सर्वमाख्यातुमर्हसि ॥२७
तदिच्छामः कथां दिव्यां पौराणीं श्रुतिसंमिताम् ।
श्रोतुं धर्मार्थयुक्तां तु एतद्व्यासाच्छ्रुतं त्वया ॥२८

एवमुक्तस्तदा सूतस्त्वृषिभिर्विनयान्वितः ।
उवाच परमप्राज्ञो विनीतोत्तरमुत्तमम् ॥२९

उस समय में उनके अपने आसन पर बैठ जाने पर समस्त मुनियों ने व्रत धारण किया था और परम प्रसन्न होकर विनीत भाव से सावधान होकर उचित स्थान पर वे सब स्थित हो गये थे ।२२। उन समस्त ऋषियों ने महान व्रत धारण करके परम प्रीति से समन्वित होकर उन सूतनन्दन जी से पूछा था ।२३। हे महान् भाग वाले ! हम सब आपका स्वागत करते हैं । हे धीमन् ! यहाँ पर स्थित हुए हम सब परम कुशल, सुन्दर व्रतधारी और मुनियों में परम श्रेष्ठ आपका हम दर्शन कर रहे हैं ।२४। पुण्य कर्मों वाले आपके पदार्पण से आज ही यह भूमि हमारे लिए आनन्दमयी हुई है । हे सूतजी ! आप तो महान् आत्मा वाले उन श्रीव्यासजी के कृपा पात्र हैं ।२५। व्यासदेव जी के आप अनुग्रह के योग्य शिष्य हैं और सदा शिष्य में होने वाले गुण-गणों से युक्त है तथा परम बुद्धिमान् हैं । हे प्रभो ! आप बुद्धि से युक्त हैं और गुरुदेव के अनुग्रह के पात्र होने से आपको सम्पूर्ण तत्व ज्ञान है ।२६। आपने बहुत अधिक ज्ञान की प्राप्ति की है अतः आपके सभी प्रकार के संशय दूर हो गये हैं । हे प्राज्ञ ! हम लोग अब पूछ रहे हैं अतएव सभी कुछ हमारे सामने वर्णन करने के योग्य होते हैं ।२७। हम लोग सब श्रुति सम्मित परमदिव्य पुराण सम्बन्धिनी कथा का श्रवण करना चाहते हैं । आपने इस इसका श्रवण व्यासदेव जी से किया है उसी धर्मार्थ से युक्त पौराणिक कथा को हम सुनना चाहते हैं ।२८। उस समय में जब इस प्रकार के ऋषियों के द्वारा कहा गया तो विनय से संयुत और परम पण्डित सूतजी ने उत्तम विनीत उत्तर दिया था ।२९।

ऋषेः शुश्रूषणं यच्च तस्मात्प्रज्ञा च या मम ।
यस्माच्छुश्रूषणार्थं च तत्सत्यमिति निश्चयः ॥३०
एवं गतेऽर्थे यच्छक्यं मया वक्तुं द्विजोत्तमाः ।
जिज्ञासा यत्र युष्माकं तदाज्ञातुमिहार्हथ ॥३१
एतच्छ्रुत्वा तु मुनयो मधुरं तस्य भाषितम् ।
प्रत्यूचुस्ते पुनः सूतं वाष्पपर्याकुलेक्षणम् ॥३२
भवान् विशेषकुशलो व्यासं साक्षात्तु दृष्टवान् ।
तस्मात्त्वं संभवं कृत्स्नं लोकस्येमं विदर्शय ॥३३

यस्य यस्याऽन्वये ये ये तांस्तानिच्छाम वेदितुम् ।
तेषां पूर्वविसृष्टिं च विचित्रां त्वं प्रजापते ।
सत्कृत्य परिपृष्टः स महात्मा रोमहर्षणः ।।३४
विस्तरेणानुपूर्व्यां च कथयामास सत्तमः । सूत उवाच ।
यो मे द्वैपायनप्रीतः कथां वै द्विजसत्तमाः ।।३५
पुण्यामाख्यातवान्विप्रास्तां वै वक्ष्याम्यनुक्रमात् ।
पुराणं संप्रवक्ष्यामि यदुक्तं मातरिश्वना ।।३६

ऋषि व्यासदेव से जो भी कुछ मैंने श्रवण किया है और उस श्रवण करने से जो ज्ञान मुझे प्राप्त हुआ है जिससे भली-भाँति श्रवण कराने के लिए वह ज्ञान पूर्णतया सत्य है—ऐसा मेरा निश्चय है ।३०। हे उत्तम द्विजगणो ! इस प्रकार से ज्ञान प्राप्त होने पर जो भी कुछ मेरे द्वारा कहा जा सकता है मैं कहूँगा । जिस विषय में आपकी जो भी जानने की इच्छा है । उसको आप आज्ञा देने के योग्य हैं ।३१। मुनिगणों ने उनके इस प्रकार के मधुर भाषण को सुनकर उन्होंने प्रेमाश्रुओं से भरी हुई आँखों वाले सूतजी से फिर कहा था ।३२। आप तो विशेष रूप से निपुण हैं और आपने साक्षात् रूप से श्री व्यासजी का दर्शन किया है । इस कारण से आप इस लोक की सम्पूर्ण उत्पत्ति को विशेष रूप से दिखलाने की कृपा कीजिए ।३३। जिसके वंश में जो-जो भी हुए हैं उन-उन सबको हम जानना चाहते हैं । और आप उनके पूर्व में होने वाली प्रजापति की विचित्र विशेष सृष्टि को भी बतलाइए—यह भी हम सब जानने की इच्छा करते हैं । सत्कार करके उन महात्मा सूतजी से जब पूछा गया था ।३४। तब उन परमश्रेष्ठ महापुरुष ने आनुपूर्वी से विस्तार के साथ कहा था । श्रीसूतजी ने कहा—हे द्विज-श्रेष्ठो ! परम प्रसन्न हुए द्वैपायन मुनि ने जो परम पुण्यमयी कथा मुझसे कही थी हे विप्रगणो ! उसको मैं अनुक्रम से कहूँगा । मातरिश्वा ने जो पुराण कहा है उसको मैं बतलाऊँगा ।३५-३६।

पृष्टेन मुनिभिः पूर्वैर्नैमिषीयैर्महात्मभिः ।
सर्गश्च प्रतिसर्गश्च वंशो मन्वंतराणि च ।।३७
वंश्यानुचरितं चैव पुराणं पंचलक्षणम् ।
प्रक्रिया प्रथमः पादः कथायां स्यात्परिग्रहः ।।३८

अनुषंग उत्पोद्घात उपसंहार एव च ।
एवं पादास्तु चत्वारः समासात्कीर्तिता मया ।।३९
वक्ष्यामि तान्पुरस्तात्तु विस्तरेणं यथाक्रमम् ।
प्रथमं सर्वशास्त्राणां पुराणं ब्रह्मणा श्रुतम् ।।४०
अनन्तरं च वक्त्रेभ्यो वेदास्तस्य विनिःसृताः ।
अङ्गानि धर्मशास्त्रं च व्रतानि नियमास्तथा ।।४१
अव्यक्तं कारणं यत्तन्नित्यं सदसदात्मकम् ।
महदादिविशेषांतं सृजामीति विनिश्चयः ।।४२

नैमिषारण्य के निवासी महात्मा मुनियों ने पहिले पूछा था । पुराण का लक्षण हो यह है—सर्ग अर्थात् सृष्टि और प्रतिसर्ग अर्थात् उस सृष्टि से होने वाली सृष्टि, वंशों का वर्णन, मन्वन्तर अर्थात् मनुओं का कथन तात्पर्य कौन-कौन मनु किस-किस के पश्चात् हुए ।३७। वंशों में होने वालों का चरित—यह ही पाँचों बातों का होना पुराण का लक्षण है । इसमें भी चार पाद होते हैं—प्रक्रिया पहिला पाद है जो कथा में परिग्रह होता है ।३८। अनुषङ्ग, उत्पोद्घात और उपसहार इस प्रकार से संक्षेप से मैंने चार पाद बतला दिये हैं ।३९। अब पहिले उनको क्रम के अनुसार विस्तार के साथ बतलाऊँगा । सबसे प्रथम सभी शास्त्रों से पूर्व ब्रह्माजी ने पुराण का श्रवण किया था ।४०। इसके पश्चात् उनके मुख से वेद निकले थे और वेद के अङ्ग शास्त्र, धर्मशास्त्र व्रत तथा नियम आदि उनके मुख से निकले थे ।४१। जो अव्यक्त कारण है वह नित्य है और सत् तथा असत् स्वरूप वाला है । महत् आदि लेकर विशेष के अन्त तक का मैं सृजन करता हूँ—ऐसा विशेष निश्चय किया था ।४२।

अंडं हिरण्मयं चैव ब्रह्मणः सूतिरुत्तमा ।
अंडस्यावरणं वार्धिरपामपि च तेजसा ।।४३
वायुना तस्य वायोश्च खेन भूतादिना ततः ।
भूतादिर्महता चैव अव्यक्तेनावृतो महान् ।।४४
अन्तर्वर्ति च भूतानामंडमेवोपवर्णितम् ।
नदीनां पर्वतानां च प्रादुर्भावोऽत्र पठ्यते ।।४५

मन्वंतराणां सर्वेषां कल्पानां चैव वर्णनम् ।
कीर्त्तनं ब्रह्मवृक्षस्य ब्रह्मजन्म प्रकीर्त्यते ।।४६
अतः परं ब्रह्मणश्च प्रजासर्गोपवर्णनम् ।
अवस्थाश्चात्र कीर्त्यते ब्रह्मणोऽव्यक्तजन्मनः ।।४७
कल्पानां संभवश्चैव जगतः स्थापनं तथा ।
शयनं च हरेरप्सु पृथिव्युद्धरणं तथा ।।४८
सविशेषः पुरादीनां वर्णाश्रमविभाजनम् ।
ऋक्षाणां ग्रहसंस्थानां सिद्धानां च निवेशनम् ।।४९

ब्रह्माजी की सर्वोत्तम प्रसूति हिरण्मय अण्ड है। उस हिरण्मय अण्ड का आवरण सागर है, जलों का आवरण तेज के द्वारा हुआ ।४३। उस तेज का वायु से और वायु का आकाश से आवरण हुआ था फिर भूत आदि से हुआ था। भूत आदि का महत् से और महान् का अव्यक्त के द्वारा आवरण हुआ था ।४४। भूतों के अन्दर रहने वाला अण्ड ही उपवर्णित है। इसमें नदियों का और पर्वतों का प्रादुर्भाव पढ़ा जाया करता है ।४५। समस्त मन्वन्तरों का और सब कल्पों का वर्णन है। इस ब्रह्म वृक्ष का कीर्त्तन ही ब्रह्म का जन्म कीर्त्तित किया जाया करता है ।४६। इसके आगे ब्रह्माजी की प्रजाओं का उपसर्ग का उप वर्णन है। अव्यक्त जन्म वाले ब्रह्माजी की इसमें अवस्था का कीर्त्तन किया जाता है ।४७। कल्पों की उत्पत्ति–जगत की स्थापना भगवान् हरि का जलों में शयन करना तथा पृथिवी के उद्धार का वर्णन है ।४८। पुर आदि का विशेषता के साथ वर्णन, चारों वर्णों और चारों आश्रमों का विभाजन, नक्षत्रों की स्थिति, ग्रहों का संस्थान और सिद्धों के निवास स्थलों का वर्णन है ।४९।

योजनानां यथा चैव संचरो बहुविस्तरः ।
स्वर्गस्थानविभागश्च मर्त्यानां शुभचारिणाम् ।।५०
वृक्षाक्षामोषधीनां च वीरुधां च प्रकीर्त्तनम् ।
देवतानामृषीणां च द्वे सृती परिकीर्तिते ।।५१
आम्रादीनां तरूणां च सर्जनं व्यजनं तथा ।
पशूनां पुरुषाणां च संभवः परिकीर्त्तितः ।।५२

तथा निर्वचनं प्रोक्तं कल्पस्य च परिग्रहः ।
नव सर्गा पुनः प्रोक्ता ब्रह्मणो बुद्धिपूर्वकाः ॥५३

त्रयो ये बुद्धिपूर्वास्तु तथा यल्लोककल्पनम् ।
ब्रह्मणोऽवयवेभ्यश्च धर्मादीनां समुद्भवः ॥५४

ये द्वादश प्रसूयंते प्रजाकल्पे पुनः पुनः ।
कल्पयोरंतरे प्रोक्तं प्रतिसंधिश्च यस्तयोः ॥५५

तमोमात्रा वृतत्वात्तु ब्रह्मणोऽधर्मसंभवः ।
सत्त्वोद्रिक्ताच्च देहाच्च पुरुषस्य च संभवः ॥५६

बहुत विस्तार से योजनों के संचरण का वर्णन स्वर्ग स्थान और विभाग जो कि शुभ समाचरण करने वाले मनुष्यों का है उसका वर्णन है ।५०। फिर वृक्षों की, औषधियों की, लताओं की सृष्टि का कीर्त्तन किया गया है । देवगणों और ऋषियों की दो प्रकार की उत्पत्ति बतलायी गयी है ।५१। आम्र आदि वृक्षों की सृष्टि तथा व्यञ्जन की सृजन और पुरुषों का एवं पशुओं का सृजन बताया गया है ।५२। उसी प्रकार से निर्वचन कहा गया है और कल्प का परिग्रहण किया है । इस प्रकार से ब्रह्मा के बुद्धि के साथ नौ सर्ग कहे गये हैं ।५३। जो ये तीन हैं वे बुद्धि से युक्त हैं और जो लोकों की कल्पना है ब्रह्मा के अवयवों से धर्म आदि की उत्पत्ति होती है ।५४। प्रजा के कल्प में जो द्वादश प्रसूत हुआ करते हैं और बार-बार उत्पन्न होते हैं जो उन दोनों की प्राप्ति सन्धि है वह कल्पों के अन्तर में कही गयी है ।५५। तमोगुण की मात्रा से समावृत होने से ब्रह्मा से अधर्म की उत्पत्ति हुआ करती है और सत्व के उद्रेक वाले देह से पुरुष की उत्पत्ति होती है ।५६।

तथैव शतरूपायां तयोः पुत्रास्ततः परम् ।
प्रियव्रतोत्तानपादौ प्रसूत्याकूतयः शुभाः ॥५७

कीर्त्यंते धूतपाप्मानस्त्रैलोक्ये ये प्रतिष्ठिताः ।
रुचेः प्रजापतेश्चोर्ध्वं माकूत्यां मिथुनोद्भवः ॥५८

प्रसूत्यामपि दक्षस्य कन्यानामुद्भवः शुभः ।
दाक्षायणीषु चाप्यूर्ध्वं शब्दाद्यासु महात्मनः ॥५९

धर्मस्य कीर्त्यते सर्गः सात्त्विकस्तु सुखोदयः ।
तथाऽधर्मस्य हिंसायां तामसोऽशुभलक्षणः ॥६०
भृग्वादीनामृषीणां च प्रजासर्गोपवर्णनम् ।
ब्रह्मर्षेश्च वसिष्ठस्य यत्र गोत्रानुकीर्त्तनम् ॥६१
अग्नेः प्रजायाः संभूतिः स्वाहायां यत्र कीर्त्यते ।
पितॄणां द्विप्रकाराणां स्वधायां तदनन्तरम् ॥६२
पितृवंशप्रसंगेन कीर्त्यते च महेश्वरात् ।
दक्षस्य शापः सत्यांश्च भृग्वादीनां च धीमताम् ॥६३

उसी प्रकार से ही शतरूपा में उन दोनों के पुत्र समुत्पन्न हुए थे । इसके आगे प्रियव्रत और उत्तानपाद हुए थे । प्रसूति की परम शुभ आकृतियाँ थीं ।५७। त्रिभुवन में जो प्रतिष्ठा से युक्त थे वे पापों से रहित थे—ऐसा ही कहा जाता है । प्रजापति से रुचि की और फिर आकूति में मिथुन से उत्पत्ति हुई थी ।५८। प्रजापति दक्ष की कन्याओं का प्रसूति में जन्म परम शुभ हुआ शब्दाद्य दाक्षायणीओं में भी महान् आत्मा वाले धर्म का उद्भव हुआ था ।५९। यह धर्म का जन्म परम सात्विक और सुख के उदय वाला सर्ग कहा जाता है । उसी भाँति हिंसा में अधर्म का उद्भव हुआ है जो तामस और अशुभ लक्षण वाला है ।६०। भृगु आदि ऋषियों की प्रजा के सर्ग का उप वर्णन है और जिसमें ब्रह्मर्षि वसिष्ठजी के गोत्र का अनुकीर्त्तन किया है ।६१। जिसमें स्वाहा नाम धारिणी स्वाहा पत्नी में अग्नि की सन्तति का वर्णन किया जाता है । इसके उपरान्त स्वधा नाम की पत्नी में दो प्रकार के पितृगणों का वर्णन किया जाता है ।६२। पितृगणों के वंश के प्रसङ्ग से भगवान् महेश्वर से और सती से दक्ष प्रजापति के लिए शाप का वर्णन है और परम बुद्धिमान भृगु आदि ऋषियों को जो प्रतिशाप दिया गया है उसका वर्णन होता है ।६३।

प्रतिशापश्च दक्षस्य रुद्रादद्भुतकर्मणः ।
प्रतिषेधश्च वैरस्य कीर्त्यते दोषदर्शनात् ॥६४
मन्वन्तरप्रसंगेन कालाख्यानं च कीर्त्यते ।
प्रजापतेः कर्द्दमस्य कन्यायाः शुभलक्षणम् ॥५६

प्रियव्रतस्य पुत्राणां कीर्त्यते यत्र विस्तरः ।
तेषां नियोगो द्वीपेषु देशेषु च पृथक् पृथक् ॥६६
स्वायंभुवस्य सर्गस्य ततश्चाप्यनुकीर्त्तनम् ।
वर्षाणां च नदीनां च तद्भेदानां च सर्वशः ॥६७
द्वीपभेदसहस्राणामन्तर्भावश्च सप्तसु ।
विस्तरान्मण्डलं चैव जंबूद्वीपसमुद्रयोः ॥६८
प्रमाणं योजनाग्रेण कीर्त्यते पर्वतैः सह ।
हिमवान्हेमकूटश्च निषधो मेरुरेव च ।
नीलः श्वेतश्च शृङ्गी च कीर्त्यन्ते सप्त पर्वताः ॥६९
तेषामन्तरविष्कंभा उच्छ्रायायामविस्तराः ॥७०

अद्भुत कर्मों वाले भगवान् रुद्र से दक्ष के प्रतिशाप का कथन है और दोष के दर्शन से वैर के प्रतिषेध का कीर्त्तन किया जाता है ।६४। मन्वन्तर के प्रसङ्ग से काल का भी आख्यान कहा जाता है प्रजापति कर्दम की कन्या का शुभ लक्षण बताया जाता है ।६५। जहाँ पर प्रियव्रत राजा के पुत्रों का बिस्तार कीर्त्तित किया जाता है और द्वीपों में तथा देशों में पृथक्-पृथक् उनके नियोग का वर्णन है ।६६। इसके अनन्तर स्वायम्भुव मनु के सर्ग का वर्णन किया जाता है और सब वर्षों का नदियों का और समस्त उनके भेदों का अनुकीर्त्तन किया जाता है ।६७। फिर सहस्रों द्वीपों के भेदों का सात द्वीपों में ही अन्तर्भाव का वर्णन तथा जम्बू द्वीप और समुद्र के मण्डल का विस्तार से वर्णन किया जाता है ।६८। योजनों के अग्रभाग से पर्वतों के साथ प्रमाण का कीर्त्तन किया जाता है । इसके अनन्तर हिमवान्-हेमकूट-निषध-मेरु-नील श्वेत और शृङ्ग-इन सात पर्वतों का वर्णन किया जाता है ।६९। उनके अन्तर विष्कम्भ, उच्छ्राय, आयाम और विस्तार का वर्णन किया जाता है ।७०।

कीर्त्यन्ते योजनाग्रेण ये च तत्र निवासिनः ।
भारतादीनि वर्षाणि नदीभिः पर्वतैस्तथा ॥७१
भूतैश्चोपनिविष्टानि गतिमद्भिर्ध्रुवैस्तथा ।
जम्बूद्वीपादयो द्वीपाः समुद्रैः सप्तभिर्वृताः ॥७२

ततः स्वर्णमयी भूमिर्लोकालोकश्च कीर्त्यते ।
सप्रमाणा इमे लोकाः सप्तद्वीपा च मेदिनी ।।७३
रूपादयः प्रकीर्त्यन्ते करणात्प्राकृतैः सह ।
सर्वं चैतप्रधानस्य परिणामैकदेशिकम् ।।७४
पर्यायपरिमाणं च संक्षेपेणात्र कीर्त्यते ।
सूर्याचन्द्रमसोश्चैव पृथिव्याश्चाप्यशेषतः ।।७५
प्रमाणं योजनाग्रेण सांप्रतैरभिमानिभिः ।
महेन्द्राद्याः शुभाः पुण्या मानसोत्तरमूर्द्धनि ।।७६
अत ऊद्ध्र्वगतिश्चोक्ता सूर्यस्यालातचक्रवत् ।
नागवीथ्यक्षवीथ्योश्च लक्षणं च प्रकीर्त्यते ।।७७

योजनों की अग्रता से वहाँ पर उन पर्वतों में जो निवास किया करते हैं उनका भी वर्णन किया जाता है और भारत आदि वर्षों का नदियों के और पर्वतों के साथ वर्णन किया जाता है ।७१। जो कि भूतों से और मतिमान् ध्रुवों के साथ वहाँ पर उपनिविष्ट हैं उनका कीर्त्तन किया जाता है । जम्बू द्वीप आदि द्वीप सात समुद्रों के द्वारा घिरे हुए हैं ।७२। वहाँ पर स्वर्ण से परिपूर्ण है और वहाँ पर लोकालोक नाम वाला पर्वत है—यह बताया जाता है । ये सब लोक प्रमाणों से युक्त हैं और सप्तद्वीप तथा पृथिवी हैं—इनका भी प्रमाण बताया जाता है ।७३। करण से प्राकृतों के साथ-साथ प्रादिक का कीर्त्तन किया जाता है । यह सभी कुछ प्रधान के परिमाण का एक देशिक है अर्थात् यह सब प्रकृति के परिणाम के कारण ही होता है ।७४। इनका पर्याय-परिणाम यहाँ पर बहुत ही संक्षेप के साथ कीर्तित किया जाता है। सूर्य और चन्द्र का तथा पृथिवी का पूर्ण परिणाम बताया जाता है ।७५। इस समय में होने वाले उनके अभिमानी अर्थात् स्वामियों का प्रमाण योजनों के हिसाब से कहा जाता है । मानस के उत्तर में ऊपर परम शुभ और पुण्यमय महेन्द्र आदि हैं—उनका वर्णन है । इसके ऊपर अलात (मशाल) के चक्र की भाँति सूर्य की गति बतायी गयी है । और नागवीथी तथा अक्षवीथी का लक्षण बताया जाता है ।७६-७७।

कोष्ठयोर्लेखयोश्चैव मण्डलानां च योजनैः ।
लोकालोकस्य सन्ध्याया अह्नो विषुवतस्तथा ।।७८

लोकपालाः स्थिताश्चोर्ध्वं कीर्त्यन्ते ते चतुर्दिशम् ।
पितॄणां देवतानां च पन्थानौ दक्षिणोत्तरौ ॥७९
गृहिणां न्यासिनां चोक्तौ रजः सत्त्वसमाश्रयः ।
कीर्त्यंते च पदं विष्णोर्धर्माद्या यत्र च स्थिताः ॥८०
सूर्याचन्द्रमसोश्चारो ग्रहाणां ज्योतिषां तथा ।
कीर्त्यते धृतसामर्थ्यात्प्रजानां च शुभाऽशुभम् ॥८१
ब्रह्मणा निर्मितः सौरः सादनार्थं च स स्वयम् ।
कीर्त्यते भगवान्येन प्रसर्प्पति दिवः क्षयम् ॥८२
स रथाऽधिष्ठितो देवैरादित्यैर्ऋषिभिस्तथा ।
गन्धर्वैरप्सरोभिश्च ग्रामणीसर्पराक्षसैः ॥८३
अपां सारमयात्स्यन्दात्कथ्यते च रसस्तथा ।
वृद्धिक्षयौ च सोमस्य कीर्त्येते सोमकारितौ ॥८४

मण्डलों के योजनों के हिसाब से कोष्ठों और लेखों का वर्णन है। लोकालोक की सन्ध्या का, दिन का तथा विषुवत् का वर्णन किया जाता है ।७८। ऊपर की ओर लोकपाल स्थित रहा करते हैं और उनका कीर्त्तन चारों दिशाओं में किया जाता है। पितृगणों और देवगणों के मार्ग क्रम से दक्षिण और उत्तर में बताये गये हैं ।७९। गृहस्थियों और संन्यासियों का मार्ग रजोगुण और सत्वगुण के समाश्रय वाला कहा गया है और भगवान् बिष्णु का स्थान बताया गया है जहाँ पर धर्म आदि स्थित रहा करते हैं ।८०। सूर्य-चन्द्रमा, ज्योतिर्गण और ग्रहों का सञ्चरण कीर्त्तित किया जाता है जो कि सामर्थ्य के धारण करने से प्रजाजनों के लिए शुभ औद अशुभ हुआ करते हैं। तात्पर्य यह है कि कुछ शुभ ग्रहों की चाल मानवों को शुभ होती है और कुछ पाप ग्रहों के चाल बुरी हुआ करती है ।८१। ब्रह्माजी ने स्वयं ही सौर की रचना सदना करने के लिए की है—ऐसा कीर्त्तित किया जाता है। जिससे भगवान् भुवन भास्कर दिन के अन्त में क्षय को प्राप्त होते हैं ।८२। वह भगवान् सूर्यदेव रथ पर अधिष्ठित हैं और वे देव-असुर-ऋषि-गण-गन्धर्व-अप्सरा गण—ग्रामवासी-सूर्य और राक्षसों के द्वारा जलों के सार को प्राप्त करता है और स्यन्द होने से वह रस कहा जाया करता है। चन्द्र द्वारा किये गये सोम के वृद्धि तथा क्षय कहे जाते हैं ।८३-८४।

सूर्यादीनां स्यन्दनानां ध्रुवादेव प्रवर्त्तनम् ।
कीर्त्यते शिशुमारस्य यस्य पुच्छे ध्रुवः स्थितः ॥८५
ताराख्पाणि सर्वाणि नक्षत्राणि ग्रहैः सह ।
निवासा यत्र कीर्त्यते देवानां पुण्यकर्मणाम् ॥८६
सूर्यरश्मिसहस्रं च वर्षशीतोष्णविश्रवः ।
प्रविभागश्च रश्मीनां नामतः कर्मतीर्थतः ॥८७
परिमाणं गतिश्चोक्ता ग्रहाणां सूर्यसंश्रयात् ।
वेश्यारूपात्प्रधानस्य परिमाणो महद्भवः ॥८८
पुरूरवस ऐलस्य माहात्म्यस्यानुकीर्त्तनम् ।
पितॄणां द्विप्रकाराणां माहात्म्यं वामृतस्य च ॥८९
ततः पर्वाणि कीर्त्यन्ते पर्वणां चैव संधयः ।
स्वर्गलोकगतानाञ्च प्राप्तानाञ्चाप्यधोगतिम् ॥९०
पितॄणां द्विप्रकाराणां श्राद्धेनानुग्रहो महान् ।
युगसंख्याप्रणाणं च कीर्त्यतं च कृतं युगम् ॥९१
त्रेतायुगे चापकर्षाद्वार्त्तायाः संप्रवर्त्तनम् ।
वर्णानामाश्रमाणां च संस्थितिर्धर्मतस्तथा ॥९२

सूर्यादि स्यन्दनों ध्रुव से ही प्रवर्तन होता है जिस शिशुमार के पुच्छ में स्थित ध्रुव कीर्त्तित किया जाता है ।८५। ताराओं के रूप वाले समस्त नक्षत्र ग्रहों के साथ रहते हैं जहाँ पर पुण्य कर्मों वाले देवों के निवास बतलाये जाया करते हैं ।८६। सूर्य की सहस्र किरणें, वर्षा, शीत, गर्मी का विस्रवण और रश्मियों का विभाग नाम से और कर्म तीर्थ से हैं ।८७। भगवान् सूर्यदेव के संश्रम से ग्रहों की गति और परिणाम कहे गये हैं । वेश्या रूप से प्रधान का परिमाण महद्भव है ।८८। पुरूरवा और ऐल के माहात्म्य का अनुकीर्त्तन है ।८९। इसके अनन्तर पर्व तथा पर्वों की सन्धियाँ कही जाती हैं । जो प्राणी स्वर्गलोक में प्राप्त होते हैं और जो अधोगति अर्थात् नरकगामी हैं उनका वर्णन है । दोनों प्रकार के पितृगणों का श्राद्ध करने से बड़ा भारी अनुग्रह होता है । सभी युगों की जितने समय की आयु है उसका

प्रमाण बताया गया है तथा कृतयुग (सत्ययुग) का वर्णन किया है ।६०-६१। और त्रेतायुग में अपकर्ष से वार्ता की सम्प्रवृत्ति होती है । उसी भाँति धर्म से चारों वर्णों की और चारों आश्रमों की संस्थिति होती है ।६२।

वज्रप्रवर्त्तनं चैव संवादो यत्र कीर्त्यते ।
ऋषीणां वसुना सार्द्धं वसोश्चाधः पुनर्गतिः ।
शब्दत्वं च प्रधानात्तु स्वायम्भुवमृते मनुम् ।।६३
प्रशंसा तपसश्चोक्ता युगावस्थाश्च कृत्स्नशः ।
द्वापरस्य कलेश्चापि संक्षेपेण प्रकीर्त्तनम् ।।६४
मन्वन्तरं च संख्या च मानुषेण प्रकीर्त्तिता ।
मन्वन्तराणां सर्वेषामेतदेव च लक्षणम् ।।६५
अतीतानागतानां च वर्त्तमानं च कीर्त्यते ।
तथा मन्वन्तराणां च प्रतिसंधानलक्षणम् ।।६६
अतीतानागतानां च प्रोक्तं स्वायम्भुवे ततः ।
ऋषीणां च गतिः प्रोक्ता कालज्ञानगतिस्तथा ।।६७
दुर्गसंख्याप्रमाणं च युगवार्तप्रवर्त्तनम् ।
त्रेतायां चक्रवर्तीनां लक्षणं जन्म चैव हि ।।६८

और वज्र का प्रवर्तन है जहाँ पर सम्वाद कीर्त्तित किया जाता है । ऋषियों का वसु के साथ फिर वसु की अधोगति कही गयी है । और शब्दत्व स्वायम्भुव मनु के बिना प्रधान से है ।६३। और तपश्चर्या की प्रशंसा कही गयी है तथा पूर्णतया युगों की अवस्था बतायी है । द्वापर और कलियुग का संक्षेप से कीर्त्तन किया गया है ।६४। मन्वन्तर और संख्या मानुष से कीर्त्तित की गयी है । समस्त मन्वन्तरों का यही लक्षण है ।६५। जो भूत काल में हो चुके हैं और जो भविष्य में होने वाले हैं तथा वर्त्तमान काल का कीर्त्तन किया जाता है । उसी भाँति मन्वन्तरों के प्रति सन्धान का लक्षण है ।६६। बीते हुए और आगतों के स्वायम्भुव के कहने पर फिर ऋषियों की गति कही गयी है तथा काल के ज्ञान की गति बतायी गयी है । दुर्गों की संख्या और प्रमाण तथा युग वार्ता का प्रवर्त्तन है । त्रेतायुग में जो चक्रवर्ती राजा हुए थे उनका लक्षण और जन्म कहा गया है ।६७-६८।

प्रमतेश्च तथा जन्म अथो कलियुगस्य वै ।
अंगुलैर्ह्रासनं चैव भूतानां यच्च चोच्यते ॥९९
शाखानां परिसंख्यान शिष्यप्राधान्यमेव च ।
वाक्यं सप्तविधं चैव ऋषिगोत्रानुकीर्तनम् ॥१००
लक्षणं सूतपुत्राणां ब्राह्मणस्य च कृत्स्नशः ।
वेदानां व्यसनं चैव वेदव्यासैर्महात्मभिः ॥१०१
मन्वन्तरेषु देवानां प्रजेशानां च कीर्त्तनम् ।
मन्वन्तरक्रमश्चैव कालज्ञानं च कीर्त्यते ॥१०२
दक्षस्य चापि दौहित्राः प्रियाया दुहितुः शुभाः ।
ब्रह्मादिभिस्ते जनिता दक्षेणैव च धीमता ॥१०३
सावर्णाश्चाव कीर्त्यन्ते मनवो मेरुमाश्रिताः ।
ध्रुवस्यौत्तानपादस्य प्रजासर्गोपवर्णनम् ॥१०४
चाक्षुषस्य मनो सर्गः प्रजानां वीर्यवर्णनम् ।
प्रभुणा चैव वैन्येन भूमिदोहप्रवर्तता ॥१०५

प्रमति के जन्म का कीर्त्तन और इसके अनन्तर कलियुग के जन्म का वर्णन है। जो व्यतीत हो चुके है उनका अँगुली से ह्रास का होना कहा जाता है।९९। शाखाओं की परिसंख्यौं और शिष्यों की प्रधानता कहीं गयी है। सात प्रकार के वाक्य और ऋषियों के गोत्र का कथन है।१००। सूत पुत्रों का लक्षण और ब्राह्मण का पूर्ण लक्षण है। महान् आत्मा वाले वेद-व्यासों के द्वारा वेदों का व्यसन बताया गया है।१०१। मन्वन्तरों में क्षेत्रों का और प्रजापतियों का कीर्त्तन किया गया है। मन्वन्तर का क्रम और काल के ज्ञान का वर्णन किया है।१०२। दक्ष-प्रजापति की प्यारी बेटी के परम शुभ दौहित्र (धेवते) वर्णित किये गये हैं। धीमान् दक्ष के ही द्वारा ब्रह्मादि से वे उत्पन्न किये थे।१०३। यहाँ पर मेरु गिरि पर आश्रय लेने वाले सावर्ण मनुओं का कीर्त्तन किया जाता है। उत्तानपाद राजा के पुत्र ध्रुव की प्रजाओं के उपसर्ग का वर्णन है। चाक्षुष मनु के सर्ग का कथन है और प्रजाओं के वीर्य—पराक्रम का कथन है। प्रभु वैन्य के द्वारा जो भूमि के दोहन करने के लिए प्रवृत्ति हुई थी उसका वर्णन है।१०४-१०५।

पात्राणां पयसां चैव वत्सानां च विशेषणम् ।
ब्रह्मादिभिः पूर्वमेव दुग्धा चेयं वसुन्धरा ।।१०६
दशभ्यश्च प्रचेतोभ्यो मारिषायां प्रजापतेः ।
दक्षस्य कीर्त्यते जन्म समस्यांशेन धीमतः ।।१०७
भूतभव्यभवेशत्वं महेंद्राणां च कीर्त्यते ।
मन्वादिका भविष्यंति आख्यानैर्बहुभिर्वृताः ।।१०८
वैवस्वतस्य च मनोः कीर्त्यंते सर्गविस्तरः ।
ब्रह्मादिकोश उत्पत्तिर्भृग्वादीनां च कीर्त्यंते ।।१०९
विनिष्कृष्य प्रजासर्गे चाक्षुषस्य मनोः शुभे ।
दक्षस्य कीर्त्यते सर्गो ध्यानाद्वैवस्वतांतरे ।।११०
नारदः कृतसंवादो दक्षपुत्रान्महाबलान् ।
नाशयामास शापाय मानसो ब्राह्मणः सुतः ।।१११
ततो दक्षोऽसृजत्कन्यां वैरिणा नाम विश्रुताः ।
मरुत्प्रवाहे मरुतो दित्यां देव्यां च संभवः ।।११२

पात्रों का, दुग्धों का और वत्सों का विशेषण बताया गया है । पूर्व में ही ब्रह्मा आदि के द्वारा इस वसुन्धरा का दोहन किया गया था ।१०६। दश प्रचेताओं से मारिषा में अंश से समान धीमान् दक्ष के जन्म का कीर्त्तन किया जाता है ।१०७। महेन्द्रों के भूतभव्य और शवेशत्व का कीर्त्तन किया जाता है । बहुत से आख्यानों से युक्त मन्वादिक होंगे ।१०८। वैवस्वत मनु के सर्ग का विस्तार कहा जाता है और ब्रह्मादि कोश और भृगु आदि की उत्पत्ति का वर्णन किया जाता है ।१०९। विनिष्कर्षक करके चाक्षुप मनु के शुभ प्रजा के सर्ग में वैवस्वत के अन्तर में ध्यान से दक्ष के सर्ग का वर्णन किया जाता है ।११०। ब्रह्माजी के मानस अर्थात् मन से समुत्पन्न पुत्र श्री नारद जी ने सम्वाद करके महान् बलवान् दक्ष के पुत्रों को शाप के लिए विनाश युक्त कर दिया था ।१११। इसके अनन्तर प्रजापति दक्ष ने कन्याओं को समुत्पन्न किया था जो कि वैरी के द्वारा नाम विश्रुत हुए थे । मरुत् के प्रवाह में मरुत देवी दिति में समुत्पन्न हुआ था ।११२।

कीर्त्यन्ते मरुतां चात्र गणास्ते सप्त सप्तकाः ।

देवत्वमिंद्रवासेन वायुस्कन्धेषु चाश्रमः ॥११३
दैत्यानां दानवानां च यक्षगंधर्वरक्षसाम् ।
सर्वभूतपिशाचानां यक्षाणां पक्षिवीरुधाम ॥११४
उत्पत्तश्चाप्सरसां कीर्त्यते बहुविस्तरात् ।
मार्तण्डमण्डलं कृत्स्नं जन्मैरावतहस्तिनः ॥११५
वैनतेयसमुत्पत्तिस्तथा राज्याभिषेचनम् ।
भृगूणां विस्तरश्चोक्तस्तथा चांगिरसामपि ॥११६
कश्यपस्व पुलस्त्यस्य तथैवात्रेर्महात्मनः ।
पराशरस्य च मुनेः प्रजानां यत्र विस्तरः ॥११७
तिस्रः कन्याः सुकीर्त्यन्ते यासु लोकाः प्रतिष्ठिताः ।
इच्छाया विस्तरश्चोक्त आदित्यस्य ततः परम् ॥११८
किकुविच्चरितं प्रोक्तं ध्रुवस्यैव निवर्हणम् ।
बृहद्वलानां संक्षेपादिक्ष्वाक्वाद्याः प्रकीर्त्तितः ॥११९

इसमें मरुतों के गणों के सात सप्तक अर्थात् उनचास कीर्तित किये जाते हैं। इनको इन्द्र के वास होने से देवत्व है तथा वायु के स्कन्धों में आश्रम है ।११३। दैत्यों की—दानवों की और यक्ष—गन्धर्व तथा राक्षसों की—सब भूत और पिशाचों की—यक्षों की—पक्षियों की और वीरुधों की उत्पत्तियाँ हुई थीं ।११४। इन सबकी उत्पत्तियों का और अप्सराओं की उत्पत्ति का बहुत विस्तृत कीर्त्तन किया जाता है। सम्पूर्ण मार्तण्ड मण्डल का और ऐरावत हस्ती का जन्म बताया गया है ।११५। वेनतेग की उत्पत्ति और राज्य पर अभिषेक का वर्णन है। भृगुओं का और अङ्गिराओं का विस्तार कहा गया है ।११६। जहाँ पर कश्यप—पुलस्त्य और महात्मा अत्रि का तथा पराशर मुनि की प्रजाओं का विस्तार बताया गया है ।११७। तीन कन्याऐं बतायी जाती हैं जिनमें सबलोक प्रतिष्ठित हैं। इच्छा का विस्तार कहा गया है और इसके बाद आदित्य का विस्तृत वर्णन है ।११८। किकुवित् का चरित कहा गया है। ध्रुव का निवर्हण है। बृहद्वलों का वर्णन है और संक्षेप से इक्ष्वाकु आदि कहे गये हैं ।११९।

निश्यादीनां क्षितीशानां पलांडुहरणादिभिः ।
कीर्त्यते विस्तरात्सर्गो ययातेरपि भूपतेः ॥१२०

यदुवंशसमुद्देशो हैहयस्य च विस्तरः ।
क्रोधादनन्तरं चोक्तस्तथा वंशस्य विस्तरः ॥१२१
ज्यामघस्य च माहात्म्यं प्रजासर्गश्च कीर्त्यते ।
देवावृधस्यांधकस्य धृष्टेश्चापि महात्मनः ॥१२२
अनिमित्रान्वयश्चैव विशोर्मिथ्याभिशंसनम् ।
विशोधमनुसंप्राप्तिर्मणिरत्नस्य धीमतः ॥१२३
सत्राजितः प्रजासर्गे राजर्षेर्देवमीढुषः ।
शूरस्य जन्म चाप्युक्तं चरितं च महात्मनः ॥१२४
कंसस्यापि च दौरात्म्यमेकीवंश्यात्समुद्भवः ।
वासुदेवस्य देवक्यां विष्णोरमिततेजसः ॥१२५
अनन्तरमृषेः सर्गप्रजासर्गोपवर्णनम् ।
देवासुरे समुत्पन्ने विष्णुना स्त्रीवधे कृते ॥१२६
संरक्षता शक्रवधं शापः प्राप्तः पुरा भृगोः ।
भृगुश्चोत्थापयामास दिव्यां शुक्रस्य मातरम् ॥१२७

निश्चादिक नृपों का पलाण्डु हरण आदि के द्वारा भूपति ययाति का भी सर्ग विस्तार पूर्वक कहा गया है ।१२०। राजा यदु के वंश का समुद्देश और हैहय का विस्तार बताया गया है । क्रोध के अनन्तर वंश का विस्तार कहा गया है ।१२१। ज्यामघ का माहात्म्य और उसकी प्रजाओं की उत्पत्ति कीर्त्तित की जाती है । देवा वृध—अन्धक और महान आत्मा वाले धृष्टि का वर्णन किया जाता है ।१२२। अनमित्र का वंश–वर्णन, तथा विशु का मिथ्या अभिशंसन और धीमान् मणिरत्न का विरोध तथा अनुसम्प्राप्ति बतायी गयी है ।१२३। राजर्षि देवमीढु के प्रजा के सर्ग में सत्राजित् और शूर का भी जन्म कहा है तथा इस महात्मा का चरित भी बताया गया है ।१२४। राजा कंस की दुरात्मता और एकीवंश्ल से समुत्पत्ति बतायी गयी है । वसुदेव का जन्म और देवकी के गर्भ से अपरिमित तेज वाले भगवान् विष्णु का आविर्भाव हुआ था ।१२५। इसके पश्चात् ऋषि का सर्ग है और प्रजाओं के सर्ग का उपवर्णन है । देवासुर के समुत्पन्न होने पर विष्णु भगवान् के द्वारा स्त्री का वध किये जाने पर ।१२६। इन्द्र के वध का संरक्षण करने वाले ने पहिले

भृगु का शाप प्राप्त किया था और भृगु ने शुक्र की दिव्य माता को उठाया था।१२७।

देवानां च ऋषीणां च संक्रमा द्वादशाहृताः।
नारसिंहप्रभृतयः कीर्त्यन्ते पापनाशनाः॥१२८
शुक्रेणाराधनं स्थाणोर्घोरेण तपसा तथा।
वरप्रदानकृत्तेन यत्र शर्वस्तवः कृतः॥१२९
अनन्तरं च निर्दिष्टं देवासुरविचेष्टितम्।
जयंत्या सह शक्रेण यत्र शुक्रो महामति॥१३०
असुरान्मोहयामास शक्ररूपेण बुद्धिमान्।
बृहस्पति तं शुक्रं शशाप स महाद्युतिः॥१३१
उक्तं च विष्णोर्माहात्म्यं विष्णोर्जन्मनि शब्द्यते।
तुर्वसुश्चात्र दौहित्रो यवीयान्यो यदोरभूत्॥१३२
अनुद्रुह्यादयः सर्वे तथा तत्तनया नृपाः।
अनुवंश्या महात्मानस्तेषां पार्थिवसत्तमाः॥१३३

देवों के और ऋषियों के संक्रम से द्वादश आहृत हुए थे। नारसिंह प्रभृति पापों के नाश करने वाले कीर्तित किये गये हैं।१२८। अत्यन्त घोर तप के द्वारा शुक्र देव ने भगवान् शिव की आराधना की थी। फिर उसने वर के प्रदान करने वाले भगवान् शिव की स्तुति की थी।१२९। इसके उपरान्त देवों और असुरों की विशेष चेष्टा का निर्देश किया गया है जहाँ पर महात्मा में शुक्र ने जयन्ती के साथ इन्द्र ने किया था।१३०। बुद्धिमान् ने इन्द्र के रूप से असुरों को मोहित कर दिया था। और महती द्युति वाले बृहस्पति ने शुक्राचार्य को शाप दे दिया था।१३१। भगवान् विष्णु के जन्म में विष्णु का माहात्म्य कहा जाता है। वहाँ पर तुर्वसु दौहित्र था जो यदु का सब से छोटा हुआ था।१३२। अनुद्रुह्य आदि सब नृप उसके पुत्र हुए थे। उसके महात्मा श्रेष्ठ नृप उनके पीछे वंश में होने वाले हुए थे।१३३।

कीर्त्यंते यत्र कार्त्स्न्येन भूरिद्रविणतेजसः।
आतिथ्यस्य तु विप्रर्षेः सप्तधा धर्मसंश्रयात्॥१३४
बार्हस्पत्यं सूरिभिश्च यत्र शापमुपावृतम्।

हरवंशयशः स्पर्शः शंतनोर्वीर्यशब्दनम् ।।१३५
भविष्यतां तथा राज्ञामुपसंहारशब्दनम् ।
अनागतानां संघानां प्रभूणां चोपवर्णनम् ।।१३६
भौत्यस्यांते कलियुगे क्षीणे संहारवर्णनम् ।
नैमित्तिकाः प्राकृतिका यथैवात्यंतिकाः स्मृताः ।।१३७
विविधः सर्वभूतानां कीर्त्यंते प्रतिसंचरः ।
अनावृष्टिर्भास्करस्य घोरः संवर्त्तकानलः ।।१३८
सांख्ये लक्षणमुद्दिष्टं ततो ब्रह्म विशेषतः ।
भुवादीनां च लोकानां सप्तानां चोपवर्णनम् ।।१३९
अपारार्द्धपरैश्चैव लक्षणं परिकीर्त्यते ।
ब्रह्मणो योजनाग्रेण परिमाणविनिर्णयः ।।१४०
कीर्त्यन्ते चात्र निरयाः पापानां रौरवादयः ।
सर्वेषां चैव सत्त्वानां परिणामविनिर्णयः ।।१४१

जहाँ पर पूर्णरूप से अधिक द्रव्य और तेज वाले विप्रर्षि के धर्म के संश्रय से आतिथ्य का कीर्त्तन किया जाता है ।१३४। जहाँ पर सूरियों ने वृहस्पति के शाप को प्राप्त किया था । हर वंश के यश का स्पर्श है और राजा शन्तनु के वीर्य पराक्रम का कथन है ।१३५। आगे भविष्य में होने वाले राजाओं के उपसंहार का कथन है । जो अनागत संघ है और प्रभु हैं उनका उपवर्णन है ।१३६। भौत्य के अन्त में कलियुग के क्षीण हो जाने पर संहार का वर्णन है । जो भी किसी निमित्त के कारण होने वाले थे, प्राकृतिक थे और जो आत्यन्तिक कहे गये हैं ।१३७। समस्त प्राणियों का अनेक प्रकार का प्रति सञ्चरण था उसका कीर्त्तन किया जाता है । भगवान् भास्कर का दृष्टि में न आने वाला परम घोर संवर्त्तक अनल था ।१३८। सांख्य में लक्षण उद्दिष्ट है इसके बाद विशेष रूप से ब्रह्म का वर्णन है । ध्रुव आदि सात लोकों का उप वर्णन है ।१३९। अपरार्द्धपरों के द्वारा लक्षण का परिकीर्त्तन किया जाता है । योजनाग्र से ब्रह्म के परिमाण का विशेष निर्णय किया गया है ।१४०। रौरव आदि नरकों का तथा सभी प्राणियों के पापों के निर्णय का वर्णन किया गया है ।४१।

ब्रह्मणः प्रतिसंसर्गात्सर्वसंसारवर्णनम् ।
गतिरूर्ध्वमधश्चोक्ता धर्माधर्मसमाश्रया ॥१४२
कल्पे कल्पे च भूतानां महतामपि संक्षयम् ।
असंख्यया च दुःखानि ब्रह्मणश्चाप्यनित्यता ॥१४३
दौरात्म्यं चैव भोगानां संहारस्य च कष्टता ।
दुर्लभत्वं च मोक्षस्य वैराग्याद्दोषदर्शनात् ॥१४४
व्यक्ताव्यक्तं परित्यज्य सत्त्वं ब्रह्मणि संस्थितम् ।
नानात्वदर्शनाच्छुद्धस्तत्त्वस्तत्र निवर्त्तते ॥१४५
ततस्तापत्रयाद् भीतो रूपार्थो हि निरंजनः ।
आनंदं ब्रह्मणः प्राप्य न बिभेति कुश्चन ॥१४६
कीर्त्यते च पुनः सर्गो ब्रह्मणोऽन्यस्य पूर्ववत् ।
कीर्त्यते जगतश्चात्र सर्गप्रलयविक्रियाः ॥१४७

ब्रह्मा के प्रति संसर्ग से सब संसार का वर्णन होता है । धर्म और अधर्म के समाश्रय वाली ऊर्ध्वगति और अधोगति कही गयी है ।१४२। कल्प कल्प में महान् भूतों का भी संक्षय होता है और असंख्य दुःख होते हैं तथा ब्रह्मा की भी नित्यता नहीं है अर्थात् ब्रह्मा का भी विनाश होता है ।१४३। भोगों की दुरात्मता है अर्थात् भोगों का बुरा प्रभाव होता है और संहार के समय में बड़ा कष्ट होता है । दोषों के देखने से जो वैराग्य उत्पन्न होता है वह बहुत कठिन है और मोक्ष होना महान दुर्लभ है ।१४४। व्यक्त और अव्यक्त का पूर्ण सत्व ब्रह्म में संस्थित हो जाता है । नाना रूपता के दर्शन से वहाँ पर शुद्ध स्तव निवृत्त हो जाया करता है ।१४५। इसके अनन्तर तीनों (आधिभौतिक-आधिदैविक आध्यात्मिक) तापों से भयभीत होता हुआ रूपार्थ निरञ्जन ब्रह्म के आनन्द को प्राप्त करके फिर कहीं से भी नहीं डरता है ।१४६। फिर पूर्व की ही भाँति अन्य ब्रह्मा के सर्ग का कीर्त्तन किया जाता है । इसमें जगत की सृष्टि-प्रलय और विक्रिया का कीर्त्तन किया जाता है ।१४७।

प्रवृत्तयश्च भूतानां प्रसूतानां फलानि च ।
कीर्त्यते ऋषिवर्गस्य सर्गः पापप्रणाशनः ॥१४८

प्रादुर्भावो वसिष्ठस्य शक्तेर्जन्म तथैव च ।
सौदासास्थिग्रहश्चास्य विश्वामित्रकृतेन तु ॥१४६
पराशरस्य चोत्पत्तिरदृश्यत्यां तथा विभोः ।
संजज्ञे पितृकन्यायां व्यासश्चापि महामुनिः ॥१५०
शुकस्य च तथा जन्म सह पुत्रस्य धीमतः ।
पराशरस्य प्रद्वेषो विश्वामित्रऋषि प्रति ॥१५१
वसिष्ठसंभूतिश्चाग्नेर्विश्वामित्रजिघांसया ।
देवेन विधिना विप्र विश्वामित्रहितैषिणा ॥१५२
संतानहेतोर्विभुना गीर्णस्कंधेन धीमता ।
एकं वेदं चतुष्पादं चतुर्द्धा पुनरीश्वरः ॥१५३
तथा बिभेद भगवान् व्यासः शार्वाद्गनुग्रहात् ।
तस्य शिष्यप्रशिष्यैश्च शाखा वेदायुताः कृताः ॥१५४

भूतगणों की प्रवृत्तियां और प्रसूत भूतों के फल कहे जाते हैं। ऋषियों के समुदाय के पापों का नाश कर देने वाला सर्ग कहा जाता है। ।१४८। वसिष्ठ मुनि का प्रादुर्भाव और शक्ति का जन्म उसी प्रकार से बतलाया गया है। विश्वामित्र के द्वारा किया हुआ इस सौदान की अस्थियों का ग्रहण कहा गया है ।१४६। अदृश्यन्ती में विभु पराशर की उत्पत्ति कही गयी है। अपने पिता की कन्या के उदर से महामुनि व्यासदेव ने जन्म ग्रहण किया था ।१५०। धीमान् सह पुत्र शुकदेव मुनि का जन्म कहा गया है। पराशर ऋषि का विश्वामित्र मुनि को प्रति प्रकृष्ट विद्वेष होता है ।१५१। विश्वामित्र मुनि की हिंसा की इच्छा से अग्नि की वसिष्ठ सभृति का कथन है। विप्र विश्वामित्र के हित की इच्छा वाले देव विधाता ने ऐसा किया था ।१५२। विभु बुद्धिमान् गीर्ण स्कन्ध ने सन्तान के हेतु से एक वेद के चार पाद किये थे और फिर ईश्वर ने चार प्रकार से किया था ।१५३। भगवान् शिव के अनुग्रह से भगवान् व्यासदेव ने उसी भाँति भेद किया था। उस वेद के शिष्यों और प्रशिष्टों ने वेद की अयुत शाखायें की थी ।१५४।

प्रयोगे प्रह्वला नैव यथा दृष्टः स्वयंभुवा ।
पृष्टवन्तो विशिष्टास्ते मुनयो धर्मकांक्षिणः ॥१५५

देशं पुण्यमभीप्सतो विभुना तद्धितैषिणा ।
सुनाभं दिव्यरूपाभं सप्तांगं शुभशंसनम् ॥१५६
आनौपम्यमिदं चक्रं वर्त्तमानमतंद्रिताः ।
पृष्ठतो यात नियतास्ततः प्राप्स्यथ पाटितम् ॥१५७
गच्छतस्तस्य चक्रस्य यत्र नेमिर्विशीर्यते ।
पुण्यः स देशो मंतव्यः प्रत्युवाच तदा प्रभुः ॥१५८
उक्त्वा चैवमृषीन्सर्वानदृश्यत्वमुपागमत् ।
गंगा गर्भ यवाहारा नैमिषेयास्तथैव च ॥१५९
ईजिरे चैव सत्रेथ मुनयो नैमिषे तदा ॥१६०
मृते शरद्वति तथा तस्य चोत्थापनं कृतम् ।
ऋषयो नैमिषेयाश्च दयया परया युताः ॥१६१

प्रयोग में प्रह्वला नहीं है जैसा कि स्वयम्भू ने देखा है । धर्म की आकांक्षा रखने वाले उन विशिष्ट मुनियों ने पूछा था ।१५५। जो कि पुण्य देश की इच्छा रखने वाले थे और विभु उनके हित की इच्छा रखने वाले थे । सुनाभ-दिव्यरूप और आभा से युक्त-सात अङ्गों वाला और शुभ को बताने वाला था ।१५६। यह उपमा से रहित वर्तमान चक्र था । पीछे से अतन्द्रित होकर नियत वे गमन करें फिर पाटित को प्राप्त हो जायेंगे ।१५७। गमन करते हुए उस चक्र की जहाँ पर ही नेमि विशीर्ण हो जाती है—उस समय में प्रभु ने यही उत्तर दिया था कि उसी देश को पुण्यमत मानना चाहिए ।१५७। इस रीति से उन सब ऋषियों से कहकर वे अदृश्य हो गये थे । गङ्गा के गर्भ में वे नैमिषेय यवों का आहार करने वाले रहे थे ।१५९। उस समय में नैमिष में मुनियों ने सब के द्वारा उपासना की थी ।१६०। शरद्वान् के समाप्त हो जाने पर उसका उत्पादन किया था । वे नैमिषेय ऋषिगत परमाधिक दया से समन्वित थे ।१६१।

निःसीमां गामिमां कृत्वा कृष्णं राजानमाहरत् ।
प्रीतिं चैव कृतातिथ्यं राजानं विधिवत्तदा ॥१६२
अंतः सर्गगतः क्रूरः स्वर्भानुरसुरो हरन् ।
हृते राजनि राजानु मद्रते मुनयस्ततः ॥१६३

गंधर्वरक्षितं दृष्ट्वा कलापग्रामकेतनम् ।
सन्निपातः पुनस्तस्य तथा यज्ञे महर्षिभिः ॥१६४

दृष्ट्वा हिरण्मयं सर्वं विवादस्तस्य तैरभून् ।
तदा वै नैमिषेयाणां सत्रे द्वादशवार्षिके ॥१६५

तथा विवदमानैश्च यदुः संस्थापितश्च तैः ।
जनयित्वा त्वरण्यं वै यदुपुत्रमथायुतम् ॥१६६

समापयित्वा तत्सत्रं वायुं ते पर्युपासत ।
इति कृत्यसमुद्देशः पुराणांशोपवर्णितः ॥१६७

अनेनानुक्रमेणैव पुराणं संप्रकाशते ।
सुखमर्थः सदासेन महानप्युपलक्ष्यते ॥१६८

इस भूमि को सीमा से रहित करके उन्होंने राजा कृष्ण का आहरण किया था। उस समय में उन्होंने विधि के साथ प्रीति को प्रदर्शित किया था और उनका भली-भांति आतिथ्य भी किया था ।१६२। अन्दर से क्रूर और सब जगह जाने वाले स्वर्भानु असुर ने हरण किया था। राजा के शीघ्र जाने पर मुनि राजा के ही पीछे मद्रित हो गये थे ।१६३। कलाप ग्राम केतन को गन्धर्वों के द्वारा सुरक्षित देखकर फिर उसका सन्निपात हुआ था। उसी प्रकार से यज्ञ में महर्षियों ने देखा था ।१६४। वहाँ पर सभी कुछ सुवर्णमय उन्होंने देखा था और उनका उसके साथ विवाद हुआ था। उस अवसर पर नैमिषेयों का वह सत्र (यज्ञ) बारह वर्ष का था उस यज्ञ में ।१६५। उस भाँति परस्पर में विवाह करने वाले उन्होंने यदु को संस्थापित किया था। इसके अनतर अमृत यदु के पुत्रों वाले उस अरण्य को बचा दिया था ।१६६। उस यज्ञ की परिसमाप्ति करके उन्होंने वासुदेव की उपासना की थी। यह कृत्यों का समुद्देश है जो पुराण के इस अंश में उपवर्णित किया गया है। ।१६७। इसी अनुक्रम से यह पुराण संप्रकाशित होता है समास से सुख अर्थ होता है और इससे महान् भी उपलक्षित होता है ।१६८।

तस्मात्समासमुद्दिश्य वक्ष्यामि तव विस्तरम् ।
पादमाद्यमिदं सम्यग् योऽधीते विजितेन्द्रियः ॥१६९

तेनाधीतं पुराणं स्यात्सर्वं नास्त्यत्र संशयः ।
यो विद्याच्चतुरो वेदान् सांगोपनिषदान् द्विजाः ॥१७०

इतिहासपुराणाभ्यां वेदं समुपवृंहयेत् ।
बिभेत्यल्पश्रुताद्वेदो मामयं प्रहरिष्यति ॥१७१
अभ्यसन्निममध्यायं साक्षात्प्रोक्तं स्वयंभुवा ।
नापदं प्राप्य मुह्येत यथेष्टां प्राप्नुयाद्गतिम् ॥१७२
यस्मात्पुरा ह्यभूच्चैतत्पुराणं तेन तत्स्मृतम् ।
निरुक्तमस्य यो वेद सर्वपापैः प्रमुच्यते ॥१७३
अतश्च संक्षेपमिमं शृणुध्वं नारायणः सर्वमिदं पुराणम् ।
संसर्गकालेऽपि करोति सर्गं संहारकाले च न
वास्ति भूयः ॥१७४

इस कारण से समास का उद्देश्य करके आपको विस्तार से कहूँगा । जो अपनी इन्द्रियों पर विजय प्राप्त कर लेने वाला पुरुष इस आद्य पाद का भली-भाँति से अध्ययन किया करता है ।१६९। उसने इस सम्पूर्ण पुराण का ही मानों अध्ययन कर लिया है—इसमें लेशमात्र भी संशय नहीं है । द्विज-गणों ! अङ्गों और उपनिषदों के सहित जिसने चारों वेदों का ज्ञान प्राप्त कर लिया है ।१७०। इतिहास पुराणों से वेद को समुपवृंहित करना चाहिए। जो बहुत ही कम पढ़ा लिखा पुरुष है उससे वेद भी भय खाता है कि यह मेरे ऊपर प्रहार करेगा ।१७१। साक्षात् स्वयम्भू ने स्वयं कहा है कि इस अध्याय के अभ्यास करने वाला पुरुष आपदा को प्राप्त करके भी कभी मोह को प्राप्त नहीं हुआ करता है और अपनी अभीष्ट गति को प्राप्त कर लिया करता है ।१७२। कारण यह है कि यह पुराण प्राचीन काल में हुआ था और उनने यह कहा था कि जो इसके निरुक्त जानता है वह सब प्रकार के पापों से प्रमुक्त हो जाया करता है ।१७३। इसलिए इसके संक्षेप का श्रवण करो । यह सम्पूर्ण पुराण साक्षात् भगवान् नारायण का ही स्वरूप है । संसर्ग काल में भी सर्ग करता है और संहार के काल में फिर नहीं होता है ।१७४।

नैमिषाख्यान वर्णनम्

प्रत्यवोचन्पुनः सूतमृषयस्ते तपोधनाः ।
कुत्र सत्रं समभवत्तेषामद्भुतकर्मणाम् ॥१

कियन्तं चैव तत्कालं कथं च समवर्त्तत ।
आचचक्षे पुराणं च कथं तत्सप्रभंजनः ॥२
आचख्यौ विस्तरेणैव परं कौतूहलं हि नः ।
इति संचोदितः सूतः प्रत्युवाच शुभं वचः ॥३
शृणुध्वं यत्र ते धीरा मेनिरे सत्त्रमुत्तमम् ।
यावन्तं चाभवत्कालं यथा च समवर्तत ॥४
सिसृक्षमाणो विश्वं हि यजते विसृजत्पुरा ।
सत्रं हि तेऽतिपुण्यं च सहस्रपरिवत्सरान् ॥५
तपोगृहपतेर्यत्र ब्रह्मा चैवाभवत्स्वयम् ।
इडाया यत्र पत्नीत्वं शामित्रं यत्र बुद्धिमान् ॥६
मृत्युश्चक्रे महातेजास्तस्मिन्सत्रे महात्मनाम् ।
विबुधाश्चोषिरे तत्र सहस्रपरिवत्सरान् ॥७

तपश्चर्या के धन वाले उन ऋषियों ने श्रीसूतजी से फिर कहा था कि उन अद्भुत कर्मों के करने वालों का वह यज्ञ कहाँ पर हुआ था ।१। वह समय जिसमें यज्ञ का यजन हुआ था कितना था और वह किस प्रकार से सम्पन्न हुआ था ? । वायुदेव ने पुराण की किस रीति से कहा था ? ।२। उन्होंने बहुत विस्तार के साथ इस पुराण का कथन किया था—इसमें हम सबके हृदय में बड़ा भारी कौतूहल हो रहा है । इस प्रकार से जब प्रेरित किया गया था तो श्री सूतजी ने परम शुभ वचन से उत्तर दिया था ।३। हे मुनियो ! आप लोग श्रवण कीजिए । जहाँ पर उन धीरों ने उस उत्तम सत्र को किया था । और जितने समय पर्यन्त वह वहाँ पर हुआ था और जिस रीति से हुआ था ।४। इस विशाल विश्व का सृजन करने की इच्छा वाला यजन करता है तब पहिले विसृजन करता है । यह सत्र अत्यधिक पुण्य मय है जो कि एक सहस्र परिवत्सरों तक हुआ था ।५। जहाँ पर गृहपति का ब्रह्मा तप स्वयं ही हुआ था और जिसमें पत्नीत्व इडा का था और जहाँ बुद्धिमान् शामित्र था ।६। उन महान् आत्माओं वालों के यज्ञ में महातेज वाले मृत्यु ने सत्र किया था । सहस्र परिवत्सरों तक वहाँ पर देवगणों ने निवास किया था ।७।

भ्रमतो धर्मचक्रस्य यत्र नेमिरशीर्यत ।

कर्मणा तेन विख्यातं नैमिषं मुनिपूजितम् ॥८
यत्र सा गोमती पुण्या सिद्धचारणसेविता ।
रोहिणी ससुता तत्र गोमती साभवत् क्षणात् ॥९
शक्तिर्ज्येष्ठा समभवद्वसिष्ठस्य महात्मनः ।
अरुन्धत्याः सुतायात्रादानमुत्तमतेजसः ॥१०
कल्माषपादो नृपतिर्यत्र शक्रश्च शक्तिना ।
यत्र वैरं समभवद्विश्वामित्रवसिष्ठयोः ॥११
अदृश्यंत्यां समभवन्मुनिर्यत्र पराशरः ।
पराभवो वसिष्ठस्य यस्य ज्ञाने ह्यवर्त्तयत् ॥१२
तत्र ते मेनिरे शैलं नैमिषे ब्रह्मवादिनः ।
नैमिषं जज्ञिरे यस्मान्नैमिषीयास्ततः स्मृताः ॥१३
तत्सत्रमभवत्तेषां समा द्वादश धीमताम् ।
पुरूरवसि विक्रांते प्रशासति वसुन्धराम् ॥१४

भ्रमण करते हुए धर्म चक्र की नेमि जहां पर शीर्ण हो गयी थी । उस कर्म से मुनियों के द्वारा समर्चित नैमिष विख्यात हुआ था ।८। जहाँ परम पुण्यमयी गोमती नदी है जो कि सिद्धों और चारणों के द्वारा सदा सेवित रहा करती है । वहां पर ससुता रोहिणी एक ही क्षणमात्र में वह गोमती हो गयी थी ।९। महात्मा वसिष्ठ की शक्ति ज्येष्ठा हुई थी जो उत्तम तेज वाली अरुन्धती की सुता का यात्रा दान था ।१०। कल्माषपाद नृप और शक्ति के सहित इन्द्रदेव थे जहां पर विश्वामित्र और वसिष्ठ मुनि का वैर हुआ था ।११। जिस स्थल पर अदृश्यन्ती में पराशर मुनि ने जन्म ग्रहण किया था । जिसके ज्ञान में वसिष्ठ मुनि का पराभव हुआ था ।११। वहां पर उन ब्रह्म वादियों ने उस शैल को नैमिष माना था । क्योंकि वहां पर नैमिष यजन किया था अतएव तभी से वे सब नैमिष कहे गये थे ।१३। वह सत्र उन बुद्धिमानों का द्वादश वर्षों तक हुआ था जबकि विक्रमी पुरूरवा नृप इस वसुन्धरा पर शासन कर रहा था ।१४।

अष्टादश समुद्रस्य द्वीपानश्नन् पुरूरवाः ।
तुतोष नैव रत्नानां लोभादिति हि नः श्रुतम् ॥१५

उर्वशी चकमे तं च देवदूतप्रचोदिता ।
आजहार च तत्सत्रमुर्वश्या सह संगतः ॥१६
तस्मिन्नरपतौ सत्रे नैमिषीयाः प्रचक्रिरे ।
यं गर्भं सुषुवे गङ्गा पावकाद्दीप्ततेजसम् ॥१७
तत्तुल्यं पर्वतो न्यस्तं हिरण्यं समपद्यत ।
हिरण्मयं ततश्चक्रे यज्ञवाटं महात्मनाम् ॥१८
विश्वकर्मा स्वयं देवो भावनो लोकभावनः ।
स प्रविश्य ततः सत्रे तेषाममिततेजसाम् ॥१९
ऐडः पुरूरवा भेजे तं देशं मृगयां चरन् ।
तं दृष्ट्वा महदाश्चर्यं यज्ञवाटं हिरण्मयम् ॥२०
लोभेन हृतविज्ञानस्तदादातुमुपाक्रमत् ।
नैमिषेयास्ततस्तस्य चुक्रुधुर्नृपतिं भृशम् ॥२१

अट्ठारह समुद्र के द्वीपों का अशन करते हुए भी पुरूरवा लोभ से रत्नों से सन्तुष्ट न हुआ था—ऐसा हमने सुना है ।१५। देवदूतों के द्वारा प्रेरित हुई उर्वशी ने उसको अपना पति बनाने की कामना की थी । उर्वशी के साथ संगत होकर उसने उस सत्र का आहरण किया था ।१६। उस नर पति के होने पर नैमिषीयों ने सत्र किया था । गंगा ने पावक से दीप्त तेज वाले जिस गर्भ का प्रसव किया था ।१७। उसके तुल्य पर्वत में न्यस्त किया हुआ हिरण्य (सुवर्ण) हो गया था । इसके अनन्तर उन महात्माओं को हिरण्मय कर दिया था ।१८। लोकों को प्रसन्न करने वाले परम भावुक विश्वकर्मा स्वयं देव था । उन अपरिमित तेज वालों के सत्र में फिर उस विश्वकर्मा ने प्रवेश किया था । ऐड पुरूरवा ने शिकार करते हुए उस देश का सेवन किया था । उसने जब देखा था कि वह यज्ञ का स्थल एकदम सुवर्णमय है तो उसको महान् आश्चर्य हुआ था ।१९-२०। लोभ के कारण उस राजा का सब ज्ञान नष्ट हो गया था और उसने उसको स्वयं ग्रहण करने का उपक्रम किया था । तब तो जो नैमिषीय मुनिगण वहाँ पर थे वे उस राजा पर बहुत क्रुद्ध हुए थे ।२१।

निजघ्नुश्चापि तं क्रुद्धाः कुशवज्रैर्मनीषिणः ।
तपोनिष्ठाश्च राजानं मुनयो देवचोदिताः ॥२२

कुशवज्रै र्विनिष्पिष्टः स राजा व्यजहात्तनुम् ।
और्वशेयैस्ततस्तस्य युद्धं चक्रे नृपो भुवि ।।२३
नहुषस्य महात्मानं पितरं यं प्रचक्षते ।
स तेष्ववभृथेष्वेव धर्म्मशीलो महीपतिः ।।२४
आयुरायभवायाग्र यमस्मिन् सत्रे नरोत्तमः ।
शान्तयित्वा तु राजानं तदा ब्रह्मविदस्तथा ।।२५
सत्रमारेभिरे कर्त्तुं पृथ्वीवत्सात्ममूर्तयः ।
बभूव सत्रे तेषां तु ब्रह्मचर्यं महात्मनाम् ।।२६
विश्वं सिसृक्षमाणानां पुरा विश्वसृजामिव ।
वैखानसैः प्रियसखैर्वालखिल्यैर्मरीचिभिः ।।२७
अजैश्च मुनिभिर्जातं सूर्यवैश्वानरप्रभः ।
पितृदेवाप्सरः सिद्धैर्गंधर्वोरगचारणैः ।।२८

उन मनीषियों ने बहुत क्रोधित होते हुए कुश के वज्रों से उसका हनन किया था क्योंकि वे मुनिगण तपश्चर्या में निष्ठा रखने वाले और दैव के द्वारा प्रेरित थे ।२२। कुशाओं के वज्रों से पिसकर उस राजा ने अपना शरीर त्याग दिया था । उसके अनन्तर भूमि में उसके उर्वशी के पुत्रों के साथ नृप ने युद्ध किया था ।२३। नहुष के जिसको महात्मा पिता कहते हैं । उन अव-भृथों में ही वह महीपति बहुत ही धर्मशील था ।२४। इस सत्र में वह नर-श्रेष्ठ आयुराय और जन्म से बहुत श्रेष्ठ था । उस समय में ब्रह्म वेत्ताओं ने राजा को शान्त किया था ।२५। आत्म मूर्ति वाले उन्होंने पृथ्वी के समान सत्र करने का आरम्भ कर दिया था उनके सत्र में उन महात्माओं का ब्रह्म-चर्य हुआ था ।२६। विश्व के सृजन करने की इच्छा वाले का प्राचीनकाल में विश्व के स्रष्टाओं की भाँति वैखानस-प्रियसखा-बालखिल्य-मरीचियों-अज और मुनिगण-पितृगण-देव-अप्सरा-सिद्ध-गन्धर्व-उरग और चारण के साथ वह सूर्य तथा वैश्वानर के समान प्रभा वाला हुआ था ।२७-२८।

भारतीः शुशुभे राजा देवैरिन्द्रसमो यथा ।
स्तोत्रशस्त्रैर्गृहैर्देवान्पितृन्पिश्यद्य कर्मभिः ।।२९
आनर्चुःस्म यथाजाति गंधर्वादीन् यथाविधि ।

आराधने स सस्मार ततः कर्मान्तरेषु च ॥३०
जगुः सामानि गन्धर्वा ननृतुश्चाप्सरोगणाः ।
व्याजह्रुर्मुनयो वाचं चित्राक्षरपदां शुभाम् ॥३१
मन्त्रादि तत्र विद्वांसो जजपुश्च परस्परम् ।
वितंडावचनैश्चैव निजघ्नुः प्रतिवादिनः ॥३२
ऋषयश्चैव विद्वांसः शब्दार्थन्यायकोविदाः ।
न तत्र हारितं किंचिद्विविशुर्ब्रह्मराक्षसाः ॥३३
नैव यज्ञहरा दैत्या नैव वाजमुखास्त्रिणः ।
प्रायश्चित्तं दरिद्रं च न तत्र समजायत । ३४
शक्तिप्रज्ञाक्रियायोगैर्विधिराशीष्वनुष्ठितः ।
एवं च ववृधे सत्रं द्वादशाब्दं मनीषिणाम् ॥३५

भारतीयों के द्वारा राजा देवगणों से इन्द्र के समान शोभायुक्त हुआ था। शस्त्रों-स्तोत्रों और गृहों से देवगणों का तथा पित्र्य कर्मों से पितृगणों का और गन्धर्व आदि का जाति के अनुसार विधिपूर्वक किया करते थे। उसने आराधना में और फिर अन्य कर्मों में स्मरण किया था ।२९-३०। गन्धर्वगण सामवेद के मन्त्रों का गान कर रहे थे परम शुभ और विचित्र अक्षरों और पदों से युक्त वाणी का उच्चारण कर रहे थे जो परम शुभ थी ।३१। वहाँ पर विद्वान् लोग परस्पर में मन्त्रों का जप करते थे। प्रतिवादी गण वितण्डावाद के वचनों के द्वारा निहनन कर रहे थे ।३२। ऋषिगण और शब्दार्थ तथा न्याय के ज्ञाता वहाँ पर थे। वहां पर कुछ भी हारित नहीं था और ब्रह्मराक्षसों ने प्रवेश किया था ।३३। दैत्यगण यज्ञ के हरण करने वाले नहीं थे और वाजमुख अस्त्र आदि थे। प्रायश्चित्त और दरिद्रता वहाँ पर नहीं थे ।३४। शक्ति-प्रजा और क्रिया के योगों से आशिषों में विधि अनुष्ठित की गयी थी। इस रीति से वह यज्ञ मनीषियों का बारह वर्ष पर्यन्त वृद्धि युक्त हुआ था ।३५।

ऋषीणां नैमिषीयाणां तदभूदिव वज्रिणः ।
वृद्धाद्या ऋत्विजो वीरा ज्योतिष्टोमान् पृथक्पृथक् ॥३६
चक्रिरे पृष्ठगमनाः सर्वानयुतदक्षिणान् ।

समाप्तयज्ञो यत्रास्ते वासुदेवं महाधिपम् ॥३७
पप्रच्छुरमितात्मानं भवद्भिर्यदहं द्विजः ।
प्रचोदितः स्ववंशार्थं स च तानब्रवीत्प्रभुः ॥३८
शिष्यः स्वयंभुवो देवः सर्वं प्रत्यक्षदृग्वशी ।
अणिमादिभिरष्टाभिः सूक्ष्मैरंगैः समन्वितः ॥३९
तिर्यग्वातादिभिर्वर्षैः सर्वांल्लोकान्बिभर्ति यः ।
सप्तस्कन्धा भृताः शाखाः सर्वतोयाजराजरान् ॥४०
विषयैर्मरुतो यस्य संस्थिताः सप्तसप्तकाः ।
व्यूहत्रयाणां सूतानां कुर्वन् सत्रं महाबलः ॥४१
तेजसश्श्चाप्युयानां दधातीह शरीरिणः ।
प्राणाद्या वृत्तयः पञ्च धारणानां स्ववृत्तिभिः ॥४२

ऋषियों का जो कि नैमिषीय थे वह सत्र इन्द्र के समान हुआ था। वृद्धाद्य-ऋत्विज और वीर पीछे की ओर गमन करने वाले होते हुए ज्योतिष्टोमों को पृथक् २ सबको अयुत दक्षिणा वाले कर रहे थे। जहाँ पर यज्ञ समाप्त हुआ था वहाँ पर महान् आधिप भगवान् वासुदेव से जो कि अमित आत्मा वाले थे पूछा था कि आपने मुझ ब्राह्मण को प्रेरित किया था कि अपने वंश के लिए यह करो। और उन प्रभु ने उनसे कहा था।३६-३८। शिष्य वशी देव स्वयंम्भुव है जो प्रत्यक्ष रूप से देखने वाला है और अणिमा आदि आठों सूक्ष्म अङ्गों से समन्वित रहते हैं।३९। जोकि तिर्यग्वात आदि वर्षों से समस्त लोकों का भरण किया करते हैं। सात स्कन्धशाखाओं से भृत थे और विषयों से सर्व तो या जराजर युक्त थे जिसके मरुत् सप्त सप्तक संस्थित महाबल सूत तीनों व्यूहों का सत्र कर रहा था।४०-४१। उपायों के शरीर धारी तेज का यहां पर धारण करता है। धारणाओं की प्राणाद्य पांच वृत्तियां अपनी वृत्तियों से युक्त थी।४२।

पूर्णमाणः शरीराणां धारणं यस्य कुर्वते ।
आकाशयोनिर्द्विगुणः शब्दस्पर्शसमन्वितः ॥४३
वाचोरणिः समाख्याता शब्दशास्त्रविचक्षणैः ।
भारत्याः श्लक्ष्णया सर्वान्मुनीन्प्रह्लादयन्निव ॥४४

पुराणज्ञाः सुमनसः पुराणाश्रययुक्तया ।
पुराणनियता विप्राः कथामकथद्विभुः ॥४५
एतत्सर्वं यथावृत्तमाख्यानं द्विजसत्तमाः ।
ऋषीणां च परं चैतल्लोकतत्त्वमनुत्तमम् ॥४६
ब्रह्मणा यत्पुरा प्रोक्तं पुराणं ज्ञानमुत्तमम् ।
देवतानामृषीणां च सर्वपापप्रमोचनम् ॥४७
विस्तरेणानुपूर्व्या च तस्य वक्ष्याम्यनुक्रमम् ॥४८

जिसका शरीरों का धारण को पूर्यमाण होता हुआ करता है। आकाश जिसकी योनि है वह द्विगुण है और शब्द तथा स्पर्श समन्वित ।४३। शब्द शास्त्र अर्थात् व्याकरण के विद्वानों के द्वारा वाचोरपि कही गयी है। परम नम्र और मधुर वाणी से सभी मुनिगणों को आनन्दित करते हुए ही ऐसा किया था ।४४। सुन्दर मन वाले जो पुराणों के ज्ञाता थे उन्होंने पुराणों के समाश्रय के युक्त होकर जो पुराणों के प्रवचन करने में नियत थे उनसे विभु ने कहा कही थी ।४५। हे द्विजश्रेष्ठो ! यह सब आख्यान जैसा भी हुआ था। ऋषियों का यह परम सर्वोत्तम लोक तत्व है ।४६। प्राचीन काल में ब्रह्माजी ने उत्तम ज्ञान पुराण कहा था वह देवताओं से और ऋषियों के सभी प्रकार के पापों का मोचन करने वाला है अब पूर्ण विस्तार से और आनुपूर्वी अर्थात् आरम्भ से अन्त तक क्रम से मैं अनुक्रम से बतलाऊँगा ।४७-४८।
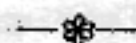
सर्ग-वर्णनम्

शृणु तेषां कथां दिव्यां सर्वपापप्रमोचिनीम् ।
कथ्यमानां मया चित्रां बह्वर्थां श्रुतिसंमताम् ॥१
य इमां धारयेन्नित्यं शृणुयाद्वाप्यभीक्ष्णशः ।
स्ववंशं धारणं कृत्वा स्वर्गलोके महीयते ॥२
विश्वतारा या चा पञ्चा यथाय त्तं यथाश्रुतम् ।
कोर्त्यमानं निबोधार्थं पूर्वेषां कीर्तिवर्द्धनम् ॥३

धन्यं यशस्यमायुष्यं स्वर्ग्यं शत्रुघ्नमेव च ।
कीर्त्तनं स्थिरकीर्तीनां सर्वेषां पुण्यकर्मणाम् ।।४
यस्मात्कल्पायते कल्पः समग्रं शुचये शुचिः ।
तस्मै हिरण्यगर्भाय पुरुषायेश्वराय च ।।५
अजाय प्रथमायैव वरिष्ठाय प्रजासृजे ।
ब्रह्मणे लोकतन्त्राय नमस्कृत्य स्वयंभुवे ।।६
महदाद्यं विशेषांतं सवैरूप्यं सलक्षणम् ।
पञ्चप्रमाणं षट्श्रांतः पुरुषाधिष्ठितं च यत् ।।७

श्री सूतजी ने कहा—समस्त पापों का प्रमोचन कर देने वाली उनकी परम दिव्य कथा का आप अब श्रवण कीजिए जो कि मेरे द्वारा कही जा रही है। यह कथा बहुत ही विचित्र है और श्रुति के संमत है। इसका प्रचुर अर्थ भी है।१। जो पुरुष इस कथा को नित्य धारण किया करता है और बारम्बार इसका श्रवण किया करता है वह अपने वंश को धारण करके अन्त में स्वर्गलोक में प्रतिष्ठित हुआ करता है।२। जिस प्रकार से हुआ है और जैसा सुना गया है जो यह पंच विश्व तारा है। ज्ञान प्राप्त करने के लिए कीर्तित किया हुआ यह पूर्व में होने वालों की कीर्त्ति का बढ़ाने वाला है।३। यह परम धन्यपश देने वाला—आयु के बढ़ाने वाला—स्वर्गलोक प्राप्त कराने वाला और शत्रुओं का नाशक है। स्थिर कीर्ति से युक्त-पुण्य कर्मों वाले सबका कीर्त्तन करना इन उपर्युक्त सभी के देने वाला होता है।४। जिसके कल्प भी कल्प का रूप धारण किया करता है और सम्पूर्ण शुचि के लिए भी शुचि है उन पुरुषों के स्वामी हिरण्यगर्भ के लिए जो अजन्मा है—सबसे प्रथम है—सबमें परमश्रेष्ठ है और प्रजाओं का सृजन करने वाले हैं उन लोक तन्त्र स्वयम्भू ब्रह्माजी के लिए नमस्कार है।५-६। जो महत् का आदि में होने वाला है, जो विशेष के अन्त वाला है जो वैरूप्य से युक्त है—जो लक्षण वाला है—जो पांच प्रणामों वाला है—जो षट् श्रान्त है और पुरुषाधिष्ठित है।७।

आसंयमात्प्रवक्ष्यामि भूतसर्गमनुत्तमम् ।
अव्यक्तं कारणं यत्तन्नित्यं सदसदात्मकम् ।।८
प्रधानं प्रकृतिं चैव यमाहुस्तत्त्वचिंतकाः ।

गन्धरूपरसैर्हीनं शब्दस्पर्शविवर्जितम् ।।६
जगद्योनिम्महाभूतं परं ब्रह्म सनातनम् ।
विग्रहं सर्वभूतानामव्यक्तमभवत्किल ।।१०
अनाद्यंतमजं सूक्ष्मं त्रिगुणं प्रभवोऽव्ययम् ।
असांप्रतिकमज्ञेयं ब्रह्म यत्सदसत्परम् ।।११
तस्यात्मना सर्वमिदं व्याप्तमासीत्तमोमयम् ।
गुणसाम्ये तदा तस्मिन्नविभातं तमोमयम् ।।१२
सर्गकाले प्रधानस्य क्षेत्रज्ञाधिष्ठितस्य वै ।
गुणभावाद्भासमाने महातत्वं बभूव ह ।।१३
सूक्ष्म स तु महानग्रे अव्यक्तेन समावृतः ।
सत्वोद्रेको महानग्रे सत्वमात्रप्रकाशकः ।।१४

इस परमोत्तम भूतों के सर्ग को संयम से आरम्भ करने मैं बतला-ऊँगा। जो अव्यक्त कारण है वह नित्य है और उसको स्वरूप सत् एवं असत् दोनों ही प्रकार का है।८। तत्वों का चिन्तन करने वाले विचारक लोग उस व्यम्बक को प्रधान तथा प्रकृति कहा करते हैं जो कि गन्ध-स्पर्श और रस से रहित है तथा शब्द से भी विवर्जित हैं।६। इस सम्पूर्ण जगत् की उत्पत्ति स्थान, महाभूत सनातन परब्रह्म तथा समस्त भूतों का विग्रह निश्चित रूप से अव्यक्त हो गया था।१०। आदि और अन्त से रहित अजन्मा, सूक्ष्म रूप वाला सत्व-रज और तम-इन तीन गुणों से युक्त अर्थात् त्रिगुणात्मक, सबका प्रभाव भी यह है जो असाम्प्रतिक, न जानने के योग्य, सत् और असत् स्वरूप वाला, पर ब्रह्म है। जो सभी भूतों का निग्रह है वही अव्यक्त हो गया है।।११। उसी को आत्मा से यह सम्पूर्ण विश्व व्याप्त है तम से परिपूर्ण है। उस समय में उस गुणों (तीनों गुणों) के साम्य होने पर यह तमोमय विभात नहीं होता है।११। जब सृजन का समय होता है उस काल में क्षेत्र के ज्ञाता के द्वारा अधिष्ठित प्रधान के गुणों के भय से भासमान होने पर यह महा-तत्व होगया था।१३। आगे वह सूक्ष्म रूप वाला महान् अव्यक्त से समावृत था। सत्व गुण की अधिकता से युक्त महान् केवल सत्व का ही प्रकाश करने वाला था।१४।

सत्वान्महान्स विज्ञेय एकस्तत्कारणः स्मृतः ।

लिंगमात्रं समुत्पन्नं क्षेत्रज्ञाधिष्ठितं महत् ।।१५
संकल्पोऽध्यवसायश्च तस्य वृत्तिद्वयं स्मृतम् ।
महासृष्टिं च कुरुते वीतमानः सिसृक्षया ।।१६
धर्मादीनि च भूतानि लोवतत्वार्थहेतवः ।
मनो महात्मनि ब्रह्म दुर्बुद्धिख्यातिरीश्वरात् ।।१७
प्रज्ञासंधिश्च सर्वस्वं संख्यायतनरश्मिभिः ।
मनुते सर्वभूतानां तस्माच्चेष्टफलो विभुः ।।१८
भोक्ता त्राता विभक्तात्मा वर्त्तनं मन उच्यते ।
तत्वानां संग्रहे यस्मान्महांश्च परिमाणतः ।।१९
शेषेभ्यो गुणतत्वेभ्यो महानिव तनुः स्मृतः ।
विभक्तिमानं मनुते विभागं मन्यतेऽपि वा ।।२०
पुरुषो भोगसंबंधात्तेन चासौ संति स्मृतः ।
वृहत्वाद्बृंहणत्वाच्च भावानामखिलाश्रयात् ।।२१

सब से वह महान् एक जानने के योग्य है। और एक ही कारण कहा गया है क्षेत्रज्ञ से अधिष्ठित महत् केवल लिङ्ग ही समुत्पन्न हुआ था।१५। उसकी छः प्रकार की वृत्ति बतायी गयी है—एक तो सङ्कल्प और दूसरी वृत्ति अध्यवसाय है। सृजन करने की इच्छा से वीतमान वह इस महती सृष्टि को दिया करता है।१६। और धर्म आदि भूत लोकतत्वार्थ के हेतु हैं। महान् आत्मा में मन ही ब्रह्म है और ईश्वर से इसकी दुर्बुद्धि यह ख्याति है।१७। संख्यायत रश्मियों से सब भूतों की प्रज्ञा सन्धि सर्वस्व मानता है। इस कारण से विभु चेष्टा के वाला होता है।१८। भोक्ता (भोगने वाला) परित्राण करने वाला–विभक्त आत्मा वाला बरतने वाला जो है वही मन कहा जाता है। जिसमें तत्वों के संग्रह में है और परिणाम से महान् है।१९। शेष जो गुणों के तत्व हैं उनके महान की ही भाँति तनु कहा गया है। विभक्ति स युक्त को मानता है अथवा विभाग को मानता है।२०। यह पुरुष उसके द्वारा अर्थात् शरीर के द्वारा भोगों का सम्बन्ध होने से सत् में कहा गया है। वृहत् होने से और बृंहणत्व होने से और भावों का पूर्ण आश्रय होने से पैदा होता है।२१।

यस्माद्बृंहयत भावान् ब्रह्मा तेन निरुच्यते ।
आपूरयति यस्माच्च सर्वान् देहाननुग्रहैः ।।२२
बुध्यते पुरुषश्चात्र सर्वान् भावान्पृथक् पृथक् ।
तस्मिस्तु कार्यंकरणं संसिद्धं ब्रह्मणः पुरा ।।२३
प्राकृतां देवि वर्ता मां क्षेत्रज्ञो ब्रह्मसंमितः ।
स वै शरीरी प्रथमः पुरा पुरुष उच्यते ।।२४
आदिकर्त्ता स भूतानां ब्रह्माग्रे समवर्त्तिनाम् ।।२५
हिरण्यगर्भः सोऽण्डेऽस्मिन्प्रादुर्भूतश्चतुर्मुखः ।
सर्गे च प्रतिसर्गे च क्षेत्रज्ञो ब्रह्म संमितः ।।२६
करणैः सह पृच्छते प्रत्याहारैस्त्यजंति च ।
भजंते च पुनर्देहांस्ते समाहारसंधिषु ।।२७
हिरण्मयस्तु यो मेरुस्तस्योद्धर्तुं महात्मनः ।
गर्त्तोदकं संबुदास्तु हरेयुश्चापि पञ्जलाः ।।२८

जिससे भावों का बृंहण करना है उसी से ब्रह्मा—इस नाम से कहा जाया करता है । और जिस कारण से समस्त देवों को अनुग्रहों के द्वारा आपूरित करता है ।२२। यहाँ पर पुरुष सब भावों को पृथक् पृथक् जानता है । उसमें तो पहले ब्रह्म का कार्य और करण से सिद्ध हुआ है ।२३। हे देवि ! मुझको प्राकृत समझकर बतलाया करो । जो क्षेत्रज्ञ है वह ब्रह्म से समित है । वह शरीर धारी निश्चय ही पहिले पुरुष कहा जाया करता है ।२४। ब्रह्मा के आगे समवर्ती भूतों का वह आदि कर्त्ता है ।२५। वह हिरण्यगर्भ इस अण्ड में चार मुखों वाला प्रादुर्भूत हुआ था । सर्ग और प्रतिसर्ग में क्षेत्रज्ञ ब्रह्म संमित है ।२६। करणों के साथ पूछते हैं और प्रत्याहारों से त्याग करते और वे पुनः समाहार सन्धियों में देहों का सेवन करते हैं ।२७। हिरण्मय जो मेरु गिरि है उस महान आत्मा वाले के गर्त्तोदक का उद्धार करने के लिये संबुद पञ्जला का भी हरण करते हैं ।२८।

यस्मिन्नंड इमे लोकाः सप्त वै संप्रतिष्ठिताः ।
पृथिवी सप्तभिर्द्वीपैः समुद्रैः सह सप्तभिः ।।२९
पर्वतैः सुमहद्भिश्च नदीभिश्च सहस्रशः ।
अन्तः स्थस्य त्विमे लोका अंतर्विश्वमिदं जगत् ।।३०

चन्द्रादित्यौ सनक्षत्रौ संग्रहः सह वायुना ।
लोकालोक च यत् किंचिदण्डे तस्मिन्प्रतिष्टितम् ।।३१
आपो दशगुणे नैव तेजसा बाह्यतो वृताः ।
तेजो दशगुणेनैव बाह्यतो वायुना वृतम् ।।३२
वायुर्दशगुणेनैव बाह्यतो नभसा वृतः ।
आकाशमावृतं सर्वं बहिर्भूतादिना तथा ।।३३
भूतादिर्महता चैव प्रधानेनावृतो महान् ।
एभिरावरणैरंड सप्तभिः प्राकृतैर्वृतम् ।।३४
इच्छया वृत्य चान्योन्यमरणे प्रकृतयः स्थिताः ।
प्रसर्गकाले स्थित्वा च ग्रसंतश्च परस्परम् ।।३५

जिस अणु में ये सात लोक संप्रतिष्ठित हैं। इनमें पृथिवी है जो सात द्वीपों से और सात समुद्रों से युक्त हैं इस पृथ्वी में महान् पर्वत है और सहस्रों नदियाँ भी विद्यमान है। अन्दर स्थित इसके ये सब लोक हैं और अन्दर में रहने विश्व में यह जगत रहता है।२६-३०। समस्त नक्षत्रों के साथ चन्द्रमा और सूर्य है तथा वायु के साथ संग्रह है। और लोकालोक है। जो कुछ भी है। वह सब उस अण्ड में प्रतिष्ठित हैं अर्थात् विद्यमान रहा करता है।३१। दश गुने तेज के साथ बाहिर की ओर जल आवृत रहते हैं। दश गुणित वायु के द्वारा वह तेज भी आवृत रहता है।३२। दश गुने नभ (आकाश) से वह वायु वृत रहता है जोकि बाहिर की ओर है। फिर वह आकाश सम्पूर्ण बाहिर भूतादि से आवृत है।३३। भूतादिक महान से समावृत है और महान प्रधान के द्वारा आवृत है। इन सात प्राकृत आवरणों के द्वारा यह अण्ड आवृत रहा करता है।३४। एक दूसरे के मरण में परस्पर में इच्छा से आवृत प्रकृतियाँ स्थित हैं और प्रसर्ग के अर्थात् प्रसृजन के समय में स्थित होकर परस्पर में ग्रसन किया करती हैं।३५।

एवं परस्परैश्चैव धारयंति परस्परम् ।
आधाराधेयभावेन विकारास्ते विकारिषु ।।३६
अव्यक्तं क्षेत्रमित्युक्तं ब्रह्म क्षेत्रज्ञमुच्यते ।
इत्येवं प्राकृतः सर्गः क्षेत्रज्ञाधिष्ठितस्तु सः ।।३७

अबुद्धिपूर्वः प्रथमः प्रादुर्भूतस्तडिद्यथा ।
एतद्धिरण्यगर्भस्य जन्म यो वेत्ति तत्वतः ।
आयुष्मान्कीर्तिमान्धन्यः प्रज्ञावांश्च न संशयः ॥३८

इस प्रकार से परस्पर में एक दूसरे को धारण किया करते हैं। ये विकार वालों में आधार और आधेय के भाव से ये सब विकार होते हैं। ।३६। इस अव्यक्त को ही क्षेत्र कहा जाता है और ब्रह्म क्षेत्रज्ञ कहा जाया करता है। इस रीति से यह प्राकृत सर्ग है और वह क्षेत्रज्ञ से अधिष्ठित होता है।३७। प्रथम अबुद्धि पूर्वक होता है जिस तरह से तड़ित होती है। हिरण्यगर्भ का जन्म तो तात्विक रूप से जानता है वह आयु वाला—कीर्ति से समन्वित-धन्य और प्रज्ञा वाला होता है—इसमें लेशमात्र भी संशय नहीं है।३८।

॥ लोक—वर्णन (१) ॥

सूत उवाच—आत्मन्यवस्थिते व्यक्ते विकारे प्रतिसंहृते ।
साधर्म्येणावतिष्ठेते प्रधानपुरुषौ तदा ॥१
तमः सत्त्वगुणावेतौ समत्वेन व्यवस्थितौ ।
अनुद्रिक्तावनुचरौ तेन प्रोक्तौ परस्परम् ॥२
गुणसाम्ये लयो ज्ञेय आधिक्ये सृष्टिरुच्यते ।
सत्त्ववृद्धौ स्थितिरभूद् ध्रुवं रश्मिशिखास्थितम् ॥३
यदा तमसि सत्त्वे च रजोऽप्यनुगतं स्थितम् ।
रजः प्रवर्तकं तच्च बीजेष्विव यथा जलम् ॥४
गुणा वैषम्यमासाद्य प्रसंगेन प्रतिष्ठिताः ।
गुणेभ्यः क्षोभ्यमाणेभ्यस्त्रयो ज्ञेया हि सादरे ॥५
शाश्वताः परमा गुह्याः सर्वात्मानः शरीरिणः ।
सत्त्वं विष्णु रजो ब्रह्मा तमो रुद्रः प्रजापतिः ॥६
रजः प्रकाशको विष्णुर्ब्रह्मत्वमष्टृत्वमाप्नुयात् ।
जायते च यतश्चित्रा लोकसृष्टिर्महौजसः ॥७

श्रीसूतजी ने कहा—व्यक्त के आत्मा में अवस्थित होने पर और विकार के प्रति सहृत हो जाने पर उस समय में प्रधान और पुरुष सहकर्मता के साथ अवस्थित हुआ करते हैं ।१। तमोगुण और सत्वगुण ये दोनों समता से व्यवस्थित हुआ करते हैं। उसके साथ ये उद्रिक्त नहीं होते हैं और परस्पर से उसके अनुगामी रहा करते हैं ।२। जब इन गुणों की समता होती है तो उस समय में लय जान लेना चाहिए और जब इनमें किसी भी अधिकता अर्थात् परस्पर में विषमता होती है तो उस अवस्था में सृष्टि कही जाया करती है सत्व की वृद्धि में स्थिति हुई थी और ध्रुव पद्म शिखा में होता है और वह बीजों में जल के ही समान प्रवर्त्तक होता है ।४। ये गुण विषमता की दशा को प्राप्त करके प्रसङ्ग से प्रतिष्ठित होते हैं। गुणों के क्षोभ्यमाण होने से ये तीनों गुण बड़े आदर में जानने के योग्य होते हैं ।५। ये शाश्वत अर्थात् नित्य रहने वाले हैं—परमगुह्य हैं—सबकी आत्मा है और शरीरधारी है। सत्वगुण विष्णु हैं—रजोगुण प्रजापति ब्रह्मा है और तमोगुण साक्षात् रुद्र देव हैं ।६। रजोगुण के प्रकाशक विष्णु ब्रह्मा के स्रष्टा होने की अवस्था को प्राप्त किया करते हैं। जिस महान् ओज वाले से यह विचित्र प्रकार की सृष्टि समुत्पन्न हुआ करती है ।७।

तमः प्रकाशको विष्णुः कालत्वेन व्यवस्थितः ।
सत्त्वप्रकाशको विष्णुः स्थितित्वेन व्यवस्थितः ।।८

एत एव त्रयो लोका एत एव त्रयो गुणाः ।
एत एव त्रयो वेदा एत एव त्रयोऽग्नयः ।।९

परस्परान्वया ह्येते परस्परमनुव्रताः ।
परस्परेण वर्तन्ते प्रेरयति परस्परम् ।।१०

अन्योन्यं मिथुनं ह्येते अन्योन्यमुपजीविनः ।
क्षणं वियोगो न ह्येषां न त्यजंति परस्परम् ।।११

प्रधानगुणवैषम्यात्सर्गकाले प्रवर्त्तते ।
अदृष्टाऽधिष्ठितात्पूर्वं तस्मात्सदसदात्मकात् ।।१२

ब्रह्मा बुद्धित्वमिथुनं युगपत्संबभूव ह ।
तस्मात्तमोऽव्यक्तमयं क्षेत्रज्ञो ब्रह्मसंज्ञकः ।।१३

अर्थों के तत्त्वों का ज्ञाता होगा।४८। वह अपने पितरों के गौरव से सुसमन्वित होगा और महान यत्न से परम घोर तप करके निश्चय ही स्वर्ग से यहाँ पर गङ्गा को लावेगा।४९।

तदंभसा पावितेषु तेषां गात्रास्थिभस्मसु ।
प्राप्नुवंति गतिं स्वर्गे भवतः पितरोऽखिला ॥५०
तथेति तस्या माहात्म्यं गंगाया नृपनन्दन ।
भागीरथीति लोकेऽस्मिन्सा विख्यातिमुपैष्यति ॥५१
यत्तोयप्लावितेष्वस्थिभस्मलोमनखेष्वपि ।
निरयादपि संयाति देही स्वर्लोकमक्षयम् ॥५२
तस्मात्त्वं गच्छ भद्रं ते न शोकं कर्त्तुमर्हसि ।
पितामहाय चैवैनमश्वं संप्रतिपादय ॥५३
जैमिनिरुवाच--
ततः प्रणम्य तं भक्त्या तथेत्युक्त्वा महामतिः ।
ययौ तेनाभ्यनुज्ञातः साकेतनगरं प्रति ॥५४
सगरं स समासाद्य तं प्रणम्य यथाक्रमम् ।
न्यवेदयच्च वृत्तांतं मुनेस्तेषां तथात्मनः ॥५५
प्रददौ तुरगं चापि समानीतं प्रयत्नतः ।
अतः परमनुष्ठेयमब्रवीत्किं मयेति च ॥५६

उस पतित पावनी गङ्गा के पुनीत जल से उन सबके गात्र-अस्थि और भस्म के पवित्र हो जाने पर वे समस्त आपके पितृगण स्वर्ग में गति को प्राप्त करेंगे।५०। हे नृपनन्दन उस गङ्गा का माहात्म्य ही ऐसा अद्भुत है। राजा भगीरथ के द्वारा यहाँ लाने से इस लोक में उसका नाम भागीरथी प्रसिद्ध होगा।५१। गङ्गा का बड़ा अद्भुत माहात्म्य होता है कि उसके जल में किसी भी प्राणी की अस्थि-भस्म-नख आदि कोई भी भाग जब प्लावित हो जाता है तो वह प्राणी नरक की यातनाओं से भी मुक्त होकर अक्षय स्वर्गलोक में चला जाया करता है।५२। इस कारण से अब आप यहाँ से चले जाइए—आपका कल्याण होगा—आपको कुछ भी शोक नहीं करना चाहिए। अपने पितामह को यह अश्व ले जाकर दे दो।५३। जैमिनि मुनि

एकधा स द्विधा चैव त्रिधा च बहुधा पुनः ।
योगीश्वरः शरीराणि करोति विकरोति च ॥२१

वह प्रथम ही शरीर था जो कि धारणत्व से व्यवस्थित था। यहाँ पर अनुपम ज्ञान से और वैराग्य से सम्पति था। इसके अव्यक्तता के लिए उस मन से वह जो-जो भी इच्छा करता था वही करता था क्योंकि इसके तीनों गुण वश में किये हुए थे और भाव से वे एक दूसरे की अपेक्षा करने वाले थे।१५-१६। चतुर्मुख ब्रह्मात्व को प्राप्त किया था और अन्त करनेवाले पुरुष हुए। इस प्रकार से स्वयम्भू की हो ये तीन अवस्थाएँ थीं।१७। ब्रह्मत्व की दशा में सब रजोगुण है और काल की अवस्था में रजोगुण और तमोगुण होता है। जब पुरुष की दशा में यह होते हैं तो तत्वगुण के युक्त होते हैं। इस प्रकार से स्वयम्भू में गुणों की वृत्ति होती है।१८। जब ब्रह्मा की दशा में यह रहते हैं तो यह लोकों का सृजन किया करते हैं। जब काल का स्वरूप धारण किया करते है तो उन सभी लोकों का संक्षय करते हैं। जब केवल पुरुष की दशा में होते हैं तो यह उदासीन रहते हैं। ऐसे स्वयम्भू की ही ये यीन भिन्न-भिन्न अवस्थाएँ हुआ करती हैं।१९। ब्रह्मा कमल के दलों के समान नेत्रों वाले होते हैं और काल का जब उनका स्वरूप होता है तो अञ्जन के समान कृष्ण वर्ण होता है। जब उदासीन पुरुष के रूप में होते हैं तो यह परमात्मा के स्वरूप से पुण्डरीकाक्ष होते हैं।२०। एक प्रकार से—दो प्रकार से—तीन प्रकार से फिर बहुत प्रकार से योगीश्वर प्रभु अनेक शरीरों को बनाया करते हैं और बदलते रहा करते हैं।२१।

नानाकृतिक्रियारूपमाश्रयंति स्वलीलया ।
त्रिधा यद्वर्तते लोके तस्मात्त्रिगुण उच्यते ॥२२
चतुर्द्धा प्रविभक्तत्वाच्चतुर्व्यूहः प्रकीर्त्तितः ।
यदा शेते तदाधाते यद्भक्ते विषयान्प्रभुः ॥२३
यत्स्वस्थाः सततं भावस्तस्मादात्मा निरुच्यते ।
ऋषिः सर्वगतश्चात्र शरीरे सोऽभ्ययात्प्रभुः ॥२४
स्वामी सर्वस्य यत्सर्वं विष्णुः सर्वप्रवेशनात् ।
भगवानग्रसद्भावान्नागो नागस्वसंश्रयात् ॥२५
परमः संप्रहृष्टत्वाद्देवतादोमिति स्मृतिः ।

सर्वज्ञ: सर्वविज्ञानात्सर्वः सर्वं यतस्ततः ।।२६

नराणां स्वापनं ब्रह्मा तस्मान्नारायणः स्मृतः ।

त्रिधा विभज्य चात्मानं सकलः संप्रवर्त्तते ।।२७

सृजते ग्रसते चैव पाल्यते च त्रिभिः स्वयम् ।

सोऽग्रे हिरण्यगर्भः सन् ादुर्भूतः स्वयं भुः ।।२८

अनेक क्रिया-आकार और स्वरूप का आश्रय ग्रहण किया करते हैं और यह सब अपनी ही लीला से करते रहा करते हैं। लोक में यह तीन प्रकार वाले होकर रहते हैं इसी कारण से इनको त्रिगुण कहा जाता है ।२२। चार प्रकार से प्रविभक्त होने से यह चतुर्व्यूह कहा गया है। जिस समय में यह शयन किया करते हैं उस समय में वह अर्धान्त होते हैं प्रभु विषयों का भोग किया करते हैं ।२३। जो स्वस्थ होते हैं तब निरन्तर भाव होता है। इसी से आत्मा कहा जाता है और ऋषि इसमें सर्वगत हैं। वह शरीर में आते हैं ।२४। भगवान् विष्णु सबके स्वामी हैं क्योंकि विष्णु का सभी में प्रवेश होता है। भगवान् अप्रसद्भावसं नाग हैं और नाग का संश्रय नहीं होता है ।२५। संप्रहृष्ट होने से परम है और देवता होने से ओम् यह स्मृति है। सबके विज्ञान होने से यह सर्वज्ञ हैं क्योंकि यह सबमें हैं अतएव यह सर्व कहा जाता है ।२६। नरों में अर्थात् जलों में यह स्वपन किया करते हैं इस कारण से ब्रह्माजी नारायण कहे गये हैं और अपने आपके स्वरूप को तीन प्रकार से विभक्त करके यह सकल से संप्रवृत्त हुआ करते हैं ।२७। इन तीनों स्वरूपों से यह लोकों का सृजन पालन और क्रम से गसन किया करते हैं। वही सबसे आगे हिरण्यगर्भ होते हुए स्वयं प्रादुर्भूत हुए हैं ।२८।

आद्यो हि स्ववशश्चैव अजातत्वादजः स्मृतः ।

तस्माद्धिरण्यगर्भश्च पुराणेषु निरुच्यते ।।२९

स्वयंभुवो निवृत्तस्य कालो वर्णाग्रतस्तु यः ।

न शक्यः परिसंख्यातुं मनुवर्षशतैरपि ।।३०

कल्पसंख्यानिवृत्तस्तु परार्धो ब्रह्मणः स्मृतः ।

तावत्त्वे सोऽस्य कालोऽन्यस्तस्यांते प्रतिबुद्ध्यते ।।३१

कोटिवर्षसहस्राणि गृहभूतानि यानि च ।

समतीतानि कल्पानां तावच्छेषात्परे तु ये ।।३२

यस्त्वयं वर्त्तते कल्पो वाराहस्तन्निबोधत ।
प्रथमं सांप्रतस्तेषां कल्पो वै वर्त्तते च यः ॥३३
पूर्णे युगसहस्रे तु परिपाल्यं नरेश्वरैः ॥३४

क्योंकि यह सबसे आदि काल में होने वाले हैं । अतएव यह स्ववशी हैं अर्थात् अपने ही वश में रहने वाले हैं ऐसा ही कहा गया है । उसी कारण से पुराणों में इनको हिरण्यगर्भ कहा जाया करता है ।२९। जो स्वयम्भुव है वह निवृत्त का वर्णों में अग्रकाल है । इसकी परिसंख्या मनु के सैकड़ों वर्षों में भी नहीं की जा सकती है ।३०। कल्पों की संख्या से निवृत्त ब्रह्मा का परार्ध कहा गया है । उतने ही में इसका वह काल है उसके अन्त में अन्य काल प्रतिबुद्ध होता है ।३१। करोड़ों सहस्र वर्ष जो कि इसके गृहभूत हैं । उतने कल्पों के समतीत हैं और जो शेष हैं वे दूसरे हैं ।३२। जो स्वयं कल्प है वह वाराह कल्प है—ऐसा ही समझ लो । प्रथम उनमें साम्प्रत है और जो कल्प होता है ।३३। एक सहस्र युगों के पूर्ण हो जाने पर नरेश्वरों के द्वारा परिपालन के योग्य है ।३४।

—×—

॥ लोककल्पनम् (२) ॥

सूत उवाच—आपोऽग्रे सर्वगा आसन्नेतस्मिन्पृथिवीतले ।
शांतवातैः प्रलीनेऽस्मिन्न प्राज्ञायत किंचन ॥१
एकार्णवे तदा तस्मिन्नष्टे स्थावरजङ्गमे ।
विभुर्भवति स ब्रह्मा सहस्राक्षः सहस्रपात् ॥२
सहस्रशीर्षा पुरुषो रुक्मवर्णो ह्यतींद्रियः ।
ब्रह्म नारायणाख्यस्तु सुष्वाप सलिले तदा ॥३
सत्त्वोद्रेकान्निषिद्धस्तु शून्यं लोकमवैक्षत ।
इमं चोदाहरंत्यत्र श्लोकं नारायणं प्रति ॥४
आपो नारा इति प्रोक्ता आपो वै नरसूनवः ।
अयनं तस्य ताः प्रोक्तास्तेन नारायणः स्मृतः ॥५
तुल्यं युगसहस्रस्य वसन्कालमुपास्यतः ।

स्वर्णपत्रे प्रकुरुते ब्रह्मत्वादर्शकारणात् ॥६
ब्रह्मा तु सलिले तस्मिन्नवाग् भूत्वा तदा चरत् ।
निशायामिव खद्योतः प्रावृट्काले ततस्ततः ॥७

श्रीसूतजी ने कहा—इस पृथिवी तत्व में सबसे पूर्व जल ही जल सर्वत्र था और यह शील तथा प्रलीन था। इसमें उस समय कुछ भी नहीं जाना जाता था ।१। केवल एक समुद्र ही था और उस सागर में सभी स्थावर (अचर) और जङ्गम (चर) नष्ट हो गये थे। विभु (व्यापक) वह ब्रह्मा जी उस समय में सहस्रों पादों और नेत्रों वाले हो जाया करते हैं ।२। सहस्रों शीर्षों वाले, सुवर्ण के समान जिनका वर्ण था और जो इन्द्रियों की पहुँच से परे थे अर्थात् अप्रत्यक्ष थे ऐसे पुरुष नारायण नाम वाले ब्रह्म उस समय में समुद्र में शयन कर रहे थे ।३। सत्व के उद्रेक से निषिद्ध होते हुए उन्होंने उस समय में इस लोक को शून्य देखा था। यहाँ पर भगवान् नारायण के विषय में इन निम्न लिखित श्लोक को उदाहृत किया करते हैं ।४। जलों को नारा कहा गया है और ये जल ही नर के आत्मज हैं। ये जल ही उन नारायण प्रभु के निवास स्थान है अतएव प्रभु का नाम नारायण कहा गया है ।५। सहस्रों युगों के तुल्य काल तक वे प्रभु वहाँ पर निवास करते हुए स्थित रहे थे। ब्रह्मत्व के अदर्शन के कारण से वे स्वर्ण पत्र किया करते हैं ।६। उस जल में ब्रह्माजी अवाक् होकर उस समय में विचरण कर रहे थे जिस तरह से वर्षा ऋतु में रात्रि में खद्योत चकमता हुआ यहाँ से वहाँ घूमा करता है ।७।

ततस्तु सलिले तस्मिन् विज्ञायांतर्गते महत् ।
अनुमानादसंमूढो भूमेरुद्धरणं प्रति ॥८
ॐकाराष्टतनुं त्वन्यां कल्पादिषु यथा पुरा ।
ततो महात्मा मनसा दिव्यरूपमचिंतयत् ॥९
सलिलेऽवप्लुतां भूमिं दृष्ट्वा स समचिंतयत् ।
किं तु रूपमहं कृत्वा सलिलादुद्धरे महीम् ॥१०
जलक्रीडासमुचितं वाराहं रूपमस्मरत् ।
अदृश्यं सर्वभूतानां वाङ्मयं ब्रह्मसंज्ञितम् ॥११

दशयोजनविस्तीर्णमायतं शतयोजनम् ।
नीलमेघप्रतीकाशं मेघस्तनितनिः स्वनम् ।।१२
महापर्वतवर्ष्माणं श्वेततीक्ष्णोग्रदंष्ट्रिणम् ।
विद्युदग्निप्रतीकाशमादित्यसमतेजसम् ।।१३
पीनवृत्तायतस्कन्धं विष्णुविक्रमगामि च ।
पीनोन्नतकटीदेशं वृषलक्षणपूजितम् ।।१४

इसके उपरान्त उस जल में अन्तर्गत में महत् का ज्ञान प्राप्त किया था भूमिका उद्धारण करने के विषय में मूढ़ता से रहित उन्होंने अनुमान किया था ।८। इसके पश्चात् अन्य ओंकाराष्ट तनु का जैसे पहिले कल्पों के आदि में था उन महात्मा ने मन में ही उस दिव्य स्वरूप का चिन्तन किया था ।९। उस विशाल जल की राशि में उन्होंने डूबी हुई भूमि को देखकर भली भाँति चिन्तन किया था कि क्या स्वरूप धारण करके मैं इस भूमि का जल से उद्धार करूँ ।१०। जल में क्रीड़ा करना बहुत ही उचित है। इस तरह से उन्होंने वाराह के रूप का स्मरण किया था। जो कि समस्त प्राणियों के द्वारा न देखने के योग्य है और वाङ्मय ब्रह्म की संज्ञा वाला है ।११। उसका विस्तार दश योजन का था उसकी चौड़ाई अर्थात् फैलाव सौ योजन था। नीले मेघ के समान उसका वर्ण था और मेघ के गर्जन के सदृश ध्वनि थी ।१२। एक विशाल पर्वत के तुल्य उसका शरीर था और उसकी दाढ़ें श्वेत एवं उग्र और तीक्ष्ण थी। बिजली की अग्नि जैसी होती है उसी प्रकार चमक थी तथा सूर्य के समान उसमें तेज था ।१३। मोटे और चोड़े स्कन्ध थे और भगवान् विष्णु के विक्रम से गमनशील थे। उसकी कटि का भाग स्थूल और ऊँचा था। वह वृष के लक्षणों से पूजित था ।१४।

आस्थाय रूपमतुलं वाराहममितं हरिः ।
पृथिव्युद्धरणार्थाय प्रविवेश रसातलम् ।।१५
दीक्षासमाप्तीष्टिदंष्ट्रः क्रतुदंतो जुहूमुखः ।
अग्निजिह्वो दर्भरोमा ब्रह्मशीर्षो महातपाः ।।१६
वेदस्कन्धो हविर्गन्धिर्हव्यकव्यादिवेगवान् ।
प्राग्वंशकायो द्युतिमान् नानादीक्षाभिरन्वितः ।।१७

दक्षिणा हृदयो तोगी श्रद्धासत्त्वमयो विभुः ।
उपाकर्मरुचिश्चैव प्रवर्ग्यावर्तभूषणः ॥१८
नानाछन्दोगतिपथो गुह्योपनिषदासनः ।
मायापत्नीसहायो वै गिरिश्रृङ्गमिवोच्छ्रयः ॥१९
अहोरात्रेक्षणधरो वेदांगश्रुतिभूषणः ।
आज्यगंधः स्रुवस्तु ङः सामघोषस्वनो महान् ॥२०
सत्यधर्ममयः श्रीमान् कर्मविक्रमसत्कृतः ।
प्रायश्चित्तनखो घोरः पशुजानुर्महामखः ॥२१

हरि भगवान् ने अमित वाराह के रूप को धारण किया था जो अतुल था और पृथिवी के जल से उद्धरण करने के लिए उन्होंने रसातल में प्रवेश किया था। अब वाराह भगवान के स्वरूप को यज्ञ का रूप देते हुए बताया जाता है दीक्षा की समाप्ति इष्टि के दाढ़ों वाले थे। उनके दाँत क्रतु था और मुख में आहुति थी। जिह्वा अग्नि थी और उनके रोम दर्भों के समान थे। महान् तपस्वी ब्रह्म शीर्ष था।१५-१६। वेदों के स्कन्धों वाले तथा हवि की गन्ध से युक्त और हव्य-कव्य आदि के वेग से संयुत है। प्राग्वंश के शरीर वाले—द्यु ति से युक्त हैं और नाना प्रकार की शिक्षाओं से समन्वित है।१७। हृदय दक्षिणा है तथा श्रद्धा सत्व से परिपूर्ण विभु योगी हैं। उपाकर्म की रुचि वाले और प्रवर्ग्यावर्त्त भूषण वाले हैं।१८। अनेक छन्द गति पथ है और गु ह्य उपनिषद आसन है। मायारूपिणी पत्नी की सहायता वाले तथा पर्वत की शिखर के समान उच्च है।१९। अहोरात्र अर्थात् दिन और रात्रि रूपी नेत्रों के धारण करने वाले हैं तथा वेदों के अङ्ग श्रुति वाले हैं। घृत गन्ध वाले हैं—तुण्ड ही स्रव है तथा सामवेद का घोष ही ध्वनि है जो कि महान है।२०। श्रीमान् सत्यधर्म से परिपूर्ण है और कर्मों के विक्रम से सत्कृत है। प्रायश्चित्तों के नखों वाले हैं और घोर पशु जानु हैं ऐसा यह महामख है।२१।

उद्गातांत्रो होमलिंगः फलबीजमहौषधीः ।
वाद्यंतरात्मसत्रस्य नास्मिकासोमशोणितः ॥२२
भक्ता यज्ञराहांताश्चापः संगाविशत्प्रुनः ।
अग्निसंछादितां भूमिं समामिच्छन्प्रजापतिम् ॥२३

उपगम्या जुहावैता सद्यश्चाद्यसमन्यसत् ।
सामुद्राश्च समुद्रेषु नादेयाश्च नदीषु च ।
पृथक् तास्तु समीकृत्य पृथिव्यां सोऽचिनोद्गिरीन् ॥२४
प्राक्सर्गे दह्यमानास्तु तदा संवर्तकाग्निना ।
तेनाग्निना विलीनास्ते पर्वता भुवि सर्वशः ॥२५
सत्यादेकार्णवे तस्मिन् वायुना यत्तु संहिताः ।
निषिक्ता यत्रयत्रासंस्तत्रतत्राचलोऽभवत् ॥२६
ततस्तेषु प्रकीर्णेषु लोकोदधिगिरींस्तथा ।
विश्वकर्मा विभजते कल्पादिषु पुनः पुनः ॥२७
ससमुद्रामिमां पृथ्वी सप्तद्वीपां सपर्वताम् ।
भूराद्यांश्चतुरो लोकान्पुनः पुनरकल्पयत् ॥२८

अन्त्र ही उद्गान्त है—होमलिङ्ग और फलों के बीज महौषधि हैं। वाद्यन्तर आत्मसत्र के हैं तथा नास्मिका सोमशोणित है ।२२। यज्ञवराहान्त भक्त हैं और फिर जलों में प्रवेश किया था । अग्नि से संच्छादित भूमि को समा चाहते हुए प्रजापति को प्राप्त हुए और वहाँ पहुँच कर इनका हवन किया था तथा मद्य का अद्य सन्यास किया था और सामुद्र समुद्रों में तथा जो नादेय थे वे नदियों ने उन सबको पृथक् सभी कृत करके उन्होंने पृथिवी में गिरियों को चुना था ।२३-२४। पहिले सर्ग में प्रलय काल की संवर्तक अग्नि से जो उस समय में दह्यमान थे । उस अग्नि से सभी ओर भूमि में वे विलीन हो गये थे ।२५। उस एक मात्र रहने वाले समुद्र में सत्य से जो वायु के द्वारा संहित थे । जहाँ-जहाँ पर निषिक्त थे वहाँ-वहाँ पर अचल हो गया था ।२६। उसके अनन्तर उनके प्रकीर्ण होने पर लोक तथा अधि गिरियों को विश्वकर्मा ने कल्पादि में बार-बार विभाजित किया है ।२७। समुद्र से इस पृथ्वी को जो सातों द्वीपों से युक्त और पर्वतों के सहित है । भू आदि चारों लोकों को बार-बार कल्पित किया था ।२८।

लोकान्प्रकल्पयित्वा च प्रजासर्गं ससर्ज ह ।
ब्रह्मा स्वयंभूर्भगवान् सिसृक्षुर्विविधाः प्रजाः ॥२९
ससर्ज सृष्टं तद्रूपं कल्पादिषु यथा पुरा ।

तस्याभिध्यायतः सर्गं तदा वै बुद्धिपूर्वकम् ॥३०
प्रधानसमकाले च प्रादुर्भूतस्तमोमयः ।
तमो मोहो महामोहस्तामिस्रो ह्यन्धसंज्ञितः ॥३१
अविद्या पञ्चपर्वैषा प्रादुर्भूता महात्मनः ।
पञ्चधावस्थित चैव बीजकुम्भलतावृता: ॥३२
सर्वतस्तमसा चैव बीजकुम्भलतावृताः ।
बहिरंतश्चाप्रकाशस्तथानिःसंज्ञ एव च ॥३३
यस्मात्तेषां कृता बुद्धिर्दुःखानि करणानि च ।
तस्माच्च संवृतात्मानो नगा मुख्याः प्रकीर्तिताः ॥३४
मुख्यसर्गे तदोद्भूतं दृष्ट्वा ब्रह्मात्मसंभवः ।
अप्रतीतमनाः सोऽथ तदोत्पत्तिमयन्मत ॥३५

अनेक प्रकार की प्रजाओं का सृजन करने की इच्छा वाले ब्रह्माजी ने जो स्वयम्भु भगवान् हैं अनेक लोकों की कल्पना करके उन्होंने प्रजाओं का सृजन किया था ।२९। पहिले कल्प आदि में जो स्वरूप था उसी रूप की सृष्टि का सृजन किया था। उस सृजन का अभिध्यान करते हुए उन्होंने बुद्धि पूर्वक ही सर्ग किया था ।३०। प्रधान के समकाल में तम से पूर्ण प्रादुर्भूत हुआ था। उस तम का मोह-महामोह-तामिस्र और अन्ध—ये संज्ञाएँ थीं ।३१। उन महान् आत्मा वाले की पञ्च पर्वा अविद्या प्रादुर्भूत हुई थी अतएव उन अभिमानी और ध्यान करने वाले ब्रह्माजी का वह सर्ग भी पाँच प्रकार का व्यवस्थित हुआ था ।३२। सभी ओर बीज-कुम्भ और लताएँ तम से आवृत थे और बाहिर तथा अन्दर प्रकाश नहीं था तथा सब निःसंज्ञ था ।३३। जिससे उनकी बुद्धि की गयी थी और दुःख तथा करण हुए थे और उससे संवृत आत्मा वाले नगर मुख्य कहे गये हैं ।३४। अपने आप ही समुत्पन्न हुए ब्रह्माजी ने उस समय में मुख्य सर्ग में उद्भूत को देखा था और अपने मन में अप्रतीति करने वाले उन्होंने उस समय में उत्पत्ति ही मान लिया था ।३५।

तस्याभिध्यायतश्चान्यस्तिर्यक्स्रोतोऽभ्यवर्तत ।
यस्मात्तिर्यग्विवर्तेत तिर्यक्स्रोतस्ततः स्मृतः ॥३६

तमोबहुत्वात्ते सर्वे ह्यज्ञानबहुलाः स्मृताः ।
उत्पाद्यग्राहिणश्चैव तेऽज्ञाने ज्ञानमानिनः ॥३७
अहंकृता अहंमाना अष्टाविंशद्द्विधात्मिकाः ।
एकादशेंद्रियविधा नवधात्मादयस्तथा ॥३८
अष्टौ तु तारकाद्याश्च तेषां शक्तिविधाः स्मृताः ।
अंतः प्रकाशास्ते सर्वे आवृताश्च बहिः पुनः ॥३९
तिर्यक् स्रोतस उच्यंते वश्यात्मानस्त्रिसंज्ञकाः ॥४०
तिर्यक् स्रोतस्तु वै द्वितीयं विश्वमीश्वरः ।
अभिप्रायमथोद्भूतं दृष्ट्वा सर्गं तथाविधम् ॥४१
तस्याभिध्यायतो योन्यः सात्त्विकः समजायतः ।
ऊर्द्ध्वस्रोतस्तृतीयस्तु तद्वै चोर्द्ध्वं व्यवस्थितम् ॥४२

अभिध्यान करने वाले उनका अन्य एक तिर्यक् स्रोत हुआ था। जिससे तिर्यक् विवर्त्तित होते थे इस कारण से वह फिर तिर्यक् स्रोत कहा गया था ।३६। उस तिर्यक् स्रोत में तमोगुण की अधिकता थी इस कारण से वे सभी बहुत अधिक अज्ञान से समन्वित कहे गये हैं। वे सब उत्पाद्य के ग्राही थे और उस अज्ञान में ही ज्ञान के मानने वाले थे ।३७। वे अहङ्कार से युक्त थे और आत्माहङ्कारी थे। ऐसे वे अट्ठाईस प्रकार के थे। इन द्वादश इन्द्रियों के भेद थे जो कि नेत्र, कान, नासिका, जिह्वा और त्वक्—ये पाँच ज्ञानेन्द्रियाँ हैं और हाथ, पद, गुदा उपस्थ और जिह्वा—ये पाँच कर्मेन्द्रियाँ हैं और एक मन है। तथा नौ प्रकार के आत्मा हैं ।३८। और आठ तारकादि हैं और उनकी शक्ति के प्रकार कहे गये हैं। वे सब अन्दर में प्रकाश वाले हैं फिर वे बाहिर से समावृत हैं ।३९। तिर्यक् स्रोत कहे जाया करते हैं और वश्यात्मा तीन संज्ञा वाले हैं ।४०। तिर्यक् स्रोत का सृजन करके ईश्वर ने दूसरे विश्व की रचना की थी। इसके अनन्तर उद्भूत अभिप्राय को देखकर अर्थात् उस प्रकार के सर्ग का अवलोकन किया था ।४१। इस तरह से अभिध्यान करने वाले उनके जो अन्त्य सात्विक सर्ग समुत्पन्न हुआ था। तीसरा तो ऊर्द्ध्व स्रोत था और वह निश्चित रूप से ऊपर की ही ओर व्यवस्थित था ।४२।

यस्मादूर्द्ध्वं न्यवर्तत तदूर्ध्वस्रोतसंज्ञकम् ।

ता: सुखं प्रीतिबहुला बहिरंतश्च वावृता: ।।४३
प्रकाशा बहिरंतश्च उद्ध्वंस्रोत: प्रजा: स्मृता: ।
नवधातादयस्ते वै तुष्टात्मानो बुधा: स्मृता: ।।४४
ऊद्ध्वंस्रोतस्तृतीयो य: स्मृत: सर्वः सदैविक: ।
उद्ध्वंस्रोत: सु सृष्टेषु देवेषु स तदा प्रभु: ।।४५
प्रीतिमानभवद्ब्रह्मा ततोऽन्यं नाभिमन्यत ।
सर्गमन्यं सिसृक्षुस्तं साधकं पुनरीश्वर: ।।४६
तस्याभिध्यायत: सर्गं सत्याभिध्यायिनस्तदा ।
प्रादुर्बभौ भौतसर्ग: सोऽर्वाक् स्रोतस्तु साधक: ।।४७
यस्मात्तेर्वाक्प्रवर्तंते ततोर्वाक्स्रोतसस्तु ते ।
ते च प्रकाशबहुलास्तमस्पृष्टरजोधिका: ।।४८
तस्मात्ते दु:खबहुला भूयोभूयश्च कारिण: ।
प्रकाशा बहिरंतश्च मनुष्या: साधकाश्च ते ।।४९

कारण यह है कि यह ऊर्ध्व में रहा था । इसीलिए उसकी ऊर्ध्व स्रोत संज्ञा होती है । वे सुख पूर्वक बहुत प्रीति पूर्ण थे और बाहर भीतर आवृत थे ।४३। बाहिर भीतर रहने वाले प्रकाश ऊर्ध्व स्रोत प्रजा कहे गये थे । जो नौ धाता आदिक थे वे तुष्ट आत्मा वाले बुध कहे गये हैं ।४४। जो ऊर्ध्वस्रोत तीसरा कहा गया है वह सब सदैविक है । उस समय में ऊर्ध्व स्रोतों के सृजन किये जाने पर वह प्रभु प्रसन्न हुए थे ।४५। ब्रह्माजी का मन बहुत प्रीतियुक्त हो गया था और फिर अन्य को नहीं माना था । फिर ईश्वर ने अन्य साधक सर्ग के सृजन की इच्छा की थी ।४६। सर्ग की रचना का अभिध्यान करने वाले और उस समय में स्रोत अर्वाक् साधक था ।४७। कारण यह है कि वे अवाक् प्रवृत्त हुआ करते हैं इसी से वे अर्वाक् स्रोत होते हैं इसी से वे अर्वाक् स्रोत होते हैं और उनमें प्रकाश की बहुलता हुआ करती है और तम से स्पर्श किये हुए रजोगुण की अधिकता से युक्त होते हैं ।४८। इस कारण उनमें दु:खों की अधिकता है और पुन: पुन: करने वाले हैं। बाहिर और अन्दर प्रकाश होते हैं और वे मनुष्य साधना करने वाले हैं ।४९।

लक्षणैर्नारकाद्यैस्तैरष्टधा च व्यवस्थिताः ।
सिद्धात्मानो मनुष्यास्ते गन्धर्वैः सह धर्मिणः ॥५०
पञ्चमोऽनुग्रहः सर्गश्चतुर्द्धा स व्यवस्थितः ।
विपर्ययेण शक्त्या च सिद्धमुख्यास्तथैव च ॥५१
निवृत्ता वर्तमानाश्च प्रजायंते पुनः पुनः ।
भूतादिकानां सत्त्वानां षष्ठः सर्गः स उच्यते ॥५२
स्वादनाश्चाप्यशीलाश्च ज्ञेया भूदादिकाश्च ते ।
प्रथमो महतः सर्गो विज्ञेयो ब्रह्मणस्तु सः ॥५३
तन्मात्राणां द्वितीयस्तु भूतसर्गः स उच्यते ।
वैकारिकस्तृतीयस्तु चैद्रियः सर्ग उच्यते ॥५४
इत्येते प्राकृताः सर्गा उत्पन्ना बुद्धिपूर्वकाः ।
मुख्यसर्गश्चतुर्थस्तु मुख्या वै स्थावराः स्मृताः ॥५५
तिर्यक्स्रोतः ससर्गस्तु तैर्यग्योन्यस्तु पञ्चमः ।
तथोद्ध्वंस्रोतसां सर्गः षष्ठो दैवत उच्यते ॥५६

वे नारक आदि लक्षणों से आठ प्रकार से व्यवस्थित होते हैं। वे मनुष्य गन्धर्वोंके साथ धर्म वाले होते हुए सिद्ध आत्मा वाले हैं ।५०। पाँचवाँ अनुग्रह नामक सर्ग है जो चार प्रकार का व्यवस्थित है। विपर्यय से और शक्ति से और शक्ति से उसी भाँति सिद्ध मुख्य हैं ।५१। निवृत्त और वर्तमान बार-बार उत्पन्न हुआ करते हैं। भूतादिक सत्वों का जो सर्ग है वह छठा सर्ग कहा जाता है ।५२। और भूतादिक स्वादन और आया शील जानने के योग्य हैं। प्रथम महत् का सर्ग है वह ब्रह्मा का सर्ग तन्मात्राओं का होता है और भूतसर्ग कहा जाया करता है और भूतसर्ग कहा जाया करता है। तीसरा सर्ग वैकारिक है जो इन्द्रिय सर्ग के नाम से पुकारा जाता है ।५४। ये सभी प्राकृत सर्ग हैं जो बुद्धि पूर्वक समुत्पन्न हुए हैं। प्रमुख सर्ग चौथा है और निश्चय ही स्थावर मुख्य कहे गये हैं ।५५। त्रियक् स्रोत तो तिर्यग् योनियों वाला पाँचवाँ होता है। उसी भाँति ऊर्ध्व स्रोतों का सर्ग छठा है जो दैवत सर्ग के नाम से कहा जाया करता है ।५६।

तत्रोद्ध्वंस्रोतसां सर्गः सप्तमः स तु मानुषः ।

अष्टमोनुग्रहः सर्गः सात्त्विकस्तामसश्च सः ।।५७
पंचैते वैकृताः सर्गाः प्राकृताद्यास्त्रयः स्मृताः ।
प्राकृतो वैकृतश्चैव कौमारो नवमः स्मृतः ।।५८
प्राकृता बुद्धिपूर्वास्तु त्रयः सर्गास्तु वैकृताः ।
बुद्धिपूर्वाः प्रवर्त्तेयुस्तद्वर्गा ब्राह्मणास्तु वै ।।५९
विस्तराच्च यथा सर्वे कीर्त्यमानं निबोधत ।
चतुर्द्धा च स्थितस्सोऽपि सर्वभूतेषु कृत्स्नशः ।।६०
विपर्ययेण शक्त्या च बुद्ध्या सिद्ध्या तथैव च ।
स्थावरेषु विपर्यासस्तिर्यग्योनिषु शक्तितः ।।६१
सिद्धात्मानो मनुष्यास्तु पुष्टिर्देवेषु कृत्स्नशः ।
अथो ससर्ज वै ब्रह्मा मानसानात्मनः समान् ।।६२
वैवर्त्येन तु ज्ञानेन निवृत्तास्ते महौजसः ।
संबुद्ध्य चैव नामाथो अपवृत्तास्त्रयस्तु ते ।।६३

वहीं पर ऊर्ध्व स्रोतों का सातवाँ सर्ग है वह मानुष सर्ग होता है । आठवाँ अनुग्रह नाम वाला सर्ग हैं ओर वह दो प्रकार का होता है—एक सात्विक सर्ग है और दूसरा तामस है ।५७। ये पाँच वैकृत अर्थात् विकार से युक्त सर्ग होते हैं और जो प्राकृत सर्ग हैं वे तीन कहे गये हैं । प्राकृत और वैकृत दोनों प्रकार का जो सर्ग है वह नवम कौमार होता है ।५८। प्राकृत तीनों सर्ग बुद्धि पूर्वक हैं । वैकृत सर्ग बुद्धि पूर्व प्रवृत्त होते हैं और उसके वर्ग ब्राह्मण हैं ।५९। जिस प्रकार से ये सब हैं वे सब विस्तार से कीर्त्तित होने वाले हैं उनको समझ लीजिए । वह भी चार प्रकार से स्थित है और पूर्णरूप से समस्त भूतों में है ।६०। विपरीतता से शक्ति से बुद्धि से और सिद्धि से होते हैं । स्थावरों में तो विपर्यास होता है—तिर्यग् योनियों में सूक्ति से होता है ।६१। सिद्धात्मा मनुष्य पूर्णतया देवों में पुष्टि है । इसके उपरान्त ब्रह्माजी ने अपनी आत्मा के ही समान मानस अर्थात् मन से समुत्पन्नों का सृजन किया था ।६२। वे वैवर्त्य ज्ञान के द्वारा महान ओज वाले प्रवृत्ति के अर्थात् सृजन के कार्य से निवृत्त हो गये थे । नाम को भली भाँति जानकर वे तीनों अपवृत्त हो गये थे ।६३।

असृष्ट्वैव प्रजासर्गं प्रतिसर्गं ततस्ततः ।
ब्रह्मा तेषु व्यरक्तेषु ततोऽन्यान्साधकान्सृजन् ।।६४
स्थानाभिमानिनो देवाः पुनर्ब्रह्मानुशासनम् ।
अभूतसृष्ट्यवस्था ये स्थानिनस्तान्निबोध मे ।।६५
आपोऽग्निः पृथिवी वायुरन्तरिक्षो दिवं तथा ।
स्वर्गो दिशः समुद्राश्च नद्यश्चैव वनस्पतीन् ।।६६
ओषधीनां तथात्मानो ह्यात्मनो वृक्षवीरुधाम् ।
लताः काष्ठाः कलाश्चैव मुहूर्ताः संधिरात्र्यहाः ।।६७
अर्द्धमासाश्च मासाश्च अयनाब्दयुगानि च ।
स्थाने स्रोतः स्वभीमानाः स्थानाख्याश्चैव ते स्मृताः ।।६८
स्थानात्मनः स सृष्ट्वा तु ततोऽन्यास तदाऽसृजत् ।
देवांश्चैव पितृंश्चैव यैरिमा वर्द्धिताः प्रजाः ।।६९
भृग्वंगिरा मरीचिश्च पुलस्त्यः पुलहः क्रतुः ।
दक्षोऽत्रिश्च वसिष्ठश्च सोऽसृजन्नव मानसान् ।।७०

प्रजा की सृष्टि को न देखकर ही फिर ब्रह्माजी ने अनन्तर में प्रतिसर्ग की रचना की थी । उनके विरक्त हो जाने पर उन्होंने अन्य साधकों का सृजन किया था ।६४। देवगण अपने स्थान के अभिमान रखने वाले थे । ब्रह्माजी का अनुशासन हुआ । न हुई सृष्टि की अवस्था वाले जो स्थानी थे उनकी ज्ञान आप लोग मुझसे प्राप्त कर लेवें ।६५। जल-अग्नि—पृथिवी—वायु—अन्तरिक्ष—दिव—स्वर्ग—दिशा—समुद्र—नदियाँ—वनस्पति—औषधियों की आत्मायें—वृक्षों और वीरुधों की आत्मायें—लता—काष्ठा—कला—मुहूर्त—सन्धि—रात्रि—दिन—अर्धमास—मास अयन—अब्द-युग-ये स्थान में स्रोतों में अभिमान वाले हैं और वे स्थान नाम से कहे गये हैं ।६६-६८। उन ब्रह्माजी ने स्थानात्मा देखा तो ऐसा सेवलोकन करके उनका सृजन करके फिर उस समय में उन्होंने अन्नों का सृजन किया था । उन्होंने देवों की और पितृगणों की सृष्टि की थी जिनके द्वारा ये प्रजायें परिवर्धित हुई थीं ।६९। उन ब्रह्माजी ने अपने मन के द्वारा नौ पुत्रों की सृष्टि की थी । वे नौ ये हैं—भृगु—मरीचि—पुलस्त्य—पुलह—क्रतु—दक्ष—अत्रि और वसिष्ठ । उस समय में इनका सृजन किया था ।७०।

नव ब्राह्मण इत्येते पुराणे निश्चयं गताः ।
ब्रह्मा यथात्मकानां तु सर्वेषां ब्रह्मयोगिनाम् ॥७१
ततोऽसृजत्पुनर्ब्रह्मा रुद्रं रोषात्मसंभवम् ।
संकल्पं चैव धर्मं च सर्वेषामेव पर्वतान् ॥७२
सोऽसृजद्व्यवसायं तु ब्रह्मा भूतं सुखात्मकम् ।
संकल्पाच्चैव संकल्पो जज्ञे सोऽव्यक्तयोनिनः ॥७३
प्राणाद्दक्षोऽसृजद्वाचं चक्षुर्भ्यां च मरीचिनम् ।
भृगुश्च हृदयाज्जज्ञे ऋषिः सलिलयोनिनः ॥७४
शिरसश्चांगिराश्चैव श्रोत्रादत्रिस्तथैव च ।
पुलस्त्यश्च तथोदानाद्व्यानात्तु पुलहस्तथा ॥७५
समानतो वसिष्ठश्च ह्यपानान्निर्ममे क्रतुम् ।
इत्येते ब्रह्मण श्रेष्ठाः पुत्रा वै द्वादश स्मृताः ॥७६
धर्मादयः प्रथमजा विज्ञेया ब्रह्मणः स्मृताः ।
भृग्वादयस्तु ये सृष्टा न च ते ब्रह्मवादिनः ॥७७
गृहमेधिपुराणास्ते विज्ञेया ब्रह्मणः सुताः ।
द्वादशैते प्रसूयंते सह रुद्रेण च द्विजाः ॥७८

ये नौ ब्रह्मा ही हैं—ऐसा पुराण में निश्चय को प्राप्त हुए थे। इन सब ब्रह्मयोगी आत्मकों का ब्रह्मा के ही समान प्रभाव था।७१। इसके अनन्तर ब्रह्माजी ने रोष रूपी अपने आत्मज रुद्रदेव का सृजन किया था। सङ्कल्प और धर्म का सृजन किया था और सभी के पर्वतों की रचना की थी।७२। उन ब्रह्माजी ने व्यवसाय की सृष्टि की थी और ब्रह्मा ने सुखात्मक भूत की रचना की थी। उन्होंने अव्यक्त योगी सङ्कल्प से सङ्कल्प को जन्म दिया था।७३। दक्ष ने प्राण वाक् का सृजन किया था और चक्षुओं से मरीचि को उत्पन्न किया था। सलिल योगी के हृदय से भृगु ऋषि उत्पन्न हुए थे।७४। शिर से अङ्गिरा ने जन्म ग्रहण किया था। उदान वायु से पुलस्त्य उत्पन्न हुए व्यान से पुलह का उद्‌भव हुआ था।७५। समान नामक वायु से वसिष्ठ ऋषि की उत्पत्ति हुई थी, अपान वायु से क्रतु ने जन्म ग्रहण किया था। ये इतने ब्रह्माजी के परमश्रेष्ठ बारह पुत्र समुत्पन्न हुए थे। हे

द्विजगणो ! ये ब्रह्माजी के द्वादश पुत्र परमश्रेष्ठ हुए थे ।७६। धर्म आदिक प्रथम उत्पन्न होने वाले ब्रह्माजी के पुत्र कहे गये जानने चाहिए । जो भृगु आदि की सृष्टि की गयी थी वे ब्रह्मवादी नहीं थे ।७७। वे गृहमेधी पुराण बह्माजी के पुत्र समझने चाहिए । ये द्वादश रुद्र के साथ प्रसूत होते हैं ।७८।

ऋतुः सनत्कुमारश्च द्वावेतावूर्द्ध्वरेतसौ ।
पूर्वोत्पन्नो पुरा ह्य तौ सर्वेषामपि पूर्वजौ ।।७९
व्यतीतौ सप्तमे कल्पे पुराणौ लोकसाधकौ ।
विरजेतेऽत्र वै लोके तेजसाक्षिप्य चात्मनः ।।८०
तावुभौ योगधर्माणावारोप्यात्मानमात्मना ।
प्रजाधर्मं च कामं च वर्तयेते महौजसौ ।।८१
यथोत्पन्नस्तथैवेह कुमार इति चोच्यते ।
ततः सनत्कुमारेति नाम तस्य प्रतिष्ठितम् ।।८२
तेषां द्वादश ते वंशा दिव्या देवगणान्विताः ।
क्रियावन्तः प्रजावन्तो महर्षिभिरलंकृताः ।।८३
प्राणजांस्तु स दृष्ट्वा वै ब्रह्मा द्वादश सात्विकान् ।
ततोऽसुरान्पितॄन्देवान्मनुष्यांश्चासृजत् प्रभुः ।।८४

क्रतु और सनत्कुमार ये दो ब्रह्माजी के पुत्र ऊर्ध्वरेता थे । पूर्व की उत्पत्ति में प्राचीन काल में ये दोनों सबके पूर्व में जन्म ग्रहण करने वाले हुए थे ।७९। प्रथम कल्प में लोक साधक पुराण व्यतीत हो गये थे और इस लोक में आत्मा के तेज से आक्षिप्त होकर विरेजित होते हैं ।८०। योग के धर्म वाले वे दोनों आत्मा से आत्मा का आरोप करके दोनों महान् ओज वाले प्रजा के धर्म को और काम को वर्त्तित करते हैं ।८१। जैसे ही उत्पन्न हुआ था वैसे ही यहाँ पर कुमार—यह कहा जाया करता है । इसके अनन्तर उसका नाम सनत्कुमार-यह प्रतिष्ठित हुआ था ।८२। उनके द्वादश वंश थे जो परम दिव्य और देवगणों से समन्वित थे । वे सब क्रिया वाले थे और महर्षियों से अलंकृत थे ।८३। उन ब्रह्माजी ने उन बारह सात्विक प्राणजों को देख कर फिर प्रभु ने असुरों को-पितृगणों को-देवों को और मनुष्यों को सृजित किया था ।८४।

मुखाद्देवानजनयत् पितृ श्चैवाथ वक्षसः ।
प्रजननान्मनुष्यान्वै जघनान्निर्ममेऽसुरान् ॥८५

नक्तं सृजन्पुनर्ब्रह्मा ज्योत्स्नाया मानुषात्मनः ।
सुधायाश्च पितृ श्चैव देवदेवः ससर्ज ह ॥८६

मुख्यामुख्यान् सृजन्देवानसुरांश्च ततः पुनः ।
मनसश्च मनुष्यांश्च पितृवन्महतः पितृ न् ॥८६

विद्युतोऽशनिमेघांश्च लोहितेन्द्रधनूंषि च ।
ऋचो यजूंषि सामानि निर्ममे यज्ञसिद्धये ॥८

उच्चावचानि भूतानि महसस्तस्य जज्ञिरे ।
ब्रह्मणस्तु प्रजासर्गं देवर्षिपितृमानवम् ॥८६

पुनः सृजति भूतानि चराणि स्थावराणि च ।
यक्षान्पिशाचान् गन्धर्वान्सर्वशोऽप्सरसस्तथा ॥६०

नरकिन्नररक्षांसि वयः पशुमृगोरगान् ।
अव्ययं वा व्ययञ्चैव द्वयं स्थावरजङ्गमम् ॥६१

ब्रह्माजी ने अपने मुख से देवगणों को उत्पन्न किया था, अपने वक्षः स्थल से पितृगणों का जन्म ग्रहण कराया था—प्रजनन से मनुष्यों को और जघन से असुरों को निर्मित किया था ।७५। फिर देवताओं के भी देव ब्रह्मा जी ने मानुषात्मा की ज्योत्स्ना से रात्रि का सृजन किया था—सुधा की और पितृगणों की सृष्टि की थी ।८६। मुख्य और अमुख्य देवों का और असुरों का सृजन करते हुए इसके अधन्तर मन से मनुष्यों का और पिता के ही समान महान् पितृगणों का सृजन किया था ।८७। विद्युत् की—वज्र की—मेघों की और लोहित इन्द्र धनुषों की—ऋचाओं की अर्थात् ऋग्वेद की—यजुर्वेद की और सामवेद की—यज्ञ की सिद्धि के लिये निर्मित की थी अर्थात् रचना की थी अर्थात् रचना की थी ।८८। ब्रह्मा के तेज से उच्च और अवच प्राणी उत्पन्न हुए थे । प्रजा के सर्ग में देव ऋषि-पितृगण और मानव सभी हुए थे ।८९। फिर उन्होंने प्राणियों का—चरों का और स्थावरों का सृजन किया था यक्ष-पिशाच गन्धर्व और सब प्रकार की अप्सराओं का सृजन करते हैं । ।९०। नर-किन्नर-राक्षस-पक्षी-पशु-मृग और उरगों का सृजन किया करते हैं । अव्यय अथवा व्यय दोनों स्थावरों जंगमों का सृजन करते हैं ।९१।

तेषां ते यांति कर्माणि प्राक् सृष्टानि स्वयंभुवा ।
तान्येव प्रतिपद्यंते सृज्यमानाः पुनः पुनः ॥६२
हिंस्राहिंस्रे मृदुक्रूरे धर्माधर्मौ कृताकृते ।
तेषामेव पृथक् सूतमविभक्तं त्रयं विदुः ॥६३
एतदेवं च नैवं च न चोभे नानुभे तथा ।
कर्म स्वविषयं प्राहुः सत्वस्थाः समदर्शिनः ॥६४
नामात्मपञ्चभूतानां कृतानां च प्रपञ्चताम् ।
दिवशब्देन पञ्चैते निर्ममे स महेश्वरः ॥६५
आर्षाणि चैव नामानि याश्च देवेषु सृष्टयः ।
शर्वर्यां न प्रसूयन्ते पुनस्तेभ्यो दधत्प्रभुः ॥६६
इत्येवं कारणाद्भूतो लोकसर्गः स्वयंभुवः ।
महदाद्या विशेषान्ता विकाराः प्राकृताः स्वयम् ॥६७
चन्द्रसूर्यप्रभो लोको ग्रहनक्षत्रमण्डितः ।
नदीभिश्च समुद्रैश्च पर्वतैश्च सहस्रशः ॥६८

वे सब उनके कर्मों को प्राप्त होते हैं जिनका कि स्वयम्भुने पूर्व में ही सृजन कर दिया था। बार-बार सृजन को प्राप्त होते हुए उन्हीं कर्मों को प्रतिपन्न हुआ करते हैं।६२। हिंस्र और अहिंसा वाले, मृदु और क्रूर-धर्म और अधर्म ओर कृत तथा अकृत उनके ही पृथक् उत्पन्न हुए थे। यह अविभक्त तीन जान लीजिए।६३। यह इस प्रकार से है और इस प्रकार से नहीं है—दोनों ही नहीं हैं और दोनों हैं। सत्व में स्थित समदर्शी अर्थात् सबको एक ही समान देखने वाले अपने विषय को कर्म कहते हैं।६४। नामात्म पञ्च भूतों की और कृतों की प्रपञ्चता को बनाया था। उन महेश्वर ने दिन शब्द से ये ही पाँच हैं जिसका निर्माण किया था।६५। देवों में जो सृष्टियाँ हैं और आर्ष नाम हैं शर्वरी में प्रसूत नहीं होते हैं—फिर प्रभु ने उनके लिए धारण किया था।६६। यह इसी रीति से स्वयम्भू का कारण से लोकों का सर्ग हुआ था। महत् जिनके आदि में होने वाला है तथा विशेष के अन्त पर्यन्त विकार स्वयं प्राकृत हैं।६७। चन्द्रमा और सूर्य की प्रभा वाला लोक जो ग्रहों और नक्षत्रों से मण्डित है। जहाँ बहुत नदियाँ हैं—समुद्र है और सहस्रों पर्वत हैं—इन सबसे मण्डित है।६८।

पुरैश्च विविधै रम्यैः स्फीतैर्जनपदैस्तथा ।
अस्मिन् ब्रह्मवनेऽव्यो ब्रह्मा चरति सर्ववित् ।।९९
अव्यक्तबीजप्रभवस्तस्यैवानुग्रहे स्थितः ।
बुद्धिस्कन्धमयश्चैव इन्द्रियान्तरकोटरः ।।१००
महाभूतप्रकाशश्च विशेषैः पत्रवांस्तु सः ।
धर्माधर्मसुपुष्पस्तु सुखदुःखफलोदयः ।।१०१
आजीवः सर्वभूतानां ब्रह्मवृक्षः सनातनः ।
एतद्ब्रह्मवनं चैव ब्रह्मवृक्षस्य तस्य तत् ।।१०२
अव्यक्तं कारणं यत्र नित्यं सदसदात्मकम् ।
धानं कृति मायां चैवाहुस्तत्वचिंतकाः ।।१०३
इत्येषोऽनुग्रहः सर्गो ब्रह्मनैमित्तिकः स्मृतः ।
अबुद्धिपूर्वकाः सर्गा ब्रह्मणः ाकृतास्त्रयः ।।१०४
मुख्यादयस्तु षट् सर्गा वैकृता बुद्धिपूर्वकाः ।
वैकल्पात्संप्रवर्तंते ब्रह्मणस्तेभिमन्यव ।।१०५

अनेक सुरम्य पुरों से तथा परम स्फीत जनपदों से समलंकृत हैं—इस ब्रह्मवन में सबके ज्ञाता अव्यक्त ब्रह्माजी सञ्चरण किया करते हैं।९९। अव्यक्त के बीज से जो समुत्पत्ति है वह अनेक ही अनुग्रह में स्थित होता है। यह एक वृक्ष है—ऐसा ही रूपक यहाँ पर दिया जाता है—इसकी बुद्धि ही स्कन्धों से परिपूर्ण है और अन्य इन्द्रियाँ कोटर हैं।१००। महाभूतों का प्रकाश है और विशेषों से वह पत्रों वाला है। इसके धर्म और अधर्म पुष्प हैं तथा उनका परिणाम रूप सुख और दुःख इसके फलों का उदय है।१०१। यह सनातन अर्थात् सर्वदा से चला जाने वाला ब्रह्म वृक्ष समस्त प्राणियों की आजीव होता है। उस ब्रह्म वृक्ष का यह ब्रह्मवन है।१०२। जहाँ पर सत् और असत् स्वरूप वाला नित्य अव्यक्त ही कारण है। तत्वों के चिन्तन करने वाले मनीषी इसको प्रधान-प्रकृति और माया कहा करते हैं।१०३। कृपा से होने वाला इस रीति से यह अनुग्रह सर्ग ब्रह्मा के निमित्त वाला कहा गया है। अबुद्धि पूर्वक ब्रह्माजी के तीन सर्ग है जो प्राकृत कहे गये हैं।१०४। मुख्य आदिक छै सर्ग हैं जो प्राकृत न होकर वैकृत कहे जाते हैं और बुद्धि

के योग से किये जाते हैं। ब्रह्मा के अभिमन्यु वे वैकल्प से संप्रवृत्त होते हैं।१०५।

इत्येते प्राकृताश्चैव वैकृताश्च नव स्मृताः ।
सर्गाः परस्परोत्पन्नाः कारणं तु बुधैः स्मृतम् ॥१०६
मूर्द्धानं वै यस्य वेदा वदंति वियन्नाभिश्चन्द्रसूर्यौ च नेत्रे ।
दिशः श्रोत्रे विद्धि पादौ क्षितिं च सोऽचिन्त्यात्मा
सर्वभूतप्रणेता ॥१०७
वक्त्राद्यस्य ब्राह्मणाः संप्रसूता वक्षसश्चैव क्षत्रियाः पूर्वभागे
वैश्या ऊरुभ्यां यस्य पद्भ्यां च शूद्राः सर्वे वर्णा गात्रतः
संप्रसूताः ॥१०८
नारायणात्परोव्यक्तादंडमव्यक्तसंज्ञितम् ।
अंडजस्तु स्वयं ब्रह्मा लोकास्तेन कृताः स्वयम् ॥१०९
तत्र कल्पान् दश स्थित्वा सत्यं गच्छंति ते पुनः ।
ते लोका ब्रह्मलोकं वै अपरावर्तिनीं गतिम् ॥११०
आधिपत्यं विना ते वै ऐश्वर्येण तु तत्समाः ।
भवंति ब्रह्मणा तुल्या रूपेण विषयेण च ॥१११
तत्र ते ह्यवतिष्ठंते प्रीतियुक्ताः स्वसंयुताः ।
अश्वय भाविनार्थेन प्राकृतं तनुते स्वयम् ॥११२

ये इस प्रकार से प्राकृत और वैकृत नौ सर्ग कहे गये हैं। ये सर्ग परस्पर में ही समुत्पन्न हुए हैं और बुधजनों ने तो कारण बताया है।१०६। वेद जिसके मूर्धा को कहते हैं—वियत इसकी नाभि है और चन्द्र तथा सूर्य जिसके दोनों नेत्र हैं। दिशायें इसके श्रोत्र हैं, भूमिको इसके चरण समझिए—वह न चिन्तन करने के योग्य आत्मा वाला और समस्त भूतों का प्रणेता है।१०७। जिसके मुखसे ब्राह्मण समुत्पन्न हुए हैं और जिसके वक्षःस्थल से पूर्व भाग में क्षत्रियों की समुत्पत्ति हुई है। जिसके ऊरुओं से वैश्य और पदों से शूद्र समुद्भूत हुए हैं। सभी चारों वर्ण उसी के शरीर से उत्पन्न हुए हैं।१०८। व्यक्त नारायण से पर अण्ड है जो अव्यक्त संज्ञा वाला है। इस अण्ड से जन्म ग्रहण करने वाला स्वयं ब्रह्मा है और उसी के द्वारा स्वयं लोकों की

रचना की गयी है ।१०९। वहाँ पर दश कल्पों तक स्थित होकर वे फिर सत्य को चले जाया करते हैं। वे लोक ब्रह्मलोक को जाते हैं जो कि गति अपरा-वर्त्तिनी होती है ।११०। विना आधिपत्य के वे निश्चय ही ऐश्वर्य के द्वारा उसके समान होते हैं। वे सभी स्वरूप से और विषय से ब्रह्मा के ही तुल्य होते हैं। वहाँ पर वे स्वयंयुत प्रीति से युक्त होते हुए अवस्थित रहा करते हैं। अवश्यम्भावी अर्थ मे वे प्राकृत को स्वयं विस्तृत किया करते हैं ।१११-११२।

नानात्वेनाभिसंबंध्यास्तदा तत्कालभाविताः ।
स्वतोऽबुद्धिपूर्वं हि बोधो भवति गौ यथा ।।११३
तत्कालभाविते तेषां तथा ज्ञानं प्रवर्त्तते ।
प्रत्याहारैस्तु भेदानां तेषां हि न तु शुष्मिणाम् ।।११४
तैश्च सार्धं वर्तंते कार्याणि कारणानि च ।
नानात्वदर्शिनां तेषां ब्रह्मलोकनिवासिनाम् ।।११५
विनिवृत्तविकाराणां स्वेन धर्मेण तिष्ठताम् ।
तुल्यलक्षणसिद्धास्तु शुभात्मानो निरञ्जनाः ।।११५
प्राकृते करणोपेताः स्वात्मन्येव व्यवस्थिताः ।
प्रस्थापयित्वा चात्मानं प्रकृतिस्त्वेष तत्त्वतः ।।११७
पुरुषान्यबहुत्वेन प्रतीता न प्रवर्तते ।
प्रवर्तते पुनः सर्गस्तेषां साकारणात्मनाम् ।।११८
संयोगः प्रकृतिर्ज्ञेया युक्तानां तत्वदर्शिनाम् ।
तत्रोपवर्गिणी तेषामपुनर्भारगामिनाम् ।।११९

उस समय में उस काल से भावित होते हुए नानात्व से अभि संबध्य होते हैं। अबुद्धि पूर्वक शयन करते हुए जैसे ही निश्चित बोध होता है। ।११३। उस काल से भावित होने पर उनको उस प्रकार का ज्ञान प्रवृत्त होता है। उन भेदों के प्रत्याहारों से ही होता, शुष्मियों का नहीं होता है ।११४। और उनके साथ ही कार्य तथा कारण प्रवृत्त हुआ करते हैं। नानात्व के दर्शी ब्रह्मलोक के निवासी उनका जो अपने धर्म से विशेष रूप से निवृत्त विकारों वाले हैं और स्थित हैं तुल्य लक्षण वाले सिद्ध-शुभात्मा और

निरञ्जन हैं ।११५-११६। प्राकृत सर्ग में कारणों से उपेत हैं और अपनी आत्मा में ही व्यवस्थित है । और आत्मा को प्रख्यापित करके तत्व से यह प्रकृति है ।११७। पुरुषान्य से यह प्रतीत प्रवृत्त नहीं होती है । फिर उन साकारणात्माओं का सर्ग प्रवृत्त होता है ।११८। युक्त तत्व दर्शियों का संयोग प्रकृति जाननी चाहिए । अपुनर्भारगामी उनकी वह उपवर्गिणी है ।११९।

अभावत: पुन: सत्यं शांतानामर्चिषामिव ।
ततस्तेषु गतेषूद्ध्वं त्रैलोक्यात्तु मुदात्मसु ।।१२०
ते सार्द्धं यैर्महर्ल्लोकस्तदानासादितस्तु वै ।
तच्छिष्या ये ह तिष्ठंति कल्पदाह उपस्थिते ।।१२१
गन्धर्वाद्या: पिशाचाश्च मानुषा ब्राह्मणादय: ।
पशव: पक्षिणश्चैव स्थावरा: ससरीसृपा: ।।१२२
तिष्ठसु तेषु तत्कालं पृथिवीतलवासिषु ।
सहस्रं यत्तु रश्मीनां सूर्यस्येह विनश्यति ।।१२३
ते सप्त रश्मयो भूत्वा एकैको जायते रवि: ।
क्रमेण शतमानास्ते त्रील्लोकान्प्रदहंत्युत ।।१२४
जङ्गमान्स्थावरांश्चैव नदी: सर्वाश्च पर्वतान् ।
शुष्केपूर्वावृष्ट्या यैस्तैश्चैव प्रतापिता: ।।१२५
तदा ते विवशा: सर्वे निर्दग्धा: सूर्यरश्मिभि: ।
जङ्गमा: स्थावराश्चैव धर्माधर्मादिकास्तु वै ।।१२६

अर्चियों की भाँति शान्तों के अभाव से फिर सत्य है । इसके अनन्तर मुदात्मा उनके त्रैलोक्य से ऊपर गत हो जाने पर वे जिनके द्वारा उस समय में महर्लोक अनासादित है । कल्पदाह के उपस्थित होने पर जो उनके शिष्य हैं स्थित रहा करते हैं ।१२०-१२१। गन्धर्व आदिक-पिशाच-मानुष और ब्राह्मण आदि पशु-पक्षी-स्थावर-सरीसृप उस समय में पृथ्वीतल वाली उनके स्थित रहने पर यहाँ पर सूर्य की सहस्र रश्मियाँ विनष्ट हो जाती हैं ।१२२-१२३। वे सब सूर्य की किरणें सात रश्मियाँ होकर एक-एक सूर्य हो जाया करता है वे क्रम से शत स्वरूप होकर तीनों लोकों को प्रदान किया करते हैं ।१२४। जङ्गम और स्थावर-नदी और सब पर्वतों को जो पूर्ण में ही

वृष्टि के न होने से शुष्क हो रहे थे और जिनके द्वारा वे शुष्क थे उन्हीं के द्वारा बहुत तापित किये गये थे अर्थात् शुष्क वे एकदम प्राप्त हो गये थे ।१२५। इस समय में कहीं पर भी परित्राण नहीं था और वे सब विवश होकर सूर्य के प्रखर प्रतप्त किरणों से निःशेष रूप से दग्ध हो गये थे। इनमें सभी स्थावर--जङ्गम और धर्म तथा अधर्म आदि थे ।१२६।

दग्धदेहास्तदा ते तु धूतपापा युगात्यये ।
ख्यातातपा विनिर्मुक्ताः शुभया चातिबंधया ।।१२७
ततस्ते ह्युपपद्यंते तुल्यरूपैर्जनैर्जनाः ।
उषित्वा रजनीं ते च ब्रह्मणोऽव्यक्तजन्मनः ।।१२८
पुनः सर्गे भवंतीह मानस्यो ब्रह्मणः प्रजाः ।
ततस्तेषु प्रपन्नेषु जनैस्त्रैलोक्यवासिषु ।।१२९
निर्दग्धेषु च लोकेषु तदा सूर्येस्तु सप्तभिः ।
वृष्टया क्षितौ प्लावितायां विजनेष्वर्णवेषु वा ।।१३०
समुद्राश्चैव मेघाश्च आपश्चैवाथ पार्थिवाः ।
शरमाणा व्रजन्त्येव सलिलाख्यास्तथाचलाः ।।१३१
आगतागतिकं चैव यदा तु सलिलं बहु ।
संछाद्येमां स्थितां भूमिमर्णवाख्यं तदाऽभवत् ।।१३२
आभाति यस्माच्चाभासाद्भाशब्दः कांतिदीप्तिषु ।
स सर्वः समनुप्राप्ता मासां भाव्यो विभाव्यते ।।१३३

उस अवसर पर युग के अत्यय में वे देहों के दग्ध हो जाने पर निष्पाप हो गये थे तथा ख्यातातप और शुभ बन्धा से विनिर्मुक्त थे ।१२७। इसके उपरान्त वे तुल्यरूप वाले जनों के स्वाका जन उत्पन्न होते हैं। और वे अव्यक्त जन्म वाले ब्रह्मा की रात्रि में वहाँ निवास करके फिर सृजन की वेला में ब्रह्माजी की मानसी प्रजा होती हैं। फिर जनों के साथ त्रैलोक्य वासी उनके प्रपन्न होने पर तथा संतप्त सूर्य की प्रखर किरणों से उस समय में लोकों के निर्दग्ध हो जाने पर वृष्टि के द्वारा सम्पात से भूमि के प्लावित होने पर तथा विजन अर्णवों में निमग्न हो जाने पर समुद्र--मेघ--जल और पार्थिव सब शरमाण होते तथा अचल सलिल से ज्ञान वाले होकर सब ही गमन कर जाया करते हैं अर्थात् विनष्ट हो जाते हैं ।१२८-१३१। जिस समय

में आगता गलिक जल प्रचुर मात्रा में हो जाता है तो वह इस भूमि को संच्छादित करके सभी समुद्र नाम वाला हो जाता है ।१३२। भी शब्द जिस आभास से कान्ति-दीप्तियों में आभात होता है। वह सभी भाओं को समनु प्राप्त हुए जो कि भाओं से विभावित होता है ।१३३।

तदंतस्तनुते यस्मात्सर्वां पृथ्वीं समंततः ।
धातुस्तनोति विस्तारं ततोपतनवः स्मृताः ।।१३४
शार इत्येव शीर्णे तु नानार्थो धातुरुच्यते ।
एकार्णवे भवंत्यापो न शीर्णास्तेन ता नराः ।।१३५
तस्मिन् युगसहस्रांते संस्थिते ब्रह्मणोऽहनि ।
तावत्कालं रजन्यां च वर्तन्त्यां सलिलात्मनः ।।१३६
ततस्ते सलिले तस्मिन् नष्टाग्नौ पृथिवीतले ।
प्रशांतवातेऽन्धकारे निरालोके समंततः ।।१३७
येनैवाधिष्ठितं हीदं ब्रह्मणः पुरुषः प्रभुः ।
विभागमस्य लोकस्य प्रकर्तुं पुनरैच्छत ।।१३८
एकार्णवे ततस्तस्मिन्नष्टे स्थावरजङ्गमे ।
तदा भवति स ब्रह्मा सहस्राक्षः सहस्रपात् ।।१३९
सहस्रशीर्षा पुरुषो रुक्मवर्णो ह्यतींद्रियः ।
ब्रह्मा नारायणाख्यस्तु सुष्वाप सलिले तदा ।।१४०
सत्वोद्रेकात्प्रबुद्धस्तु स शून्यं लोकमैक्षत ।
अनेनाद्येन पादेन पुराणं परिकीर्तितम् ।।१४१

उसके अन्दर जिससे सभी ओर से इस पृथ्वी का विस्तार किया करता है। धातु विस्तार को फैलाता है उसके पश्चात् उपतनु कहे गये है। ।१३४। शार यही ही शीर्ण हो जाने पर अनेक अर्थ धातु कहा जाया करता है। एकमात्र समुद्र में जल ही होते हैं। उससे वे नर शीर्ण नहीं होते हैं। ।१३५। उस एक सहस्र युगों के अन्त में ब्रह्मा के दिन के संस्थित होने पर तब तक के समय में सलिलात्मा की रात्रि के बसने पर रजनी ही रहती है ।१३६। इसके उपरान्त उस जलमें विनष्ट अग्नि वाले पृथ्वी तल में-वायु के एक दम प्रशान्त होने पर एक दम अन्धकार रहता है और सभी ओर आलोक

का अभाव होता है ।१३७। जिसके द्वारा यह अधिष्ठित है ब्रह्मा के पर पुरुष प्रभु ने इस लोक के विभाग करने की इच्छा की थी ।१३८। उस समय में केवल एक ही समुद्र था और सभी चर तथा अचर जगत् एकदम विनष्ट हो गया था । तब वह ब्रह्मा सहस्रों पादों वाले होते हैं ।१३९। वह पुरुष सहस्रों शीर्षों वाले हैं जिनका वर्ण सुवर्ण के समान है और जो इन्द्रियों की पहुँच से परे हैं । उस समय में नारायण नामधारी ब्रह्माजी जल में शयन कर रहे थे ।१४०। सत्व के उद्रेक से प्रकृष्ट ज्ञान वाले उन्होंने सम्पूर्ण लोक को शून्य देखा था । इस आद्य पाद ने पुराण को परिकीर्त्तित किया था ।१४१।

कल्प प्रतिसन्धि वर्णनम्

सूत उवाच—इत्येवं प्रथमं पादं प्रकृत्यर्थं प्रकीर्तितम् ।
श्रुत्वा तु संहृष्टमनाः कापेयः संशयायति ।।१
आराध्य वचसा सूतं तस्यार्थं त्वपरां कथाम् ।
अथ प्रभृति कल्पज. प्रतिसंधिः प्रचक्षते ।।२
समतीतस्य कल्पस्य वर्तमानस्य चानयोः ।
कल्पयोरंतरं यत्र प्रतिसंधिश्च यस्तयोः ।
एतद्वेदितुमिच्छामि यथावत्कुशलो ह्यसि ।।३
कापेयेनैवमुक्तस्तु सूतः प्रवदतां वरः ।
त्रैलोक्यस्योद्भवं कृत्स्नदाख्यातुमुपचक्रमे ।।४
सूत उवाच—अत्र वै वर्णयिष्यामि याथातथ्येन सुव्रताः ।
कल्पं भूतं भविष्यं च प्रतिसंधिश्च यस्तयोः ।।५
मन्वंतराणि कल्पेषु यानि यानि च सुव्रताः ।
यश्चायं वर्तते कल्पो वाराहः सांप्रतः शुभः ।।६
अस्मात्कल्पात्तु यः पूर्वः कल्पोऽतीतः सनातनः ।
तस्य चास्य च कल्पस्य मध्यावस्थां नियोधत ।।७

श्री सूतजी ने कहा—यह प्रकीर्त्ति के लिए प्रथम पाद कीर्त्तित किया है । इसका श्रवण करके कापेय के मन में बहुत ही संहर्ष हुआ था किन्तु उसके मन में संशय भी होता है ।१। उन्होंने वाणी के द्वारा सूतजी की

आराधना की थी और उसका अर्थ तथा दूसरी कथा को श्रवण करने की इच्छा की थी। आज से लेकर कल्पज्ञ प्रति सन्धि कहा जाता है।२। बीते हुए कल्प का और वर्तमान कल्प की इन दोनों का अन्तर और जहाँ पर उन दोनों की प्रतिसन्धि है। यह मैं जानना चाहता हूँ क्योंकि आप ठीक प्रकार से यह बताने के लिए परम कुशल हैं।३। कापेय के द्वारा इस प्रकार से पूछे जाने पर प्रवचन करने वालों में श्रेष्ठ सूतजी ने यह सम्पूर्ण ही करने का उपक्रम किया था।४। श्री सूतजी ने कहा था–हे सुन्दर व्रतों वालो ! इस विषय में जो कुछ भी है वह सभी यथार्थ रूप से वर्णन करूँगा। कल्प जो हो गये हैं और आगे होने वाले हैं तथा इन दोनों की जो प्रति सन्धि है–इसको भी बताऊँगा।५। इन कल्पों में जो-जो भी मन्वन्तर है और जो यह कल्प वर्तमान है वह इस समय कल्प परम शुभ वाराह है।६। इस कल्प से पूर्व में होने वाला जो कल्प था जो कि सनातन व्यतीत हो गया है उसकी और इस कल्प की जो मध्य में होने वाली अवस्था है उसका ज्ञान अब प्राप्त करलो।७।

प्रत्यागते पूर्वकल्पे प्रतिसंधि विनाऽन्यथा ।
अन्य: प्रवर्त्तते कल्पो जनलोकादय: पुन: ।।८
व्युच्छिन्नप्रतिसंधिस्तु कल्पात्कल्प: परस्परम् ।
व्युच्छिद्यंते प्रजा: सर्वा: कल्पांते सर्वशस्तदा ।।९
तस्मात्कल्पात्तु कल्पस्य प्रतिसंधिर्न विद्यते ।
मन्वंतरे युगाख्यानामविच्छिन्नास्तु संधय: ।।१०
परस्परात् प्रवर्तंते मन्वतरयुगै: सह ।
उक्ता ये प्रक्रियार्थेन पूर्वकल्पा: समासत: ।।११
तेषां परार्द्धकल्पानां पूर्वो यस्मात्तु य: पर: ।
आसीत्कल्पे व्यतीते वै परार्द्धात्परमस्तु य: ।।१२
कल्पास्त्वन्ये भविष्या ये ह्यपरार्द्धगुणीकृता: ।
प्रथम: सांप्रतस्तेषां कल्पो यो वर्तते द्विजा: ।।१३
अस्मिन्पूर्वे परार्द्धे तु द्वितीय: पर उच्यते ।
एष संस्थितकालन्तु प्रत्याहारस्तत: स्मृत: ।।१४

हे अनघो ! प्रतिसन्धि के बिना पूर्वकल्प के प्रत्यागत होने पर अन्य कल्प प्रवृत्त होता है और फिर जन लोकादिक होते हैं ।८। व्युच्छिन्न प्रति-सन्धि वाला कल्प से परस्पर में होता है । उस अवसर पर सभी ओर से कल्प के अन्त में सम्पूर्ण प्रजा व्युच्छिन्न हुआ करती है ।९। उस कल्प से कल्प की प्रतिसन्धि नहीं होती है । मन्वन्तर में युगाख्यों की सन्धियाँ अविच्छिन्न होती हैं ।१०। मन्वन्तर युगों के साथ परस्पर से प्रवृत्त होता है । जो संक्षेप से प्रक्रियार्थ के द्वारा पूर्व कल्प कहे हैं ।११। उन परार्ध कल्पों के पूर्वा जिससे जो पर है । पूर्वा कल्प के व्यतीत होने पर परार्ध से परम जो था ।१२। जो अन्य भविष्य में होने वाले कल्प हैं वे अपरार्ध गुणी कृत हैं । हे द्विजगणो ! उनमें अब होने वाला कल्प है जो कि इस समय में वर्तमान है ।१३। इसमें पूर्वा परार्ध में जो द्वितीय है वह पर कहा जाता है । यह संस्थित काल वाला है और फिर प्रत्याहार कहा गया है ।१४।

अस्मात्कल्पात्ततः पूर्वं कल्पोऽतीतः पुरातनः ।
चतुर्युगसहस्रांते सह मन्वंतरैः पुरा ।।१५
क्षीणे कल्पे ततस्तस्मिन् दाहकाल उपस्थिते ।
तस्मिन्काले तदा देवा आसन्वैमानिकास्तु ये ।।१६
नक्षत्रग्रहताराश्च चन्द्रसूर्यादयस्तु ते ।
अष्टाविंशतिरेवैताः कोटचस्तु सुकृतात्मनाम् ।।१७
मन्वंतरे यथैकस्मिन् चतुर्दशसु वै तथा ।
त्रीणि कोटिशतान्यासन् कोटचो द्विनवतिस्तथा ।।१८
अथाधिकासप्ततिश्च सहस्राणां पुरा स्मृता ।
एकैकस्मिस्तु कल्पे वै देवा वैमानिकाः स्मृताः ।।१९
अथ मन्वंतरेष्वासंश्चतुर्दशसु खे दिवि ।
देवाश्च पितरश्चैव ऋषयोऽमृतपास्तथा ।।२०
तेषामनुचराश्चैव पत्न्यः पुत्रास्तथैव च ।
वर्णाश्रमातिरिक्ताश्च तस्मिन्काले तु खे सुराः ।।२१
तैस्तैः सायुज्यगैः सार्द्धं प्राप्ते वस्तुमये तदा ।
तुल्यनिष्ठाभवन्सर्वे प्राप्ते ह्याभूतसंप्लवे ।।२२

फिर इस कल्प से पूर्व में होने वाला अतीत पुरातन कल्प है जो पहिले एक जहस्र चारों युगों की चौकड़ी के अन्त में मन्वन्तरों के साथ है। ।१५। फिर उस कल्प के क्षीण हो जाने पर और दाह काल के उपस्थित होता है। उस समय में तब जो वैमानिक देव हैं वे थे ।१६। वे नक्षत्र-ग्रह और नारायण तथा चन्द्र सूर्य आदिक हैं। वे सब अट्ठाईस हैं। सुकृतात्माओं की करोड़ों की संख्या है अर्थात् जिन्होंने सुकृत् किया है उन्हीं की करोड़ों संख्या है ।१७। जिस प्रकार से एक मन्वन्तर में तथा चौदहों में वे तीन करोड़ थे तथा बानवे करोड़ थे ।१८। इसके अनन्तर अर्थात् विमानों में रहने वाले देवगण कहे गये हैं ।१९। इसके अनन्तर आकाश में दिवलोक में चौदह मन्वन्तरों में थे। उनमें देवगण–पितृगण–ऋषिगण तथा अमृत के पान करने वाले थे ।२०। उनके अनुचर हैं, उनकी पत्नियाँ हैं और उनके पुत्र भी होते हैं। उस काल में आकाश में सुरगण वर्णों और आश्रमों से अतिरिक्त थे। ।२१। उस काल में वस्तुओं से परिपूर्ण प्राप्त होने पर उन-उन सायुज्य में गमन करने वालों के साथ में थे। आभूत संप्लव अर्थात् महा प्रलय के प्राप्त होने पर वे तुल्य निष्ठा वाले हुए थे ।२२।

ततस्तेऽवश्यभावित्वाद् बुद्ध्वाः पर्यायमात्मनः।
त्रैलोक्यवासिनो देवा इह तानाभिमानिकः ।।२३
स्थितिकाले तदा पूर्ण आसन्ने पश्चिमोत्तरे।
कल्पावसानिका देवास्तस्मिन्प्राप्ते ह्युपप्लवे ।।२४
तदोत्सुका विषादेन त्यक्तस्थानानि भागशः।
महर्लोकाय संविग्नास्ततस्ते दधिरे मनः ।।२५
ते युक्तानुपपद्यंते महतीं च शरीरिके।
विशुद्धिबहुलाः सर्वे मानसीं सिद्धिमास्थिता ।।२६
तं कल्पवासिभिः सार्द्धं महानासादितस्तदा।
ब्राह्मणैः क्षत्रियैर्वैश्यैस्तद्भक्तैश्चापरैर्जनैः ।।२७
गत्वा तु ते महर्लोकं देवसंघाश्चतुर्दश।
ततस्ते जनलोकाय सोद्वेगा दधिरे मनः ।।२८

इसके उपरान्त वे तान के अभिमानी देवगण जो त्रैलोक्य के निवासी थे यहाँ पर आत्मा की बुद्धि के अवश्य भावी होने से थे ।२३। उस काल में

स्थिति का समय पूर्ण हो चुका था और पश्चिमोत्तर में आसन्न था। जो देव कल्प में अवसान प्राप्त होने वाले थे वे उस उपप्लव को प्राप्त हुआ देखने वाले थे।२४। उस अवसर में उत्सुक हुए और विषाद से भागों में स्थानों को व्यक्त करके फिर उन्होंने सविग्न होते हुए अयन भाग महर्लोक के लिए बनाया था।२५। वे युक्तों को उपपन्न होते हैं और शरीर में महती को प्राप्त होते हैं वे सब प्रचर विशुद्धि से समन्वित थे तथा मानसी सिद्धि में समास्थित हुए थे।२६। उस समय में उन कल्पवासियों के साथ महान आसादित हुआ था। उनके साथ में गमन करने वाले ब्राह्मण—क्षत्रिय—वैश्य और अपरजन भी थे। वे चौदह देवों के संघ महर्लोक में प्राप्त हो गये थे। फिर उस महर्लोक से गमन करके बड़े उद्वेग के सहित उन्होंने अपना मन जनलोक में जाने के लिए किया था।२७-२८।

एतेन क्रमयोगेन ययुस्ते कल्पवासिनः।
एवं देवयुगानां तु सहस्राणि परस्परम् ॥२९
विशुद्धिबहुलाः सर्वे मानसीं सिद्धिमास्थिताः।
तैः कल्पवासिभिः सार्द्धं जन आसादितस्तु वै ॥३०
तत्र कल्पान्दश स्थित्वा सत्यं गच्छंति वै पुनः।
गत्वा ते ब्रह्मलोकं वै अपरावर्तिनीं गतिम् ॥३१
आधिपत्यं विमाने वै ऐश्वर्येण तु तत्समाः।
भवंति ब्रह्मणा तुल्या रूपेण विषयेण च ॥३२
तत्र ते ह्यवतिष्ठंते प्रीतियुक्ताश्च संयमान्।
आनंदं ब्रह्मणः प्राप्य मुच्यन्ते ब्रह्मणा सह ॥३३
अवश्यभाविनार्थेन प्राकृतेनैव ते स्वयम्।
मानार्चनाभिः संबद्धास्तदा तत्कालभाविताः ॥३४
स्वपतो बुद्धिपूर्वं तु बोधो भवति वै यथा।
तथा तु भावितो सेवां तथानंदः प्रवर्तते ॥३५

इसी क्रम के योग से वे कल्पवासी चले गये थे। इस प्रकार से सहस्रों ही देवों के युग थे।२९। सभी विशुद्धि की प्रचुरता वाले थे और अतएव वे सब मानसी सिद्धि में समास्थित थे। उनने कल्प वासियों के साथ जनलोक

को प्राप्त किया था ।३०। वहाँ जनलोक में दश कल्पों तक स्थित होकर फिर सत्य लोक को चले जाते हैं । वे ब्रह्मलोक को प्राप्त करके अपरावर्त्तिनी गति को प्राप्त हो जाते हैं ।३१। वे विमान में आधिपत्य पाकर ऐश्वर्य से उनके ही समान हो जाया करते हैं । फिर वे ब्रह्माजी के ही तुल्य हो जाया करते हैं और रूप तथा विषय के द्वारा ब्रह्मा के समान हैं ।३२। वहाँ पर वे प्रीति से युक्त होते हुए संयमों को अवस्थित हुआ करते हैं । वहाँ पर ब्रह्मा का आनन्द प्राप्त करके ब्रह्माजी के ही साथ मुक्ति को प्राप्त हो जाया करते हैं ।३३। प्राकृत अवश्य भावी अर्थ से वे स्वयं उस समय में उसका से भावित होते हुए सम्मान और अर्चन आदि के द्वारा सम्बद्ध होते हैं ।३४। जिस प्रकार से बुद्धिपूर्वक स्वपन करते हुए बोध होता है उसी भाँति सेवा के भावित होने पर वैसा ही आनन्द प्रवृत्त होता है ।३५।

प्रत्याहारैस्तु भेदानां येषां भिन्नानि शुष्मिणाम् ।
तैः सार्द्धं वर्द्धते तेषां कार्याणि करणानि च ॥३६
नानात्वदर्शिनां तेषां ब्रह्मलोकनिवासिनाम् ।
विनिवृत्ताधिकाराणां स्वेन धर्मेण तिष्ठताम् ॥३७
ते तुल्यलक्षणाः सिद्धाः शुद्धात्मानो निरंजनाः ।
प्राकृते करणोपेताः स्वात्मन्येव व्यवस्थिताः ॥३८
प्रख्यापयित्वा चात्मानं प्रकृतिस्त्वेषु तत्त्वतः ।
पुरुषान्यबहुत्वेन प्रतीता तत्प्रवर्तते ॥३९
प्रवर्तिते पुनः सर्गे तेषां साकारणात्मनाम् ।
संयोगे प्रकृतिर्ज्ञेया मुक्तानां तत्त्वदर्शिनाम् ॥४०
तत्रोपवर्गिणां तेषां न पुनर्मार्गगामिनाम् ।
अभावः पुनरुत्पन्नः शांतानामर्चिषामिव ॥४१
ततस्तेषु गतेषूर्ध्वं त्रैलोक्येषु महात्मसु ।
एतैः सार्द्धं महर्लोकस्तदानासादितस्तु वै ॥४२

जिन शुष्मियों के भेदों के प्रत्याहारों से भिन्न हैं उनके कार्य और करण वर्धित होते हैं ।३६। वे नानात्व के देखने वाले और ब्रह्मलोक के निवास करने वाले हैं । निवृत्त अधिकारों वाले और अपने धर्म में स्थित

रहने वाले हैं ।३७। वे समान लक्षणों वाले सिद्ध हैं शुद्ध आत्माओं वाले तथा निरञ्जन हैं । प्राकृत में वे करणों से उपेत हैं और अपनी आत्मा में ही व्यवस्थित हैं ।३८। और आत्मा को प्रख्यापित करके तात्विक रूप से यह प्रकृति अन्य पुरुषों के बहुत्व होने से प्रतीत होती हुई प्रवृत्त होती है ।३९। साकारणात्मा उनके फिर सर्ग के प्रवर्त्तित होने पर मुक्त तत्व दर्शियों के संयोग में प्रवृति जाननी चाहिए ।४०। वहाँ पर उपवर्गी और फिर मार्गगामी न होने वाले इनका पुनः शान्त अर्चियों के ही समान अभाव उत्पन्न हो गया है ।४१। इसके अनन्तर उन महान् आत्मा वाले त्रैलोकों के ऊपर की ओर गत होने पर उस समय में इनके साथ महर्लोक निश्चय ही आसादित नहीं हुआ था ।४२।

तच्छिष्या वै भविष्यंति कल्पदाह उपस्थिते ।
गंधर्वाद्याः पिशाचाश्च मानुषा ब्राह्मणादयः ।।४३
पशवः पक्षिणश्चैव स्थावराश्च सरीसृपाः ।
तिष्ठत्सु तेषु तत्कालं पृथिवीतलवासिषु ।।४४
सहस्रं यत्तु रश्मीनां स्वयमेव विभाव्यते ।
तत्सप्तरश्मयो भूत्वा एकैको जायते रविः ।।४५
क्रमेणोत्तिष्ठमानास्ते त्रींल्लोकान्प्रदहंत्युत ।
जङ्गमाः स्थावराश्चैव नद्यः सर्वे च पर्वताः ।।४६
शुष्काः पूर्वमनावृष्ट्या सूर्य्यैस्ते च प्रधूपिताः ।
तदा तु विवशाः सर्वे निर्दग्धाः सूर्यरश्मिभिः ।।४७
जङ्गमाः स्थावराश्चैव धर्माधर्मात्मकास्तु वै ।
दग्धदेहास्तदा ते तु धूतपापा युगांतरे ।।४८
ख्यातातपा विनिर्मुक्ताः शुभया चातिबंधया ।
ततस्ते ह्युपपद्यंते तुल्यरूपैर्जनैर्जनाः ।।४९

कल्पदाह के उपस्थित हो जाने पर उनके शिष्य होंगे । जो कि गन्धर्व आदि पिशाच—मानुष और ब्राह्मणादिक हैं ।४३। पशु-पक्षी-स्थावर और सरीसृप हैं । उस समय में पृथ्वी तल में निवास करने वाले उनके स्थित होने पर जो सहस्र किरणें हैं वे स्वयं ही विभावित हो जाया करती हैं । वे

सहस्रों किरणें सात किरणें होकर एक-एक किरण एक-एक सूर्य हो जाता है ।४४-४५। वे सबसे उत्थित होते हुए तीनों लोकों को प्रदग्ध कर देते हैं । उस दाह में चर प्राणी-स्थावर अर्थात् अचर और सब नदियाँ तथा समस्त पर्वत दग्ध होते हैं ।४६। पहिले वृष्टि के अभाव से सभी शुष्क हो जाते हैं और सरसता नाम मात्र को भी कहीं पर नहीं रहती है । इसके पश्चात् वे सब उक्त सूर्यों से जो अतीव प्रखर हैं प्रधूपित होते हैं । उस काल से सभी विवश होकर निर्दग्ध हो जाते हैं और सूर्यों की किरण से जल भुन जाया करते हैं ।४७। जङ्गम और स्थावर जो भी धर्म और अधर्म के स्वरूप वाले हैं, उस समय में उन सके देह प्रदाध होते हैं और अन्ययुग में उनके पाप विनष्ट होकर वे निष्पाप एवं शुद्ध हो जाते हैं ।४८। शुभ अतिबन्ध से वे ख्यातातप विनिर्मुक्त हो जाते हैं । इसके उपरान्त वे जन सब तुल्य रूप वाले जनों के ही साथ में उपपन्न हो जाते हैं ।४९।

उषित्वा रजनीं तत्र ब्रह्मणोऽव्यक्तजन्मनः ।
पुनः सर्गे भवंतीह मानसा ब्रह्मणः सुताः ॥५०
ततस्तेषूपपन्नेषु जनैस्त्रैलोक्यवासिषु ।
निर्दग्धेषु च लोकेषु तदा सूर्यैस्तु सप्तभिः ॥५१
वृष्ट्या क्षितौ प्लावितायां विजनेष्वर्णवेषु च ।
सामुद्राश्चैव मेघाश्च आपः सर्वाश्च पार्थिवाः ॥५२
शरमाणा व्रजंत्येव सलिलाख्यास्तथानुगाः ।
आगतागतिकं चैव यदा तत्सलिलं बहु ॥५३
संछाद्येमां स्थितां भूमिमर्णवाख्यं तदाभवत् ।
आभाति यस्मात् स्वाभासो भाशब्दो व्याप्तिदीप्तिषु ॥५४
सर्वतः समनुप्राप्त्या तासां चाम्भो विभाव्यते ।
तदंस्तनुते यस्मात्सर्वां पृथ्वीं समंततः ॥५५
धातुस्तनोति विस्तारे न चैतास्तनवः स्मृताः ।
शर इत्येष शीर्णे तु नानार्थो धातुरुच्यते ॥५६

फिर अव्यक्त जन्म वाले ब्रह्माजी की एक रात्रि तक वहाँ निवास करके फिर जब सृष्टि की रचना होती है उसमें वहाँ पर ब्रह्माजी के मानस

अर्थात् मन से ही समुत्पन्न पुत्र होते हैं ।५०। इसके अनन्तर जनों के साथ त्रैलोक्य के निवासी उनके उत्पन्न होने पर और उस समय में उन प्रखरतम सात सूर्यों के द्वारा समस्त लोकों के निर्दग्ध हो जाने पर ।५१। वृष्टि के धारा सम्पात से इस पृथ्वीतल के पूर्णतया प्लावित हो जाने पर, सब समुद्रों के विजन हो जाने पर सब समुद्र-मेघ और सम्पूर्ण जल और सब पार्थिव शीर्ण होते हुए सलिल के नाम पर अनुग होकर गमन किया करते हैं और आगतागतिक जिस समय में बहुत वह जल हो गया था ।५२-५३। उस समय में इस सम्पूर्ण भूमि को संच्छादित करके जो यहाँ पर स्थित थी सभी कुछ एक अर्णव नामधारी हो गया था । जिससे स्व से आभास होने वाला भी शब्द दीप्तियों में व्याप्ति आभात होती है ।५४। सभी ओर उनकी समनुप्राप्ति से जल ही विभावित होता है । उसके अन्दर जिस कारण से सभी ओर से सम्पूर्ण पृथ्वी को विस्तृत करता है ।५५। विस्तार में धातु विस्तार किया करती है और ये तनु नहीं कहे गये हैं । शीर्ण होने पर शर यह नाना अर्थों वाला धातु कहा जाया करता है ।५६।

एकार्णवे भवत्यापो न शीघ्रास्तेन ते नराः ।
तस्मिन् युगसहस्रान्ते संस्थिते ब्रह्मणोऽहनि ।।५७

तावत्काले रजन्यां च वर्तंत्यां सलिलात्मना ।
ततस्तु सलिले तस्मिन्नष्टाग्नौ पृथ्वीतले ।।५८

प्रशांतवातेऽन्धकारे निरालोके समंततः ।
एतेनाधिष्ठितं हीदं ब्रह्मा स पुरुषः प्रभुः ।।५९

विभागमस्य लोकस्य प्रकर्तुं पुनरैच्छत् ।
एकार्णवे तदा तस्मिन्नष्टे स्थावरजंगमे ।।६०
तदा भवति स ब्रह्मा सहस्राक्षः सहस्रपात् ।
सहस्रशीर्षा पुरुषो रुक्मवर्णो जितेंद्रियः ।
इमं चोदाहरंत्यत्र श्लोकं नारायणं प्रति ।।६१

आपो नारास्तत्तनव इत्यर्था अनुशुश्रुम ।
आपूर्यमाणास्तत्रास्तो तेन नारायणः स्मृतः ।।६२

सहस्रशीर्षा सुमनाः सहस्रपात् सहस्रचक्षुर्वदनः सहस्रकृत् ।
सहस्रबाहुः प्रथमः प्रजापतिस्त्रयीमयोऽयं पुरुषो निरुच्यते ।।६३

एकमात्र अर्णव के होने पर आप शीघ्र नहीं है उससे वे नर हैं। उस एक सहस्र युगों के अन्त में जबकि ब्रह्माजी का दिन संस्थित होता है।५७। उतने समय में सलिल के स्वरूप से रजनी के वर्तमान होने का अवसर रहता है। फिर उस जल से इस पृथ्वी तल में अग्नि तल में अग्नि बिल्कुल नष्ट हो जाया करती है।५८। उस समय में वायु एकदम प्रशान्त होती है और सभी ओर घोर अन्धकार रहता है तथा सभी ओर आलोक का अभाव रहता है। यह सब इसके ही द्वारा अधिष्ठित रहता है और ब्रह्माजी ही वह प्रभु पुरुष होते हैं।५९। फिर उन्होंने इस लोक के विभाग करने की इच्छा की थी जिस समय में सभी जङ्गम और स्थावर बिनष्ट होचुके थे और केवल एक ही अर्णव सभी ओर था।६०। उस अवसर से वे ब्रह्माजी सहस्रों शिरों वाले और सहस्रों पादों वाले होते हैं। वे सहस्रों शिरों वाले पुरुष सुवर्ण के समान वर्ण वाले थे और सब इन्द्रियों पर विजय प्राप्त करने वाले थे। भगवान् नारायण के प्रति यहाँ पर इस श्लोक का उदाहरण दिया करते हैं।६१। आप (जल) जो उसके तनु है—यह अर्थ सुनते हैं। वहाँ पर वे आपूर्यं माण हैं—इसलिए नारायण कहे गये हैं।६२। सहस्र शीर्षों से संयुत सुन्दर मन वाले—सहस्र चरणों से युक्त—सहस्र चक्षु और मुखों वाले सहस्र कृत हैं। सहस्र बाहुओं वाले हैं—ऐसे प्रथम प्रजापति हैं। यह पुरुष त्रयी से परिपूर्ण है—ऐसा कहा जाता है।६३।

आदित्यवर्णो भुवनस्य गोप्ता एको ह्यमूर्तः प्रथमस्त्वसौ
विराट्।
हिरण्यगर्भः पुरुषो महात्मा संपद्यते वै मनसः परस्तात् ॥६४
कल्पादौ रजसोद्रिक्तो ब्रह्मा भूत्वाऽसृजत्प्रभुः।
कल्पांते तमसोद्रिक्तः कालो भूत्वाग्रसत्पुनः ॥६५
स वै नारायणो भूत्वा सत्त्वोद्रिक्तो जलाशये।
त्रिधा विभज्य चात्मानं त्रैलोक्ये संप्रवर्त्तते ॥६६
सृजति ग्रसते चैव वीक्ष्यते च त्रिभिः स्वयम्।
एकार्णवे तदा तस्मिन्नष्टे स्थावरजंगमे ॥६७
चतुर्युगसहस्रान्ते सर्वतः स जलावृते।
ब्रह्मा नारायणाख्यस्तु स काशे च भवे स्वयम् ॥६८

चतुर्विधाः प्रजाः सर्वा ब्रह्मशक्त्या तमोवृताः ।
पश्यंति तं महर्लोके कालं सुप्तं महर्षयः ॥६९
भृग्वादयो यथोद्दिष्टास्तस्मिन् काले महर्षयः ।
सत्यादयस्तथा त्वष्टौ कल्पे लीने महर्षयः ।
तदा विवर्त्यमानैस्तैर्महत्परिगतं पराम् ॥७०

आदित्य के समान वर्ण से युक्त—इस भुवन के रक्षक एक—अमूर्त अर्थात् मूर्त्ति से शून्य यह प्रथम विराट् हैं । हिरण्यगर्भ–महान् आत्मा वाला पुरुष मन से परे सम्पन्न होता है ।६४। कल्प के आदि में रजो गुण से उद्रिक्त होकर प्रभु ब्रह्मा ने सृजन किया था । कल्प का जब अवसान होता है तो उस समय में तमोगुण के उद्रेक से समन्वित काल होकर फिर इस सम्पूर्ण सृष्टि का ग्रसन किया था ।६५। वही फिर भगवान् सत्व के उद्रेक से युक्त नारायण होकर जलाशय में विराजमान रहते हैं । आपने आपको तीन स्वरूपों में विभक्त करके भगवान् तीनों लोकों में सम्प्रवृत्त हुआ करते हैं ।६६। सृजन करते हैं—ग्रसन करते हैं और स्वयं ही तीन रूपों से वीक्षण करते हैं । उस समय में समस्त स्थावर और जङ्गम के नष्ट हो जाने पर जब एकमात्र अर्णव ही विद्यमान रहा करता है ।६७। एक सहस्र चारों युगों की चौकड़ियों का जब अन्त होता है उस समय में वह सभी ओर जल से समावृत होते हैं । उस समय में नारायण नामक वह ब्रह्मा इससे सार में स्वयं प्रकाशित रहते हैं ।६८। सब चारों प्रकार की प्रजा ब्रह्मा की शक्ति से तम से आवृत होती है । महर्षिगण उसको महर्लोक में सोये हुए काल को देखते हैं ।६९। उस काल में यथोद्दिष्ट भृगु आदि महर्षिगण है । उस समय में उनके विवर्त्यमानों के द्वारा महत परिगत होता है ।७०।

गत्यर्थादृषतेर्धातोर्नामनिष्पत्तिरुच्यते ।
यस्मादृषति सत्त्वेन महत्तस्मान्महर्षयः ॥७१
महर्लोकस्थितैर्दृष्टः कालः सुप्तस्तदा च तैः ।
सत्त्वाद्याः सप्त ये त्वासन्कल्पेऽतीते महर्षयः ॥७२
एवं ब्रह्मा तासु तासु रजनीषु सहस्रशः ।
दृष्टवन्तस्तदानीताः कालं सुप्तं महर्षयः ॥७३

कल्पस्यादौ सुबहुला यस्मात्संस्थाश्चतुर्दश ।
कल्पयामास वै ब्रह्मा तस्मात्कल्पो निरुच्यते ।।७४
स सृष्टा सर्वभूतानां कल्पादिषु पुनः पुनः ।
व्यक्ताव्यक्तो महादेवस्यस्य सर्वमिदं जगत् ।।७५
इत्येष प्रतिसंबन्धः कीर्तितः कल्पयोर्द्वयोः ।
सांप्रतं हि तयोर्मध्ये प्रागवस्था बभूव ह ।।७६
कीर्तितस्तु समासेन पूर्वकल्पे यथातथम् ।
सांप्रतं संप्रवक्ष्यामि कल्पमेतं निबोधत: ।।७७

गति के अर्थ वाली ऋषिति धातु नाम की निष्पत्ति होती है—ऐसा कहा जाता है। जिससे ऋषिति के सत्व होने से उससे महत है अतएव महर्षि होते हैं ।७१। अहर्लोक में स्थित होते हुए उन्होंने उस समय में सोये हुए काल को देखा था। जो कल्प के व्यतीत होने पर सत्वादि सात महर्षि थे ।७२। इस प्रकार से उन-उन सहस्रों रजनीयों में उस समय में आनीत महर्षियों ने सुप्तकाल को देखा था ।७३। कल्प के आदि में जिससे सुबहुल चौदह संस्था हैं। ब्रह्माजी ने क्योंकि कल्पन किया था इसी कारण से कल्प कहा जाता है ।७४। कल्पों के आदि काल में पुनः पुनः वही समस्त भूतों का सृजन करने वाला है। महादेव व्यक्त है। इसका ही यह सम्पूर्ण जगत है ।७५। वह दोनों कल्पों का प्रति सम्बन्ध कर दिया गया है। इस समय में उन दोनों के मध्य में पूर्व की अवस्था हुई थी ।७६। पूर्व में होने वाले कल्प में ठीक-ठीक कह दिया गया है। इस समय में इस कल्प के विषय में बतलाऊँगा, उसको समझ लीजिए ।७७।

—×—

।। पृथ्वी व्यायाम विस्तरः ।।

सूत उवाच—एवं प्रजासन्निवेशं श्रुत्वा वै शांशपायनिः ।
पप्रच्छ नियतं सूतं पृथिव्युदधिविस्तरम् ।।१
कति द्वीपा समुद्रा वा पर्वता वा कति स्मृताः ।
कियंति चैव वर्षाणि तेषु नद्यश्च काः स्मृताः ।।२
महाभूतप्रमाणं च लोकालोकं तथैव च ।

पर्यायं परिमाणं च गति चन्द्रार्कयोस्तथा ।
एतत्प्रब्रूहि नः सर्वं विस्तरेण यथार्थतः ॥३
सूत उवाच–हंत वोऽहं प्रवक्ष्यामि पृथिव्यायामविस्तरम् ॥४
संख्यां चैव समुद्राणां द्वीपानां चैव विस्तरम् ।
द्वीपभेदसहस्राणि सप्तस्वन्तर्गतानि च ॥५
न शक्यंते क्रमेणेह वक्तुं यैः सततं जगत ।
सप्त द्वीपान्प्रवक्ष्यामि चन्द्रादित्यग्रहैः सहः ॥६
तेषां मनुष्यास्तर्केण प्रमाणानि प्रचक्षते ।
अचित्याः खलु ये भावा न तांस्तर्केण साधयेत् ॥७

श्री सूतजी ने कहा—इस रीति से शांशपायनि ने प्रजा के सन्निवेश का श्रवण करके फिर उसने श्री सूतजी ने नियत रूप से पृथिवी और उदधि के विस्तार के विषय में पूछा था ।१। द्वीप कितने हैं, समुद्र अथवा पर्वत कितने बताये गये हैं ? कितने वर्ष हैं और उन बर्षों में नदियाँ कौन-कौन बतायी गयी हैं ? ।२। महाभूतों का क्या प्रमाण है तथा लोकालोक प्रमाण क्या है ? चन्द्र और सूर्य का पर्याय-परिमाण और गति क्या हैं ? हे भगवान् ! यह सब आप विस्तार पूर्वक यथार्थ रूप से हमको बतलाइए ।३। श्री सूतजी ने कहा—हर्ष की बात है, मैं आपके सामने पृथ्वी का आयाम और विस्तार बतलाऊँगा ।४। समुद्रों की संख्या और द्वीपों का विस्तार भी बतलाऊँगा । यों तो द्वीपों के सहस्रों भेद होते हैं किन्तु वे भेद सात द्वीपों के सहस्रों भेद होते हैं किन्तु वे सभी भेद सात द्वीपों के ही अन्तर्गत है ।५। जिनके द्वारा निरन्तर यह जगत है वे सब क्रम से यहाँ पर नहीं बताये जा सकते हैं । मैं इस समय में तो आपके समक्ष में सात द्वीपों को ही बताऊँगा और उनके साथ चन्द्र-सूर्य और ग्रहों का वर्णन करूँगा ।६। मानव उनका प्रमाण तर्क के द्वारा कहा करते हैं । किन्तु निश्चित रूप से जो भाव चिन्तन करने के योग्य नहीं हैं उनका तर्क के सहारे साधन कभी नहीं करना चाहिए ।७।

प्रकृतिभ्यः परं यच्च तदचिन्त्यं प्रचक्षते ।
नववर्षं प्रवक्ष्यामि जंबूद्वीपं यथातथम् ॥८

विस्तरान्मण्डलाच्चैव योजनैस्तन्निबोधत ।
शतमेकं सहस्राणां योजनाग्रात्समंततः ।।९
नानाजनपदाकीर्णः पुरैश्च विविधैश्शुभैः ।
सिद्धचारणसंकीर्णः पर्वतैरुपशोभितः ।।१०
सर्वधातुनिबद्धैश्च शिलाजालसमुद्भवैः ।
पर्वतप्रभवाभिश्च नदीभिः सर्वतस्ततः ।।११
जंबूद्वीपः पृथुः श्रीमान् सर्वतः पृथुमंडलः ।
नवभिश्चावृतः सर्वो भुवनैर्भूतभावनैः ।।१२
लवणेन समुद्रेण सर्वतः परिवारितः ।
जंबूद्वीपस्य विस्तारात् समेन तु समंततः ।।१३
प्रागायताः सुपर्वाणः षडिमे वर्षपर्वताः ।
अवगाढा ह्युभयतः समुद्रौ पूर्वपश्चिमौ ।।१४

जो प्रकृतियों से परे हैं वही चिन्तन न करने के योग्य नहीं है—ऐसा कहते हैं। नौ वर्षों से समन्वित जम्बू द्वीप को यथार्थ रूप से बतलाऊँगा ।८। उसको विस्तार से और मण्डल से योजनों के द्वारा समझ लीजिए। योजनाग्र से सभी ओर एक सौ सहस्र है। यह अनेक जनपदों से घिरा हुआ है और विविध परम शुभ नगरों से समन्वित है। यह सिद्धगण और चारणों से समाकीर्ण है और अनेक पर्वतों से उपशोभित है ।९-१०। शिलाओं के समुदायों से समुत्पन्न समस्त धातुओं से निबद्ध यह द्वीप है। इसके सभी ओर अनेक नदियाँ हैं जो पर्वत से उद्भूत हुई हैं ।११। यह जम्बूद्वीप बहुत विशाल है। श्री सम्पन्न है तथा इसका मण्डल भी महान् हैं। भूतों के करने वाले नौ भुवनों से यह सम्पूर्ण समावृत है ।१२। इसके चारों ओर क्षार समुद्र है जिसका भी विस्तार जम्बू द्वीप के विस्तार के ही समान है ।१३। प्रागायत सुपर्वा ये छै वर्ष पर्वत हैं जो दोनों ओर पूर्व और पश्चिम समुद्रों से अवगाढ हैं ।१४।

हिमप्रायश्च हिमवान् हेमकूटश्च हेमवान् ।
सर्वर्तुषु सुखश्चापि निषधः पर्वतो महान् ।।१५
चतुर्वर्णश्च सौवर्णो मेरुश्चारुतमः स्मृतः ।

द्वात्रिंशच्च सहस्राणि विस्तीर्णः स च मूर्द्धनि ॥१६

वृत्ताकृतिप्रमाणश्च चतुरस्रः समुच्छ्रितः ।
नानावर्णास्तु पार्श्वेषु प्रजापतिगुणान्वितः ॥१७

नाभिबंधनसंभूतो ब्रह्मणोऽव्यक्तजन्मनः ।
पूर्वतः श्वेतवर्णश्च ब्राह्मणस्तस्य तेन तत् ॥१८

पार्श्वमुत्तरतस्तस्य रक्तवर्णः स्वभावतः ।
तेनास्य क्षत्रभावस्तु मेरोर्नानार्थकारणात् ॥१९

पीतश्च दक्षिणेनासौ तेन वैश्यत्वमिष्यते ।
भृंगपत्रनिभश्चापि पश्चिमेन समाचितः ॥२०

तेनास्य शूद्रभावः स्यादिति वर्णाः प्रकार्त्तिताः ।
वृत्तः स्वभावतः प्रोक्तो वर्णतः परिमाणतः ॥२१

हिमवान् गिरि में प्रायः हिम समूह होता है और हेमकूट पर्वत हेम से संयुत है। निषध एक महान पर्वत है जो सभी ऋतुओं में सुखदायी होता है।१५। मरु पर्वत चार वर्णों वाला है और सुवर्ण से युक्त है यह अधिक सुन्दर कहा गया है और मूर्धा में बत्तीस सहस्र योजनों के विस्तार वाला है।१६। यह वृत्त आकृति और प्रमाण वाला है तथा चौकोर और समुच्छित अर्थात् ऊँचा है। इसके पार्श्व भागों में अनेक वर्ण हैं तथा यह प्रजापति के गुणों से संयुत है।१७। अव्यक्त जन्म वाले ब्रह्माजी के नाभिबन्धन से यह समुत्पन्न हुआ है। उसके पूर्व की ओर यह श्वेत वर्ण वाला है इससे ब्राह्मण है।१८। उत्तर की ओर पार्श्वभाग उसका स्वभाव से ही रक्तवर्ण है। इस कारण से मेरु के अनेक अर्थ कारण से इसका क्षत्र भाव है।१९। यह दक्षिण दिशा की ओर पीत है इससे इसका वैश्यभाव अभीष्ट होता है। पश्चिम की ओर पीत है इससे इसका वैश्यभाव अभीष्ट होता है। पश्चिम की ओर यह भृङ्गपत्र के सदृश समाचित है।२०। इस कारण से इसका शूद्रभाव होता है—इस तरह से इसके चार वर्ण कहे गये हैं। यह स्वभाव से वृत्त कहा है और वर्ण तथा परिमाण से भी बताया गया है।२१।

नीलश्च वैदूर्यमयः श्वेतः शुक्लो हिरण्मयः ।
मयूरबर्हवर्णस्तु शातकौम्भश्च शृंगवान् ॥२२

एते पर्वतराजानः सिद्धचारणसेविताः ।
तेषामंतरविष्कंभो नवसाहस्र उच्यते ॥२३
मध्ये त्विलावृतं नाम महामेरोः समंततः ।
नवैवं तु सहस्राणि विस्तीर्णं सर्वतस्तु तत् ॥२४
मध्ये तस्य महामेरुर्विधूम इव पावकः ।
वेद्यर्द्धं दक्षिणं मेरोरुत्तरार्द्धं तथोत्तरम् ॥२५
वर्षाणि यानि षट् चैव तेषां ये वर्षपर्वताः ।
द्वे द्वे सहस्रे विस्तीर्णा योजनानां समुच्छ्रयात् ॥२६
जंबूद्वीपस्य विस्तारात्तेषामायाम उच्यते ।
योजनानां सहस्राणि शतं द्वावायतौ गिरी ॥२७
नीलश्च निषधश्चैव ताभ्यां हीनास्तु ये परे ।
श्वेतश्च हेमकूटश्च हिमवाञ्छृंगवांस्तथा ॥२८

नील—वैदूर्यमय—श्वेत—हिरण्मय—मोर के बर्हण के वर्ण वाला और शातकौम्भ तथा शृङ्गवान् है ।२२। ये सब पर्वतों के शिरोमणि राजा पर्वत हैं जो कि सिद्धों और चारणों के द्वारा सेवित रहा करते हैं अर्थात् इनमें सिद्ध और चारण निवास किया करते हैं । उनका अन्तर विष्कम्भ नौ सहस्र योजन कहा जाता है ।२३। मध्य में इलावृत नाम वाला गिरि है जो महामेरु के समंतम है । यह भी इसी प्रकार से नौ सहस्र ही सब ओर से विस्तार वाला है ।२४। इसके मध्य में महा है जो धूम से रहित अग्नि के समान देदीप्यमान है । मेरु के वेदी का अर्ध दक्षिण है तथा उत्तर अर्ध भाग उत्तर है ।२५। जो छै वर्ण हैं उनके जो वर्ष पर्वत हैं ऊँचाई से दो-दो सहस्र योजन विस्तीर्ण हैं ।२६। जम्बू द्वीप के विस्तार से उनका आयाम कहा जाता है । दो गिरि सौ सहस्र योजन आयत हैं ।२७। नील और निषध उन दोनों से जो दूसरे हैं वे हीन हैं । श्वेत—हेमकूट—हिमवान् तथा शृङ्गवान् हैं ।२८।

नवती द्वे अशीती द्वे सहस्राण्यायतास्तु तैः ।
तेषां मध्ये जनपदास्तानि वर्षाणि सप्त वै ॥२९
प्रपातविषमैस्तैस्तु पर्वतैरावृतानि तु ।

संततानि नदीभेदैरगम्यानि परस्परम् ॥३०
वसंति तेषु सत्त्वानि नानाजातीनि सर्वशः ।
इदं हैमवतं वर्षं भारतं नाम विश्रुतम् ॥३१
हेमकूटं परं ह्यस्मान्नाम्ना किंपुरुषं स्मृतम् ।
नैषधं हेमकूटात्तु हरिवर्षं तदुच्यते ॥३२
हरिवर्षात्परं चापि मेरोश्च तदिलावृतम् ।
इलावृतात्परं नीलं रम्यकं नाम विश्रुतम् ॥३३
रम्यकात्परतः श्वेतं विश्रुतं तद्धिरण्मयम् ।
हिरण्मयात्परं चैव शृंगवत्तः कुरु स्मृतम् ॥३४
धनुः संस्थे तु विज्ञेये द्वे वर्षे दक्षिणोत्तरे ।
दीर्घाणि तत्र चत्वारि मध्यमं तदिलावृतम् ॥३५

उनसे दो सहस्र नब्बे और दो सहस्र अस्सी आयत हैं। उनके मध्य में जनपद हैं जो सात वर्ष है ।२९। उन प्रपातों से विषम पर्वतों से जो हैं। निरन्तर बहने वाली नदियों के बहुत से भेदों से जो परस्पर में गमन करने के अयोग्य है ।३०। उनमें अनेक जातियों वाले जीव निवास करते हैं और सभी ओर जो वहाँ रहा करते हैं। यह हैमवत वर्ष है जो भारत---इस नाम से प्रसिद्ध है ।३१। इससे आगे हेमकूट है जो नाम से किम्पुरुष कहा गया है। हेमकूट से आगे नैषध है जो हरि वर्ष कहा जाया करता है ।३२। हरिवर्ष से परे मेरु का वह इलावृत है। इलावृत से आगे नील है जो रम्यक नाम से विख्यात है ।३३। रम्यक से आगे श्वेत है जो हिरण्मय नाम से विश्रुत है। हिरण्मय से आगे शृङ्गवत् हैं जो कुरु कहा गया है ।३४। दक्षिण और उत्तर दिशा में धनुःसंस्थ दो वर्ष जानने चाहिए। वहाँ पर चार दीर्घ है जो मध्यम है वह इलावृत है ।३५।

अर्वाक् च निषधस्याथ वेद्यर्द्धं दक्षिणं स्मृतम् ।
परं नीलवतो यच्च वेद्यर्द्धं तु तदुत्तरम् ॥३६
वेद्यर्द्धे दक्षिणे त्रीणि त्रीणि वर्षाणि चोत्तरे ।
तयोर्मध्ये तु विज्ञेयो मेरुर्मध्य इलावृतम् ॥३७
दक्षिणेन तु नीलस्य निषधस्योत्तरेण तु ।

उदगायतो महाशैलो माल्यवान्नाम नामतः ।।३८
योजनानां सहस्र ं त ु आनील निषधायतः ।
आयामतश्चत ु स्त्रिंशत्सहस्राणि प्रकीर्तितः ।।३९
तस्य प्रतीच्यां विज्ञ ेयः पर्वतो गंधमादनः ।
आयातमतोऽथ विस्तारान्माल्यवानिति विश्र ु तः ।।४०
परिमंडलयोर्मेरुर्मध्ये कनकपर्वतः ।
चतुर्वर्णः स सौवर्णः चतुरस्रः समुच्छ्रितः ।।४१
सुमेरुः शुशुभे शुभ्रो राजवत्समधिष्ठितः ।
तरुणादित्यवर्णाभो विधूम इव पावकः ।।४२

इसके अनन्तर निषध के नीचे वेदी के अर्धभाग दक्षिण कहा गया है। नीलवान् है और जो वेद्यर्ध है वह उत्तर है।३६। वेद्यर्ध दक्षिण और उत्तर में तीन-तीन वर्ष है। उन दोनों के मध्य में मेरु जानना चाहिए और मध्य में इलावृत है।३७। नील के दक्षिण दिशा की ओर और निषध की उत्तर की ओर—उत्तर की ओर आयत एक महान् शैल है जो नाम से माल्यवान कहा जाता है।३८। एक सहस्र योजन नील और निषध तक आयत है और आयाम से यह चौबीस सहस्र योजन कहा गया है।३९। इसके पश्चिम में गन्धमादन नामक पर्वत जानने के योग्य है। आयाम (चौड़ाई) और विस्तार से माल्यवान्—इस नाम से यह प्रसिद्ध है।४०। परिमण्डलों के मध्य में मेरु पर्वत है जो कनक पर्वत है। वह चार वर्णों वाला और सुवर्ण का तथा चतुरस्र अर्थात् चौकोर समुच्छ्रित है।४१। सुमेरु शोभाशाली होता था जो पास शुभ्र है और एक राजा के ही समान समधिष्ठित रहता है। इसके वर्ण की आभा तरुण सूर्य के ही समान है तथा बिना धुँआ वाली अग्नि के तुल्य है।४२।

योजनानां सहस्राणि चतुरशीतिरुच्छ्रितः ।
प्रविष्टः षोडशाधस्ताद्विस्तृतः षोडशैव तु ।।४३
शरावसंस्थितत्वात्तु द्वात्रिंशन्मूर्ध्नि विस्तृतः ।
विस्ताराच्त्रिगुणस्तस्य परिणाहः समंततः ।।४४
मंडलेन प्रमाणेन त्र्यस्र मानं तदिष्यते ।

चत्वारिंशत्सहस्राणि योजनानां समंततः ॥४५
अष्टाभिरधिकानि स्युस्त्र्यस्रे मानं प्रकीर्त्तितम् ।
चतुरस्रेण मानेन परिणाहः समंततः ॥४६
चतुःषष्टिसहस्राणि योजनानां विधीयते ।
स पर्वतो महादिव्यो दिव्यौषधिसमन्वितः ॥४७
भुवनैरावृतः सर्वो जातरूपमयैः शुभैः ।
तत्र देवगणाः सर्वे गंधर्वोरगराक्षसाः ॥४८
शैलराजे प्रदृश्यंते शुभाश्चाप्सरसां गणाः ।
स तु मेरुः परिवृतो भुवनैर्भूतभावनैः ॥४९

यह चौरासी सहस्र योजन ऊँचा है। एक योजन चार कोस का होता है। सोलह योजन नीचे की ओर प्रविष्ट है और सोलह ही योजन विस्तार वाला है।४३। शराव संस्थित होने से बत्तीस योजन मूर्धा में विस्तृत है। विस्तार मे सभी ओर उसका तिगुना परिणाम है।४४। मण्डल प्रमाण से उसका मान त्र्यस्र अभीष्ट होता है। सब ओर चौवालीस सहस्र योजन है।४५। त्र्यस्र में अर्थात् तीनों ओर में उसका मान आठ अधिक योजन कहा गया है। सभी ओर चतुरस्र मान से परिणाम होता है।४६। चौंसठ सहस्र योजन कहा जाता है। वह पर्वत बहुत ही अधिक दिव्य है और दिव्य औषधियों से समन्वित है।४७। यह सम्पूर्ण सुवर्णमय परम शुभ भुवनों से घिरा हुआ है। वहाँ पर समस्त देवों के गण—गन्धर्व—और राक्षस निवास किया करते हैं।४८। उस शैलों के राजा के ऊपर शुभ अप्सराओं के समुदाय भी दिखलाई दिया करते हैं। वह मेरु पर्वत भूतों के भावन भुवनों से परिवृत रहा करता है।४९।

चत्वारो यस्य देशा वै चतुः पार्श्वेष्वधिष्ठिताः ।
भद्राश्वा भरताश्चैव केतुमालाश्च पश्चिमाः ॥५०
उत्तराः कुरवश्चैव कृतपुण्यप्रतिश्रयाः ।
गंधमादनपार्श्वे तु परैषाऽपरगंडिका ॥५१
सर्वर्त्तुरमणीया च नित्यं प्रमुदिता शिवा ।
द्वात्रिंशत्तु सहस्राणि योजनैः पूर्वपश्चिमात् ॥५२

आयामतश्चतुस्त्रिंशत्सहस्राणि प्रमाणतः ।
तत्र ते शुभकर्माणः केतुमालाः प्रतिष्ठिताः ॥५३
तत्र काला नराः सर्वे महासत्त्वा महाबलाः ।
स्त्रियश्चोत्पलपत्राभाः सर्वास्ताः प्रियदर्शनाः ॥५४
तत्र दिव्यो महावृक्षः पनसः षड्रसाश्रयः ।
ईश्वरो ब्रह्मणः पुत्रः कामचारी मनोजवः ॥५५
तस्य पीत्वा फलरसं जीवंति च समायुतम् ।
पार्श्वे माल्यवतश्चापि पूर्वेऽपूर्वा तु गंडिका ॥५६

जिसके चार देश हैं जो चारों पार्श्वों में समधिष्ठित हैं । जिनके नाम भद्राश्व—भरत—केतुमाल और पश्चिम है ।५०। उत्तर और कुरु कृतपुण्य प्रतिश्रय हैं । गन्धमादन के पार्श्व में तो यह पर अपर गण्डिका है ।५१। ये सभी ऋतुओं में परम रमणीय हैं और नित्य ही प्रमुदित तथा शिव हैं । पूर्व और पश्चिम से बत्तीस सहस्र योजनों से युक्त हैं ।५२। प्रमाण से इनका आयाम चौंतीस सहस्र योजनों वाला है । वहाँ पर वे परम शुभ कर्मों वाले केतुमाल देश प्रतिष्ठित हैं ।५३। वहाँ पर जब नर काल हैं जो महान् सत्व वाले और महान् बल से सम्पन्न हैं और वहाँ की स्त्रियाँ कमलदल की आभा वाली तथा देखने में बहुत प्रिय लगती हैं ।५४। वहाँ पर एक बहुत ही उत्तम पनस का महान वृक्ष है जिसमें छैरस विद्यमान रहा करते हैं । उसकी स्वामी ब्रह्मा का पुत्र कामना से चरण करने वाले मनोजव है ।५५। वहाँ पर समायुत काल पर्यन्त उसके फलों का रस का पान करके प्राणी जीवित रहा करते हैं । पूर्व में माल्यवान् के पार्श्व में एक अपूर्व गण्डिका है ।५६।

—×—

॥ भारतदेश ॥

सूत उवाच—एवमेव निसर्गो वै वर्षाणां भारते शुभे ।
दृष्टः परमतत्त्वज्ञैर्भूय किं वर्णयामि वः ॥१
ऋषिरुवाच—यदिदं भारतं वर्षं यस्मिन्स्वायंभुवादयः ।
चतुर्दशैते मनवः प्रसासर्गेऽभवन्पुनः ॥२

एतद्वेदितुमिच्छामस्तन्नो निगद सत्तम ।
एतच्छ्रुत्वचस्तेषामब्रवीद्रोमहर्षणः ॥३
अत्र वो वर्णयिष्यामि वर्षेऽस्मिन् भारते प्रजाः ।
इद तु मध्यमं चित्रं शुभाशुभफलोदयम् ॥४
उत्तरं यत्समुद्रस्य हिमवद्दक्षिणं च यत् ।
वर्षं तद्भारतं नाम यत्रेयं भारती प्रजा ॥५
भरणाच्च प्रजानां वै मनुर्भरत उच्यते ।
निरुक्तवचनाच्चैवं वर्षं तद्भारतं स्मृतम् ॥६
इतः स्वर्गश्च मोक्षश्च मध्यश्चांतश्च गम्यते ।
न खल्वन्यत्र मर्त्यानां भूमौ कर्म विधीयते ॥७

श्रीसूतजी ने कहा—इस प्रकार से ही परम शुभ भारत में वर्षों का निसर्ग है जो कि परम तत्वों के ज्ञाताओं के द्वारा देखा गया है। अब फिर आपके सामने मैं क्या वर्णन करूँ ? ।१। ऋषि ने कहा—जो यह भारतवर्ष है जिसमें ये चौदह स्वायम्भुव आदि मनुगण फिर प्रजा के सृजन करने में थे ।२। हे श्रेष्ठ पुरुषों में परमोत्तम ! हम लोग यही जानने की इच्छा करते हैं। वही आप हमारे समक्ष में वर्णन कीजिए। रोम हर्षणजी ने उन ऋषियों के इस वचन का श्रवण करके कहा था ।३। यहाँ पर इस भारतवर्ष में आप लोगों के सामने जो प्रजा हुई थी उनका मैं वर्णन करूँगा। यह तो मध्यम चित्र है जो शुभ और अशुभ फलों के उदय वाला है ।४। समुद्र के उत्तर में और हिमवान् के दक्षिण में है वह भारत नाम वाला वर्ष है जहाँ पर यह भारत की प्रजा है ।५। प्रजाओं के भरण करने से भरत मनु कहा जाया करते हैं। इसी निरुक्ति के वचन से यह वर्ष भारत—इस नाम से कहे गया है। यहाँ से स्वर्ग होता है और यहाँ से ही बारम्बार जीवन-मरण के आवागमन से मुक्त हुआ करता है और मध्य तथा अन्त का ज्ञान मनुष्यों का कर्म करने का क्षेत्र नहीं है अर्थात् कर्म करने की भूमि यही देश है ।६-७।

भारतस्यास्य वर्षस्य नव भेदान्निबोधत ।
समुद्रांतरिता ज्ञेयास्ते त्वगम्याः परस्परम् ॥८

इन्द्रद्वीपः कशेरुमांस्ताम्रवर्णो गभस्तिमान् ।
नागद्वीपस्तथा सौम्यो गांधर्वस्त्वथ वारुणः ।।९

अयं तु नवमस्तेषां द्वीपः सागरसंवृतः ।
योजनानां सहस्रं तु द्वीपोऽयं दक्षिणोत्तरात् ।।१०

आयतो ह्याकुमार्य्या वै चागंगाप्रभवाच्च वै ।
तिर्यगुत्तरविस्तीर्णः सहस्राणि नवैव तु ।।११

द्वीपो ह्युपनिविष्टोऽयं म्लेच्छैरंतेषु सर्वशः ।
पूर्वे किराता ह्यस्यांते पश्चिमे यवनाः स्मृताः ।।१२

ब्राह्मणाः क्षत्रिया वैश्या मध्ये शूद्राश्च भागशः ।
इज्यायुधवणिज्याभिर्वर्त्तयंतो व्यवस्थिताः ।।१३

तेषां संव्यवहारोऽत्र वर्त्तते वै परस्परम् ।
धर्मार्थकामसंयुक्तो वर्णानां तु स्वकर्मसु ।।१४

इस भारत वर्ष के नौ भेद हैं उनको आप लोग भली-भाँति समझ लीजिए ? वे सब समुद्र से अन्तरित हैं—ऐसे ही जान लेने चाहिए और परस्पर में वे सब अगम्य हैं अर्थात् अज्ञेय एवं गमन न करने के योग्य है ।८। उनके नाम ये हैं—इन्द्रद्वीप—कशेरुमान्—ताम्रवर्ण—गभस्तिमान्—नाग द्वीप—सौम्य—गन्धर्व—वारुण ।९। यह नौवाँ उन द्वीपों में है जो सागर से संवृत है । यह द्वीप दक्षिण-उत्तर से एक सहस्र योजन है ।१०। भागीरथी गङ्गा के उद्गम स्थान से कन्या कुमारी तक यह आयत है । नौ सहस्र योजन तिरछा उत्तर की ओर विस्तीर्ण है ।११। यह द्वीप अन्तों में सभी ओर म्लेच्छों द्वारा उपनिविष्ट है । इसके अन्त में पूर्व में किरात रहा करते हैं और पश्चिम में यवन लोग वाले बताये गये हैं ।१२। मध्य के भागों में ब्राह्मण—क्षत्रिय—वैश्य और शूद्र निवास करते हैं। जो यज्ञार्चन—शस्त्र—प्रयोग—वाणिज्य से अभिवर्त्तन करते हुए व्यवस्थित हैं ।१३। यहाँ पर इन चारों वर्णों में परस्पर में समीचीन व्यवहार रहा करता है । अपने वर्ण के अनुसार जो इनके अपने कर्म हैं उन्हीं में यह व्यवहार धर्म अर्थ और काम से समन्वित होता है ।१४।

संकल्पः पंचमानां च ह्याश्रमाणां यथाविधि ।
इह स्वर्गापवर्गार्थं प्रवृत्तिर्येषु मानुषी ॥१५
यस्त्वयं नवमो द्वीपस्तिर्यगायाम उच्यते ।
कृत्स्नं जयति यो ह्येनं सम्राडित्यभिधीयते ॥१६
अयं लोकस्तु वै सम्राडंतरिक्षं विराट् स्मृतम् ।
स्वराडसौ स्मृतो लोकः पुनर्वक्ष्यामि विस्तरात् ॥१७
सप्तैवास्मिन्सुपर्वाणो विश्रुताः कुलपर्वताः ।
तेषां सहस्रशश्चान्ये पर्वतास्तु समीपगाः ॥१६
अविज्ञाता सारवंतो विपुलाश्चित्रसानवः ।
मंदरः पर्वतश्रेष्ठो वैहारो दुर्दुरस्तथा ॥२०
कोलाहलः ससुरसो मैनाको वैद्युतस्तथा ।
वातंधमो नागगिरिस्तथा पाण्डुरपर्वतः ॥२१

पंचमान इस आश्रमों के सङ्कल्प विधि के ही अनुसार होता है । वहाँ पर जिनमें स्वर्ग प्राप्ति और मोक्ष के लिये मानुषी प्रवृत्ति रहा करती है । ।१५। जो यह नवम द्वीप है वह तिर्यग् आयाम वाला कहा जाता है । इस सम्पूर्ण द्वीप पर अपने बल–विक्रम के द्वारा विजय प्राप्त कर लेता है वह यहाँ का सम्राट् चक्रवर्ती राजा के नाम से कहा जाया करता है ।१६। यह लोक तो सम्राट है और अन्तरिक्ष विराट् कहा गया है । यह लोक स्वराट् कहा गया है । मैं फिर विस्तार के साथ बतलाऊँगा ।१७। इस द्वीप में सुपर्व सात ही कुल पर्वत प्रसिद्ध हैं । महेन्द्र—मलय—सह्य—शुक्तिमान—ऋक्ष पर्वत—विन्ध्य और पारियात्र ये ही सात कुश पर्वत है । इनके समीप में रहने वाले अन्य भी सहस्रों पर्वत हैं ।१८-१६। बहुत से पर्वतों का ज्ञान ही नहीं है और वे सार सम्पन्न तथा विचित्र शिखरों वाले हैं । पर्वतों में परम श्रेष्ठ मन्दर—वैहार–दुर्दुर–कोलाहल—समुरस—मैनाक—वैद्युत—वातंधम—नागगिरि और पाण्डुर पर्वत हैं ।२०-२१।

तुंगप्रस्थः कृष्णगिरिर्गोधनो गिरिरेव च ।
पुष्पगिर्युज्जयंतौ च शैलो रैवतकस्तथा ॥२२
श्रीपर्वतश्चित्रकूटः कूटशैलो गिरिस्तथा ।

अन्ये तेभ्योऽपरिज्ञाता ह्रस्वाः स्वल्पोपजीविनः ॥२३

तैर्विमिश्रा जनपदा आर्या म्लेच्छाश्च भागशः ।

पीयंते यैरिमा नद्यो गंगा सिंधुः सरस्वती ॥२४

शतद्रुश्चंद्रभागा च यमुना सरयूस्तथा ।

इरावती वितस्ता च विपाशा देविका कुहूः ॥२५

गोमती धूतपापा च बुद्बुदा च दृषद्वती ।

कौशिकी त्रिदिवा चैव निष्ठीवी गंडकी तथा ॥२६

चक्षुर्लोहित इत्येता हिमवत्पादनिस्सृताः ।

वेदस्मृतिर्वेदवती वृत्रघ्नी सिंधुरेव ॥२७

कर्णाशा नंदना चैव सदानीरा महानदी ।

पाशा चर्मण्वतीनूपा विदिशा वेत्रवत्यपि ॥२८

तुङ्गप्रस्थ—कृष्णागिरि–गोधनगिरि–पुष्प गिरि–उज्जयन्त तथा श्वेतक शैल है ।२२। श्री पर्वत–चित्रकूट–कूट शैलगिरि हैं। उनसे भी अन्य छोटे-छोटे गिरि हैं जो भली-भांति परिज्ञात नहीं है और स्वल्पोप जीवी है ।२३। उन शैलों से मिले-जुले जनपद यह भी हैं जिनके भागों में आर्य तथा म्लेच्छ निवास किया करते हैं जिनके द्वारा इन नदियों का पान किया जाया करता है। उन नदियों के कुछ नामों का परिगणन किया जाता है जैसे—गङ्गा—सिन्धु—और सरस्वती हैं ।२४। शतद्रु–चन्द्रभागा–जमुना–सरयू–इरावती–वितस्ता–विपाशा–देविका–कुहू है ।२५। गोमती–धूतपापा–बुद्बुदा–दृषद्वती–कौशिकी–त्रिदिवा–निष्ठीवी–गण्डकी–चक्षु–लोहित–ये सब नदियाँ हिमवान् महाशैल के पाद से निकली हैं। वेदस्मृति–वेदवती–वृत्रघ्नी और सिन्धु है । कर्णाशा–नन्दना–सदानीरा–महानदी–पाशा–चर्मण्वती–नूपा—विदिशा–वेत्रवती है ।२६-२८।

क्षिप्रा ह्यवंति च तथा पारियात्राश्रयाः स्मृताः ।

शोणो महानदश्चैव नर्म्मदा सुरसा क्रिया ॥२९

मंदाकिनी दशार्णा च चित्रकूटा तथैव च ।

तमसा पिप्पला श्येना करमोदा पिशाचिका ॥३०

चित्रोपला विशाला च बंजुला वास्तुवाहिनी ।

सनेरुजा शुक्तिमती मंकुती त्रिदिवा क्रतुः ॥३१

ऋक्षवत्सप्रसूतास्ता नद्यो मणिजलाः शिवाः ।

तापी पयोष्णी निर्विन्ध्या सृपा च निषधा नदी ॥३२

वेणी वैतरणी चैव क्षिप्रा वाला कुमुद्वती ।

तोया चैव महागौरी दुर्गा वान्नशिला तथा ॥३३

विंध्यपादप्रसूतास्ता नद्यः पुण्यजलाः शुभाः ।

गोदावरी भीमरथी कृष्णवेणाथ वंजुला ॥३४

तुंगभद्रा सुप्रयोगा वाह्या कावेर्यथापि च ।

दक्षिणप्रवहा नद्यः सह्यपादाद्विनिः स्मृताः ॥३५

क्षिप्रा और अवन्ति ये नदियाँ पारिमात्र के समाश्रय वाली हैं—ऐसा कहा गया है—शोण महानन्द हैं। सुरसा–नर्मदा–क्रिया–मन्दाकिनी दशार्णा—चित्रकूटा–नमसा–पिप्पला–श्येना–करमोदा और पिशाचिका—ये नदियाँ हैं ।२९-३०। चित्रोपला—विशाला—वंजुला—वास्तुवाहिनी—सनेरुजा–शुक्तिमती–मंकुती–त्रिदिवा–क्रतु नदियाँ हैं ।३१। ये सब ऋक्ष वत्स पर्वत से संभूत होने वाली हैं जिनका जल मणि के समान परम स्वच्छ और शिव है। तापी–पयोष्णी–निर्विन्ध्या—सृपा और निषधा नदी हैं ।३२। वेणी-वैतरणी–वाला–कुमुद्वती–तोया–महागौरी–दुर्गा-वान्नशिला नदियाँ हैं ।३३। ये सब नदियां विन्ध्य गिरि के पाद से प्रसूत होने वाली हैं जिनका जल परम पुण्यमय ह और जो बहुत ही शुभ है। गोदावरी-भीमरथी-कृष्णवेणा-वंजुला-तुङ्गभद्रा-सुप्रयोगा-वाह्या-कावेरी—ये नदियाँ दक्षिणा की ओर प्रवाह करने वाली हैं और मह्य गिरि के पाद से निकलने वाली हैं ।३४-३५।

कृतमाला ताम्रपर्णी पुष्पजात्युत्पलावती ।

नद्योऽभिजाता मलयात्सर्वाः शीतजलाः शुभाः ॥३६

त्रिसामा ऋषिकुल्या च बंजुला त्रिदिवाबला ।

लांगूलिनी वंशधरा महेन्द्रतनयाः स्मृताः ॥३७

ऋषिकुल्या कुमारी च मंदगा मंदगामिनी ।

कृपा पलाशिनी चैव शुक्तिमत्प्रभवाः स्मृताः ॥३८

तास्तु नद्यः सरस्वत्यः सर्वा गंगाः समुद्रगाः ।
विश्वस्य मातरः सर्वा जगत्पापहराः स्मृताः ॥३९

तासां नद्युपनद्योऽन्याः शतशोऽथ सहस्रशः ।
तास्विमे कुरुपांचालाः शाल्वा माद्रेयजांगलाः ॥४०

शूरसेना भद्रकारा बोधाः सहपटच्चराः ।
मत्स्याः कुशल्याः सौशल्याः कुंतलाः काशिकोशलाः ॥४१

गोधा भद्राः कलिंगाश्च मागधाश्चोत्कलैः सह ।
मध्यदेश्या जनपदाः प्रायशस्तत्र कीर्त्तिताः ॥४२

कृतमाला-ताम्रहर्णी-पुष्पजाती-उत्पलावती—ये जब नदियाँ मलय पर्वत से अभिजात हुई हैं जिनका जल बहुत ही शीतल और शुभ है ।३६। त्रिसामा-ऋषिकुल्या-बंजुला-त्रिदिवा-बला-लांगूलिनी-वंशधरा-ये सब महेन्द्र-गिरि की तनया कही गयी हैं ।३७। ऋषिकुल्या-मन्दगा-मन्द गामिनी-कृपा-पलाशिनी–ये नदियां शुक्तिमान् पर्वत से समुत्पत्ति पाने वाली है ।३८। ये सब नदियाँ सरस्वती हैं और सब समुद्र में गमन करने वाली गङ्गा है । ये सभी इस विश्व की मातायें है और जगत् के समस्त पापों के हरण करने वाली कही गयी हैं ।३९। इन सब नदियों की अन्य सैंकड़ों और हजारों ही उप नदियाँ हैं । उनमें ये कुरु पाञ्चाल-शाल्व-माद्रय-जांगल-शूरसेन-भद्रकार-बोध-सहपटच्चर-मत्स्य कुशल्य-कुन्तल-काशि-कोशल-गोध-भद्र-कलिंग-मागध-उत्कल-मध्य देश में होने वाले जनपद प्रायः करके वहाँ पर कीर्त्तित किये गये हैं ।४०-४२।

सह्यस्य चोत्तरांतेषु यत्र गोदावरी नदी ।
पृथिव्यामपि कृत्स्नायां स प्रदेशो मनोरमः ॥४३

तत्र गोवर्द्धनं नाम पुरं रामेण निर्मितम् ।
रामप्रियार्थ स्वर्गीया वृक्षा दिव्यास्तथौषधीः ॥४४

भरद्वाजेन मुनिना तत्प्रियार्थेऽवरोपिताः ।
अतः पुरवरोद्देशस्तेन जज्ञे मनोरमः ॥४५

वाह्लीका वाटधानाश्च आभीरा कालतोयकाः ।
अपरांताश्च सुह्माश्च पाञ्चालाश्चर्ममंडलाः ॥४६

पंड्याश्च केरलाश्चैव चोला: कुल्यास्तथैव च ।
सेतुका मूषिकाश्चैव क्षपणा वनवासिका: ॥५६

अत्रिगण-भरद्वाज-प्रस्थल-दशेरक-लमक-तालशाल-भूषिक-ईजिक-ये सब उत्तर दिशा में हैं। अब जो पूर्व दिशा में देश हैं उनका भी आप ज्ञान प्राप्त कर लीजिए। अङ्ग-दङ्ग-चोल भद्र-किरातों की जातियाँ-तोमर-हंसभंग-काश्मीर-तंगण-झिल्लिक-आहुक-हुणदर्व-अन्ध्रगक-मुद्गर अन्तर्गिरि-बहिर्गिरि—इसके अनन्तर प्लवङ्गव-मलद और मलवर्त्तिक जानने के योग्य हैं। ।५०-५३। समंतर-प्रावृषेय-भार्गव-गोपपार्थिव-प्राग्ज्यो तिष-पुण्ड्र-विदेह-ताम्र लिप्तिक-मल्ल-मगध और गोनर्द—ये जनपद पूर्वी दिशा में हैं ऐसा कहा गया है। इसके उपरान्त दूसरे दक्षिणा पथवासी जनपद हैं।५३-५४। पण्ड्य-केरल-चोल-कुल्य-सेतुक-मूषिक-क्षपण और वनवासिक देश हैं।५६।

माहाराष्ट्रा महिषिका: कलिंगाश्चैव सर्वश: ।
आभीराश्च सहैषीका आटव्या सारवास्तथा ॥५७
पुलिंदा विंध्यमौलीया वैदर्भा दंडकै: सह ।
पौरिका मौलिकाश्चैव अश्मका भोगवर्द्धना: ॥५८
कौंकणा: कंतलाश्चांध्रा: पुलिन्दाङ्गारमारिषा: ।
दाक्षिणाश्चैव ये देशा अपरांस्तान्निबोधत ॥५९
सूर्य्यारका: कलिवना दुर्गाला: कुन्तलै: ।
पौलेयाश्च किराताश्च रूपकास्तापकै: सह ॥६०
तथा करीतयश्चैव सर्वे चैव करंधरा: ।
नासिकाश्चैव ये चान्ये ये चैवांतरनर्मदा: ॥६१
सहकच्छा: समाहेया: सह सारस्वतैरपि ।
कच्छिपाश्च सुराष्ट्राश्च आनर्ताश्चार्बुदै सह ॥६२
इत्येते अपरांताश्च शृणुध्वं विंध्यवासिन: ।
मलदाश्च करूषाश्च मेकलाश्चोत्कलै: सह ॥६३

माहराष्ट्र-महिषिक-कलिङ्ग-सब ओर आभीर-सहैषीक-आटव्य-साख-पुलिन्द-विन्ध्य मौलीय-वैदर्भ-दण्डक-पौरिक-मौलिक-अश्मक-भोग वर्धन-कोङ्कण-कन्तल-आन्ध्र-पुलिन्द-अंगार-मारिष-ये सब देश दक्षिणा पथ वासी

गांधारा यवनाश्चैव सिंधुसौवीरमण्डला: ।
चीनाश्चैव तुषाराश्च पल्लवा गिरिगह्वरा: ।।४७
शका भद्रा: कुलिंदाश्च पारदा विन्ध्यचूलिका: ।
अभीषाह्वा उलूताश्च केकया दशमालिका: ।।४८
ब्राह्मणा: क्षत्रियाश्चैव वैश्यशूद्रकुलानि तु ।
कांबोजा दरदाश्चैव बर्बरा अंगलौहिका: ।।४९

सह्य गिरि के उत्तरान्तों में जहाँ पर गोदावरी नदी बहती है इस सम्पूर्ण पृथिवी में वह प्रदेश परम सुन्दर है ।४३। वहाँ पुर है जिसका गोवर्धन नाम है और इसका निर्माण श्रीराम ने किया था । वहाँ पर श्रीराम के प्रिय स्वर्गीय और अत्युत्तम वृक्ष तथा औषधियाँ हैं ।४४। इन सबका अब रोपण श्रीराम की प्रीति के लिए भरद्वाज मुनि ने किया था । अतएव उन्होंने इस पुरवर का मनोरम उद्देश्य किया था। बाह्लीक-वाटधान-आभीर-कालतोयक-अपरान्त-सुह्य-पाञ्चाल-चर्ममंडल-गान्धार-यवन-सिन्धु सौवीर मण्डल-चीन-तुषार-पल्लव-गिरि गह्वरशक-भद्र-कुलिन्द-पारद-विन्ध्यचूलिका-अभीषाहृ-उलूत-केकय-दशमालिक ये सब देश तथा ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्रों के कुल, काम्बोज-दरद-उर्वर और अङ्गलौहिक ये सब देश हैं ।४६-४९।

अत्रय: सभरद्वाजा: प्रस्थलाश्च दशेरका: ।
लमकास्तालशालाश्च भूषिका ईजिकै: सह ।।५०
एते देशा उदीच्या वै प्राच्यान्देशान्निबोधत ।
अंगवंगाश्चोलभद्रा: किराताना च जातय: ।
तोमरा हंसभंगाश्च काश्मीरास्तंगणास्तथा ।।५१
झिल्लिकाश्चाहुकाश्चैव हूणदर्वास्तथैव च ।।५२
अंध्रवाका मुद्गरका अंतर्गिरिबहिर्गिरा: ।
तत: प्लवंगवो ज्ञेया मलदा मलवर्तिका: ।।५३
समंतरा: प्रावृषेया भार्गवा गोपपार्थिवा: ।
प्राग्ज्योतिषाश्च पुंड्राश्च विदेहास्ताम्रलिप्तका: ।।५४
मल्ला मगधगोनर्दा: प्राच्यां जनपदा स्मृता: ।
अथापरे जन पदा दक्षिणापथवासिन: ।।५५

हैं। और जो दक्षिण में होने वाले दूसरे जनपद हैं उनका भी ज्ञान प्राप्त करलो ।५७-५९। सूर्यारक-कलिवन-गुर्गालि--कुन्तल--पौलेय--किरात--रूपक-तापक-करीति और सब करन्धर और नासिक तथा जो अन्य नर्मदा के अन्तर में हैं ।६०-६१। सहकच्छ-समाहेय-सारस्वत-कच्छिप-सुराष्ट्र-आनर्त-अर्बुद—ये सब और अपरान्त जो विन्ध्य के वास करने वाले हैं उनको आप सुनिये। मलद-करुष-मेकल-उत्कल-ये जनपद विन्ध्य के वास करने वाले हैं। ।६२-६३।

उत्तमानां दशार्णाश्च भोजाः किष्किंधकैः सह ।
तोशलाः कोशलाश्चैव त्रैपुरा वैदिशास्तथा ॥६४

तुहुण्डा बर्बराश्चैव षट्पुरा नैषधैः सह ।
अनूपास्तुंडिकेराश्च वीतिहोत्रा ह्यवंतयः ॥६५

एते जनपदाः सर्वे विन्ध्यपृष्ठनिवासिनः ।
अतो देशान्प्रवक्ष्यामि पर्वताश्रयिणश्च ये ॥६६

निहीरा हंसमार्गाश्च कुपथास्तंगणाः शका ।
खपप्रावरणाश्चैव ऊर्णा दर्वाः सहूहुकाः ॥६७

त्रिगर्ता मंडलाश्चैव किरातास्तामरैः सह ।
चत्वारि भारते वर्षे युगानि ऋषयोऽब्रुवन् ॥६८

कृतं त्रेतायुगं चैव द्वापरं तिष्यमेव च ।
तेषां निसर्गं वक्ष्यामि उपरिष्टादशेषतः ॥६९

उत्तमों के दशार्ण-भोज-किष्किन्धक-तोशल-कोशप—त्रैपुर—वैदिश—तुहुण्ड—बर्बर—षट्पुर—नैषध—अनूप—तुण्डिकेर--वीतिहोत्र—अवन्ति—ये सब जनपद विन्ध्य गिरि के ऊपर निवास करने वाले हैं। इसके आगे मैं उन देशों का वर्णन करूँगा जो पर्वतों का आश्रय ग्रहण करके निवास किया करते हैं ।६४-६६। निहीर-हंसमार्ग-कुपथ-तङ्गण-शक-अप प्रावरण-ऊर्ण-दर्व-सहूहक-त्रिगर्त-मण्डल-किरात-तामर-ये समस्त देश पर्वतों के ऊपर समाश्रय लेने वाले हैं। ऋषियों ने भारतवर्ष में चार युगों का होना बतलाया था। प्रथम कृतयुग अर्थात् सत्ययुग है—दूसरा त्रेता, तीसरा द्वापर और चौथा तिष्य है। इन सबका निसर्ग ऊपर से ही सम्पूर्ण में आपको बतलाऊँगा ।६७-६९।

युग संख्यावर्त्त

ऋषिरुवाच—चतुर्युगानि यान्यासन्पूर्वं स्वायंभुवेऽन्तरे ।
तेषां निसर्गं तत्त्वं च श्रोतुमिच्छामि विस्तरात् ।।१
सूत उवाच—पृथिव्यादिप्रसंगेन यन्मया प्रागुदीरितम् ।
तेषां चतुर्युगं ह्येतत्तद्वक्ष्यामि निबोधत ।।२
संख्ययेह प्रसंख्याय विस्तराच्चैव सर्वशः ।
युगं च युगभेदश्च युगधर्मस्तथैव च ।।३
युगसंध्यांशकश्चैव युगसंधानमेव च ।
षट्प्रकाशयुगाख्यैषा तां प्रवक्ष्यामि तत्वतः ।।४
लौकिकेन प्रमाणेन निष्पाद्याब्दं तु मानुषम् ।
तेनाशब्देन प्रसंख्यायै वक्ष्यामीह चतुर्युगम् ।
निमेषकालतुल्यं हि विद्याल्लघ्वक्षरं च यत् ।।५
काष्ठा निमेषा दश पंच चैव त्रिंशच्च काष्ठा गणयेत्कलां तु ।
त्रिंशत्कलाश्चापि भवेन्मुहूर्तस्तैस्त्रिंशता रात्र्यहनी समेते ।।६
अहोरात्रौ विभजते सूर्यो मानुषलौकिकौ ।।७

ऋषि ने कहा—जो चार युग हैं और पूर्व में स्वायम्भुव मन्वन्तर में थे । हे भगवन् ! उनका जिसर्ग कैसे हुआ और उनका क्या तत्व है—यह मैं विस्तार के साथ श्रवण करना चाहता हूँ ।१। श्रीसूत जी ने कहा—पृथिवी आदि के प्रसंग से जो मैंने पूर्व में कहा था उनके चारों युगों के विषय में मैं अब बतलाऊँगा । उसको आप भली-भाँति समझ लीजिए ।२। यहाँ पर संख्या के द्वारा प्रसंख्यान करके और सब प्रकार से विस्तृत मैं कहूँगा । युग-युग का भेद-युग का धर्म-युग सन्धि का अंश-युग सन्धान-यह षट् प्रकाश युग की आख्या है । उन सबको मैं तात्विक रूप से आपको बतलाऊँगा ।३-४। लौकिक प्रमाण मनुष्य के वर्ष का निष्पादन करके उसी शब्द से प्रसंख्यान करके यहाँ पर मैं चारों युगों को बतलाऊँगा । निमेष काल उसे ही जानना चाहिए जो कि लघु अक्षर के तुल्य होता है ।५। पन्द्रहनिमेषों का जितना काल होता है उसकी एक काष्ठा होती है और तीस काष्ठाओं के समय को

कला गिनना चाहिए। तीस कलाओं का एक मुहूर्त होता है। तीस मुहूर्तों के सम रात्रि और दिन हुआ करते हैं।६। दिन और रात्रि का विभाग सूर्य किया करता है जो कि मनुष्य का लौकिक होता है।७।

तत्राहः कर्मचेष्टायां रात्रिः स्वप्नाय कल्पते।
पित्र्ये राज्यहनी मासः प्रविभागस्तयोः पुनः ॥८
कृष्णपक्षस्त्वहस्तेषां शुक्लः स्वप्नाय शर्वरी।
त्रिंशद्ये मानुषा मासाः पित्र्यो मासस्तु सः स्मृतः ॥९
शतानि त्रीणि मासानां षष्ट्या चाप्यधिकानि वै।
पित्र्यः संवत्सरो ह्येष मानुषेण विभाव्यते ॥१०
मानुषेणैव मानेन वर्षाणां यच्छतं भवेत्।
पितॄणां त्रीणि वर्षाणि संख्यातानीह तानि वै ॥११
दश चैवाधिका मासाः पितृसंख्येह संज्ञिताः।
लौकिकेनैव मानेन ह्यब्दो यो मानुषः स्मृतः ॥१२
एतद्दिव्यमहोरात्रं शास्त्रे स्यान्निश्चयो गतः।
दिव्ये राज्यहनी वर्षं प्रविभागस्तयोः पुनः ॥१३
अहस्तत्रोदगयनं रात्रिः स्याद्दक्षिणायनम्।
ये ते राज्यहनी दिव्ये प्रसंख्यानं तयोः पुनः ॥१४

उनमें दिन तो कर्मों के करने की चेष्टा में लगाया जाता है और रात्रि का समय सोने के लिए कहा जाता है। दिव्य रात्रि और दिन मास होता है। उन दोनों या प्रविभाग फिर होता है।८। उनका कृष्ण पक्ष उनकी रात्रि होती है। मनुष्यों के जो तीस मास होते हैं वही पितृगणों का मास कहा गया है।९। तीन सौ साठ मासों का पितृगणों का एक वर्ष होता है। यह संख्या मनुष्यों के मासों से विभावित हुआ करती है।१०। मनुष्यों के मान से जो सौ वर्ष होते हैं वे पितृगणों के तीन वर्ष संख्यात किये गये हैं।११। यहाँ पर दश मास अधिक पितृ गणों की संख्या संज्ञा वाली हुई है। लौकिक मान से ही जो मनुष्यों का शब्द कहा गया है।१२। यह दिव्य अर्थात् देवों का अहोरात्र अर्थात् एक दिन और रात है जो शास्त्र निश्चय को प्राप्त हुआ है। दिव्य रात्रि और दिन वर्ष है और उन दोनों का फिर

प्रविभाग है ।१३। वहाँ पर जो दिन है वह उत्तरायण होता है और जो रात्रि है वह दक्षिणायन होता है जो वे दिव्य रात्रि और दिन हैं उनका पुनः प्रसंख्यान है ।१४।

त्रिंशद्यानि तु वर्षाणि दिव्यो मासस्तु स स्मृतः ।
यन्मानुषं शतं विद्धि दिव्या मासास्त्रयस्तु ते ॥१५
दश चैव तथाऽहानि दिव्यो ह्येष विधिः स्मृतः ।
त्रीणि वर्षशतान्येव षष्टिवर्षाणि यानि तु ।
दिव्यः संवत्सरो ह्येष मानुषेण प्रकीर्त्तितः ॥१६
त्रीणि वर्षसहस्राणि मानुषाणि प्रमाणतः ।
त्रिंशदन्यानि वर्षाणि मतः सप्तर्षिवत्सरः ॥१७
नव यानि सहस्राणि वर्षाणां मानुषाणि तु ।
अन्यानि नवतिश्चैव ध्रुवः संवत्सरः स्मृतः ॥१८
षड्विंशतिसहस्राणि वर्षाणि मानुषाणि तु ।
वर्षाणि तु शतं ज्ञेयं दिव्यो ह्येष विधिः स्मृतः ॥१९
त्रीण्येव नियुतान्याहुर्वर्षाणां मानुषाणि तु ॥२०
षष्टिश्चैव सहस्राणि संख्यातानि तु संख्यया ।
दिव्यवर्षसहस्रं तु प्राहुः संख्याविदो जनाः ॥२१

मनुष्यों के जो तीस वर्ष होते हैं उतने समय का देवों का दिव्य मास कहा गया है । जो मानवों के एक सौ वर्ष हैं उतने समय का दिव्य तीन मास हुआ करते हैं ।१५। तथा दश दिन हैं—यही दिव्य विधि कही गयी है । तीन सौ साठ जो वर्ष मनुष्यों के होते हैं यह एक दिव्य सम्वत्सर कहा गया है ।१६। मनुष्यों के तीन हजार वर्ष प्रमाण से होते हैं और अन्य वर्ष हैं इतने समय का सप्तर्षियों का एक वत्सर होता है ।१७। मानवों के जो नौ हजार वर्ष होते हैं और अन्य नब्बै वर्ष हैं–इतने समय का ध्रुव सम्वत्सर हुआ करता है । मनुष्यों के छब्बीस हजार वर्षों का जो समय होता है वह समय होता है वह समय देवों का अर्थात् दिव्य सौ वर्ष हुआ करते हैं—यह विधि कही गयी है ।१८-१९। तीन नियुत ही मनुष्यों के वर्ष कहे जाते हैं ।२०। संख्या के द्वारा साठ सहस्र वर्ष ही संख्यात किये गये हैं । संख्या के ज्ञाता मनीषी गण दिव्य सहस्र वर्ष कहते हैं ।२१।

इत्येवमृषिभिर्गीतं दिव्यया संख्यया त्विह ।
दिव्येनैव प्रमाणेन युगसंख्याप्रकल्पनम् ॥२२
चत्वारि भारते वर्षे युगानि कवयोऽब्रुवन् ।
कृतं त्रेता द्वापरं च कलिश्चेति चतुष्टयम् ॥२३
पूर्वं कृतयुगं नाम ततस्त्रेता विधीयते ।
द्वापरं च कलिश्चैव युगान्येतानि कल्पयेत् ॥२४
चत्वार्याहुः सहस्राणि वर्षाणां च कृतं युगम् ।
तस्य तावच्छती संध्या संध्यया: संध्यया सम: ॥२५
इतरेषु ससंध्येषु ससंध्यांशेषु च त्रिषु ।
एकन्यायेन वर्तन्ते सहस्राणि शतानि च ॥२६
त्रीणि द्वे च सहस्राणि त्रेताद्वापरयो: क्रमात् ।
त्रिशती द्विशती संध्ये संध्यांशौ चापि तत्समौ ॥२७
कलिं वर्षसहस्रं तु युगमाहुर्द्विजोत्तमा: ।
तस्यैकशतिका संध्या संध्यांश संध्याय सम: ॥२८

ऋषियों ने यह इस प्रकार से दिव्य संख्या के साथ गान किया है और दिव्य प्रमाण के ही द्वारा युगों की प्रकृष्ट संख्या की कल्पना की जाया करती है ।२२। कविगणों ने भारत वर्ष में चार युग बताये थे । कृतयुग-त्रेता-द्वापर और कलियुग ये चार युगों की चौकड़ी है ।२३। सबसे प्रथम जो युग है उसका कृतयुग अर्थात् सत्ययुग है । इसके उपरान्त त्रेता युग का विधान किया जाता है । फिर द्वापर और इसके बाद कलियुग आता है—इन चार युगों की कल्पना की जाती है ।२४। कृतयुग के बरतने का काल चार सहस्र दिव्य वर्षों का होता है । उस युग की उतने ही सौ वर्षों की सन्ध्या होती है है और सन्ध्या का अंश सन्ध्या के ही समान होता है ।२५। सन्ध्या के सहित और सन्ध्यांशों के सहित अन्य तीनों में एक ही न्याय से सहस्र और शत बरना करते हैं ।२६। त्रेता और द्वापर में क्रम से तीन और दो सहस्र होते हैं । तीन सौ और दो सौ सन्ध्यायें और सन्ध्यांश भी उनके ही समान हुआ करते हैं ।२७। द्विजोत्तम कलियुग एक सहस्र वर्ष कहते हैं । उसकी एक सौ वर्षों वाली सन्ध्या होती है और सन्ध्या के ही समान सन्ध्या का अंश हुआ करता है ।२८।

तेषां द्वादशसाहस्री युगसंख्या प्रकीर्त्तिता ।
कृतं त्रेता द्वापरं च कलिश्चैव चतुष्टयम् ॥२९
अत्र संवत्सरा दृष्टा मानुषेण प्रमाणतः ।
कृतस्य तावद्वक्ष्यामि वर्षाणि च निबोधत ॥३०
सहस्राणां शतान्याहुश्चतुर्दश हि संख्यया ।
चत्वारिंशत्सहस्राणि तथान्यानि कृतं युगम् ॥३१
तथा शतसहस्राणि वर्षाणि दशसंख्या ।
अशीतिश्च सहस्राणि कालस्त्रेतायुगस्य सः ॥३२
सप्तैव नियुतान्याहुर्वर्षाणां मानुषेण तु ।
विंशतिश्च सहस्राणि कालः स द्वापरस्य च ॥३३
तथा शतसहस्राणि वर्षाणि त्रीणि संख्या ।
षष्टिश्चैव सहस्राणि कालः कलियुगस्य तु ॥३४
एवं चतुर्युगे काल ऋते संध्यांशकैः स्मृतः ।
नियुतान्येव षड्विंशान्निरसानि युगानि वै ॥३५
चत्वारिंशत्तथा त्रीणि नियुतानीह संख्यया ।
विंशतिश्च सहस्राणि स संध्यांशश्चतुर्युगः ॥३६
एवं चतुर्युगाख्यानां साधिका ह्येकसप्ततिः ।
कृतत्रेतादियुक्तानां मनोरंतरमुच्यते ॥३७

उनकी बारह सहस्रों वाली युगों की संख्या कीर्त्तित की गयी है । इस प्रकार से कृतयुग-त्रेता-द्वापर और कलियुग इन चार युगों की चौकड़ी है ।२९। यहाँ पर मानुष प्रमाण से सम्वत्सर देखे गये हैं । अब कृत युग के वर्षों को बतलाऊँगा । उनको भली भाँति समझ लीजिए ।३०। संख्या के द्वारा चौदह सौ सहस्र कहे गये हैं । तथा अन्य चालीस सहस्र कृतयुग हैं ।३१। दश की संख्या से सौ सहस्र वर्ष हैं । वह अस्सी सहस्र काल त्रेतायुग का होता है ।३२। मानुष प्रमाण से सात ही विपुल वर्ष कहे गये हैं । और द्वापर युग का काल बीस सहस्र वर्ष होता है ।३३। संख्या से तीन शत सहस्र वर्ष कलियुग का काल होता है ।३४। इस प्रकार से इन चार युगों में ऋत सध्यांशों

के सहित काल कहा गया है। युग नियत छब्बीस नियुत ही हैं।३५। इन चारों युगों का संख्या से तैंतालीस नियुत और बीस हजार वह सन्ध्यांश होता है।३६। इस प्रकार से कृत से लेकर त्रेता आदि चारों युगों की साधिका इकहत्तर होती है। इसी को एक मन्वन्तर कहा जाता है अर्थात् इकत्तर चारों युगों को चौकड़ियाँ जब समाप्त हो जाती हैं तभी एक मनु के शासन का समय पूर्ण होकर दूसरा मन्वन्तर आता है।३७।

अंतरिक्षे समुद्रे च पाताले पर्वतेषु च।
इज्या दानं तपः सत्यं त्रेतायां धर्म उच्यते ॥३८
तदा प्रवर्त्तते धर्मो वर्णाश्रमविभागशः।
मर्यादास्थापनार्थं च दण्डनीतिः प्रवर्त्तते ॥३९
हृष्टपुष्टाः प्रजाः सर्वा अरोगाः पूर्णमानसाः।
एको वेदश्चतुष्पादस्त्रेतायुगविधौ स्मृतः ॥४०
त्रीणि वर्षसहस्राणि तदा जीवन्ति मानवाः।
पुत्रपौत्रसमाकीर्णा म्रियंते च क्रमेण तु ॥४१
एष त्रेतायुगे धर्मस्त्रेतासंध्यां निबोधत।
त्रेतायुगस्वभावानां संध्यापादेन वर्त्तते।
संध्यापादः स्वभावस्तु सोऽशपादेन तिष्ठति ॥४२

अन्तरिक्ष में—समुद्र में—पाताल में और पर्वतों में इज्या-दान, तप और सत्य का समाचरण ही त्रेतायुग में धर्म कहा जाया करता है।३८। उस समय में वर्णों और आश्रमों के विभाग के अनुसार धर्म की प्रवृत्ति हुआ करती है। मर्यादा की स्थापना करने के लिए दण्ड देने की नीति भी उस समय में प्रवृत्त होती है।३९। उस समय में समस्त प्रजा के जन समुदाय हृष्ट-पुष्ट, रोगों से रहित और पूर्ण मानस वाले होते हैं। त्रेतायुग की विधि में चार पादों वाला एक ही वेद कहा गया है।४०। उस समय में मानवों की आयु बड़ी होती थी और वे तीन हजार वर्षों तक जीवित करते रहा थे। वे सब अपने पुत्रों—पौत्रों से घिरे हुए रहा करते थे तथा उनकी मृत्यु भी आयु के अनुसार क्रम से ही हुआ करती थी।४१। त्रेतायुग में इसी प्रकार से धर्म होता था। अब त्रेता की सन्ध्या का भी ज्ञान प्राप्त कर लीजिए। त्रेता

युग के जो स्वभाव हैं उनकी सन्ध्या पाद से बरता करती है। सन्ध्यापाद का स्वभाव जो है वह अंश पाद से स्थित होता है।४२।

चतुर्युगाख्यान वर्णनम्

सूत उवाच—अत ऊर्द्ध्वं प्रवक्ष्यामि द्वापरस्य विधिं पुनः।
तत्र त्रेतायुगे क्षीणे द्वापरं प्रतिपद्यते ॥१
द्वापरादौ प्रजानां तु सिद्धिस्त्रेतायुगे तु या।
परिवृत्ते युगे तस्मिस्ततस्ताभिः प्रणश्यति ॥२
ततः प्रवर्त्तते तासां प्रजानां द्वापरे पुनः।
संभेदश्चैव वर्णानां कार्याणां च विपर्ययः ॥३
यज्ञावधारणं दण्डो मदो दंभः क्षमा बलम्।
एषा रजस्तमोयुक्ता प्रवृत्तिर्द्वापरे स्मृता ॥४
आद्ये कृते यो धर्मोऽस्ति स त्रेतायां प्रवर्त्तते।
द्वापरे व्याकुलीभूत्वा प्रणश्यति कलौ युगे ॥५
वर्णानां विपरिध्वंसः संकीर्यन्ते तथाश्रमाः।
द्वैविध्यं प्रतिपद्येते युगे तस्मिञ्छ्रुतिस्मृती ॥६
द्वैधात्तथा श्रुतिस्मृत्योर्निश्चयो नाधिगम्यते।
अनिश्चयाधिगमनाद्धर्मतत्त्वं न विद्यते ॥७

श्री सूतजी ने कहा—उसके आगे फिर द्वापर युग की विधि का वर्णन करूँगा। वहाँ पर त्रेता युग के क्षीण होने पर द्वापर युग प्रतिपन्न होता है।१। द्वापर युग के आदि में प्रजाओं की वही सिद्धि भी जो कि त्रेतायुग में में थी। उस युग के परिवर्त्तित हो जाने पर इसके पश्चात् उन सिद्धियों से विनष्ट हो जाता है।२। फिर द्वापर में उस प्रजाओं का संभेद प्रवृत्त हो जाता है और समस्त वर्णों का और कार्यों का विपर्यय हो जाया करता है।३। यज्ञों का अवधारण, दण्ड, दम्भ, क्षमा और बल द्वापर में यह प्रवृत्ति जो भी थी वह रजोगुण और तमोगुण से युक्त कही गयी है।४। सबसे आदि में होने वाले कृतयुग में जो धर्म है वह त्रेतायुग में प्रवृत्त होता है। द्वापर युग में वह धर्म व्याकुलित होकर कलियुग में विनष्ट हो जाता है।५। सभी वर्णों का विशेष रूप से परिध्वंस होता है तथा सब आश्रम भी बिगड़ जाया करते

हैं। उस युग में श्रुतियाँ और स्मृतियाँ दो प्रकारों को प्राप्त कर लिया करती हैं। श्रुति-स्मृतियों के दो प्रकार के स्वरूप हो जाने से किसी निश्चय का अधिगम नहीं हुआ करता है और अनिश्चय के अधिगम से धर्म का वास्तविक तत्व नहीं रहता है।६-७।

धर्मासत्वेन भिन्नाणां मतिभेदो भवेन्नृणाम् ।
परस्परविभिन्नैस्तैर्दृष्टीनां विभ्रमेण च ॥८
अयं धर्मो ह्ययं नेति निश्चयो नाधिगम्यते ।
कारणानां च वैकल्प्यात्कार्याणां चाप्यनिश्चयात् ॥९
मतिभेदेन तेषां वै दृष्टीनां विभ्रमो भवेत् ।
ततो दृष्टिविभिन्नैस्तु कृतं शास्त्राकुलं त्विदम् ॥१०
एको वेदश्चतुष्पाद्धि त्रेतास्विह विधीयते ।
संक्षयादायुषश्चैव व्यस्यते द्वापरेषु च ॥११
ऋषिमंत्रात्पुनर्भेदाद्भिद्यते दृष्टिविभ्रमैः ।
मंत्रब्राह्मणविन्यासैः स्वरवर्णविपर्ययैः ॥१२
संहिता ऋग्यजुः साम्नां संपठ्यन्ते महर्षिभिः ।
सामान्या वैकृताश्चैव दृष्टिभिन्ने क्वचित्क्वचित् ॥१३
ब्राह्मणं कल्पसूत्राणि मंत्रप्रवचनानि च ।
अन्येऽपि प्रस्थितास्तान्वै केचित्तान्प्रत्यवस्थिताः ॥१४

धार्मिकता के न रहने से भिन्न मनुष्यों की मति का भेद हो जाया करता है। वे सब आपस को भी किसी के साथ सहानुभूति नहीं होती है। सब की दृष्टि में विभ्रम हो जाया करता है।८। यह धर्म है अथवा यह अधर्म है—इसका कोई भी निश्चय नहीं हुआ करता है। कारणों के विकल्प होने से और कार्यों के निश्चय नहीं होने से धर्माधर्म का कोई निश्चय नहीं हुआ करता है।९। उन मनुष्यों की मति के विभेद होने से उनकी दृष्टियों का भी विभ्रम हो जाता है। फिर विभिन्न दृष्टियों वाले मनुष्यों के द्वारा शास्त्रों को भी आकुलित कर दिया था।१०। वेद एक ही था उसको त्रेता-युग में चार पादों वाला किया जाता है। आयु के संक्षय होने से द्वापर युग में यह व्यवस्थित हो जाता है।११। ऋषियों ने और मन्त्रों के फिर भेद

होने से यह दृष्टि के विभ्रमों से युक्त हो जाता है। जिस में मन्त्र भाग और ब्राह्मण भाग का विन्यास होता है और स्वरों तथा वर्णों का विपर्यय होता है।१२। महर्षियों के द्वारा ऋग्वेद-यजुर्वेद और सामवेद की संहितायें पढ़ी जाया करती हैं। कहीं पर सामान्य और कहीं-कहीं पर दृष्टि की भिन्नता होने पर वैकृत ये पढ़ी जाया है।१३। ब्राह्मण-कल्प सूत्र और मन्त्र प्रवचन और अन्य भी प्रथित हैं और कुछ उनके प्रति अवस्थित हैं।१४।

द्वापरेषु प्रवर्त्तते निवर्त्तते कलौ युगे ।
एकमाध्वर्यवं त्वासीत्पुनर्द्वेधमजायत ।।१५
सामान्यविपरीतार्थैः कृतशास्त्राकुलं त्विदम् ।
आध्वर्यवस्य प्रस्थानैर्बहुधा व्याकुलीकृतैः ।।१६
तथैवाथर्वऋक्साम्नां विकल्पैश्चापि संज्ञया ।
व्याकुले द्वापरे नित्यं क्रियते भिन्नदर्शनैः ।।१७
तेषां भेदाः प्रतीभेदा विकल्पाश्चापि संख्यया ।
द्वापरे संप्रवर्त्तन्ते विनश्यंति ततः कलौ ।।१८
तेषां विपर्ययोत्पन्ना भवन्ति द्वापरे पुनः ।
अवृष्टिर्मरणं चैव तथैव व्याध्युपद्रवाः ।।१९
वाङ्मनः कर्मजैर्दुःखैर्निर्वेदो जायते पुनः ।
निर्वेदाज्जायते तेषां दुःखमोक्षविचारणा ।।२०
विचारणाच्च वैराग्यं वैराग्याद्दोषदर्शनम् ।
दोषदर्शनतश्चैव द्वापरेऽज्ञानसंभवः ।।२१

यह सब कुछ द्वापर युग में प्रवृत्त होते हैं और कलियुग में भी सभी भेद-प्रभेद निवृत्त हो जाते हैं। एक आध्वर्यव था और फिर दो प्रकार हो गये थे।१५। साधारण और विपरित अर्थों के द्वारा यह शास्त्र आकुल कर दिया गया था यह बहुधा आध्वर्यव के व्याकुली कृत प्रस्थानों के द्वारा ही हुआ था।१६। तथा अर्थात् उसी प्रकार से संज्ञा के द्वारा अथर्व-ऋक् और सामों के विकल्पों से भी हुआ था। नित्य ही इस तरह से व्याकुल द्वापर में विभिन्न दर्शन शास्त्रों के द्वारा किया जाता है।१७। संख्या से उनके भेद-प्रतीभेद-और विकल्प द्वापर युग में भली-भाँति प्रवृत्त होते हैं और फिर जब कलियुग आ जाता है तो सभी विनष्ट हो जाया करते हैं।१८। द्वापर में फिर

उनके विपरीत समुत्पन्न हो जाते हैं। वृष्टि का अभाव-व्याधि-उपद्रव-मरण-ये सब होते हैं।१९। कायिक, वाचिक और मानसिक सभी प्रकार के दुःख होते हैं और उन दुःखों के समुदाय से फिर मनों निर्वेद उत्पन्न हो जाता है। यह सभी निस्सार है—ऐसा जब निर्वेद हृदयों में होता है तो फिर उन प्राणियों के हृदयों में इन सब दुःखों से छुटकारा पाने का विचार होता है।२०। ऐसी जब विचारणा होती है तो उससे सबके प्रति विरागता हो जाया करती है और उस वैराग्य से भोगोपभोगों में दोषों का दर्शन होने लगता है। दोषों के देखने से ही द्वापर में अज्ञान की उत्पत्ति हो जाती है।२१।

तेषामज्ञानिनां पूर्वमाद्ये स्वायंभुवेऽन्तरे।
उत्पद्यंते हि शास्त्राणां द्वापरे परिपंथिनः ॥२२
आयुर्वेदविकल्पश्च ह्यङ्गानां ज्योतिषस्य च।
अर्थशास्त्रविकल्पाश्च हेतुशास्त्रविकल्पनम् ॥२३
प्रक्रियाकल्पसूत्राणां भाष्यविद्याविकल्पनम्।
स्मृतिशास्त्रप्रभेदश्च प्रस्थानानि पृथक्पृथक् ॥२४
द्वापरेष्वभिवर्त्तंते मतिभेदाश्रयान्नृणाम्।
मनसा कर्मणा वाचा कृच्छ्राद्वार्ता प्रसिद्ध्यति ॥२५
द्वापरे सर्वभूतानां कायक्लेशपुरस्कृता।
लोभो वृत्तिर्वणिक्पूर्वा तत्त्वानामविनिश्चयः ॥२६
वेदशास्त्रप्रणयनं धर्माणां संकरस्तथा।
वर्णाश्रमपरिध्वंसः कामक्रोधौ तथैव च ॥२७
द्वापरेषु प्रवर्त्तन्ते रोगो लोभो वधस्तथा।
वेदं व्यासश्चतुर्द्धा तु व्यस्यते द्वापरादिषु ॥२८

उन ज्ञान से रहित मानवों से पहिले स्वायम्भुव मन्वन्तर में जो कि सबसे पहिला है उस द्वापर में सभी शास्त्रों के परिपन्थी अर्थात् विरोध करने वाले लोग समुत्पन्न हो जाया करते हैं।२२। रोगों के विषय में आयुर्वेद शास्त्र का विकल्प और ज्योतिष शास्त्र का विकल्प-अर्थशास्त्र के विषय में विकल्प और हेतु शास्त्र का विकल्प है।२३। कल्पसूत्रों की प्रक्रिया, भाष्य विद्या का विकल्प और स्मृति शास्त्रों के प्रभेद ऐसे अलग-अलग प्रस्थान हैं

।२४। ये सभी द्वापर युग में मनुष्यों की बुद्धियों के भेद होने से अभिवर्तित हैं। मन से-वचन से और कर्म से बड़ी कठिनाई से वार्ता प्रसिद्ध होती है ।२५। द्वापर में समस्त प्राणियों के कार्य शारीरिक क्लेश के साथ ही होते हैं। सबकी वृत्ति होती है जैसी कि वणिजों की हुआ करती हैं और किसी को भी तत्वों का निश्चय नहीं होता है ।२६। लोग स्वयं ही वेदों और शास्त्रों का प्रणयन किया करते हैं और धर्म सब मिलकर एकमेक जाते हैं और धर्मों की सङ्करता हो जाती है। चारों वर्णों और चारों आश्रमों का पूर्णतया विध्वंस हो जाता है और प्राणियों में प्रायः काम और क्रोध उत्पन्न हो जाया करते हैं ।२७। द्वापर युग में लोगों के मनों में राग-लोभ और वध करने की भावनायें उत्पन्न हो जाया करती है। द्वापर के आदि में व्यासदेव जी ने वेद के चार भाग किये थे ।२८।

निःशेषे द्वापरे तस्मिंस्तस्य संध्या तु यादृशी ।
प्रतिष्ठितगुणैर्हीनो धर्मोऽसौ द्वापरस्य तु ॥२९
तथैव संध्या पादेन ह्यंगः संध्या इतीष्यते ।
द्वापरस्यावशेषेण तिष्यस्य तु निबोधत ॥३०
द्वापरस्यांशशेषेण प्रतिपत्तिः कलेरपि ।
हिंसासूयानृतं माया वधश्चैव तपस्विनाम् ॥३१
एते स्वभावास्तिष्यस्य साधयंति च वै प्रजाः ।
एष धर्मः कृतः कृत्स्नो धर्मश्च परिहीयते ॥३२
मनसा कर्मणा स्तुत्या वार्ता सिध्यति वा न वा ।
कलौ प्रमारको रोगः सततं क्षुद्भयानि च ॥३३
अनावृष्टिभयं घोरं देशानां च विपर्ययः ।
न प्रमाणं स्मृतेरस्ति तिष्ये लोकेषु वै युगे ॥३४
गर्भस्थो म्रियते कश्चिद्यौवनस्थस्तथापरः ।
स्थविराः केऽपि कौमारे म्रियन्ते वै कलौ प्रजाः ॥३५

द्वापरयुग के निःशेष होने पर उसकी सन्ध्या का काल भी वैसा ही था। द्वापर का यह धर्म गुणों से हीन प्रतिष्ठित होता है ।२९। उसी भाँति की पाद से सन्ध्या होती है। अङ्ग-ही सन्ध्या अभीष्ट हुआ करती है। द्वापर

के अवशेष से अब तिष्य के विषय में समझ लो ।३०। जब द्वापर युग का अंश शेष रहता है तभी कलियुग की भी प्रतिपत्ति हो जाया करती है । जो तपश्चर्या का समाचरण करने वाले हैं उनमें भी युग के प्रभाव से हिंसा—असूया—अनृत—माया और वध की भावनायें उत्पन्न हो जाती हैं ।३१। ये तिष्य (कलि) के स्वभाव हैं जिनका साधन प्रजा के जन किया करते हैं। यह ही किया गया पूर्ण धर्म हैं और वास्तविक जो भी धर्म है वह परिहीण हो जाया करता है ।३२। मन से-कर्म से और स्तुति से वार्त्ता सिद्ध होती है अथवा नहीं होती है। कलियुग में रोग प्रकृष्ट रूप से मारक होता है और क्षुधा तथा भय होते हैं ।३३। कलि में वृष्टि के समय पर न होने को घोर भय होता है तथा देशों का विपर्यय हो जाता है । कलियुग में लोगों में स्मृति का कोई भी प्रमाण नहीं माना जाता है। कोई तो माता के गर्भ में ही मृत्यु को प्राप्त हो जाता है, कोई युवावस्था में ही मर जाया करता है, कोई-कोई वृद्ध होकर मर जाते हैं। इस कलियुग में प्रजाजन कुमारावस्था में ही परलोक में चले जाया करते हैं ।३४-३५।

दुरिष्टैर्दुरधीतैश्च दुष्कृतैश्च दुरागमैः ।
विप्राणां कर्मदोषैस्तैः प्रजानां जायते भयम् ।।३६
हिंसा माया तथेर्ष्या च क्रोधोऽसूयाक्षमा नृषु ।
तिष्ये भवन्ति जंतूना रोगा लोभश्च सर्वशः ।।३७
संक्षोभो जायतेऽत्यर्थं कलिमासाद्य वै युगम् ।
पूर्णे वर्षसहस्रे वै परमायुस्तदा नृणाम् ।।३८
नाधीयंते तदा वेदान्न यजंते द्विजातयः ।
उत्सीदंति नराश्चैव क्षत्रियाश्च विशः क्रमात् ।।३९
शूद्राणामंत्ययोनेस्तु संबंधा ब्राह्मणैः सह ।
भवंतीह कलौ तस्मिञ्छयनासनभोजनैः ।।४०
राजानः शूद्रभूयिष्ठाः पाखंडानां प्रवर्त्तकाः ।
गुणहीनाः प्रजाश्चैव तदा वै संप्रवर्त्तते ।।४१
आयुर्मेधा बलं रूपं कुलं चैव प्रणश्यति ।
शूद्राश्च ब्राह्मणाचाराः शूद्राचाराश्च ब्राह्मणाः ।।४२

बुरे मनोरथ-असद् विषयों का अध्ययन—बुरे पाप कर्म-बुरे शास्त्र और प्रजाओं के कुत्सित कर्मों के दोषों से ही भय उत्पन्न हो जाया करता है ।३६। हिंसा-माया-ईर्ष्या-क्रोध-निन्दा और अक्षमा—राग और सब प्रकार लोभ कलियुग में जन्तुओं में और मनुष्यों में होते हैं ।३७। अत्यधिक संक्षोभ कलियुग के प्राप्त होने पर समुत्पन्न हो जाता है । उस समय में मानवों की परमायु पूरे सहस्र वर्ष की होती है ।३८। उस समय में द्विजातिगण वेदों का अध्ययन नहीं किया करते हैं और न वे यजन ही किया करते हैं । सभी नर-क्षत्रिय और वैश्य क्रम से उत्पन्न हो जाया करते हैं ।३९। शूद्रों के ब्राह्मणों साथ अन्त्यजों से सम्बन्ध होते हैं और उस कलियुग में शय-आसन और भोजन का सब परस्पर में सम्बन्ध किया करते हैं ।४०। राजाओं में बहुधा शूद्र वर्ण वालों की अधिकता होती है जो कि पाखण्डों के प्रवर्त्तक ही हुआ करते हैं । उस समय में प्रजाजनों में भी गुणों की हीनता संप्रवृत होती है ।४१। न तो मानवों में मेधा होती है और न उनकी कुछ आयु ही होती है । बल-रूप और कुल सभी विनष्ट हो जाया करते हैं । जो शूद्र वर्ण वाले मानव हैं उनके आचार तो ब्राह्मणों के समान होते हैं और ब्राह्मण शूद्रों के तुल्य आचरण किया करते हैं ।४२।

राजवृत्ताः स्थिताश्चोराश्चोराचाराश्च पार्थिवाः ।
भृत्या एते ह्यसुभृतो युगांते समवस्थिते ।।४३

अशीलिन्योऽनृताश्चैव स्त्रियो मद्यामिषप्रियाः ।
मायाविन्यो भवियंति युगांते मुनिसत्तम ।।४४

एकपत्न्यो न शिष्यंति युगांते मुनिसत्तम ।
श्वापदप्रबलत्वं च गवां चैव ह्युपक्षयः ।।४५

साधूनां विनिवृत्तिं च विद्यात्तस्मिन्युगक्षये ।
तदा धर्मो महोदर्को दुर्लभो दानमूलवान् ।।४६

चातुराश्रमशैथिल्यो धर्मः प्रविचरिष्यति ।
तदा ह्यल्पफला भूमिः क्वचिच्चापि महाफला ।।४७

न रक्षितारो भोक्तरो बलिभागस्य पार्थिवाः ।
युगान्ते च भविष्यंति स्वरक्षणपरायणाः ।।४८

अरक्षितारो राजानो विप्राः शूद्रोपजीविनः ।
शूद्राभिवादिनः सर्वो युगान्ते द्विजसत्तमाः ॥४६

चौर्य कर्म करने वाले पुरुष राजाओं के समान आचरण वाले हैं और जो पार्थिव हैं वे चोरों के समान आचरण करने वाले हैं । इस युग के अन्त समय के उपस्थित होने पर भृत्यगण प्राणों का भरण करने वाले हैं ।४३। नारियाँ शील से शून्य-मिथ्याचार वाली तथा मदिरा और मांस से प्रेम करने वाली होती हैं । हे मुनि श्रेष्ठ ! इस युग के अन्त में सभी स्त्रियाँ माया रखने वाली होती हैं ।४४। पुरुष भी एक ही पत्नी रखने के व्रत वाले नहीं होते हैं । हे मुनिसत्तम ! युग के अन्त समय में सर्वत्र ऐसा ही दिखलाई देता है । सब जगह अन्य पशुओं की प्रबलता होती है और गौओं के कुल का क्षय होता है ।४५। उस युग के क्षय में साधुजनों की विशेष रूप से निवृत्ति होती है । ऐसा ही जान लेना चाहिए । उस समय में अपने आपका बहुत ऊँचा उठाना ही धर्म है और दान के मूल वाला धर्म परम दुर्लभ होता है ।४६। ब्रह्मचर्य गार्हस्थ्य-वानप्रस्थ और संन्यास—इन चारों आश्रमों की शिथिलता वाला धर्म ही सब जगह चलेगा । उस समय में भूमि भी अल्प फल देने वाली होती है और कहीं पर महान् फल वाली होगी ।४७। राजा लोग केवल अपनी बलि का भोग करने वाले होंगे और प्रजा की रक्षा करने वाले नहीं होंगे । और युग के अन्त में ये नृपगण अपनी ही रक्षा करने में तत्पर रहा करेंगे । राजा लोग संरक्षण नहीं करने वाले और विप्रगण शूद्रों से उपजीविका चलाने वाले हो जायेंगे । और युग के अन्त में श्रेष्ठ द्विजगण भी शूद्रों के अभिवादन करने वाले हो जायेंगे ।४८-४९।

अट्टशूला जनपदाः शिवशूला द्विजास्तथा ।
प्रमदाः केशशूलाश्च युगान्ते समुपस्थिते ॥५०

तपोयज्ञफलानां च विक्रेतारो द्विजोत्तमाः ।
ऋतयश्च भविष्यंति बहवोऽस्मिन्कलौ युगे ॥५१

चित्रवर्षी यदा देवस्तदा प्राहुर्युगक्षयम् ।
सर्वे वाणिजकाश्चापि भविष्यंत्यधमे युगे ॥५२

भूयिष्ठं कूटमानैश्च पण्यं विक्रीणते जनाः ।
कुशीलचर्यापाखंडैर्व्यर्थरूपैः समावृतम् ॥५३

पुरुषाल्पं बहुस्त्रीकं युगान्तो समुपस्थिते ।
बाहुयाचनकी लोको भविष्यति परस्परम् ॥५४
अव्याकर्त्ता क्रूरवाक्या नार्जवो नानसूयक: ।
न क्रूरो प्रतिकर्त्ता च युगे क्षीणे भविष्यति ॥५५
अशंका चैव पतिते युगान्तो तस्य लक्षणम् ।
तत: शून्या वसुमती भविष्यति वसुन्धरा ॥५६

सभी जनपद अट्टालिकाओं के शूल वाले हैं और शिव के शूल वाले सब द्विजातिगण हैं। इस युगान्त से समुपस्थित होने पर सभी प्रमदायें केशों के शूल वाली हैं ।५०। श्रेष्ठ द्विज भी अपनी तपस्या और यज्ञों के फल को द्रव्य लेकर बेच देने वाले हो जायेंगे। इस कलियुग में काषाय वस्त्रों के धारण करने वाले बहुत से यतिगथ हो जायेंगे ।५१। जिस समय में विचित्र ढङ्ग से इन्द्रदेव वर्षा करने वाले हो जायेंगे उस समय में इस युग की क्षय कहते हैं। इस आधार युग में सभी वर्णों के मानव वाणिज्य व्यवसाय करने वाले हो जायेंगे ।५२। मनुष्य कूटमानों के द्वारा अधिक पण्य वस्तुओं का विक्रय किया करते हैं वह पण्य कुशील चर्या-पाखण्ड-ईर्ष्या और अन्धों से समावृत होगा ।५३। पुरुष के रूप से युक्त मनुष्य बहुत स्त्रियों वाला इस युग के अन्त के उपस्थित होने पर होंगे। लोग परस्पर में बहुत वाचना करने वाले होंगे ।५४। इस युग के क्षीण होने पर मनुष्य प्राय: अव्याकर्त्ता-क्रूर वाक्य बोलने वाला-कुटिल-निन्दक और किए हुए उपकार का प्रत्युपकार न करने वाला होगा ।५५। इस युग के अन्त में यही उसका लक्षण है कि पतित में कोई भी शंका नहीं होती है अर्थात् निश्शङ्क होकर पतित व्यक्ति से सम्बन्ध स्थापित रक्खा करते हैं। इसके पश्चात् यह वसुमती वसुन्धरा शून्य हो जायगी ।५६।

गोप्तारश्चाप्यगोप्तार: प्रभविष्यंति शासका: ।
हर्त्तार: पररत्नानां परदारविमर्शका: ॥५७
कामात्मानो दुरात्मानो ह्यधमा: साहसप्रिया: ।
प्रनष्टचेतना धूर्त्ता मुक्तकेशास्त्वशूलिन: ॥५८
ऊनषोडशवर्षाश्च प्रजायन्ते युगक्षये ।
शुक्लदंता जिताक्षाश्च मुण्डा: काषायवासस: ॥५९

शूद्रा धर्मं चरिष्यंति युगान्ते समुपस्थिते ।
सस्यचोरा भविष्यंति तथा चैलापहारिणः ॥६०
चोराच्चोराश्च हर्त्तारो हर्तुर्हर्त्ता तथापरः ।
ज्ञानकर्मण्युपरते लोके निष्क्रियतां गते ॥६१
कीटमूषकसर्पाश्च धर्षयिष्यंति मानवान् ।
अभीक्ष्णं क्षेममारोग्यं सामर्थ्यं दुर्लभं तथा ॥६२
कौशिकान्प्रतिवत्स्यंति देशाः क्षुद्भयपीडिताः ।
दुःखेनाभिप्लुतानां च परमायुः शतं तदा ॥६३

जो रक्षक हैं वे भी रक्षा नहीं करने वाले शासक हो जायेंगे । ये दूसरों के रत्नों का हरण करने वाले तथा दूसरों की स्त्रियों से विमर्श करने वाले हो जायेंगे ।५८। सभी लोग काम वासना से परिपूर्ण—दुष्ट भावों वाले—बहुत अशुभ और दुस्साहस से प्रेम करने वाले—नष्ट चेष्टा वाले—धूर्त—अमूली केशों को खुले हुए रखने वाले होंगे ।५८। इस युग के क्षय में सोलह वर्ष से भी छोटी उम्र वाले सन्तान का प्रजानन किया करते हैं । शुक्ल वस्त्रों वाले—जिताक्ष—मुण्डित शिर वाले और काषाय रङ्ग के वस्त्रों के धारण करने वाले होंगे ।५९। युगान्त के उपस्थित होने पर शूद्र लोग धर्म का आचरण करेंगे । लोग धान तथा फसल की चोरी करने वाले और वस्त्रों का अपहरण करने वाले होंगे ।६०। चोर से हरण करने वाले चोर तथा हरणकर्त्ता से दूसरे हरण करने वाले हो जायेंगे । ज्ञान पूर्वक कर्मों के उपरत हो जाने पर समस्त लोक निष्क्रियता को प्राप्त हो जायगा ।६१। कीड़े-मूषक और सर्प मानवों को प्रधर्षित करेंगे । उसी प्रकार से बराबर क्षेम कुशल-आरोग्य और सामर्थ्य सभी बहुत दुर्लभ हो जायेंगे । भूख के भय से पीड़ित मनुष्यों के देश कौशिकों को प्रति वास दिया करेंगे । इस प्रकार से दुःखों से जब मनुष्य पूर्ण रूप से अभिप्लुत होंगे तो उनकी उस समय से परमायु सौ वर्ष की ही रह जायगी ।६२-६३।

दृश्यंते च न दृश्यंते वेदा कलियुगेऽखिलाः ।
उत्सीदन्ते तथा यज्ञाः केवलाधर्मपीडिताः ॥६४
वेदविक्रयिणश्चान्ये तीर्थविक्रयिणोऽपरे ॥६५

वर्णाश्रमाणां ये चान्ये पाखण्डाः परिपंथिनः ।
उत्पद्यंते तदा ते वै संप्राप्ते तु कलौ युगे ।।६६
अधीयंते तदा वेदाञ्छूद्रा धर्मार्थकोविदाः ।
यजंते चाश्वमेधेन राजानः शूद्रयोनयः ।।६७
स्त्रीबालगोवधं कृत्वा हत्वान्ये च परस्परम् ।
अपहृत्य तथाऽन्योन्यं साधयंति तदा प्रजाः ।।६८
दुःखप्रवचनाल्पायुर्देहाल्पायुश्च रोगतः ।
अधर्माभिनिवेशित्वात्तमोवृत्तं कलौ स्मृतम् ।।६९
प्रजासु भ्रूणहत्या च तदा वैरात्प्रवर्त्तते ।
तस्मादायुर्बलं रूपं कलिं प्राप्य प्रहीयते ।।७०

इस कलियुग में समस्त वेद दिखलाई दिया करते हैं अथवा नहीं दिखाई देते हैं। उसी प्रकार से इसलिए यज्ञ अधर्म से पीड़ित होकर दुःखित होते हैं ।६४। इस घोर कलियुग के सम्प्राप्त होने पर इस जगती तल में कषाय वर्ण को वस्त्र धारण करने वाले संन्यासी के वेषधारी—निर्ग्रन्थ तथा कापालक लोग बहुत दिखाई दिया करते हैं। कुछ अन्य वेदों का विक्रय करने वाले हैं अर्थात् धन लेकर वेद के मन्त्रों को पढ़ने वाले हैं और दूसरे तीर्थों को बेचने वाले हैं और अन्य लोग ऐसे हैं जो वर्णों और आश्रमों का कोश पाखण्ड दिखाया करते हैं और वास्तव में इन वर्णाश्रमों के विरोधी शत्रु होते हैं। ऐसे ही लोग बहुधा उत्पन्न हो जाता करते हैं ।६५-६६। धर्म के अर्थ के पण्डित बनने वाले शूद्र लोग उस समय में वेदों का अध्ययन किया करते हैं जिनको वेदों के पढ़ने का शास्त्रानुसार कभी भी अधिकार नहीं होता है। शूद्र योनि वाले अश्वमेध यज्ञ का यजन किया करते हैं ।६७। वह ऐसा महान् घोर समय होगा कि उसमें स्त्रियों का—गौओं का और छोटे-छोटे निरीह बालकों का वध करके और आपस में ही एक दूसरे का वध दूसरे लोग किया करते हैं तथा पारस्परिक वध करके ही प्रजा का साधन किया करते हैं ।६८। दुःखों के तथा मिथ्या प्रवचनों के होने से अल्प आयु हो जाती है और रोगों के कारण भी उम्र छोटी हो जाया करती है। सबके हृदयों में अधर्म का ही विशेष अभिनिवेश होने से इस कलियुग में सर्वत्र तमोगुण का ही बोलबाला रहेगा ऐसा बताया गया है ।६९। उस समय

में प्रजाओं में भ्रूणों की अर्थात् गर्भस्थ शिशुओं की हत्याएं वैर के कारण हुआ करेगी। इसी कारण से कलियुग को प्राप्त करके लोगों की आयु-बल विक्रम तथा रूप का सौन्दर्य सभी नष्ट हो जाया करते हैं।७०।

तदा चाल्पेन कालेन सिद्धिं गच्छंति मानवाः ।
धन्या धर्मं चरिष्यंति युगान्ते द्विजसत्तमाः ।।७१
श्रुतिस्मृत्युदितं धर्मं ये चरंत्यनसूयकाः ।
त्रेतायामाब्दिको धर्मो द्वापरे मासिकः स्मृतः ।।७२
यथाशक्ति चरन्प्राज्ञस्तदह्ना प्राप्नुयात्कलौ ।
एषा कलियुगावस्था संध्यांशं तु निबोधत ।।७३
युगे युगे तु हीयंते त्रिस्त्रिपादास्तु सिद्धयः ।
युगस्वभावात्संध्यासु तिष्ठन्तीह तु यादृशः ।।७४
संध्यास्वभावाः स्वांशेषु पादशेषाः प्रतिष्ठिताः ।
एवं संध्यांशके काले संप्राप्ते तु युगांतिके ।।७५
तेषां शास्ता ह्यसाधूनां भृगूणां निधनोत्थितः ।
गोत्रेण वै चन्द्रमसो नाम्ना प्रमतिरुच्यते ।।७६
माधवस्य तु सोंऽशेन पूर्वं स्वायंभुवेऽन्तरे ।
समाः स विंशतिः पूर्णाः पर्यटन्वै वसुंधराम् ।।७७

उस कलियुग में मनुष्य थोड़े समय में सिद्धि को प्राप्त कर लिया करते हैं—इस युग की विशेषता है। इस युग के अन्त में वे मानव और श्रेष्ठ द्विज परम धन्य हैं जो धैर्य का समाचरण किया करते हैं।७१। जो अनिन्दित मानव श्रुति और स्मृतियों में कहे हुए धर्म का समाचरण किया करते हैं। ऐसा धर्म त्रेतायुग में एक वर्ष में बलवान् एवं पूर्ण होता है वही धर्म द्वापर में एक मास में साङ्ग सफल होता है और वही धर्म इस कलियुग में अपनी शक्ति के अनुसार समाचरित होने पर एक ही दिन में प्राज्ञ प्राप्त कर लिया करता है। यह कलियुग के समय की अवस्था है अब इस कलि के सन्ध्या का अंश समझ लो।७२-७३। युग-युग में सिद्धियाँ तीन-तीन पाद क्षीण हुआ करती हैं जैसा भी युग-स्वभाव से सन्ध्याओं में यहाँ पर स्थित रहा करती हैं जैसा भी युग का स्वभाव हो।७४। उनके अपने अंशों में संध्या के

स्वभाव पाद शेष प्रतिष्ठित होते हैं। इसी प्रकार से युगान्तिक काल के सम्प्राप्त होने पर सन्ध्या के अंश में होता है।७५। उन असाधु भृगुओं का शासन करने वाला निधनोत्थित है। वह चन्द्रमा के गोत्र से है और नाम से प्रमति कहा जाया करता है।७६। वह पूर्व स्वायम्भुव अन्तर में माधव के अंश से पूर्ण बीस पर्यन्त इस वसुन्धरा पर पर्य्यटन करता था।७७।

अनुकर्षन्स वै सेनां सवाजिरथकुंजराम्।
प्रगृहीतायुधैर्विप्रैः शतशोऽथ सहस्रशः ॥७८
स तदा तैः परिवृतो म्लेच्छान्हंति स्म सर्वशः।
सह वा सर्वशश्चैव राज्ञस्ताञ्छूद्रयोनिजान् ॥७९
पाखण्डांस्तु ततः सर्वान् निःशेषं कृतवान्विभुः।
तात्यर्थं धार्मिका ये च तान्सर्वान्हंति सर्वशः ॥८०
वर्णव्यत्यासजाताश्च ये चताननुजीविनः।
उदीच्यान्मध्यदेश्यांश्च पर्वतीयांस्तथैव च ॥८१
प्राच्यान्प्रतीच्यांश्च तथा विंध्यपृष्ठचरानपि।
तथैव दाक्षिणात्यांश्च द्रविडान्सिंहलैः सह ॥८२
गांधारान्पारदांश्चैव पह्लवान्यवनाञ्छकान्।
तुषारान्बर्बरांश्चीनाञ्छूलिकान्दरदान् खशान् ॥८३
लंपाकारान्सकलकान्किरातानां च जातयः।
प्रवृत्तचक्रो बलवान्म्लेच्छानामंतकृत्प्रभुः ॥८४

वह घोड़े-रथ और हाथियों के सहित सेना का अनुकर्षण करके सैकड़ों सहस्रों की संख्या में हथियार ग्रहण करने वाले विप्रों से समन्वित था।७८। उस समय में इन सबसे परिवृत होते हुए उसने सभी ओर से म्लेच्छों का हनन किया था। इनके साथ ही अथवा सभी ओर से उन शूद्र योनि में समुत्पन्न राजाओं का भी हनन कर दिया था।७९। पाखण्ड से जो परिपूर्ण थे फिर उन सबका उस विभु ने कर दिया था। जो अत्यधिक कर्म के मानने वाले नहीं थे उन सबको सभी ओर में पूर्णतया हनन करता है।८०। जो लोग वर्णों के व्यत्यास से समुत्पन्न हुए थे अर्थात् वर्णसङ्कर थे और जो उनके अनुजीवी थे। चाहे वे उत्तर दिशा में रहने वाले होवें या

अन्य देश के होवें तथा पर्वतों में निवास करने वाले होवें ।८१। दिशा में रहने वाले हों या पश्चिम में रहते हों अथवा विन्ध्याचल के पृष्ठ पर सञ्चरण करने वाले भी होवें । उसी भाँति जो दाक्षिणात्य थे, द्रविड़ थे और सिंहल थे ।८२। गान्धार-पारद-पह्लव-यवन-शक-तुषार-बर्बर-चीन-शूलिक-दरद-खश । लम्पाकार-सकतक और जो भी किरातों की जातियाँ थीं । इन सभी का म्लेच्छों का वह बलशाली प्रभु चक्र ग्रहण करके अन्त कर देने वाला था ।८३-८४।

अदृष्टः सर्वभूतानां चचाराथ वसुन्धराम् ।
माधवस्य तु सोंऽशेन देवस्येह विजज्ञिवान् ।।८५
पूर्वजन्मनि विख्यातः प्रमतिर्नाम वीर्यवान् ।
गोत्रतो वै चंद्रमसः पूर्वे कलियुगे प्रभुः ।।८६
द्वात्रिंशेऽभ्युदिते वर्षे प्रक्रांतो विंशतीः समाः ।
विनिघ्नन्सर्वभूतानि मानवानेव सर्वशः ।।८७
कृत्वा बीजावशेषां तु पृथ्व्यां क्रूरेण कर्मणा ।
परस्परं निमित्तेन कोपेनाकस्मिकेन तु ।।८८
सुसाधयित्वा वृषलान्प्रायशस्तानधार्मिकान् ।
गंगायमुनयोर्मध्ये निष्ठां प्राप्तः सहानुगः ।।८९
ततो व्यतीते कल्पे तु सामान्ये सहसैनिकः ।
उत्साद्य पार्थिवान्सर्वान्म्लेच्छांश्चैव सहस्रशः ।।९०
तत्र संध्यांशके काले संप्राप्ते तु युगांतके ।
स्थितस्वल्पावशिष्टासु प्रजास्विह क्वचित्क्वचित् ।।९१

समस्त प्राणियों के दर्शन में न आने वाला वह सम्पूर्ण वसुन्धरा पर विचरण किया करता था । वह वहाँ पर देव माधव के अंश से जाना गया था ।८५। वह पूर्व जन्म में महान् वीर्य वाला प्रमति के नाम से प्रसिद्ध था । वह प्रभु पूर्व कलियुग में चन्द्रमा के गोत्र से था ।८६। बत्तीसवें वर्ष के अभ्युदित हो जाने पर वह बीस वर्ष तक प्रक्रान्त हुआ था । सभी प्राणियों का और सभी ओर में मानवों का विहनन करते हुए उसने परिभ्रमण किया था ।८७। अकस्मात् परस्पर में समुत्पन्न कोप से उसने क्रूर कर्म से पृथ्वी में बीजावशेष कर दिया था । उसमें जो वृषल थे उनको और प्रायः अधार्मिक

माधवों का सुसाधित किया था उसने अपने अनुचरों के साथ गंगा और यमुना के मध्य में बड़ी निष्ठा प्राप्त करली थी ।८८-८९। इसके अनन्तर सामान्य कल्प के व्यतीत हो जाने पर अपने सैनिकों के साथ रहकर सभी सहस्रों म्लेच्छों को और राजाओं का उत्पादन कर दिया था ।९०। यहाँ पर युग के अन्त कर लेने वाले सन्ध्या के अंश के सम्प्राप्त होने पर यहाँ पर कहीं-कहीं पर बहुत ही थोड़ी प्रजा अवशिष्ट रह गयी थी ।९१।

अपग्रहास्ततस्ता वै लोभाविष्टास्तु वृंदशः ।
उपहिंसंति चान्योन्यं पीथयंतः परस्परम् ॥९२
अराजके युगवशात्संक्षये समुपस्थिते ।
प्रजास्ता वै ततः सर्वाः परस्परभयार्दिताः ॥९३
व्याकुलाश्च परिभ्रांतास्त्यक्त्वा दारान्गृहाणि च ।
स्वान्प्राणाननपेक्षंतो निष्कारणसुदुःखिताः ॥९४
नष्टे श्रौते स्मृतौ धर्मे परस्परहतास्तदा ।
निर्मर्यादा निराक्रन्दा निःस्नेहा निरपत्रपाः ॥९५
नष्टे धर्मे प्रतिहता ह्रस्वकाः पंचविंशतिम् ।
हित्वा पुत्रांश्च दारांश्च विषादव्याकुलेंद्रियाः ॥९६
अनावृष्टिहताश्चैव वार्त्तामुत्सृज्य दुःखिताः ।
प्रत्यंतांस्ता निषेवंते हित्वा जनपदान्स्वकान् ॥९७
सरितः सागरानूपान्सेवंते पर्वतांस्तथा ।
मांसैर्मूलफलैश्चैव वर्तयंतः सुदुःखिताः ॥९८

वे अप ग्रहण करने वाले तथा झुण्ड के झुण्ड लोभ में आविष्ट हुए परस्पर में एक दूसरे का पीथन करते हुए उपहनन किया करते हैं ।९२। जब कोई भी समुचित शासन करने वाला नहीं था और सर्वत्र अराजकता फैली हुई थी तथा युग के प्रभाव के कारण सर्वत्र संशय प्राप्त हो गया था । फिर वह सभी प्रजा आपस में भय से उत्पीड़ित हो गये थे ।९३। वे सब बहुत व्याकुल हो गये थे और अपनी पत्नियों तथा गृहों को भी छोड़कर इधर-उधर परिभ्रमण कर रहे थे । बिना ही किसी कारण के बहुत अधिक दुःखित होकर अपने प्राणों की अपेक्षा नहीं करने वाले हो गये थे ।९४। श्रौत

और स्मार्त्त धर्म के विनष्ट हो जाने पर वे उस समय में हत हो रहे थे। उन्होंने अपनी मर्यादा का त्याग कर दिया था और वे निराक्रन्द हो गये थे उनमें किसी के प्रति भी स्नेह नहीं था तथा वे लज्जाहीन हो गये थे ।९५। धर्म के विनष्ट हो जाने पर वे छोटे पच्चीस वर्ष में ही प्रतिहत हो जाते हैं। वे अपने पुत्रों को–पत्नियों को छोड़कर विवाद से व्याकुलित इन्द्रियों वाले हो जाते हैं ।९६। वर्षा न होने के कारण बहुत हत हो जाया करते हैं और वार्त्ता को त्याग कर परम दुःखित होते हैं। वे सम प्रजाजन अपने जनपदों को त्याग कर प्रत्यन्तों का सेवन किया करते हैं ।९७। कुछ लोग नदियों का—सागरों का—अनूपों का और पर्वतों का सेवन किया करते हैं और परम दुःखित होते हुए अपनी उदरपूर्ति मांस और मूलों के द्वारा किया करते हैं ।९८।

चीरपत्राजिनधरा निष्क्रिया निष्परिग्रहाः ।
वर्णाश्रमपरिभ्रष्टाः संकरं घोरमास्थिताः ।
एतां काष्ठामनुप्राप्ता अल्पशेषाः प्रजास्ततः ॥९९
जराव्याधिक्षुधाविष्टा दुःखान्निर्वेदमागमत् ।
विचारणा तु निर्वेदात्साम्यावस्था विचारणात् ॥१००
साम्यावस्थात्मको बोधः संबोधाद्धर्मशीलता ।
तासूपशमयुक्तासु कलिशिष्टासु वै स्वयम् ॥१०१
अहोरात्रं तदा तासां युगान्ते परिवर्त्तिनि ।
चित्तसंमोहनं कृत्वा तासां वै सुप्तमत्तवत् ॥१०१
भाविनोऽर्थस्य च बलात्ततः कृतमवर्त्तत ।
प्रवृत्ते तु ततस्तस्मिन्पूते कृतयुगे तु वै ॥१०३
उत्पन्नाः कलिशिष्टासु प्रजाः कार्तयुगास्तदा ।
तिष्ठंति चेह ये सिद्धा अदृष्टा विचरंति च ॥१०४
सह सप्तर्षिभिश्चैव तत्र ते च व्यवस्थिताः ।
ब्रह्मक्षत्रविशः शूद्रा बीजार्थं ये स्मृता इह ॥१०५

वस्त्रों के अभाव में सब लोग चीर, पत्र और चर्म को धारण करने वाले हैं। उनके पास कोई भी काम नहीं है अर्थात् एकदम कर्म शून्य है

और न उनके पास कुछ समान है। वर्णों और आश्रमों से परिभ्रष्ट हैं अर्थात् न उनका कोई वर्ण है और न कोई आश्रम ही रहा गया है। वे सब परम घोर सङ्कर में समास्थित है। बहुत ही थोड़े से बचे ने प्रजाजन फिर इस दिशा में आकर प्राप्त हुए हैं।६६। वे बुढ़ापे और व्याधियों तथा भूख से समाविष्ट हैं और परमाधिक दुःख से निर्वेद को प्राप्त हो गये हैं। निर्वेद से उनको विचारणा उत्पन्न हुई और विचारणा से वे साम्य की अवस्था को प्राप्त हो गये हैं।१००। साम्यावस्था के स्वरूप वाला उनको बोध हो गया था और उस भले ज्ञान से धर्म का स्वभाव हो गया था। कलि में शिष्ट वे स्वयं उपशम से अवस्था में प्राप्त हो गये थे।१०१। उस समय मैं उनके अहो-रात्र (रात दिन) युगान्त के परिवर्त्तित होने पर उनके चित्त का संमोहन हो गया था और वे सब एक सोये हुए तथा प्रमन्त व्यक्ति के समान ही हो गये थे।१०२। यह सब आगे होने वाले अर्थ के ही कारण से बलात् हुआ था। इसके अनन्तर कृतयुग हुआ था। फिर उस परम पूत कृतयुग के प्रवृत्त हो जाने पर उस समय में जो कलियुग में अवशिष्ट प्रजाएँ थीं उनमें सतयुग में होने वाली प्रजा ने जन्म ग्रहण किया था। जहाँ पर जो भी सिद्ध स्थित रहते हैं वे बिना किसी के द्वारा देखे गुप्त स्वरूप से विचरण किया करते हैं। वहाँ पर वे सप्तर्षियों के साथ व्यवस्थित हैं। यहाँ पर जो बीच के लिये ब्राह्मण-क्षत्रिय-वैश्य और शूद्र कहे गये हैं।१०३-१०४-१०५।

कलिजैः सह ते संति निर्विशेषास्तदाभवत्।
तेषां सप्तर्षयो धर्मं कथयंतीतरेषु च ॥१०६
वर्णाश्रमाचारयुक्तः श्रौतः स्मार्त्तो द्विधा तु सः।
ततस्तेषु क्रियावत्सु वर्तंते वै प्रजाः कृते ॥१०७
श्रौतस्मार्त्ते कृतानां च धर्मे सप्तर्षिदर्शिते।
केचिद्धर्मव्यवस्थार्थं तिष्ठंतीहायुगक्षयात् ॥१०८
मन्वंतराधिकारेषु तिष्ठंति मुनयस्तु वै।
यथा दावप्रदग्धेषु तृणेष्विह तपेन तु ॥१०९
वनानां प्रथमं वृष्ट्या तेषां मूलेषु संभवः।
तथा कार्तयुगानां तु कलिजेष्विह संभवः ॥११०
एवं युगो युगस्येह संतानस्तु परस्परम्।

वर्त्तंते ह्यव्यवच्छेदाद्यावन्मन्वंतरक्षयः ॥१११
सुखमायुर्बलं रूपं धर्मोऽर्थः काम एव च ।
युगेष्वेतानि हीयंते त्रित्रिपादाः क्रमेण च ॥११२

वे सब कलियुग में समुत्पन्न हुओं के साथ ही हैं और उस समय में विशेषता से रहित ही हैं। उनके इतरों में यहाँ पर सप्तर्षिगण धर्म को कहते हैं ।१०६। वह धर्म वर्णों और आश्रमों से आचार से युक्त वैदिक तथा स्मृतियों के द्वारा प्रतिपादित दो प्रकार का है । इसके अनन्तर कृतयुग में उन क्रियाशीलों में निश्चय ही प्रजा होती है ।१०७। कृतयुग के मनुष्यों का सप्तर्षियों के द्वारा प्रदर्शित श्रौत और स्मार्त धर्म हैं। यहाँ पर कुछ लोग धर्म की व्यवस्था के लिए युगक्षय से स्थित रहते हैं ।१०८। मन्वन्तर के अधिकारों मुनिगण स्थित रहा करते हैं जिस प्रकार से ताप दावाग्नि के द्वारा प्रदग्ध तृणों में रहते हैं ।१०९। प्रथम वृष्टि से उन बनों के भूतों में समुत्पिति होती है। ठीक उसी भाँवि कलियुग में समुत्पन्न व्यक्तियों से कृतयुग के व्यक्तियों की उत्पत्ति होती है ।११०। इसी रीति से यहाँ पर युग की ही सन्तान परस्पर में युग हुआ करता है । जब तक वर्तमान मन्वन्तर का क्षय होता है तब तक बिना किसी व्यवच्छेद के इसी प्रकार से युग से दूसरे युग की समुत्पत्ति हुआ करती है ।१११। निम्न सब बातें सुख-आयु-बल रूप-धर्म-अर्थ और काम ये सभी क्रम से युगों में तीन-तीन पाद क्षीण हुआ करते हैं ।११२।

ससंध्यांशेषु हीयंते युगानां धर्मसिद्धयः ।
इत्येष प्रतिसंधिर्यः कीर्त्तितस्तु मया द्विजाः ॥११३
चतुर्युगानां सर्वेषामेतेनैव प्रसाधनम् ।
एषा चतुर्युगावृत्तिरासहस्राद्गुणीकृता ॥११४
ब्रह्मणस्तदहः प्रोक्तं रात्रिश्चैतावती स्मृता ।
अत्रार्जवं जडीभावो भूतानामायुगक्षयात् ॥११५
एतदेव तु सर्वेषां युगानां लक्षणं स्मृतम् ।
एषा चतुर्युगानां च गुणिता ह्येकसप्ततिः ॥११६
क्रमेण परिवृत्ता तु मनोरंतरमुच्यते ।

चतुर्युगे यथैकस्मिन्भवतीह यथा तु यत् ।।११७
तथा चान्येषु भवति पुनस्तद्वद्यथाक्रमम् ।
सर्गे सर्गे तथा भेदा उत्पद्यंते तथैव तु ।।११८
पंचत्रिंशत्परिमिता न न्यूना नाधिकाः स्मृताः ।
कथा कल्पा युगैः सार्द्धं भवंति सह लक्षणैः ।
मन्वंतराणां सर्वेषामेतदेव तु लक्षणम् ।।११९

सन्ध्यांशों में युगों की धर्म सिद्धियों का ह्रास हुआ करता है। इस प्रकार से यह जो प्रति सन्धि है। हे द्विजो ! मैंने कीर्त्तित कर दी हैं।११३। इसी से चारों युगों का सबका प्रसाधन है। यह चारों युगोंकी आवृत्ति सहस्र से लेकर गुणीकृत है।११४। यह ब्रह्मा का दिन कहा गया है। जितना बड़ा दिन होता है उतनी ब्रह्माजी की रात्रि हुआ करती है। यहाँ पर युग क्षय से लेकर भूतों का जो सोधापन है वह जड़ी मान होता है।११५। यही ही समस्त युगों का लक्षण कहा गया है। यह चारों युगों की चौकड़ी अब इकहत्तर हो जाया करती।११६। जब क्रम से यह चौकड़ियाँ इकहत्तर समाप्त होकर दूसरी बदलती हैं तभी दूसरे मनु का अन्तर हुआ करता है। चारों युगों की चौकड़ी में किस प्रकार से यहाँ होती है उसी प्रकार से यह होता है।११७। उसी भाँति अन्यों में होता है और फिर उसी के समान यथा क्रम से हुआ करता है। उसी प्रकार से प्रत्येक सर्ग में भेद उत्पन्न हुआ करते हैं।११८। ये पैंतीस परिमित ही हैं और न इनसे कम हैं और न अधिक होते हैं ऐसा ही बताया गया है। उसी रीति से कल्प युगों के साथ लक्षणों के होते हैं। समस्त मन्वन्तर का यह ही लक्षण होता है।११९।

यथा युगानां परिवर्त्तनानि चिरप्रवृत्तानि युगस्वभावात् ।
तथा न संतिष्ठति जीवलोकः क्षयोदयाभ्यां परिवर्त्तमानः।१२०
इत्येतल्लक्षणं प्रोक्तं युगानां वै समासतः ।।१२१
अतीतानागतानां हि सर्वमन्वंतरेष्विह ।
मन्वंतरेण चैकेन सर्वाण्येवांतराणि वै ।।१२२
ख्यातानीह विजानीध्वं कल्पं कल्पेन चैव ह ।
अनागतेषु तद्वच्च तर्कः कार्यो विजानता ।।१२३

मन्वंतरेषु सर्वेषु अतीतानागतेष्विह ।
तुल्याभिमानिनः सर्वे नामरूपैर्भवंत्युत ॥१२४
देवा ह्यष्टविधा ये वा इह मन्वंतरेश्वराः ।
ऋषयो मनवश्चैव सर्वे तुल्याः प्रयोजनैः ॥१२५
एवं वर्णाश्रमाणां तु प्रविभागं पुरा युगे ।
युगस्वभावांश्च तथा विधत्ते वै सदा प्रभुः ॥१२६
वर्णाश्रमविभागाश्च युगानि युगसिद्धयः ।
अनुषंगात्समाख्याताः सृष्टिसर्गं निबोधत ।
विस्तरेणानुपूर्व्यां च स्थितिं वक्ष्ये युगेष्विह ॥१२७

जिस तरह से युगों के परिवर्त्तन युगों के स्वभाव से चिरप्रवृत्त होते हैं उस प्रकार से क्षय और उदय से परि-वर्त्तमान जीव लोक भली भाँति स्थित नहीं रहता है ।१२०। बहुत ही संक्षेप के साथ यह इतना ही युगों का लक्षण बताया गया है ।१२१। यहाँ पर मन्वन्तरों में जो बीत चुके हैं तथा जो अनागत हैं उनका सब यही है और एक मन्वन्तर के द्वारा ही समस्त अन्तर होते हैं ।१२२। कल्प से कल्प जो होता है वे सब विख्यात हैं उनको जान लो । जो अभी तक नहीं आये हैं उनमें ज्ञान पुरुष के द्वारा उसी प्रकार से तर्क कर लेना चाहिए ।१२३। समस्त मन्वन्तरों में व्यतीत हो गये हैं और जो अनागत हैं उनमें यहाँ पर नाम और रूपों से सब तुल्य अभिमान वाले हैं ।१२४। जो आठ प्रकार के देवगण हैं अथवा यहाँ पर मन्वन्तरेश्वर हैं । ऋषिगण और मनुगण सब प्रयोजनों से तुल्य हैं ।१२५। इस तरह से पहिले युग में वर्णों और आश्रमों के प्रकृष्ट विभाग को और युगों के स्वभावों को सदा प्रभु किया करते हैं ।१२६। वर्णाश्रमों के विभाग युग और युगों की सिद्धियाँ अनुषंग से यह कह दिये गये हैं । अब सृष्टि के सर्ग को समझ लो । यहाँ पर युगों में विस्तार के साथ और आनुपूर्वी से अर्थात् आरम्भ से अन्त तक क्रम में से स्थिति का वर्णन करूँगा ।१२७।

—×—

॥ परशुराम का संवाद ॥

वसिष्ठ उवाच—इत्थं प्रवर्त्तमानस्य जमदग्नेर्महात्मनः ।
वर्षाणि कतिचिद्राजन्व्यतीयुरमितौजसः ॥१

रामोऽपि नृपशार्दूल सर्वधर्मभृतां वरः ।
वेदवेदांगतत्त्वज्ञः सर्वशास्त्रविशारदः ॥२
पित्रोश्चकार शुश्रूषां विनीतात्मा महामतिः ।
प्रीतिं च निजचेष्टाभिरन्वहं पर्यवर्त्तयत् ॥३
इत्थं प्रवर्त्तमानस्य वर्षाणि कतिचिन्नृप ।
पित्रोः शुश्रूषयानैषीद्रामो मतिमतां वरः ॥४
स कदाचिन्महातेजाः पितामहगृहं प्रति ।
गन्तुं व्यवसितो राजन्दैवेन च नियोजितः ॥५
निपीड्य शिरसा पित्रोश्चरणौ भृगुपुंगवः ।
उवाच प्रांजलिर्भूत्वा सप्रश्रयमिदं वचः ॥६
कंचिदर्थमहं तात मातरं त्वां च साम्प्रतम् ।
विज्ञापयितुमिच्छामि मम तच्छ्रोतुमर्हथः ॥७

श्री वसिष्ठजी ने कहा—हे राजन् ! अमित ओज से समन्वित महान् आत्मा वाले जमदग्नि के इस प्रकार से प्रवृत्तमान होते हुए कुछ वर्ष व्यतीत हो गये थे ।१। हे नृपशार्दूल । समस्त धर्मों के धारण करने वालों में परम-श्रेष्ठ राम भी वेदांग के तत्वों के ज्ञाता और सब शास्त्रों के विशारद थे ।२। महान् मति से समन्वित और विनीत आत्मा वाले उनने अपने माता-पिता की शुश्रूषा की थी और निज की चेष्टाओं से प्रतिदिन प्रीति को बढ़ा दिया था ।३। बुद्धिमानों में परम श्रेष्ठ राम ने हे नृप ! माता-पिता की शुश्रूषा के द्वारा इस तरहसे प्रवृत्त मान होते हुए कुछ वर्ष बिता दिये थे ।४। हे राजन् ! किसी समय में महान् तेज वाले पितामह ने उस परम दृढ़ की ओर गमन करने का निश्चय दैव के द्वारा नियोजित होते हुए किया था ।५। भृगु पुंगव ने माता-पिता के चरणों में अपना शिर रखकर अपने दोनों हाथ जोड़ते हुए नम्रता पूर्वक यह वचन बोले थे ।६। हे तात ! इस समय में आपके और माता के समक्ष में कुछ अर्थ विज्ञापित करने की अभिलाषा रखता हूँ । आप मेरी उस अभिलाषित को श्रवण करने के योग्य होते हैं ।७।

पितामहमहं द्रष्टुमुत्कंठितमनाश्चिरम् ।
तस्मात्तत्पार्श्वमधुना गमिष्ये वामनुज्ञया ॥८
आहूतश्चासकृत्तात सोत्कंठं प्रीयमाणया ।

पितामह्या बहुमुखैरिच्छंत्या मम दर्शनम् ।।६
पितॄन्पितामहस्यापि प्रियमेव प्रदर्शनम् ।
मदीयं तेन तत्पार्श्वं गन्तुं मामनुजानत ।।१०
वसिष्ठ उवाच—इति तस्य वचः श्रुत्वा संभ्रांतं समुदीरितम् ।
हर्षेण महता युक्तौ साश्रुनेत्रौ बभूवतुः ।।११
तमालिंग्य महाभागं मूर्ध्न्युपाघ्राय सादरम् ।
अभिनंद्याशिषा तात ह्युभौ ताविदमाहतुः ।।१२
पितामहगृहं तात प्रयाहि त्वं यथासुखम् ।
पितामहपितामह्योः प्रीतये दर्शनाय च ।।१३
तत्र गत्वा यथान्यायं तं शुश्रूषापरायणः ।
कंचित्कालं तयोर्वत्स प्रीतये वस तद्गृहे ।।१४

मैं अधिक समय से पितामह के दर्शन करने के लिए उत्कण्ठित मन वाला हो रहा हूँ। इस कारण से आप दोनों की आज्ञा से इस समय में उनके समीप में गमन करूँगा ।८। हे तात ! बड़े प्रसन्न मन वाली पितामही के द्वारा मैं कितनी ही बार बुलाया गया हूँ और उनके हृदय में मुझसे मिलने की अधिक उत्कण्ठा है। बहुत लोगों के द्वारा उन्होंने यह कहलाया है कि वे मुझे देखने की अधिक इच्छा करती है ।९। मेरा मिलना पितृगण और पितामह जो भी प्रिय है। इस कारण से उनके समीप में जाने की आप मुझे आज्ञा प्रदान कीजिए ।१०। श्री वसिष्ठजी ने कहा—इस प्रकार से उनके इस परम सम्भ्रात कहे हुए वचन का श्रवण करके वे दोनों माता-पिता बहुत ही प्रहर्षित हुए थे और उनके नेत्रों में अश्रुओं के कण झलक उठे थे ।११। उन दोनों ने उस महान् भाग वाले पुत्र का आलिंगन किया था और बड़े आदर के साथ उसके मस्तक का उपाघ्राण किया था। आशीर्वाद से उसका अभिनन्दन करके उन दोनों ने उससे कहा था ।१२। हे तात ! पितामह के गृह को तुम सुख पूर्वक जाओ जिससे पितामह और पितामही के दर्शन प्राप्त करोगे और उनकी प्रीति भी होगी ।१३। वहाँ पहुँच कर न्यायपूर्वक उनकी शुश्रूषा में तत्पर रहना। कुछ समय तक हे वत्स ! उनकी प्रीति को प्राप्त करने के लिए उनके घर में निवास करो ।१४।

स्थित्वा नातिचिरं कालं तयोर्भूयोऽप्यनुज्ञया ।
अत्रागच्छ महाभाग क्षेमेणास्मद्दिदृक्षया ॥१५
क्षणार्द्धमपि शक्ताः स्थो न विना पुत्रदर्शनम् ।
तस्मात्पितामहगृहे न चिरात्स्थातुमर्हसि ॥१६
तदाज्ञयाथ वा पुत्र प्रपितामहसन्निधिम् ।
गतोऽपि शीघ्रमागच्छ क्रमेण तदनुज्ञया ॥१७
वसिष्ठ उवाच—इत्युक्तस्तौ परिक्रम्य प्रणम्य च महामतिः ।
पितरावप्यनुज्ञाप्य पितामहगृहं ततः ॥१८
स गत्वा भृगुवर्यस्य ऋचीकस्य महात्मनः ।
प्रविवेशाश्रमं रामो मुनिशिष्योपशोभितम् ॥१९
स्वाध्यायघोषैर्विपुलैः सर्वतः प्रतिनादितम् ।
प्रशांतवैरसत्वाढ्यं सर्वसत्वमनोहरम् ॥२०
स प्रविश्याश्रमं रम्यमृचीकं स्थितमासने ।
ददर्श रामो राजेंद्र स पितामहमग्रतः ॥२१

बहुत समय तक वहाँ स्थित न रहकर फिर उन दोनों की अनुज्ञा से हे महाभाग ! हम लोगों के देखने की इच्छा से कुशलता के साथ यहीं पर आ जाना ।१५। अपने पुत्र के देखने के बिना हम लोग आधे क्षण भी नहीं रह सकते हैं । इसी कारण से आप पितामह के घर में अधिक लम्बे समय तक ठहरने के योग्य नहीं होते हैं ।६१। पितामह के समीप में गये हुए भी हे पुत्र ! उनकी ही आज्ञा प्राप्त कर उनकी अनुज्ञा से क्रम से शीघ्र ही यहाँ पर आ जाओ ।१७। वसिष्ठजी ने कहा—इस प्रकार से जब उससे कहा गया तो वह महान् बुद्धिमान् था । उसने उनको प्रणाम करके परिक्रमा की थी और माता-पिता की आज्ञा पाकर वहाँ से वह पितामह के घर को चल दिया था ।१८। वहाँ पर जाकर उस राम ने महात्मा भृगुवर्य ऋचीक के आश्रम में प्रवेश किया था जो कि अनेक मुनिगण और शिष्यों से उपशोभित था ।१९। वह आश्रम सभी ओर वेदाध्ययन के बहुत बड़े उद्घोष से प्रतिध्वनित हो रहा था और वहाँ क सभी प्राणियों में सर्वथा वैर भाव नहीं था तथा सभी जीवोंके द्वारा वह अतीव मनोहर था ।२०। उस परशुराम ने परम

सुन्दर आश्रम में प्रवेश करके हे राजेन्द्र ! आसन पर विराजमान ऋचीक का दर्शन किया था और आगे स्थित पितामह को देखा था ।२१।

जाज्वल्यमानं तपसा धिष्ण्यस्थमिव पावकम् ।
उपासितं सत्यवत्या यथा दक्षिणयाऽध्वरम् ॥२२
स्वसमीपमुपायांतं राममालोक्य तौ नृप ।
सुचिरं तं विमर्शेतां समाज्ञापूर्वदर्शनौ ॥२३
कोऽयमेष तपोराशिः सर्वलक्षणपूजितः ।
बालोऽयं बलवान्भाति गांभीर्यात्प्रश्रयेण च ॥२४
एवं तयोश्चिन्तयतोः सहर्षं हृदि कौतुकात् ।
आससाद शनैः रामः समीपे विनयान्वितः ॥२५
स्वनामगोत्रे मतिमानुक्त्वा पित्रोर्मुदान्वितः ।
संस्पृशंश्चरणौ मूर्ध्ना हस्ताभ्यां चाभ्यवादयत् ॥२६
ततस्तौ प्रीतमनसौ समुत्थाप्य च सत्तमम् ।
आशीभिरभिनन्देतां पृथक् पृथगुभावपि ॥२७
तमाश्लिष्यांकमारोप्य हर्षाश्रुप्लुतलोचनौ ।
वीक्षंतौ तन्मुखांभोजं परं हर्षमवापतुः ॥२८

उनका स्वरूप धिष्ण्यमें स्थित पावकके ही समान तपसे जाज्वल्यमान था । दक्षिणा के द्वारा अध्वर की ही भाँति सत्यवती के द्वारा वे उपासित थे ।२२। हे नृप ! उन दोनों ने अपने समीप में समागत हुए राम को देखा था और समाज्ञा पूर्वक देखने वाले उन दोनों ने उसके विषय में बहुत समय तक मनमें विमर्श किया था ।२३। यह तपश्चर्या के राशि के ही सदृश कौन है जो कि सभी लक्षणों से पूजित हैं । है तो यह बालक परन्तु गम्भीरता और विनय से युक्त बहुत बलवान् प्रतीत होता है ।२४। उन दोनों के हृदय में बड़ा कुतूहल हो रहा था और वे हर्ष के साथ यही मन में चिन्तन कर रहे थे कि राम परम विनीत भाव से समन्वित होते हुए धीरे से उनके समीप में पहुँच गया था ।२५। उस बुद्धिमान् रामने अपने नाम और गोत्र का उच्चारण करके परमानन्दित होते हुए उन दोनों के चरणों का स्पर्श मस्तक के द्वारा किया और दोनों हाथों से उनका अभिवादन किया था ।२६। इसके अनन्तर परम प्रीतियुक्त मन वाले उनने उस श्रेष्ठतम को उठा लिया था

और दोनों ने अलग-अलग आशीर्वाद के द्वारा उसका अभिनन्दन किया था ।१७। उसको अपने वक्षःस्थल से लगाकर आलिंगन किया था और अपनी गोद में विठाकर उन दोनों के हृदय में इतना हर्ष हुआ था कि उनके नेत्र अश्रुओं से समाप्लुत हो गये थे । उस राम के मुख कमल को देखते हुए उन दोनों ने बहुत अधिक हर्ष प्राप्त किया था ।२८।

ततः सुखोपविष्टं तमात्मवंशसमुद्वहम् ।
अनामयपृच्छेतां तावुभौ दंपती तदा ।।२६
पितरौ ते कुशलिनौ वत्स किंभ्रातरस्तथा ।
अनायासेन ते वृत्तिर्वर्तते चाथ कर्हिचित् ।।३०
समस्ताभ्यां ततो राजन्नाचचक्षे यथोदितः ।
तथा स्वानुगतं पित्रोर्भ्रातॄणां चैव चेष्टितम् ।।३१
एवं तयोर्महाराज सत्प्रीतिजनितैर्गुणैः ।
प्रीयमाणोऽवसद्रामः पितुः पित्रोर्निवेशने ।।३२
स तस्मिन्सर्वभूतानां मनोनयननन्दनः ।
उवास कतिचिन्मासांस्तच्छुश्रूषापरायणः ।।३३
अथानुज्ञाप्य तौ राजन्भृगुवर्यो महामनाः ।
पितामहगुरोर्गंतुमियेषाश्रयमाश्रमम् ।।३४
स ताभ्यां प्रीतियुक्ताभ्यामाशीर्भिरभिनंदितः ।
यथा चाभ्यां प्रदिष्टेन ययावौर्वाश्रमं प्रति ।।३५

इसके उपरान्त जब वह सुख पूर्वक बैठ गये तो उस आत्मवंश के समुद्वहन करने वाले से उस समय में उन दोनों दम्पति ने क्षेम कुशल पूछा था ।२६। उन्होंने पूछा था कि हे वत्स ! तुम्हारे माता-पिता सकुशल हैं और तुम्हारे सब भाई सानन्द तो हैं । तुम्हारी वृत्ति अनायास से ही कम हो गई हैं ।३०। इसके अनन्तर हे राजन् ! जैसा कहा गया था वह सम्पूर्ण उसने कह दिया था । अपने माता-पिता की अनुगामिता और भाइयों का जो चेष्टित था वह भी कह दिया था ।३१। हे महाराज ! इस तरह से उन दोनों की सम्प्रीति से समुत्पन्न गुणगणों से बहुत ही प्रसन्न राम पिता के, पिता के घर में रहा था ।३२। वह घर में सभी प्राणियों के मन और नेत्रों को आनन्द

देने वाला होगया था। उनकी सुश्रुषा में तत्पर होकर उसने वहाँ पर कुछ मास तक निवास किया था।३३। हे राजन्! इसके पश्चात् महान् मन वाले भृगु वर्य ने उन दोनों की आज्ञा प्राप्त करके पितामह के गुरु के निवास स्थल आश्रम में गमन करने की इच्छा की थी।३४। परम प्रीति से संयुत उन दोनों के द्वारा उसका आशीर्वचनों से अभिनन्दन किया गया था और उन दोनों ने जिस प्रकार में औषश्रिम के प्रति प्रदर्शन कर दिया था।३५।

तं नमस्कृत्य विधिवच्च्यवनं च महातपाः।
स प्रहर्ष तदाज्ञातः प्रययावश्रमं भृगोः ॥३६
स गत्वा मुनिमुख्यस्य भृगोराश्रममंडलम्।
ददर्श शांतचेतोभिर्मुनिभिः सर्वतो वृतम् ॥३७
सुस्निग्धशीतलच्छायैः सर्वर्तुकगुणान्वितैः।
तरुभिः संवृतं प्रीतः फलपुष्पोत्तरान्वितैः ॥३८
नानाखगकुलारावैर्मनः श्रोत्रसुखावहैः।
ब्रह्मघोषैश्च विविधैः सर्वतः प्रतिनादितम् ॥३६
समंत्राहुतिहोमोत्थधूमगंधेन सर्वतः।
निरस्तनिखिलाघौघं वनांतरविसर्पिणा ॥४०
समित्कुशाहरैर्दण्डमेखलाजिनमंडितैः।
अभितः शोभितं राजन्म्यैर्मुनिकुमारकैः ॥४१
प्रसूनजलसंपूर्णपात्रहस्ताभिरंतरा।
शोभितं मुनिकन्याभिश्चरंतीभिरितस्ततः ॥४२

उस महान तपस्वी ने विधिपूर्वक च्यवन की सेवा में प्रणाम किया था और बड़े हर्षपूर्वक उनसे आज्ञा प्राप्त कर वह राम भृगु के आश्रम की ओर रवाना हो गया था।३५। वह समस्त मुनिगणों में मुख्य भृगु के आश्रम मण्डल में जाकर देखा था कि वह आश्रम परम शान्त चित्त वाले मुनियों से सभी ओर घिरा हुआ है।३७। अतीव घनी और शीतल छाया वाले और सभी ऋतुओं के गुणों से समन्वित तथा प्रीतिदायक फलों और पुष्पों से युक्त तरुवरों से वह आश्रम संयुत था।३८। विविध प्रकार के पक्षियों की ध्वनियाँ पर हो रही थी जो मन और कानों को परम सुख प्रदान करने वाली थीं।

वेद मन्त्रों के समुच्चारण के घोष से वह आश्रम सभी ओर से प्रतिध्वनित हो रहा था।३९। मन्त्रोच्चारण पूर्वक दी हुई आहुतियों के द्वारा जो होम किया जाता है उसका अन्य वनों में फैलने वाले गन्ध से जो सभी ओर है उससे समस्त पापों का समूह जिससे निरस्त हो गया है ऐसा वह आश्रम है।४०। हे राजन्! समिधाओं और कुशाओं के आहरण करने वाले तथा दण्ड, मेखला और मृगछालाओं से विभूषित, परम सुन्दर मुनियों के कुमारों से सायने वह आश्रम शोभा युक्त है।४१। बीच में इधर-उधर हाथों में पुष्प और जल लिए हुए सञ्चरण करने वाली कन्याओं से वह आश्रम उपशोभित है।४२।

सपोतहरिणीयूथैर्विस्रंभादविशंकिभिः ।
उटजांगणपर्यन्ततरुच्छायास्वधिष्ठितम् ॥४३
रोमंकतः परामृष्टियूथसाक्षिकमुत्प्रदैः ।
प्रारब्धतांडवं केकीमयूरैर्मधुरस्वरैः ॥४४
प्रविकीर्णकणोद्देशं मृगशब्दैः समीपगैः समीपगैः ।
अनालीढातपच्छायाशुष्यन्नीवारराशिभिः ॥४५
हूयमानानलं काले पूज्यमानातिथिव्रजम् ।
अभ्यस्यमानच्छंदौघं चिन्त्यमानागमोदितम् ॥४६
पठ्यमानाखिलस्मार्त्तं श्रौतार्थप्रविचारुणम् ।
प्रारब्धपितृदेवेज्यं सर्वभूतमनोहरम् ॥४७
तपस्विजनभूयिष्ठमकापुरुषसेवितम् ।
तपोवृद्धिकरं पुण्यं सर्वसत्त्वसुखास्पदम् ॥४८
तपोधनानन्दकरं ब्रह्मलोकमिवापरम् ।
प्रसूनसौरभभ्राम्यन्मधुव्रातावनादितम् ॥४९

अहिंसा के पूर्ण विश्वास से शङ्का से रहित अपने छोटे-छोटे बच्चों के सहित हरिणियों के झुण्ड जिससे मुनियों कुटिओं के आँगन में लगे हुए वृक्षों की छाया में बैठे हुए हैं।४३। रोमन्थ से परामृष्टि यूथ के साक्षिक आनन्द के प्रदान करने वाले तथा मधुर स्वर से समन्वित वाणी बोलने वाले मयूरों का नृत्य जिस आश्रम में प्रारम्भ होगया है।४४। समीप में गमन

करने वाले मृगों के शब्दों से जहाँ पर कण फैले हुए हैं तथा अनालीढ आतप की छाया में नीवारों की राशि जहाँ पर सूख रही है ऐसा वह सुरम्य आस्रय आस्रय है ।४५। जिस आश्रम में समय पर अग्नि में आहुतियाँ दी जाती हैं और जहाँ पर अतिथियों के समुदाय का अर्चन एवं सत्कार किया जाया करता है । जिस आस्रम में भेदों के छन्दों का अभ्यास किया जाता है तथा जो कुछ भी शास्त्रों में कहा गया है उसका चिन्तन किया जाता है ।४६। पढ़े जाने वाले सम्पूर्ण स्मृति प्रतिपादित तथा वैदिक अर्थ का विचार किया जाता है । जिसमें देवों और पितृगणों का यजन प्रारम्भ कर दिया गया है तथा जो आश्रम सभी प्राणियों के लिए परम सुन्दर है ।४७। जिस परम सुरम्य आश्रम में बहुत से तपस्वी गण विद्यमान है और जो कापुरुष नहीं हैं उन्हीं के द्वारा सेवित है यह तपश्चर्या की वृद्धि करने वाला—परम पुण्यमय और सभी जीवों के सुखों का स्थल है ।४८। जिनका एकमात्र तप ही धन है उन तापसों के आनन्द का यह आश्रय देने वाला है और यह ऐसा दिखलाई देता है मानो यह दूसरा ब्रह्मलोक ही हो । पुष्पों की सुगन्ध से भ्रमण करते हुए भ्रमरों की गुञ्जार से यह आश्रम गुञ्जित है ।४९।

सर्वतो वीज्यमानेन विविधेन नभस्वता ।
एवंविधंगुणोपेतं पश्यन्नाश्रममुत्तमम् ॥५०
प्रविवेश विनीतात्मा सुकृतीवामरालयम् ।
संप्रविश्याश्रमोपांतं रामः स्वप्रपितामहम् ॥५१
ददर्श परितो राजन्मुनिशिष्यशतावृतम् ।
व्याख्यानवेदिकामध्ये निविष्टं कुशविष्टरे ।
सितश्मश्रु जटाकूर्चब्रह्मसूत्रोपशोभितम् ॥५२
वामेतरोरुमध्यास्त वामजंघेन जानुना ॥५३
योगपट्टेन संवीतस्वदेहम् षिपुंगवम् ।
व्याख्यानमुद्राविलसत्सव्यपाणितलांबुजम् ॥५४
योगपट्टोपरिन्यस्तविभ्राजद्वामपाणिकम् ।
सम्यगारण्यवाक्यानां सूक्ष्मतत्त्वार्थसंहतिम् ॥५५
विवृत्य मुनिमुख्येभ्यः श्रावयंतं तपोनिधिम् ।
पितुः पितामहं दृष्ट्वा रामस्तस्य महात्मनः ॥५६

सभी ओर विविध प्रकार की वायु से यह वीज्यमान है अर्थात् वहाँ पर नाना भाँति की वायु सर्वत्र बहन किया करती है। इस रीति से अनेक प्रकार के गुणों से यह आश्रम समन्वित है। ऐसे आश्रम को जो बहुत ही उत्तम है उस राम ने देखा था।५०। जिस तरह कोई सुकृत करने वाला पुरुष स्वर्ग में प्रवेश किया करता है उसी तरह से परम विनीत उस राम ने वहाँ पर आश्रम में प्रवेश किया था। उस आश्रम के उपान्त में प्रवेश करके राम ने अपने प्रपितामह का दर्शन प्राप्त किया था।५१। हे राजन्! वे प्रपितामह सैकड़ों ही मुनियों और शिष्यों से चारों ओर घिरे हुए थे। वे व्याख्यान करने की जो वेदिका थी उसके मध्य में एक कुशा के आसन पर विराजमान थे। उनके श्मश्रु-जटा और कूर्च (दाढ़ी) एकदम सफेद थे तथा ब्रह्मसूत्र से उपशोभित थे।५२। वामजंघा और जानु से दक्षिण ऊरु से वे अध्यस्त थे।५३। योग पट्ट से संवीत अपने देह वाले वे ऋषियों में परम श्रेष्ठ थे तथा व्याख्यान करने की मुद्रा से शोभित सव्य करकमल वाले थे।५४। योग पट्ट के ऊपर रक्खे हुए परम शोभित वाम कर वाले और भली भाँति आरण्यक उपनिषद् के वाक्यों के सूक्ष्म तत्व के अर्थ की संहृति का विशेष विवरण कर रहे थे।५५। और उनका विवरण करके वे तपोनिधि मुख्य मुनियों को श्रवण करा रहे थे। राम ने पितामह का दर्शन किया था।५६।

शनैरिव महाराजसमीपं समुपागमत् ।
तमागतमुपालक्ष्य तत्प्रभावप्रधर्षिताः ॥५७
शंकामवापुर्मुनयो दूहादेवाखिलं नृप ।
तावद्भृगुरमेयात्मा तदागमनतोषितः ॥५८
निवृत्तान्यकथालापस्तं पश्यन्नास पार्थिव ।
रामोऽपि तमुपागम्य विनयावनताननः ॥५९
अवंदत यथान्यायमुपेन्द्र इव वेधसम् ।
अभिवाद्य यथान्यायं ख्याति च विनयान्वितः ॥६०
तांश्च संभावयामास मुनीन्रामो यथावयः ।
तैश्च सर्वैर्मुदोपेतैराशीर्भिरभिवर्द्धितः ॥६१
उपाविवेश मेधावी भूमौ तेषामनुज्ञया ।
उपविष्टं ततो राममाशीर्भिरभिनंदितम् ॥६२

प च्छ कुशल श्नं तमालोक्य भृगुस्तदा ।
कुशलं खलु ते वत्स पित्रोश्च किमनामयम् ।।६३

हे महाराज ! फिर वह राम उन महान आत्मा वाले के समीप में धीरे से प्राप्त हुआ था । उसको समागत हुआ देखकर वहाँ पर जो भी स्थित थे वे सभी राम के प्रबल प्रभाव से धर्षित हो गये थे ।५७। हे नृप ! समस्त मुनिगण दूर से ही शङ्का को प्राप्त हो गये थे तब तक अमेय आत्मा वाले भृगु उसके आगमन से तोषित हुए थे ।५८। हे पार्थिव ! उसको देखते हुए ही अन्य कथा की बात चीत को उन्होंने बन्द कर दिया था । राम भी उनके समीप में पहुँचकर विनय से विनम्र मुख कमल वाला हो गया था ।५९। जिस प्रकार से उपेन्द्र ब्रह्माजी की वन्दना किया करते हैं ठीक उसी तरह से न्याय पूर्वक राम ने उनकी वन्दना की थी । विनम्रता समन्वित राम ने न्याय पूर्वक सबका अभिवादन किया था ।६०। राम ने समस्त मुनियों को अवस्था के अनुसार क्रम से सम्भावित किया था । और उन सब मुनियों ने भी आनन्द से समन्वित होकर आशीर्वादों के द्वारा उस रामको परिवर्धित किया था ।६१। वह परम मेधा से सुसम्पन्न राम भी उन सबकी अनुज्ञा से भूमि पर समीप में बैठ गया था । फिर जब बैठ गया तो सबने राम को आशीर्वचनों से अभिनन्दित किया था ।६१। उस समय में भृगु ने उस राम का अवलोकन करके उससे कुशल प्रश्न पूछा था कि हे वत्स ! तुम्हारा कुशल तो है और तुम्हारे माता-पिता-पिता का स्वास्थ्य सुखमय है ।६३।

भ्रातृ णां चैव भवतः पितुः पित्रोस्तथैव च ।
किमर्थमागतोऽत्र त्वमधुना मम सन्निधिम् ।।६४
केनापि वा त्वमादिष्टः स्वयमेवाथवागतः ।
ततो रामो यथान्यायं तस्मै सर्वमशेषतः ।।६५
कथयामास यत्पृष्टं तदा तेन महात्मना ।
पितुर्मातुश्च वृत्तांतं भ्रातृ णां च महात्मनाम् ।।६६
पितुः पित्रोश्च कौशल्यं दर्शनं च तयोर्नृ प ।
एतदन्यच्च सकलं भृगोः सप्रश्रयं मुदा ।।६७
न्यवेदयद्यथान्यायमात्मनश्च समीहितम् ।
श्रु त्वैतदखिलं राजन्रामेण समुदीरितम् ।।६८

तं च दृष्ट्वा विशेषेण भृगुः प्रीतोऽभ्यनन्दत ।
एवं तस्य प्रियं कुर्वन्नुत्कृष्टैरात्मकर्मभिः ॥६९

तत्राश्रमेऽवसद्रामो दिनानि कतिचिन्नृप ।
ततः कदाचिदेकांते रामं मुनिवरोत्तमः ॥७०

तुम्हारे भाइयों का आपके पिता के माता-पिता का कुशल-मङ्गल तो है ? इस समय में तुम किस प्रयोजन के लिए यहाँ पर मेरे समीप में समागत हुए हो ? ।६४। क्या किसी ने तुम को यहाँ आने की आज्ञा दी है अथवा तुम स्वयं अपनी ही इच्छा से यहाँ पर आये ? इसके पश्चात् राम ने उनकी सेवा में न्यायपूर्वक सभी कुछ पूर्णतया निवेदित कर दिया था । उन महात्मा ने उस वक्त जो भी पूछा था वह सब कह दिया था जो भी कुछ पिता-माता का और महान् आत्मा वाले भाइयों का वृत्तान्त था ।६५-६६। हे नृप ! उन दोनों पिता के माता-पिता की कुशलता से दर्शन का होना-यह और आय भृगु का नम्रता के साथ आनन्द से सब बता दिया था। और अपना जो भी कुछ अभीष्ट था उसका निवेदन कर दिया था । हे राजन् ! राम के द्वारा वर्णित यह सब श्रवण करके और विशेष रूप से उसको देखकर भृगु बहुत ही प्रसन्न हुए थे और उसका अभिनन्दन किया था । इस तरह से अतीव उत्कृष्ट अपने कर्मों के द्वारा उसका प्रिय करते हुए राम ने वहाँ निवास किया था । हे नृप ! राम उस आश्रम में कुछ दिन तक रहा था । इसके उपरान्त मुनिवर ने राम को किसी समय में एकान्त में बुलाया था । ।६७-७०।

वत्सागच्छेति तं राजन्नुपाह्वयदुपह्वरे ।
सोऽभिगम्य तमासीनमभिवाद्य कृतांजलिः ॥७१

तस्थौ तत्पुरतो रामः सुप्रीतेनांतरात्मना ।
आशीर्भिरभिनंद्याथ भृगुस्तं प्रीतमानसः ॥७२
प्राह नाधिगताशंकं राममालोक्य सादरम् ।
श्रृणु वत्स वचो मह्यं यत्त्वां वक्ष्यामि सांप्रतम् ॥७३
हितार्थं सर्वलोकानां तव चास्माकमेव च ।
गच्छ पुत्र ममादेशाद्धिमवंतं महागिरिम् ॥७४

अधुनैवाश्रमादस्मात्तपसे धृतमानसः ।
तत्र गत्वा महाभाग कृत्वाऽश्रमपदं शुभम् ॥७५
आराधय महादेवं तपसा नियमेन च ।
प्रीतिमुत्पाद्य तस्य त्वं भक्त्यानन्यगयाचिरात् ॥७६
श्रेयो महदवाप्नोषि नात्र कार्या विचारणा ।
तरसा तव भक्त्या च प्रीतो भवति शङ्कर: ॥७७

मुनि ने कहा था—हे वत्स ! उपह्वर में आओ । वह रामभी उन मुनि के समीप में जाकर अपने हाथ जोड़कर उनका उसने अभिवादन किया था ।७१। राम परम प्रसन्न आत्मा से उनके आगे स्थित हो गया था और प्रसन्न मन वाले भृगु ने आशीर्वादों के द्वारा अभिनन्दन किया था ।७२। उसने न अधिगत अंश वाले राम को आदर के साथ देखकर कहा था । हे वत्स ! आप मेरा वचन श्रवण करो जो इस समय में मैं आपको कहूँगा ।७३। यह वचन समस्त लोकों के तुम्हारे और हमारे हित के लिये है । हे पुत्र ! मेरे आदेश से अब महान् पर्वत हिमवान् को चले जाओ ।७४। तपश्चर्या करने के लिये अपने मन में निश्चय करके इसी समय इस आश्रम से चले जाओ । हे महाभाग, वहाँ जाकर उस आश्रम के स्थान को शुभ बना दो ।७५। वहाँ पर तपस्या और नियम से महादेवजी की समाराधना करो । चिरकाल तक अनन्य भक्ति से आप उनकी प्रीति का समुत्पादन करो ।७६। इसके करने से आप महान् श्रेय की प्राप्ति करेंगे—इस विषय में लेशमात्र भी सन्देह नहीं करना चाहिए । शीघ्र ही आपकी भक्ति से भगवान् शङ्कर परम प्रसन्न हो जायेंगे ।७७।

करिष्यति च ते सर्वं मनसा यद्यदिच्छसि ।
तुष्टे तस्मिञ्जगन्नाथे शङ्करे भक्तवत्सले ॥७८
अस्त्रग्राममशेषं त्वं वृणु पुत्र यथेप्सितम् ।
त्वया हितार्थं देवानां करणीयं सुदुष्करम् ॥७९
विद्यतेऽभ्यधिकं कर्म शस्त्रसाध्यमनेकशः ।
तस्मात्त्वं देवदेवेशं समाराधय शङ्करम् ॥८०
भक्त्या परमया युक्तस्ततोऽभीष्टमवाप्स्यसि ॥८१

वे भगवान् शङ्कर तुम्हारा सभी कुछ कार्य पूर्ण कर देंगे जो-जो भी आप अपने मन में चाहेंगे। उन भक्तों पर प्यार करने वाले जगत् के स्वामी भगवान् शङ्कर के सन्तुष्ट हो जाने पर तुम को यह करना चाहिए ।७८। हे पुत्र ! जो भी तुम्हारा अभीप्सित हो वह समस्त अस्त्रों के समुदाय को आप उनसे वरदान में माँग लेना। तुमको समस्त देवों की भलाई के लिए इस परम दुष्कर कार्य को कर ही लेना चाहिए ।७९। शस्त्रों के द्वारा साधन करने के योग्य अनेक कर्म होते हैं और विशेष अधिक होते हैं। इस कारण से तुम देवों के भी आराध्य देव भगवान् शङ्कर की आराधना करो। परमाधिक भक्ति से जब तुम संयुत हो जाओगे तो तुम सम्पूर्ण अपना प्राप्त कर लोगे ।८०-८१।

परशुराम की तपश्चर्या

वसिष्ठ उवाच—इत्येवमुक्तो भृगुणा तथेत्युक्त्वा प्रणम्य तम् ।
रामस्तेनाभ्यनुज्ञातश्चकार गमने मनः ॥१
भृगुं ख्यातिं च विधिवत्परिक्रम्य प्रणम्य च ।
परिष्वक्तस्तथा ताभ्यामाशीर्भिरभिनंदितः ॥२
मुनींश्च तान्नमस्कृत्य तैः सर्वेरनुमोदितः ।
निश्चयक्रमाश्रमात्तस्मात्तपसे कृतनिश्चयः ॥३
ततो गुरुनियोगेन तदुक्तेनैव वर्त्मना ।
हिमवंतं गिरिवरं ययौ रामो महामनाः ॥४
सोऽतीत्य विविधान्देशान्पर्वतान्सरितस्तथा ।
वनानि मुनिमुख्यानामावासांश्चात्यगाच्छनैः ॥५
तत्र तत्र निवासेषु मुनीनां निवसन्पथि ।
तीर्थेषु क्षेत्रमुख्येषु निवसन्वा ययौ शनैः ॥६
अतीत्य सुबहून्देशान्पश्यन्नपि मनोरमान् ।
आससादाचलश्रेष्ठं हिमवंतमनुत्तमम ॥७

श्री वसिष्ठ जी ने कहा—भृगु मुनि के द्वारा इस प्रकार से कहे जाने पर मैं ऐसा ही करूँगा–यह कहकर राम ने उनको प्रणाम किया था और

राम उनके द्वारा आज्ञा प्राप्त करके वहाँ पर गमन करने का मन वाला हो गया था ।१। भृगु के सुयश का गान कर तथा विधि पूर्वक उनकी परिक्रमा करते हुए प्रणाम करके राम ने प्रस्थान करने की तैयारी की थी । उन दोनों ने उसका परिष्वजन किया था और आशीर्वचनों से राम का अभिनन्दन किया था ।२। वहाँ पर जो भी मुनिगण थे उन सबके लिए राम ने प्रणाम किया था तथा वह उन सब के द्वारा वहाँ गमन करने के लिए अनुमोदन प्राप्त करने वाला हुआ था । फिर राम उस आश्रम के स्थल से तपश्चर्या करने के लिए मन में पूर्ण निश्चय वाला होकर निकल दिया था ।३। इसके अनन्तर गुरु देव के नियोग से और उनके द्वारा बताये हुए बताये हुए मार्ग से महान् मन वाले राम ने गिरियों में परम श्रेष्ठ हिमवान् को गमन किया था ।४। मार्ग में उसको अनेक देश—पर्वत–नदियाँ–वन और प्रमुख मुनियों के आवास-स्थल मिले थे । उन सबका उसने धीरे-धीरे अतिक्रमण किया था ।५। मार्ग में वहाँ-वहाँ पर मुनियों के निवास स्थलों में विश्राम करते हुए और जो मुख्य क्षेत्र थे तथा तीर्थ स्थल मिले थे उनमें निवास करते हुए धीरे-धीरे वह वहाँ पर चलते चला गया था ।५। मार्ग में अनेक देशों का अतिक्रमण करके और परम मनोरथ देशों का अवलोकन करते हुए अन्त में परमोत्तम और पर्वतों में श्रेष्ठ हिमवान् पर वह पहुँच गया था ।७।

स गत्वा पर्वतवरं नानाद्रुमलतास्थितम् ।
ददर्श विपुलैः शृंगैरुल्लिखंतमिवांबरम् ॥८
नानाधातुविचित्रैश्च प्रदेशैरुपशोभितम् ।
रत्नौषधीभिरभितः स्फुरद्भिरभिशोभितम् ॥९
मरुत्संघट्टनावष्टनीरसांघ्रिपजन्मना ।
सानिलेनानलेनोच्चैर्दह्यमानं नवं क्वचित् ॥१०
क्वचिद्रविकरामर्शज्वलदर्कोपलाग्निभिः ।
द्रवद्धिमशिलाजातुजलशांतदवानलम् ॥११
स्फटिकांजनदुर्वर्णस्वर्णराशिप्रभाकरैः ।
स्फुरत्परस्परच्छायाशरैर्दीप्तवनं क्वचित् ॥१२
उपत्यकशिलापृष्ठबालातपनिषेविभिः ।
तुषारक्लिन्नसिद्धौघैरुद्भासितवनं क्वचित् ॥१३

क्वचिदर्कांशुसंभिन्नश्चामीकरशिलाश्रितैः ।
यक्षौघैर्भासितोपांतं विशद्भिरिव पावकम् ।।१४

वह उस श्रेष्ठ पर्वत पर पहुँच गया था जहाँ पर अनेक प्रकार के वृक्ष और लताएँ थीं। उसने वहाँ पर देखा था कि बहुत से ऐसे ऊँचे शिखर विद्यमान हैं जो मानों अम्बर का स्पर्श करके उस पर कुछ लिख रहे हों।८। वहाँ पर अनेक ऐसे प्रदेश हैं जिनमें विचित्र प्रकार की बहुत सी धातुएँ विद्यमान हैं और उनसे वह परम शोभा शाली हो रहा है। वहाँ अनेक प्रकार के रत्न तथा दिव्य ओषधियाँ हैं जो निरन्तर स्फुरण किया करते हैं और उनसे उसकी अद्भुत शोभा हो रही है।९। कहीं पर वायु के संघटन से रगड़ खाये हुए शुष्क वृक्षों से समुत्पन्न और वायु के संयोग वाले अग्नि से कहीं पर वह दाह भी करने वाला दिखाई दे रहा था।१०। कहीं पर सूर्य की किरणों के प्रखर स्पर्श से जलती हुई अर्कोपलाग्नि से पिघले हुए हिम की शिलाओं के जल से वह दवानल एकदम शान्त हो गया है।११। कहीं पर स्फटिक अञ्जन से बुरे वर्ण वाले स्वर्ण के समूह की प्रभा की किरणों के द्वारा स्फुरण करते हुए परस्पर में छाया शरों से प्रसिद्ध था।१२। उपत्यकाओं की शिलाओं के पृष्ठ भाग पर बालातप का सेवन करने वाले तुषार से क्लिन्न सिद्धों के समुदाय से वह वह वन कहीं पर उद्भासित हो रहा था। किसी-किसी जगह पर सूर्य की किरणों से संभिन्न सुवर्ण की शिलाओं पर समाश्रय ग्रहण करने वाले यक्षों के समुदायों से पावक में प्रवेश करने वालों की तरह उसका उपान्त भासित हो रहा था।१४।

दरीमुखविनिष्क्रांततरक्षूत्पतनाकुलः ।
मृगयूथार्त्तसन्नादैरापूरितगुहं क्वचित् ।।१५
युद्धघद्वराहशार्दूलयूथपैरितरेतरम् ।
प्रसभोन्मृष्टकांतोरुशिलातरुतटं क्वचित् ।।१६
कलभोन्मेषणाकृष्टकारिणीभिरनुद्रुतैः ।
गवयैः खुरसंक्षुण्णशिलाप्रस्थतटं क्वचित् ।।१७
वासितार्थेऽभिसंवृद्धमदोन्मत्तमतंगजैः ।
युद्धयद्भिश्चूर्णितानेकगंडशैलवनं क्वचित् ।।१८
वृंहितश्रवणामर्षान्मातंगानभिधावताम् ।

सिंहानां चरणक्षुण्णनखभिन्नोपलं क्वचित् ॥१६
सहसा निपतत्सिंहनखनिर्भिन्नमस्तकैः ।
गजैराक्रंदनादेन पूर्यमाणं वनं क्वचित् ॥२०
अष्टपादबलाकृष्टकेसरा दारुणारवैः ।
भेद्यमानाखिलशिलागंभीरकुहरं क्वचित् ॥२१

कहीं पर दरियों के मुख से निकले हुए तरक्षुओं के उत्पतन ऊपर की ओर (उछाल) से समाकुल मृगों के आर्त्त नादों से जिसकी गुहा समापूरित हो रही थी ।१५। किसी स्थल पर एक दूसरे से परस्पर में युद्ध करते हुए वराह और शार्दूलों के यूथपतियों के द्वारा बलात् उन्मृष्ट सुन्दर एवं विशाल शिला एवं तटके तरुवर जिसमें विद्यमान थे ।१६। कहीं पर कलभों के उन्मेषण से आकृष्ट हुई करिणियों के द्वारा भागे हुए गवयों के खुर से वहाँ के तट प्रस्थ संक्षुण्ण थे ।१७। किसी स्थान पर वासित अर्थ में विशेष बढ़े हुए मद से उन्मत्त गजों से जो कि परस्पर में युद्ध कर रहे थे गण्ड स्थलों के द्वारा अनेक शैल के वनों को वहाँ पर चूर्णित कर दिया था ।१८। कहीं पर हाथियों की ध्वनि के श्रवण से जो क्रोध हुआ उसके कारण गजों को खदेड़ते हुए सिंहों के चरणों के क्षुण्ण नखों से पाषाण भिन्न हो गये थे ।१९। कहीं पर वहाँ ऐसा स्थल था कि अचानक आक्रमण करने वाले सिंहों के नाखूनों से युक्त हाथियों के क्रन्दन की ध्वनि से सम्पूर्ण वन पूरित होरहा था ।२०। अष्टपादों के द्वारा बलपूर्वक जिनके केसर खींच लिए गये हैं उनके परम दारुण शब्द से कहीं कहीं पर पर्वत की गम्भीर गुफाएँ भी सब भेद्यमान थी ।२१।

संरब्धानेकशबरप्रसक्तैर्ऋक्षयूथपैः ।
इतरेतरसंमर्द विप्रभग्नदृषत्क्वचित् ॥२२
गिरिकुंजेषु संक्रीडत्करिणीमद्द्विपं क्वचित् ।
करेणुमाद्रवन्मत्तगजाकलितकाननम् ॥२३
स्वपत्सिंहमुखश्वासमरुत्पूर्णदरीशतम् ।
गहनेषु गुरुत्राससाशंकविहरन्मृगम् ॥२४
कंटकश्लिष्टलांगूललोमत्रुटनकातरैः ।
क्रीडितं चमरीयूथैर्मंदमंदविचारिभिः ॥२५

गिरिकंदरसंसक्तकिन्नरीसमुदीरितैः ।
सतालनादैरुदितैर्भृताशेषदिशामुखम् ॥२६
अरण्यदेवतानां च चरंतीनामितस्ततः ।
अलक्तकरसक्लिन्नचरणांकितभूतलम् ॥२७
मयूरकेकिनीवृंदैः संगीतमधुरस्वरैः ।
प्रवृत्तनृत्तं परितो विततोदग्रबर्हिभिः ॥२८

किसी स्थल पर संरब्ध बहुत से शबरों के द्वारा प्रसक्त रीछों के यूथ पतियों के आनस में एक दूसरे के साथ संमर्द में शिलाएँ भग्न हो गयीं थीं ।२२। कहीं पर पर्वत की कुञ्जों में करिणियाँ क्रीड़ाएँ कर रही थीं और वहाँ पर कोई करी नहीं था तब करेणु पर मत्तगज दौड़कर चले जा रहे थे इस प्रकार से वहाँ कानन समाकलित था ।२३। कहीं पर वहाँ ऐसा भी बल था जहाँ पर सोते हुए सिंहों के मुखों के श्वासों की वायु से सैकड़ों गुहाएँ पूरित हो रहीं थीं और वनों में बड़े भारी भय के कारण मृगगण शङ्कित होकर ही विहार कर रहे थे ।२४। किसी जगह पर यह वन चमरी गौओं के द्वारा क्रीड़ा का स्थल बना हुआ था जिनके पूँछों में काँटे लगे हुए थे और उनसे लोम टूट गये थे । जिसके कारण वे भयभीत होकर मन्दगति से विचरण कर रही थीं ।२५। कहीं पर गिरि की कन्दराओं में से सक्त किन्नरियों के समुदाय थे और उनके द्वारा कहे हुए ताल के नादों तथा गीतों से सभी दिशाएँ पूरित थीं ।२६। उस महान् गिरि पर का वन इधर-उधर विचरण करती हुई अरण्य देवताओं के चरणों में लगे हुए महावर के रस से वह भूतल चरणों के चिह्नों से अङ्कित हो रहा था ।२७। सङ्गीत के मधुर स्वरों से समन्वित-मयूर-मयूरियों के झुण्ड अपनी पंखों को फैलाकर कहीं पर आनन्द पूर्वक नृत्य कर रहे थे ।२८।

रामो मतिमतां श्रेष्ठस्तपसे च मनो दधे ।
शाकमूलफलाहारो नियतं नियतेंद्रियः ॥२९
तपश्चचार देवेशं विनिवेश्यात्ममानसे ।
भृगूपदिष्टमार्गेण भक्त्या परमया युतः ॥३०
पूजयामास देवेशमेकाग्रमनसा नृप ।
अनिकेतः स वर्षासु शिशिरे जलसंश्रयः ॥३१

ग्रीष्मे पंचाग्निमध्यस्थः श्चचारैवं तपश्चिरम् ।
रिपून्निर्जित्य कामादीनूर्मिषट्कं विधूय च ॥३२
द्वंद्वैरनुद्वेजितधीस्तापदोषैरनाकुलः ।
यमैः सनियमैश्चैव शुद्धदेहः समाहितः ॥३३
वशीचकार पवनं प्राणायामेन देहगम् ।
जितपद्मासनो मौनी स्थिरचित्तो महामुनिः ॥३४
वशीचकार चाक्षाणि प्रत्याहारपरायणः ।
धारणाभिः स्थिरीचक्रे मनश्चंलमात्मवान् ॥३५

ऐसे अनेक परम मनोरथ दृश्यों से परिपूर्ण उस हिमवान् गिरि पर एक आश्रम अपना बनाकर मतिमानों में परमश्रेष्ठ राम ने तपस्या करने का मन में विचार किया था और वह तपश्चर्या करने के लिये शाकों तथा मूलों के आहार करने वाला होकर नियत इन्द्रियों वाला बन गया था ।२९। उसने देवेश भगवान् शङ्कर को अपने मन में विनिवेशित करके तपस्या की थी। भृगुमुनि ने जो भी मार्ग बताया था उसी के अनुसार वह परमाधिक भक्ति से युक्त हो गया था ।३०। ये नृप ! उसने एक निष्ठ मन से देवेश्वर की पूजा की थी। वर्षा काल में भी वह बिना कहीं पर आश्रय ग्रहण किये हुए खुले में तप करने लगा था और शिशिर ऋतु में भी जल में स्थित रहा करता ।३१। ग्रीष्म में पाँच अग्नियों के मध्य में बैठा रहता था। इस रीति से राम के तप किया था और चिरकाल वह तपश्चर्या की थी। जिसमें षट् ऊर्मियों का विधूनन करके काम क्रोध-लोभ-मोह आदि शत्रुओं को भली भाँति जीत लिया था ।३२। जितने भी शीत-उष्ण आदि द्वन्द्व हैं इनसे उसकी बुद्धि उद्वेजित नहीं होती थी और वह ताप के दोषों से कभी व्याकुल भी नहीं होता था। यमों और नियमों के द्वारा उसका देह परम शुद्ध था तथा वह बहुत ही समाहित रहता था ।३३। उसके देह में जो वायु था उसको उसने प्राणायामों के द्वारा अपने वश में कर लिया था। वह महान् मुनि मौनधारी-पद्मासन को जीत लेने वाला और परम स्थिर चित्त वाला था ।३४। प्रत्याहार में तत्पर रहकर उसने अपनी समस्त इन्द्रियों को अपने वश में कर लिया था। आत्मवान् उस राम ने धारणाओं के द्वारा परम चञ्चल तथा प्रमथन शील बलवान् मन को भी स्थिर कर लिया था जो कभी भी साधारण या काबू में नहीं आया करता है ।३५।

ध्यानेन देवदेवेशं ददर्श परमेश्वरम् ।
स्वस्थांतःकरणो मैत्रः सर्वबाधाविवर्जितः ॥३६
चिंतयामास देवेशं ध्याने दृष्ट्वा जगद्गुरुम् ।
ध्येयावस्थितचित्तात्मा निश्चलेंद्रियदेहवान् ॥३७
आकालावधि सोऽतिष्ठन्निवातस्थप्रदीपवत् ।
जपंश्च देवदेवेशं ध्यायंश्च स्वमनीषया ॥३८
आराधयदमेयात्मा सर्वभावस्थमीश्वरम् ।
ततः स निष्फल रूपमैश्वरं यन्निरंजनम् ॥३९
परं ज्योतिरचिन्त्यं यद्योगिध्येयमनुत्तमम् ।
नित्यं शुद्धं सदा शांतमतींद्रियमनौपमम् ।
आनंदमात्रमचलं व्याप्ताशेषचराचरम् ॥४०
चिंतयामास तद्रूपं देवदेवस्य भार्गवः ।
सुचिरं राजशार्दूल सोऽहंभावसमन्वितः ॥४१

ध्यान के द्वारा राम ने देवों के भी देवेश्वर भगवान् शङ्कर का दर्शन प्राप्त कर दिया था । उसका अन्तःकरण परम स्वस्थ था तथा वह सबका मित्र और समस्त बाधाओं से रहित था ।३६। इन जगद्गुरु को ध्यान में देखकर उसने देवेश्वर का चिन्तन किया था । वह अपने ध्येय प्रभु में अव-स्थित चित्त और आत्मा वाला था । उसकी इन्द्रियाँ और देह निश्चल थे ।३७। वह अपने काल की अवधि तक निर्वात स्थान में दीपक के समान वहाँ पर स्थित रहा था । वह अपनी बुद्धि से देवदेव का जप तथा ध्यान करता हुआ वहाँ पर स्थित था ।३८। उस अमेय आत्मा वाले ने सब भावों में स्थित ईश्वर की आराधना की थी । इसके अनन्तर उस प्रभु का चिन्तन किया था जो फल रहित रूप है—ईश्वर और जो निरंजन है ।३९। जो परम ज्योति स्वरूप अचिन्तनीय-योगियों के द्वारा ध्यान करने के योग्य और सर्वोत्तम है । जो नित्य शुद्ध, सदा शान्त-इन्द्रियों की पहुँच से परे और उपमा से रहित है । जो केवल आनन्द के स्वरूप वाला अचल और समस्त चर और अचर में व्याप्त है ।४०। ऐसे देवों के देव के उस रूप का उस भार्गव ने हे राज शार्दूल ! बहुत समय ध्यान किया था और वह सोऽहं भाव में समन्वित हो गया था अर्थात् ध्येय और ध्याता की एक रूपता हो गयी थी ।४१। ❀

परशुराम परीक्षा

तपस्विनं तदा राममेकाग्रमनसं भवे।
रसस्यैकांतनिरतं नियतं शंसितव्रतम् ॥१
श्रुत्वा तमृषयः सर्वे तपोनिर्धूतकल्मषाः।
ज्ञानकर्मवयोवृद्धा महांतः शंसितव्रताः ॥२
दिदृक्षवः समाजग्मुः कुतूहलवमन्विताः।
ख्यापयंतस्तपः श्रेष्ठं तस्य राजन्महात्मनः ॥३
भृग्वत्रिक्रतुजाबालिवामदेवमृकंडवः।
संभावयंतस्ते रामं मुनयो वृद्धसंमताः ॥४
आजग्मुराश्रमं तस्य रामस्य तपसस्तपः।
दूरादेव महांतस्ते पुण्यक्षेत्रनिवासिनः ॥५
गरीयं सर्वलोकेषु तपोऽग्र्यं ज्ञानमेव च।
प्रशस्यं तस्य ते सर्वे प्रययुः स्वं स्वमाश्रमम् ॥६
एवं प्रवर्त्तितस्तस्य रामस्य भगवाञ्छिवः।
प्रसन्नचेता नितरां बभूव नृपसत्तम ॥७

श्री वसिष्ठजी ने कहा—उस समय में भगवान् शिव में एकाग्र मन वाले—एकान्त में एक निष्ठ होकर निरत रहने वाले—नियत और शंसित व्रत से युक्त उस तपस्वी राम का श्रवण करके तप से निर्धूत कल्मष वाले ऋषियों ने जो ज्ञान और कर्मों में वृद्ध महान् और शंसित व्रत वाले थे सभी दर्शन की इच्छा वाले हुए थे।१-२। देखने की इच्छा से समन्वित वे सब कुतूहल वाले वहाँ पर आये थे। हे राजन्! वे सब महान् आत्मा वाले उस राम के परम श्रेष्ठ तप का वर्णन करने वाले थे।३। बड़े-बड़े मुनियों के द्वारा संमत भृगु—अत्रि—क्रतु—जाबालि-वामदेव और मृकण्डु सब उस राम की प्रशंसा करने वाले थे।४। तपस्या का तपन करने वाले उस राम के आश्रय में सब समागत हुए थे। ये सब बहुत महान् और पुण्य क्षेत्र के निवास करने वाले बहुत ही दूर से वहाँ आये थे।५। समस्त लोकों में यह तप बहुत बड़ा उत्तम है और ज्ञान भी है। इस रीति से उन सब ने उसके तप की प्रशंसा की थी और फिर वे सभी अपने-अपने आश्रम को चले गये थे।६। हे नृपों

में श्रेष्ठ ! इस प्रकार से तपश्चर्या में प्रवृत्त होते हुए राम के ऊपर भगवान् शिव बहुत ही प्रसन्न चित्त वाले हो गये थे ।७।

जिज्ञासुस्तस्य भगवान् भक्तिमात्मनि शङ्करः ।
मृगव्याधवपुर्भूत्वा ययौ राजंस्तदंतिकम् ।।८
भिन्नांजनचयप्रख्यो रक्तांतायतलोचनः ।
शरचापधरः प्रांशुर्वज्रसंहननो युवा ।।९
उत्तुंगहनुबाह्वंसः पिंगलश्मश्रुमूर्द्धजः ।
मांसविस्रवसागंधी सर्वप्राणिविहिंसकः ।।१०
सकंटकुलतास्पर्शक्षतारूषितविग्रहः ।
सासृक्संचर्वमाणश्च मांसखंडमनेकशः ।।११
मांसभारद्वयालंबिविधानानतकंधरः ।
आरुजंस्तरसा वृक्षानूरुवेगेन संघशः ।।१२
अभ्यवर्त्तत तं देशं पादचारीव पर्वतः ।
आसाद्य सरसस्तस्य तीरं कुसुमितद्रुमम् ।।१३
न्यदधान्मांसभारं च स मूले कस्यचित्तरोः ।
निषसाद क्षणं तत्र तरुच्छायामुपाश्रितः ।।१४

हे राजन् ! भगवान् शंकर आत्मा में उसकी भक्ति के विषय में जानने की इच्छा वाले होकर पशुओं के व्याध का रूप धारण करके उस राम के समीप में गये थे ।८। तब व्याध के स्वरूप का वर्णन किया जाता है—वह पिसे हुए अञ्जन के ढेर के समान कृष्ण वर्ण वाला था। उसके बड़े और लाल वर्ण के नेत्र थे—वह शर और चाप धारण किये हुए था—लम्बे कद वाला तथा वज्र के समान सख्त शरीर वाला और युवा था ।९। उस शबर के बाहु-कन्धे और ठोड़ी ऊँचे थे तथा उसके माथे के केश और मूँछें पिङ्गल वर्णके थे। वह मांस, विस्र और वसा (चर्वी) की गन्ध वाला था अर्थात् उसके शरीर से बुरी गन्ध आ रही थी। वह सभी प्राणियों की हिंसा करने वाला था ।१०। काँटों के समुदाय के निरन्तर स्पर्श करते रहने से बहुत से क्षतों के होने कारण उसका शरीर रूषित था। वह रुधिर के सहित अनेक मांस के टुकड़ों को चबा रहा था ।११। मांस के भार से जो कि उसके दोनों ओर लदा हुआ था उसकी गरदन कुछ नीचे की ओर झुकी हुई थी। बहुत

बड़े वेग से युक्त तेजी के साथ चलने से वृक्षों के समूह को वह हिलाता हुआ चल रहा था ।१२। वह पदों से गमन करने वाले पर्वत के समान ही उस स्थल पर उपस्थित हो गया था । वह पुष्पों से समन्वित उस सरोवर के तट पर समागत हुआ था ।१३। उसने किसी वृक्ष की जड़ में उस मांस के भार को उतार कर रख दिया था और कुछ क्षणों के लिए वहां पर उसने वृक्ष की छाया का आश्रय ग्रहण किया था ।१४।

तिष्ठंतं सरसस्तीरे सोऽपश्यद्भृगुनंदनम् ।
ततः स शीघ्रमुत्थाय समीपमुपसृत्य च ॥१५
रामाय सेषुचापाभ्यां कराभ्यां विदधेंऽजलिम् ।
सजलांभोदसन्नादगंभीरेण स्वरेण च ॥१६
जगाद भृगुशार्दूलं गुहांतरविसर्पिणा ।
तोषप्रवर्षव्याधोऽयं वसाम्यस्मिन्महावने ॥१७
ईशोऽहमस्य देशस्य सप्राणितरुवीरुध: ।
चरामि समचित्तात्मा नानासत्वामिषाशनः ॥१८
समश्च सर्वभूतेषु न च पित्रादयोऽपि मे ।
अभक्ष्यागम्यपेयादिच्छंदवस्तुषु कुत्रचित् ॥१९
कृत्याकृत्यविधौ चैव न विशेषितधीरहम् ।
प्रपन्नो नाभिगमनं निवासमपि कस्यचित् ॥२०
शक्रस्यापि बलेनाहमनुमन्ये न संशयः ।
जानते तद्यथा सर्वे देशोऽयं मदुपाश्रयः ॥२१

उस महान् भयङ्कर स्वरूपवान शबर ने वहाँ पर सरोवर के तट पर ध्यान में बैठे हुए उस भृगु नन्दन को देखा था । इसके उपरान्त वह बहुत शीघ्र उठकर उस राम के समीप में आ गया था ।१५। उसने राम के लिये बाण और चाप से युक्त करों से अञ्जलि की थी और जल से परिपूर्ण मेघ के समान परम गम्भीर स्वर से उस भृगु शार्दूल से कहा था जो कि स्वर पर्वत की गुहाओं में फैल गया था । मैं तोष-प्रवर्ष व्याध हूँ और इसी महा-वन में निवास किया करता हूँ ।१६-१७। इस स्थल के समस्त प्राणी और वनस्पतियों का मैं स्वामी हूँ । अनेक जीवों के मांस का भोजन करने वाला

मैं समचित और आत्मा वाला हूँ और यहाँ पर सञ्चरण किया करता हूँ ।१८। मैं सब प्राणियों के साथ समान व्यवहार करने वाला हूँ और मेरे कोई भी माता-पिता आदि नहीं हैं । मैं कहीं पर भी अभक्ष्य-अगम्य और अपेय आदि वस्तुओं में स्वतन्त्रता से उनका सेवन करने वाला हूँ ।१९। कृत्य और अकर्त्तव्य कार्यों की विधि में मेरी कुछ भी विशेषता वाली बुद्धि नहीं है । किसी के भी निवास स्थान पर मैं अभिगमन करने वाला नहीं हूँ ।२०। इन्द्र के भी वज्र से मैं नहीं डरता हूँ—इसमें लेशमात्र भी संशय नहीं है । सभी लोग इस बात को भली भाँति जानते हैं कि यह स्थल मेरे ही आश्रय वाला है अर्थात् यहाँ पर केवल मैं ही रहा करता हूँ ।२१।

तस्मान्न कश्चिदायाति ममात्रानुमतिं विना ।
इत्येष मम वृत्तान्तः कात्स्न्र्येन कथितस्तव ।।२२
त्वं च मे ब्रूहि तत्त्वेन निजवृत्तमशेषतः ।
कस्त्वं कस्मादिहायातः किमर्थमिहाधिष्ठितः ।
उद्यतोऽन्यत्र वा गंतुं किं वा तव चिकीर्षितम् ।।२३
वसिष्ठ उवाच—इत्येवमुक्तः प्रहसंस्तेन रामो महाद्युतिः ।
तूष्णीं क्षणमिव स्थित्वा दध्यौ किंचिदवाङ्मुखः ।।२४
कोऽयमेव दुराधर्षः सजलांभोदनिस्वनः ।
ब्रवीति च गिरोऽत्यर्थं विस्पष्टार्थपदाक्षराः ।।२५
किं तु मे महतीं शंकां तनुरस्य तनोति वै ।
विजातिसंश्रयत्वेन रमणीया यथा शराः ।।२६
एवं चिंतयतस्तस्य निमित्तानि शुभानि वै ।
बभूवुर्भुवि देहे च स्वाभिप्रेतार्थदान्यलम् ।।२७
ततो विमृश्य बहुशो मनसा भृगुपुंगवः ।
उवाच शनकैर्व्याधं वचनं सूनृताक्षरम् ।।२८

इस कारण से मेरी अनुमति के बिना यहाँ पर कोई भी नहीं आया करता है । यही मेरा वृत्तान्त है जो पूर्णतया तुम्हारे सामने मैंने कह दिया है ।२२। और अब आप अपना पूरा हाल तात्त्विक रूप से मुझे बतलाइए । आप कौन हैं—किस कारण से यहाँ पर समागत हुए हैं और किस प्रयोजन

की सिद्धि के लिये यहाँ पर समधिष्ठित हो रहे हैं ? अथवा यहाँ से किसी अन्य स्थान में जाने के समुद्यत हैं अथवा आपकी क्या करने की इच्छा है ।२३। श्री वसिष्ठ जी ने कहा—जब उसके द्वारा इस प्रकार से कहा गया तो महान् द्युति से सम्पन्न राम ने हँसकर एक क्षण के लिए चुप होकर कुछ नीचे की ओर मुख करके चिन्तन किया था ।२४। उसने अपने मन में विचार किया था कि यह दुराधर्ष कौन है जिसकी ध्वनि सजल मेघ के सदृश है और अधिक सुस्पष्ट अर्थ वाले पदों से युक्त वाणी बोलता है ।२५। इसका वपु मेरे हृदय में बहुत अधिक शङ्का समुत्पन्न कर रहा है । यह विजातीय है और नीच जाति का समाश्रय पाकर भी इसका शरीर शर की ही भाँति परम रमणीय है ।२६। इस तरह से चिन्तन करते हुए उसको परम शुभ निमित्त हो रहे थे जो भूमि में—देह में अपने अभीष्ट अर्थ के लिये पूर्ण रूप से प्रदान करने वाले थे ।२७। इसके अनन्तर उस भृगु कुल में श्रेष्ठ ने मन से बहुत बार विचार करके धीरे से उस व्याध से सूनृत अक्षरों वाले बचन कहे थे ।२८।

जामदग्न्योऽस्मि भद्रं ते रामो नाम्ना तु भार्गवः ।
तपश्चर्तुमिहायातः सांप्रतं गुरुशासनात् ।।२९
तपसा सर्वलोकेशं भक्त्या च नियमेन च ।
आराधयितुमस्मिस्तु चिरायाहं समुद्यतः ।।३०
तस्मात्सर्वेश्वरं सर्वशरण्यमभयप्रदम् ।
त्रिनेत्रं पापदमनं शङ्करं भक्तवत्सलम् ।।३१
तपसा तोषयिष्यामि सर्वज्ञं त्रिपुरांतकम् ।
आश्रमेऽस्मिन्सरस्तीरे नियमं समुपाश्रितः ।।३२
भक्तानुकंपी भगवान्यावत्प्रत्यक्षतां हरः ।
उपैति तावदत्रैव स्थास्यामीति मतिर्मम ।।३३
तस्मादितस्त्वयाद्यैव गन्तुमन्यत्र युज्यते ।
न चेद्भवति मे हानिः स्वकृतेर्नियमस्य च ।।३४
माननीयोऽथ वाहं ते भक्त्या देशांतरातिथिः ।
स्वनिवासमुपायातस्तपस्वी च तथा मुनिः ।।३५

आपका कल्याण हो—मैं जमदग्नि का पुत्र नाम से मैं भार्गव राम हूँ। इस समय में मैं अपने गुरुदेव के आदेश से यहाँ पर तपश्चर्या का समाचरण करने के ही लिए आया हूँ।२९। तपस्या-भक्ति और नियम से इस पर्वत पर सर्वलोकेश्वर की आराधना करने को चिरकाल के लिये मैं समुद्यत हुआ हूँ।३०। इस कारण से सर्वेश्वर—सबकी रक्षा करने वाले—अभय के देने वाले—समस्त पापों के दमन करने वाले—अपने भक्तों पर वात्सल्य रखने वाले तीन नेत्रों से समन्वित भगवान् शङ्कर को मैं प्रसन्न करूँगा।३१। मैं अपने तप के द्वारा सर्वज्ञ भगवान् त्रिपुरारि को को सन्तुष्ट करूँगा मैं इस सरोवर के तट पर स्थित आश्रम में नियम से समुपाश्रित हुआ हूँ।३२। अपने भक्तों पर अनुकम्पा करने वाले भगवान् शङ्कर जब तक प्रत्यक्ष मुझे दर्शन नहीं देते हैं तब तक मैं यहीं पर स्थित रहूँगा—यही मेरा विचार है।३३। इस कारण से आप यहाँ से नहीं जाते हैं तो मेरे अपने कृत्य में और नियम में हानि होती है।३४। अथवा यों समझ लीजिए कि मैं अन्य देश से आया हुआ आपका एक अतिथि हूँ अतएव भक्ति से मैं आपका माननीय होता हूँ। मैं आपके ही अपने निवास स्थल में उपगत हो गया हूँ जो कि मैं एक तपस्वी तथा मुनि हूँ।३५।

त्वत्संनिधौ निवासो मे भवेत्पापाय केवलम् ।
तव चाप्यसुखोदकं मत्समीपनिषेवणम् ।।३६

स त्वं मदाश्रमोपांते परिचंक्रमणादिकम् ।
परित्यज्य सुखी भूया लोकयोरुभयोरपि ।।३७
वसिष्ठ उवाच—इति तस्य वचः श्रुत्वा स भयो भृगुपुंगवम् ।
उवाच रोषताम्राक्षस्ताम्राक्षमिदमुत्तरम् ।।३८
ब्रह्मन् किमिदमत्यर्थं समीपे वसति मम ।
परिगर्हयसे येन कृतघ्नस्येव सांप्रतम् ।।३९
किं मयापकृतं लोके भवतोऽन्यस्य वा क्वचित् ।
अनागस्कारिणं दांतं कोऽवमन्येत नामतः ।।४०
सन्निधिः परिहर्त्तव्यो यदि मे विप्रपुंगव ।
दर्शनं सह संवासः संभाषणमथापि च ।।४१

आयुष्मताऽधुनैवास्मादपसर्त्तव्यमाश्रमात ।
स्वसंश्रयं परित्यज्य क्वाहं यास्ये बुभुक्षितः ।।४२

आपके समीप में मेरा निवास होना केवल पाप के ही लिए होगा और आपका भी मेरे निकट रहना भविष्य में असुख देने वाला ही होगा अर्थात् मेरे समीप में रहने से आपको भी कष्ट ही होगा ।३६। ऐसे आप मेरे आश्रम के समीप में इधर-उधर घूमने-फिरने के चक्र काटने को त्यागकर आप भी दोनों लोकों में सुखी होइये ।३७। वसिष्ठ जी ने कहा—उस राम के इन वचनों का श्रवण करके वह रोष से लाल नेत्रों को करके रक्त नेत्रों वाले भृगु श्रेष्ठ से यह उत्तर देते हुए कहा ।३८। हे ब्रह्मन् ! मेरे समीप में रहने की आप इतनी अधिक अब क्यों बुराई कर रहे हैं जैसे कोई कृतघ्न किया करता है ।३६। मैंने इस लोक में आपका अथवा कहीं पर अन्य किसी का क्या अपकार किया है ? जो पाप या अपराध नहीं करने वाला है उसका नाम से ही कौन अपमान किया करता है अर्थात् ऐसा तो कोई भी करता है ।४०। हे श्रेष्ठ विप्र ! यदि आपको मेरा समीप में रहना हटाना है और मेरा देखना—साथ में वार्त्तालाप और एक जगह पर साथ रहना भी दूर करना है तो आयुष्मान् आपको इसी समय में इस आश्रम से अपसरण कर जाना चाहिए । मैं तो बुभुक्षित हूँ और अपने निवास स्थान का परित्याग करके कहाँ पर जाऊँगा ।४१-४२।

स्वाधिवासं परित्यज्य भवता चोदितः कथम् ।
इतोऽन्यस्मिन् गमिष्यामि दूरे नाहं विशेषतः ।।४३
गम्यतां भवताऽन्यत्र स्थीयतामत्र वेच्छया ।
नाहं चालयितुं शक्यः स्थानादस्मात्कथंचन ।।४४
वसिष्ट उवाच—तच्छ्रुत्वा वचनं तस्य किंचित्कोपसमन्वितः
तमुवाच पुनर्वाक्यमिदं राजन्भृगूद्वहः ।।४५
व्याधजातिरियं क्रूरा सर्वसत्त्वभयावहा ।
खलकर्मरता नित्यं धिक्कृता सर्वजंतुभिः ।।४६
तस्यां जातोऽसि पापीयान्सर्वप्राक्षिविहिंसकः ।
स कथं न परित्याज्यः सुजनैः स्यात्तु दुर्मते ।।४७

शरीरत्राणकारुण्यात्समीपं नोपसर्पसि ।
यया त्वं कंटकादीनामसहिष्णुतया व्यथाम् ।।४६

आपने अपने स्थान को जो कि आवास का स्थल है मुझे कैसे प्रेरित किया है ? मैं तो यहाँ से विशेष दूरी पर नहीं जाऊँगा ।४३। आपको ही अन्य स्थान में चले जाना चाहिए अथवा इच्छा से यहाँ पर स्थित रहिए । मैं तो इस स्थान से किसी भी प्रकार से भेजा नहीं जा सकता हूँ ।४४। वसिष्ठ जी ने कहा—उस शबर वेषधारी के इस वचन का श्रवण करके वह भृगु कुल के उद्वहन करने वाले राम को कुछ क्रोध आ गया था और हे राजन् ! राम ने उससे यह वाक्य फिर कहा था ।४५। यह व्याध की जो जाति है वह बहुत ही क्रूर है और समस्त प्राणियों को भय देने वाली है । यह जाति नित्य ही दुष्ट कर्मों के करने वाली होती है और सभी जन्तुओं द्वारा यह धिक्कृत है ।४६। उसी व्याध जाति में तुमने जन्म ग्रहण किया है अतः आप समस्त प्राणियों की हिंसा करने वाले अधिक पापी हैं । हे दुष्ट बुद्धि वाले ! वह आप सुजनों के द्वारा कैसे नहीं परित्याग करने के योग्य होते हैं ? ।४७। इस कारण से अपने आपको विशेष हीन जाति वाला समझ कर यहाँ से शीघ्र ही अन्य किसी स्थानमें चले जाओ । इस विषय में अधिक सोच विचार करने की आवश्यकता नहीं करनी चाहिए ।४८। अपने शरीर के परित्राण करने की दया से मेरे समीप में नहीं आते हो क्योंकि आपको कण्टक आदि की व्यथा है उसको आप सहन नहीं कर रहे हैं । अपने दुःख के ही समान दूसरे प्राण धारियों का दुःख हुआ करता है ।४६।

तथाऽवेहि समस्तानां प्रियाः प्राणाः शरीरिणाम् ।
व्यथा चाभिहतानां तु विद्यते भवतोऽन्यथा ।।५०
अहिंसा सर्वभूतानिमिति धर्मः सनातनः ।
एतद्विरुद्धाचरणान्नित्यं सद्भिर्विगर्हितः ।।५१
आत्मप्राणाभिरक्षार्थं त्वमशेषशरीरिणः ।
हनिष्यसि कथं सत्सु नाप्नोषि वचनीयताम् ।।५२
तस्माच्छीघ्रं तु भो गच्छ त्वमेव पुरुषाधम ।
त्वया मे कृत्यदोषस्य हानिश्च न भविष्यति ।।५३
न चेत्स्वयमितो गच्छेस्ततस्तव बलादपि ।

अपसर्पणताबुद्धिमहमुत्पादये स्फुटम् ।।५४

क्षणार्द्धमपि ते पाप श्रेयसी नेह संस्थितः ।

विरुद्धाचरणो नित्यं धर्मद्विट् को लभेच्च शम् ।।५५

वसिष्ठ उवाच—रामस्य वचनं श्रुत्वा प्रीतोऽपि तमिदं वचः ।

उवाच संक्रुद्ध इव व्याधरूपी पिनाकधृक् ।।५६

उसी भाँति से समस्त प्राणधारियों को अपने प्राण परम प्रिय हुआ करते हैं—ऐसा ही अपने मन में समझ लो। आप जिनका हनन किया करते हैं उनकी भी व्यथा इसी प्रकार से हुआ करती है और अन्य प्रकार की नहीं होती है।५०। प्राणिमात्र की हिंसा न करना ही सनातन अर्थात् सदा से चले आने वाला धर्म है। इसके विरुद्ध कार्यों का समाचरण करना ही नित्य सत्पुरुषों के द्वारा बुरा माना जाता है।५१। अपने प्राणों की अभिरक्षा के ही लिए हम सब शरीर धारियों का हनन किया करेंगे। फिर आगे क्यों नहीं सत्पुरुषों में निन्दा को प्राप्त होंगे।५२। हे अधम पुरुष ! इस कारण से आप बहुत शीघ्र ही यहाँ से चले जाओ। तुम्हारे द्वारा किए कृत्यों के दोष से मेरे कार्य की कोई हानि नहीं होगी।५३। यदि आप स्वयं ही यहाँ से नहीं गमन करते हैं तो मैं बलपूर्वक भी स्पष्टतया तुम्हारे अपसर्पण की बुद्धि समुत्पन्न कर देता हूँ।५४। हे पापात्मन् ! यहाँ पर आधे क्षण भी आपकी संस्थिति अच्छी नहीं है। विरुद्ध आचरण वाला धर्म का द्वेषी ऐसा कौन है जो सदा कल्याण को प्राप्त किया करता है अर्थात् ऐसा कोई भी नहीं होता है।५५। श्री वसिष्ठजी ने कहा—राम के ऐसे वचनों को सुनकर मन में बहुत प्रसन्न होते हुए भी वे स्वरूपधारी भगवान् शंकर क्रुद्ध के ही समान उस राम से यह वचन बोले थे।५६।

सर्वमेतदहं मन्ये व्यर्थं व्यवसितं तव ।

कुतस्त्वं प्रथमो ज्ञानी कुतः शंभुः कुतस्तपः ।।५७

कुतस्त्वं क्लिश्यसे मूढ तपसा तेन तेऽधुना ।

ध्रुवं मिथ्याप्रवृत्तस्य न हि तुष्यति शङ्करः ।।५८

विरुद्धलोकाचरणः शंभुस्तस्य वितुष्टये ।

प्रतपत्यबुधो मर्त्यंस्त्वां विना कः सुदुर्मते ।।५९

अथवा च गतं मेऽद्य युक्तमेतदसंशयम् ।

संपूज्य पूजकविधौ शंभोस्तव च संगमः ॥६०

त्वया पूजयितुं युक्तः स एव भुवने रतः ।
संपूजकोऽपि तस्य त्वं योग्यो नात्र विचारणा ॥६१

पितामहस्य लोकानां ब्रह्मणः परमेष्ठिनः ।
शिरश्छित्वा पुनः शम्भुर्ब्रह्महत्यामवाप्तवान् ॥६२

ब्रह्महत्याभिभूतेन प्रायस्त्वं शंभुना द्विज ।
उपदिष्टोऽसि तत्कर्तुं नोचेदेवं कथं कृथाः ॥६३

मैं यह सब कुछ मानता हूँ तथापि आपका ऐसा निश्चय कि भगवान् शङ्कर का दर्शन प्राप्त करूँगा यह सब व्यर्थ है । कहाँ तो प्रथम ज्ञानी हैं— कहाँ भगवान् देवों के देव शम्भु हैं तथा कहाँ उनको प्राप्त करने के लिए यह तुम्हारी तपस्या है ? अर्थात् भगवान् शम्भु के प्रत्यक्ष करने के लिए कहीं अत्यधिक ज्ञान और विशेष तपस्या होनी चाहिए क्योंकि ये साधारण साधन से प्राप्त होने वाले नहीं हैं । आपकी साधना सर्वथा अकिञ्चित्कर है ।५७। हे मूढ़ ! इस समय में इस तप के द्वारा आप क्यों क्लेशित हो रहे हैं ? यह निश्चय है कि इस तरह से मिथ्याप्रवृत्ति वाले आपसे भगवान् शङ्कर कभी भी सन्तुष्ट नहीं होंगे ।५८। हे सुदुर्मते ! शम्भु तो लोक के आचरण के सर्वथा विरुद्ध हैं । उनकी विशेष तुष्टि के लिए तुमको छोड़कर कौन अबुद्ध ऐसी प्रकृष्ट तपस्या किया करता है अर्थात् ऐसा कोई भी नहीं करता है ।५९। और अथवा मैं आज गया और यह बिना ही संशय के युक्त है । पूज्य और पूजन की विधि में भगवान् शम्भु का और आपका सङ्गम है ।६०। आपके द्वारा उनकी पूजा करना युक्त है । वे ही समस्त भुवन में रत हैं । उनकी भली भाँति पूजा करने वाले आप भी योग्य हैं—इसमें कोई संशय नहीं है ।६१। समस्त लोकों के पिता यह परमेष्ठी ब्रह्माजी के शिर का छेदन करके शम्भु ने फिर ब्रह्म हत्या प्राप्त की थी ।६२। हे द्विज ! ब्रह्महत्या से अभिभूत शम्भु ने प्रायः आपको उपदेश दिया है कि ऐसा करें । यदि ऐसा नहीं है तो आप इस रीति से कैसे कर रहे हैं ।६३।

तादात्म्यगुणसंयोगान्मन्ये रुद्रस्य तेऽधुना ।
तप सिद्धिरनुप्राप्ता कालेनाल्पीयसा मुने ॥६४

प्रायोऽद्य मातरं हत्वा सर्वैर्लोकैर्निराकृतः ।

तपोव्याजेन गहने निर्जने संप्रवर्त्तसे ॥६५
गुरुस्त्रीब्रह्महत्योत्थपातकक्षपणाय च ।
तपश्चरसि नानेन तपसा तत्प्रणश्यति ॥६६
पातकानां किलान्येषां प्रायश्चित्तानि सन्त्यपि ।
मातृद्रुहामवेहि त्वं न क्वचित्किल निष्कृतिः ॥६७
अहिंसालक्षणो धर्मो लोकेषु यदि ते मतः ।
स्वहस्तेन कथं राम मातरं कृत्तवानसि ॥६८
कृत्वा मातृवधं घोरं सर्वलोकविगर्हितम् ।
त्वं पुनर्धार्मिको भूत्वा कामतोऽन्यान्विनिंदसि ॥६९
पश्यता हसतामोघं आत्मदोषजानता ।
अपर्याप्तमहं मन्ये परं दोषविमर्शनाम् ॥७०

मैं ऐसा मानता हूँ कि अब भगवान् रुद्र के तादाम्त्य के संयोग से सिद्धि को प्राप्त हो गये हैं । हे मुने ! यह सिद्धि की प्राप्ति बहुत ही थोड़े समय में हो जायगी ।६४। बहुधा आप आज अपनी माता का हनन करके सभी लोगों के द्वारा निराद्दत हो गये हैं और तपस्या के करने के बहाने से इस निर्जन वन में सबसे निरादर पाकर प्रवृत्त हो गये हैं ।६५। गुरु-स्त्री और ब्रह्महत्या से समुत्पन्न पातक के दूर करने के लिए ही आप तपश्चर्या का समाचरण कर रहे हैं सो वह पातक इस तप से कभी भी विनष्ट नहीं होता है ।६६। अन्य प्रकार के किये हुए पातकों के निश्चित रूप से प्रायश्चित भी हैं । आप यह समझ लेवें कि जो माता से द्रोह करने वाले हैं कहीं भी उनके पातकों का प्रायश्चित नहीं हैं ।६६। हे राम ! यदि आपको यह सम्मत है कि अहिंसा के लक्षण वाला धर्म है जो कि सभी लोकों में माना गया है तो फिर आपने ही अपने ही हाथ से अपनी माता को कैसे काट दिया था ? ।६८। समस्त लोकों में परमाधिक निन्दित घोर माता का वध करके फिर बड़े धार्मिक बनकर अपनी इच्छा से अन्य लोगों की निशेप निन्दा कर रहे हैं ।६६। इस अमोघ अपने दोष को देखते हुए भी उसको नहीं जानते हैं और हँस रहे हैं । मैं तो इस दूसरों के दोषों के विर्शना को पर्याप्त नहीं मानता हूँ ।७०।

स्वधर्मं यद्यहं त्यक्त्वा वर्त्तेयमकुतोभयम् ।
तर्हि गर्हय मां कामं निरूप्य मनसा स्वयम् ॥७१
मातापितृसुतादीनां भरणार्थैव केवलम् ।
क्रियते प्राणिहननं निजधर्मतया मया ॥७२
स्वधर्मादामिषेणाहं सकुटुम्बो दिनेदिने ।
वर्तामि साऽपि मे वृत्तिर्विधात्रा विहिता पुरा ॥७३
मांसेन यावता मे स्यान्नित्यं पित्रादि पोषणम् ।
हनिष्ये चेत्तदधिकं तर्हि युज्येयमेनसा ॥७४
यावत्पोषणघातेन न वयं स्याम निंदिताः ।
तदेतत्संप्रधार्य त्वं वा मां प्रशंस वा ॥७५
साधु वाऽधु वा कर्म यस्य यद्विहितं पुरा ।
तदेव तेन कर्त्तव्यमापद्यपि कथंचन ॥७६
निरूपय स्वबुद्धया त्वमात्मनो मम चांतरम् ।
अहं तु सर्वभावेन मित्रादिभरणे रतः ॥७७

यदि मैं अपने धम का त्याग कर अकुतोभय अर्थात् निर्भीकता वाला होते हुए बरताव करूँ तो स्वयं मन से निरूपण करके मुझे इच्छा पूर्वक निन्दित कहिए ।७१। मैं तो अपने माता-पिता और पुत्र आदि के भरण-पोषण के ही लिए केवल अपने धर्म के कारण ही प्राणियों का वध किया करता हूँ ।७३। अपने ही धर्म होने से प्रतिदिन अपने कुटुम्ब का भरण मांस से किया करता हूँ और यह भी मेरी वृत्ति पहिले ही विधाता ने बना दी है ।७२। जितने मांस से नित्य ही मेरे माता-पिता और पुत्र आदि का भरण हो जाता है उतने ही प्राणियों का मैं हनन किया करता हूँ। इससे भी अधिक मैं हनन करूँ तो मैं पाप से युक्त होऊँगा ।७४। जितने मांस से सबका पोषण होते उतने ही प्राणियों के घात करने से हम लोग कभी भी निन्दित नहीं होते हैं। यह सबका विचार करके ही आप मेरी निन्दा करें या प्रशंसा करें ।७५। अच्छा हो या बुरा ही जिसका जो कर्म पहिले ही विधाता ने बना दिया है वही कर्म किसी भी प्रकार से आपत्काल में भी उसे करना चाहिए ।७६। अब आप स्वयं अपनी ही बुद्धि से मेरे कर्म में जो भी अन्तर हो उसका

निरूपण कर लीजिए। मैं तो सब प्रकार से मित्र आदि के भरण पोषण के ही कार्य में निरत रहा करता हूँ।७७।

सत्यज्य पितरं वृद्धं विनिहत्य च मातरम्।
भूत्वा तु धार्मिकस्त्वं तु तपश्चर्तुमिहागतः ॥७८
ये तु मूलविदस्तेषां विस्पष्टं यत्र दर्शनम्।
यथाजिह्वं भवेन्नात्र वचसापि समीहितुम् ॥७९
अहं तु सम्यग्जानामि तव वृत्तमशेषतः।
तस्मादलं ते तपसा निष्फलेन भृगूद्वह ॥८०
सुखमिच्छसि चेत्त्यक्त्वा कायक्लेशशकरं तपः।
याहि राम त्वमन्यत्र यत्र वा न विदुर्जनाः ॥८१

अब अपने कर्मों की ओर दृष्टिपात करिए। आपने अपने परम वृद्ध पिता का परित्याग कर दिया है और अपनी आपको जन्म देकर अपने स्तनों के दुग्ध से पोषण करने वाली माता का विहनन कर दिया है। यह बुरे से बुरा कर्म करके भी आप परम धार्मिक बनकर तपश्चर्या करने के लिए यहाँ पर समागत हो गये हैं।७८। जो लोग उनके मूल के ज्ञाता हैं उनको विस्पष्ट दर्शन होता है। यह जिह्वा से कहकर वचनों के द्वारा समीहित करने का विषय यहाँ पर नहीं है।७९। मैं तो आपका सम्पूर्ण आचरण भली भाँति जानता हूँ और मुझे पूर्ण उसका ज्ञान है। हे भृगुद्वह! इस कारण से यह आपका तप निष्फल है। इसे व्यर्थ मत करो।८०। भाई अपना सुख चाहते हो तो इस काया को क्लेशित करने वाले तप का त्याग कर दीजिए। हे राम! अब आप किसी भी अन्य स्थान में चले जाइए जहाँ पर कि कोई भी मनुष्य आपको न जान सकें।७१।

—×—

॥ शैवास्त्र की प्राप्ति ॥

वसिष्ठ उवाच—इत्युक्तस्तेन भूपाल रामो मतिमतां वरः।
निरूप्य मनसा भूयस्तमुवाचाभिविस्मितम् ॥१
राम उवाच—कस्त्वं ब्रूहि महाभाग न वै प्राकृतपूरुषः।
इन्द्रस्येवानुभावेन वपुरालक्ष्यते तव ॥२

विचित्रार्थपदौदार्यगुणगांभीर्यजातिभिः ।
सर्वज्ञस्यैव ते वाणी श्रूयतेऽतिमनोहरा ।।३
इन्द्रो वह्निर्यमो धाता वरुणो वा धनाधिपः ।
ईशानस्तपनो ब्रह्मा वायुः सोमो गुरुर्गुहः ।।४
एषामन्यतमः प्रायो भवान्भवितुमर्हति ।
अनुभावेन जातिस्ते हृदि शंका तनोति मे ।।५
मायावी भगवान्विष्णुः श्रूयते पुरुषोत्तमः ।
को वा त्वं वपुषानेन ब्रूहि मां समुपागत ।।६
अथ वा जगतां नाथः सर्वज्ञः परमेश्वरः ।
परमात्मात्मसंभूतिरात्मारामः सनातनः ।।७

श्री वसिष्ठ जी ने कहा--हे भूपाल ! मतिमानों में परम श्रेष्ठ राम से जब इस प्रकार से कहा गया था तो फिर उसने मन से निरूपण करके बहुत ही विस्मित होते हुए उससे कहा था ।१। राम ने कहा--हे महान् भाग वाले ! आप मुझे यह बतलाइए कि आप कौन हैं ? आप कोई प्राकृत पुरुष तो हैं नहीं । आपका शरीर तो अनुभाव से इन्द्र के ही समान लक्षित हो रहा है ।२। विचित्र अर्थ वाले पदों की उदारता-गुणों की गम्भीरता की जातियों से आपकी वाणी सर्वज्ञ की ही अधिक मनोहर सुनाई दे रही है ।३। आप या तो इन्द्र हैं---अग्निदेव हैं--यम--धाता--वरुण अथवा कुबेर हैं। आप या तो ईशान है-तपन-ब्रह्मा--वायु--सोम--गुरु और या गुह हैं ।४। इन ऊपर बताये हुओं में से ही आप कोई से भी एक हो सकते हैं---यही बहुधा प्रतीत होता है । आपके अनुभाव कुछ ऐसे ही हैं कि मेरे हृदय में आपकी जाति बड़ी भारी शंका उत्पन्न कर रही है ।५। भगवान् विष्णु बहुत अधिक मायावी हैं--ऐसा पुरुषोत्तम प्रभु के विषय में श्रवण किया जाता है । आप वास्तव में कौन हैं जो कि इस शरीर को धारण करके यहाँ समागत हुए हैं--यह आप मुझे स्पष्टतया बतलाने की कृपा करें । अथवा समस्त भुवनों के स्वामी--सब कुछ के ज्ञाता साक्षात् परमेश्वर हैं जो परमात्मा से ही आत्मा की उत्पत्ति वाले सनातन आत्मराम हैं ।६-७।

स्वच्छंदचारी भगवाञ्छिवः सर्वजगन्मयः ।
वपुषानेन संयुक्तो भवान्भवितुमर्हति ।।८

नान्यस्येदृग्भवेल्लोके प्रभावानुगतं वपुः ।
जात्यर्थसौष्ठवोपेता वाणी चौदार्यशालिनी ॥९

मन्येऽहं भक्तवात्सल्याद्धानेन वपुषा हरः ।
प्रत्यक्षतामुपगतो संदेहोऽस्मत्परीक्षया ॥१०

न केवलं भवान् व्याधस्तेषां नेदृग्विधाकृतिः ।
तस्मात्तुभ्यं नमस्तस्मै सुरूपं संप्रदर्शय ॥११

आविष्कुर्वन्प्रसीदात्ममहिमानुगुणं वपुः ।
ममानेकविधा शंका मुच्येत येन मानसी ॥१२

प्रसीद सर्वभावेन बुद्धिमोहो ममाधुना: ।
प्रणाशय स्वरूपस्य ग्रहणादेव केवलम् ॥१३

प्रार्थये त्वां महाभाग प्रणम्य शिरसासकृत् ।
कस्त्वं मे दर्शयात्मानं बद्धोऽयं ते मयाञ्जलिः ॥१४

परम स्वच्छन्दता के साथ सञ्चरण करने वाले सम्पूर्ण जगत् के स्वरूप वाले आप साक्षात् भगवान् शिव हैं जो इस शबर के शरीर को धारण करके यहाँ पर स्थित हैं। मुझे तो ऐसा ही लगता है कि आप भगवान् शम्भु हो सकते हैं ।८। इस लोक में अन्य किसी का भी ऐसा प्रभाव से अनुगत शरीर नहीं होता है। जाति का अर्थ के सौष्ठव से युक्त और उदारता की शोभा वाली आपकी वाणी है ।९। मैं तो अब ऐसा ही समझ रहा हूँ कि भगवान् हर ही भक्त के ऊपर वात्सल्य होने के कारण से इस शरीर को धारण कर मेरी परीक्षा करने के लिए प्रत्यक्ष स्वरूप में उपागत हुए हैं—ऐसा ही कुछ सन्देह होता है ।१०। आप केवल व्याध तो नहीं है—यह निश्चय है क्योंकि इस प्रकार की आकृति कभी होती ही नहीं है। इस कारण से मेरा आपकी सेवा में प्रणाम निवेदित है। अब कृपया अपना वास्तविक स्वरूप प्रदर्शित कीजिए ।११। मेरे ऊपर प्रसन्न होइए और अपनी महिमा के अनुरूप वपु को प्रकट कर दीजिए जिससे मेरे मन में जो अनेक तरह की शङ्काएं उठ रही हैं, उनसे मेरा छुटकारा हो जावे ।१२। आप पूर्ण रूप से प्रसन्न होइए और इस समय में जो विचलित बुद्धि हो रही है तथा उसके कारण जो मुझे महान् मोह उत्पन्न हो रहा है उसका विनाश कीजिए। यह केवल आपके सत्य स्वरूप के ग्रहण करने ही से हो जायगा

।१३। हे महाभाग ! मेरी यह विनम्र प्रार्थना है और मैं बारम्बार आपको शिर से प्रणाम करके आपसे विनती करता हूँ कि आप कौन हैं--मुझे अपना सत्य स्वरूप दिखला दीजिए—मैं आपके लिए दोनों हाथ को जोड़कर विनय कर रहा हूँ ।१४।

इत्युक्त्वा तं महाभाग ज्ञातुमिच्छन्भृगूद्वहः ।
उपविश्य ततो भूमौ ध्यानमास्ते समाहितः ।।१५
बद्धपद्मासनो मौनी यतवाक्कायमानसः ।
निरुद्धप्राणसंचारो दध्यौ चिरमुदारधीः ।।१६
सन्नियम्येंद्रियग्रामं मनो हृदि निरुध्य च ।
चिंतयामास देवेशं ध्यादृष्ट्या जगद्गुरुम् ।।१७
अपश्यच्च जगन्नाथमात्मसंधानचक्षुषा ।
स्वभक्तानुग्रहकरं मृगव्याधस्वरूपिणम् ।।१८
तत उन्मील्य नयने शीघ्रमुत्थाय भार्गवः ।
ददर्श देवं तेनैव वपुषा पुरतः स्थितम् ।।१९
आत्मनोऽनुग्रहार्थाय शरण्यं भक्तवत्सलम् ।
आविर्भूतं महाराज दृष्ट्वा रामः ससंभ्रमम् ।।२०
रोमाञ्चोद्भिन्नसर्वांगो हर्षाश्रुप्लुतलोचनः ।
पपात पादयोर्भूमौ भक्त्या तस्य महामतिः ।।२१

हे महाभाग ! उस शवर के वेषधारी से यह इतना कहकर उस भृगूद्वह ने सत्य स्वरूप के ज्ञान प्राप्त करने की इच्छा करते हुए भूमि पर बैठकर वह परम समाहित होकर ध्यान में संलग्न हो गया था ।१५। उस उदार बुद्धि वाले ने पद्मासन बाँध लिया था और मौन होकर वाणी-शरीर और मन को संयत कर लिया था । फिर उसने प्राण वायु के सञ्चार का निरोध करके चिरकाल पर्यन्त ध्यान लगा लिया था ।१६। इन्द्रियों के समूह को भली भाँति नियमित करके हृदय में मन को निरुद्ध कर लिया और फिर ध्यान की ही दृष्टि से जगद्गुरु देवेश्वर का चिन्तन किया था ।१७। और फिर आत्म सन्धान की चक्षु से उन जगतों के स्वामी–अपने भक्तों पर परम अनुग्रह करने वाले को मृगों के शिकारी व्याध के स्वरूप को धारण करने

वाले को देखा था।१८। इसके अनन्तर अपनी आँखें खोलकर भार्गव ने शीघ्र उठकर उसी शरीरसे संयुत और सामने स्थित देव का दर्शन किया था।४६। हे महाराज ! अपने ऊपर अनुग्रह करने के लिए—भक्तों पर प्रेम करने वाले तथा शरण में समागत के रक्षक देवेश्वर को राम ने बड़े सम्भ्रम के साथ प्रकट हुए देखा था।२०। उस महामति के अङ्गों में रोमाञ्च उद्भिन्न हो गये थे और परमाधिक हर्ष के उद्रेक से आनन्दाश्रुओं से नेत्र भर गये थे। फिर भक्तिभाव से वह उनके चरणों में भूमि पर उनके सामने गिर गया था अर्थात् उसने उनके चरण कमलों में साष्टाङ्ग प्रणाम किया था।२१।

स गद्गदमुवाचैनं संभ्रमाकुलया गिरा।
शरणं भव शर्वेति शंकरेत्यसकृन्नृप ॥२२
ततः स्वरूपधृक् शंभुस्तद्भक्तिपरितोषितः।
राममुत्थापयामास प्रणामावनतं भुवि ॥२३
उत्थापितो जगद्धात्रा स्वहस्ताभ्यां भृगूद्वहः।
तुष्टाव देवदेवेशं पुरः स्थित्वा कृतांजलिः ॥२४
राम उवाच—नमस्ते देवदेवाय शंकरायादिमूर्त्तये।
नमः शर्वाय शांताय शाश्वताय नमोनमः ॥२५
नमस्ते नीलकण्ठाय नीललोहितमूर्त्तये।
नमस्ते भूतनाथाय भूतवासाय ते नमः ॥२६
व्यक्ताव्यक्तस्वरूपाय महादेवाय मीढुषे।
शिवाय बहुरूपाय त्रिनेत्राय नमोनमः ॥२७
शरणं भव मे शर्व त्वद्भक्तस्य जगत्पते।
भूयोऽनन्याश्रयाणां तु त्वमेव हि परायणम् ॥२८

हे नृप ! उस राम ने सम्भ्रम से समाकुलित वाणी से गद्गद कण्ठ होकर इन प्रभु से कहा था और बारम्बार हे सर्व ! आप मेरे रक्षक होइए ऐसी प्रार्थना की थी।२२। इसके अनन्तर अपने स्वरूप को धारण करने वाले शम्भु ने राम की भक्ति के भाव से परम सन्तुष्ट होते हुए भूमि में प्रणाम करने में पड़े हुए उसको ऊपर अपने कर कमलों से उठा लिया था।२३। जगत् के धाता के द्वारा अपने ही करों से वह भृगूद्वह ऊपर उठा लिया गया

था। फिर उस राम ने उनके समक्ष में स्थित होकर हाथ जोड़कर उन देव-देवेश्वर का स्तवन किया था।२४। राम ने कहा—देवों के भी देव आदि मूर्त्ति भगवान् शङ्कर के लिये मेरा प्रणाम स्वीकार हो। शर्व—परमशान्त और शाश्वत प्रभु शम्भु के लिए मेरा बारम्बार प्रणाम है।२५। नीलकण्ठ और नील-लोहित मूर्त्ति वाले के लिए मेरा अनेक बार प्रणाम निवेदित है। आप तो भूतों के नाथ हैं ऐसे भूतवास आपके लिए मेरा बारम्बार प्रणाम है।२६। आपका स्वरूप व्यक्त है और अव्यक्त भी है ऐसे महादेव—मीढु—शिव—त्रिनेत्र और अनेक रूप वाले देवेश की सेवा में मेरा बारम्बार प्रणाम स्वीकार हो।२७। हे जगत् के स्वामिन्! हे शर्व! आपके ही चरणों में भक्ति रखने वाले मेरे आप रक्षक हो जाइए। जो किसी अन्य देव का समाश्रय ग्रहण न कर आपके ही चरणों का आश्रय लेते हैं वे अनन्य भक्त होते हैं उनके लिए आप ही परायण हैं।२८।

यन्मयाऽपकृतं देव दुरुक्तं वापि शंकर।
अजानता त्वां भगवन्मम तत्क्षंतुमर्हसि ॥२६
अनन्यवेद्यरूपस्य सद्भावमिह कः पुमान्।
त्वामृते तव सर्वेश सम्यक् शक्नोति वेदितुम् ॥३०
तस्मात्त्वं सर्वभावेन प्रसीद मम शंकर।
नान्याऽस्ति मे गतिस्तुभ्यं नमो भूयो नमो नमः ॥३१
वसिष्ठ उवाच—इति संस्तूयमानस्तु कृतांजलिपुटं पुरः।
तिष्ठंतमाह भगवान्प्रसन्नात्मा जगन्मयः ॥३२
भगवानुवाच—प्रीतोऽस्मि भवते तात तपसाऽनेन सांप्रतम्।
भवत्या चैवानपायिन्या ह्यपि भार्गवसत्तम ॥३३
दास्ये चाभिमतं सर्वं भवतेऽहं त्वया वृतम्।
भक्तो हि मे त्वमत्यर्थं नात्र कार्या विचारणा ॥३४
मयैवावगतं सर्वं हृदि यत्तेऽद्य वर्त्तते।
तस्माद्ब्रवीमि यत्त्वाहं तत्कुरुष्वाविशंकितम् ॥३५

हे शङ्कर! मैंने जो भी कुछ अपकार किया है अथवा आपके प्रति मैंने जो बुरे शब्दों का प्रयोग किया था वह मेरे अज्ञान के कारण से ऐसा

हुआ था क्योंकि मैं आपको जान नहीं पाया था। उस सबको आप क्षमा करने के योग्य होते हैं।२९। अनन्य वेद्य रूप वाले आपके सद्भाव को कौन-सा पुरुष हे सर्वेश ! और आपको भले प्रकार से जान सकता है अर्थात् कोई भी नहीं जानता है।३०। हे शङ्कर ! इस कारण से आप सर्वभाव से मेरे ऊपर प्रसन्न हो जाइए। आपके बिना मेरी अन्य कोई भी गति नहीं है अर्थात् मेरा उद्धार केवल आप ही कर सकते हैं अतएव आपके लिए मेरा पुनः बारम्बार नमस्कार है।३१। श्री वसिष्ठजी ने कहा—इस प्रकार से सामने स्थित होकर दोनों करों को जोड़े हुए वह स्तुति कर रहा था। जगन्मय प्रसन्न आत्मा वाले भगवान् ने उससे कहा था।३२। भगवान् ने कहा—हे तात ! अब आपकी इस तपश्चर्या से आपके ऊपर मैं बहुत प्रसन्न हूँ। हे भार्गवों में परम श्रेष्ठ ! मैं आपकी अनपायिनी भक्ति से अत्यधिक प्रसन्न हूँ।३३। जो भी आपने अपने मन में विचार रक्खा है वह सभी कुछ मैं आपको दे रहा हूँगा। आप मेरे बहुत ही अधिक प्रिय भक्त हैं—इसमें कुछ भी संशय वाली बात नहीं है।३४। इस समय में जो भी कुछ आपके हृदय में है वह मुझे सभी अवगत है अर्थात् उस सबको मैं भली भाँति जानता हूँ। इसी कारण से मैं आपको बतलाता हूँ और आप कोई भी विशेष शङ्का न रखते हुए वही करिए।३५।

नास्त्राणां धारणे वत्स विद्यते शक्तिरद्य ते।
रौद्राणां तेन भूयोऽपि तपो घोरं समाचर ॥३६

परीत्य पृथिवीं सर्वां सर्वतीर्थेषु च क्रमात्।
स्नात्वा पवित्रदेहस्त्वं सर्वाण्यस्त्राण्यवाप्स्यसि ॥३७

इत्युक्त्वान्तर्दधे देवस्तेनैव वपुषा विभुः।
रामस्य पश्यतो राजन्क्षणेन भवभागकृत् ॥३८

अंतर्हिते जगन्नाथे रामो नत्वा तु शंकरम्।
परीत्य वसुधां सर्वां तीर्थस्नानेऽकरोन्मनः ॥३९

ततः स पृथिवीं सर्वां परिक्रम्य यथाक्रमम्।
चकार सर्वतीर्थेषु स्नानं विधिवदात्मवान् ॥४०

तीर्थेषु क्षेत्रमुख्येषु तथा देवालयेषु च।
पितॄन्देवांश्च विधिवदतर्पयदतंद्रितः ॥४१

उपवासतपोहोमजपस्नानादिसुक्रियाः ।
तीर्थेषु विधिवत्कुर्वन्परिचक्राम मेदिनीम् ॥४२

हे वत्स ! आज आपके अन्दर अस्त्रों के धारण करने की शक्ति नहीं है। ये सब रौद्र अस्त्र हैं। इससे आप फिर भी परम घोर तप का समाचरण कीजिए।३६। इस सम्पूर्ण भूमण्डल पर भ्रमण करके क्रम से समस्त तीर्थ स्थलों में स्नान कीजिए। फिर जब आप पवित्र शरीर वाले हो जाँयगे तो आप सभी अस्त्रों को प्राप्त करेंगे।३७। इतना यह कर देवेश्वर विभु उसी शरीर से वहाँ पर अन्तर्हित हो गये थे। हे राजन् ! राम यह देख ही हो गये थे।३८। जगत् के स्वामी के अन्तर्हित हो जाने पर राम ने भगवान् शङ्कर को प्रणाम किया था और फिर सम्पूर्ण वसुधा पर भ्रमण करके तीर्थों में स्नान करने का मन में निश्चय किया था।३९। इसके उपरान्त आत्मवान् उसने क्रमानुसार सम्पूर्ण पृथ्वी की परिक्रमा लगाकर समस्त तीर्थों में विधि-विधान के साथ स्नान किया था।४०। तन्द्रा से रहित होकर उसने मुख्य क्षेत्रों में—तीर्थों में तथा देवालयों में पितृगणों का और देवों का विधि के सहित तर्पण किया था।४१। उपवास—तप—जप—होम और स्नान आदि की सुन्दर क्रियाएँ तीर्थों में विधिपूर्वक करते हुए उसने पृथ्वी पर परिक्रमण किया था।३२।

एवं क्रमेण तीर्थेषु स्नात्वा चैव वसुन्धराम् ।
प्रदक्षिणीकृत्य शनैः शुद्धदेहोऽभवन्नृप ॥४३
परीत्यैवं वसुमतीं भार्गवः शंभुशासनात् ।
जगाम भूयस्तं देशं यत्र पूर्वमुवास सः ॥४४
गत्वा राजन्स तत्रैव स्थित्वा देवमुमापतिम् ।
भक्त्या संपूजयामास तपोभिर्न्नियमैरपि ॥४५
एतस्मिन्नेव काले तु देवानामसुरैः सह ।
बभूव सुचिरं राजन्संग्रामो रोमहर्षणः ॥४६
ततो देवान्पराजित्य युद्धेऽतिबलिनोऽसुराः ।
अवापुरमरैश्वर्यमशेषमकुतोभयाः ॥४७
युद्धे पराजिता देवा सकला वासवादयः ।
शंकरं शरणं जग्मुर्हृतैश्वर्या ह्यरातिभिः ॥४८

तोषयित्वा जगन्नाथं प्रणामजयसंस्तवैः ।
प्रार्थयामासुरसुरान्हन्तुं देवाः पिनाकिनम् ।।४९

हे नृप ! इस प्रकार से क्रम से तीर्थों में स्नान करके और सम्पूर्ण पृथिवी की प्रदक्षिणा करके धीरे-धीरे वह शुद्ध देह वाला हो गया था ।४३। वह भार्गव राम शम्भु भगवान् के शासन से इस रीति से पृथिवी की परिक्रमा देकर फिर वह उसी भू भाग पर पहुँच गया था जहाँ पर कि वह प्रथम समय में निवास करता था ।४४। हे राजन् ! वह वहाँ पर जाकर स्थित हो गया था और तप तथा नियमों के द्वारा भक्ति-भाव से उमा के पति देवेश्वर का भले प्रकार से पूजन किया था ।४५। उसी समय में हे राजन् ! देवों का असुरोंके साथ बहुत समय तक बड़ा ही भीषण रोमहर्षण युद्ध हुआ था ।४६। इसके पश्चात् महान् बलशाली असुरों ने सब देवों को युद्ध में पराजित करके सम्पूर्ण जो देवों का ऐश्वर्य था उसको ग्रहण कर लिया था और फिर वे निर्भीक होकर रहने लगे थे ।४७। उस युद्ध में सब इन्द्र आदि देवगण पराजित हो गये थे और शत्रुओं के द्वारा अपहृत वैभव वाले सब भगवान् शंकर की शरणागति में प्राप्त हुए थे ।४८। उन देवगणों ने जगत के नाथ भगवान पिनाकी को प्रणाम-जय और संस्तवनों के द्वारा प्रसन्न कर लिया था और फिर उन्होंने भगवान् शङ्कर से असुरों के हनन करने के लिए प्रार्थना की थी ।४९।

ततस्तेषां प्रतिश्रुत्य दानवानां वधं नृप ।
देवानां वरदः शंभुर्महोदरमुवाच ह ।।५०
हिमाद्रेर्दक्षिणे भागे रामो नाम महातपाः ।
मुनिपुत्रोऽतितेजस्वी मामुद्दिश्य तपस्यति ।।५१
तत्र गत्वा त्वमद्यैव विवेद्य मम शासनम् ।
महोदर तपस्यंतं तमिहानय माचिरम् ।।५२
इत्याज्ञप्तस्तथेत्युक्त्वा प्रणम्येशं महोदरः ।
जगाम वायुवेगेन यत्र रामो व्यवस्थितः ।।५३
समासाद्य स तं देशं दृष्ट्वा रामं महामुनिम् ।
तपस्यंतमिदं वाक्यमुवाच विनयान्वितः ।।५४

द्रष्टुमिच्छति शम्भुस्त्वां भृगुवर्यं तदाज्ञया ।
आगतोऽहं तदागच्छ तत्पादांबुजसन्निधिम् ॥५५
तच्छ्रुत्वा वचनं तस्य शीघ्रमुत्थाय भार्गवः ।
तदाज्ञां शिरसानन्द्य तथेति प्रत्यभाषत ॥५६

इसके अनन्तर हे नृप ! उन दानवों के वध के लिए प्रतिज्ञा करके देवों को वरदान प्रदान करने वाले भगवान् शम्भुने महोदर से कहा था ।५०। हिमवान पर्वत के दक्षिण भाग में एक राम नाम वाला महान तपस्वी है । वह मुनि का पुत्र बहुत ही अधिक तेजस्वी है जो कि मेरा ही उद्देश्य लेकर तप करता है ।५१। वहाँ आज ही जाकर तुम मेरे आदेश को उससे कह दो हे महोदर ! उस तपश्चर्या करने वाले को यहाँ पर ले आओ और इस कार्य में विलम्ब मत करो ।५२। इस प्रकार से आज्ञा पाया हुआ वह महोदर—मैं ऐसा ही करूँगा—यह कहकर और ईश को प्रणाम करके वायु के समान अति तीव्र वेग से वहाँ पर चला गया था जहाँ पर राम व्यवस्थित था ।५३। उस देश पर पहुँच कर उसने महामुनि राम का दर्शन किया था । वह तपस्या कर रहा था । उससे परम विनयी होकर उसने यह वाक्य कहा था ।५४। शम्भु प्रभु आप को देखने की इच्छा करते हैं । उनकी आज्ञा से भृगुवर्य आपके समीप में मैं आया हूँ । सो अब आप उनके चरणों की सन्निधि में चलिए ।५५। भार्गव ने उस महोदर के इस वचन का श्रवण करके वह बहुत शीघ्र उठकर खड़ा हो गया था । भगवान् शम्भु की आज्ञा को शिर पर धारण करके उस आदेश का अभिनन्दन करते हुए मैं अभी चलता हूँ—यह उसको राम ने उत्तर दिया था ।५६।

ततो रामं त्वरोपेतः शम्भुपार्श्वं महोदरः ।
प्रापयामास सहसा कैलासे नागसत्तमे ॥५७
सहितं सकलैर्भूतैरिंद्राद्यैश्च सहामरैः ।
ददर्श भार्गवश्रेष्ठः शंकरं भक्तवत्सलम् ॥५८
संस्तूयमानं मुनिभिर्नारदाद्यैस्तपोधनैः ।
गंधर्वैरुपगायद्भिर्नृत्यद्भिश्चाप्सरोगणैः ॥५९
उपास्यमानं देवेशं गजचर्मधृताम्बरम् ।
भस्मोद्धूलितसर्वाङ्गं त्रिनेत्रं चन्द्रशेखरम् ॥६०

धृतपिंगजटाभारं नागाभरणभूषितम् ।
प्रलम्बोष्ठभुजं सौम्यं प्रसन्नमुखपङ्कजम् ॥६१
आस्थितं काञ्चने पट्टे गीर्वाणसमितौ नृप ।
उपासर्पत्त् देवेशं भृगुवर्यः कृतांजलिः ॥६२
श्रीकण्ठदर्शनोद्भूतरोमांचांचितविग्रहः ।
बाष्पात्त् सिक्तकायेन स तु गत्वा हरांतिकम् ॥६३

इसके पश्चात् महोदर ने राम को बहुत ही शीघ्रतासे शम्भु के समीप में प्राप्त कर दिया था और सहसा कैलास पर्वत के परम श्रेष्ठ भाग में दिया था ।५७। वहाँ पर भार्गव ने समस्त भूत और इन्द्र आदि देवों के सहित भक्त वत्सल शंकर का दर्शन किया था ।५८। वहाँ पर भार्गव ने देखा था कि बड़े-बड़े तपोधन नारद आदि मुनिगण उनका संस्तवन कर रहे थे— गन्धर्वगण गान अर्थात् भगवान् के गुणों का गायन कर रहे थे तथा अप्सरा- उनके मनोविनोद के लिए समक्ष में नृत्य कर रही थीं ।५९। सभी जन वहाँ पर देवेश्वर की उपासना में संलग्न थे । शम्भु गज के चर्म को धारण किये हुए थे और उनके समस्त अङ्गों में भस्म लगी हुई थी जिससे उनका शरीर धूलित हो रहा था । तीन नेत्रों के धारण करने वाले शिव के मस्तक में चन्द्रमा विराजमान था ।६०। भगवान् पिङ्गल वर्ण की जटाजूट का भार शिर पर धारण किये हुए थे और नागों के आभरणों से उनके अङ्ग विभू- षित थे । उनका वपु परम सौम्य था तथा उनके ओष्ठ और भुजाएँ लम्बी थी और उनका मुख कमल प्रसन्नता से खिला हुआ था ।६१। हे नृप ! उस देवों की परिषद में शम्भु सुवर्ण के पट्ट पर विराजमान थे । हाथ जोड़े हुए राम देवेश्वर के समीप में प्राप्त हुआ था ।६२। भगवान् श्री कण्ठ के दर्शन से आह्लदातिरेक से राम का सम्पूर्ण शरीर रोमाञ्चित हो गया था और आनन्दाश्रुओं से उसका शरीर सिक्त हो गया था । ऐसी दशा में परमानन्दित होते हुए राम भगवान् शम्भु के समीप में उपस्थित हुआ था ।६३।

भक्त्या ससंभ्रमं वाचा हर्षगद्गदयासकृत् ।
नमस्ते देवदेवेति व्यालपन्नाकुलाक्षरम् ॥६४
पपात संस्पृशन्मूर्ध्ना चरणौ पुरविद्विषः ।
पश्यतां देववृन्दानां मध्ये भृगुकुलोद्वहम् ॥६५

तमुत्थाप्य शिवः प्रीतः प्रसन्नमुखपंकजम् ।
रामं मधुरया वाचा प्रहसन्नाह सादरम् ॥६६

इमे दैत्यगणैः क्रांताः स्वाधिष्ठानात्परिच्युताः ।
अशक्नुवंतस्तान्हंतुं गीर्वाणा मामुपागताः ॥६७

तस्मान्ममाज्ञया राम देवानां च प्रियेप्सया ।
जहि दैत्यगणान्सर्वान्समर्थस्त्वं हि मे मतः ॥६८

ततो रामोऽब्रवीच्छर्वं प्रणिपत्य कृतांजलिः ।
शृण्वतां सर्वदेवानां सप्रश्रयमिदं वचः ॥६९

स्वामिन्न विदितं किं ते सर्वज्ञस्याखिलात्मनः ।
तथापि विज्ञापयतो वचनं मेऽवधारय ॥७०

भक्ति भाव से सम्भ्रम के साथ हर्ष से गद्‌गद वाणी के द्वारा व्याकुल अक्षरों में शम्भु से बोले—हे देवदेव ! आपके लिए मेरा प्रणाम निवेदित है ।६४। भगवान् त्रिपुरारि प्रभु के चरण कमलों को मस्तक से स्पर्श करते हुए उसने भूमि पतित होकर साष्टांग प्रणिपात किया था । समस्त देवों के समुदाय वहाँ पर देख रहे थे । उनके मध्य में उस भृगु कुलोद्वह ने प्रणिपात किया था ।६५। भगवान् शिव ने परम प्रसन्न होकर विकसित मुखकमल वाले उस राम को उठाया था और हँसते हुए परम मधुर वाणी से आदर पूर्वक राम से कहा था ।६६। ये सब देवों के समुदाय दैत्यों के द्वारा समाक्रान्त हो रहे हैं और ये सब अपने निवास स्थान से परिच्युत कर दिये गये हैं । बिचारे ये देवगण उनका हनन करने की सामर्थ्य न रखते हुए ही इस समय मेरे समीप में समागत हुए हैं ।६७। इसलिए हे राम ! मेरी आज्ञा से और सब देवों के प्रिय कार्य करने की इच्छा से समस्त दैत्यगणों का आप हनन कर डालिए । आप इस कार्य के सम्पादन करने के लिए समर्थ हैं ऐसा मेरा मत है ।६८। इसके उपरान्त राम ने भगवान् शम्भु को प्रणाम करके दोनों अपने करों को जोड़कर समस्त देवों के सामने उनके श्रवण करते हुए विनय पूर्वक यह वचन भगवान् शम्भु से कहे थे ।६९। हे स्वामिन् ! आप तो सर्वज्ञ हैं और सबकी आत्मा हैं । क्या आपको यह विदित नहीं है तो भी विज्ञापन करते हुए मेरे यह वचन को अब धारण कीजिए ।७०।

यदि शक्रादिभिर्देवैरखिलैरमरारयः ।
न शक्या हंतुमेकस्य शक्याः स्युस्ते कथं मम ॥७१
अनस्त्रज्ञोऽस्मि देवेश युद्धानामप्यकोविदः ।
कथं हनिष्ये सकलान्सुरशत्रूननायुधः ॥७२
इत्युक्तस्तेन देवेशः सितं कालाग्निसप्रभम् ।
शैवमस्त्रमयं तेजो ददौ तस्मै महात्मने ॥७३
आत्मीयं परशुं दत्वा सर्वशस्त्राभिभावकम् ।
राममाह प्रसन्नात्मा गीर्वाणानां तु शृण्वताम् ॥७४
मत्प्रसादेन सकलान्सुरशत्रून्विनिघ्नतः ।
भक्तिर्भवतु ते सौम्य समस्तारिदुरासदा ॥७५
अनेनैवायुधेन त्वं गच्छ युध्यस्व शत्रुभिः ।
स्वयमेव च वेत्सि त्वं यथावद्युद्धकौशलम् ॥७६
वसिष्ठ उवाच—एवमुक्तस्ततो रामः शंभुना तं प्रणम्य च ।
जग्राह परशुं शैवं विबुधारिवधोद्यतः ॥७७

यदि इन्द्र आदि समस्त देवों के द्वारा देवों के शत्रुगण दैत्य लोग मारे नहीं जाते हैं तो मुझ एक के द्वारा वे सब कैसे मारे जा सकते हैं ।७१। हे देवेश ! मैं तो अस्त्रों के विषय में भी अज्ञ हूँ और युद्धों के करने में भी पण्डित नहीं हूँ। बिना ही आयुधों वाला मैं किस तरह से समस्त देवों के शत्रु असुरों का अकेला हनन करूँगा ।७२। उस राम के द्वारा इस रीति से कहे गये देवेश्वर शम्भु ने कालाग्नि के समान प्रभा वाले सित अब अस्त्रों से परिपूर्ण शैव तेज उस महान आत्मा वाले को दे दिया था ।७३। उन्होंने सब शस्त्रों के अभिभावक अपने परशु को प्रदान कर प्रसन्न आत्मा वाले शिव ने समस्त देवगणों के सुनते हुए उस राम से कहा था ।७४। हे सौम्य ! मेरे प्रसाद से समस्त देवों के शत्रुओं का हनन करते हुए तुम्हारे अन्दर ऐसी ही शक्ति हो जावेगी जो सब अरिओं को दुरासद अर्थात् अतीव असह्य होगी ।७५। इसी एक मात्र आयुध को ग्रहण कर तुम चले जाओ और सब शत्रुओं के साथ युद्ध करो। तुम अपने ही आप स्वयं यथा रीति से युद्ध करने के कौशल को जान जाओगे ।७६। श्री वसिष्ठजी ने कहा—इस तरह से जब भगवान्

शिव के द्वारा राम से कहा गया तो उसने शम्भु को प्रणाम किया था और देवों के शत्रुओं के वध करने के लिये उद्यत होते हुए उस परशु का ग्रहण कर लिया था।७७।

ततः स शुशुभे रामो विष्णुतेजोंऽशसंभवः ।
रुद्रभक्त्या समायुक्तो द्युत्येव सवितुर्महः ।।७८
सोऽनुज्ञातस्त्रिनेत्रेण देवैः सर्वैः समन्वितः ।
जगाम हंतुमसुरान्युद्धाय कृतनिश्चयः ।।७९
ततोऽभवत्पुनर्युद्धं देवानामसुरैः सह ।
त्रैलोक्यविजयोद्युक्तैराजन्नतिभयंकरम् ।।८०
अथ रामो महाबाहुस्तस्मिन्युद्धे सुदारुणे ।
क्रुद्धः परशुना तेन निजघान महासुरान् ।।८१
प्रहारैरशनिप्रख्यैर्निघ्नन्दैत्यान्सहस्रशः ।
चचार समरे राम; क्रुद्धः काल इवापरः ।।८२
हत्वा तु सकलान्दैत्यान्देवान्सर्वानहर्षयत् ।
क्षणेन नाशयामास रामः प्रहरतां वरः ।।८३
रामेण हन्यमानास्तु समस्ता दैत्यदानवाः ।
ददृशुः सर्वतो रामं हतशेषा भयान्विताः ।।८४
हतेष्वसुरसंघेषु विद्रुतेषु च कृत्स्नशः ।
राममामंत्र्य विबुधाः प्रययुस्त्रिदिवं पुनः ।।८५
रामोऽपि हत्वा दितिजानभ्यनुज्ञाप्यचामरान् ।
स्वमाश्रमं समापेदे तपस्यासक्तमानसः ।।८६
मृगव्याधप्रतिकृतिं कृत्वा शम्भोर्महामतिः ।
भक्त्या संपूजयामास स तस्मिन्नाश्रमे वशी ।।८७
गन्धैः पुष्पैस्तथा धूपैर्नैवेद्यैरभिवन्दनैः ।
स्तोत्रैश्च विधिवद्भक्त्या परां प्रीतिमुपानयत् ।।८८

इसके अनन्तर भगवान् विष्णु के तेज के अंश से समुत्पन्न वह राम

बहुत ही शोभा युक्त हो गया था जो कि रुद्र की शक्ति से समन्वित था। वह सूर्य की द्युति से दिन के ही समान देदोप्यमान हो गया था।७८। वह राम त्रिनेत्र प्रभु के द्वारा अनुज्ञा प्राप्त कर सब देवों के साथ ही युद्ध करने के लिए निश्चय करते हुए असुरों के हनन को वहाँ से चल दिया था।७९। हे राजन् ! इसके पश्चात् सम्पूर्ण त्रैलोक्य के विजय करने के लिए समुद्यत उन असुरों के साथ देवगणों का महान भयङ्कर युद्ध फिर हुआ था।८०। इसके उपरान्त महान बाहुओं वाले राम ने उस महान दारुण युद्ध में क्रुद्ध होकर उसी परशु से बड़े-बड़े असुरों का हनन किया था।८१। वज्र के सदृश प्रहारों से सहस्रों दैत्यों का संहार करते हुए राम ने परम क्रोधित होकर दूसरे काल के ही समान उस युद्ध क्षेत्र में सञ्चरण किया था।८२। प्रहार करने वालों में परम श्रेष्ठ राम ने समस्त दैत्यों का हनन करके एक ही क्षण में सुर शत्रुओं का नाश कर दिया था और देवों को परम हर्षित कर दिया था।८३। राम के द्वारा मारे जाते हुए सब दैत्यों और दानवों ने जो भी कुछ मरने से बच गये थे बहुत भय से युक्त होकर सभी ओर राम को ही देख रहे थे।८४। समस्त असुरों के समुदायों के निहत हो जाने पर और वहाँ से पूर्णतया सबके भाग जाने पर देवगणों ने राम को आमन्त्रित किया था और वे सब फिर स्वर्गलोक को चले गये थे।८५। राम भी दैत्यों का पूर्णतया निहनन करके सब देवों की अनुज्ञा प्राप्त करके तपश्चर्या में आसक्त मन वाले होते हुए अपने आश्रम में प्राप्त हो गये थे।८६। उस महामति राम ने भगवान् शम्भु की मृगों के हनन करने वाले व्याध की ही प्रतिमूर्ति बनाकर उस वशी ने उसी आश्रम में बहुत ही भक्ति के भाव से उसकी पूजा की थी।८७। पूजन पुष्प-गन्ध-सुन्दर नैवेद्य-अभिनन्दन और स्तोत्रों के द्वारा विधि पूर्वक किया गया था और परमाधिक प्रीति की प्राप्ति का थी।८८।

—×—

।। परशुराम द्वारा द्विज-सुत रक्षण ।।

बसिष्ठ उवाच ततस्तद्भक्तियोगेन स प्रीतात्मा जगत्पतिः।
प्रत्यक्षमगमत्तस्य सर्वैः सह मरुद्गणैः ।।१

तं दृष्ट्वा देवदेवेशं त्रिनेत्रं चंद्रशेखरम्।
वृषेंवाहनं शम्भुं भूतकोटिसमन्वितम् ।।२

ससंभ्रमं समुत्थाय हर्षेणाकुललोचनः।

प्रणाममकरोद्भक्तया शर्वाय भुवि भार्गवः ॥३
उत्थायोत्थाय देवेशं प्रणम्य शिरसासकृत् ।
कृतांजलिपुटो रामस्तुष्टाव च जगत्पतिम् ॥४
राम उवाच—नमस्ते देवदेवेश नमस्ते परमेश्वर ।
नमस्ते जगतो नाथ नमस्ते त्रिपुरांतक ॥५
नमस्ते सकलाध्यक्ष नमस्ते भक्तवत्सल ।
नमस्ते सर्वभूतेश नमस्ते वृषभध्वज ॥६
नमस्ते सकलाधीश नमस्ते करुणाकर ।
नमस्ते सकलावास नमस्ते नीललोहि ॥७

श्री वसिष्ठजी ने कहा—इसके अनन्तर उसकी भक्ति भाव से प्रसन्न आत्मा वाले जगत् के स्वामी समस्त मरुद्गणों के सहित उसके समक्ष में प्रत्यक्ष रूप में हो गये थे ।१। तीन नेत्रों के धारण करने वाले चन्द्रशेखर और वृषभेन्द्र के वाहन वाले और करोड़ों भूतगणों से समन्वित देवों के भी देवेश्वर भगवान् शम्भु का राम ने दर्शन किया था ।२। शम्भु का दर्शन प्राप्त होते ही अत्यन्त हर्ष से समाकुलित लोचनों वाले राम ने सम्भ्रम के साथ उठकर (उस भार्गव ने) भूमि में पड़कर भक्तिभाव से भगवान शर्व के लिए प्रणाम किया था ।३। बारम्बार उठ उठकर शिर के बल से अनेक बार प्रणाम करके उन जगत् के स्वामी देवेश्वर को हाथ जोड़कर उनकी स्तुति की थी ।४। राम ने कहा—हे परमेश्वर ! आप तो देवों के भी देव हैं। आपकी सेवा में मेरा बार-बार प्रणिपात है। आप तो जगत् के नाथ हैं। हे त्रिपुरासुर के हनन करने वाले ! आपके लिए मेरा बारम्बार प्रणाम है ।५। हे भक्तों पर प्यार करने वाले ! आप तो इस सम्पूर्ण विश्व के अध्यक्ष हैं। आपकी सेवा में मेरा अनेक बार प्रणाम स्वीकृत होवे। हे सब भूतों के स्वामिन् ! हे वृषभध्वज ! आपके लिए मेरा प्रणाम है ।६। हे करुणानिधि ! आप तो सबके अधीश हैं। हे नील लोहित ! आप सबमें निवास करने वाले हैं। आपकी चरण-सेवा में मेरा बारम्बार प्रणिपात स्वीकार होवे ।७।

नमः सकलदेवारिगणनाशाय शूलिने ।
कपालिने नमस्तुभ्यं सर्वलोकैकपालिने ॥८

श्मशानवासिने नित्यं नमः कैलासवासिने ।
नमोऽस्तु पाशिने तुभ्यं कालकूटविपाशिने ।।९

विभवेऽमरवंद्याय प्रभवे ते स्वयंभुवे ।
नमोऽखिलजगत्कर्मसाक्षिभूताय शंभवे ।।१०

नमस्त्रिपथगाफेनभासितार्द्धेन्दुमौलिने ।
महाभोगींद्रहाराय शिवाय परमात्मने ।।११

भस्मसंच्छन्नदेहाय नमोऽर्काग्नीदुचक्षुषे ।
कपर्दिने नमस्तुभ्यमंधकासुरमर्द्दिने ।।१२

त्रिपुरध्वंसिने दक्षयज्ञविध्वंसिते नमः ।
गिरिजाकुचकाश्मीरविरंजितमहोरसे ।।१३

महादेवाय महते नमस्ते कृत्तिवाससे ।
योगिध्येयस्वरूपाय शिवायाचिंत्यतेजसे ।।१४

हे शम्भो ! आप समस्त लोकों के एक ही पालन करने वाले हैं । ऐसे कपास के धारण करने वाले और समस्त देवों के शत्रुओं के विनाश के लिए शूल के धारी आपके लिए मेरा प्रणिपात स्वीकृत होवे ।८। श्मशान भूमि में निवास करने वाले तथा कैलास पर रहने वाले आपके लिये नित्य ही मेरा प्रणाम है । पाश के धारी तथा महान् कालकूट विष के अशन करने वाले आपके लिए मेरा प्रणाम है ।९। विभव में देवों के द्वारा वन्दना करने के योग्य और प्रभव में स्वयम्भु तथा सम्पूर्ण जगत् के कर्मों के साक्षी स्वरूप शम्भु के लिए मेरा नमस्कार है ।१०। त्रिपथगा के फेनों के आभास वाले अर्धचन्द्र को मस्तक पर धारण किये हुए तथा महान् सर्पों के हार थे भूषित परमात्मा भगवान् शिव के लिए मेरा प्रणाम स्वीकृत होवे ।११। श्मशान की भस्म से संछन्न देह वाले—सूर्य और चन्द्र अग्नि के धारण करने वाले चक्षुओं से समन्वित-कपर्दी और अन्धकासुर के मर्दन करने वाले आपके लिए मेरा बार-बार प्रणाम स्वीकृत होंगे ।१२। त्रिपुरासुर के विध्वंस करने वाले तथा प्रजापति दक्ष के महान् यज्ञ ध्वंस करने वाले और गिरिराज की पुत्री गौरी के स्तनों पर लगी हुई केशर के आश्लेष में विशेष रञ्जित महान् उरःस्थल वाले प्रभु के लिए मेरा नमस्कार है ।१३। गज चर्म के धारी—योगि जनों के द्वारा ध्यान करने के योग्य स्वरूप वाले—न चिन्तन करने के योग्य तेज से समन्वित महान् महादेव के लिए मेरा नमस्कार है ।१४।

स्वभक्तहृदयांभोजकर्णिकामध्यवर्त्तिने ।
सकलागमसिद्धांतसाररूपाय ते नमः ॥१५
नमो निखिलयोगेंद्रबोधनायामृतात्मने ।
शंकरायाखिलव्याप्तमहिम्ने परमात्मने ॥१६
नमः शर्वाय शांताय ब्रह्मणे विश्वरूपिणे ।
आदिमध्यांतहीनाय नित्यायाव्यक्तमूर्त्तये ॥१७
व्यक्ताव्यक्तस्वरूपाय स्थूलसूक्ष्मात्मने नमः ।
नमो वेदांतवेद्याय विश्वविज्ञानरूपिणे ॥१८
नमः सुरासुरश्रेणिमौलिपुष्पार्चितांघ्रये ।
श्रीकंठाय जगद्धात्रे लोककर्त्रे नमोनमः ॥१९
रजोगुणात्मने तुभ्यं विश्वसृष्टिविधायिने ।
हिरण्यगर्भरूपाय हराय जगदादये ॥२०
नमो विश्वात्मने लोकस्थितिव्यापारकारिणे ।
सत्वविज्ञानरूपाय पराय प्रत्यगात्मने ॥२१

अपने भक्तजनों के हृदय कमलों की कर्णिकाओं के मध्य में विराजमान रहने वाले और समस्त आगमों के सिद्धान्त स्वरूप वाले भगवान् शङ्कर के लिए प्रणिपात है ।१५। समस्त योगेन्द्रों को बोध देने वाले—अमृतात्मा-सबसे व्याप्त महिमा वाले परमात्मा भगवान् शङ्कर के लिए नमस्कार है ।१६। परम शान्त स्वरूप-विश्व के रूप वाले ब्रह्म-आदि मध्य और अन्त से रहित-नित्य और अव्यक्त मूर्त्ति से समन्वित भगवान् शिव के लिए मेरा अभिवादन है ।१७। व्यक्त (प्रकट) और अव्यक्त (अप्रकट) स्वरूप वाले तथा स्थूल और परम सूक्ष्म रूप वाले शम्भु के लिये मेरा प्रणाम है । वेदान्त शास्त्र के द्वारा ज्ञान प्राप्त करने के योग्य और विश्व के विज्ञान रूप के धारी शिव के लिए नमस्कार है ।१८। समस्त सुरगण और असुरों के मस्तकों में संलग्न पुष्पों से मस्तकों को चरण कमलों में झुकाने पर समर्चित पदों वाले-जगत् के धाता और सब लोकों की रचना करने वाले भगवान् श्रीकण्ठ के लिए बारम्बार नमस्कार निवेदित है ।१९। इस सम्पूर्ण विश्व की सृष्टि की रचना करने वाले रजोगुण के स्वरूप से संयुत-इस जगत् के आदि स्वरूप-

हिरण्यगर्भ रूप भगवान् हर के लिये नमस्कार है।२०। सम्पूर्ण लोकों की स्थिति के वास्ते व्यापार करने वाले-सत्व विज्ञान के स्वरूप से समन्वित प्रत्यगात्मा—पर और विश्वात्मा के लिए मेरा प्रणाम निवेदित है।२१।

तमोगुणविकाराय जगत्संहारकारिणे ।
कल्पान्ते रुद्ररूपाय परापरविदे नमः ॥२२
अविकाराय नित्याय नमः सदसदात्मने ।
बुद्धिबुद्धिप्रबोधाय बुद्धींद्रियविकारणे ॥२३
वस्वादित्यमरुद्भिश्च साध्यरुद्राश्विभेदतः ।
यन्मायाभिन्नमतयो देवास्तस्मै नमोनमः ॥२४
अविकारमजं नित्यं सूक्ष्मरूपमनौपमम् ।
तव यत्तन्न जानंति योगिनोऽपि सदाऽमलाः ॥२५
त्वामविज्ञाय दुर्ज्ञेयं सम्यग्ब्रह्मादयोऽपि हि ।
संसरंति भवे नूनं न तत्कर्मात्मकाश्चिरम् ॥२६
यावन्नोपैति चरणौ तवाज्ञानविघातिनः ।
तावद्भ्रमति संसारे पण्डितोऽचेतनोऽपि वा ॥२७
स एव दक्षः स कृती स मुनिः स च पंडितः ।
भवतश्चरणांभोजे येन बुद्धिः स्थिरीकृता ॥२८

तमोगुण के विकार रूप वाले–इस जगत् के संहार कर्त्ता–कल्प के अन्त में रुद्र रूप वाले और पर तथा अपर के ज्ञाता भगवान् शङ्कर के लिए नमस्कार है।२२। विकारों से रहित-नित्य-सत् और असत् रूप वाले बुद्धि की बुद्धि के प्रबोध रूप तथा बुद्धि और इन्द्रियों में विकार करने वाले शम्भु के लिए प्रणाम है।२३। वसु-आदित्य और मरुद्गणों से तथा साध्य रुद्र और अश्विनीकुमार-इनके भेदों से देवगण भी जिस की माया से भिन्न मति वाले होते हैं उन परम देव शिव के लिए नमस्कार है और पुनः नमस्कार है।२४। आपके जिस विकार से रहित-अजन्मा-नित्य और अनुपम सूक्ष्म स्वरूप को सदा अमल योगीजन भी नहीं जानते हैं।२५। ब्रह्मा आदि भी दुःख से जानने के योग्य आपको न जानकर निश्चय ही इस संसार में संसरण किया करते हैं और तत्कर्मक चिरकाल तक नहीं रहते हैं।२६। अज्ञान के विघात

करने वाले आपके जब तक चरण कमलों की प्राप्ति नहीं करता है अर्थात् आपके चरणों का समाश्रय नहीं ग्रहण करता है तब तक चाहे कोई पण्डित हो अथवा अज्ञानी हो इस संसार में भ्रमण किया करता है।२७। इस भूमण्डल में वह ही परम दक्ष है—कृती है—मुनि है और वही महान् पण्डित है जिसने आपके चरण कमलों में अपनी बुद्धि को स्थिर करके लगा दिया है।२८।

सुसूक्ष्मत्वेन गहनः सद्भावस्ते त्रयीमयः ।
विदुषामपि मूढेन स मया ज्ञायते कथम् ॥२९
अशब्दगोचरत्वेन महिम्नस्तव सांप्रतम् ।
स्तोतुमप्यनलं सम्यक्त्वामहं जडधीर्यतः ॥३०
तस्मादज्ञानतो वापि मया भक्त्यैव संस्तुतः ।
प्रीतश्च भव देवेश तनु त्वं भक्तवत्सलः ॥३१
वसिष्ठ उवाच—इति स्तुतस्तदा तेन भक्त्या रामेण शंकरः ।
मेघगंभीरया वाचा तमुवाच हसन्निव ॥३२
भगवानुवाच—रामाहं सुप्रसन्नोऽस्मि शौर्यशालितया तव ।
तपसा मयि भक्त्या च स्तोत्रेण च विशेषतः ॥३३
वरं वरय तस्मात्त्वं यद्यदिच्छसि चेतसा ।
तुभ्यं तत्तदशेषेण दास्याम्यहमशेषतः ॥३४
वसिष्ठ उवाच—इत्युक्तो देवदेवेन तं प्रणम्य भृगूद्वहः ।
कृतांजलिपुटो भूत्वा राजन्निदमुवाच ह ॥३५

आपका त्रयीमय सद्भाव परम सूक्ष्म होने से अत्यन्त गहन है और बड़े-बड़े विद्वानों के लिए भी अतीव गहन होता है वह आपका सद्भाव महामूढ़ मेरे द्वारा कैसे जाना जाता है।२९। इस समय में आपकी महिमा शब्दों के द्वारा गोचर न होने के कारण जड़ बुद्धि वाला आपकी भली भाँति से स्तुति करने में भी असमर्थ हूँ।३०। इससे अज्ञान से मैंने केवल भक्ति के भाव से ही आपकी संस्तुति की है। हे देवेश्वर ! आप मुझ पर प्रीतिमान् हो जाइए क्योंकि आप तो अपने भक्तों पर प्यार करने वाले हैं।३१। श्री वसिष्ठ जी ने कहा—इस प्रकार से राम के द्वारा भक्ति की भावना से उस

समय में स्तुति की गयी थी । तब भगवान् शङ्कर हँसते हुए मेघ के समान परम गम्भीर वाणी से उससे बोले थे ।३२। भगवान् ने कहा—हे राम ! आपकी शौयशालिता से मैं आप पर बहुत ही प्रसन्न हो गया हूँ । आपकी तपश्चर्या से—मेरे अन्दर अनन्य भक्ति के भाव से और विशेष रूप से आपके द्वारा किये गये स्तोत्र से मैं बहुत ही प्रसन्न हुआ हूँ ।३३। इस कारण से आप किसी वरदान का वरण कर लो जो-जो भी आप अपने चित्त से चाहते हो । वही मैं आपको पूर्ण रूप से सभी कुछ दे दूँगा ।३४। वसिष्ठ जी ने कहा—जब देवों के देवेश्वर ने उस राम से इस रीति से कहा था तो उस भृगुकुल के उद्वहन करने वाले ने उनके चरणों में प्रणाम किया था और हे राजन् ! उसने दोनों करों को जोड़कर प्रभु से यह कहा था ।३५।

यदि देव प्रसन्नस्त्वं वरार्होऽस्मि च यद्यहम् ।
भवतस्तदभीप्सामि हेतुमस्त्राण्यशेषतः ।।३६
अस्त्रे शस्त्रे च शास्त्रे च न मत्तोऽभ्यधिको भवेत् ।
लोकेषु मां रणे जेता न भवेत्त्वत्प्रसादतः ।।३७
वसिष्ठ उवाच—तथेत्युक्त्वा ततः शंभूरस्त्रशस्त्राण्यशेषतः ।
ददौ रामाय सुप्रीतः समंत्राणि क्रमान्नृप ।।३८
सप्रयोगं ससंहारमस्त्रग्रामं चतुर्विधम् ।
प्रसादाभिमुखो रामं ग्राहयामास शंकरः ।।३९
असंगवेगं शुभ्राश्वं सुध्वजं च रथोत्तमम् ।
इषुधी चाक्षयशरौ ददौ रामाय शंकरः ।।४०
अभेद्यमजरं दिव्यं दृढज्यं विजयं धनुः ।
सर्वशस्त्रसहं चित्रं कवचं च महाधनम् ।।४१
अजेयत्वं च युद्धेषु शौर्यं चाप्रतिमं भुवि ।
स्वेच्छया धारणे शक्ति प्राणानां च नराधिप ।।४२

हे देवेश्वर ! यदि आप मेरे ऊपर परम प्रसन्न हैं और यदि मैं आपके द्वारा वरदान देने के योग्य हूँ तो मैं आपसे उस हेतु को और सम्पूर्ण अस्त्रों को चाहता हूँ ।३६। मैं यही चाहता हूँ कि अस्त्र विद्या में—शस्त्रों के ज्ञान में और शास्त्रों की जानकारी में कोई भी मुझसे अधिक ज्ञाता न होवे मैं यह भी चाहता हूँ कि आपके प्रसाद से लोकों में युद्ध में कोई भी जीतने

वाला न होवे ।३७। वसिष्ठ जी ने कहा—भगवान् शंकर ने कहा था कि जो भी तुमने चाहा है, सभी तुम्हारी इच्छा पूरी हो जायगी। इसके उपरान्त उन्होंने पूर्ण अस्त्र और शस्त्र भी हे नृप ! मन्त्रों के सहित क्रम से परम प्रसन्न होते हुए राम के लिये प्रदान कर दिये थे ।३८। भगवान् शंकर ने प्रयोग करने के और संहार करने के साथ चार प्रकार के अस्त्रों के समुदाय को प्रसाद से परिपूर्ण होकर राम को ग्रहण करा दिया था ।३९। भगवान् शंकर ने असङ्ग वेग से समन्वित—शुभ्र रङ्ग वाले अश्वों से युक्त और सुन्दर ध्वजा वाले उत्तम रथ-धनुष और अक्षर शर राम के लिए दिये थे ।४०। एक ऐसा धनुष भी दिया था जो भेदन करने के अयोग्य-जीर्ण न होने वाला-परम सुदृढ़ ज्या (प्रत्यञ्चा) वाला और विजय करने वाला था। तथा सभी प्रकार के शस्त्रों के घात को सहन करने वाला-परम अद्भुत महाधन सम्पन्न एक कवच भी प्रदान किया था ।४१। हे नराधिप ! इसके अतिरिक्त भगवान् शंकर ने उस अपने परम भक्त राम के लिए युद्धों में अजेय होना-भूलोक में अनुपम शूर वीरता और अपनी ही इच्छा से प्राणों के धारण करने में शक्ति भी प्रदान की थी ।४२।

ख्यातिं च बीजमन्त्रेण तन्नाम्नां सर्वलौकिकीम् ।
तपःप्रभावं च महत्प्रददौ भार्गवाय सः ।।४३
भक्ति चात्मनि रामाय दत्वा राजन्यथोचिताम् ।
सहितः सकलैर्भूश्चामरैश्चन्द्रशेखरः ।।४४
तेनैव वपुषा शंभुः क्षिप्रमंतरधाद्धरः ।
कृतकृत्यस्ततो रामो लब्ध्वा सर्वमभीप्सितम् ।।४५
अदृश्यतां गते शर्वे महोदरमुवाच ह ।
महोदर मदर्थे त्वमिदं सर्वमशेषतः ।।४६
रथचापादिकं तावत्परिरक्षितुमर्हसि ।
यदा कृत्यं ममैतेन तदानीं त्वं मया स्मृतः ।
रथचापादिकं सर्वं प्रहिणु त्वं मदंतिकम् ।।४७
वसिष्ठ उवाच—तथेत्युक्त्वा गते तस्मिन्भृगुवर्यो महोदरे ।
कृतकृत्यो गुरुजनं द्रष्टुं गंतुमियेष सः ।।४८

गच्छन्नथ तदासौ तु हिमाद्रिवनगह्वरे ।
विवेश कंदरं रामो भाविकर्मप्रचोदितः ॥४९

उन प्रभु शिव ने भार्गव के लिए उसके नाम बीजमन्त्र के द्वारा सम्पूर्ण लोक में होने वाली ख्याति और महान् तप का प्रभाव दिया था ।४३। समस्त भूतगण और देवगण के सहित भगवान् चन्द्रशेखर ने हे राजन् ! अपने में यथोचित होने वाली भक्ति भी राम को प्रदान की थी ।४४। फिर उसी शरीर के द्वारा ही भगवान् शिव शीघ्र ही अन्तर्हित हो गये थे । फिर वह राम भी अपना सम्पूर्ण अभीप्सित प्राप्त करके कृतकृत्य हो गया था ।४५। भगवान् शंकर के अदृश्य हो जाने पर राम ने महोदर से कहा था । हे महोदर ! इन वस्तुओं को पूर्ण रूप से आप मेरे लिये अपने अधिकार में रखिए ।४६। आप ही इन रथ और चाप आदि की परीक्षा करने के लिए परम योग्य होते हैं । जिस समय में इन समस्त सामग्रियों से मुझे कार्य होगा उसी समय में मेरे द्वारा आप का स्मरण किया जायगा । तब रथ और चाप आदि सब सामान आप मेरे समीप में भेज दीजिएगा ।४७। वसिष्ठ जी ने कहा—महोदर ने कहा था कि मैं इसी प्रकार से सब कार्य करूँगा–यह कहकर उस महोदर के वहाँ से चले जाने पर भृगुवर राम कृत कृत्य हो गया था और फिर उसने अपने गुरुजन के दर्शन प्राप्त करने की इच्छा की थी । ।४८। उस समय में गमन करते हुए आगे आने वाले कर्मों के करने के लिए प्रेरित होकर परम गहन हिमवान् के वन में एक कन्दरा थी उस में राम ने प्रवेश किया था ।४९।

स तत्र ददृशे बालं धृतप्राणमनुद्रुतम् ।
व्याघ्रेण विप्रतनयं रुदंतं भीतभीतवत् ॥५०
दृष्ट्वानुकंपहृदयस्तत्परित्राणकातरः ।
तिष्ठतिष्ठेति तं व्याघ्रं वदन्नुच्चैरथान्वयात् ॥५१
तमनुद्रुत्य वेगेन चिरादिव भृगूद्वहः ।
आससाद वने घोरं शार्दूलमतिभीषणम् ॥५२
व्याघ्रेणानुद्रुतः सोऽपि पलायन्वनगह्वरे ।
निपपात द्विजसुतस्त्रस्तः प्राणभयातुरः ॥५३
रामोऽपि क्रोधरक्ताक्षो विप्रपुत्रपरीप्सया ।

तृणमलं समादाय कुशास्त्रेणाभ्यमंत्रयत् ।।५४
तावत्तरक्षुलवानाद्रवत्पतितं द्विजम् ।
दृष्ट्वा ननाद रुभृशं रोदसी कम्पयन्निव ।।५५
दग्ध्वा त्वस्त्राग्निना व्याघ्रं प्रहरन्तं नखांकुरैः ।
अकृतव्रणमेवाशु मोक्षयामास तं द्विजम् ।।५६

वहाँ पर उस राम ने एक ब्राह्मण के पुत्र को देखा था जो बालक अवस्था का था और एक व्याघ्र उसके पीछे आते हुए खदेड़ रहा था जिसके कारण वह प्राण तो धारण किये हुए था किन्तु अत्यन्त डरे हुए की भाँति रुदन कर रहा था ।५। अपने हृदय में दया का भाव रखने वाला राम उसके परित्राण करने के लिए बहुत ही कातर हो गया था । उसने उस बालक के पीछे दौड़कर आते हुए व्याघ्र से बहुत ऊँची आवाज में 'ठहर जा-ठहर जा'—यह कहते हुए वह उस व्याघ्र के पीछे चल दिया था ।५१। बड़े ही वेग से उसके पीछे प्रभावित होकर उस भृगुकुल के उद्वहन करने वाले राम ने जैसे कुछ विलम्ब हो गया हो उस वन में अत्यन्त भयानक और घोर उस शार्दूल के पास अपनी पहुँच कर ली थी ।५२। उस परम गहन-गम्भीर वन में जिसके पीछे व्याघ्र दौड़ा चला आ रहा था वह ब्राह्मण का पुत्र अपने प्राणों की हानि के भय से बहुत ही आतुर होता हुआ अत्यधिक डरा हुआ था और दौड़ते हुए वह वहाँ पर भूमि में गिर गया था ।५३। राम भी ब्राह्मण के पुत्र की रक्षा की इच्छा से क्रोध से लाल नेत्रों वाला हो गया था और फिर उसने तृण मूल को ग्रहण कर कुशास्त्र से अभिमन्त्रित किया था ।५४। उसी समय के बीच में उस बलवान् व्याघ्र ने उस गिरे हुए द्विज पुत्र पर आक्रमण कर दिया था । उस दृश्य को देखकर राम ने अत्यन्त अधिक ध्वनि भूमि और आकाश को कँपाते हुए की थी अर्थात् घोरगर्जना की थी जिससे मानो भूमि और अन्तरिक्ष भी कम्पित हो गये थे ।५५। अपने नखों के अंकुरों द्वारा प्रहार करते हुए व्याघ्र को अस्त्राग्नि से भस्मीभूत करके उस विप्र सुत को छुड़ा दिया था जिसके शरीर में शीघ्रता से कोई नाथ के नखों से व्रण नहीं हो पाये थे ।५६।

सोऽपि ब्रह्माग्निनिर्दग्धदेहः पाप्मा नभस्तले ।
गान्धर्वं वपुरास्थाय राममाहेति सादरम् ।।५७
विप्रशापेन भो पूर्वमहं प्राप्तस्तरक्षुताम् ।

गच्छामि मोचितः शापात्त्वयाऽहमधुना दिवम् ॥५८
इत्युक्त्वा तु गते तस्मिन्रामो वेगेन विस्मितः ।
पतितं द्विजपुत्रं तं कृपया व्यवपद्यत ॥५९
माभैरेवं वदन्वाणीमारादेव द्विजात्मजम् ।
परामृशत्तदंगानि शनैरुज्जीवयन्नृप ॥६०
रामेणोत्थापितश्चैवं स तदोन्मील्य लोचने ।
विलोकयन्ददर्शाग्रे भृगुश्रेष्ठमवस्थितम् ॥६१
भस्मीकृतं च शार्दूलं दृष्ट्वा विस्मयमागतः ।
गतभीराह कस्त्वं भोः कथं वेह समागतः ॥६२
केन वायं निहंतुं मामुद्यतो भस्मसात्कृतः ।
तरक्षुर्भीषणाकारः साक्षान्मृत्युरिवापरः ॥६३

वह व्याघ्र भी महा पापी ब्रह्माग्नि से दग्ध शरीर वाला आकाश में एक गन्धर्व का शरीर धारण करके बड़े ही आदर के साथ राम से बोला था ।५७। हे राम ! एक विप्र के शाप से पूर्व में इस तरक्षु के स्वरूप को प्राप्त करने वाला हुआ था । इस समय में आपके द्वारा उस शाप से छुड़ाया गया मैं अब स्वर्गलोक में गमन कर रहा हूँ ।५८। इतना ही कहकर बड़े वेग से उसके चले जाने पर राम को बड़ा विस्मय हुआ था और फिर दया के वशीभूत होकर वह उस भूमि पर पड़े हुए द्विज पुत्र के पास पहुँचा था ।५९। हे नृप ! समीप में ही उस द्विज के पुत्र से 'डरो मत'—यह वाणी बोलते हुए धीरे-धीरे उसको उज्जीवित करते हुए उस बालक के अङ्गों को सयलाया ।६०। इस प्रकार से राम के द्वारा उठाये हुए उसने उस समय में अपने नेत्रों को खोला था । इधर-उधर अवलोकन करते हुए उसने अपने सामने अवस्थित भृगुकुल में परम श्रेष्ठ राम को देखा था ।६१। और अपने समीप में ही भस्मीभूत शार्दूल को देखकर उस बालक को बड़ा भारी विस्मय हुआ था । जब उसका भय बिल्कुल समाप्त हो गया था तो उसने राम से कहा था—आप कौन हैं अथवा यहाँ पर आप कैसे समागत हुए हैं ? ।६२। और मुझको मारने के लिए उद्यत यह शार्दूल किसके द्वारा निर्दग्ध करके भस्मीभूत कर दिया गया है ? यह तरक्षु तो महा भीषण आकार वाला साक्षात् दूसरे काल के ही सदृश था ।६३।

भयसंमूढमनसो ममाद्यापि महामते ।
हतेऽपि तस्मिन्नखिला भान्ति वै तन्मया दिशः ॥६४
त्वामेव मन्ये सकलं पिता माता सुहृद्गुरू ।
परमापदमापन्नं त्वं मां समुपजीवयन् ॥६५
आसीन्मुनिवरः कश्चिच्छांतो नाम महातपाः ।
पुत्रस्तस्यास्मितीर्थार्थी शालग्राममयासिषम् ॥६६
तस्मात्संप्रस्थितश्शैलं दिदृक्षुर्गंधमादनम् ।
नानामुनिगणैर्जुष्टं पुण्यं बदरिकाश्रमम् ॥६७
गंतुकामोऽपहायाहं पंथानं तु हिमाचले ।
प्रविशन्गहनं रम्यं प्रदेशालोककाकुलम् ॥६८
दिशं प्राचीं समुद्दिश्य क्रोशमात्रमयासिषम् ।
ततो दिष्टवशेनाहं प्राद्रवं भयपीडितः ॥६९
पतितश्च त्वया भूयो भूमेरुत्थापितोऽधुना ।
पित्रे व नितरां पुत्रः प्रेम्णात्यर्थं दयालुना ।
इत्येष मम वृत्तांतः साकल्येनोदितस्तव ॥७०

हे महती मति वाले ! अधिक भय के कारण संमूढ मन वाले मुझे अभी भी उसके मृत हो जाने पर भी समस्त दिशाएँ उसी से परिपूर्ण प्रतीत हो रही हैं अर्थात् सभी ओर मुझे वह ही दिखलाई दे रहा है ।६४। मुझे तो इस समय में ऐसा भान हो रहा है और मैं आपको ही अपना माता-पिता-सुहृद् और गुरु सब कुछ मानता हूँ क्योंकि मैं तो परमाधिक आपदा में फँस चुका था और आपने ही मुझको भली-भाँति जीवन दान दिया है ।६५। कोई एक महान तपस्वी शान्त नामधारी श्रेष्ठ मुनि थे । मैं उनका ही पुत्र हूँ । मैं तीर्थाटन के प्रयोजन वाला शालग्राम के लिए गया था ।६६। वहाँ से मैंने फिर प्रस्थान किया था और मैं गन्धामादन पर्वत के देखने की इच्छा वाला हो गया था । अनेक महामुनियों के समुदायों के द्वारा सेवित परम पुनीत बदरिकाश्रम को गमन करने की कामना वाला मैं हो गया था । फिर हिमवान् जैसे महा विशाल पर्वत में समुचित मार्ग को छोड़कर परम रम्य और प्रदेश के आलोकन में आकुल गहन वन में प्रवेश कर रहा था ।६७-६८। पूर्व

दिशा कर उद्देश्य करके एक कोश भर हो गया था। वहाँ पर भाग्य के वशीभूत होकर मैं भय से उत्पीड़ित होकर भाग दिया था।६९। मैं फिर भूमि पर गिर गया था। आपने कृपा करके इस समय मैं फिर मुझे भूमि से उठाया था। दयालु आपने पिता की ही भाँति मेरे पर कृपा की थी जैसे पिता अपने पुत्र पर अत्यधिक प्रेम किया करता है। मेरा यही इतना वृत्तान्त है जो कि मेरे द्वारा पूर्ण रूप से आपके समक्ष मैं कह दिया गया है।७०।

वसिष्ठ उवाच—इति पृष्टस्तदा तेन स्ववृत्तांतमशेषतः।
कथयामास राजेंद्र रामस्तस्मै यथाक्रमम्।।७१
ततस्तौ प्रीतिसंयुक्तौ कथयंतौ परस्परम्।
स्थित्वा नाति चिरं कालमथ गंतुमियेष सः।।७२
अन्वीयमानस्तेनाथ रामस्तस्माद्गुहामुखात्।
निष्क्रम्यावसथं पित्रोः स प्रतस्थे मुदान्वितः।।७३
अकृतव्रण एवासौ व्याघ्रेण भुवि पातितः।
रामेण रक्षितश्चाभूद्यस्माद्व्याघ्रं विनिघ्नता।।७४
तस्मात्तदेव नामास्य बभूव प्रथितं भुवि।
विप्रपुत्रस्य राजेंद्र तदेतत्सोऽकृतव्रणः।।७५
तदा प्रभृति रामस्य च्छायेवातपगा भुवि।
बभूव मित्रमत्यर्थं सर्वावस्थासु पार्थिव।।७६
स तेनानुगतो राजन्भृगोरासाद्य सन्निधिम्।
दृष्ट्वा ख्याति च सोऽभ्येत्य विनयेनाभ्यवादयत्।।७७

श्री वसिष्ठजी ने कहा—हे राजेन्द्र! उस समय में इस प्रकार से उस विप्रसुत के द्वारा पूछे गये रामने कहकर सुना दिया था।७१। इसके अनन्तर वे दोनों परस्पर में प्रीति से समन्वित होकर वार्त्तालाप करते रहे थे। अत्यधिक कालतक वहाँ न ठहरकर उसने गमन करने की इच्छा की थी।७२। राम भी उसके पश्चात् उसी के पीछे गमन करने वाला हो गया था और उस गुफा के मुख से निकलकर बड़े आनन्द के साथ अपने माता-पिता के निवास स्थान की ओर उसने भी प्रस्थान कर दिया था।७३। व्याघ्र के द्वारा भूमि में गिरा भी दिया गया था तो भी उसके देह में कोई भी कहीं

पर व्रण नहीं हुआ था। उस विनिहनन करने वाले व्याघ्र से वह राम के द्वारा सुरक्षित हुआ था ।७४। हे राजेन्द्र ! इसी कारण से इसका नाम भूमण्डल में प्रथित हो गया था फिर उस विप्र के पुत्र का अकृत व्रण ही नाम पड़ गया था ।७५। हे पार्थिव ! तभी से लेकर आतप के पीछे गमन करने वाली छाया के ही समान वह भूमि में सभी प्रकार की अवस्थाओं में उसका अत्यधिक प्रिय मित्र हो गया था ।७६। हे राजन् भृगु की सन्निधि को प्राप्त करके वह उसी के साथ अनुगत हो गया था और ख्याति को देखकर वह सामने उपस्थित हुआ था तथा विनय के साथ उसने अभिवादन किया था ।७७।

स ताभ्यां प्रियमाणाभ्यामाशीर्भिरभिनंदितः ।
दिनानि कतिचित्तत्र न्यवसत्तत्प्रियेप्सया ॥७८
ततस्तयोरनुमते च्यवनस्य महामुनेः ।
आश्रमं प्रतिचक्राम शिष्यसंघैः समावृतम् ॥७९
नियंत्रितांतः करणं तं च संशांतमानसम् ।
सुकन्या चापि तद्भार्यामवंदत महामनाः ॥८०
ताभ्यां च प्रीतियुक्ताभ्यां रामः समभिनंदितः ।
और्वाश्रमं समापेदे द्रष्टुकामस्तपोनिधिम ॥८१
तं चाभिवाद्य मेधावी तेन च प्रतिनंदितः ।
उवास तत्र तत्प्रीत्या दिनानि कथिचिन्नृप ॥८२
विसृष्टस्तेन शनकैर्ऋचीकभवनं मुदा ।
प्रतस्थे भार्गवः श्रीमानकृतव्रणसंयुतः ॥८३
अवंदत पितुः पित्रोर्नत्वा पादौ पृथक् पृथक् ।
तौ च तं नृपसंहर्षाच्चाशिषा प्रत्यनन्दताम् ॥८४

परमप्रीति से समन्वित उन दोनों के द्वारा वह आशीर्वचनों से अभिनन्दिन किया गया था। उसके प्रिय करने की अभिलाषा से उसने वहाँ पर कुछ दिन तक निवास किया था ।७८। इसके उपरान्त उन दोनों की अनुमति से शिष्यों के समुदायों से समावृत महामुनि च्यवन के आश्रम की ओर वह चला गया था ।७९। उस महान मन वाले ने अपने अन्तः-करण को नियन्त्रण में रहने वाले और परम शान्त मन वाले उस महा मुनि की तथा सुकन्या

नाम धारिणी जो उनकी भार्या थी उसकी वन्दना की थी ।८०। परम प्रीति से सुसम्पन्न उन दोनों के द्वारा राम का भली-भाँति अभिनन्दन किया गया था। तप की निधि का दर्शन करने की कामना वाले उसने और्व के आश्रम को प्राप्त किया था ।८१। हे नृप ! मेधावी राम ने उनका अभिवादन किया था और और्व महामुनि के द्वारा राम का अभिनन्दन किया गया था। वहाँ पर उनकी प्रीति होने से वह कतिपय दिनों तक रहा था ।८२। फिर धीरे से आनन्द के साथ उस मुनि के द्वारा राम की विदाई की गयी थी और अकृत व्रण के ही सहित श्रीमान् भार्गव ने वहाँ से प्रस्थान किया था ।८३। पिता के पिता-माता के चरणों में पृथक्-पृथक् वन्दना की थी। हे नृप ! उन दोनों ने उसका बड़े ही हर्ष से अभिनन्दन किया था ।८४।

पृष्टश्च ताभ्यामखिलं निजवृत्तमुदारधीः ।
कथयामास राजेंद्र यथावृत्तमनुक्रमात् ।।८५
स्थित्वा दिनानि कतिचित्तत्रापि तदनुज्ञया ।
जगामावसथं पित्रोर्मुदा परमया युतः ।।८६
अभ्येत्य पितरौ राजन्नासीनावाश्रमोत्तमे ।
अवंदत तयोः पादौ यथावद्भृगुनन्दनः ।।८७
पादप्रणामावनतं समुत्थाय च सादरम् ।
आश्लिष्य नेत्रसलिलैर्नंदंतौ पर्यंषिचताम् ।।८८
आशीर्भिरभिनन्द्यांके समारोप्य मुहुर्मुखम् ।
वीक्षंतो तस्य चांगानि परिस्पृश्यापतुर्मुदम् ।।८९
अपृच्छतां च तौ रामं कालेनैतावता त्वया ।
किं कृतं पुत्र को वायं कुत्र वा त्वमुपस्थितः ।।९०
कथं सह सकाशे त्वमास्थितो वात्र वागतः ।
त्वयैतदखिलं वत्स कथ्यतां तथ्यमावयोः ।।९१

फिर उन दोनों के द्वारा उदार बुद्धि वाले उससे अपना वृत्तान्त पूर्ण रूप से पूछा गया था। हे राजेन्द्र ! जो कुछ भी जिस तरह से हुआ था वह अनुक्रम के साथ राम ने कहा था ।८५। वहाँ पर भी कुछ दिन तक स्थित रहकर फिर उनकी अनुज्ञा से परम आनन्द से संयुत होकर माता-पिता के

निवास स्थान को वह चला गया था ।८६। हे राजन् ! उस परमोत्तम आश्रम में माता-पिता विराजमान थे । उनके सामने उपस्थित होकर भृगुनन्दन ने उन दोनों के चरणों में यथोचित रीति से वन्दना की थी ।८७। उन्होंने अपने चरणों में मस्तक झुकाने वाले राम को आदर के साथ उठाकर आश्लेषण किया था और परमानन्दित होते हुए अपने वात्सल्य के कारण आये हुए प्रेमाश्रुओं से उसका परिषिञ्चन किया था ।८८। आशीर्वादों के द्वारा अभिनन्दन करके उन्होंने अपनी गोद में बिठा लिया था और बारम्बार उस अपने पुत्र के मुख का अवलोकन करते हुए उसके अङ्गों का परिस्पर्श करके परमाधिक आनन्द को प्राप्त हुए थे ।८९। उन दोनों ने राम से पूछा था हे पुत्र ! इतने लम्बे समय तक आपने क्या किया था और यह दूसरा कौन तुम्हारे साथ में है तथा तुम कहाँ इतने समय पर्यन्त रहे थे ? ।९०। किस प्रकार से तुम सकाश में साथ समास्थित हुए थे अथवा यहाँ पर कहाँ से इस समय में समागत हुए थे ? हे वत्स ! आपको हम दोनों के सामने जो भी सत्य-सत्य हो वह सब बतला देना चाहिए ।९१।

—×—

कार्त्तवीर्य का जमदग्नि आश्रम में आगमन

वशिष्ठ उवाच—इति पृष्टस्तदा ताभ्यां रामो राजन्कृतांजलिः।
तयोरकथयत्सर्वमात्मना यदनुष्ठितम् ॥१
निदेशाद्वै कुलगुरोस्तपश्चरणमात्मनः ।
शंभोर्निदेशात्तीर्थानामटनं च यथाक्रमम् ॥२
तदाज्ञयैव दैत्यानां वधं चामरकारणात् ।
हरप्रसादादत्रापि ह्यक्षतव्रणदर्शनम् ॥३
एतत्सर्वमशेषेण यदन्यच्चात्मना कृतम् ।
कथयामास तद्रामः पित्रोः संप्रीयमाणयोः ॥४
तौ च तेनोदितं सर्वं श्रुत्वा तत्कर्मविस्तरम् ।
हृष्टौ हर्षांतरं भूयो राजन्नाप्नुवतावुभौ ॥५
एवं पित्रोर्महाराज शुश्रूषां भृगुपुंगवः ।
प्रकुर्वंस्तद्विधेयात्मा भ्रातॄणां चाविशेषतः ॥६

एतस्मिन्नेव काले तु कदाचिद्धैहयेश्वरः ।
इयेष मृगयां गंतुं चतुरंगबलान्वितः ।।७

श्री वसिष्ठ जी ने कहा—हे राजन् ! जब उस समय में इस प्रकार से राम से पूछा गया था तो उसने अपने दोनों करों को जोड़कर उन दोनों के समक्ष में वह सम्पूर्ण अपना घटित घटनाओं का इतिवृत्त कह दिया था जो भी कुछ अपने द्वारा अब तक किया था ।१। अपने कुलदेव की आज्ञा से अपनी तपश्चर्या का समाचरण तथा भगवान शम्भु के निर्देश से यथाक्रम तीर्थों का पर्यटन जो किया था—वह सभी कुछ निवेदित कर दिया था ।२। फिर शंकर की ही आज्ञा से देवों की सुरक्षा करने के कारण से जो दैत्यों का वध किया था वह भी सुना दिया था । यहाँ पर भी भगवान हर के प्रसाद से ही अकृत व्रण का दर्शन हुआ था ।३। यह सम्पूर्ण पूर्णतया जो हुआ था वह और जो अपने द्वारा कुछ भी किया गया था वह सब परम प्रसन्न माता-पिता के सामने राम ने कहकर सुना दिया था ।४। उन दोनों ने राम के द्वारा कहा हुआ सब उसके कर्मों का विस्तार श्रवण किया था और परम प्रसन्न हुए थे । हे राजन् ! फिर वे दोनों एक दूसरे हर्ष को भी प्राप्त हुए थे ।५। हे महाराज ! इस रीति से उस भृगुकुल में परम श्रेष्ठ राम ने अपने माता-पिता की शुश्रूषा करते हुए पूर्णतया उनके प्रति अपने कर्त्तव्य का सविनय पालन किया था और अपने भाइयों की भी सेवा उसी भाव से उसने की थी ।६। इसी समय में किसी वक्त हैहयेश्वर चतुरङ्गिणी सेना के सहित मृगया करने को गमन करने वाला हुआ था ।७।

संरज्यमाने गगने बंधूककुसुमारुणैः ।
ताराजालद्युतिहरैः समंतादरुणांशुभिः ।।८
मंदं वीजति प्रोद्धूतकेतकीवनराजिभिः ।
प्राभातिके गंधवहे कुमुदाकरसंस्पृशि ।।९
वयांसि नर्मदातीरतरुनीडाश्रयेषु च ।
व्याहरन्स्वाकुला वाचो मनः श्रोत्रसुखावहाः ।।१०
नर्मदातीरतीर्थं तदवतीर्याघहारिणि ।
तत्तोये मुनिवृंदेषु गृणत्सु ब्रह्म शाश्वतम् ।।११

विधिवत्कृतमैत्रेषु सन्निवृत्य सरित्तटात् ।
आश्रमं प्रति गच्छत्सु मुनिमुख्येषु कर्मिषु ॥१२
प्रत्येकं वीरपत्नीषु व्यग्रासु गृहकर्मसु ।
होमार्थं मुनिकल्पाभिर्दुह्यमानासु धेनुषु ॥१३
स्थाने मुनिकुमारेषु तं दोहं हि नयत्सु च ।
अग्निहोत्राकुले जाते सर्वभूतसुखावहे ॥१४

अब उस वेला की अद्भुत छटा का वर्णन किया जाता है—उस समय में चारों ओर अरुण अंशुओं वाली और तारागण की द्युति का हरण करने वाली बन्धूक पुष्पों की अरुणता से आकाश मण्डल संरज्यमान हो रहा था ।८। विकसित केतकी के वनों की पंक्तियों के द्वारा मद को समुद्भूत करते हुए तथा कुमुदों से युक्त सरोवरों का स्पर्श करने वाला प्रातः काल का सुन्दर एवं सुख स्पर्श वायु वहन कर रहा था ।९। पक्षीगण उस समय में नर्मदा के तट पर उगे हुए तरुवरों के नीड़ों के आश्रमों में अपनी समाकुल और मन तथा कानों को परम सुख प्रदान करने वाली वाणियाँ बोल रहे थे ।१०। नर्मदा का तट तीर्थ है उस तीर्थ में उतर कर पापों के हरण करने वाले उस जल में मुनिवृन्द निरन्तर ब्रह्म अर्थात् वेद वचनों का गान कर रहे थे ।११। विधि-विधान के साथ नित्यानुष्ठान करके नर्मदा नदी के तीर से वापिस लौट कर कर्मों के करने वाले प्रमुख मुनिगण अपने-अपने आश्रमों की ओर गमन कर रहे थे ।१२। प्रत्येक वीरों की पत्नियाँ अपने-अपने गृहों के आवश्यक कर्मों में उस समय में संलग्न हो रही थीं । सर्वथा मुनियों के ही सदृश बहुत सी मुनि पत्नियाँ होम कर्म के सम्पादन करने के लिए धेनुओं का दोहन कर रही थीं ।१३। मुनियों के कुमार दोहन किये हुए दुग्ध को समुचित स्थानों पर पहुँचा रहे थे तथा समस्त प्राणियों को सुख का आवाहन करने वाले होम के होने पर अग्निहोत्र में सभी समाकुल हो रहे थे ।१४।

विकसत्सु सरोजेषु गायत्सु भ्रमरेषु च ।
वाशत्सु नीडान्निष्पत्य पतत्रिषु समंततः ॥१५
अनतिव्यग्रमत्तेभतुरंगरथगामिनाम् ।
गात्राह्लादविवर्द्धिन्यां वेलायां मंदवायुना ॥१६
इच्छत्सु चाश्रमोपांतं प्रसूनजलहारिषु ।

स्वाध्यायदक्षैर्बहुभिरजिनांबरधारिभिः ।।१७
सम्यक् प्रयोज्यमानेषु मंत्रेषूच्चावचेषु च ।
प्रैषेषूच्चार्यमाणेषु हूयमानेषु वह्निषु ।।१८
यथावन्मंत्रतंत्रोक्तक्रियासु विततासु च ।
ज्वलदग्निशिखाकारे तमस्तपनतेजसि ।।१६
प्रतिहत्य दिशः सर्वा विवृण्वाने च मेदिनीम् ।
सवितर्युदयं याति नैशे तमसि नश्यति ।।२०
तारकासु विलीनासु काष्ठासु विमलासु च ।
कृतमैत्रादिको राजा मृगयां हैहयेश्वरः ।।२१

उस प्रातःकालीन वेला में सभी ओर कमल खिले उठे थे और विकसित पंकजों के ऊपर भ्रमरों के वृन्द गुञ्जार रहे थे। सभी ओर से अपने-अपने घोंसलों से पक्षीगण नीचे उतर कर अपना अशन कर रहे थे।१५। उस समय में मन्द वायु वहन कर रही थी और सुमधुर वेला में जो भी विशेष व्यग्र नहीं थे ऐसे मदोन्मत्त हाथी-अश्व और रथों द्वारा गमन करने वालों के शरीर को आह्लाद का विवर्द्धन हो रहा था।१६। बहुत से कर्मनिष्ठ जन पुष्प और तीर्थजल का आहरण करके अपने-अपने आश्रमों की ओर गमन कर रहे थे। वेदों के स्वाध्याय करने में परम दक्ष बहुत से मृगचर्मों के धारण करने वालों के द्वारा भली-भाँति उच्चावच मन्त्रों के प्रयोग किये जा रहे थे तथा प्रैषों का उच्चारण किया जा रहा था। अग्नि में आहुतियाँ दी जा रही थीं।१७-१८। रीति के अनुसार मन्त्र शास्त्र और तन्त्रशास्त्र में वर्णित क्रियाओं का विस्तार हो रहा था। जलती हुई अग्नि की शिखा के आकार वाले तपन के तेज में समस्त दिशाओं में तप को प्रतिहत करके वसुन्धरा पर वह फैला हुआ था। सूर्यदेव के उदित हो जाने पर उस समय में रात्रि के समय का अन्धकार विनष्ट हो रहा था।१६-२०। जिस समय में समस्त तारागण विलीन हो गये थे और सभी दिशाएँ एकदम स्वच्छ दिखलाई दे रही थीं। उस समय में हैह्येश्वर राजा प्रातःकालीन सब कृत्य पूर्ण करके शिकार करने के लिए चल दिया था।२१।

निर्ययौ नगरात्तस्मात्पुरोहितसमन्वितः ।
बलैः सर्वैः समुदितैः सवाजिरथकुंजरैः ।।२२

साचिवैः सहितः श्रीमान् सवयोभिश्च राजभिः ।
महता बलभारेण नमयन्वसुधातलम् ।।२३
नादयन्रथघोषेण ककुभः सर्वतो नृपः ।
स्वबलौघपदक्षेपप्रक्षुण्णावनिरेणुभिः ।।२४
ययौ संच्छादयन्व्योम विमानशतसंकुलम् ।
संप्रविश्य वनं घोरं विंध्याद्रेर्बलसंचयैः ।।२५
भृशं विलोलयामास समंताद्राजसत्तमः ।
परिवार्य वनं तत्तु स राजा निजसैनिकैः ।।२६
मृगान्नानाविधान्हिंस्रान्निजघान शितैः शरैः ।
आकर्णकृष्टकोदंडयोधमुक्तैः शितेषुभिः ।।२७
निकृत्तगात्राः शार्दूला न्यपतन्भुवि केचन ।
उदग्रवेगपादातखड्गखडितविग्रहाः ।।२८

रथ-हाथी और अश्वों से समन्वित समस्त सैनिकों से युक्त होकर अपने पुरोहित के साथ वह राजा हैहयेश्वर अपने नगर से शिकार करने के लिए निकल दिया था ।२२। अपने सभी सचिवों के साथ और वयोवृद्ध अन्य कितने ही राजाओं को साथ में लेकर श्रीमान् वह बड़ी भारी सेना के वीरों के भार से समस्त वसुधा को नीचे की ओर झुकाते हुए वह चल रहा था ।२३। वह राजा अपनी सेना के रथों के चलने की ध्वनि से सभी दिशाओं को गुञ्जित कर रहा था और अपनी सेना के समुदायों के सहित प्रवेश करके सैकड़ों विमानों (वायुमानों) से आकाश को संछादित करता हुआ वह राजा था । उस राजेश्वर ने अपने सैनिकों के द्वारा उस सम्पूर्ण वन घेरकर परमश्रेष्ठ नृप वे उस स्थल को अत्यन्त विलोलित कर दिया था ।२५-२६। उस नृप ने अपने कानों तक समाकृष्ट धनुषों की प्रत्यञ्चा वाले योधाओं के द्वारा छोड़े हुए तीक्ष्ण बाणों से वहाँ पर अनेक प्रकार के हिंसक पशुओं का हनन किया था ।२७। अतीव उदग्र वेग से युक्त पदातियों के खड्गों से खण्डित शरीर वाले जिनके शरीर के भाग कट गये हैं ऐसे कुछ शार्दूल वहाँ पर भूमि में गिर गये थे ।२८।

वराहयूथपाः केचिद्रुधिरार्द्रा धरामगुः ।
प्रचंडशाक्तिकोन्मुक्तशक्तिनिर्भिन्नमस्तकाः ।।२९

मृगौघा: प्रत्यपद्यंत पर्वता इव मेदिनीम् ।
नाराचा विद्धसर्वांगा: सिंहर्क्षशरभादय: ।।३०
वसुधामन्वकीर्यंत शोणितार्द्राः समंततः ।
एवं सवागुरैः कैश्चित्पतद्भिः पतितैरपि ।।३१
श्वभिश्चानुद्रुतैः कैश्चिद्धावमानैस्तथा मृगैः ।
आर्त्तैर्विक्रोशमानैश्च भीतैः प्राणभयातुरैः ।।३२
युगापाये यथात्यर्थं वनमाकुलमाबभौ ।
वराहसिंहशार्दूलश्वाविच्छशकुलानि च ।।३३
चमरीरुरुगोमायुगवयर्क्षवृकान्बहून् ।
कृष्णसारान्द्वीपिमृगानृक्तखड्गमृगानपि ।।३४
विचित्रांगान्मृगानन्यान्न्यंकूनपि च सर्वशः ।
बालान्स्तनंधयान्यूनः स्थविरान्मिथुनान्गणान् ।।३५

बहुत ही प्रचण्ड शक्तिशाली वीरों के द्वारा छोड़ी हुई शक्तियों से कटे हुए मस्तक वाले कुछ वराहों के यूथ रुधिर से लथपथ होकर पृथ्वी पर गिर गये थे ।२६। मृगों के समुदाय पर्वतों के ही समान भूमि पर पड़े हुए थे और सिंह-रीछ और शरभ आदिक धनुषों के तीरों से विद्ध समस्त अङ्गों वाले हो गये थे ।३०। इस प्रकार से कुछ सवागुर गिरते हुए और गिरे हुओं के द्वारा सभी ओर सम्पूर्ण पृथ्वी तल को रक्त से भीगी हुई करके अनुकीर्ण कर दिया था । कुछ मृग कुत्तों के द्वारा खदेड़े हुए होकर भाग रहे थे और और आर्त्त होकर चीखें मारते हुए प्राणों के भय से अति आतुर और भय-भीत हो रहे थे ।३१-३२। जिस तरह से युग के अन्त समय में सर्वत्र विभी-षिका से पूर्ण स्थिति हुआ करती है ठीक उस समय से अत्यन्त आतुर हो रहे थे जिसके कारण वह सम्पूर्ण वन समाकुल होकर शोभित हो रहा था ।३३। वहाँ पर चमरी-रुरु-गोमायु-गवय-रीछ और बहुत से वृक-कृष्णसार-द्वीपी-मृग रक्त खड्ग मृग-विचित्र अङ्गों वाले मृग और न्यंकु आदि सभी ओर मारे जा रहे थे जिनमें दूध पीने वाले बहुत से बहुत छोटे पशु थे और बालक वृद्ध तथा जवान पशुओं के जोड़े भी थे । वहाँ पर सभी का निहनन किया जा रहा था ।३४-३५।

निजघ्नुर्शितैः शस्त्रैः शस्त्रवध्यान्हि सैनिकाः ।
एवं हत्वा मृगान् घोरान्हिस्रप्रायानशेषतः ।।३६
श्रमेण महता युक्ता बभूवुर्नृपसैनिकाः ।
मध्ये दिनकरे प्राप्ते ससैन्यः स तदा नृपः ।।३७
नर्मदां धर्मसंतप्तः पितासुरगमच्छनैः ।
अवतीर्य ततस्तस्यास्तोये सबलवाहनः ।।३८
विजगाह शुभे राजा क्षुत्तृष्णापरिपीडितः ।
स्नात्वा पीत्वा च सलिलं स तस्याः सुखशीतलम् ।।३९
बिसांकुराणि शुभ्राणि स्वादूनि प्रजघास च ।
विक्रीडय तोये सुचिरमुत्तीर्य सबलो नृपः ।।४०
बिशश्राम च तत्तीरे तरुखंडोपमंडिते ।
आलंबमाने तिग्मांशौ ससैन्यः सानुगो नृपः ।।४१
निश्चक्राम पुरं गंतुं विंध्याद्रिवनगह्वरात् ।
स गच्छन्नेव ददृशे नर्मदा तीरमाश्रितम् ।।४२

राजा के सैनिकों ने शस्त्रों के द्वारा वध करने के जो भी पशु योग्य थे उन सबका पैने शस्त्रों से हनन कर दिया था । इस प्रकार से प्रायः हिंसा करने वाले महान घोर पशुओं का वहाँ पर पूर्ण रूप से हनन किया था ।३६। इस तरह से शिकार करने से शिकार करने से नृप के सैनिक बड़े भारी श्रम से थक गये थे । भुवन भास्कर सूर्यदेव मध्य में प्राप्त हो गये थे । उस समय दोपहरी के वक्त में राजा अपनी सेना के सहित सूर्यातप से बेचैन हो गया था ।३७। घाम से संतप्त होकर प्यासा राजा धीरे से नर्मदा के तट पर चला गया था और फिर वह उस नर्मदा के जल में सब वाहनों और सैनिकों के सहित उतर गया था ।३८। भूख और प्यास से उत्पीड़ित राजा ने उस शुभ जल में अवगाहन किया था और उस नदी के परम शीतल जल में स्नान किया था और उसका पान भी किया था ।३९। अपनी समस्त सेना के सहित राजा ने उसके जल के भीतर उतर कर बहुत काल पर्यन्त विशेष रूप से जल-क्रीड़ा की थी तथा परम स्वादिष्ट शुभ्र विस के तन्तुओं का अशन भी किया था ।४०। जब सूर्यदेव आलम्बमान हो गये थे तो सब अनुचरों और

सैनिकों सहित राजा ने तरुवरों के समूह से मण्डित उस सरिता के तट पर विश्राम किया था। फिर उन विन्ध्याचल के गहन वन से अपने नगर में जाने के लिये राजा निकल दिया था। वहाँ से गमन करते हुए ही उसने नर्मदा के तट पर समाश्रित एक आश्रम का दर्शन दिया था।४१-४२।

आश्रमं पुण्यशीलस्य जमदग्नेर्महात्मनः।
ततो निवृत्य सैन्यानि दूरेऽवस्थाप्य पार्थिवः ।।४३
परिचारैः कतिपयैः सहितोऽयात्तदाश्रमम्।
गत्वा तदाश्रमं रम्यं पुरोहितसमन्वितः ।।४४
उपेत्य मुनिशार्दूलं ननाम शिरसा नृपः।
अभिनंद्याशिषा तं वै जमग्निर्नृपोत्तमम् ।।४५
पूजयामास विधिवदर्घपाद्यासनादिभिः।
संभावयित्वा तां पूजां विहितां मुनिना तदा ।।४६
निषसादासने शुभ्रे पुरस्तस्य महामुनेः।
तमासीनं नृपवरं कुशासनगतो मुनिः ।।४७
पप्रच्छ कुशलप्रश्नं पुत्रमित्रादिबंधुषु।
सह संकथयंस्तेन राजा मुनिवरोत्तमः ।।४८
स्थित्वा नातिचिरं कालमामिथ्यार्थं न्यमंत्रयत्।
ततः स राजा सुप्रीतो जमदग्निमभाषत ।।४९

वह एक महान् आत्मा वाले और पुण्यशील जमदग्नि मुनि का आश्रम था। राजा ने वहाँ से लौटकर कुछ दूरी पर अपनी सेनाओं को अब स्थापित कर दिया था।४३। अपने साथ में कतिपय परिचारकों को लेकर ही वह उस आश्रम में गया। पुरोहित के सहित ही राजा ने उस परम रम्य आश्रम में गमन किया था।४४। राजा ने वहाँ पर पहुँच कर उस मुनिशार्दूल के चरणों में शिर झुकाकर प्रणाम किया था। जमदग्नि ने उस श्रेष्ठ राजा का आशीर्वचनों के द्वारा अभिनन्दन किया था।४५। मुनि ने अर्घ्य-पाद्य और आसन आदि के द्वारा उस राजा का अर्चन किया था। उस समय में मुनि के द्वारा की हुई पूजा को स्वीकार किया था।४६। फिर राजा उन महामुनि के सामने परम शुभ्र आसन पर विराजमान हो गया था। जब राजा अपने

आसन पर उपविष्ट हो गये तो वे मुनिवर जमदग्नि एक कुशा के आसन पर संस्थित हो गये थे ।४७। महामुनि ने उस राजा के साथ संलाप करते हुए पुत्र-मित्र और बन्धु आदि के विषय में राजा से क्षेम-कुशल पूछा था ।४८। थोड़े ही समय तक स्थित होकर महामुनि ने अपना अतिथि-सत्कार करने के लिए राजा को निमन्त्रित किया था । इसके अनन्तर राजा परम प्रीतिमान् होकर जमदग्नि मुनि से बोला था ।४९।

महर्षे देहि मेऽनुज्ञां गमिष्यामि स्वकं पुरम् ।
समग्रवाहनबलो ह्यहं तस्मान्महामुने ।।५०
कर्तुं न शक्यमातिथ्यं त्वया वन्याशिना वने ।
अथवा त्वं तपः शक्त्या कर्त्तुमातिथ्यमद्य मे ।।५१
शक्नोष्यपि पुरीं गंतुं मामनुज्ञातुमर्हसि ।
अन्यथा चेत्खलैः सैन्यैरत्यर्थं मुनिसत्तम ।।५२
तपस्विनां भवेत्पीडा नियमक्षयकारिका ।
वसिष्ठ उवाच—
इत्येवमुक्तः स मुनिस्तं प्राह स्थीयतां क्षणम् ।।५३
सर्वं संपादयिष्येऽहमातिथ्यं सानुगस्य ते ।
इत्युक्त्वाहूय तां दोग्ध्रीमुवाचायं ममातिथिः ।।५४
उपागतस्त्वया तस्मात्क्रियतामद्य सत्कृतिः ।
इत्युक्ता मुनिना दोग्ध्री सातिथेयमशेषतः ।
दुदोह नृपतेराशु यथोग्यं मुनिगौरवात् ।।५५
अथाश्रमं तत्सुरराजसद्मनिकाशमासीद्भृगुपुंगवस्य ।
विभूतिभेदैरविचिन्त्यरूपमनन्यसाध्यं सुरभिप्रभावात् ।।५६

हैहयेश्वर राजा ने महामुनि से प्रार्थना की थी कि हे महर्षे ! आप मुझे अपनी आज्ञा दीजिए । मैं अब अपने पुर को गमन करूँगा । हे महा-मुने ! कारण यह है कि मेरे साथ समस्त सेनाएं वाहन भी हैं ।५०। इस वन में वन्य फल मूलों का अशन करने वाले आपके द्वारा आतिथ्य नहीं किया जा सकता है । अथवा यह भी हो सकता है कि आप अपनी तपश्चर्या की

शक्ति से मेरा आतिथ्य करने की सामर्थ्य रखते हैं तो भी यह उचित नहीं है और आप मुझे मेरी नगरों की ओर गमन करने की आज्ञा देने के योग्य हैं। अन्य प्रकार से अर्थात् यदि मैं ठहर भी जाऊँ तो हे मुनि श्रेष्ठ ! ये सैनिक बड़े ही दुष्ट स्वभाव वाले हैं। इनके द्वारा तपस्वियों के नियमों क्षय करने वाली बहुत ही अधिक आप लोगों को पीड़ा हो जायगी ।५१। वसिष्ठ जी ने कहा—इस तरह से जब राजा के द्वारा मुनिवर से कहा गया था तो उन महामुनि ने राजा से कहा था कि आप कुछ क्षण के लिए यहाँ पर विराजमान तो रहिए ।५२-५३। मैं आपका समस्त अनुगामियों के ही सहित पूरा आतिथ्य सत्कार सम्पन्न कर दूँगा। इतना राजा से कहकर उस महामुनि ने दोग्ध्री धेनु को बुलाकर उससे कहा था कि यह राजा आज मेरे अतिथि के स्वरूप में समागत हो गये हैं ।५४। जब यह यहाँ पर समागत हो गये हैं तो इसी कारण से आप इनका आज पूर्णतया सत्कार करिए। इस रीति से मुनि के द्वारा कही हुई उस दोग्ध्री ने महामुनि के गौरव के कारण पूर्णरूप से राजा का आतिथेय किया था और जो-जो भी राजा के आतिथ्य के योग्य पदार्थ थे वे सभी बहुत शीघ्र दोहन करके उपस्थित कर दिये थे ।५५। इसके अनन्तर उस सुरभि के प्रभाव से उस श्रेष्ठ मुनि का आश्रम सुरराज के सद्म के समान वैभवों के अनेक भेदों के द्वारा ऐसा न सोचने के योग्य स्वरूप वाला हो गया था कि जो अन्य किसी के भी द्वारा साध्य नहीं हो सकता है ।५६।

अनेकरत्नोज्ज्वलचित्रहेमप्रकाशमालापरिवीतमुच्चैः ।
पूर्णेन्दुशुभ्राभ्रविषक्तशृंगैः प्रासादसंघैः परिवीतमंतः ॥५७
कांस्यारकूटारसताम्रहेमदुर्वर्णसौधोपलदारुमृद्भिः ।
पृथग्विमिश्रैर्भवनैरनेकैः सदृभासितं नेत्रमनोभिरामैः ॥५८
महार्हरत्नोज्ज्वलहेमवेदिकानिष्कूटसोपानकुटीविटंकैः ।
तुलाकपाटार्गलकुड्यदेहलीनिशांतशाला-
जिरशोभितैर्भृशम् ॥५९
वलभ्यलिंदांगणचारुतोरणैरदभ्रपर्यंतचतुष्किकादिभिः ।
कुड्येषु संशोभित दिव्यरत्नैर्विचित्रचित्रैः परिशोभमानैः ॥६०
उच्चावचैः रत्नवरैर्विचित्रसुवर्णसिंहासनपीठिकाद्यैः ।

स भक्ष्यभोज्यादिभिरन्नपानैरुपेतभांडोपगतैकदेशैः ।।६१

गृहैरमर्त्योचिपसर्वसंपत्समन्वितैर्नेत्रमनोऽभिरामैः ।

तस्याश्रमं सन्नगरोपमानं बभौ वधूभिश्च मनोहराभिः ।।६२

अब सुरभि की महिमा के आश्रम की जैसी परम विशाल शोभा हुई थी उसकी छटा का वर्णन किया जाता है--उस आश्रम के अन्दर का भाग नाना भाँति के रत्नों की देदीप्यमान द्युति से विचित्र हो गया था और सुवर्ण के चाकचिक्य से संयुत प्रकाश माला से घिरा हुआ था तथा पूर्ण चन्द्र के समान परम शुभ्र और अत्युच्च अन्तरिक्ष को छूने वाली शिखरों से समन्वित प्रासादों से चारों ओर परिपूर्ण वह आस्रम हो गया था ।५७। कांस्य-आरकूर-ताम्र-हेम-सुवर्ण सौधोपल-दारु और मृत्तिका के पृथक्-पृथक् और मिस्रित नेत्रों तथा मन को परम अभिराम प्रतीत होने वाले अनेक भवनों से वह आस्रम समुद्भासित हो गया था ।५८। उस महामुनि का वह आस्रम उस समय में महा मूल्यवान रत्नों से समुज्ज्वल था और हेम की वेदिका–निष्कूट–सोपान–कुटी और विटंककों से समन्वित था । तुला–कपाट–अर्गला–कुड्य (भीत)–देहली–निशान्तशाला–अजिर (आँगन) की शोभा से बहुत ही वह आश्रम संयुत था ।५९। वलभी-अलिन्द-अङ्गण और परम रम्य तोरणों से युक्त था तथा अदभ्र चतुष्किका आदि से विशोभित था । उस आस्रम में जो स्तम्भ बने हुए थे उनमें और जो दीवालें थीं उनमें परिशोभमान दिव्य रत्नों के विचित्र चित्र विद्यमान थे । इनसे उस आश्रम की अद्भुत शोभा हो रही थी ।६०। वह महामुनि का आश्रम छोटे व कीमती श्रेष्ठ रत्नों से युक्त था और उसमें अत्यद्भुत सुवर्ण के अनेक सिंहासन और पीठिका आदि निर्मित थे । उस आश्रम के एक देश में भक्ष्य और भोज्य-लेह्य-चोष्य आदि अशनोपयोगी पदार्थ वर्त्तमान थे तथा अन्न-पानों से समुपेत भाण्ड भी वहाँ पर विद्यमान थे ।६१। उसमें ऐसे अनेक गृह बने हुए थे जो देवों के लायक सब प्रकार की नयनों और मन के परम रमणीक लगने वाली सम्पदा से समन्वित थे । वह मुनि का आश्रम सुरभि की महिमा से मनोहर बन्धुओं से सुन्दर नगर के समान परमशोभित हो रहा था ।६२।

—x—

।। जमदग्नि द्वारा अतिथि सत्कार ।।

वसिष्ठ उवाच—

तस्मिन्पुरे सन्तुलितामरेंद्रपुरीप्रभावे मुनिवर्यधेनुः ।
विनिर्ममे तेषु गृहेषु पश्चात्तद्योग्यनारीनरवृंदजातम् ।।१
विचित्रवेषाभरणप्रसूनगन्धांशुकालंकृतविग्रहाभिः ।
सहावभावाभिरुदारचेष्टाश्रीकांतिसौन्दर्यगुणान्विताभिः ।।२
मंदस्फुरद्दन्तमरीचिजालविद्योतिताननसरोजजितेंदुभाभिः ।
प्रत्यग्रयौवनभरासववल्गुगीर्भिः स मन्मंथरकटाक्ष
निरीक्षणाभिः ।।३
प्रीतिप्रसन्नहृदयाभिरतिप्रभाभिः शृङ्गारकल्पतरुपुष्पविभू-
षिताभिः ।
देवांगनातुलितसौभगसौकुमार्यरूपाभिलाषमधुराकृति-
रंजिताभिः ।।४
उत्तप्तहेमकलशोपमचारुपीनवक्षोरुहद्वयभरानतमध्यमाभिः ।
श्रोणीभराक्रमणखेदपरिश्रितासृगारक्तपावकरसारुणिता-
ङ्घ्रिभूभिः ।।५
केयूरहारमणिकंकणहेमकंठसूत्रामलश्रवणमण्डलमंडिताभिः ।
स्रग्दामचुम्बितसकुन्तकेशपाशकांचीकलापपरिशिंजित-
नूपुराभिः ।।६
आमृष्टरोषपरिसांत्वननर्महासकेलीप्रियालपनभर्त्सनरोषणेषु ।
भावेषु पार्थिवनिजप्रियधैर्यबन्धसर्वापहारचतुरेषु
कृतांतराभिः ।।७

श्री वसिष्ठजी ने कहा—सन्तुलित महेन्द्र की नगरी के प्रभाव वाले उस पुर में मुनिवर की धेनु ने उन गृहों में इसके पश्चात् उनके ही योग्य नर-नारियों के समुदायों की रचना भी कर दी थी ।१। अब जो नारीगणों का निर्माण उस पुर में किया था उनकी वेष-भूषा— रूप माधुर्य—सौन्दर्य

छटा और कार्य कुशलता आदि का वर्णन किया जाता है—उन नारियों के विचित्र वेष थे और अद्‌भुत आभरण–प्रसून–गन्धादि से समलंकृत शरीर थे। तथा वे अपने हावभावों से ससन्वित थीं और उदार चेष्टाएँ—श्री—कान्ति और सौन्दर्य आदि गुणगुण से युक्त थीं ।२। मन्द स्फुरण करने वाली दन्त पंक्ति की मरीचियों के जाल से विशेष रूप से द्योतित उनका मुख कमल तथा जिससे उन्होंने चन्द्र की आभा को भी पराजित कर दिया था। उनकी वाणी नूतन यौवन के भार से वल्गुता से संयुत थी तथा प्रेम पूर्वक धीमे कटाक्षों से संयुक्त उनका निरीक्षण था ।३। उनके वदन की प्रजा अत्यधिक थी और प्रीति की भाव-भङ्गी से वे परम प्रसन्न हृदयों वाली थीं तथा अपने शृङ्गार में कल्पतरु के परम सुन्दर सुमनों से विभूषित थीं। उनका परम सुरम्य सौभाग्य–सुकुमारता–रूप लावण्य–अभिलाषा और मधुर आकृति देवाङ्गना के समान ही थी जिनके कारण वे नारियाँ अतीव रञ्जित थीं ।४। तपे हुए सुवर्ण के कलशों के ही सदृश अत्यधिक सुन्दर—परिपुष्ट उनके दोनों उरोज थे जिनके वहन करने के भार सो उन नारियों का मध्य भाग कुछ नीचे की ओर झुका हुआ था। उन नारियों के श्रोणियों का भार ऐसा था कि उसके वहन करने में उनको कुछ खेद होता था और खिन्नता के कारण से परिश्रित रुधिर से तथा लगे हुए पावक रस से उनके चरणों का भाग अरुणिमा से संयुत था ।५। कैयूर-हार-मणियों के द्वारा विनिर्मित कंकण-सुवर्ण का कण्ठ सूत्र और विमल श्रवणों के भूषणों से वे नारियाँ विभूषित थीं। उनके कुन्तल केशपाशों में परम सुन्दर सुमनों की मालाएँ गुथी हुई थीं और करधनी में लगे हुए घूँघरों की तथा नूपुरों की ध्वनि से वे समायुक्त थीं ।६। आकृष्ट रोष की परिसान्त्वना में नर्म (प्रणयालाप)–हास–केली–और प्रिय आलाप करने में—भाषण और रोष तथा भर्त्सना में दक्ष एवं पार्थिव निजप्रिय धैर्यबन्ध सबके अपहार में कुशल भावों से वे नारियाँ अपने मन को लगाने वाली थीं ।७।

तन्त्रीस्वनोपमितमंजुलसौम्यगेयगंधर्वतारम्-
धुरारवभाषिणीभिः ।
वीणाप्रवीणतरपाणितलांगुलीभिर्गंभीर-
चक्रचटुवादरतोत्सुकाभिः ॥८
स्त्रीभिर्मदालसतराभिरतिप्रगल्भभावाभिराकुलिकामुक
मानसाभिः ।

कामप्रयोगनिपुणाभिरहीनसंपदौदार्यरूपगुणशील-
समन्विताभिः ॥९
संख्यातिगाभिरनिशं गृहकृत्यकर्मव्यग्रात्मकाभिरपि
तत्परिचारिकाभिः ।
पुंभिश्च तद्गुणगणोचितरूपशोभैरुद्भासितैर्ग्रहचरैः
परितः परीतम् ॥१०
सराजमार्गापणसौधसद्मसोपानदेवालयचत्वरेषु ।
पौरैरशेषार्थगुणैः समंतादध्यास्यमानं परिपूर्णकामैः ॥११
अनेकरत्नोज्ज्वलितैर्विचित्रैः प्रासादसंघैरतुलैरसंख्यैः ।
रथाश्वमातंगखरोष्ट्रगोजायोग्यैरनेकैरपि मंदिरैश्च ॥१२
नरेंद्रसामंतनिषादिसादिपदातिसेनापतिनायकानाम् ।
विप्रादिकानां रथिसारथीनां गृहैस्तथा मागधबंदिनां च ॥१३
विविक्तरथ्यापणचित्रचत्वरैरनेकवस्तुक्रयविक्रयैश्च ।
महाधनोपस्करसाधुनिर्मितैर्गृहैश्च शुभ्रैर्गणिकाजनानाम् ॥१४

वीणा के तारों से निकले हुए स्वर के समान परम मञ्जुल और सौम्य गाने के योग्य गन्धर्वों के समुच्च एवं मधुर निनाद से भाषण करने वालो वे सब नारियाँ थीं। वीणा के वादन में परम प्रवीण पाणि की अँगुलियों के द्वारा गम्भीर चक्र के चटु बाद में निरत एवं वे समस्त नारियाँ समुत्सुक थीं।८। वे समस्त नारियाँ यौवन के मद से अधिक अलस और अत्यधिक प्रगल्भ भावों वाली थीं। तथा वे सब आकुलित एवं कामुक अर्थात् कामकेली की वासना से संयुत मनों वाली थीं। कामवासना से रचनात्मक प्रयोग करने में वे वारी बहुत ही निपुण थीं। तथा परिपूर्ण सम्पदा-उदारता-रूप-गुण और शील स्वभाव से समन्वित थीं।९। संख्या को भी अतिक्रमण करने वाले अर्थात् बहुत ही अधिक घर के कर्मों में बहुत संलग्न रहने पर भी अपने प्राणी पतियों की परिचर्या करने वाली थीं। वह पुर उन नारियों के गुणगणों के लायक ही रूप और शोभा वाले—उद्भासित और सभी ओर से ग्रहों में सञ्चरण करने वाले पुरुषों से घिरा हुआ था।१०। वह नगर राजमार्ग, आपण सौध-सोपान-देवालयों के आँगनों

में समस्त अर्थ ग्रहों वाले तथा परिपूर्ण कामनाओं से संयुत नागरिकों से चारों ओर अध्यास्यमान था अर्थात् परिगुणशाली पुरवासी सभी ओर निवास कर रहे थे ।११। उस नगर में असंख्य-अनुपम और नाना भाँति के रत्नों से समुज्ज्वलित एवं विचित्र प्रासादों के समुदायों की अवस्थिति थी और वहाँ पर अनेक ऐसे मन्दिर थे जहाँ पर अनेक रथ-अश्व-हाथी खर-उष्ट्र और गौएँ विद्यमान थे ।१२। उस नगर में चारों ओर नरेन्द्र सामन्त-निषाद सादी-पदाति-सेनापति और नायकों के तथा रथी-सारथी-मागध-बन्दीगण और विप्र प्रभृतियों के गृह बने हुए थे ।१३। उस अनुपम नगर में विविक्त अर्थात् खुली हुईं रथ्याएँ थीं—सभी आपण थे जिनके चत्वर बहुत ही विचित्र थे। वहाँ पर अनेक प्रकार की वस्तुओं का क्रय और विक्रय हो रहा था। उस नगर में वारांगनाओं के परम शुभ्र गृहों के समूह विनिर्मित थे जिनके निर्माण करने में बहुत अधिक धन के व्यय से सब सामान भली-भाँति लगाये गये थे ।१४।

महार्हरत्नोज्ज्वलतुंगगोपुरैः सह श्वगृध्रव्रजनर्तनालयैः ।
चित्रैर्ध्वजैश्चापि पताकिकाभिः शुभ्रैः ।
पटैर्मण्डपिकाभिरुन्नतैः ॥१५

कल्हारकंजकुमुदोत्पलरेणुवासितैश्चकाह्वहंसकुररीबक-
सारसानाम् ।
नानारवाढ्यरमणीयतटाकवापीसरोवरैश्चापि जलोप-
पन्नैः ॥१६

चूतप्रियालपनसाम्रमधूकजंबूप्लक्षैर्नवैश्च तरुभिश्च
कुतालवालैः ।
पर्यंतरोपितमनोरमनागकेतकीपुन्नागचंपकवनैश्च
पतत्रिजुष्टैः ॥१७

मंदारकुंदकरवीरमनोज्ञयूथिकाजात्यादिकैर्विविधपुष्प
फलैश्च वृक्षैः ।
संलक्ष्यमाणपरितोपवनालिभिश्च संशोभितं जगति
विस्मयनीयरूपैः ॥१८

सर्वर्तु कप्रवरसौरभवायुमंदमंदप्रचारिगतिभर्त्सितघर्मकालम् ।
इत्थं सुरासुरमनोरमभोगसंपद्विस्पष्टमानविभवं नगरं
नरेंद्र ॥१९

सौभाग्यभोगममितं मुनिहोमधेनुः सद्यो विधाय
विनिवेदयदाशु तस्मै ।
ज्ञात्वा ततो मुनिवरो द्विजहोमधेन्वा संपादितं नरपते
रुचिरातिथेयम् ॥२०

आहूय कंचन तदंतिकमात्मशिष्यं प्रास्थापयत्सगुण-
शालिनमाशु राजन् ।
गत्वा विशामधिपतेस्तरसा समीपं सप्रश्रयं मुनिसुतस्तमिदं
बभाषे ॥२१

उस सुरम्य नगर में बहुत ही मूल्यवान् रत्नों से उज्ज्वल एवं समुन्नत गोपुर बने हुए थे तथा श्वा-गृद्धों के समुदायों के वर्त्तन के आलय बने हुए थे । उसमें विचित्र ध्वजाएँ—पताकाएँ और शुभ्र पटों से संयुत उन्नत मण्डपिकाएँ निनिर्मित्त थी ।१५। उस नगर में जल में भरे हुए अनेक तालाब-बावड़ी और सरोवर थे जिनमें अनेक प्रकार की रमणीक ध्वनि हो रही थी तथा वहाँ पर उनका जल कह्लार-कमल-कुमुद और उत्पलों की रेणु से सुवासित था और चक्रवाक-हंस-कुररी-बगुला तथा सारसों की ध्वनियाँ सुनाई दे रही थीं ।१६। उस नगर में अनेक प्रकार के वृक्ष लगे हुए थे जिनके आलवाल भी बने हुए थे । उन तरुवरों में आम्र-प्रियालपन-मधूक जम्बू और प्लक्ष के वृक्ष थे । वहाँ पर पर्वतों में परम सुन्दर नाग केतुकी पुन्नाग और चम्पक के वन थे जो पक्षियों के द्वारा सेवित थे अर्थात् जिन पर अनेक पक्षी निवास कर रहे थे ।१७। वह नगर अनेक तरह के वृक्षों से शोभित था जिनका स्वरूप जगत् परमाश्चर्य जनक था । वहाँ पर सुसंरक्षित चारों ओर उपवनों की पंक्तियाँ थीं एवं वहाँ अनेक मन्दार-कुन्द-करवीर-सुन्दर यूथिका और जाती आदि के पुष्पों तथा फलों वाले वृक्ष लगे हुए थे ।१८। हे नरेन्द्र ! उस नगर में समस्त ऋतुओं में श्रेष्ठ वसन्त में सुरभित वायु के मन्द-मन्द प्रचलन से घर्म के काल को भर्सित कर दिया गया था । इस प्रकार से वह नगर सुरासुरों की परम मनोरम भोगों की सम्पदा के

विस्पष्टमान वैभव वाला था ।१९। उस मुनि की होम धेनु ने तुरन्त ही अमित सौभाग्य के भोग को करके शीघ्र ही उस महामुनीन्द्र की सेवा में कर दिया था। इसके अनन्तर उन मुनिश्रेष्ठ ने द्विज होम धेनु के द्वारा राजा का परम रुचिर आतिथेय-सम्पादित किया हुआ जान लिया था ।२०। फिर उस मुनींद्र ने अपने किसी गुणशाली शिष्य को बुलाकर हे राजन् ! शीघ्र ही हैययेश्वर के समीप में भेज दिया था। उस मुनि सुत ने शीघ्र वेग से विशों के अधिपति के समीप में गमन करके बहुत ही नम्रता से यह उससे यह कहा था ।२१।

आतिथ्यमस्मदुपपादितमाशु राज्ञासंभावनीयमिति नः कुलेदेशिकाज्ञा ।
राजा ततो मुनिवरेण कृताभ्यनुज्ञः संप्राविशत्पुरवरं स्वकृते कृतं तत् ।।२२
सर्वोपभोग्यनिलयं मुनिहोमधेनुसामर्थ्यसूचकमशेषबलैः समेतः ।
अन्तः प्रविश्य नगरर्द्धिमशेषलोकसंमोहिनीमभिसमीक्ष्य स राजवर्यः ।।२३
प्रीतिप्रसन्नवदनः सबलस्तु दानी धीरोऽपि विस्मयवाप भृशं तदानीम् ।
गच्छन्सुरस्त्रीनयनालियूथपानैकपात्रोचितचारुमूर्त्तिः ।।२४
रेमे स हैहयपतिः पुरराजमार्गे शक्रः कुबेरवसताविव सामरौघः ।
तं प्रस्थितं राजपथात्समंतात्पौरांगाश्चन्दनवारिसिक्तैः ।।२५
प्रसूनलाजाप्रकरैरजस्रमवीवृषन्सौधगताः सुहृद्यैः ।
अभ्यागतार्हणसमुत्सुकपौरकांता हस्तारविदगलिताम-ललाजवर्षैः ।।२६
कालेयपंकसुरभीकृतनन्दनोत्थशुभ्रप्रसूननिकरै-रलिवृन्दगीतैः ।

तत्रत्यपौरवनितांजनरत्नसारमुक्ताभिरप्यनुपदं
प्रविकीर्यमाणः ।।२७
व्यभ्राजतावनिपतिर्विशदैः समंताच्छीतांशुरश्मि-
निकरैरिव मंदराद्रिः ।
ब्राह्मीं तपः श्रियमुदारगणामचिंत्यां लोकेषु दुर्लभतरां
स्पृहणीयशोभाम् ।।२८

हमारे कुल गुरुदेव की यह आज्ञा हुई है कि हमारे द्वारा समुपादित आतिथ्य को राजा के द्वारा शीघ्र ही ग्रहण करना चाहिए। इसके पश्चात् राजा ने मुनिवर के द्वारा अनुज्ञा प्राप्त करके उस परम श्रेष्ठ नगर में प्रवेश किया था जोकि अपने ही लिए निर्मित किया गया था।२२। वह राजा अपनी सेना के समस्त सैनिकों के सहित उस नगर में प्रविष्ट हुआ था जो कि मुनि की होमधेनु की अत्यद्भुत शक्ति-सामर्थ्य का सूचक था और जो सभी प्रकार के उपभोगों का एक महान विशाल आगार था। अन्दर उस राजा ने भली-भाँति प्रवेश करके सभी लोकों का समोहन करने वाली उस नगर की समृद्धि का अभिसमीक्षण करके अत्यधिक प्रसन्नता प्राप्त की थी।२३। उस समय अपनी सेना के सहित परम दानी और महान् धीर उस राजा ने प्रीति से प्रसन्न वदन वाला होकर अत्यधिक विस्मय को प्राप्त किया था। देवों की स्त्रियों के नेत्ररूपी भ्रमरों के यूथों के द्वारा पाप करने का एक मात्र पात्र समुचित एवं सुन्दर मूर्ति वाला जिस समय वहाँ गमन कर रहा था। अर्थात् गमन करते हुए देवाङ्गनाएँ अपने नयनों से उसकी सुन्दर मूर्त्ति का अवलोकन कर रही थी।२४। देवगणों के समुदाय के साथ उस राजा हैहयपति ने कुबेर की वसति में महेन्द्र के ही समान पुर के राज मार्ग में परम रमण किया था। राजमार्ग के द्वारा जब प्रस्थान कर रहा था उस समय में सौधों (विशाल सहस्रों) पर स्थित होती हुई पौराङ्गनाओं ने चारों ओर से चन्दन के जल से सिक्त परम सुन्दर प्रसूनों और लाजाओं (खीलों) के प्रकरों से निरन्तर उस राजा के ऊपर वर्षा की थी। समागत अतिथि के अर्चन करने में परमाधिक समुत्सुक उस नगर वासियों की अङ्ग-नाओं के करकमलों से गिरी हुई खीलों की वर्षा हो रही थी। उस समय में होने वाले पङ्क (कीच) से सुगन्धित नन्दन वन में समुत्पन्न पुष्पों की राशियाँ बरसायीं जा रही थीं जिन पर सौरभ से संमोहित भ्रमर-गुञ्जार कर रहे

थे। वहाँ पर वह राजा वहाँ की वनिताओं के द्वारा अञ्जन रत्न सार मुक्ताओं से अनुपद प्रकीर्यमाण हो रहा था।२५-२६-२७। वह अवनिपति इस प्रकार की विशद वृष्टियों से चारों ओर विशेष रूप से भ्राजित हुआ था जैसे मन्दराचल चन्द्रमा की किरणों के समुदाय से शोभाशाली हुआ करता है। उस समय अत्यन्त उदार और लोकों में चिन्तन न करने के योग्य ब्राह्मणों की तपश्चर्या का भी अवलोकन राजा ने किया था जो कि अन्य लोकों में महादुर्लभ और स्पृहणीय शोभा से समन्वित थी।२८।

पश्यन्विशामधिपतिः पुरसंपदं तामुच्चैः शशंस मनसा
वचसैव राजन्।
मेने च हैहयपतिर्भुवि दुर्लभेयं श्रीमो मनोहरतरा सहिता
हि संपत्॥२९
अस्याः शतांशतुलनामपि नोपगन्तुं विप्रश्रियं प्रभवतीति
सुराचितायाः।
मध्येपुरं पुरजनोपचितां विभूतिमालोकयन्सह
पुरोहितमंत्रिसार्थैः॥३०
गच्छन्स्वपार्श्वचरदर्शितवर्णसौधो लेभे मुदं पुरजनैः
परिपूज्यमानः।
राजा ततो मुनिवरोपचितां सपर्यामात्मानुरूपमिह
सानुचरो लभस्व॥३१
इत्यश्रमेण नृपतिर्विनिवर्तयित्वा स्वार्थं प्रकल्पितगृहा-
भिमुखो जगाम।
पौरैः समेत्य विविधार्हणपाणिभिश्च मार्गे मुदा विरचिताः
जलिभिः समंतात्॥३२
संभावितोऽप्यनुपदं जयशब्दघोषैस्तूर्यरवैश्च
बधिरीकृतदिग्विभागैः।
कक्षांतराणि नृपतिः अनकैरतीत्य श्रीणि क्रमेण च
ससंभ्रमकंचुकीनि॥३३

दूरप्रसारितपृथग्जनसंकुलानि सद्याविवेश
संचिवादरदत्तहस्तः ।
तत्र प्रदीपदधिदर्पणगन्धपुष्पदूर्वाक्षतादिभिरलं
पुरकामिनीभिः ॥३४
निर्याय राजभवनांतरतः सलीलमानन्दितो नरपति-
र्बहुमान पूर्वम् ।
ताभिः समाभिविनिवेशितमांशु नानारत्न-
प्रवेकरुचिजालविराजमानम् ॥३५

क्षत्रियों के अधिपति ने उस नगर की सम्पदा को देखकर हे राजन् ! वचनों की भाँति मन में बहुत ही अधिक प्रशंसा की थी। और हैहयपति ने यह मान लिया था कि भूमण्डल में अधिक मनोहर हित के सहित क्षत्रियों की सम्पदा ऐसी परम दुर्लभ है। अर्थात् क्षत्रियों की सम्पदा ऐसी कभी भी नहीं हो सकती है।२९। सुरों के द्वारा समर्पित इस विप्रों की श्री के समक्ष में क्षत्रियों की श्री शतांश की भी तुलना प्राप्त करने में समर्थ नहीं होती है। पुर के मध्य में अपने पुरोहित और मन्त्रियों के साथ में जब उस पुर के निवासियों के द्वारा उपचित विभूतिका आलोकन किया था तब राजा के मन में विप्रश्री की महत्ता का ज्ञान हुआ था।३०। जिस समय में राजा नगर में भीतर गमन कर रहा था उस समय में अपने पार्श्व में चरण करने वालों के द्वारा सोधों का वर्ग उसे दिखाया गया था तथा वहाँ के गुरुजनों के द्वारा सभी ओर से वह पूज्यमान हो रहा था और उसको विशेष आनन्द प्राप्त हुआ था। उस समय में राजा से निवेदन किया गया था कि आप अपने सभी अनुचरों के सहित अपने स्वरूप के अनुरूप मुनिवर के द्वारा इस सपर्या का लाभ प्राप्त कीजिए।३१। फिर राजा अपने स्वार्थ को निर्वर्त्तित करके प्रकल्पित गृह की ओर अभिमुख होकर वहाँ से चला था। मार्ग में सभी ओर से अनेक प्रकार की पूजा को सामग्री हाथों में ग्रहण किये हुए पुरवासियों ने एकत्रित होकर अपने करों को जोड़कर उसका परमाधिक आतिथ्य सत्कार किया था और पद-पद पर जयकार के शब्दों के घोष से तथा सूर्य की ध्वनि से सभी दिशाओं को बधिर करते हुए उस राजा का नगर निवासियों ने विशेष सम्मान किया था। फिर राजा ने क्रम से तीन अन्य कक्षों का अतिक्रमण किया था जिनमें बड़े ही संभ्रम वाले कञ्चुकी वर्तमान थे।

।३२-३३। उन कञ्चुकियों के द्वारा दर्शक जनों के समूहों को अलग दूर में हटा दिया गया था जिस समय में राजा ने अन्दर प्रवेश किया था । सचिव-गण बड़े ही आदर से राजा के पदार्पण करने के लिये हाथों से सङ्केत कर रहे थे । भीतर नगर की कामिनियाँ विद्यमान थी जो राजा का अर्चन प्रदीपदधि-दर्पण-गन्ध-पुष्प-दूर्वा और अक्षत आदि से विशेष रूप से कर रही थी ।३४। फिर राजा उस राजभवन के अन्दर से लीला के सहित बहुमान पूर्वक आनन्दित होता हुआ निकला था । वहाँ पर सम वयस्क उन पुर की युवतियों के द्वारा अनेक प्रकार के रत्नों के प्रवेक रुचि के जाल से विराज-मान बहुत ही शीघ्र एक उपवेशन करने के लिए आसन निवेशित किया गया था ।३५।

सूक्ष्मोत्तरच्छदमुदारयशा मनोज्ञमभ्यारुरोह कनकोत्तर-
विष्टरं तम् ।
तस्मिन्गृहे नृप तदीयपुरंध्रिवर्गः स्वासीनमाशु नृपति
विविधार्हणाभिः ॥३६
वाद्यादिभिस्तदनु भूषणगंधपुष्पवस्त्राद्यलंकृतिभिरग्र्य-
मुदं ततान ।
तस्मिन्नशेषदिवसोचितकर्म सर्वं निर्वर्त्य हैहयपतिः
स्वमतानुसारम् ॥३७
नाना विधालयनर्मविचित्रकेलीसंक्षितैर्दिनमशेषमलं
तिनाय ।
कृत्वा दिनांतसमयोचितकर्म चैव राजा स्वमंत्रि-
सचिवानुगतः समंतात् ॥३८
आसन्नभृत्यकरसंस्थितदीपकौघसंशांतसंतमसमाशु सदः
प्रपेदे ।
तत्रासने समुपविश्य पुरोधमंत्रिसामंतनायकशतैः
समुपास्यमानः ॥३९
अन्वास्त राजसमितौ विविधैर्विनोदैर्हृष्टः सुरेंद्र इव
देवगणैरुपेतः ।

यातश्चिरं विविधवाद्यविनोदनृत्तप्रेक्षाप्रवृत्तहसनादिः
कथाप्रसंगः ॥४०
आसांचकार गणिकाजननर्महासक्रीडाविलास-
परितोषितचित्तवृत्तिः ।
इत्थं विशामधिपतिर्भृशमानिशार्द्धं नानाविहार-
विभवानुभवैरनेकैः ॥४१
स्थित्वानुगान्यरपतीनपि तन्निवासं प्रस्थाप्य वासभवनं
स्वयमप्ययासीत् ।
तद्राजसैन्यमखिलं निजवीर्यशौर्यसंपत्प्रभावमहिमानुगुणं
गृहेषु ॥४२

वह उदार यश वाला राजा बहुत ही बारीक वस्त्र का छादन जिस पर हो रहा था और नीचे सुवर्ण का विष्टर जिसमें था ऐसे उस परम-मनोहर आसन पर अध्यासित हो गये थे। हे नृप ! उस गृह में उसकी पुरन्ध्रियों के समुदाय ने अपने आसन पर शीघ्र ही समासीन राजा का अनेक पूजन के उपचारों से अर्चन किया था ।३६। इसके उपरान्त वाद्यों के वादन आदि के द्वारा और भूषण—गन्ध—पुष्प—वस्त्र आदि अलकृतियों से राजा का विशेष आनन्द बढ़ा दिया था। वहाँ पर सम्पूर्ण दिन में होने वाले समुचित कर्म से निवृत्त होकर उस हैहयपति ने अपने मत के अनुसार पूरे दिवस को व्यतीत किया था ।३७। वहाँ पर उस राजा का पूरा दिन अनेक तरह के आलयन–नर्मवचन–विचित्र आनन्द केलियों और भली भाँति प्रेक्षण आदि के समाचरण से व्यतीत हुआ था। फिर जब संध्या का समय हो गया तो उसने दिनान्त में होने वाले उचित कर्मों से निवृत्ति प्राप्त की थी और फिर वह राजा सभी ओर से अपने मन्त्रीगण और सचिवों से अनुगत हो गया था ।३८। समीप में वर्त्तमान भृत्यों के करों में अनेक प्रदीप संस्थित थे जिनसे रात्रिका परम गहन अन्धकार शान्त हो गया था। उस समय में राजा अपनी सभा में प्राप्त हो गया था। वहाँ पर वह अपने आसन पर विराजमान हो गया था और सैकड़ों पुरोहित—मन्त्री—सामन्त और नायकों के द्वारा समुपासित हो रहा था ।३९। उस राज सभा में नानाभाँति के विनोदों से वह परम हर्षित होकर बैठा हुआ था जिस तरह देवगणों से

समन्वित सुरेन्द्र होवे । इसके अनन्तर बहुत समय तक अनेक वाद्यों का वादन, आमोद-प्रमोद-नृत्य, और प्रेक्षण में प्रवृत्त हास्यविलास तथा कथाओं के प्रसङ्गों में वह प्रसक्त हो गया था ।४०। वहाँ पर गणिकाजनों के साथ प्रणय प्रवर्धक नर्म वचन-हास-क्रीड़ा और विलास से उसने अपने चित्त की वृत्ति को परितोषित किया था । इस रीति से क्षत्रियों के स्वामी उस राजा ने भिक्षा के अर्धभाग को अत्यधिक रूप से अनेक प्रकार के विहार के वैभव के अनुभवों से व्यतीत किया था ।४१। फिर उस राजा ने अपने अनुगामी नरपतियों को रवाना कर स्वयं भी वह अपने भवन में चला गया था । उससे राजा की सेना के जो सैनिक थे वे सभी उन गृहों में अपने शौर्यवीर्य-सम्पत्-प्रभाव और महिमा के ही अनुकूल प्राप्त करने वाले थे ।४२।

आत्मानुरूपविभवेषु महार्हवस्त्रस्रग्भूषणादिभिरनं
मुदितं बभूव ।
सैन्यानि तानि नृपतेर्विविधान्नपानसद्भक्ष्यभोज्य-
मधुमांसपयोघृताद्यैः ॥४३
तृप्तान्यवात्सुरखिलानि सुखोपभोगैस्तस्यां नरेंद्रपुरि
देवगणा दिवीव ।
एवं तदा नरपतेरनुयायिनस्ते नानाविधोचितसुखानु-
भवप्रतीताः ॥४४
अन्योन्यमूचुरिति गेहधनादिभिर्वा किं साध्यते वयमिहैव
वसाम सर्वे ।
राजापि शार्वरविधानमथो विधाय निर्वर्त्य वासभवने
शयनीयमग्र्यम् ।
अध्यास्य रत्ननिकरैरति शोभि भद्रं निद्रामसेवत नरेंद्र
चिरं प्रतीतः ॥४५

वे सब सैनिक गण अपने स्वरूप के अनुरूप वैभवों में वेश कीमती वस्त्र-स्रक् और भूषण आदि के द्वारा अत्यधिक मुदित हुए थे । उस राजा के सैनिक विविध प्रकार के अन्न-पान-अच्छे भोक्ष्य-भोज्य-मधु-मांस-पय और घृत आदि से परम तृप्त हो गये थे । उस नरेन्द्र की पुरी में जैसे देवगण

स्वर्ण में सब कुछ प्राप्त किया करते हैं उसी भाँति उन्होंने सैनिकों ने भी सुखों के उपभोगों के द्वारा सम्पूर्ण आनन्दप्रद पदार्थों की प्राप्ति की थीं। इस रीति से वे जो उस नृपति के अनुगामी थे वे सब अनेक प्रकार के समुचित सुखों के अनुभव से समाश्वस्त हो गये थे।४४। वे सब परस्पर में एक दूसरे से कह रहे थे कि अपने घर और धन आदि के द्वारा क्या साधन किया जाता है अर्थात् अपने घरों में यहाँ से अधिक क्या यहां के समान भी कोई साधन प्राप्त नहीं होते हैं। हम सब तो अब यहां पर निवास करना चाहते हैं। फिर उस राजा ने भी शर्वरी का जो भी कुछ विधान था उसे पूर्ण करके वह भी अपने निवास के भवन में दिव्य शय्या पर पहुँच गये थे। जो शय्या रत्नों के समुदाय के प्रकाश से अतीव शोभित थी और परमोत्तम थी हे नरेन्द्र! निश्चिन्त होकर चिरकाल पर्यन्त निद्रा के सुख का सेवन किया था।४५।

कार्त्तिकेय द्वारा कामधेनु की मांग

वसिष्ठ उवाच—

स्वपंतमेत्य राजानं सूतमागधबंदिनः।
प्रबोधयितुमव्यग्रा जगुरुच्चैर्निशात्यये ॥१
वीणावेणुरवोन्मिश्रकलतालततानुगम्।
समस्तश्रुतिसुश्राव्यप्रशस्तमधुरस्वरम् ॥२
स्निग्धकंठाः सुविस्पष्टमूर्च्छनाग्रामसूचितम्।
जगुर्गेयं मनोहारि तारमंद्रलयान्वितम् ॥३
ऊचुश्च तं महात्मानं राजानं सूतमागधाः।
स्वपंतं विविधा वाचो बुबोधयिषवः शनैः ॥४
पश्यायमस्तमभ्येति राजेंद्रेन्दुः पराजितः।
विवर्द्धमानया नूनं तव वक्त्रांबुजश्रिया ॥५
द्रष्टुं त्वदाननांभोजं समुत्सुक इवाधुना।
तमांसि भिदन्नादित्यः संप्राप्तो ह्युदयं विभो ॥६
राजन्नखिलशीतांशुवंशमौलिशिखामणे।
निद्रापालं महाबुद्धे प्रतिबुध्यस्व सांप्रतम् ॥७

वसिष्ठ जी ने कहा—जिस समय में राजा शयन कर रहे थे और प्रातःकालीन गाने का समय हो गया था। तो सूत—मागध और बन्दीगण वहाँ पर आकर उपस्थित हो गये थे। निशा के अवमान में उन्होंने अव्यग्र होते हुए राजा को प्रबोध कराने के लिये समुच्च स्वर से गायन किया था।१। वह उनका गान वीणा-वेणु की ध्वनि से मिला हुआ मधुर और ताल के विस्तार के अनुरूप था तथा समस्तों के श्रवण करने में सुश्राव्य था और परम प्रशस्त एवं मधुर स्वर वाला था।२। उनका कण्ठ बहुत ही स्निग्ध था। ऐसे उन्होंने विशेष रूप से सुस्पष्ट मूर्च्छना और ग्राम से संयुत था। तार (अत्युच्च) और मन्द्र लब से समन्वित बहुत ही मन को हरण करने वाला गान उन्होंने गाया था।३। राजा को जगाने की इच्छा रखने वाले उन सूतों और मागधों ने सोते हुए उस महान् आत्मा वाले राजा से धीरे-धीरे कहा था।४। हे राजेन्द्र ! इस समय में यह चन्द्र पराजित होकर अस्त को प्राप्त हो रहा है क्योंकि आपकी बढ़ी हुई मुख कमल की शोभा से इसका पराजय हो गया है। अब आप प्रबुद्ध होकर इसका अवलोकन कीजिए।५। हे विभो ! इस समय में आपके मुख कमल को देखने के लिये बहुत ही उत्सुक की भाँति अन्धकारों का भेदन करता हुआ सूर्य देव उदय को प्राप्त हो गये हैं।६। हे राजन् ! आप तो समस्त चन्द्र वंश के प्रमुखों में भी सर्व शिरोमणि हैं। अब आप अपनी निद्रा का त्याग कर जाग्रत हो जाइये।

इति तेषां वचः शृण्वन्नबुध्यत महीपतिः।
क्षीराब्धौ शेषशयनाद्यथापंकजलोचनः ॥८
विनिद्राक्षः समुत्थाय कर्म नैत्यकमादरात्।
चकारावहितः सम्यग्जयादिकमशेषतः ॥९
देवतामभिवंद्येष्टां यां दिव्यस्रग्गंधभूषणः।
कृत्वा दूर्वांजनादर्शमंगल्यालम्बनानि च ॥१०
दत्त्वा दानानि चार्थिभ्यो नत्वा गोब्राह्मणानपि।
निष्क्रम्य च पुरात्तस्मादुपतस्थे च भास्करम् ॥११
तावदभ्याययुः सर्वे मंत्रिसामंतनायकाः।
रचितांजलयो राजन्नेमुश्च नृपसत्तमम् ॥१२
ततः स तैः परिवृतः समुपेत्य तपोनिधिम्।

ननाम पादयोस्तस्य किरीटेनार्कवर्चसा ।।१३
आशीर्भिरभिनंद्याथ राजानं मुनिपुंगवः ।
प्रश्रयावनतं साम्ना समुवाचास्यतामिति ।।१४

इस प्रकार के उन मागध बन्दियों के वचनों का श्रवण करके वह महीपति क्षीर सागर में शेषभाग की शय्या के पंकज लोचन भगवान् नारायण के समान ही प्रति बुद्ध हो गये थे ।८। निद्रा से रहित नेत्रों वाला होकर फिर उस नृपति ने परम सावधान होते हुए जय आदिक जो सम्पूर्ण दैनिक कर्म थे उनको किया था और बहुत ही समादर पूर्वक सम्पन्न किये थे ।९। फिर उस राजा ने अपने अभीष्ट गौ देवता की अभिवन्दना करके वह स्वयं दिव्य गन्ध-माला और भूषणों से समन्वित हुआ था और समस्त माङ्गल्य दूर्वा-अञ्जन और आदर्श आदि अवलम्बनों को ग्रहण किया था ।१०। उसने लोभी याचकगण वहाँ पर समुपस्थित हुए थे उनको दान दिया था—गौ और ब्राह्मणों को प्रणाम किया था तथा उस पुर से बाहिर निकल कर भगवान् भुवन भास्कर का उपस्थान किया था ।११। उसी समय में तब तक सभी मन्त्री, समस्त और नायक वहाँ पर आ गये थे । उन्होंने अपनी करों की अञ्जलियों को जोड़कर हे राजन् ! उस नृपों में श्रेष्ठ के लिए अभिवादन किया था ।१२। इसके उपरान्त उन सबके साथ सबसे संयुत वह राजा तप के निधि मुनिवर के समीप में उपस्थित हुआ था और अपने मस्तक को झुकाकर निज शिर पर सूर्य के वर्चस वाला किरीट पहिने हुए था महामुनि के चरणों में प्रणिपात किया था ।१३। मुनियों में परम श्रेष्ठ उस मुनीन्द्र ने इसके अनन्तर आशीर्वादों के द्वारा राजा का अभिनन्दन किया था और जो विनम्रता से नीचे की ओर अवनत हो रहा था उस राजा से परम शान्ति पूर्ण वचन से कहा था आप यहाँ पर बैठ जाइये ।१४।

तमासीनं नरपतिं महर्षिः प्रीतमानसः ।
उवाच रजनी व्युष्टा सुखेन तव किं नृप ।।१५
अस्माकमेव राजेन्द्रवने वन्येन जीवताम् ।
शक्यं मृगसधर्माणां येम केनापि वर्त्तितुम् ।।१६
अरण्ये नागराणां तु स्थितिरत्यंतदुःसहा ।
अनभ्यस्तं हि राजेन्द्र ननु सर्वं हि दुष्करम् ।।१७

वनवासपरिक्लेशं भावान्यत्सानुगोऽसकृत् ।
आप्तस्तु भवतो नूनं सा गौरवसमुन्नतिः ॥१८
इत्युक्तस्तेन मुनिना स राजा प्रीतिपूर्वकम् ।
प्रहसन्निव तं भूयो वचनं प्रत्यभाषत ॥१९
ब्रह्मन्किमनया ह्युक्त्या दृष्टस्ते यादृशो महान् ।
अस्माभिर्महिमा येन विस्मितं सकलं जगत् ॥२०
भवत्प्रभावसंजातविभवाहृतचेतसः ।
इतो न गंतुमिच्छंति सैनिका मे महामुनि ॥२१

जब राजा वहाँ पर आसीन हो गये थे तब बड़े ही प्रीतियुक्त मन वाले महर्षि ने उस नरपति से कहा था—हे नृप ! कहिए क्या आपकी रात्रि तो सुख पूर्वक व्यतीत हुई है ? ।१५। हे राजेन्द्र ! इस वन में पशु के ही समान धर्म वाले हमारा तो वन में समुत्पन्न वस्तुओं से ही जीवन यापन होता है और जिस-किसी भी प्रकार से वृत्ति की जा सकती है ।१६। ऐसे महारण्य में जो नगरों में निवास करने वाले हैं उनकी स्थिति तो बहुत ही दुःसह हुआ करती है । हे राजन् ! कारण यही है कि नागरिक पुरुषों का ऐसे अरण्य-जीवन का सभी कभी अभ्यास नहीं होता है और यह सब महान कठिन ही होता है ।१७। आपने इस वनवास के परिक्लेश को अपने समस्त अनुगामियों के साथ में अनेक बार प्राप्त किया है । निश्चय ही आपके लिए यह गौरव ही समुन्नति है ।१८। इस रीति से जब यह उस राजा से मुनिवर ने कहा था तो उस राजा ने प्रीति के साथ कुछ मुस्कराते हुए पुनः उस मुनिवर को इसका उत्तर दिया था ।१९। राजा ने मुनिवर से कहा था—हे ब्रह्मन् ! आपको इस उक्ति से क्या है अर्थात् आपने जो यह कथन किया है उसका क्या अभिप्राय है समझ में नहीं आता है । हम लोगों ने तो आपकी जो महान् महिमा स्वयं अपने नेत्रों से देखी है वह तो परम अद्भुत है और उससे तो सम्पूर्ण जगत को ही बड़ा विस्मय होता है ।२०। हे महामुने ! आपके तप के प्रभाव से जो यहाँ पर महान वैभव समुत्पन्न हुआ है उससे प्रभावित चित्त वाले ये मेरे सभी सैनिक तो यहाँ से अन्यत्र गमन करने की इच्छा नहीं करते हैं ।२१।

त्वादृशानां जगंतीह प्रभावैस्तपसां विभो ।
ध्रियंते सर्वदा नूनमचिंत्यं ब्रह्मवर्चसम् ॥२२

नैव चित्रं तव विभो शक्नोति तपसा भवान् ।
ध्रुवं कर्त्तुं हि लोकानामवस्थात्रितयं क्रमात् ॥२३
सुदृष्टा ते तपः सिद्धिर्महती लोकपूजिता ।
गमिष्यामि पुरीं ब्रह्मन्ननुजानातु मां भवान् ॥२४
वसिष्ठ उवाच—
इत्युक्तस्तेन स मुनिः कार्त्तवीर्येण सादरम् ।
संभावयित्वा नितरां तथेति प्रत्यभाषत ॥२५
मुनिना समनुज्ञातो विनिष्क्रम्य तदाश्रमात् ।
सैन्यैः परिवृतः सर्वैः संप्रतस्थे पुरीं प्रति ॥२६
स गच्छंश्चिंतयामास मनसा पथि पार्थिवः ।
अहोऽस्य तपसः सिद्धिर्लोकविस्मयदायिनी ॥२७
यया लब्धेदृशी धेनुः सर्वकामदुहां वरा ।
किं मे सकलराज्येन योगद्धर्या वाप्यनल्पया ॥२८

हे विभो ! इस जगती तल में आप जैसे महा पुरुषों के तपों के प्रभावों से ही निश्चित रूप से सर्वदा ब्राह्मणों के वर्चस् को नित्य ही धारण किया करते हैं ।२२। हे विभो ! इसमें कुछ भी विचित्रता नहीं है । आप अपने तप के द्वारा लोकों की क्रम से तीनों अवस्थाओं को ध्रुवकर सकते हैं ।२३। हमने आपको लोकों में पूजित महान् तप की सिद्धि भली भाँति देखली हैं । हे ब्रह्मन् ! मैं अब अपनी नगरी में जाऊँगा अतः आप मुझे गमन करने के लिए अपना आदेश प्रदान कीजिए ।२४। वसिष्ठ जी ने कहा—जल कार्त्त-वीर्य राजा के द्वारा जब इस प्रकार से उन महामुनि से सादर प्रार्थना की गयी थी तो मुनि ने बहुत कुछ सत्कार करके यही उत्तर दिया था कि यदि आप जाना ही चाहते हैं तो स्वेच्छया गमन कीजिए ।२५। उस महामुनि से अनुज्ञा प्राप्त करने वाले राजा ने उनके आश्रम से बाहिर निकल कर समस्त सेनाओं से परिवृत होते हुए अपनी पुरी की ओर प्रस्थान कर दिया था ।२६। मार्ग में गमन करने के समय में उस राजा ने अपने मन में विचार किया था कि ओहो ! इस मुनि को तपश्चर्या को कैसी अद्भुत शक्ति है जो सभी लोकों को विस्मय देने वाली है ।२७। जिस तपश्चर्या की सिद्धि से ऐसी

समस्त इच्छाओं की पूर्ति करने वाली धेनुओं से भी परमश्रेष्ठ धेनु प्राप्त की है। इस मेरे सम्पूर्ण राज्य के महान् वैभव से भी क्या हो सकता है और अनल्प योग की ऋद्धि से भी कुछ नहीं हो सकता है। अर्थात् इस मेरे महान् विशाल राज्य का वैभव तथा योग द्वारा ऋद्धि का वैभव भी इसके सामने तुच्छ है।२८।

गोरत्नभूता यदियं धेनुर्मुनिवरे स्थिता ।
अनयोत्पादिता नूनं संपत्स्वर्गसदामपि ॥२९
ऋद्धमैंद्रमपि व्यक्तं पदं त्रैलोक्यपूजितम् ।
अस्या धेनोरहं मन्ये कलां नार्हति षोडशीम् ॥३०
इत्येवं चिंतयानं तं पश्चादभ्येत्य पार्थिवम् ।
चन्द्रगुप्तोऽब्रवीन्मंत्री कृतांजलिपुटस्तदा ॥३१
किमर्थं राजशार्दूल पुरीं तिगमिष्यसि ।
रक्षितेन च राज्येन पुर्या वा किं फलं तव ॥३२
गोरत्नभूता नृपतेर्यावद्धेनुर्न चालये ।
वर्त्तते नार्द्धमपि ते राज्यं शून्य तव प्रभो ॥३३
अन्यच्च दृष्टमाश्चर्यं मया राजञ्छृणुष्व तत् ।
भवनानि मनोज्ञानि मनोज्ञाश्च तथा स्त्रियः ॥३४
प्रसादा विविधाकारा धनं चादृष्टसंक्षयम् ।
धेनौ तस्यां क्षणेनैव विलीनं पश्यतो मम ॥३५

कारण यही है कि समस्त धेनुओं में रत्न के सदृश यह धेनु इस मुनिवर के समीप में संस्थित है। इसके ही द्वारा स्वर्ग में निवास करने वालों की भी सम्पदा उत्पादित की गयी है यह निश्चित है।२९। यह माना जाता है कि महेन्द्र का पद अर्थात् स्थान परम ऋद्धियों से परिपूर्ण है तथा यह तीनों लोकों में पूजित होता है क्योंकि सर्वतोभाव से यह परम समृद्ध होता है किन्तु मैं तो ऐसा मानता हूँ कि वह इन्द्र का वैभव भी इस धेनु की शक्ति से समुत्पादित वैभव के सामने सोलहवाँ भाग भी नहीं है।३०। राजा इसी प्रकार से अपने मन में चिन्तन कर रहा था उस राजा के पीछे से आकर मन्त्री चन्द्रगुप्त ने उस समय में हाथ जोड़कर उस राजा से कहा था।३१। हे राज शार्दूल ! आप किस लिए अपनी पुरी की ओर गमन कर रहे हैं ?

आपका राज्य और पुरी तो परम सुरक्षित है अतः वहाँ पर पुरी में गमन करने से क्या फल होगा ? अर्थात् इसी समय वहाँ गमन व्यर्थ ही है ।३२। हे प्रभो ! यह रत्नभूता गौ जब तक आप सरीखे राजा के घर में न होवे तब तक आपका सम्पूर्ण राज्य इसके वैभव के सामने आधा भी नहीं है और यों ही कहना उचित है कि आपका पूरा राज्य एक प्रकार से शून्य ही है ।३३। हे राजन् ! मैंने एक और भी महान् आश्चर्य देखा था, उसका भी आप श्रवण कीजिए । उस धेनु ने अपनी अद्भुत शक्ति से बड़े-बड़े मनोज्ञ भवन समुत्पादित किये थे वे सब और परम सुन्दरी स्त्रियाँ जो थीं तथा अनेक भाँति के आकार-प्रकार वाले जो महल अर्थात् विशाल भवन थे एवं जो कभी भी क्षीण होने वाला नहीं देखा गया था वह धन सभी कुछ एक ही क्षण में उसी धेनु में मेरे देखते-देखते विलीन हो गये थे ।३४-३५।

तत्तपोवनमेवासीदिदानी राजसत्तम ।
एवंप्रभावा सा यस्य तस्य किं दुर्लभं भवेत् ।।३६

तस्माद्रत्नार्हसत्त्वेन स्वीकर्त्तव्या हि गौस्त्वया ।
यदि तेऽनुमतं कृत्यमाख्येयमनुजीविभिः ।।३७

राजोवाच—एवमेवाहमप्येनां न जानामीत्यसांप्रतम् ।
ब्रह्मस्वं नापहर्त्तव्यमिति मे शङ्कते मनः ।।३८

एवं ब्रुवंतं राजानमिदमाह पुरोहितः ।
गर्गो मतिमतां श्रेष्ठो गर्हयन्निव भूपते ।।३९

ब्रह्मस्वं नापहर्त्तव्यमापद्यपि कथंचन ।
ब्रह्मस्वसदृशं लोके दुर्जरं नेह विद्यते ।।४०

विषं हंत्युपयोक्तारं लक्ष्यभूतं तु हैहय ।
कुलं समूलं दहति ब्रह्मस्वारणिपावकः ।।४१

अनिवार्यमिदं लोके ब्रह्मस्वं दुर्जरं विषम् ।
पुत्रपौत्रान्तफलदं विपाककटु पार्थिव ।।४२

हे श्रेष्ठ राजन् ! इस समय में वही तपोवन था जिसमें इस रीति के प्रभाव वाली वह धेनु विद्यमान है । उस व्यक्ति को इस जगत् में क्या पदार्थ दुर्लभ है अर्थात् उस को कुछ भी दुर्लभ नहीं होता है ।३६। इस कारण से आप तो सभी रत्नों के रखने के योग्य बल-विक्रय वाले हैं । आपको यह गौ

स्वीकार करनी चाहिए अर्थात् उस धेनु को आप ग्रहण कर लीजिए। यदि यह कार्य आपको पसन्द हो तो इसको अपने अनुजीवियों के द्वारा कहला देना चाहिए।३७। इस प्रकार से मैं भी इसको नहीं जानता हूँ। किन्तु यह सब आपका कथन अयुक्त है। चाहे कितनी ही आपत्ति क्यों न उपस्थित हो जावे, ऐसे आपत्काल में भी ब्राह्मणों के धन का कभी भी आहरण नहीं करना चाहिए। मेरा मन परम शङ्कित रहा करता है।३८। इस रीति से जिस समय में राजा कह रहा था उस समय में राजा के पुरोहित ने राजा से यह कहा था—हे भूपते! मतिमानों में परम श्रेष्ठ गर्ग मुनि ने ऐसे कर्म की निन्दा करते हुए यही कहा था।३९। आपत्ति काल में भी कभी ब्राह्मणों के धन का किसी भी तरह से अपहरण नहीं करना चाहिए। इस लोक में ब्रह्मस्व के समान अन्य कुछ भी दुजर अर्थात् बुरा कर्म नहीं होता है।४०। हे हैहय! विष भी मारक होता है किन्तु वह अपने उपभोक्ता को ही जो कि उसका लक्ष्य भूत है मारता है किन्तु ब्राह्मणों का धन रूपी पावक मूल के सहित सम्पूर्ण कुल को भस्मीभूत कर दिया करता है।४१। हे पार्थिव! लोक में यह बड़ा भारी आश्चर्य से संयुत है कि ब्रह्मस्व अनिवार्य रूप से महान् दुर्जर विष है। यह तो केवल ग्रहण करने वाले को ही नहीं प्रत्युत उसके सभी पुत्र-पौत्र आदि का विनाश कर देने वाला है और विपाक में महान कटु होता है।४२।

ऐश्वर्यमूढं हि मनः प्रभूणामसदात्मनाम् ।
किन्नामासन्न कुरुते नेत्रासन्निप्रलोभितम् ।।४३
वेदान्यस्त्वामृते कोऽन्यो विना दानान्नृपोत्तम ।
आदानं चिंतयानो हि ब्राह्मणेष्वभिवाञ्छति ।।४४
ईदृशंत्वं महाबाहो कर्म सज्जननिंदितम् ।
मा कृथास्तद्धि लोकेषु यशोहानिकरं तव ।।४५
वंशे महति जातस्त्वं वदान्यानां महीभुजाम् ।
यशांसि कर्मणानेन सांप्रतं मा व्यनीनशः ।।४६
अहोऽनुजीविनः किञ्चिद्भर्तारं व्यसनार्णवे ।
तत्प्रसादसमुन्नद्धा मज्जयंत्यनयोन्मुखाः ।।४७
श्रिया विकुर्वन्पुरुषकृत्याचिंत्ये विचेतनः ।

तन्मतानुप्रवृत्तिश्च राजा सद्यो विषीदति ॥४८

अज्ञातसुनयो मंत्री राजानमनयांबुधौ ।
आत्मना सह दुर्बुद्धिर्लोहनौरिव मज्जयेत् ॥४९

असत् आत्माओं वाले प्रभुओं का मन ऐश्वर्य की वृद्धि करने में महान् मूढ़ हुआ करता है । वे बहुधा नेत्रों से बुरे कर्मों को देखते हुए भी विशेष रूप से प्रलोभित उनका मन क्या-क्या असत् कर्म नहीं किया करता है अर्थात् ऐसे बहुत से बुरे कर्म हैं जिनको उनका मन करने में थोड़ा भी शङ्कित नहीं होकर किया करता है ।४३। हे उत्तम नृप ! आपको छोड़कर अन्य ऐसा कौन है जो यह नहीं जानता है कि ब्राह्मणों को तो अपनी ओर से दान ही दिया जाता है । दान के देने के अतिरिक्त उनसे कुछ ग्रहण करना ब्राह्मणों के विषय में चाहता हो । तात्पर्य यही है कि आप ब्राह्मणों को दान देने के महत्व को भली भाँति जानते हैं और उनसे किसी वस्तु का ग्रहण नहीं किया जाता है यह भी अच्छी तरह से समझते हैं—इस विषय में आपके समान अन्य कोई भी ज्ञाता नहीं है ।४४। हे महान् बाहुओं वाले ! आप तो इस तरह के पूर्ण ज्ञाता महा पुरुष हैं । फिर ऐसे सज्जनों के द्वारा विशेष निन्दित ऐसे कर्म को कभी मत करिए क्योंकि ऐसा बुरा कर्म लोक में आपके सुयश की हानि के ही करने वाला होगा ।४५। हे राजन् ! आप महान् दानी राजाओं के वंश में समुत्पन्न हुए हैं । अतएव आपका विशाल यश है । अब इस असत् कर्म के द्वारा अपने यश का विनाश मत करिये ।४६। अहो ! अर्थात् बड़े ही आश्चर्य की बात तो यह है कि ये अनुजीवी लोग जोकि अपने ही स्वामी के परम प्रसाद से समुच्च हो गये हैं वे ऐसी अनीति की ओर उन्मुख हो रहे हैं कि वे उसी अपने स्वामी व्यसनों के सागर में डुबा रहे हैं ।४७। श्री सम्पन्नता होने के कारण से ऐसा मनुष्य ज्ञान शून्य हो गया है कि अचिन्तनीय पुरुष के कृत्य को भी करने के लिये उतारू हो जाता है । ऐसे मनुष्यों के मत के अनुसार प्रवृति रखने वाला राजा तुरन्त ही दुःखों को भोगा करता है ।४८। जो मन्त्री सुन्दर नीति को नहीं जानता है वह दुष्ट बुद्धि वाला मन्त्री लोहे की नौका की ही भाँत अपने राजा को भी अनीति को सागर में निमग्न करा दिया करता है ।४९।

तस्मात्त्वं राजशार्दूल मूढस्य नयवर्त्मनि ।
मतमस्य सुदुर्बुद्धेर्नानुवर्त्तितुमर्हसि ॥५०

एवं हि वदतस्तस्य स्वामिश्रेयस्करं वचः ।
आक्षिप्य मन्त्री राजानमिदं भूयो ह्यभाषत ।।५१
ब्राह्मणोऽयं स्वजातीयहितमेव समीक्षते ।
महांति राजकार्याणि द्विजैत्तु न शक्यते ।।५२
राज्ञैव राजकार्याणि वेद्यानि स्वमनीषया ।
विना वै भोजनादाने कार्यं विप्रो न विंदति ।।५३
ब्राह्मणो नावमंतव्यो वंदनीयश्च नित्यशः ।
प्रतिसंग्रहणीयश्च नाधिकं साधितं क्वचित् ।।५४
तस्मात्स्वीकृत्य तां धेनुं प्रयाहि स्वपुरं नृप ।
नोचेद्राज्यं परित्यज्य गच्छत्व तपसे वनम् ।।५५
क्षमावत्वं ब्राह्मणानां दण्डः क्षत्रस्य पार्थिव ।
प्रसह्य हरणे वापि नाधर्मस्ते भविष्यति ।।५६

इस कारण से हे राजशार्दूल ! आप इस मूढ के न्याय मार्ग में मत चलिए और इस दुष्ट बुद्धि वाले मन्त्री के मत के अनुसार असत् करने के लिये आप कभी भी योग्य नहीं होते हैं ।५०। इस रीति से अपने स्वामी के कल्याण करने वचनों को जब वह पुरोहित कह रहा था तो उसकी बात को काट कर वह मन्त्री फिर राजा से यह बोला था ।५१। हे राजन् ! यह पुरोहित तो जाति का ब्राह्मण है और यह सर्वदा अपनी ही जाति का हित चाहा करता है । राजा के कार्य तो बहुत महान् हुआ करते हैं जो कि विप्रों के द्वारा कभी भी जाने नहीं जा सकते हैं ।५२। राजाओं के कार्य तो राजा के ही द्वारा जानने के योग्य हुआ करते हैं । विप्र केवल भोजन और दान ग्रहण के अतिरिक्त अपनी बुद्धि से अन्य नृपोचित कार्य को नहीं जानता है ।५३। मैं ब्राह्मणों की किसी भी रीति से निन्दा नहीं करता हूँ प्रत्युत मेरा यही मत है कि कभी भी ब्राह्मण का अपमान नहीं करना चाहिए और ब्राह्मण की नित्य ही वन्दना करनी चाहिए । इसका प्रति संग्राहण भी करना उचित है किन्तु इसके द्वारा कहीं पर भी किसी कार्य को साधित नहीं करे ।५४। हे नृप ! इस कारण से आप उस मुनि की होमधेनु को स्वीकार करके अर्थात् अपने अधिकार में लेकर ही फिर अपने नगर में गमन करिए । यदि यह कार्य नहीं करना चाहते हैं और ऐसे अद्भुत पदार्थ का भी त्याग कर

रहे हैं तो फिर सभी राज पाट को त्याग कर तप करने को वन में ही चले जाइए और पूर्ण त्यागी बन जाइए ।५५। इस प्रकार से क्षमावान् होना तो ब्राह्मणों का ही धर्म होता है। हे राजन् ! क्षत्रिय का धर्म तो दण्ड देना है। यदि बल पूर्वक भी उस धेनुरत्न का अपहरण करते हैं तो इसके करने में भी आपका कोई अधर्म नहीं होगा ।५६।

प्रसह्य हरणे दोषं यदि संपश्यसे नृप ।
दत्त्वा मूल्यं गवाश्वाद्यमृषेर्धेनुः प्रगृह्यताम् ॥५७
स्वीकर्तव्या हि सा धेनुस्त्वया त्वं रत्नभाग्यतः ।
तपोधनानां हि कुतो रत्नसंग्रहणादरः ॥५८
तपोधनबलः शांतः प्रीतिमान्स नृप त्वयि ।
तस्मात्ते सर्वथा धेनुं याचितः संप्रदास्यति ॥५९
अथ वा गोहिरण्याद्यं यदन्यदभिवाञ्छितम् ।
संगृह्य वित्तं विपुलं धेनुं तां प्रतिदास्यति ॥६०
अनुपेक्ष्यं महद्रत्नं राज्ञा वै भूतिमिच्छता ।
इति मे वर्त्तते बुद्धिः कथं वा मन्यते भवान् ॥६१
राजोवाच—गत्वा त्वमेव तं विप्रं प्रसाद्य च विशेषतः ।
दत्त्वा चाभीप्सितं तस्मै तां गामानय मंत्रिक ॥६२
वसिष्ठ उवाच—
एवमुक्तस्ततो राज्ञा स मंत्री विधिचोदितः ।
निवृत्य प्रययौ शीघ्रं जमदग्नेरथाश्रमम् ॥६३

हे नृप ! आप यदि बलात् उस धेनुरत्न के अपहरण करने में कोई दोष और अधर्म ही देखते हैं तो आप इसके बदले में अन्य गौ तथा अश्व आदि मूल्य के रूप में मुनि को देकर ऋषि की उस धेनु का ग्रहण कर लीजिए ।५७। मेरे इस सम्पूर्ण निवेदन करने का निष्कर्ष यही है कि आपके द्वारा उस धेनु को स्वीकार कर ही लेना चाहिए अर्थात् किसी भी रीति से उसको अपने अधिकार में ले ही लेना उचित है। इसका कारण यही है कि आप तो ऐसे रत्नों का सेवन करने वाले हैं। जो तप को ही अपना धन माना करते हैं ऐसे तपस्वियों को ऐसे रत्नों के संग्रहण करने का समादर

कहीं भी नहीं होता है ।५८। वह तपोधन धन वाला ऋषि तो परम शान्त स्वभाव वाला है और हे नृप ! वह आप में प्रीति रखने वाला भी है । इस कारण से जब भी आपके द्वारा याचना उससे की जायगी तो वह सब प्रकार से उस धेनु को दे देगा ।-६। अथवा यह भी होसकता है कि वह कुछ अधिक इच्छा रखता होवे तो अन्य गौ और सुवर्ण आदि जो-जो भी उसका अभी-प्सित हो वह बहुत-सा धन एकत्रित करके उसको दे दिया जावे तो वह इस सबके बदले में उस धेनु का प्रतिदान अवश्य ही कर देगा ।६०। मेरी बुद्धि तो यही है कि भूति की अभिलाषा रखने वाले राजा के द्वारा ऐसे महान् रत्न की कभी भी उपेक्षा नहीं करनी चाहिए । आप इस विचारणीय विषय में कैसा अपना मत रखते हैं ? ।६१। राजा ने मन्त्री के मत का श्रवण करके कहा था--हे मन्त्रिन् ! आप ही वहाँ गमन कीजिए और विशेष रूप से उस विप्र को प्रसन्न कीजिए तथा जो भी कुछ उसका अभिवाञ्छित हो उस सबको उसे प्रदान करके उस धेनु को यहाँ पर ले आइए ।६२। वसिष्ठजी ने कहा---इस रीति से जब राजा के द्वारा कहा गया था तो वह मन्त्री भाग्य के विधान से प्रेरित होकर शीघ्र ही वापिस होकर जमदग्नि मुनि के आश्रम में चला गया था ।६३।

गते तु नृपतौ तस्मिन्नक्षतव्रणसंयुतः ।
समिदानयनार्थाय रामोऽपि प्रययौ वनम् ।।६४
ततः स मंत्री सबलः समासाद्य तदाश्रमम् ।
प्रणम्य मुनिशार्दूलमिदं वचनमब्रवीत् ।।६५

चन्द्रगुप्त उवाच--

ब्रह्मन्नृपतिनाऽऽज्ञप्तं राजा तु भुवि रत्नभाक् ।
रत्नभूता च धेनुः सा भुवि दोग्ध्रीष्वनुत्तमा ।।६६
तस्माद्रत्नं सुवर्णं वा मूल्यमुक्त्वा यथोचितम् ।
आदाय गोरत्नभूतां धेनुं मे दातुमर्हसि ।।६७

जमदग्निउवाच--

होमधेनुरियं मह्यं न दातव्या हि कस्यचित् ।
राजा वदान्यः स कथं ब्रह्मस्वमभिवाञ्छति ।।६८

मंत्र्युवाच–

रत्नभाक्त्वेन नृपतिर्द्धेनुं ते प्रतिकांक्षति ।

गवायुतेन तस्मात्त्वं तस्मै तां दातुमर्हसि ।।६९

उस राजा के आश्रम से अपने पुर को ओर चले जाने पर राम भी आकृत व्रण के ही साथ में समिधाओं के लाने के लिए वन में चला गया था ।६४। इसके अनन्तर वह चन्द्रगुप्त नामधारी मन्त्री अपनी सेना के सहित जमदग्नि मुनि के आश्रम में पहुँच कर उसने मुनियों में शार्दूल के समान जमदग्नि के चरणों में प्रणाम करके वह वचन कहे थे ।६५। चन्द्रगुप्त ने कहा—हे ब्रह्मन् ! नृपति ने यह आज्ञा प्रदान की है कि इस भूमण्डल में राजा ही रत्नों का सेवन करने वाला होता है। इस भूमि में समस्त दोहन शील धेनुओं में अतीव उत्तम वह धेनु रत्नभूता है जो कि इस समय में आप के पास है ।६६। इस कारण से आप रत्न अथवा सुवर्ण जो भी समुचित हो उस धेनु का मूल्य बताकर ग्रहण कीजिए और गौओं में जो रत्नभूता धेनु है उसको आप मुझको प्रदान करने के योग्य होते हैं ।६७। जमदग्नि मुनि ने कहा—यह तो मेरी होम धेनु है अर्थात् समस्त होम की सामग्री देने वाली है अतएव मेरे द्वारा यह किसी के लिये भी देने के योग्य नहीं है। यह आपका स्वामी राजा तो बहुत ही बड़ा दानशील है फिर वह किस प्रकार से इस ब्रह्मस्व अर्थात् ब्राह्मण के धन को लेने की इच्छा कर रहा है ? ।६८। मन्त्री ने कहा—क्योंकि नृपति रत्नों का सेवन करने वाला होता है इसी भावना के कारण से वह आपकी रत्नभूता धेनु की आकांक्षा करता है। यों ही बिना किसी मूल्य के नहीं लेना चाहता है। आप दश सहस्र गौओं को ग्रहण करके इस कारण से उस धेनु को उस राजा के लिए देने के योग्य हैं ।६९।

जमदग्निरुवाच–

क्रयविक्रययोर्नाहं कर्त्ता जातु कथंचन ।

हविर्धानीं च वै तस्मान्नोत्सहे दातुमंजसा ।।७०

मंत्र्युवाच–राज्यार्धेनाथ वा ब्रह्मन्सकलेनापि भूभृतः ।

देहि धेनुमिमामेकां तत्ते श्रेयो भविष्यति ।।७१

जमदग्निरुवाच–

जीवन्नाहं तु दास्यामि वासवस्यापि दुर्मते ।
गुरुणा याचितं किं ते वचसा नृपतेः पुनः ।।७२

मंत्र्युवाच—
त्वमेव स्वेच्छया राज्ञे देहि धेनुं सुहृत्तया ।
यथा बलेन नीतायां तस्यां त्वं किं करिष्यसि ।।७३

जमदग्निरुवाच—
दाता द्विजानां नृपतिः स यद्यप्याहरिष्यति ।
विप्रोऽहं किं करिष्यामि स्वेच्छावितरणं विना ।।७४

वसिष्ठ उवाच—
इत्येवमुक्तः संक्रुद्धः सः मंत्री पापचेतनः ।
प्रसह्य नेतुमारेभे मुनेस्तस्य पयस्विनीम् ।।७५

जमदग्नि मुनि ने कहा—भाई, मैं कभी भी किसी भी प्रकार से क्रय और विक्रय के करने वाला नहीं हूँ। वह धेनु तो मेरी हविर्धानी अर्थात् होम के लिये हवि के प्रदान करने वाली है ! इसलिए तुरन्त ही मैं उसको देने का उत्साह नहीं करता हूँ।७०। मन्त्री ने फिर कहा—हे ब्रह्मन् ! आप उस राजा के आधे राज्य को ग्रहण करके अथवा सम्पूर्ण राज्य को लेकर भी इस एक धेनु को दे दीजिए। इससे आपका बहुत बड़ा कल्याण होगा।७१। जमदग्नि ने कहा—हे दुष्ट मति वाले ! मैं जीवित रहते हुए इस राजा की तो बात ही क्या है देवेन्द्र को भी यह धेनु नहीं दूँगा। फिर आपके राजा के बड़े वचन से याचना करना तो सर्वथा व्यर्थ ही है। अर्थात् इससे कुछ भी लाभ नहीं है।७२। मन्त्री ने कहा—आप ही सौहार्द्र की भावना से राजा के लिए उस धेनु को दे दीजिए—यही अच्छा है। और ऐसा आप नहीं करते हैं तो उसको बलपूर्वक ले लेने पर आप क्या करेंगे ?।७३। जमदग्नि मुनि ने कहा—राजा तो ब्राह्मणों के लिए दान प्रदान करने वाला हुआ करता है। वही यदि ब्रह्मस्व का आहरण करता है तो मैं तो विप्र हूँ मैं स्वेच्छा से वितरण करने के बिना उसका क्या करूँगा।७४। वसिष्ठ जी ने कहा—जब इस रीति से उस चन्द्रगुप्त मन्त्री से ऋषि के द्वारा कहा गया तो वह पाप पूर्ण ज्ञान वाला मन्त्री बहुत क्रोधित हो गया था। फिर उसने मुनि की उस पयस्विनी धेनु का बलपूर्वक अपहरण करना आरम्भ कर दिया था।७५।

।। जमदग्नि-वध ।।

वसिष्ठ उवाच--

जमदग्निस्ततो भूयस्तमुवाच रुषान्वितः ।
ब्रह्मस्वं नापहर्त्तव्यं पुरुषेण विजानता ।।१
प्रसह्य गां मे हरतो पापमाप्स्यसि दुर्मते ।
आयुर्जाने परिक्षीणं न चेदेतत्करिष्यति ।।२
बलादिच्छसि यन्नेतुं तन्न शक्यं कथंचन ।
स्वयं वा यदि सायुज्येद्विनशिष्यति पार्थिवः ।।३
दानं विनापहरणं ब्राह्मणानां तपस्विनाम् ।
शतायुषोऽर्जुनादन्यः कोऽन्विच्छति जिजीविषुः ।।४
इत्युक्तस्तेन संक्रुद्धः स मंत्री कालचोदितः ।
बद्ध्वा तां गां दृढैः पाशैर्विचकर्ष बलान्वितः ।।५
जमदग्निरथ क्रोधाद्भाविकर्मप्रचोदितः ।
रुरोध तं यथाशक्ति विकर्षंतं पयस्विनीम् ।।६
जीवन्न प्रतिमोक्ष्यामि गामेनामित्यमर्षितः ।
जग्राह सुदृढं कंठे बाहुभ्यां तां महामुनिः ।।७

श्री वसिष्ठजी ने कहा—पुनः जमदग्नि मुनि ने क्रोध से समन्वित होते हुए उससे कहा था—एक ज्ञानी पुरुष के द्वारा ब्रह्मस्व का कभी भी अपहरण नहीं करना चाहिए ।१। हे दुष्टमति वाले ! बलात् मुझ से मेरी गौ का हरण करके तू महान् पाप को प्राप्त हो जायगा । यदि तू ऐसा ही करेगा तो मैं जानता हूँ कि आयु को परिक्षीण कर रहा है ।२। बल पूर्वक जो इसको लेने को इच्छा कर रहा है वह किसी भी रीति से नहीं किया जा सकेगा । यदि यही करेगा तो तू स्वयं ही सायुज्य को प्राप्त हो जायगा अथवा तेरा राजा विनष्ट हो जायगा ।३। विना दान के तपस्वी ब्राह्मणों की वस्तु का बल से छीन लेना शतायु कार्त्तवीर्यार्जुन के सिवाय अन्य कौन जीवित रहने की इच्छा वाला चाहता है अर्थात् ऐसा कोई भी नहीं चाहा करता है । वह तेरा राजा ही है जो ऐसा करना चाहता है ।४। इस तरह से जब

मुनि के द्वारा उस मन्त्री से कहा गया था तो वह मन्त्री काल से प्रेरित होकर उस दुष्कर्म में प्रवृत्त हो गया था और बल (सेना) से समन्वित उस मन्त्री ने परम सुदृढ़ पाशों से उस होम धेनु को बाँध करके अपने साथ ले जाने के लिये खींचा था ।५। इसके अनन्तर क्रोध से भविष्य में होने वाले कर्म से प्रेरित होते हुए जमदग्नि ने गौ के खींचते हुए उस मन्त्री को अपनी शक्ति को भरपूर लगाकर जैसी शक्ति उनमें थी उसी के अनुसार रोका था ।६। उन्होंने कहा था कि मैं अपने जीते जी इस धेनु को नहीं छोड़ूगा। यह कहते हुए उनको बड़ा क्रोध उत्पन्न हो गया और उस महामुनि ने बड़ी दृढ़ता के साथ अपनी दोनों बाहुओं को उस धेनु क कण्ठ में डालकर उसको बलपूर्वक पकड़ लिया था ।७।

ततः क्रोधपरीतात्मा चन्द्रगुप्तोऽतिनिर्घृणः ।
उत्सारयध्वमित्येनमादिदेश स्वसैनिकान् ।।८
अप्रधृष्यतमं लोके तमृषिं राजकिंकराः ।
भर्त्राज्ञया प्रहृत्यैनं परिवव्रुः समंततः ।।९
दंडै कशाभिर्लगुडैर्विनिघ्नंतश्च मुष्टिभिः ।
ते समुत्सारयन् धेनोः सुदूरतरमंतिकात् ।।१०
स तथा हन्यमानोऽपि व्यथितः क्षमयान्वितः ।
न चुक्रोधाक्रोधनत्वं सतो हि परमं धनम् ।।११
स च शक्तः स्वतपसा संहर्त्तुमपि रक्षितुम् ।
जगत्सर्वं क्षयं तस्य चिन्तयन्न प्रचुक्रुधे ।।१२
स पूर्वं क्रोधनोऽप्यर्थी मातुरर्थे प्रसादितः ।
रामेणाभूत्ततो नित्यं शांत एव महातपाः ।।१३
स हन्यमानः सुभृशं चूर्णितांगास्थिबंधनः ।
निपपात महातेजा धरण्यां गतचेतनः ।।१४

इसके अनन्तर क्रोध से परीत आमा वाले उस अत्यन्त नीच चन्द्रगुप्त ने अपने सैनिकों को आज्ञा दे दी थी कि इस मुनि को बल पूर्वक हटा दो ।८। वह मुनि इस लोक में ऐसे थे कि कोई भी उनको प्रधर्षित नहीं कर सकता था तथापि राजा के किंकरों ने उस ऋषि को अपने स्वामी की आज्ञा

से बलपूर्वक चारों ओर से उसको घेर लिया था। सैनिकों ने सेतु के समीप से बहुत दूर तक उस ऋषि को हटाते हुए उस पर दण्डों से—कशाओं से—लाठियों से—और घूँसों से पीट रहे थे।६-१०। वह ऋषि इस तरह से पीटे और मारे जाने पर भी बहुत व्यथित होकर क्रोध से संयुत तो हो गया भी उसने विशेष क्रोध का भाव प्रकट नहीं किया था क्योंकि वे यह भी जानते थे कि क्रोध का न करना सत्पुरुष का परम धन होता है।११। वह मुनिवर अपने तप के प्रभाव से शत्रु का संहार करने के लिए और अपनी रक्षा करने में भी परम समर्थ थे किन्तु यह सम्पूर्ण जगत् का क्षय है यही विचारते हुए उन्होंने विशेष क्रोध नहीं किया था।१२। वह पूर्वकाल में अत्यधिक क्रोध करने वाले थे किन्तु राम ने अपनी माता के लिए उनको प्रसादित किया था। तभी से फिर वे महान तपस्वी नित्य राम शान्त हो गये थे।३१। वे मुनि बहुत ही अधिक मारे पीटे गये थे उस मार के प्रहारों से उनकी मज्जा की अस्थियों के बन्धन सब चूर्णित हो गये थे। और फिर वह महान् तेज वाले मुनि चेतना शून्य होकर भूमि में गिर गये थे।१४।

तस्मिन्मुनौ निपतिते स दुरात्मा विशंकितः।
किंकरानादिशच्छीघ्रं धेनोरानयने बलात् ॥१५
ततः सवत्सां तां धेनुं बद्ध्वा पशैर्दृढैर्नृपाः।
कशाभिरभिहन्यंत चक्रषुश्च निनीषया ॥१६
आकृष्यमाणा बहुभिः कशाभिर्लगुडैरपि।
हन्यमाना भृशं तैश्च चुक्रुधे च पयस्विनी ॥१७
व्यथितातिकशापातैः क्रोधेन महतान्विता।
आकृष्य पाशान् सुदृढान् कृत्वाऽऽत्मानममोचयत् ॥१८
विमुक्तपाशबंधा सा सर्वतोऽभिवृता बलैः।
हुंहारवं प्रकुर्वाणा सर्वतोऽह्यपतद्रुषा ॥१९
विषाणखुरपुच्छाग्रैरभिहत्य समंततः।
राजमंत्रिबलं सर्वं व्यद्रावयदमर्षिता ॥२०
विद्राव्य किंकरान्सर्वास्तरसैव पयस्विनी।
पश्यतां सर्वभूतानां गगनं प्रत्यपद्यत ॥२१

विशेष शंका से युक्त उस दुष्ट आत्मा वाले ने उस महामुनि के धरणी पर गिर जाने पर अपने किंकरों को आदेश दिया था कि बल पूर्वक बहुत ही शीघ्र उस धेनु का आनयन करें अर्थात् उसको ले जावें ।१५। इसके पश्चात् हे नृप ! वत्स के सहित उस धेनु को परम सुदृढ़ पाशों से बाँधकर चाबुकों के प्रहारों से उसको पीटते हुए ले जाने की इच्छा से वे किंकर उसे खींच रहे थे ।१६। जब बहुत से किंकरगणों के द्वारा वह खींची जा रही थी तथा चाबुकों से और लाठियों से मारी-पीटी जा रही थी तो वह तपस्विनी उनसे बहुत ही क्रोध में भर गयी थी ।१७। अत्यधिक चाबुकों के प्रहार उस पर हुए थे तो वह धेनु बहुत व्यथित हो गयी थी और महान क्रोध से भी समन्वित हो गयी थी फिर उस धेनु ने उस सुदृढ़ पाशों को खींचकर अपने आपको उन से छुड़वा लिया था ।१८। जब पाशों के बन्धन से वह विमुक्त हो गयी थी तो सैनिकों ने सब ओर से घेर लिया था । उस समय में क्रोध से हुंहा की ध्वनि करते हुई वह सभी ओर आक्रमण करने वाली हो गयी थी ।१९। फिर अत्यन्त अमर्षित होकर उसने अपने सभी ओर में विषाण-खुर और पूँछ के अग्रभाग से सम्पूर्ण राजा के मन्त्री की सेना को वहाँ से दूर खदेड़ दिया था ।२०। वह पयस्विनी समस्त किंकरों को वहाँ से दूर भगा कर सबके देखते हुए बड़े ही वेग से अन्तरिक्ष में चली गयी थी ।२१।

ततस्ते भग्नसंकल्पाः संभग्नक्षतविग्रहाः ।
प्रसह्य बद्ध्वा तद्वत्सं जग्मुरेवातिनिर्घृणाः ।।२२
पयस्विनीं विना वत्सं गृहीत्वा किंकरैः सह ।
स पापस्तरसा राज्ञः सन्निधिं समुपागपत् ।।२३
गत्वा समीपं नृपतेः प्रणम्यास्मै प्रशंसकृत् ।
तद्वृत्तांतमशेषेण व्याचचक्षे ससाध्वसः ।।२४

इसके अनन्तर वे सब अपने संकल्पों के भग्न हो जाने वाले हो गये थे और उनके सबके शरीर क्षतों से प्रभग्न हो गये थे । वे अत्यन्त जघन्य बलपूर्वक उस धेनु के वत्स को ही बाँधकर वहाँ से चले गये थे ।२२। फिर वह पापात्मा बना पयस्विनी के उसके वत्स का ग्रहण करके अपने सेवकों के साथ राजा के समीप में समागत हो गया था ।२३। राजा के समीप में गमन करके प्रशंसा करने वाले उसने राजा को प्रणाम किया था और भय से भीत उसने वहाँ का सम्पूर्ण वृत्तान्त राजा के समक्ष मे वर्णित किया था ।२४।

—×—

।। परशुराम की प्रतिज्ञा ।।

वसिष्ठ उवाच–

श्रुत्वैतत्सकलं राजा जमदग्निवधादिकम् ।
उद्विग्नचेताः सुभृशं चिन्तयामास नैकधा ।।१
अहो मे सुनृशंसस्य लोकयोरुभयोरपि ।
ब्रह्मस्वहरणे वाञ्छा तद्धत्या चातिगर्हिता ।।२
अहो नाश्रौषमस्याहं ब्राह्मणस्य विजानतः ।
वचनं तर्हि तां जह्यां विमूढात्मा गतत्रपः ।।३
इति संचितयन्नेव हृदयेन विदूयता ।
स्वपुरं प्रतिचक्राम सबलः साधुगस्ततः ।।४
पुरीं प्रतिगते राज्ञि तस्मिन्सपरिवारके ।
आश्रमात्सहसा राजन्विनिश्चक्राम रेणुका ।।५
अथ सक्षतसर्वाङ्गं रुधिरेण परिप्लुलम् ।
निश्चेष्टं पतितं भूमौ ददर्श पतिमात्मनः ।।६
ततः सा विहतं मत्वा भर्त्तारं गतचेतनम् ।
अन्वाहतेवाशनिना मूर्छिता न्यपतद्भुवि ।।७

श्री वसिष्ठजी ने कहा—राजा कीर्त्तवीर्य यह सम्पूर्ण जमदग्नि मुनि के वध आदि का वृत्तान्त श्रवण करके बहुत ही अधिक उद्विग्न चित्त वाला हो गया था और वह अनेक प्रकार की बातों के विषय में चिन्तन करने लग गया था ।१। अहो ! मैं दोनों ही लोकों में बहुत अधिक क्रूर हो गया हूँ क्योंकि मैंने ब्रह्मस्व के अपहरण करने में अपनी इच्छा की थी और अतीव गर्हित उस मुनि की हत्या का पाप भी मुझे लग गया है ।२। अहो ! मैंने उस ज्ञाता पुरोहित विप्र की बात को नहीं सुना था अर्थात् उसके कथन का पालन नहीं किया था । विमूढ़ आत्मा वाले निर्लज्ज मैंने उसकी वाणी का त्याग कर दिया था ।३। यही सोचते हुए बहुत ही दुःखित हृदय से वह अपनी सेना और अनुगामियों के ही सहित अपने पुर की ओर चल दिया था ।४। उस राजा के पुरी की ओर चले जाने पर जो कि अपने समस्त परिकर के

साथ था, हे राजन् ! रेणुका सहसा अपने आश्रम से निकली थी ।५। इसके पश्चात उस रेणुका ऋषि पत्नी ने सम्पूर्ण अंगों में क्षतों वाले-रुधिर से लथ-पथ-चेष्टा से रहित अर्थात् बेहोश और भूमि पर पड़े हुए अपने पति को देखा था ।६। इसके अनन्तर उस रेणुका अपने भर्त्ता को चेतना से शून्य निहत (मृत) मानकर वज्राघात से चोट खाई हुई के समान मूर्च्छित होकर भूमि पर गिर गयी ।७।

चिरादिव पुनर्भूमेरुत्थायातीव दुःखिता ।
पतिस्त्वोत्थाय सा भूयः सुस्वरं प्ररुरोद ह ।।८
विललाप च सात्यर्थं धरणीधूलिधूसरा ।
अश्रुपूर्णमुखी दीना पतिता शोकसागरे ।।९
हा नाथ प्रिय धर्मज्ञ दाक्षिण्यामृतसागर ।
हा धिगत्यंतशांत त्वं नैव कांक्षेत चेदृशम् ।।१०
आश्रमादभिनिष्क्रांतः सहसा व्यसनार्णवे ।
क्षिप्त्वानाथामगाधे मां क्व च यातोऽसि मानद ।।११
सतां साप्तपदे मैत्रे मुषिताऽहं त्वया सह ।
यासि यत्र त्वमेकाकी तत्र मां नेतुमर्हसि ।।१२
दृष्ट्वा त्वामीदृशावस्थमचिराद्धृदयं मम ।
न दीर्यते महाभाग कठिनाः खलु योषितः ।।१३
इत्येवं विलपंती सा रुदती च मुहुर्मुहुः ।
चुक्रोश रामरामेति भृशं दुःखपरिप्लुता ।।१४

बहुत देर में फिर भूमि से उठकर वह अत्यन्त दुःखित हुई थी और बारम्बार भूमि में उठकर और फिर पछाड़ खाकर गिरती हुई ऊँचे स्वर से उसने रुदन किया था ।८। धरणी की धूल से धूसर होती हुई उसने बहुत ही अधिक विलाप किया था। उसका मुख झर-झर गिरते हुए आँसुओं से संयुत और परम दीन होकर शोक के महान् सागर में निमग्न हो गयी थी ।९। उसने अपने करुण क्रन्दन में कहा था हा नाथ ! आप तो मेरे परमप्रिय थे और आप धर्म के पूर्ण ज्ञाता थे। हे स्वामिन् ! आप दाक्षिण्य रूपी अमृत के महान् सागर थे। हा ! मुझे धिक्कार है आप तो अत्यन्त शान्त स्वरूप

वाले थे किन्तु इस प्रकार से आपने कभी भी काङ्क्षा नहीं की थी ।१०। हे मान प्रदान करने वाले ! अभी-अभी तो आप अपने आश्रम से निकले थे। तुरन्त ही अनाथ मुझको दुःखों के महान् घोर सागर में पटककर आप कहाँ पर चले गये हैं ।११। सत्पुरुषों की सप्तपदी की मित्रता में मुझे अपने ग्रहण किया था अब मैं आपसे उस सप्तपदी के विपरीत मुषित हो रही हूँ कि आपका सहवास मेरा छूट रहा है । जहाँ पर भी आप अकेले जा रहे हैं वहीं पर मुझको भी अपने ही साथ में ले जाने के योग्य आप हैं ।१२। आपको ऐसी मूच्छित एवं मृत दशा में पतित हुओं को देखकर भी तुरन्त ही मेरा हृदय विदीर्ण नहीं हो रहा है—यह क्या बात है । निश्चय ही स्त्रियों का हृदय बहुत ही निष्ठुर होता है ।१३। इस प्रकार से महान् घोर विलाप करती हुई और बार-बार क्रन्दन करती हुई हे राम ! हे राम ! यह कहकर अत्यन्त दुःख में परिप्लुत होकर रुदन कर रही थी ।१४।

तावद्रामोऽपि स वनात्समिद्भारसमन्वितः ।
अकृतव्रणसंयुक्तः स्वाश्रमाय न्यवर्त्तत ।।१५
अपश्यद्भयशंसीनि निमित्तानि बहूनि सः ।
पश्यन्नुद्विग्नहृदयस्तूर्णं प्रापाश्रमं विभुः ।।१६
तमायांतमभिप्रेक्ष्य रुदती सा भृशातुरा ।
नवीभूतेव शोकेन प्रारुदद्रेणुका पुनः ।।१७
रामस्य पुरतो राजन्भर्तृव्यसनपीडिता ।
उभाभ्यामपि हस्ताभ्यामुदरं समताडयत् ।।१८
मार्गे विदितवृत्तांतः सम्यग्रामोऽपि मातरम् ।
कुररीमिव शोकार्त्तां दृष्ट्वा दुःखमुपेयिवान् ।।१९
धैर्यमारोप्य मेधावी दुःखशोकपरिप्लुतः ।
नेत्राभ्यामश्रुपूर्णाभ्यां तस्थौ भूमावधोमुखः ।।२०
तं तथागतमालोक्य रामं प्राहाकृतव्रणः ।
किमिदं भृगुशार्दूल नैतत्त्वय्युपपद्यते ।।२१

तब तक वह राम समिधाओं के भार का वहन करते हुए अकृत व्रण के सहित वन से अपने आश्रम के लिए वापिस आया था ।१५। मार्ग में उस

राम ने किसी आने वाले भय की सूचना देने वाले बहुत से अशकुनों को देखा था और उनको देखते हुए उसका हृदय अधिक उद्विग्न हो रहा था। फिर वह अपने आश्रम में पहुँचा था।१६। उस अपने पुत्र राम को आते हुए देखकर वह रेणुका अत्यन्त आतुर होकर रुदन करने लगी तथा उसका वह शोक नया सा हो गया था और फिर वह दाढ़ मारकर रुदन कर रही थी।१७। हे राजन् ! अपने पुत्र राम के सामने अपने भर्त्ता के वियोग जन्म दुःख से बहुत ही उत्पीड़ित होकर उसने दोनों करों से अपने वक्ष-स्थल को भली भाँति ताड़ित किया था।१८। राम ने भी आते हुए मार्ग में ही यह सब वृत्तान्त जान लिया था और जब उसने अपनी जननी को शोक से अधिक आर्त्त होकर कुररी के समान विलाप-कलाप करती हुई देखा था तो उसको बड़ा ही दुःख प्राप्त हुआ था।१९। राम बहुत ही मेधा सम्पन्न थे उन्होंने धैर्य का सहारा लिया था जो कि उस समय में दुःख और शोक में निमग्न था। उसके दोनों नेत्रों में आँसू भरे हुए थे। वह भूमि पर ही नीचे की ओर मुख करके स्थित हो गया था।२०। उस समय में अकृत व्रण ने राम को उस प्रकार की अवस्था में अवस्थित देखकर राम से कहा था—हे भृगुकुल में शार्दूल के सदृश पुरुष ! यह क्या हो रहा है ? ऐसा शोक मग्न हो जाना आपके लिए उचित प्रतीत नहीं हो रहा है।२१।

न त्वादृशा महाभाग भृशं शोचंति कुत्रचित् ।
धृतिमंतो महांतस्तु दुःखं कुर्वंति न व्यये ॥२२

शोकः सर्वेन्द्रियाणां हि परिशोषप्रदायकः ।
त्यज शोकं महाबाहो न तत्पात्रं भवादृशाः ॥२३

ऐहिकामुष्मिकार्थानां नूनमेकांतरोधकः ।
शोकस्तस्यावकाशं त्वं कथं हृदि नियच्छसि ॥२४

तत्वं धैर्यधनो भूत्वा परिसांत्वय मातरम् ।
रुदतीं बत वैधव्यशंकापहृतचेतनाम् ॥२५

नैवागमनमस्तीह व्यतिक्रांतस्य वस्तुनः ।
तस्मादतीतमखिलं त्यक्त्वा कृत्यं विचिंतय ॥२६

इत्येवं सांत्वमानश्च तेन दुःखसमन्वितः ।
रामः संस्तंभयामास शनैरात्मानमात्मना ॥२७

दुःखशोकपरीता हि रेणुका त्वरुदन्मुहुः ।
त्रिःसप्तकृत्वो हस्ताभ्यामुदरं समताडयत् ॥२८

हे महाभाग ! आपके समान परम धीर और ज्ञान सम्पन्न पुरुष किसी भी दशा में अत्यधिक शोक नहीं किया करते हैं । जो धैर्यशाली महान् पुरुष हुआ करते हैं वे हानि होने पर बहुत दुःख नहीं किया करते हैं ।२२। यह शोक बहुत ही बुरा होता है जो कि समस्त इन्द्रियों का परिपोषण करने वाला है । हे महाबाहो ! अब आप इस शोक का परित्याग कर दीजिए । आपके समान पुरुष शोक करने के पात्र नहीं हुआ करते हैं ।२३। शोक तो निश्चय ही लौकिक और परमार्थिक प्रयोजनों का एकान्त अवरोधक होता है फिर आप अपने हृदय में ऐसे दुःखद शोक को अवकाश क्यों दे रहे हैं ? ।२४। इस कारण से अब आप धैर्य के धन वाले होकर अर्थात् धीरज धारण करके रुदन करती हुई और विधवा होने की विभीषिका से बुद्धि हीन होकर पड़ी हुई अपनी माता को परि सान्त्वना दीजिए ।२५। इस संसार में जो भी वस्तु अतिक्रान्त हो गई है अर्थात् जो प्राणी देह का त्याग कर चल बसा है उसका फिर यहाँ उसी रूप में आगमन कभी भी नहीं होता है । इस कारण से जो कुछ भी व्यतीत हो गया है उस सबका त्याग करके आगे जो भी करने योग्य कृत्य हैं उनका ही परिचिन्तन आप करिए ।२६। इस रीति से उसके द्वारा सान्त्वना दिये हुए राम ने परम दुःख से समन्वित होते हुए भी धीरे-धीरे अपनी ही आत्मा से अर्थात् अपने ही आत्म ज्ञान से अपने आपको संस्तम्भित किया था ।२७। रेणुका तो महान् और परम घोर शोक से घिरी हुई होकर बारम्बार रुदन कर रही थी और उसने अपने दोनों करों से इक्कीस बार अपने वक्षःस्थल को प्रताड़ित किया था ।२८।

तावत्तदंतिकं रामः समभ्येत्याश्रुलोचनः ।
रुदतीमलमंबेति सांत्वयामास मातरम् ॥२९
उवाचापनयन्दुःखाद्भर्तृशोकपरायणाम् ।
त्रिःसप्तकृत्वो यदिदं त्वया वक्षः समाहतम् ॥३०
तावत्संख्यमहं तस्मात्क्षत्त्रजातमशेषतः ।
हनिष्ये भुवि सर्वत्र सत्यमेतद्ब्रवीमि ते ॥३१
तस्मात्त्वं शोकमुत्सृज्य धैर्यमातिष्ठ सांप्रतम् ।
नास्त्येव नूनमायातमतिक्रांतस्य वस्तुनः ॥३२

इत्युक्ता रेणुका तेन भृशं दुःखान्विताऽपि सा ।
कृच्छ्राद्धैर्यं समालंब्य तथेति प्रत्यभाषत ।।३३

ततो रामो महाबाहुः पितुः सह सहोदरैः ।
अग्नौ सत्कर्त्तुमारेभे देहं राजन्यथाविधि ।।३४

भर्तृशोकपरीतांगी रेणुकापि दृढव्रता ।
पुत्रान्सर्वान्समाहूय त्विदं वचनमब्रवीत् ।।३५

इसी बीच में राम ने अपनी जननी के समीप में समुपस्थित होकर अपनी आँखों में भरे हुए अश्रुओं से समन्वित होते हुए रुदन करने वाली रेणुका से कहा था कि धीरज धारण करो—इस तरह से अपनी माता को सान्त्वना दी थी ।२९। अपने स्वामी के वियोग जन्य शोक में डूबी हुई उस माता रेणुका के दुःख को दूर करते हुए उस राम ने कहा था कि आपने जो यह इस समय में इक्कीस बार अपने वक्षःस्थल को प्रताड़ित किया है ।३०। उतनी ही बार संख्या में मैं इस कारण से इस भूमण्डल में सर्वत्र क्षत्रिय जाति का पूर्णरूप से हनन करूँगा—यह मैं आपके समक्ष में पूर्णतया सत्य बोल रहा हूँ अर्थात् इस कार्य में लेशमात्र भी त्रुटि नहीं होगी ।३१। इसलिए अब आप इस शोक का परित्याग करके अपने हृदय में धैर्य धारण कीजिए । यह तो निश्चित बात है कि जो वस्तु यहाँ से चली गयी है उसका पुनः यहाँ पर आगमन नहीं होता है अर्थात् मृत प्राणी फिर कितना ही चाहे शोक-दुःख किया जावे वापिस नहीं आया करता है । अतः फिर इतना अधिक शोक करना व्यर्थ ही है ।३२। उस राम के द्वारा इस प्रकार से समझाई हुई रेणुका असह्य दुःख के भार से समन्वित थी तथापि बड़ी कठिनाई से धैर्य धारण किया था और अब विशेष शोक मैं नहीं करूँगी—अपने पुत्र राम को उत्तर दिया था ।३३। हे राजन् ! इसके उपरान्त राम ने अपने सहोदर भाइयों के साथ विधि पूर्वक अपने पिता के देह को अग्नि में दाह करने के कार्य का आरम्भ किया था ।३४। अपने भर्त्ता के वियोग से समुत्पन्न शोक से परीत अङ्गों वाली तथा परम सुदृढ़ पतिव्रत धर्म से युक्त रेणुका ने भी अपने समस्त पुत्रों को बुलाकर उनसे यह वचन कहा था ।३५।

रेणुकोवाच—अहं वः पितरं पुत्राः स्वर्गतं पुण्यशीलिनम् ।
अनुगंतुमिहेच्छामि तन्मेऽनुज्ञातुमर्हथ ।।३६

असह्यदुःखं वैधव्यं सहमाना कथं पुनः
भर्त्रा विरहिता तेन प्रवर्त्तिष्ये विनिंदिता ॥३७
तस्मादनुगमिष्यामि भर्त्तारं दयितुं मम ।
यथा तेन प्रवर्त्तिष्ये परत्रापि सहानिशम् ॥३८
ज्वलंतमिममेवाग्निं संप्रविश्य चिरादिव ।
भर्तुर्मम भविष्यामि पितृलोकप्रियातिथिः ॥३९
अनुवादमृते पुत्रा भवद्भिस्तत्र कर्मणि ।
प्रतिभूय न वक्तव्यं यदि मत्प्रियमिच्छथ ॥४०
इत्येवमुक्त्वा वचनं रेणुका दृढनिश्चया ।
अग्निं प्रविश्य भर्त्तारमनुगंतुं मनो दधे ॥४१
एतस्मिन्नेव काले तु रेणुकां तनयैः सह ।
समाभाष्याऽतिगंभीरा वागुवाचाशरीरिणी ॥४२

रेणुका ने कहा—हे पुत्रो ! मैं अब आप लोगों के परमाधिक पुण्य शील स्वर्ग में गये हुए पिता का ही मैं अनुगमन यहाँ करना चाहती हूँ सो आप लोग सब मुझे ऐसा करने की आज्ञा देने के लिए योग्य होते हो ।३६। विधवा हो जाने का दुख बहुत ही असह्य होता है उसे सहन करती हुई मैं कैसे-कैसे रहूँगी और अपने स्वामी के विरह वाली विशेष रूप से निन्दित होकर इस संसार में अपना जीवन प्रवृत्त करूँगी ।३७। इस कारण से मैं अपने परम प्रिय स्वामी का अनुगमन करूँगी अर्थात् उनके ही देह के साथ सती हो जाऊँगी जिससे परलोक में भी निरन्तर उनके ही साथ रह सकूँगी ।३८। जलती हुई इसी अग्नि में प्रवेश करके कुछ ही समय में मैं अपने स्वामी की पितृलोक में प्रिय अतिथि बन जाऊँगी ।३९। हे पुत्रो ! यदि आप लोग मेरे अभीप्सित चाहते हैं अर्थात् मेरे प्यारे बनना चाहते हैं तो अनुवाद के बिना उस कर्म में आप लोगों को प्रतिकूल होकर कुछ भी नहीं बोलना चाहिए ।४०। इस रीति से इन वचनों को ही कहकर रेणुका सुदृढ़ निश्चय वाली हो गयी थी तथा अग्नि में प्रवेश करके अपने स्वामी का अनुगमन करने के लिये उसने मन में ठान ली थी ।४१। इसी काल में पुत्रों के सहित रेणुका को सम्बोधित करके अत्यन्त गम्भीर बिना शरीर वाणी अर्थात् अन्तरिक्ष में कही हुई वाणी ने कहा था ।४२।

हे रेणुके स्वतनयैर्गिरं मेऽवहिता शृणु ।
मा कार्षीः साहसं भद्रे प्रवक्ष्यामि प्रियं तव ॥४३
साहसो नैव कर्त्तव्यः केनाप्यात्महितैषिणा ।
न मर्त्तव्यं त्वया सर्वो जीवन्भद्राणि पश्यति ॥४४
तस्माद्धैर्यधना भूत्वा भव त्वं कालकांक्षिणी ।
निमित्तमंतरीकृत्य किंचिदेव शुचिस्मिते ॥४५
अचिरणैव भर्त्ता ते भविष्यति सचेतनः ।
उत्पन्नजीवितेन त्वं कामं प्राप्स्यसि शोभने ।
भवित्री चिररात्राय बहुकल्याणभाजनम् ॥४६
वसिष्ठ उवाच–
इति तद्वचनं श्रुत्वा धृतिमालंब्य रेणुका ।
तद्वाक्यगौरवाद्धर्षमवापुस्तनयाश्च ते ॥४७
ततो नीत्वा पितुर्देहमाश्रमाभ्यंतरं मुनेः ।
शाययित्वा निवाते तु परितः समुपाविशन् ॥४८
तेषां तत्रोपविष्टानामप्रहृष्टात्मचेतसाम् ।
निमित्तानि शुभान्यासन्ननेकानि महांति च ॥४९

हे रेणुके ! परम सावधान होकर अपने पुत्रों के सहित मेरी वाणी का श्रवण करो । हे भद्रे ! तुम साहस मत करो । मैं आपका प्रिय वचन कहूँगा ।४३। अपनी आत्मा के हित की अभिलाषा रखने वाले किसी को भी साहस कभी नहीं करना चाहिए । आपको नहीं मरना चाहिए क्योंकि जो प्राणी जीवित रहता है वह शुभ कर्मों को देखा करता है ।४४। इसलिए आप धैर्य के धन वाली होकर काल की प्रतीक्षा की आकाङ्क्षा वाली होओ । हे शुचि स्मित वाली ! भले ही कुछ ही निमित्त को अन्तरित बनाकर ऐसा करो ।४५। बहुत ही स्वल्प समय में आपके भर्त्ता सचेतन हो जायेंगे अर्थात् जीवित हो जायेंगे । हे शोभने ! जब उनमें जीवन समुत्पन्न हो जायगा तो आपकी कामना पूर्णतया प्राप्त हो जायगी और फिर विशेष अधिक काल पर्यन्त अनेक कल्याणों की भाजन होने वाली होंगी ।४६। वसिष्ठ जी ने कहा– इस प्रकार के उस अन्तरिक्ष वाणी के वचन का श्रवण करके रेणुका ने धैर्य

का आलम्बन ग्रहण किया था। और उसके जो पुत्र थे उन्होंने भी उसके वचनों के गौरव से परम प्रसन्नता प्राप्त की थी।४७। इसके पश्चात् उन्होंने उस मुनि अपने पिता के मृत शरीर को आश्रम को भीतर ले जाकर रख दिया था और उसको वहाँ लिटाकर निवात में वे उसके चारों ओर बैठ गये थे।४८। जिस समय में वे वहाँ पर बहुत ही खिन्न आत्मा और मनों वाले बैठे हुए थे तो उस बेला में उनको बहुत से परम शुभ एवं महान् निमित्त हुए थे। अच्छे शकुन दिखाई दिये थे।४६।

तेन ते किंचिदाश्वस्तचेतसो मुनिपुंगवा: ।
निषेदु: सहिता मात्रा कांक्षंतो जीवितं पितु: ॥५०
एतस्मिन्नंतरे राजन्भृगुवंशधरो मुनि: ।
विधेर्बलेन मतिमांस्तत्रागच्छद्दृच्छया ॥५१
अथर्वणां विधि: साक्षाद्वेदवेदांगपारग: ।
सर्वशास्त्रार्थवित्प्राज्ञ: सकलासुरवंदित: ॥५२
मृतसंजीविनीं विद्यां यो वेद मुनिदुर्लभाम् ।
यथाहतान्मृतान्देवैरुत्थापयति दानवान् ॥५३
शास्त्रमौशनसं येन राज्ञां राज्यफलप्रदम् ।
प्रणीतमनुजीवंति सर्वेऽद्यापीह पार्थिवा: ॥५४
स तदाश्रममासाद्य प्रविष्टोऽत्तमहामुनि: ।
ददर्श तदवस्थांस्तान्सर्वान्दु:खपरिप्लुतान् ॥५५
अथ ते तु भृगुं दृष्ट्वा वंशस्य पितरं मुदा ।
उत्थायास्मै ददुश्चापि सत्कृत्य परमासनम् ॥५६

इस रीति से जब शुभ शकुन दिखाई दिये तो उनके देखने से वे श्रेष्ठ मुनिगण परम आश्वस्त मन वाले हो गये थे अर्थात् उनको कुछ शुभाशा हुई थी। वे सभी अपने पिता के जीवित की आकाङ्क्षा करते हुए माता के साथ वहाँ पर बैठ गये थे।५०। हे राजन्! इसी बीच में भृगु के वंश को धारण करने वाले मतिमान् मुनि विधि के बल से यदृच्छा से ही वहाँ पर समागत हो गये थे।५१। वे मुनि अथर्व वेद की साक्षात् विधि के स्वरूप वाले थे और अन्य सभी वेदों तथा वेदोंके अङ्ग शास्त्रों के पारगामी मनीषी

थे। वे समस्त शास्त्रों के पारगामी मनीषी थे। वे समस्त शास्त्रों के तात्त्विक अर्थों के ज्ञाता विद्वान् थे और समस्त असुरों के द्वारा वन्दित थे ।५२। जो मनियों के लिये भी अत्यन्त दुर्लभ होती है ऐसी मृत प्राणियों को भी जीवित कर देने वाली विद्या को जानते थे। जब भी देवों के द्वारा रण में दानव निकृत हो जाया करते हैं तो इसी मृत संजीवनी विद्या से उनको उठा दिया करते हैं अर्थात् जीवित बना देते हैं ।५३। जिस महामुनि ने औशनस शास्त्र को प्रणीत किया था जो राजाओं को राज्य के फल का प्रदान करने वाला है और आज भी यहाँ पर नृपगण अनुजीवित रहते हैं ।५४। वह महामुनि उस आश्रम में पहुँच कर अन्दर प्रविष्ट हुए थे और उन्होंने उस अवस्था में अवस्थित सबको दुःख से परिप्लुत हुए देखा था ।५५। इसके अनन्तर उन सबने वंश के पिता भृगु मुनि का दर्शन प्राप्त करके बड़े ही आनन्द के साथ वे सब खड़े हो गये थे और गोत्रोत्थान देकर सबने उनका बड़ा सत्कार किया था तथा प्रणाम करके भृगु मुनि को आसन समर्पित किया था ।५६।

स चाशीर्भिस्तु तान्सर्वानभिनंद्य महामुनिः ।
पप्रच्छ किमिदं वृत्तं तत्सर्वं ते न्यवेदयन् ।।५७

तच्छ्रुत्वा स भृगुः शीघ्रं जलमादाय मंत्रवित् ।
संजीविन्या विद्यया तं सिषेच प्रोच्चरन्निदम् ।।५८

यज्ञस्य तपसो वीर्यं ममापि शुभमस्ति चेत् ।
तेनासौ जीवताच्छीघ्रं प्रसुप्त इव चोत्थितः ।।५९

एवमुक्ते शुभे वाक्ये भृगुणा साधुकारिणा ।
समुत्तस्थौ यथार्चीकः साक्षाद्गुरुरिवापरः ।।६०

दृष्ट्वा तत्र स्थितं वंद्यं भृगुं स्वस्य पितामहम् ।
ननाम भक्त्या नृपते कृतांजलिरुवाच ह ।।६१

जमदग्निरुवाच—

धन्योऽयं कृतकृत्योऽहं सफलं जीवितं च मे ।।६२

यत्पश्ये चरणौ तेऽद्य सुरासुरनमस्कृतौ ।
भगवन्किं करोम्यद्य शुश्रूषां तव मानद ।।६३

उन महामुनि ने आशीर्वादों के द्वारा सबका अभिनन्दन करके उनसे उन्होंने पूछा था कि यह क्या हुआ है । इस पर उन्होंने पूरा वृत्तान्त जो भी वहाँ पर घटनाएँ घटित हुई थीं भृगुमुनि की सेवा में निवेदित कर दी थीं ।५७। यह सारा वृत्तान्त सुनकर मन्त्र शास्त्र के महामनीषी भृगु मुनि ने बहुत ही शीघ्र जल लेकर यह उच्चारण करते हुए संजीवनी विद्या से उस जमदग्नि के देह को अभिषिक्त किया था । यदि मेरे तप का और यज्ञ का वीर्य शुभ है तो उसके प्रभाव से यह जमदग्नि सोकर उठे हुए के ही समान शीघ्र ही जीवित हो जावें ।५८-५९। इस प्रकार से इस परम शुभ वाक्य को साधुकारी भृगु मुनि के द्वारा उच्चारित होने पर शीघ्र ही जमदग्नि साक्षात् दूसरे देवगुरु के हो सदृश समुत्थित हो गया था ।६०। जब उठा तो उसने वहाँ पर संस्थित-वन्दना करने के योग्य अपने पितामह भृगु मुनि का दर्शन किया था । हे नृपते ! उस जमदग्नि ने भक्ति की भावना से प्रणाम करके दोनों हाथों को जोड़कर उनसे कहा था ।६१। जमदग्नि ने कहा—मैं परम धन्य तथा कृतकृत्य हो गया हूँ और मेरा जीवन आज सफल हो गया है ।६२। जो सुरगण और असुरों के द्वारा वन्दित आपके चरण कमल हैं उनका आज मैं अपने नेत्रों से अवलोकन कर रहा हूँ । हे मान के प्रदान करने वाले भगवन् ! मैं आपकी इस समय में क्या शुश्रूषा करूँ ? मुझे आप आज्ञा कीजिए ।६३।

पुनीह्यास्मकुलं स्वस्य चरणांबुकणैर्विभो ।
इत्युक्त्वा सहसाऽऽनीतं रामेणार्घ्यं मुदान्वितः ।।६४
प्रददौ पादयोस्तस्य भक्त्यानमितकंधरः ।
तज्जलं शिरसाऽधत्त सुकुटुम्बो महामनाः ।।६५
अथ सत्कृत्य स भृगुं प्रपच्छ विनयान्वितः ।
भगवन् किं कृतं तेन राज्ञा दुष्टेन पातकम् ।।६६
यस्यातिथ्यं हि कृतवानहं सम्यग्विधानतः ।
साधुबुद्धया स दुष्टात्मा किं चकार महामते ।।६७
वसिष्ठ उवाच—
एवं स पृष्टो मतिमान्भृगुः सर्वविदीश्वरः ।
चिरं ध्यात्वा समालोच्य कारणं प्राह भूपते ।।६८

भृगुरुवाच—शृणु तात महाभाग बीजमस्य हि कर्मणः ।
यश्च वै कृतवान्पापं सर्वज्ञस्य तवानघ ॥६९
शप्तः पुरा वसिष्ठेन नाशार्थं स महीपतिः ।
द्विजापराधतो मूढ वीर्यं ते विनशिष्यते ॥७०

हे विभो ! आप अपने चरणों के जल कणों के द्वारा अपने ही इस कुल को पुनीत बनाइए । इतना कहकर आनन्द से समन्वित होते हुए सहसा राम के द्वारा अर्घ्य लाया था ।६४। भक्तिभाव से अपनी गर्दन झुकाने वाले उस जमदग्नि ने उन भृगु मुनि के चरणों के प्रक्षालनार्थ जल समर्पित किया था । महान् यश वाले उसे जमदग्नि ने अपने समस्त कुटुम्ब के सहित उस चरणों के तीर्थ जल को अपने शिर पर धारण किया था ।६५। इसके उपरान्त उनका पूर्ण सत्कार करके परम विनय से समन्वित होते हुए भृगु से पूछा था । हे भगवन् ! आप कृपया बतलाइए कि उस महान् दुष्ट राजा ने यह क्या पातक किया था ? ।६६। जिसका आतिथ्य-सत्कार मैंने बड़े ही विधि-विधान से किया था । हे महामते ! मैंने यह सब बहुत ही अच्छी बुद्धि से किया था और मेरे हृदय में कुछ भी कपट का भाव नहीं था । फिर भी उस आत्मा वाले ने मेरे साथ यह ऐसा क्यों दुर्व्यवहार किया था ।६७। वसिष्ठ जी ने कहा—इस प्रकार से जब जमदग्नि के द्वारा सब कुछ के ज्ञाता ईश्वर और महामतिमान् भृगु से पूछा गया तब हे भूपते ! भृगु मुनि ने बहुत काल पर्यन्त ध्यान करके भली भाँति अवलोकन किया था और फिर इस सब घटना के घटित होने का जो भी कुछ कारण था वह कहा था ।६८। भृगुमुनि ने कहा—हे महान् भाग वाले तात ! इस कुत्सित कर्म का जो भी बीज है उसी को आप सुन लीजिए । हे अनघ ! जिसने हैहय राजा ने सर्वज्ञ आपका निश्चित रूप से पाप किया था ।६९। बहुत प्राचीन समय में वसिष्ठ मुनि ने विनाश होने के लिये उस राजा को शाप दे दिया था । वह शाप यही था कि हे मूढ़ ! द्विज के अपराध करने से तेरा सब वीर्य विक्रम विनाश को प्राप्त हो जायगा ।७०।

तत्कथं वचनं तस्य भविष्यत्यन्यथा मुनेः ।
अयं रामो महावीर्यं प्रसह्य नृपपुंगवम् ॥७१
हनिष्यति महाबाहो प्रतिज्ञां कृतवान्पुरा ।
यस्मादुरः प्रतिहतं त्वया मातर्ममाग्रतः ॥७२

एकविंशतिवारं हि भृशं दुःखपरीतया ।
त्रिःसप्तकृत्वो निःक्षत्रां करिष्ये पृथिवीमिमाम् ।।७३
अतोऽयं वार्यमाणोऽपि त्वया पित्रा निरंतरम् ।
भाविनोऽर्थस्य च बलात्करिष्यत्येव मानद ।।७४
स तु राजा महाभागो वृद्धानां पर्युपासिता ।
दत्तात्रेयाद्धरेरंशाल्लब्धबोधो महामतिः ।।७५
साक्षाद्भक्तो महात्मा च तद्वधे पातकं भवेत् ।
एवमुक्त्वा महाराज स भृगुर्ब्रह्मणः सुतः ।
यथागतं ययौ विद्वान्भविष्यत्कालपर्ययात् ।।७६

मुनि तो सर्वदा सत्यवक्ता होते हैं अतः उस महामुनि का वचन किस प्रकार से अन्यथा होगा । यह आपका पुत्र राम महान वीर्य वाले उस श्रेष्ठ नृप को बल पूर्वक मार देगा । हे महाबाहो ! यह पहिले ही ऐसी प्रतिज्ञा कर चुका है । कारण यह है कि वियोग के शोक से संतप्त होकर मेरे ही समक्ष से अपने वक्षःस्थल को प्रताड़ित किया है ।७१-७२। आपने अपने उरःस्थल को बहुत ही दुःख से परीत होकर इक्कीस बार प्रताड़ित किया है सो मैं भी इक्कीस बार ही इस सम्पूर्ण भूमण्डल को क्षत्रियों से रहित करूँगा ।७३। हे मानद ! इसीलिए पिता आपके द्वारा यह निरन्तर रोके जाने पर भी भविष्य में होने वाले अर्थ के बल से ऐसा अवश्य ही करेगा क्योंकि ऐसा ही होनहार है ।७४। वह साक्षात् भक्त और महात्मा है । उसके वध करने में पातक भी होगा । इस रीति से कहकर हे महाराज ! उन ब्रह्माजी के पुत्र भृगुमुनि ने फिर यह भी कहा था कि वह राजा महान भाग वाला है और वृद्धों की उपासना करने वाला है । साक्षात् भगवान् हरि के अंश दत्तात्रेय मुनि से उसने ज्ञान प्राप्त किया है और महती मति से सुसम्पन्न है । ऐसे का वध करना भी महान् पातक है । इतना ही कहकर भविष्य में आने वाले काल के पर्यय से वे विद्वान् भृगु जैसे ही आये थे वैसे ही वहाँ से चले गये थे ।७५-७६।

—x—

।। परशुराम का शिवलोक गमन ।।

सगर उवाच–

ब्रह्मपुत्र महाभाग वद भार्गवचेष्टितम् ।

यच्चकार महावीर्य्यो राज्ञः क्रुद्धो हि कर्मणा ।।१

वसिष्ठ उवाच–

गते तस्मिन्महाभागे भृगौ पितृपरायणः ।

रामः प्रोवाच संक्रुद्धो मुंचन्श्वासान्मुहुर्मुहुः ।।२

परशुराम उवाच–

अहो पश्यत मूढत्वं राज्ञो ह्युत्पथगामिनः ।

कार्त्तवीर्यस्य यो विद्वांश्चक्रे ब्रह्मवधोद्यमम् ।।३

दैवं हि बलवन्मन्ये यत्प्रभावाच्छरीरिणः ।

शुभं वाप्यशुभं सर्वे प्रकुर्वंति विमोहिताः ।।४

शृण्वंतु ऋषयः सर्वे प्रतिज्ञा क्रियते मया ।

कार्त्तवीर्यं निहत्याजौ पितुर्वैरं प्रसाधये ।।५

यदि राजा सुरैः सर्वैरिंद्राद्यैर्दानवैस्तथा ।

रक्षिष्यते तथाप्येनं संहरिष्यामि नान्यथा ।।६

एवमुक्तं समाकर्ण्य रामेण सुमहात्मना ।

जमदग्निरुवाचेदं पुत्रं साहसभाषिणम् ।।७

राजा सगर ने कहा—हे महाभाग ! हे ब्रह्मपुत्र ! अब आप कृपा करके भार्गव के चेष्टित का वर्णन कीजिए । महान् वीर्य वाले राम ने राजा के इस कुत्सित कर्म से क्रुद्ध होकर जो भी कुछ किया था ।१। वसिष्ठ जी ने कहा—जब महाभाग भृगुमुनि वहाँ से चले गये थे तो उस समय में पिता के चरणों की सेवा में तत्पर रहने वाले राम ने बारम्बार अत्युष्ण श्वासों का मोचन करते हुए बहुत ही क्रुद्ध होकर कहा था ।२। परशुराम ने कहा—अहो ! उत्पथ के गमन करने वाले राजा की मूढ़ता को देखिए जिस कार्त्त-वीर्य ने परम विद्वान् होते हुए भी एक तपस्वी ब्राह्मण के वध करने का उद्यम किया था ।३। मैं यह बात मानता हूँ कि दैव बड़ा बलवान् होता है

ललिता परमेश्वरी सेना जययात्रा

अथ राजनायिका श्रिता ज्वलितांकुशा फणिसमानपाशभृत् ।
कलनिक्वणद्वलयमैक्षवं धनुर्दधती प्रदीप्तकुसुमेषुपंचका ॥१
उदयत्सहस्रमहसा सहस्रतोऽप्यतिपाटलं निजवपुः प्रभाझरम्
किरती दिशासु वदनस्य कांतिभिः सृजतीव
चन्द्रमयमभ्रमंडलम् ॥२
दशयोजनायतिमता जगत्त्रयीमभिवृण्वता
विशदमौक्तिकात्मना ।
धवलातपत्रवलयेन भासुरा शशिमंडलस्य सखितामुपेयुषा ॥३
अभिवीजिता च मणिकांतशोभिना
विजयादिमुख्यपरिचारिकागणैः ।
नवचन्द्रिकालहरिकांतिकंदलीचतुरेण चामरचतुष्टयेन च ॥४
शक्तचैकराज्यपदवीमभिसूचयंती साम्राज्य-
चिह्नशतमंडितसैन्यदेशा ।
संगीतवाद्यरचनाभिरथामरीणां संस्तूयमानविभवा
विशदप्रकाशा ॥५
वाचामगोचरमगोचरमेव बुद्धेरीदृक्तया न
कलनीयमनन्यतुल्यम् ॥६
त्रैलोक्यगर्भपरिपूरितशक्तिचक्रसाम्राज्यसं-
पदभिमानमभिस्पृशंती ।
आबद्धभक्तिविपुलांजलिशेखराणामारादहंप्रथमिका
कृतसेवनानाम् ॥७

इसके अनन्तर वह राज नायिका वहाँ पर विराजमान थी जिसका अंकुश ज्वलित था और जो सर्प के ही तुल्य पाश को धारण करने वाली थी। मधुर क्वणन करने वाला वलय और इक्षु का धनुष धारण किये हुए थी। उसके बाण पाँच कुसुमों के थे ।१। उदित सूर्य के तेज से भी अत्यधिक

जमदग्नि ने कहा—हे राम ! अब आप मेरी बात सुनिए। मैं सत्पुरुषों के सनातन (सर्वदा से चले आने वाले) धर्म को बतलाऊँगा। जिसको सुनकर सभी मानव धर्म के करने वाले हो जाया करते हैं।८। महान भाग्य वाले साधुजन होते हैं और जो इस संसार से निरन्तर जन्म-मरण के महान कष्ट से छुटकारा पाने की आकांक्षा रखने वाले हैं वे कभी भी किसी पर प्रकोप नहीं किया करते हैं चाहे कोई उनको प्रताड़ित अथवा निहत भी क्यों न करे तो भी वे कुपित नहीं हुआ करते हैं।९। जो महाभाग क्षमा ही को धन मानने वाले हैं तथा परम दमनशील और तपस्वी होते हैं उन साधु कर्म करने वालों के लिए निरन्तर लोक अक्षय होते हैं।१०। जो महापुरुष हैं वे दुष्टों के द्वारा दण्ड आदि से ताड़ित होते हुए और बुरे वचनों द्वारा निर्भत्सित होते हुए भी कभी मन में क्षोभ नहीं किया करते हैं वे ही पुरुष साधु कहे जाया करते हैं।११। ताड़न करने वाले को जो ताड़ित किया करता है वह कभी भी साधु नहीं हो सकता है प्रत्युत पाप का भागी ही होता है। हम लोग तो ब्राह्मण और साधु हैं क्षमा रखने के ही द्वारा परम पूज्य पद को प्राप्त हुए हैं।१२। सामान्यजन के बध से भी अधिक एक राजा के बध करने में महान् पातक होता है क्योंकि राजा में भगवान् का अंश होता है। इसी कारण से मैं अब आपको निवारित करता हूँ और यह उपदेश देता हूँ कि क्षमा को धारण करो तथा तपश्चर्या करो।१३। वसिष्ठजी ने कहा—नृपनन्दन ! इस रीति से भली भाँति दिये हुए आदेश को समझ कर राम ने परमाधिक क्षमा के स्वभाव वाले और अरियों के दमन करने वाले अपने पिताजी से कहा।१४।

परशुराम उवाच—

शृणु तात महाप्राज्ञ विज्ञप्तिं मम सांप्रतम् ।
भवता शम उद्दिष्टः साधूनां सुमहात्मनाम् ॥१५

स शमः साधुदीनेषु गुरुष्वीश्वरभावनैः ।
कर्त्तव्यो दुष्टचेष्टेषु न शमः सुखदो भवेत् ॥१६

तस्मादस्य बधः कार्यः कार्त्तवीर्यस्य वै मया ।
देहार्जा माननीयाद्य साधये वैरमात्मनः ॥१७

जमदग्निरुवाच—

शृणु राम महाभाग वचो मम समाहितः ।

करिष्यसि यथा भावि नैवान्यथा भवेत् ॥१८

इतो व्रज त्वं ब्रह्माणं पृच्छ तात हिताहितम् ।
स यद्वदिष्यति विभुस्तत्कर्त्ता नात्र संशयः ॥१९

वसिष्ठ उवाच–

एवमुक्तः स पितरं नमस्कृत्य महामतिः ।
जगाम ब्रह्मणो लोकमगम्यं प्राकृतैर्जनैः ॥२०

ददर्श ब्रह्मणो लोकं शातकौंभविनिर्मितम् ।
स्वर्णप्राकारसंयुक्तं मणिस्तंभैर्विभूषितम् ॥२१

परशुराम ने कहा—हे महाप्राज्ञ तात ! अब आप मेरी विज्ञप्ति का श्रवण कीजिए । आपने जो शाम बतलाया है वह महान आत्मा वाले साधु पुरुषों का है । वह शाम साधु पुरुषों के प्रति-दीनजनों पर और ईश्वर की भावना से संयुत गुरुजनों में ही करना चाहिए । जो दुष्टजन हैं उनमें किया हुआ शाम कभी भी सुख देने वाला नहीं हुआ करता है ।१५-१६। इसी कारण से इस दुष्ट कार्त्तवीर्य का वध तो मेरे द्वारा करने के ही योग्य है । हे सम्मान करने के योग्य ! आज तो आप मुझे अपनी आज्ञा प्रदान कर दीजिए कि मैं अपने बैर का बदला ले लूँ ।१७। जमदग्नि मुनि ने कहा—हे महाभाग राम ! अब आप बहुत सावधान होकर मेरे वचन का श्रवण करो। यह मैं जानता हूँ कि जो कुछ होने वाला है उसे ही तुम अवश्य करोगे । इसमें कुछ भी अन्यथा नहीं होगा ।१८। अब आप यहाँ से ब्रह्माजी के समीप में चले जाओ और उनसे हे तात ! अपना हित और अहित पूछिए । वे विभु जो भी कहेंगे उसी को आप करना—फिर इसमें कुछ भी संशय नहीं होगा ।१९। वसिष्ठ जी ने कहा—जब राम के पिता के द्वारा इस प्रकार से राम से कहा गया था तो उस महामति ने अपने पिता के चरणों में प्रणाम किया था और फिर वह ब्रह्माजी के लोक को चला गया था जो लोक सामान्य प्राकृतजनों के द्वारा गमन करने के योग्य नहीं था ।२०। उस परशुराम ने ब्रह्माजी के उस लोक को देखा था जो लोक सुवर्ण के ही द्वारा बना हुआ था । उस लोक का प्राकार (चहार दीवारी) भी सुवर्ण से संयुत था और वह लोक मणियों के अनेक स्तम्भों से विभूषित हो रहा था ।२१।

तत्रापश्यत्समासीनं ब्रह्माणममितौजसम् ।
रत्नसिंहासने रम्ये रत्नभूषणभूषितम् ॥२२

सिद्धेंद्रैश्च मुनींद्रैश्च वेष्टितं ध्यानतत्परैः ।
विद्याधरीणां नृत्यं च पश्यंतं सस्मितं मुदा ॥२३
तपसां फलदातारं कर्त्तारं जगतां विभुम् ।
परिपूर्णतमं ब्रह्म ध्यायंत यतमानसम् ॥२४
गुह्ययोगं प्रवोचंतं भक्तवृंदेषु संततम् ।
दृष्ट्वा तमव्ययं भक्त्या प्रणनाम भृगूद्वहः ॥२५
स दृष्ट्वा विनतं राममाशीर्भिरभिनंद्य च ।
पप्रच्छ कुशलं वत्स कथमागमनं कृथाः ॥२६
संपृष्टो विधिना रामः प्रोवाचाखिलमादितः ।
वृत्तांत कार्त्तवीर्यस्य पितुः स्वस्य महात्मनः ॥२७
तच्छ्रुत्वा सकलं ब्रह्मा विज्ञातार्थोऽपि मानद ।
उवाच रामं धर्मिष्ठ परिणामसुखावहम् ॥२८

वहाँ पर उस लोक में अपरिमित ओज से समन्वित विराजमान ब्रह्माजी का उस राम ने दर्शन किया था। जो परम रम्य रत्नों के सिंहासन पर समासीन थे और रत्नों के ही भूषणों के समलंकृत थे ।२२। उन ब्रह्माजी को चारों ओर से बड़े-बड़े सिद्धों और मुनीन्द्रों के ध्यान में समासक्त होकर घेर रखा था तथा था तथा वहाँ पर उनके सामने विद्याधरियों का नृत्य हो रहा था जिस नृत्यको बड़े ही आनन्द के साथ मुस्कराते हुए ब्रह्माजी देख रहे थे ब्रह्माजी उस समय में तपों के फल को प्रदान करने वाले—जगतों की रचना करने वाले—व्यापक और परिपूर्ण तप ब्रह्म का ध्यान कर रहे थे तथा उनने अपने मन को नियमन्त्रित कर रक्खा था ।२४। जो वहाँ पर भक्तों के समुदाय विद्यमान थे उनको निरन्तर परम गोपनीय योग को वे बतला रहे थे। इस रीति से विराजमान अव्यय उन ब्रह्माजी का भक्तिभाव से दर्शन प्राप्त करके उस भृगुकुल में समुत्पन्न राम ने उनके चरणों में प्रणिपात किया था ।२५। उन ब्रह्माजी ने विशेष रूप से नत उस राम को देखकर आशीर्वचनों के द्वारा उसका अभिनन्दन किया था। फिर उस राम से ब्रह्माजी ने उसका कुशल पूछा था इसके अनन्तर ब्रह्माजी ने राम से कहा था—हे वत्स ! तुमने किस प्रयोजन से यहाँ पर मेरे समीप में आगमन किया है ।२६। जब ब्रह्माजी ने इस रीति से राम से पूछा था तो उसने

आरम्भ से सम्पूर्ण वृत्तान्त कहकर उनको सुना दिया था जिसमें कार्त्तवीर्य राजा के द्वारा जो कुछ किया गया था और महात्मा अपने पिता जमदग्नि पर जो कुछ दुःख पड़ा था यह सभी हाल था ।२७। इस सम्पूर्ण वृत्तान्त का श्रवण करके हे मानद ! यद्यपि ब्रह्माजी को यह सभी बातें पहिले ही विज्ञात थीं तथापि उन्होंने पूछकर सब कुछ सुना था और परिणाम में सुख आवहन करने वाले धर्मिष्ठ राम से कहा था ।२८।

प्रतिज्ञा दुर्लभा वत्स यां भवान्कृतवान् ुषा ।
सृष्टि रेषा भगवतः संभवेत्कृपया वटो ।।२९
जगत्सृष्टं मया तात संक्लेशेन तदाज्ञया ।
तन्नाशकारिणी चैव प्रतिज्ञा भवता कृता ।।३०
त्रिःसप्तकृत्वो निर्भूपां कर्तुमिच्छसि मेदिनीम् ।
एकस्य राज्ञो दोषेण पितुः परिभवेन च ।।३१
ब्रह्मक्षत्रियविट्शूद्रैः सृष्टिरेषा सनातनी ।
आविर्भूता तिरोभूता हरेरेव पुनः पुनः ।।३२
अव्यर्था त्वत्प्रतिज्ञा तु भवित्री प्राक्तनेन च ।
यद्वायासेन ते कार्यसिद्धिर्भवितुमर्हति ।।३३
शिवलोकं प्रयाहि त्वं शिवस्याज्ञामवाप्नुहि ।
पृथिव्यां बहवो भूपाः संति शंकरकिंकराः ।।३४
विनैवाज्ञां महेशस्य को वा तान्हंतुमीश्वरः ।
बिभ्रतः कवचान्यंगे शक्तींश्चापि दुरासदाः ।।३५

हे वत्स ! आपकी यह प्रतिज्ञा बड़ी ही दुर्लभ है जिसको क्रोध के वशीभूत होकर आपने किया है । हे वटो ! यह सृष्टि तो भगवान् की कृपा से ही होती है ।२९। हे तात ! यह आपको ज्ञात ही है कि उन्हीं परम प्रभु की आज्ञा से बड़े ही क्लेश के द्वारा इस समस्त जगत् का सृजन किया है और आपने इसी सृष्टि के नाश करने वाली प्रतिज्ञा कर डाली हैं ।३०। आप तो केवल एक ही राजा के दोष से तथा अपने पिता के तिरस्कार के होने से इस भूमि को इक्कीस बार भूपों से रहित करना चाहते हैं ।३१। यह सृष्टि तो ब्राह्मण-क्षत्रिय-वैश्य और शूद्र-इन चारों वर्णों से समन्वित सर्वदा से ही

चली आने वाली है । इसका आविर्भाव और तिरोभाव तो बार-बार भगवान् हरि से ही हुआ करता है ।३२। आपकी जो प्रतिज्ञा है वह भी अव्यर्थ होने वाली ही है और प्राक्तन अथवा आयास से आपके कार्य की सिद्धि होने के योग्य होती है ।३३। अब मेरा मत यही है कि शिवलोक में गमन कीजिए और अपनी की हुई प्रतिज्ञा के विषय में भगवान् शिव की आज्ञा को प्राप्त कीजिए । कारण यह है कि इस भूमण्डल में बहुत से भूप भगवान् शिव के सेवक हैं ।३४। बिना महेश्वर की आज्ञा प्राप्त किये हुए किसकी सामर्थ्य है कि उन सब भूपों का हनन कर सके । ये सब शिव के भक्त राजा लोग अपने अङ्गों में कवच धारण करने वाले हैं तथा दुरासदद को भी ये सब धारण किया करते हैं ।३५।

उपायं कुरु यत्नेन जयबीजं शुभावहम् ।
उपाये तु समारब्धे सर्वे सिध्यंत्युपक्रमाः ।।३६
श्रीकृष्णमंत्रं कवचं गृह्य वत्स गुरोर्हरात् ।
दुर्लंघ्यं वैष्णवं तेजः शिवशक्तिर्विजेष्यति ।।३७
त्रैलोक्यविजयं नाव कवचं परमाद्भुतम् ।
यथाकथं च विज्ञाप्य शंकरं लभ दुर्लभम् ।।३८
प्रसन्नः स गुणैस्तुभ्यं कृपालुर्दीनवत्सलः ।
दिव्यपाशुपतं चापि दास्यत्येव न संशयः ।।३९

यत्न के साथ उपाय करिए । जप का बीज शुभ का आवाहन करने वाला है । जब उपाय का आरम्भ कर दिया जाता है तो उसके कर देने पर सभी उपक्रम सिद्ध हो जाया करते हैं ।३६। अपने गुरुदेव हर से हे वत्स ! श्रीकृष्ण का मन्त्र और वज्र का ग्रहण करो । उससे दुर्लङ्घ्य वैष्णव तेज और शिव की शक्ति हो जायगी । जोकि विजय करेगी ।३७। भगवान् शिव के पास एक त्रैलोक्य के विजय करने वाला इसी नाम का परम दुर्लभ कवच विद्यमान है । यह कवच अतीव अद्भुत है । जिस किसी भी प्रकार से भगवान् शङ्कर को प्रसन्न करके उनसे इसके प्राप्त करने की प्रार्थना करो और इस दुर्लभ वस्तु की प्राप्ति उनसे करो ।३८। आपके गुण गणों से वे भगवान् शिव प्रसन्न हैं और वे बहुत ही दयालु तथा दीनों पर प्यार करने वाले हैं । वे तुमको अपना दिव्य पाशुपत अस्त्र भी अवश्य ही प्रदान कर ही देंगे—इसमें कुछ भी संशय नहीं है ।३९।

परशुराम का शिवाराधन

वसिष्ठ उवाच—

ब्रह्मणो वचनं श्रुत्वा स प्रणम्य जगद्गुरुम् ।
प्रसन्नचेताः सुभृशं शिवलोकं जगाम ह ॥१
लक्षयोजनमूर्द्ध्वं च ब्रह्मलोकाद्विलक्षणम् ।
अथानिर्वचनीयं च योगिगम्यं परात्परम् ॥२
वैकुण्ठो दक्षिणे यस्माद्गौरीवश्च वामतः ।
यदधो ध्रुवलोकश्च सर्वलोकपरस्तु सः ॥३
तपोवीर्यगती रामः शिवलोकं ददर्श च ।
उपमानेन रहितं नानाकौतुकसंयुतम् ॥४
वसंति यत्र योगींद्राः सिद्धाः पाशुपताः शुभाः ।
कोटिकल्पतपः पुण्याः शांता निर्मत्सरा जनाः ॥५
पारिजातमुखैर्वृक्षैः शोभितं कामधेनुभिः ।
योगेन योगिना सृष्टं स्वेच्छया शंकरेण हि ॥६
शिल्पिनां गुरुणा स्वप्ने न दृष्टं विश्वकर्मणा ।
सरोवरशतैर्दिव्यैः पद्मरागविराजितैः ॥७

श्री वसिष्ठ जी ने कहा—वह राम ब्रह्माजी के इस वचन को सुनकर फिर ब्रह्माजी के चरणों में प्रणाम करके अत्यन्त ही प्रसन्न चित्त वाला होता हुआ वहाँ से शिव के लोक को चला ।१। वह शिवका लोक वहाँ से एक लाख योजन ऊपर की ओर था और वह इस ब्रह्माजी के लोक से भी अधिक विलक्षण था । उसका वर्णन वचनों के द्वारा तो हो ही नहीं सकता है । ऐसा ही वह अनिर्वचनीय था और पर से भी पर था तथा योगी जनों के ही द्वारा गमन करने के योग्य था ।२। जिस शिवलोक से वैकुण्ठ तो दक्षिण दिशा में है और गौरी लोक बाँई ओर है तथा जिनके नीचे की ओर ध्रुव लोक है और वह शिवलोक सभी लोकों से पर है ।३। तपश्चर्या और बल-विक्रम के वीर्य की गति वाले उस राम ने उस शिवलोक का दर्शन कर लिया था । वह अनेक प्रकार के कौतुकों से युक्त था तथा उसकी समानता रखने वाला अन्य कोई भी उपमान ही नहीं था ।४। वह ऐसा लोक था जहाँ

पर केवल महान् योगीन्द्र-सिद्ध और परम शुभ पाशुपत ही निवास किया करते हैं। जो करोड़ों कल्पों तक तपस्या करने के महान् पुनीत पुण्य वाले-परम शान्त शील-स्वभाव वाले और मत्सरता से रहित जन थे वे ही उस लोक के निवास करने वाले थे।५। वह लोक पारिजात मुख वाले वृक्षों से तथा कामधेनुओं से परम सुशोभित था जिन सबका योगिराजाधिराज भगवान् शङ्कर ने अपने ही योगबल से स्वेच्छा पूर्वक सृजन किया था। समस्त कामनाओं को पूर्ण करने वाली धेनु कामधेनु कही जाती है तथा मनकी इच्छाओं को पूरा करने वाला वृक्ष कल्पवृक्ष होता है उन्हीं का एक भेद परिजात देव वृक्ष है।६। इस लोक की रचना ऐसी ही परम अद्‌भुत थी कि विश्व के शिल्पियों के परम गुरु विश्वकर्मा ने कभी स्वप्न में भी नहीं देखी थी फिर उसके भी द्वारा स्वयं ऐसी रचना का करना तो बहुत ही दूर की बात है। उस लोक में परम दिव्य सैकड़ों ही सरोवर थे जिनके घाट और सीढ़ियाँ तथा सम्पूर्ण प्राकार मण्डल पद्मराग नाम वाली मणियों के द्वारा विनिर्मित था। इन सब सरोवरों से वह लोक परमाधिक शोभा से समन्वित था।७।

शोभितं चातिरम्यं च संयुक्तं मणिवेदिभिः।
सुवर्णरत्नरचितप्राकारेण समाकुलम् ॥८

आमूर्द्ध्वमंबरस्पर्शि स्वच्छं क्षीरनिभं परम्।
चतुर्द्वारसमायुक्तं शोभितं मणिवेदिभिः ॥९

रत्नसोपानयुक्तैश्च रत्नस्तम्भकपाटकैः।
नानाचित्रविचित्रैश्च शोभितैः सुमनोहरैः ॥१०

तन्मध्ये भवनं रम्यं सिंहद्वारोपशोभितम्।
ददर्श रामो धर्मात्मा विचित्रमिव संगतः ॥११

तत्र स्थितौ द्वारपालौ ददर्शातिभयंकरौ।
महाकरालदंतास्यौ विकृतारक्तलोचनौ ॥१२

दग्धशैलप्रतीकाशौ महाबलपराक्रमौ।
विभूतिभूषितांगौ च व्याघ्रचर्मांबरौ च तौ ॥१३

त्रिशूलपट्टिशधरौ ज्वलंतौ ब्रह्मतेजसा।
तौ दृष्ट्वा मनसा भीतः किंचिदाह विनीतवत् ॥१४

वह लोक मणियों के द्वारा निर्मित अनेक वेदियों से बहुत ही अधिक सुरम्य एवं शोभित था। इसके चारों ओर सुवर्ण का प्राकार (परकोटा) बना हुआ था।८। यह लोक बहुत ही ऊँचा था जो कि अन्तरिक्ष का स्पर्श कर रहा था तथा वह इतना अधिक स्वच्छ एवं शुभ्र था कि क्षीर के ही समान दिखाई दे रहा था। इस लोक में चार परम विशाल द्वार बने हुए थे जिनका निर्माण मणियों की वेदियों से किया गया था।९। इसमें ऊपर चढ़ने के लिए रत्नों के द्वारा विनिर्मित सोपानों की श्रेणियाँ थीं और इसमें जो स्तम्भ तथा कपाट बने हुए थे वे भी सब रत्नों के थे। इस लोक में जो भी रचना थी वह अनेक प्रकार की चित्रविचित्र थी तथा परम मनोहर थी जिससे यह लोक परम शोभित हो रहा था।१०। उस लोक के मध्य में सिद्धों के द्वारा उपशोभित एक सुरम्य भवन बना हुआ था। उस धर्मात्मा राम ने वहाँ पर पहुँचकर उसको एक विचित्र स्थल के ही समान देखा था।११। वहाँ पर उस रामने देखा था कि अतीव भयङ्कर दो द्वारपाल स्थित थे। जिनके महान् कराल मुख और दाँत थे तथा बहुत ही विकृत लाल नेत्र थे।१२। वे द्वारपाल ऐसे ही प्रतीत हो रहे थे मानों वे दग्ध पर्वत होवें। वे महान् बल और विक्रम से समन्वित थे। उनके शरीरों में विभूति लगी हुई थी जिससे उनका अङ्ग विभूषित था और वे व्याघ्र के चर्मों के वस्त्र धारण किये हुए थे।१३। वे दोनों द्वारपाल त्रिशूल और पट्टिश धारण करने वाले थे तथा ब्रह्मतेज से जाज्वल्यमान हो रहे थे। उन को देखकर राम अपने मन में भय से भीत हो गया था बहुत ही विनीत होकर उन से कुछ बोला था।१४।

नमस्करोमि वामीशौ शंकरं द्रष्टुमागतः।
ईश्वराज्ञां समादाय मामथाऽप्तुतवंथ ॥१५
तौ तु तद्वचनं श्रुत्वा गृहीत्वाऽज्ञां शिवस्य च।
प्रवेष्टुमाज्ञां ददतुरीश्वरानुचरौ च तौ ॥१६
स तदाज्ञामनुप्राप्य विवेशांतः पुरं मुदा।
तत्रातिरम्यां सिद्धौघैः समाकीर्णां सभां द्विजः ॥१७
दृष्ट्वा विस्मयमापेदे सुगंधबहुलां विभोः।
तत्रापश्यच्छिवं शांतं त्रिनेत्रं चन्द्रशेखरम् ॥१८
त्रिशूलशोभितकरं व्याघ्रचर्मवरांबरम्।

विभूतिभूषितांगे च नागयज्ञोपवीतिनम् ॥१९

आत्मारामं पूर्णकामं कोटिसूर्यसमप्रभम् ।

पंचाननं दशभुजं भक्तानुग्रहविग्रहम् ॥२०

योगज्ञाने प्रब्रुवंतं सिद्धेभ्यस्तर्कमुद्रया ।

स्तूयमानं च योगीन्द्रैः प्रथमप्रकरैर्मुदा ॥२१

राम ने कहा—ईश आप दोनों की सेवा में मेरा प्रणाम स्वीकृत होवे। मैं इस समय में भगवान् शङ्कर के दर्शन प्राप्त करने के लिए ही यहाँ पर समागत हुआ हूँ। अब भगवान् ईश्वर की आज्ञा प्राप्त करके मुझे दर्शन करने के लिए आदेश प्रदान करने को आप योग्य होते हैं।१५। उन ईश्वर के दोनों अनुचरों ने राम के वचनों का श्रवण करके और फिर शिव की आज्ञा को प्राप्त करके राम को अन्दर प्रवेश करने के लिये उन्होंने आज्ञा देदी थी।१६। उस राम ने भी उनकी आज्ञा प्राप्त करके बड़े ही हर्ष के साथ उस अन्तःपुर में प्रवेश किया था। वहाँ पर उसने एक सभा का स्थल देखा था जो इस द्विज ने सिद्धों के समुदायों से समाकीर्ण देखा था और जिसमें अनेक प्रकार की बड़ी ही सुन्दर सुगन्ध भरी हुई थी तथा वह बहुत ही सुरम्य था। इस सभा-स्थल का अवलोकन करके बड़ा ही विस्मय हो गया था। वहाँ पर फिर उस रामने परम शान्त-तीन नेत्र के धारण करने और मस्तक में चन्द्र को धारण किये हुए भगवान् शिव का दर्शन किया था।१७-१८। भगवान् शंकर के कर में त्रिशूल शोभित हो रहा था और वे व्याघ्र के चर्म को वस्त्र के स्थान में पहिने हुए थे। उनके सम्पूर्ण अङ्गों में श्मशान की भस्म लगी हुई थी और उनका शरीर नागों के यज्ञोपवीत से शोभित था।१९। प्रभु शंकर अपनी ही आत्मा में रमण करने वाले थे—पूर्ण काम थे और उनकी सभी कामनाएँ परिपूर्ण थीं और करोड़ों सूर्यों के समान परमोज्ज्वल प्रभा थी। वे पाँच मुखों वाले—दश भुजाओं से शोभित और अपने भक्तों पर परमाधिक अनुग्रह करने वाले थे।२०। उस समय में शिव सिद्धों के लिए तर्क की मुद्रा के द्वारा योग और ज्ञान का विषय बतला रहे थे। बड़े-बड़े योगीन्द्र और प्रथमगण बड़े ही आनन्द के साथ उनका स्तवन कर रहे थे।२१।

भैरवैर्योगिनीभिश्च वृतं रुद्रगणैस्तथा ।

मूर्ध्ना ननाम तं दृष्ट्वा रामः परया मुदा ॥२२

वामभागे कार्त्तिकेयं दक्षिणे च गणेश्वरम् ।
नंदीश्वरं महाकालं वीरभद्रं च तत्पुरः ॥२३
क्रोडे दुर्गां शतभुजां दृष्ट्वा नत्वाथ तामसि ।
स्तोतुं प्रचक्रमे विद्वान्गिरा गद्गदया विभुम् ॥२४
नमस्ते शिवमीशानं विभुं व्यापकमव्ययम् ।
भुजंगभूषणं चोग्रं नृकपालस्रगुज्ज्वलम् ॥२५
यो विभुः सर्वलोकानां सृष्टिस्थितिविनाशकृत् ।
ब्रह्मादिरूपधृग्ज्येष्ठस्तं त्वां वेद कृपार्णवम् ॥२६
वेदा न शक्ता यं स्तोतुमवाङ्मनसगोचरम् ।
ज्ञानबुद्धयोरसाध्यं च निराकारं नमाम्यहम् ॥२७
शक्रादयः सुरगणा ऋषयो मनवोऽसुराः ।
न यं विदुर्यथातत्वं तं नमामि परात्परम् ॥२८

भगवान् शिव को भैरव—योगिनियाँ और रुद्र के गणों ने चारों ओर से घेर रक्खा था। ऐसी दशा में विराजमान हुए भगवान शिव का दर्शन करके राम ने बड़े ही हर्ष से अपने शिर को उनके चरणों में झुका कर प्रणाम किया था।२२। उनके वाम भाग में स्वामी कार्त्तिकेय थे और दाहिनी ओर गणनायक गणेश विराजमान थे तथा उनके सामने नन्दीश्वर-महाकाल और वीरभद्र स्थित हो रहे थे।२३। शिव की गोद में सौ भुजाओं वाली जगज्जननी दुर्गा विद्यमान थी। इनका दर्शन करके राम ने उनको भी प्रणाम किया था। इसके अनन्तर विद्वान् राम ने अपनी गद्‌गद वाणी से उन विभु की स्तुति करने का उपक्रम किया था।२४। राम ने कहा था—मैं ईशान–विभु–व्यापक–अव्यय-भुजङ्गों के भूषणों वाले—उग्र और नरों के कपालों की माला के धारण करने से परमोज्ज्वल शिव की सेवा में प्रणाम करता हूँ।२४-२५। जो विभु समस्त लोकों को सृष्टि स्थिति और विनाश के करने वाले हैं ऐसे ब्रह्मा आदि के स्वरूप को धारण करने वाले—सबसे बड़े उन आप कृपा के सागर को मैं जानता हूँ।२६। जिन मन और वाणी के अगोचर प्रभु की स्तुति करने में वेद भी समर्थ नहीं हैं उन ज्ञान और बुद्धि के द्वारा साधन के अयोग्य तथा बिना आकार वाले प्रभु शिव के चरणों में मैं नमस्कार करता हूँ।२७। महेन्द्र आदि देवगण–ऋषिगण–मनु और असुर

ये सब जिनके स्वरूप का यथार्थ रूप से नहीं जाना करते हैं उन पर से भी पर प्रभु शिव के लिए मैं प्रणिपात करता हूँ ।२८।

यस्यांशांशेन सृज्यंते लोकाः सर्वे चराचराः ।
लीयंते च पुनर्यस्मिस्तं नमामि जगन्मयम् ॥२६
यस्येषत्कोपसंभूतो हुताशो दहतेऽखिलम् ।
सोर्द्ध्वलोकं सपातालं तं नमामि हरं परम् ॥३०
पृथ्वीपवन वह्नचम्भोनभोयज्वेंदुभास्कराः ।
मूर्त्तयोऽष्टौ जगत्पूज्यास्तं यज्ञं प्रणमाम्यहम् ॥३१
यः कालरूपो जगदादिदर्त्ता पाता पृथग्रूपधरो जगन्मयः ।
हर्त्ता पुना रुद्रवपुस्तथांते तं कालरूपं शरणं प्रपद्ये ॥३२
इत्येवमुक्त्वा स तु भार्गवो मुदा पपात तस्यांघ्रिसमीप आतुरः ।
उत्थाप्य तं वामकरेण लीलया दध्रे तदा मूर्ध्नि करं कृपार्णवः ॥३३
आशीभिरेनं ह्यभिनंद्य सादरं निवेशयामास गणेशपूर्वतः ।
उवाच नामामभिवीक्ष्य चाम्बुमां कृपार्द्रदृष्ट्याऽखिलकामपूरकः ॥३४
शिव उवाच—
कस्त्वं बटो कस्य कुले प्रसूतः किं कार्यमुद्दिश्य भवानिहागतः ।
विनिर्दिशाहं तव भक्तिभावतः प्रीतः प्रदद्यां भवतो मनोगतम् ॥३५

जिन पूज्य देव के अंशों के भी अंशों के द्वारा चर और अचर समस्त लोक सृजित हुआ करते हैं और फिर जिसमें ही ये सब लीन हो जाया करते हैं उन जगन्मय प्रभु को मैं नमस्कार करता हूँ ।२६। जिन प्रभु के बहुत ही अल्प कोप से समुत्पन्न हुआ अग्नि ऊर्ध्वलोक और पाताल के सहित सम्पूर्ण

इस विश्व को दग्ध कर देता है उन हर की सेवा में जो पर हैं मैं प्रणाम हूँ ।३०। जिसकी पृथ्वी-पवन-अग्नि-जल-नभ-यज्वा-चन्द्र और भास्कर में आठ मूर्त्तियाँ जगत् की पूज्य है उन यज्ञ स्वरूप देव को मैं नमस्कार करता हूँ ।३१। जो काल के स्वरूप वाले इस सम्पूर्ण जगत् के आदि करने वाले अर्थात् स्रष्टा हैं इसका पालन करने वाले हैं और अपना यह जगन्मय रूप धारण किया करते हैं । फिर रुद्र का स्वरूप धारण करके अन्त में इस सबका संहार करने वाले हैं उन काल के रूप वाले भगवान् शंकर की मैं शरणागति में प्राप्त होता हूँ ।३२। वह भार्गव राम इस रीति से इतना ही स्तवन करके बड़े ही आनन्द से उन शिव के चरणों के समीप परमाधिक आतुर होकर गिर पड़ा था । तब कृपा के सागर भगवान् शंकर ने अपने बाँये करकमल से लीला से ही उसको उठाकर उसके मस्तक पर अपनाकर रख दिया था ।३३। अनेक आशीर्वचनों के द्वारा उसका अभिनन्दन करके बड़े ही आदर के साथ अपने प्रिय आत्मज गणेश के आगे उसको बिठा दिया था । फिर अपनी वामा उमा का अभिवीक्षण करके समस्त कामनाओं के पूर्ण करने वाले शिव ने कृपार्द्र दृष्टि से उससे कहा था ।३४। शिव ने कहा—हे वटो ! आप यह बताइए कि आप कौन हैं और किसके वंश में आपने जन्म ग्रहण किया है और आप किस कार्य के कराने का उद्देश्य लेकर यहाँ पर समागत हुए हैं—यह सभी कुछ सूचित कीजिए । मैं आपकी इस प्रकार की भक्ति की भावना से आपके ऊपर परम प्रसन्न हो गया हूँ तथा जो भी कुछ आपके मन का अभीप्सित है उस सबको मैं आपके लिए दे दूँगा ।३५।

इत्येवमुक्तः स भृगुर्महात्मना हरेण विश्वार्त्तिहरेण सादरम् ।
पुनश्च नत्वा विबुधां पतिं गुरुं कृपासमुद्रं समुवाच
सस्वरम् ।।३६

परशुराम उवाच ।
भृगोश्चाहं कुले जातो जमदग्निसुतो विभो ।
रामो नाम जगद्वंद्यं त्वामहं शरणं गतः ।।३७

यत्कार्यार्थमहं नाथ तव सांनिध्यमागतः ।
तं प्रसाधय विश्वेश वांछितं काममेव मे ।।३८

मृगयामागतस्यापि कार्त्तवीर्यस्य भूपते ।
आतिथ्यं कृतवान् देव जमदग्निः पिता मम ॥३९
राजा तं स बलाल्लोभात्पातयामास मन्दधीः ।
सा धेनुस्तं मृतं दृष्ट्वा गवां लोकं जगाम ह ॥४०
राजा न शोचन्मरणं पितुर्मम निरागसः ।
जगाम स्वपुरं पश्चान्माता मे प्रारुदद्भृशम् ॥४१
तज्ज्ञात्वा लोकवृत्तज्ञो भृगुर्नः प्रपितामहः ।
आजगाम महादेव ह्यहव्याग्तो वनात् ॥४२

अब इस रीति से वह भृगु कुलोद्भूत राम सम्पूर्ण विश्व की आर्त्ति के हरण करने वाले महात्मा शम्भु के द्वारा बड़े ही आदर के साथ कहा गया था तब तो उन देवों के स्वामी और कृपा के सागर गुरु की सेवा में उस राम ने फिर एक बार प्रणाम करके बहुत ही शीघ्र निवेदन किया था ।३६। परशुराम ने कहा—हे भगवन् ! मैं भृगु मुनि के कुल में समुत्पन्न हुआ हूँ और हे विभो ! जमदग्नि ऋषि का पुत्र हूँ । मेरा नाम छोटा सा राम—यह है । आप तो समस्त जगत् की वन्दना करने के योग्य हैं । मैं ऐसे समय में आपकी शरणागति में प्रपन्न हुआ हूँ ।३७। हे नाथ ! जिस कार्य के लिए मैं आपकी सन्निधि में समागत हुआ हूँ । हे विश्वेश्वर ! उसको आप कृपा कर प्रसाधित कीजिए और मेरी कामना है कि अब आप मेरा वांछित जो भी है उसे मुझे प्रदान कीजिए ।३८। मेरे पिता जमदग्नि ने हे देव ! मृगया के लिए वन में आये हुए राजा कार्त्तवीर्य का बहुत अच्छी तरह से आतिथ्य-सत्कार किया था ।३९। उस महानन्द मति वाले राजा ने लोभ के वशीभूत होकर बलपूर्वक मेरे पिता को मार डाला था । जो एक धेनु थी जिसके ग्रहण करने का लालच राजा के मन में हो गया था वह होमधेनु भी मेरे पिता को मरा हुआ देखकर गो-लोक में चली गयी थी ।४०। राजा ने निरपराध मेरे पिता की मृत्यु के विषय में कुछ भी चिन्ता नहीं की थी और फिर वह अपने नगर में चला गया था । इसके पीछे मेरी माता रेणुका अत्यन्त रुदन कर रही थी ।४१। इस घटना का ज्ञान प्राप्त करके लोक के वृत्त के ज्ञाता हमारे पितामह भृगुमुनि हे महादेव ! वहाँ पर आ गये थे । मैं समिधा लेने के लिए उस समय में वन में गया हुआ था सो मैं भी इसी बीच में वहाँ पर समागत हो गया था ।४२।

मया सह मुदुःखार्त्तान्भ्रातॄन्मात्रा सहैव मे ।
सान्त्वयित्वा स मंत्रज्ञोऽजीवयत्पितरं मम ।।४३
अनागते भृगौ मातुर्दुःखेनाहं प्रकोपितः ।
प्रतिज्ञां कृतवान्देव सांत्वयन्मातरं स्वकाम् ।।४४
त्रिःसप्तकृत्वो यदुरस्ताडितं मातुरात्मनः ।
तावत्संख्यमहं पृथ्वीं करिष्ये क्षत्रवर्जिताम् ।।४५
इत्येवं परिपूर्णा मे कर्त्ता देवो जगत्पतिः ।
महादेवो ह्यतो नाथ त्वत्सकाशमिहागतः ।।४६
वसिष्ठ उवाच—
इत्येवं तद्वचः श्रुत्वा दृष्ट्वा दुर्गामुखं हरः ।
बभूवानम्रवदनश्चिन्तयानः क्षणं तदा ।।४७
एतस्मिन्नंतरे दुर्गा विस्मिता प्राहसद्भृगुम् ।
उवाच च महाराज भार्गवं वैरसाधकम् ।।४८
तपस्विन्द्विजपुत्र क्ष्मां निर्भूपां कर्त्तुमिच्छसि ।
त्रिः सप्तकृत्वः कोपेन साहसस्ते महान्वटो ।।४६

उस समय में मैं रुदन कर रहा था और अपनी माता के साथ मेरे सब भाई भी क्रन्दन कर रहे थे । उस मन्त्र शास्त्र के ज्ञाता मुनि ने सबको सान्त्वना देकर मेरे मृत पिता जमदग्नि को संजीवनी विद्या से जीवित कर दिया था ।४३। जब तक भृगु मुनि वहाँ पर नहीं आये थे उस बीच में मैं माता के वैधव्य के दुःख से बहुत ही कुपित हो गया था । हे देव ! मैंने अपनी माता को सान्त्वना देते हुए एक प्रतिज्ञा कर डाली थी ।४४। मेरी माता ने करुण क्रन्दन करते हुई ने जो इक्कीस बार अपना उरःस्थल ताड़ित किया था उसी गणना को लेकर ही मैंने यह प्रतिज्ञा की थी कि इक्कीस बार ही मैं इस पृथ्वी को क्षत्रियों से रहित कर दूँगा ।४५। यह इस रीति से की हुई मेरी प्रतिज्ञा परिपूर्ण हो जावे—इसके पूर्ण करने वाले जगत् के पति देवेश्वर आप ही हैं । आप तो सब से बड़े देव हैं । हे नाथ ! इसीलिए मैं अब आपके चरणों की सन्निधि में यहाँ पर आया हूँ ।४६। वसिष्ठजी ने कहा—भगवान् शंकर ने इस प्रकार से उस राम के वचनों का श्रवण करके जगज्जननी दुर्गा के मुख को ओर देखा था और उस समय में एक क्षण के लिए

नीचे की ओर अपना मुख करके चिन्तन करने वाले प्रभु शंकर हो गये थे ।४७। इसी अन्तर में जगदम्बा देवी दुर्गा विस्मित होती हुई अत्यधिक हँस गयी थीं । और हे महाराज ! बैर के साधक उस भार्गव राम से बोली ।४८। जगदम्बा ने कहा था कि हे तपस्विन् ! द्विज के पुत्र ! क्या तुम इस भूमण्डल को भूपों से विहीन करने की इच्छा कर रहे हो ? और वह भी एक-दो वार नहीं प्रत्युत कोप से इक्कीस बार ऐसा करना चाहते हो । हे वटो ! यह तो आपका एक बहुत ही महान साहस है ।४९।

हंतुमिच्छसि निःशस्त्रः सहस्त्रार्जुनमीश्वरम् ।
भ्रूभंगलीलया येन रावणोऽपि निराकृतः ।।५०
तस्मै प्रदत्तं दत्तेन श्रीहरेः कवचं पुरा ।
शक्तिरत्यर्थवीर्या च तं कथं हंतुमिच्छसि ।।५१
शंकरः करुणासिद्धः कर्त्तुं चाप्यन्यथा विभुः ।
न चान्यः शंकरात्पुत्र सत्कार्यं कर्त्तुमीश्वरः ।।५२
अथ देव्या अनुमतिं प्राप्य शंभुर्दयार्णवः ।
अभ्यधाद्भद्रया वाचा जमदग्निसुतं विभु ।।५३
शिव उवाच—
अद्यप्रभृति विप्र त्वं मम स्कन्दसमो भव ।
दास्यामि मंत्रं दिव्यं ते कवचं च महामते ।।५४
लीलया यत्प्रसादेन कार्त्तवीर्यं हनिष्यसि ।
त्रिःसप्तकृत्वो निर्भूपां महीं चापि करिष्यसि ।।५५
इत्युक्त्वा शंकरस्तस्मै ददौ मंत्रं सुदुर्लभम् ।
त्रैलोक्यविजयं नाम कवचं परमाद्भुतम् ।।५६

उस राजा सहस्रार्जुन का बिना ही शस्त्रों वाले होते हुए तुम हनन करने की इच्छा कर रहे हो जिसने अपनी भ्रूभङ्ग की लीला से अर्थात् जरा सी भृकुटी तिरछी करके रावण जैसे महापराक्रमी को भी निराहत कर दिया था अर्थात् अपने सामने निराहत करके भगा दिया था ।५०। उस राजा को तो पहिले दत्तात्रेय मुनि ने श्री हरि का कवच प्रदान किया था और अत्यन्त वीर्य से समन्वित एक शक्ति भी उसके लिए दी थी । उसको

तुम किस प्रकार से मार देना चाहते हो ? ।५१। भगवान् शंकर तो करुणा के अथाह् सागर हैं और करुणा से ही सिद्ध हो जाते हैं । यह विभु तो परम समर्थ हैं सभी कुछ अन्यथा भी कर सकते हैं । हे पुत्र ! भगवान् शंकर के के अतिरिक्त अन्य कोई भी इस कार्य के करने में समर्थ नहीं है ।५२। इसके अनन्तर देवी के इन वचनों से दया के सागर भगवान् शम्भु ने दुर्गा देवी की भी अनुमति प्राप्त कर ली थी और फिर विभु शम्भु ने जमदग्नि के पुत्र से परम भद्र वाणी के द्वारा कहा था ।५३। भगवान शिव ने कहा—हे विप्र ! आज से लेकर तुम मेरे पुत्र कार्तिकेय के समान हो जाओगे । हे महान् मति वाले ! मैं आपको परम दिव्य मन्त्र और कवच दे दूँगा ।५४। योंही विनाही किसी आयास के लीला ही से जिनके प्रसाद के प्रभाव से आप कार्त्तवीर्य का हनन कर दोगे और जैसी तुम्हारी प्रतिज्ञा है वह भी पूर्ण होगी और इक्कीस बार इस पृथ्वी को भी भूपों से रहित तुम कर दोगे ।५५। इतना यह इस रीति से कहकर भगवान् शम्भु ने उस परशुराम के लिए सुदुर्लभ मन्त्र प्रदान कर दिया था और तीनों लोकों का विजय करने वाला परम अद्भुत कवच भी उसे दे दिया था ।५६।

नागपाशं पाशुपतं ब्रह्मास्त्रं च सुदुर्ल्लभम् ।
नारायणास्त्रमाग्नेयं वायव्यं वारुणं तथा ।।५७
गांधर्वं गारुडं चैव जृंभणास्त्रं महाद्भुतम् ।
गदां शक्तिं च परशुं शूलं दण्डमनुत्तमम् ।।५८
शस्त्रास्त्रग्राममखिलं प्रहृष्टः संबभूव ह ।
नमस्कृत्य शिवं शांतं दुर्गां स्कन्दं गणेश्वरम् ।।५९
परिक्रम्य ययौ रामः पुष्करं तीर्थमुत्तमम् ।
सिद्धं कृत्वा शिवोक्तं तु मन्त्रं कवचमुत्तमम् ।।६०
साधयामास निखिलं स्वकार्यं भृगुनन्दनः ।
निहत्य कार्त्तवीर्यं तं ससैन्यं सकुलं मुदा ।
विनिवृत्तो गृहं प्रागात्पितुः स्वस्य भृगूद्वहः ।।६१

नागपाश—पाशुपत और सुदुर्लभ ब्रह्मास्त्र—नारायणास्त्र—आग्नेय—वायव्य-वारुण अस्त्र भी दिये थे ।५७। गान्धर्व-गारुड़ और परम अद्भुत जृम्भणा भी प्रदत्त कर दिया था । तथा गदा-शक्ति-शूल-उत्तम दण्ड उसको

दे दिया था ।५८। इस तरह सम्पूर्ण शस्त्रों और अस्त्रों के समूह को पाकर राम बहुत ही प्रसन्न हुआ था । फिर उस परशुराम ने परम शान्त शिव को—दुर्गा देवी को—स्वामी कार्त्तिकेय को और गणेश्वर की सेवा में प्रणिपात करके तथा इन सबकी परिक्रमा करके फिर वह राम परमोत्तम तीर्थ पुष्कर को वहाँ से चला गया था और वहाँ पर संस्थिति करते हुए भगवान् शिव के द्वारा बताये हुए उत्तम मन्त्र को और कवच को सिद्ध किया था ।५६-६०। फिर भृगु नन्दन ने बड़े ही आनन्द से सम्पूर्ण कुल और सेना के सहित राजा कार्त्तवीर्य का निहनन करके अपना पूर्ण कार्य साधित किया था । फिर वह राम अपने पिता के घर को विनिवृत्त होकर चला गया था ।६१।

—×—

।। मृगमृगी कथा ।।

सगर उवाच–

ब्रह्मपुत्र महाभाग महान्मेऽनुग्रहः कृतः ।
यदिदं कवचं मह्यं प्रकाशितमनामयम् ।।१
और्वेणानुगृहीतोऽहं कृतास्त्रो यदनुग्रहात् ।
भवतस्तु कृपापात्रं जातोऽहमधुना विभो ।।२
रामेण भार्गवेंद्रेण कार्त्तवीर्यो नृपो गुरो ।
यथा समापितो वीरस्तन्मे विस्तरतो वद ।।३
कृपापात्रं स दत्तस्य राजा रामः शिवस्य च ।
उभौ तौ समरे वीरौ जघटाते कथं गुरो ।।४

वसिष्ठ उवाच–

शृणु राजन्प्रवक्ष्यामि चरितं पापनाशनम् ।
कार्त्तवीर्यस्य भूपस्य रामस्य च महात्मनः ।।५
स रामः कवचं लब्ध्या मंत्रं चैव गुरोर्मुखात् ।
चकार साधनं तस्य भक्त्या परमया युतः ।।६
भूमिशायी त्रिषवणं स्नानसंध्यापरायणः ।
उवास पुष्करे राम शतवर्षमतंद्रितः ।।७

राजा सगर ने कहा—हे ब्रह्माजी के पुत्र ! आप तो महान् भाग वाले हैं। मेरे ऊपर आपने बड़ा भारी अनुग्रह किया है कि यह कवच जो कि अनामय है, मेरे सामने आपने प्रकाशित कर दिया है।१। कृतार्थ में औवे के द्वारा अनुग्रहीत हुआ हूँ। हे विभो ! इस समय में तो मैं आपकी कृपा का पात्र बन गया हूँ।२। हे गुरुदेव ! भार्गवेन्द्र परशुराम ने राजा कार्त्तवीर्य को जो बड़ा ही वीर था जिस प्रकार से समाप्त किया था वह सब विस्तार के साथ मेरे सामने वर्णन करके सुनाइए।३। वह राजा तो दत्तात्रेय मुनि की कृपा का पात्र था और राम भगवान शिव की अनुकम्पा का भाजन था। हे गुरुवर ! ये दोनों ही महान् वीर थे। समर क्षेत्र में किस प्रकार से इन्होंने युद्ध किया था।४। वसिष्ठ जी ने कहा—हे राजन् ! अब आप श्रवण कीजिए मैं इस चरित को बतलाऊँगा क्योंकि यह चरित तो पापों का विनाश कर देने वाला है। यह चरित महान् बलशाली राजा कार्त्तवीर्य का तथा महान् आत्मा वाले परशुराम के महायुद्ध का है।५। उन परशुराम ने गुरुदेव के मुख से इस कवच और मन्त्र की दीक्षा ग्रहण की थी फिर उन परशुराम ने बड़ी भारी भक्ति से युक्त होकर इनको सिद्ध किया था।६। भूमि पर इन्होंने शयन किया था—तीनों कालों में सन्ध्योपासना की थी और वह स्नान तथा सन्ध्या में परायण हो गये थे। इस प्रकार में यह सब साधना करते हुए राम बहुत ही समाहित होकर एक सौ वर्ष तक पुष्कर में रहे थे अर्थात् पुष्कर क्षेत्र में ही निवास किया था।७।

समित्पुष्पकुशादीनि द्रव्याण्यहरहर्भृगो: ।
आनीय काननाद्भूप प्रायच्छदकृतव्रण: ॥८
सततं ध्यानसंयुक्तो रामो मतिमतां वर: ।
आराधयामास विभुं कृष्णं कल्मषनाशनम् ॥९
तस्यैवं यजमानस्य रामस्य जगतीपते ।
गतं वर्षशतं तत्र ध्यानयुक्तस्य नित्यदा ॥१०
एकदा तु महाराज राम: स्नातुं गतो महान् ।
मध्यमं पुष्करं तत्र ददर्शाश्चर्यमुत्तमम् ॥११
मृग एक: समायातो मृग्या युक्त: पलायित: ।
व्याधस्य मृगयां प्राप्तो घर्मतप्तोऽतिपीडित: ॥१२

पिपासितो महाभाग जलपानसमुत्सुकः ।
रामस्य पश्यतस्तत्र सरसस्तटमागतः ॥१३
पश्चान्मृगी समायाता भीता सा चकितेक्षणा ।
उभौ तौ पिबतस्तत्र जलं शंकितमानसौ ॥१४

हे भूप ! अकृतव्रण प्रतिदिन उस भृगुवंशज परशुराम के लिए वन से समिधा पुष्प और कुशा आदि द्रव्यों को लाकर दिया करता था ।८। मतिमानों में परम श्रेष्ठ परशुराम निरन्तर ध्यान में संलग्न होकर समस्त कल्मषों के विनाश करने वाले विभु श्रीकृष्ण की आराधना किया करता था ।९। हे जगतीपते ! इस रीति से यजन करते हुए और वहाँ पर नित्य ही ध्यान में से सक्त रहने वाले परशुराम को एक सौ वर्ष व्यतीत हो गये थे ।१०। हे महाराज ! एक बार वह महान राम स्नान करने के लिए मध्यम पुष्कर में गया था और वहाँ पर उसने उत्तम आश्चर्य का अवलोकन किया था ।११। एक मृग मृगी के साथ दौड़ा हुआ वहाँ पर आया था जो एक व्याध की मृगया को प्राप्त हो रहा था तथा श्रम से सन्तप्त होकर अत्यन्त पीड़ित था ।१२। हे महाभाग ! बहुत ही प्यासा था और जलपान करने के लिए बड़ा ही उत्सुक हो रहा था परशुराम उसको देख रहे थे कि वहाँ पर उस सरोवर के तट पर समागत हो गया था ।१३। इसके पीछे-पीछे मृगी भी वहाँ पर आ गयी थी जो बहुत ही डरी हुई थी और उसके नेत्र चकित हो रहे थे । वे दोनों ही बहुत शङ्कित मन वाले होते हुए वहाँ पर जलपान कर रहे हैं ।१४।

तावत्समागतो व्याधो बाणपाणिर्धनुर्द्धरः ।
स दृष्ट्वा तत्र संविष्टं रामं भार्गवनन्दनम् ॥१५
अकृतव्रणसंयुक्तं तस्थौ दूरकृतेक्षणः ।
स चिन्तयामास तदा शंकितो भृगुनन्दनात् ॥१६
अयं रामो महावीरो दुष्टानामंतकारकः ।
कथमेतस्य हन्म्येतौ पश्यतो मृगयामृगौ ॥१७
इति चिन्तासमाविष्टो व्याधो राजन्यसत्तम ।
तस्थौ तत्रैव रामस्य भयात्संत्रस्तमानसः ॥१८

रामस्तु तौ मृगौ दृष्ट्वा पिबंतौ सभयं जलम् ।
तर्कयामास मेधावी किमत्र भयकारणम् ॥१९

नैवात्र व्याघ्रसंनादो न च व्याधो हि दृश्यते ।
केनैतो कारणेनाहो शंकितौ चकितेक्षणौ ॥२०

अथ वा मृगजातिर्हि निसर्गाच्चकितेक्षणा ।
येनैतौ जलपानेऽपि पश्यतश्चकितेक्षणौ ॥२१

उसी समय में धनुष धारण किये हुए हाथ में बाण ग्रहण कर वहाँ पर व्याध भी आ गया था । उस व्याध ने वहाँ पर विराजमान परशुराम को देखा था ।१५। उस राम ही समीप में अकृत व्रण भी बैठा हुआ था । वह व्याध दूर तक अपनी दृष्टि डाले हुए वहीं पर ठहर गया था और उस व्याध का मन भृगुनन्दन राम से उस समय में शंकित हो गया था और विचार किया था ।१६। यह परशुराम तो महान वीर हैं और दुष्टों का विनाश कर देने वाला है । अब मैं इसके देखते हुए इन दोनों शिकार वाले मृगी और मृग का हनन करूँ ।१७। हे राजन्यों में परम श्रेष्ठ ! वह व्याध इस प्रकार से चिन्ता में डूबा हुआ परशुराम के भय से संत्रस्त मन वाला होकर वहीं पर स्थित हो गया था ।१८। परशुराम ने उन दोनों मृगों को देखा था कि बड़े ही भय के साथ वहाँ पर जल पी रहे थे । उस मेधावी राम ने मन में विचार किया था कि यहाँ पर इनके लिए भय होने का क्या कारण है ।१९। यहाँ पर किसी व्याघ्र की गर्जना की ध्वनि भी नहीं है और न यहाँ पर कोई व्याध ही दिखाई दे रहा है फिर किस कारण से ये दोनों मृग शंकित नेत्रों वाले तथा चकित दृष्टि से युक्त हो रहे हैं—यह बड़े आश्चर्य की बात है ।२०। अथवा यही कारण हो सकता है कि इन मृगों की जाति ही स्वाभाविक रूप से चकित नेत्रों वाली हुआ करती है । इस कारण से ही ये दोनों जलपान करने में भी चकित नेत्रों वाले होते हुए देख रहे हैं ।२१।

नैतावत्कारणं चात्र किं तु खेदभयातुरौ ।
लक्ष्यैते खिन्नसर्वांगौ कम्पयुक्तौ यतस्त्विमौ ॥२२

एवं संचित्य मतिमान्स तस्थौ मध्यपुष्करे ।
शिष्येण संयुतो रामो यावत्तौ चापि संस्थितौ ॥२३

पीत्वा जलं ततस्तौ तु वृक्षच्छायासमाश्रितौ ।
रामं दृष्ट्वा महात्मानं कथां तौ चक्रतुर्मुदा ॥२४

मृग्युवाच—कांत चात्रैव तिष्ठावो यावद्रामोऽत्र संस्थितः ।
अस्य वीरस्य सांनिध्ये भयं नैवावयोर्भवेत् ॥२५

अत्राप्यागत्य चेद्व्याधो ह्यावयोः प्रहरिष्यति ।
दृष्टमात्रो हि मुनिना भस्मीभूतो भविष्यति ॥२६

इत्युक्ते वचने मृग्या रामदर्शनतुष्टया ।
मृगश्चोवाच हर्षेण समाविष्टः प्रियां स्वकाम् ॥२७

एवमेव महाभागे यद्वै वदसि भामिनि ।
जानेऽहमपि रामस्य प्रभावं सुमहात्मनः ॥२८

यहाँ पर इतना ही कारण नहीं है किन्तु ये दोनों तो बड़े खेद और भय से आतुर हो रहे हैं—ऐसे ही दिखलाई दे रहे हैं। क्योंकि इनके सभी अङ्ग खिन्नता से संयुत हैं और ये दोनों ही कम्प से प्रकम्पित हो रहे हैं।२२। इस तरह से चिन्तन करके मतिमान् वह परशुराम मध्य पुष्कर में संस्थित हो गया था और उसके साथ में शिष्य भी था। वह राम जब तक वहाँ खड़ा रहा था तब तक वे दोनों मृग भी वहाँ पर संस्थित रहे थे।२३। जल-पान करके वे दोनों मृग एक वृक्ष की छाया का आश्रय ग्रहण करके बैठ गये थे। उस महान् आत्मा वाले परशुराम का दर्शन करके उन दोनों ने बड़े ही आनन्द के साथ आपस में बातचीत की थी।२४। मृगी ने मृग से कहा—हे कान्त ! हम दोनों यहाँ पर स्थित रहेंगे जब तक यह परशुराम यहाँ पर संस्थित रहते हैं। इस वीर के समीप में हम दोनों को कोई भय नहीं होगा।२५। यदि यहाँ पर भी व्याध आकर हम दोनों पर प्रहार करेगा तो इस मुनि के द्वारा केवल देखने ही से वह भस्मीभूत हो जायगा।२६। परशुराम के दर्शन करने से परम सन्तुष्ट मृगी के द्वारा इस प्रकार से यह वचन कहने पर वह मृग भी बड़े ही हर्ष से समाविष्ट होकर अपनी प्रिया से बोला था।२७। हे महाभागे ! यह बात तो इसी प्रकार की है। हे भामिनि ! आप यह बात निश्चित ही कह रही हैं। मैं भी परम महान् आत्मा वाले राम के प्रभाव को अच्छी तरह से जानता हूँ।२८।

योऽयं संदृश्यते चास्य पार्श्वे शिष्योऽकृतव्रणः ।
स चानेन मताभागस्त्रातो व्याघ्रभयातुरः ।।२९
अयं रामो महाभागे जमदग्निसुतोऽनुजः ।
पितरं कार्त्तवीर्येण दृष्ट्वा चैव तिरस्कृतम् ।।३०
चकारातितरां क्रुद्धः प्रतिज्ञां नृपघातिनीम् ।
तत्पूर्तिकामो ह्यगद्ब्रह्मलोकं पुरा ह्ययम् ।।३१
स ब्रह्मा दिष्टवांश्चैनं शिवलोकं व्रजेति ह ।
तस्य त्वाज्ञां समादाय गतोऽसौ शिवसन्निधिम् ।।३२
प्रोवाचखिलवृत्तांतं राज्ञश्चाप्यात्मनः पितुः ।
स कृपालुर्महादेवः सभाज्य भृगुनन्दनम् ।।३३
ददौ कृष्णस्य सन्मंत्रमभेद्यं कवचं तथा ।
स्वीयं पाशुपतं चास्त्रमन्यास्त्रग्राममेव च ।।३३
विसर्जयामास मुदा दत्त्वा शस्त्राणि चादरात् ।
सोऽयमत्रागतो भद्रे मंत्रसाधनतत्परः ।।३५

जो इस महापुरुष के समीप में अकृतव्रण नाम वाला एक शिष्य दिखाई दे रहा है उसको इसी महापुरुष ने ही व्याघ्र के भय से जब यह आतुर हो गया तो इसकी व्याघ्र से सुरक्षा की थी ।२९। हे महाभागे ! यह राम है जो जमदग्नि मुनि का पुत्र है । इसने ही अपने पिता को राजा कार्तवीर्य के द्वारा निराकृत किया हुआ देखा था और उस समय में इसने अत्यन्त क्रुद्ध होकर नृपों के विघात करने की प्रतिज्ञा की थी और उस प्रतिज्ञा की पूर्त्ति की कामना वाला यह पहिले ब्रह्म लोक में गया था ।३०-३१। वहाँ पर इसको यह निर्देश किया था कि यह शिवलोक में चला जावे । उन ब्रह्माजी की आज्ञा को प्राप्त करके फिर यह राम भगवान् शिव की सन्निधि में प्राप्त करके फिर यह राम भगवान् शिव की सन्निधि में प्राप्त हुआ ।३२। और वहाँ पर इसने भगवान् शम्भु के समक्ष राजा का, पिता का और अपना सम्पूर्ण वृत्तान्त निवेदित किया था । वे महादेव बहुत ही कृपालु थे उन्होंने इस भृगुनन्दन का स्वागत किया था ।३३। फिर उन शङ्कर प्रभु ने श्रीकृष्ण का एक उत्तम मन्त्र और न भेदन करने के योग्य एक कवच इसको

प्रदान कर दिया था तथा अपना पाशुपत अस्त्र और अन्यान्य बहुत से अस्त्रों का समुदाय इसको प्रदान किये थे ।३४। बड़े आदर के साथ प्रीति से इन सब शस्त्रास्त्रों को प्रदान करके भगवान् शिव ने वहाँ से विदा किया था। हे भद्रे ! वही राम इस समय में मन्त्रों की साधना में तत्पर होता हुआ यहाँ पर समागत हुआ है ।३५।

नित्यं जपति धर्मात्मा कृष्णस्य कवचं सुधीः ।
शतवर्षाणि चाप्यस्य गतानि सुमहात्मनः ॥३६
मंत्रं साधयतो भद्रे न च तत्सिद्धिरेति हि ।
अत्रास्ति कारणं भक्तिः सा च वै त्रिविधा मता ॥३७
उत्तमा मध्यमा चैव कनिष्ठा तरलेक्षणे ।
शिवस्य नारदस्यापि शुकस्य च महात्मनः ॥३८
अम्बरीषस्य राजर्षे रंतिदेवस्य मारुतेः ।
बलेर्विभीषणास्यापि प्रह्लादस्य महात्मनः ॥३९
उत्तमा भक्तिरेवास्ति गोपीनामुद्धवस्य च ।
वसिष्ठादिमुनीशानां मन्वादीनां शुभेक्षणे ॥४०
मध्या च भक्तिरेवास्ति प्राकृतान्यजनेषु सा ।
मध्यभक्तिरयं रामो नित्यं यमपरायणः ॥४१
सेवते गोपिकाधीशं तेन सिद्धि न चागतः ।
वशिष्ठ उवाच–
इत्युक्ता त्वरितं कांतं सा मृगी हृष्टमानसा ॥४२
पुनः पप्रच्छ भक्तेस्तु लक्षणं प्रेमदायकम् ।
मृग्युवाच–
साधु कांत महाभाग वचस्तेऽलौकिकं प्रिय ।
ईदृग् ज्ञानं तव कथं संजातं तद्वदाधुना ॥४३

सुधी यह धर्मात्मा परशुराम नित्य ही भगवान् श्रीकृष्ण के कवच का यहाँ पर जप कर रहा है । इस महात्मा को जाप करते हुए एक सौ वर्ष तो व्यतीत हो गये हैं ।३६। हे भद्रे ! यह मन्त्र की साधना तो कर रहा है किन्तु

इसको उसकी सिद्धि नहीं हो रही है। इस साधना में मुख्य कारण भक्ति ही होता है। वह भक्ति तीन प्रकार की होती है, ऐसा माना गया है।३७। हे चञ्चल नेत्रों वाली प्रिये ! उस भक्ति के उत्तम-मध्यम और कनिष्ठ—ये तीन भेद हुआ करते हैं। अब यह बतलाता हूँ कि उत्तमा भक्ति किन-किन महापुरुषों में विद्यमान है—भगवान् शिव-देवर्षि नारद-महात्मा शुकदेव-राजर्षि अम्बरीष-राजा रन्तिदेव-पवनसुत हनुमान्-राजा बलि-दानव विभीषण और महात्मा प्रह्लाद-इन में परमोत्तमा भक्ति होती है।३८-३९। व्रज की गोपियों में और उद्धव में भी उत्तम प्रकार की ही भक्ति विद्यमान है। हे शुभेक्षणे ! जो वसिष्ठ मुनिश हैं तथा मनु आदि है उनमें भी मध्यम श्रेणी की ही भक्ति होती है। इसके अतिरिक्त अन्य सभी जनों में कनिष्ठ श्रेणी की प्राकृत भक्ति हुआ करती है। यह जो परशुराम है इसमें मध्य श्रेणी वाली ही भक्ति है जो कि नित्य ही यम-नियमों में परायण हो रहा है।४०-४१। यह राम गोपिकाओं के अधीश्वर भगवान् का सेवन तो कर रहा है किन्तु यह सिद्धि को अभी तक प्राप्त नहीं हुआ है। महामुनीन्द्र वसिष्ठ जी ने कहा—जब उस मृग के द्वारा अपनी प्रिया मृगी से कहा गया था तो उस मृगी ने परम प्रसन्न मन वाली होकर शीघ्र ही अपने स्वामी से प्रश्न किया था।४२। उस मृगी ने फिर उस भक्ति का प्रेम प्रदान करने वाला लक्षण अपने स्वामी से पूछा था। मृगी ने कहा—हे कान्त ! आप तो महान् भाग वाले हैं। हे प्रिय ! आपके ये वचन तो बहुत ही अच्छे और अलौकिक हैं। अब आप कृपा करके मुझे यह बतलाइए कि इस प्रकार का विशद ज्ञान आपके हृदय में कैसे समुद्भूत हो गया है।४३।

मृग उवाच—

शृणु प्रिये महाभागे ज्ञानं पुण्येन जायते ।।४४
तत्पुण्यमद्य संजातं भार्गवस्यास्य दर्शनात् ।
पुण्यात्मा भार्गवश्चायं कृष्णभक्तो जितेंद्रियः ।।४५
गुरुशुश्रूषको नित्यं नित्यनैमित्तिकादरः ।
अतोऽस्य दर्शनाज्जातं ज्ञानं मेऽद्यैव भामिनि ।।४६
त्रैलोक्यस्थितसत्त्वानां शुभाशुभनिदर्शकम् ।
अद्यैव विदितं मेऽभूद्रामस्यास्य महात्मनः ।।४७

चरितं पुण्यदं चैव पापघ्नं शृण्वतामिदम् ।
यद्यत्करिष्यते चैव तदपि ज्ञानगोचरम् ।।४८
योत्तमा भक्तिराख्याता तां विना नैव सिद्धयति ।
कवचं मंत्रसहितं ह्यपि वर्षायुतायुतैः ।।४९

अपनी परम प्रिया के द्वारा इस रीति से पूछे जाने पर उस मृग ने कहा था—हे महान् भाग वाली प्रिये ! अब आप श्रवण कीजिए कि यह ज्ञान जो होता है वह परम उत्कृष्ट पुण्य से ही हुआ करता है ।४४। वह उस प्रकार का पुण्य आज इन्हीं महापुरुष भार्गव परशुराम के दर्शन प्राप्त करने ही से समुत्पन्न हो गया है । यह भार्गव महान् पुण्यात्मा हैं और यह भगवान् श्रीकृष्ण के परम भक्त तथा अपनी इन्द्रियों को जीत लेने वाले हैं ।४५। हे भामिनि ! यह राम अपने गुरु की शुश्रूषा करने वाले हैं और प्रतिदिन नित्य कर्मों तथा नैमित्तिक कर्मों में बड़ा आदर करने वाले हैं । इसलिए आज ही इस महापुरुष के दर्शन से मेरे हृदय में यह अद्भुत ज्ञान समुत्पन्न हो गया है ।४६। यह मेरा ज्ञान ऐसा है जो इस त्रिभुवन में संस्थित जीव हैं उन सबके शुभ और अशुभ कर्मों को बता देने वाला है और आज ही मुझे महात्मा इस परशुराम का भी पूर्ण चरित विदित हो गया है ।४७। इसका चरित बहुत ही पुण्य का देने वाला है और समस्त पापों का विनाशक है । अब तुम इसका श्रवण करो । यह राम भविष्य में जो-जो भी कर्म करेंगे वह भी सब मेरे ज्ञान का गोचर हो रहा है अर्थात् मुझे सब ज्ञात हो गया है ।४८। मैंने जो आपके सामने उत्तम प्रकार की भक्ति का वर्णन किया था उस तरह भी भक्ति के बिना इस परशुराम को यह मन्त्र और कवच दश सहस्र वर्षों में भी कभी सिद्ध नहीं होगा ।४९।

यद्ययं भार्गवो भद्रे ह्यगस्त्यानुग्रहं लभेत् ।
कृष्णप्रेमामृतं नाम स्तोत्रमुत्तमभक्तिदम् ।।५०
ज्ञात्वा च लप्स्यते सिद्धिं मंत्रस्य कवचस्य च ।
स मुनिर्ज्ञाततत्त्वार्थः सानुकंपोऽभयप्रदः ।।५१
उपदेक्ष्यति चैवैनं तत्त्वज्ञानं मुदावहम् ।
श्रीकृष्णचरितं सर्वं नामभिर्ग्रथितं यतः ।।५२
कृष्णप्रेमामृतस्तोत्राज्ज्ञास्यतेऽस्य महामतिः ।

ततः संसिद्धकवचो राजानं हैहयाधिपम् ।।५३

हत्वा सपुत्रामात्यं च ससुहृद्बलवाहनम् ।

त्रिःसप्तकृत्वो निर्भूपां करिष्यत्यवनीं प्रिये ।।५४

वसिष्ठ उवाच–

एवमुक्त्वा मृगो राजन्विरराम मृगीं ततः ।

आत्मनो मृगभावस्य कारणं ज्ञातवांश्च ह ।।५५

यदि यह भार्गव परशुराम हे भद्रे ! अगस्त्य मुनि की कृपा को प्राप्त कर लेवे तो इसको सिद्धि हो सकती है । अगस्त्य मुनि उत्तम भक्ति के देने वाले कृष्ण प्रेमामृत नाम का स्तोत्र जानते हैं ।५०। उन महामुनि की कृपा से यदि उस स्तोत्र का ज्ञान प्राप्त कर लेवे तो उसको जानकर यह मन्त्र की और कवच की सिद्धि को प्राप्त कर लेगा । वह अगस्त्य मुनि तो तत्त्वों के अर्थ को जाने हुए हैं और वे बहुत ही दयालु तथा अभय के प्रदान करने वाले हैं ।५१। वे मुनि उस आनन्द-प्रद तत्त्व ज्ञान का इस राम के लिये उपदेश कर देंगे क्योंकि भगवान् श्रीकृष्ण का सम्पूर्ण चरित उनके सुनामों से ही ग्रथित है ।५२। श्रीकृष्ण मृत स्तोत्र से इस राम की महामति ज्ञान प्राप्त कर लेगी । फिर इसको इस कवच की संसिद्धि हो जायगी और कवच की सिद्धि वाला यह राम हैहयों के अधिय राजा का हनन पुत्र-पौत्र, मन्त्रीगण, मित्र-वर्ग-सेना और समस्त वाहनों के सहित करके हे प्रिये ! फिर वह परशुराम इस मेदिनी को निश्चित रूप से इक्कीस बार क्षत्रिय राजाओं से रहित कर देगा—इसमें कुछ भी संशय नहीं है । श्री वसिष्ठजी ने कहा—इतना यह सब अपनी प्रिया मृगी से कहकर हे राजन् ! फिर वह मृग शान्त हो गया था और उसने मृग होने के भाग के कारण को भी उस समय में जान लिया था ।५३-५४-५५।

—×—

।। परशुराम का अगस्त्याश्रम में आगमन ।।

सगर उवाच–

मुने परमतत्त्वज्ञ ध्यानज्ञानार्थकोविद ।

भगवद्भक्तिसंलीनमानसानुग्रहः कृतः ।।१

त्वयापि हि महाभाग यतः शंससि सत्कथाः ।

श्रुत्वा मृगमुखात्सर्वं भार्गवस्य विचेष्टितम् ॥२
भूत भवद्भविष्यं च नारायणकथान्वितम् ।
पुनः प्रपच्छ किं नाथ तन्मे वद सविस्तरम् ॥३
वसिष्ठ उवाच–
श्रृणु राजन्प्रवक्ष्यामि मृगस्य चरितं महत् ।
यथा पृष्टं तया सोऽस्यै वर्णयामास तत्त्ववित् ॥४
श्रुत्वा तु चरितं तस्य भार्गवस्य महात्मनः ।
भूयः पप्रच्छ तं कांतं ज्ञानतत्त्वार्थमादरात् ॥५
मृग्युवाच–
साधु साधु महाभाग कृतार्थस्त्वं न संशयः ।
यदस्य दर्शनात्तेऽद्य जातं ज्ञानमतींद्रियम् ॥६
अथातश्चात्मनः सर्वं ममापि वद कारणम् ।
कर्मणा येन संप्राप्तावावां तिर्यग्जनि प्रभो ॥७

राजा नगर ने कहा—हे मुनिवर ! आप तो परम तत्त्वों के ज्ञाता हैं और आप तत्त्वों के ध्यान तथा ज्ञान के अर्थों के महान् मनीषी हैं। आप तो भगवान् की भक्ति से संलीन मन वाले हैं और उसी मन से आपने अनुग्रह किया है। हे महाभाग ! आप तो बहुत ही अच्छी कथाओं का कथन कर रहे हैं। उस मृगी ने अपने स्वामी मृग के मुख से भार्गव परशुराम का सम्पूर्ण विचेष्टित श्रवण करके तथा भूत-वर्त्तमान और भविष्य में होने वाले रामायण की कथा से समन्वित वृत का स्रवण करके हे नाथ ! उसने पुनः क्या पूछा था—यह पूर्ण विस्तार के सहित हमारे सामने वर्णन करने की कृपा कीजिए ।१-३। वसिष्ठजी ने कहा—हे राजन् ! मैं आपके आगे उस मृग का जो महान चरित है उसे भली भाँति बतलाऊँगा। आप उसका श्रवण कीजिए। जिस प्रकार से जो भी उस मृगी ने उस मृग से पूछा था उस सबको तत्त्वों के ज्ञाता उसने उस मृगी के समक्ष में वर्णन कर दिया था ।४। उस महान आत्मा वाले भार्गव का चरित्र श्रवण करके उस मृगी ने फिर बड़े ही आदर से अपने स्वामी से ज्ञान के तत्व का अर्थ पूछा था ।५। मृगी ने कहा—हे महाभाग ! बहुत ही अच्छा और परम सुन्दर है। आप तो

कृतार्थ हैं--इसमें लेशमात्र भी संशय नहीं है कि आज इन परशुराम के दर्शन करने से आपको ऐसा ज्ञान उत्पन्न हो गया है जो इन्द्रियों की पहुँच से भी दूर है।६। इसीलिए इसके पश्चात् अपनी आत्मा का सम्पूर्ण कारण मुझे भी कृपा करके बतलाइए। हे प्रभो ! ऐसा वह क्या कर्म हमने किया था जिसके कारण से हम दोनों ने यह पशु की तिर्यग् योनि प्राप्त की है।७।

इति वाक्यं समाकार्ण्य प्रियायाः स मृगः स्वयम् ।
वर्णयामास चरितं मृग्याश्चैवात्मनस्तदा ॥८
मृग उवाच–
शृणु प्रिये महाभागे यथाऽऽवां मृगतां गतौ ।
संसारेऽस्मिन्महाभागे भावोऽय भवकारणम् ॥९
जीवस्य सदसद्भ्यां हि कर्मभ्यामागतः स्मृतिम् ।
पुरा द्रविडदेशे तु नानाऋद्धिसमाकुले ॥१०
ब्राह्मणानां कुले वाऽहं जात; कौशिकगोत्रिणाम् ।
पिता मे शिवदत्तोऽभून्नाम्ना शास्त्रविशारदः ॥११
तस्य पुत्रा वयं जाताश्चत्वारो द्विजसत्तमाः ।
ज्येष्ठो रामोऽनुजस्तस्य धर्मस्तस्यानुजः पृथुः ॥१२
चतुर्थोऽहं प्रिये जातो सूरिरित्यभिविश्रुतः ।
उपनीय क्रमात्सर्वाश्छिवदत्तो महायशाः ॥१३
वेदान ध्यापयामास सांगांश्च सरहस्यकान् ।
चत्वारोऽपि वयं तत्र वेदाध्ययनतत्पराः ॥१४

उस मृग ने इस अपनी प्रिया के वाक्य का श्रवण करके स्वयं ही उस समय में अपना और अपनी प्रिया मृगी का चरित वर्णन किया था।८। मृग ने कहा—हे महाभाग वाली प्रिये ! अब आप सुनिए कि जिस प्रकार से हम तुम दोनों उस मृग की जाति में देह धारण करने वाले हुए हैं। हे महाभागे ! इस संसार में इस भव अर्थात् जन्म के ग्रहण करने का कारण एक मात्र भाव ही हुआ करता है। तात्पर्य यह है कि जैसी भावना जिसकी होगी वह वैसा ही उसके अनुरूप जन्म धारण किया करता है।९। जो भी जीव के सद् और असत् कर्म होते हैं उनसे ही यह स्मृति को प्राप्त होता है।

बहुत पहिले अनेक प्रकार की ऋद्धियों से पूर्ण द्रविड़ देश में कौशिक गोत्र वाले ब्राह्मणों के कुल में मैंने जन्म ग्रहण किया था। मेरे पिता नाम से शिव दत्त हुए थे जो कि शास्त्रों के अच्छे विद्वान् थे।१०-११। उन शिवदत्त नाम-धारी विप्र के परम श्रेष्ठ द्विज हम चार पुत्र समुत्पन्न हुए थे। सबमें बड़ा राम था, उससे छोटा भाई धर्म था और उससे भी छोटा भाई पृथु नाम वाला हुआ था।१२। हे प्रिये ! चौथा भाई मैं उत्पन्न हुआ था जो सूरि—इस नाम से प्रसिद्ध था। महा यशस्वी उस शिवदत्त ने क्रम से सबका उप-नयन संस्कार करा दिया था।१३। और फिर उसने हम सबको रहस्य के सहित तथा समस्त वेद के अङ्ग शास्त्रों के साथ वेदों का अध्यापन किया था अर्थात् साङ्ग सम्पूर्ण वेदों को पढ़ाया था।१४।

गुरुशुश्रूषणे युक्ता जाता ज्ञानपरायणाः।
गत्वाऽरण्यं फलान्यंबुसमित्कुशमृदोऽन्वहम् ॥१५
आनीय पित्रे दत्त्वाथ कुर्मोऽध्ययनमेव हि।
एकदा तु वयं सर्वे संप्राप्ता पर्वते वने ॥१६
औद्भिदं नाम लोलाक्षि कृतमालातटे स्थितम्।
सर्वे स्नात्वा महानद्यामुषसि प्रीतमानसाः ॥१७
दत्तार्घाः कृतजप्याश्च समारूढा नगोत्तमम्।
शालैस्तमालैः प्रियकैः पनसैः कोविदारकैः ॥१८
सरलार्जुनपूगैश्च खर्जूरैर्नारिकेलकैः।
जंबूभिः सहकारैश्च कटुफलैर्बृहतीद्रुमैः ॥१९
अन्यैर्नानाविधैर्वृक्षैः परार्थप्रतिपादकैः।
स्निग्धच्छायैः समाहूतनानापक्षिनिनादितैः ॥२०
शार्दूलहरिभिर्भल्लैर्गंडकैर्मृगनाभिभिः।
गजेंद्रैः शरभाद्यैश्च सेवितं कन्दरागतैः ॥२१

हम सभी भाई गुरु की शुश्रूषा में निरत रहा करते थे और बहुत ही ज्ञान में परायण हो गये थे। प्रतिदिन वन में जाकर फल—जल—समिधा—कुशा और मृत्तिका लाया करते थे।१५। ये सब वस्तुएँ वन से लाकर अपने पिता को दिया करते थे और फिर इसके अनन्तर अपना अध्ययन ही किया

करते थे। एक बार ऐसा हुआ था कि हम सब वन में पर्वत पर पहुँच गये ।१६। हे चञ्चल नेत्रों वाली! कृतमाला नदी के तट पर औद्भि नाम वाला वहाँ स्थित था। हम सबने प्रातःकाल की बेला में उसी नदी में स्नान किया था और बहुत ही प्रसन्न मन वाले हो गये थे ।१७। हम सबने सूर्य देव को अर्घ्य दिया था और जाप करके हम सब उस उत्तम पर्वत पर समारूढ़ हो गये थे। अब वहाँ की वृणावली की प्राकृतिक छटा का वर्णन किया जाता है—वह स्थल ऐसा अत्यधिक रमणीय था कि वहाँ पर शाल-तमाल-प्रियक-पनस-कोविदार-सरल-अर्जुन-पूग-खजूर-नारिकेल-जम्बू-सहकार-कटुफल और बृहती के वृक्ष लगे थे ।१८-१६। इनके अतिरिक्त अन्य भी वहाँ पर अनेक प्रकार के तरुवर थे जो दूसरों के अर्थ का प्रतिपादन करने वाले थे। अर्थात् पुष्प-फलादि से द्वारा दूसरे जीवों का उपकार करने वाले थे। उन वृक्षों की छाया बहुत ही घनी थी और उन पर दूर-दूर से पक्षी गण उन पर समावृष्ट होकर अपना कलख कर रहे थे ।२०। उस पर्वतीय महारण्य में विविध प्रकार के वन्य हिंस्र जीव भी भ्रमण कर रहे थे। शार्दूल-भल्ल-हरि-गण्डक-मृगनाभि-गजेन्द्र और शरभ आदि बहुत हिंसक अपनी-अपनी कन्दरा में निवास करते हुए उसका सेवन कर रहे थे ।२१।

मल्लिकापाटलाकुन्दकर्णिकारकदंबकैः ।
सुगंधिभिर्वृतं चान्यैर्वातोद्धूतपरागिभिः ।।२२
नानाणिगणाकीर्णैर्नीलपीतसितारुणैः ।
शृंगैः समुल्लिखंतं च व्योम कौतुकसंयुतम् ।।२३

अत्युच्चपातध्वनिभिर्निर्झरैः कंदरोद्गतैः ।
गर्ज्जंतमिव संसक्तं व्यालाद्यैर्मृगपक्षिभिः ।।२४
तत्रातिकौतुकाहृष्टदृष्टयो भ्रातरो वयम् ।
नास्मार्ष्म चात्मनाऽत्मानं वियुक्ताश्च परस्परम् ।।२५

एतस्मिन्नंतरे चैका मृगी ह्यागात्पिपासिता ।
निर्झरापात शिरसि पातुकामा जलं प्रिये ।।२६
तस्याः पिबंत्यास्तु जलं शार्दूलोऽतिभयंकरः ।
तत्र प्राप्तो यदृच्छातो जगृहे तां भयार्दिताम् ।।२७

अहं तद्ग्रहणं पश्यन्भयेन प्रपलायित: ।
अत्युच्चवस्त्वात्पतितो मृतश्चैणीमनुस्मरन् ।।२८

वहाँ वन में अनेक सुन्दर एवं सुरभित सुमनों वाले द्रुम और लताएँ भी समुत्पन्न हुए थे जिनमें कदम्ब-मल्लिका-पाटल-कुन्द-कर्णिकार आदि थे। इनके अतिरिक्त अन्य भी ऐसे वृक्ष थे जिनके पराग वायु से उड़ रहा था और वह वन सुगन्धित उन गुल्मलता और द्रुमों से समाकीर्ण था।२२। उस पर्वत में अनेक नील-सित-पीत अरुण वर्ण वाली मणियाँ थीं। उसकी शिखरें इतनी अधिक उच्च थीं कि वे मानों व्योम में पहुँच कुछ उल्लेख कर रही हों। इस तरह से वह पर्वत बहुत से कौतुकों से समन्वित था।२३। वहाँ बहुत ही ऊँचाई से गिरने के कारण घोर गम्भीर ध्वनि वाले अनेक झरने थे। ऐसा प्रतीत हो रहा था मानो कन्दराओं में स्थित व्यालादि मृगों और पक्षियों की गर्जना से वह संसक्त है।२४। वहाँ पर अत्यधिक कौतुकों से युक्त वह स्थल था। मैंने अपनी आत्मा से अपने आपको स्मरण नहीं किया था अर्थात् मैं अपने आपको भूल गया था तथा हम सब परस्पर में एक दूसरे से विमुक्त हो गये थे क्योंकि हम सब भाई वहाँ अत्यधिक कौतुकों से हृष्ट दृष्टि वाले हो गये थे।२५। इसी बीच में वहाँ पर एक मृगी बहुत ही प्यासी आ गयी थी। हे प्रिये ! वह मृगी जहाँ पर एक झरना गिर रहा था उसके ही शिर में वह जलपान करने की इच्छा वाली थी।२६। वह बिचारी जब जल पी रही थी तो वहाँ पर एक महान भयङ्कर शार्दूल आ पहुँचा था जो अपनी ही इच्छा से घूमता हुआ आ निकला था और उसने भय से पीड़ित उस हिरनी को पकड़ लिया था।२७। मैंने जब यह देखा कि शार्दूल ने उसका ग्रहण कर लिया है तो मुझे भी बड़ा भय उत्पन्न हो गया था और मैं वहाँ से भाग दिया था। उस तरह से भयभीत होकर जब मैं बेतहाशा भागा था तो एक बहुत ही उच्च स्थल से नीचे गिर गया था और उस शार्दूल के द्वारा पकड़ी हुई हिरणी का अनुस्मरण करते हुए गिरते-गिरते मृत हो गया था।२८।

सा मृता त्वं मृगी जाता मृगस्त्वाहमनुस्मरन् ।
जातो भद्रे न जाने वै क्व गता भ्रातरोऽग्रजा: ।।२९
एतन्मे स्मृतिमापन्नं चरितं तव चात्मन: ।
भूतं भविष्यं च तथा शृणु भद्रे वदाम्यहम् ।।३०

योऽयं वा पृष्ठसंलग्नो व्याधो दूरस्थितोऽभवत् ।
रामस्यास्य भयात्सोऽपि भक्षितो हरिणाधुना ॥३१
प्राणांस्त्यक्त्वा विधानेन स्वर्गलोकं गमिष्यति ।
आवाभ्यां तु जलं पीतं मध्यमे पुष्करे त्विह ॥३२
संदृष्टो भार्गवश्चायं साक्षाद्विष्णुस्वरूपधृक् ।
तेनानेकभवोत्पन्नं पातकं नाशमागतम् ॥३३
अगस्त्यदर्शनं लब्ध्वा श्रुत्वा स्तोत्रं गतिप्रदम् ।
गमिष्यावः शुभांल्लोकान्येषु गत्वा न शोचति ॥३४
इत्येवमुक्त्वा स मृगः प्रियायै प्रियदर्शनः ।
विरराम प्रसन्नात्मा पश्यन्नाममनातुरः ॥३५

वह जो हिरणी शार्दूल के द्वारा पकड़ी जाने पर मर गयी थी वही तू अब पुनः इस जन्म में मृगी हुई है । और मैं द्विज सुत जो मरती हुई तेरा अनुस्मरण करते प्राणों का गिरकर परित्याग करने वाला था वही अब मृग होकर जन्म लेने वाला हूँ । यह मृत्यु के समय में भावना का ही कारण है कि हम तुम दोनों इस तिर्यग् योनि से समुत्पन्न हुए हैं । मैं यह नहीं जानता हूँ कि मेरे अन्य तीन भाई जो मुझसे बड़े थे कहाँ पर गये है ।२९। यह मेरा अपना और तुम्हारा चरित मेरी स्मृति में विद्यमान है । हे भद्रे ! जो व्यतीत हो गया है और जो आगे होने वाला है उसको मैं बतलाता हूँ । तुम उसका श्रवण करो ।३०। जो यह व्याध्र पीछे की ओर लगा हुआ दूर में खड़ा था और यम का उसको भय हो रहा था । उसका भी इस समय में एक सिंह ने भक्षण कर लिया है ।३१। उसका ऐसा ही विधान है उससे वह अपने प्राणों का त्याग करके स्वर्गलोक में चला जायगा और यहाँ पर मध्यम पुष्कर में हम तुम दोनों ने जल पिया है ।३२। यहाँ पर इन भार्गव परशुराम का भली भाँति दर्शन किया गया है । इससे अनेक जन्मों में किये हुए भी पातक नाश को प्राप्त हो गये हैं क्योंकि वह भार्गव साक्षात् भगवान् विष्णु के ही स्वरूप को धारण करने वाले हैं ।३३। अब महामुनीन्द्र अगस्त्य के दर्शन प्राप्त करके तथा सद्गति प्रदायक स्तोत्र का श्रवण करके हम तुम दोनों ही परम शुभ लोकों में गमन करेंगे जिनमें गमन करके प्राणी को किसी भी प्रकार की चिन्ता नहीं रहा करती है अर्थात् कोई पीड़ा होती ही नहीं है

।३४। इस तरह से यह इतना अपनी प्रिया से कहकर वह प्रिय दर्शन मृग चुप हो गया था और अनातुर होकर राम का दर्शन करते हुए वह बहुत ही प्रसन्न आत्मा वाला हो गया था ।३५।

भार्गवः श्रुतवांश्चैव मृगोक्तं शिष्यसंयुतः ।
विस्मितोऽभूच्च राजेन्द्र गन्तुं कृतमतिस्तथा ।।३६
अकृतव्रणसंयुक्तो ह्यगस्त्यस्याश्रमं प्रति ।
स्नात्वा नित्यक्रियां कृत्वा प्रतस्थे हर्षितो भृशम् ।।३७
रामेण गच्छता मार्गे दृष्टो व्याधो मृतस्तथा ।
सिहस्य संप्रहारेण विस्मितेन महात्मना ।।३८
अध्यर्द्धं योजनं गत्वा कनिष्ठं पुष्करं प्रति ।
स्नात्वा माध्याह्निकीं सन्ध्यां चकारातिमुदान्वितः ।।३९
हितं तदात्मनः प्रोक्तं मृगेण स विचारयन् ।
तावत्तत्पृष्ठसंलग्नं मृगयुग्ममुपागतम् ।।४०
पुष्करे तु जलं पीत्वाभिषिच्यात्मतनुं जलैः ।
पश्यतो भार्गवस्यागादगस्त्याश्रमसंमुखम् ।।४१
रामोऽपि सन्ध्यां निर्वर्त्य कुम्भजस्याश्रमं ययौ ।
विपद्गतं पुष्करं तु पश्यमानो महामनाः ।।४२

भार्गव परशुराम ने अपने शिष्य के सहित इस तरह से उस मृग के द्वारा कही हुई बातों को सुना था और इसको सुनकर उसको बड़ा भारी विस्मय हो गया था। हे राजेन्द्र ! फिर उस परशुराम ने उसी भाँति से गमन करने के लिये अपनी बुद्धि बना ली थी ।३६। उस भार्गव ने सर्वप्रथम स्नान किया था और फिर अपनी जो नित्य क्रिया थी उसको समाप्त किया था। इसके पश्चात् मन में अत्यधिक हर्षित होकर अकृत व्रण नामधारी के साथ संयुत होकर अगस्त्य मुनि के आश्रम की ओर उसने प्रस्थान कर दिया था ।३७। जिस समय में राम गमन कर रहे थे तब मार्ग में मरे हुए व्याध को देखा था जो कि सिंह के द्वारा किये हुए सम्प्रहार से ही मर गया था। उसको देखकर उस महान् आत्मा वाले को बड़ा विस्मय हो गया था ।३८। फिर आगे आधे योजन तक चलकर कनिष्ठ पुष्कर था। वहाँ पहुँचकर राम

ने स्नान किया था और परम हर्ष से संयुत होकर वहाँ पर मध्याह्न काल में होने वाली सन्ध्या की उपासना की थी ।३६। उस समय में वह यही विचार कर रहा था उर मृग ने मेरा अपना हित कहा था । तब तक वह यह देखता है कि पीछे लगा उस मृग और मृगी का जोड़ा वहाँ पर उपागत हो गया था ।४०। उस मृग और मृगी के जोड़े ने पुष्कर में जल का पान किया था और उसके जल से अपने शरीरों का अभिषिञ्चन किया था । भार्गव परशुराम यह देख ही रहे थे कि उनके देखते-देखते वह मृग-मृगी का जोड़ा अगस्त्य मुनि आश्रम के सम्मुख चला गया था ।४१। राम ने भी अपनी सन्ध्योपासना को पूर्ण करके नैत्यिक कर्म से निवृत्ति की थी और वह भी अगस्त्य मुनि के आश्रम को चला गया था। यह परमोदार मन वाला विपद्गत पुष्कर का दर्शन करते ही चला जा रहा था ।४२।

विष्णोः पदानि नागानां कुण्डं सप्तर्षिसंस्थितम् ।
गत्वोपस्पृश्य शुच्यंभो जगामागस्त्यसंश्रयम् ।।३३
यच्च ब्रह्मसुता राजन्समामाता सरस्वती ।
त्रीन्संपूरयितुं कुण्डानाग्निहोत्रस्य वै विधेः ।।४३
तत्र तीरे शुभं पुण्यं नानामुनिनिषेवितम् ।
ददर्श महदाश्चर्यं भार्गवः कुम्भजाश्रमम् ।।४५
मृगैः सिंहैः सहगतैः सेवितं शांतमानसैः ।
कुटरैरर्जुनैः पारिभद्रध्रवेगुदैः ।।४६
खदिरासनखर्जूरैः संकुलं बदरीद्रुमैः ।
तत्र प्रविश्य वै रामो ह्यकृतव्रणसंयुतः ।।४७
ददर्श मुनिमासीनं कुम्भजं शांतमानसम् ।
स्तिमितोदसरः प्रख्यं ध्यायन्तं ब्रह्म शाश्वतम् ।।४८
कौश्यां वृष्यां मार्गकृति वसानं पल्लवोटजे ।
ननाम च महाराज स्वाभिधानं समुच्चरन् ।।४६

भगवान् विष्णु के पदों को-नागों के कुण्ड को जहाँ पर सप्तर्षिगण संस्थित थे जाकर, उस परम शुचि जल का उपस्पर्शन करके फिर वह अगस्त्य मुनि के संश्रय स्थल को चला गया था ।४३। हे राजन् ! वहाँ पर

ब्रह्माजी की पुत्री सरस्वती विधि के अग्निहोत्र के तीनों कुण्डों को पूरित करने के लिए समायात हुई थी ।४४। वहाँ पर उसी सरस्वती के तत्पर परम पुनीत और शुभ तथा महाश्चर्य से युक्त कुम्भज ऋषि के आश्रम को भार्गव ने देखा था जो अनेक मुनिगणों के द्वारा निषेवित था ।४५। वह आश्रम परम शान्त था और उसमें मृग और सिंह अपना स्वाभाविक वैर त्याग कर परम शान्त मन वाले एक ही साथ रहा करते थे । ऐसे सभी पशुओं का वहाँ पर निवास था । उस आश्रम में अनेक प्रकार के परम सुन्दर तरुवर लगे हुए थे जिनमें कुटर-अर्जुन-बिम्ब-पारिभद्र-धव-इङ्गुद-खदिरासन-खर्जूर और बदरी आदि के अकृत व्रण से संयुत होकर प्रवेश किया था ।४५-४६-४७। प्रवेश करके राम ने विराजमान और परमशान्त मन वाले मुनिवर अगस्त्यजी का दर्शन प्राप्त किया था जो सर्वथा एकदम रुके हुए शान्त जल से भरे हुए सरोवर के ही समान थे तथा शाश्वत ब्रह्म का ध्यान कर रहे थे ।४८। वहाँ पर लताओं और द्रुमों के पत्तों से एक उटज (झौंपड़ी) बनी हुई थी उस उटज में अगस्त्य मुनि कौश्य—वृष्य तथा मृग चर्म को परिधान किये हुए विराजमान थे । हे महाराज ! यहाँ पर भार्गव राम ने अपने नाम का उच्चारण करते हुए अगस्त्य मुनि के चरणों में प्रणिपात किया था ।४९।

रामोऽस्मि जामदग्न्योऽहं भवतं द्रष्टुमागतः ।
तद्विद्धि प्रणिपातेन नमस्ते लोकभावन ।।५०
इत्युक्तवन्तं रामं तु उन्मील्य नयने शनैः ।
दृष्ट्वा स्वागतमुच्चार्य तस्मायासनमादिशत् ।।५१
मधुपर्कं समानीय शिष्येण मुनिपुंगवः ।
ददौ पप्रच्छ कुशलं तपसश्च कुलस्य च ।।५२
स पृष्टस्तेन वै रामो घटोद्भवमुवाच ह ।
भवत्संदर्शनादीश कुशलं मम सर्वतः ।।५३
किं त्वेकं संशयं जातं छिंधि स्ववचनामृतैः ।
मृगश्चैको मया दृष्टो मध्यमे पुष्करे विभो ।।५४
तेनोक्तखिलं वृत्तं मम भूतमनागतम् ।
तच्छ्रुत्वा विस्मयाविष्टो भवच्छरणमागतः ।।५५

पाहि मां कृपया नाथ साधयंतं महामनुम् ।
शिवेन दत्तं कवचं मम साधयतो गुरो ।।५६

राम ने अगस्त्य मुनि के चरणों की सन्निधि में समुपस्थित होकर उनसे निवेदन किया था कि मैं जमदग्नि का आत्मज राम हूँ और यहाँ पर आपके दर्शन करने के लिए समागत हुआ हूँ। हे लोकों पर कृपा करने वाले मुनिवर ! मैं आपकी सेवा में प्रणिपात कर रहा हूँ उसे आप स्वीकार कीजिए ।५०। जब राम ने इस रीति से प्रार्थना की थी तो ऐसे कहने वाले राम को उन्होंने धीरे से ध्यानावस्था में मुँदे हुए नेत्रों को खोलकर देखा था और फिर आपका स्वागत है-- ऐसा उच्चारण करके उनको आसन पर उपविष्ट हो जाने की आज्ञा प्रदान की थी ।५१। उन मुनियों में परम श्रेष्ठ अगस्त्य जी ने शिष्य के द्वारा मधुपर्क मँगाकर राम को प्रदान किया था। फिर तपश्चर्या और कुल की क्षेम-कुशल उससे पूछी थी ।५२। उन मुनिवर के द्वारा जब राम से इस रीति से पूछा गया था तो उस समय में राम ने अगस्त्य मुनि से कहा था। हे ईश ! अब आपके चरणों के दर्शन से मेरा सभी प्रकार का क्षेम-कुशल है ।५३। हे विभो ! मुझे एक संशय हो गया है। उसका छेदन आप कृपा कर अपने अमृत रूपी वचनों के द्वारा कर दीजिए। मैंने एक मृग को मध्यम पुष्कर में देखा था ।५३। उस मृग ने मेरा अतीत और अनागत सम्पूर्ण वृत्त बतला दिया था। इसका श्रवण करके मैं अधिक विस्मय से आविष्ट हो गया हूँ और अब आपके चरण कमलों की शरण में समागत हुआ हूँ ।५५। अपनी स्वाभाविक अनुकम्पा से मेरा परित्राण कीजिए। और हे नाथ ! महामन्त्र की सिद्धि कराइये। हे गुरो ! भगवान् शिव ने जो कवच मुझे प्रदान किया है उसको सिद्ध कराइये। इसमें आपकी परमानुकम्पा मेरे दास के ऊपर होगी ।५६।

कृष्णस्य समतीतं तु साधिकं हि शरच्छतम् ।
न च सिद्धिमवाप्तोऽहं तन्मे त्वं कृपया वद ।।५७

वसिष्ठ उवाच--

एवं प्रश्नं समाकर्ण्य रामस्य सुमहात्मनः ।
क्षणं ध्यात्वा महाराज मृगोक्तं ज्ञातवान् हृदा ।।५८
मृगं चापि समायात मृग्या सह निजाश्रमे ।

श्रोतुं कृष्णामृतं स्तोत्र सर्वं तत्कारणं मुनिः ।
विचार्याश्वासयामास भार्गवः स्ववचोमृतैः ।।५९

इस श्रीकृष्ण के मन्त्र की साधना करते हुए मुझे एक सौ वर्ष से भी अधिक काल व्यतीत हो गया है तो भी मुझे इसकी सिद्धि प्राप्त नहीं हुई है। इसका क्या कारण है। यह आप मुझे अपनी परमाधिक कृपा करके बतलाइए ।५७। श्री वसिष्ठ मुनि ने कहा—इस प्रकार का जो प्रश्न महात्मा राम ने किया था उसका श्रवण करके हे महाराज ! उस महामुनि ने एक क्षण भर कुछ ध्यान किया था और फिर जो कुछ भी उस मृग ने कहा था उसको उस समय में उन्होंने अपने ध्यान से जान लिया था ।५८। अपनी मृगी के साथ अपने आश्रम में आये हुए उस मृग को भी उन्होंने जान लिया था जो कि श्रीकृष्णामृत स्तोत्र का श्रवण करने के लिए ही वहाँ पर समागत हुआ था। मुनि ने उस सबका कारण भी समझ लिया था। इस सबका विचार करके उन महामुनि अगस्त्य जी ने उस भार्गव राम को अपने अमृत रूपी वचनों के द्वारा आश्वासन दिया था ।५९।

अगस्त्य द्वारा श्रीकृष्ण प्रेमामृत स्तोत्र का कथन

वसिष्ठ उवाच—

अवगत्य स वै सर्व कारणं प्रीतमानसः ।
उवाच भार्गवं राममगस्त्यः कुम्भसंभवः ।।१

अगस्त्य उवाच—

शृणु राम महाभाग कथयामि हितं तव ।
मन्त्रस्य सिद्धि येन त्वं शीघ्रमेव समाप्नुयाः ।।२
भक्तेस्तु लक्षणं ज्ञात्वा त्रिविधाया महामते ।
यो यतेत नरस्तस्य सिद्धिर्भवति सत्वरम् ।।३
एकदाऽहमनुप्राप्तोऽनन्तदर्शनकांक्षया ।
पातालं नागराजेंद्रैः शोभितं पराया मुदा ।।४
तत्र दृष्टा महाभाग मया सिद्धाः समततः ।
सनकाद्या नारदश्च गौतमो जाजलिः क्रतुः ।।५

ऋभुर्हंसोऽरुणिश्चैव वाल्मीकिः शक्तिरासुरिः ।
एतेऽन्ये च महासिद्धा वात्स्यायनमुखा द्विज ॥६
उपासत ह्युपासीना ज्ञानार्थं फणिनायकम् ।
तं नमस्कृत्य नागेंद्रैः सह सिद्धैर्महात्मभिः ॥७

महामुनि वसिष्ठ जी ने कहा—उस सम्पूर्ण कारण को भली भाँति समझ कर कुम्भ से समुत्पन्न अगस्त्य मुनि ने अपने मन परम प्रीति करके भार्गव राम से कहा था ।१। अगस्त्य मुनि ने कहा—हे परशुराम ! आप तो महान् भाग वाले हैं । मैं अब आपके हित की बात कहता हूँ उसका आप श्रवण कीजिए । जिनके द्वारा आप बहुत ही शीघ्र इस महामन्त्र की सिद्धि की प्राप्ति कर लेंगे ।२। हे महती मति वाले ! यह भक्ति तीन प्रकार की होती है । उस भक्ति के तीनों प्रकारों के लक्षणों का ज्ञान प्राप्त करके जो मनुष्य फिर यत्न किया करता है वह बहुत ही शीघ्र पूर्ण सिद्धि प्राप्त कर लिया करता है ।३। एक बार मैं स्वयं भगवान् अनन्त देव के दर्शन प्राप्त करने की आकांक्षा से पाताल लोक में गया था जो कि परमानन्द के साथ बड़े-बड़े नाग राजों से सुशोभित था ।४। हे महाभाग ! यहाँ पर मैंने देखा था कि चारों ओर बड़े-बड़े सिद्ध महापुरुष विराजमान थे । वहाँ सनकादिक चारों महासिद्ध-देवर्षि नारद-गौतम-जाजलि-क्रतु-ऋभु-हंस-अरुणि-वाल्मीकि-शक्ति-आसुरि प्रभृति सभी मुनीन्द्रगण और ऋषियों के समुदाय विद्यमान थे । हे द्विज ! ये सब और अन्य भी वात्स्यायन जिनमें प्रमुख थे महान् सिद्धगण वहाँ पर बैठे हुए थे ।५-६। ये सभी वहाँ पर बैठे हुए ज्ञान की पूर्ण प्राप्ति के लिये फणि नायक शेषराज की उपासना कर रहे थे । वहाँ पर बड़े-बड़े नागेन्द्र और महान् आत्मा वाले सिद्ध सभी विराजमान थे उन सबके साथ फणीन्द्र नायक शेष महाराज की सेवा में मैंने बड़े आदर के साथ प्रणिपात किया था ।७।

उपविष्टः कथास्तत्र शृण्वानो वैष्णवीर्मुदा ।
येयं भूमिर्महाभाग भूतधात्रीस्वरूपिणी ॥८
निविष्टा पुरतस्तस्य शृण्वंती ताः कथाः सदा ।
यद्यत्पृच्छति सा भूमिः शेषं साक्षान्महीधरम् ॥९
शृण्वंति ऋषयः सर्वे तत्रस्थाः तदनुग्रहात् ।
मया तत्र श्रुतं वत्स कृष्णप्रेमामृतं शुभम् ॥१०

स्तोत्रं तत्ते प्रवक्ष्यामि यस्यार्थं त्वमिहागतः ।
वाराहाद्यवताराणां चरितं पापनाशनम् ॥११
सुखदं मोक्षदं चैव ज्ञानविज्ञानकारणम् ।
श्रुत्वा सर्वं धरा वत्स प्रहृष्टा तं धराधरम् ॥१२
उवाच प्रणता भूयो ज्ञातुं कृष्णविचेष्टितम् ।
धरण्युवाच—
अलंकृतं जन्म पुंसामपि नंदव्रजौकसाम् ॥१३
तस्य देवस्य कृष्णस्य लीलाविग्रहधारिणः ।
जयोपाधिनियुक्तानि संति नामान्यनेकशः ॥१४

मैं वहाँ पर बड़े ही आनन्द से भगवान् विष्णु देव की कथाओं का श्रवण करता हुआ बैठ गया था। हे महाभाग ! यह भूमि भी जो समस्त भूतों की धात्री स्वरूप वाली है वहीं पर उन शेष भगवान् के आगे बैठी हुई थी और बहुत ही प्रीति के साथ सदा कथाओं का श्रवण किया करती थी। वह भूमि साक्षात् इस मही के धारण करने वाले शेष भगवान् से जो-जो भी पूछा करती है उसको समस्त ऋषिगण वहीं पर संस्थित होकर उनके ही अनुग्रह के होने से श्रवण किया करते हैं। हे वत्स ! मैंने भी वहां परम शुभ कृष्ण प्रेमामृत का श्रवण किया था।८-१०। उस स्तोत्र को मैं अब आपको बतलाऊँगा जिसको प्राप्त करने के लिये तुम यहाँ पर आये हो। इस स्तोत्र में बाराह आदि भगवान् के अवतारों का चरित है जो समस्त प्रकार के पापों का विनाश कर देने वाला होता है।११। यह चरित परमाधिक सुख-सौभाग्य के प्रदान करने वाला है—परलोक में जाकर इस भौतिक शरीर के त्याग करने के पश्चात् मोक्ष का भी देने वाला है जिससे इस संसार में बारम्बार जन्म-मरण के महान् कष्टों से छुटकारा मिल जाया करता है। और यह चरित ऐसा अद्भुत है कि जो पूर्ण ज्ञान और विशेष ज्ञान का भी कारण होना है। इस वसुन्धरा देवी ने इन सब का श्रवण किया था और यह बहुत ही अधिक प्रसन्न हुई थी, हे वत्स ! फिर धराके धारण करने वाले अनन्त भगवान् से बोली थी।१२। परम प्रणत होकर इस भूमि ने फिर भगवान् कृष्ण की लीला को जानने के लिए प्रार्थना की थी। धरणी ने कहा—भगवान् श्री कृष्ण चन्द्र जो ने नन्द गोपराज के व्रज में निवास करने वाले व्रजवासी मनुष्यों का भी जन्म अपना अवतार धारण कर अनेक अद्भुत लीला-

विहारों से अलंकृत कर दिया था ।१३। अपनी लीला से ही विग्रह (मानवीय शरीर) धारण करने वाले उन श्री कृष्ण देव के जय की अनेक उपाधियों से नियुक्त अनेक शुभ नाम है ।१४।

तेषु नामानि मुख्यानि श्रोतुकामा चिरादहम् ।
तत्तानि ब्रूहि नामानि वासुदेवस्य वासुके ।।१५
नातः परतरं पुण्यं त्रिषु लोकेषु विद्यते ।
शेष उवाच—
वसुंधरे वरारोहे जनानामस्ति मुक्तिदम् ।।१६
सर्वमंगलमूर्द्धन्यमणिमाद्यष्टसिद्धिदम् ।
महापातककोटिघ्नं सर्वतीर्थफलप्रदम् ।।१७
समस्तजपयज्ञानां फलदं पापनाशनम् ।
श्रृणु देवि प्रवक्ष्यामि नाम्नामष्टोत्तरं शतम् ।।१८
सहस्रनाम्नां पुण्यानां त्रिरावृत्या तु यत्फलम् ।
एकावृत्या तु कृष्णस्य नामैकं तत्प्रयच्छति ।।१९
तस्मात्पुण्यतरं चैतत्स्तोत्रं पातकनाशनम् ।
नाम्नामष्टोत्तरशतस्याहमेव ऋषिः प्रिये ।।२०
छन्दोऽनुष्टुब्देवता तु योगः कृष्णप्रियावहः ।
श्रीकृष्णः कमलानाथो वासुदेवः सनातनः ।।२१

उन श्रीकृष्ण के नामों में जो बहुत ही प्रमुख उनके नाम हैं उनके श्रवण करने की कामना वाली मैं बहुत अधिक समय से हो रही हूँ । हे भगवन्वासुके ! भगवान् वासुदेव के उन परम शुभ नामों को अब कृपा करके मेरे आगे बतलाइए ।१५। क्योंकि इस संसार में इससे परतर अर्थात् बड़ा अन्य कोई भी पुण्य नहीं है । तात्पर्य तह है कि भगवान् श्रीकृष्ण के परम शुभ नामों का स्मरण और श्रवण लोक में सबसे अधिक पुण्य कार्य है । भगवान् शेष ने कहा—हे परम श्रेष्ठ आरोह वाली वसुन्धरे ! भगवान् श्री कृष्ण के एक सौ आठ नामों का एक शतक स्तोत्र है और वह मानवों के लिए मुक्ति के प्रदान करने वाला है ।१६। यह शतक सभी प्रकार के मङ्गल कार्यों में शिरोमणि है तथा लौकिक साधारण वैभवों की प्राप्ति की तो बात

ही क्या है यह तो अणिमा-महिमा आदि जो आठ सिद्धियाँ हैं उनको भी देने वाला है। बड़े-बड़े महान् जो करोड़ों प्रकार के पातक हैं उनका भी विनाश कर देने वाला और समस्त तीर्थों के स्नान-ध्यान तथा अटन का जो पुण्यफल हुआ करता है उनके प्रदान कर देने वाला होता है।१७। सभी तरह के अश्वमेधादि यज्ञों एवं जपों का जो भी फल होता है उसके देने वाला है और सभी पापों के नाश करने वाला है। हे देवि ! अब आप उस नामों के शतक को सुनिए, मैं आपको बतलाता हूँ जो एक सौ आठ भगवान् के नामों वाला है।१८। परम पुण्यमय अन्य सहस्र नामों की तीन बार आवृत्ति के करने से जो फल प्राप्त होता है वह पुण्य-फल भगवान् श्रीकृष्ण के नाम की एक ही आवृत्ति के द्वारा एक ही नाम दिया करता है।१९। इस कारण से यह स्तोत्र विशेष पुण्य वाला है और पातकों का विनाशक है। हे प्रिये ! इस परम शुभ नामों के अष्टोत्तर शत का मैं ही ऋषि हूँ।२०। इसका छन्द अनुष्टुप् है और इसका देवता श्री कृष्ण के प्रिय का आवहन करने वाला योग है। अब यहाँ से आगे वह अष्टोत्तर शतक का आरम्भ होता है—श्रीकृष्ण-कमला (महालक्ष्मी) के नाथ-वसुदेव के पुत्र वासुदेव-और सनातन अर्थात् सदा सर्वदा से चले आने वाले हैं।२१।

वसुदेवात्मजः पुण्यो लीलामानुषविग्रहः।
श्रीवत्सकौस्तुभधरो यशोदावत्सलो हरिः ॥२२

चतुर्भुजात्तचक्रासिगदाशंखाद्युदायुधः।
देवकीनन्दनः श्रीशो नन्दगोपप्रियात्मजः ॥२३

यमुनावेगसंहारी बलभद्रप्रियानुजः।
पूतनाजीवितहरः शकटासुरभंजनः ॥२४

नन्दव्रजजनानन्दी सच्चिदानंदविग्रहः।
नवनीतविलिप्तांगो नवनीतनटोऽनघः ॥२५

नवनीतलवाहारी मुचुकुंदप्रसादकृत्।
षोडशस्त्रीसहस्रेशस्त्रिभंगी मधुराकृतिः ॥२६

शुकवागमृताब्धींदुर्गोविंदो गोविदांपतिः।
वत्सपालनसंचारी धेनुकासुरमर्द्दनः ॥२७

तृणीकृततृणायर्त्तो यमलार्जुनभंजनः ।
उत्तालतालभेत्ता च तमालश्यामलाकृतिः ॥२८

वसुदेव को पुत्र—परम पुण्यमय—लीला ही से मानुष शरीर के धारण करने वाले हैं। श्रीवत्स का चिह्न और कौस्तुभ मणि धारण के करने वाले-यशोदा के वत्सल और हरि हैं। हरि का अर्थ होता है पापों के हरण करने वाले हैं।२२। चार भुजाओं में सुदर्शन चक्र, कौमोदकी गदा, शङ्ख और असि आदि आयुधों के धारण करने वाले हैं। देवकी के नन्दन–श्रीदेवी के स्वामी और नन्दगोप की प्रिया यशोदा के आत्मज अर्थात् पुत्र हैं।२३। यमुना के वेग का संहार करने वाले | बलभद्रजी परम प्रिय अनुज अर्थात् छोटे भाई हैं। पूतना के जोवन का हरण करने वाले तथा शकटासुर का हनन करने वाले हैं।२४। नन्दगोप ब्रह्मजन अर्थात् व्रजवासी मनुष्यों को आनन्द देने वाले और सत्-चित् (ज्ञान) तथा आनन्द के शरीर वाले हैं अर्थात् सत्-चित् और आनन्द ये तीनों ही वस्तुएँ उनके शरीर में विद्यमान हैं। नवनीत (मक्खन) से विलिप्त अङ्गों वाले हैं जिस समय में यशोदाजी दधि मन्थन कर रही थी उस समय में दधिभाण्ड का भयंकर नवनीत अपने समस्त अङ्गों में लपेट लिया था। नवनीत के लिए नट हैं अर्थात् थोड़ा सा नवनीत पाने के लिए गोपाङ्गनाओं के यहाँ अनेक नृत्य आदि की लीलायें करने वाले हैं। अनघ अर्थात् निष्पाप स्वरूप वाले हैं।२५। नवनीत के थोड़े से भाग का आहार करने वाले हैं अर्थात् दधि और मक्खन के विक्रय करने वाली व्रजाङ्गनाओं को मार्ग में रोककर नवनीत का आहार किया करते हैं। राजा मुचुकुन्द के ऊपर कृपा करने वाले हैं। जिस समय जरासन्ध से युद्ध हो रहा था तब स्वयं भाग कर वहाँ पर पहुँच गये थे जहाँ पर निद्रित मुचुकुन्द गुफा में यह वरदान लेकर सो रहा था कि उसे जो भी जगायेगा वह भस्म हो जायगा। उस पर अपनी पीताम्बर डालकर आप छिप गये थे जरासन्ध ने उसे श्रीकृष्ण समझ कर जगाया और भस्म हो गया था फिर भगवान् ने दर्शन देकर उसको प्रसन्न किया था। सोलह सहस्र स्त्रियों के स्वामी हैं–त्रिभङ्गी हैं अर्थात् चरण-कटि और ग्रीवा तीनों को तिरछा करके बंशी वादन करने वाले हैं तथा परमाधिक मधुर आकृति से समन्वित है।२६। अमृत के समान जो शुकदेव की वाणी रूपी सागर है उसके आप चन्द्र हैं अर्थात् शुकदेव जी के द्वारा श्रीमद्भागवत की रचना हुई उसके प्रकाशन चन्द्र हैं। गोविन्दों के पति हैं। जब आप बालक थे तब व्रज में गोवत्सों का पालन करने के लिए वन में सञ्चरण करने वाले हैं तथा धेनुक नामक कंस

के द्वारा प्रेषित असुर का मर्दन करने वाले हैं ।२७। तृणावर्त्त असुर को तृण के समान हनन करके डाल दिया है और जो दो अर्जुन वृक्षों का जोड़ा शाप वश वृक्ष हो गये थे उनका भंजन कर वृक्षों की योनि छुड़ा देने वाले हैं। बहुत ही ऊँचे तालों के भेदन करने वाले हैं तथा तमाल वृक्षों के सदृश श्यामल आकृति वाले हैं ।२८।

गोपगोपीश्वरो तोगी सूर्यकोटिसमप्रभः ।
इलापतिः परंज्योतिर्यादवेंद्रो यदूद्वहः ॥२९
वनमाली पीतवासाः पारिजातापहारकः ।
गोवर्द्धनाचलोद्धर्त्ता गोपालः सर्वपायकः ॥३०
अजो निरंजनः कामजनक कंजलोचनः ।
मधुहा मथुरानाथो द्वापकानाथको बली ॥३१
वृंदावनांतसंचारी तुलसीदामभूषणः ।
स्यमंतकमणेर्हर्त्ता नरनारायणात्मकः ॥३२
कुब्जाकृष्टांबरधरो मायी परमपूरुषः ।
मुष्टिकासुरचाणूरमल्लयुद्धविशारदः ॥३३
संसारवैरी कंसारिर्मुरारिर्नरकांतकः ।
अनादि ब्रह्मचारी च कृष्णाव्यसनकर्षकः ॥३४
शिशुपालशिरश्छेत्ता दुर्योधनकुलांतकृत ।
विदुराक्रूरवरदो विश्वरूपप्रदर्शकः ॥३५

व्रज में समस्त गोप और जो गोपियां थीं उन सबके ईश हैं—महा योगी और करोड़ों सूर्यों की प्रभा के समान प्रदीप्त प्रभा से समन्वित हैं। इला के पति—परम ज्योति स्वरूप यादवों में प्रमुख और यदु कुल के उद्व-हन करने वाले हैं ।२९। वनमाला के धारण करने वाले-पीत वर्ण के वस्त्रों के पहिनने वाले तथा पारिजात का महेन्द्रपुरी से आहरण करने वाले हैं—गोवर्द्धन गिरि के उद्धर्त्ता अर्थात् अपनी अंगुलि पर उठाने वाले—गौओं के पालन-पोषण करने वाले और समस्त चरअचरों के पालक हैं ।३०। अजन्मा-निरंजन-कामदेव के जन्म दाता तथा कमलों के सदृश लोचनों वाले हैं। मधु नामक दैत्य के हनन कर्त्ता—मथुरापुरी के नाथ-द्वारका के स्वामी और

बलशाली हैं ।३१। वृन्दावन के मध्य में सञ्चरण करने वाले—तुलसी की माला से सुशोभित अर्थात् तुलसी की माला के भूषण वाले हैं । स्यमन्तक नाम वाली मणि को जाम्बवान् से हरण करने वाले तथा नर और नारायण के स्वरूपधारी हैं ।३२। कुब्जा जो कंस नृप की चन्दन सेविका थी वह थी तो परम सुन्दरी किन्तु टेढ़े-मेढ़े शरीर वाली थी । उसके द्वारा समाकृष्ट वस्त्रों के धारण करने वाले हैं । कुब्जा श्रीकृष्ण पर मोहित हो गयी थी—यह तात्पर्य है । मायी और परम पुरुष हैं । कंस के मल्ल चाणूर और मुष्टिक असुर थे उनके साथ यस्त्र युद्ध में परम कोविद हैं ।३३। इस संसार के वैरी हैं अर्थात् संसार में होने वाले दुःखों के विनाशक हैं—कंस के निपात करने वाले—मुर दैत्य के नाशक और नरक नामक असुर के अन्त कर देने वाले हैं । अनादि ब्रह्मचारी हैं अर्थात् ऐसे ब्रह्मचारी हैं जिनका कभी कोई आदि नहीं है तथा कृष्ण-द्रौपदी के व्यसन के अपकर्षण करने वाले हैं अर्थात् दुःशासन के द्वारा चीर खींचकर दुर्योधन की सभा में उसको लज्जित किया जा रहा था उस समय चीर का वर्धन करके उसकी लज्जा की रक्षा करने वाले हैं ।३४। राजा शिशुपाल के शिर के छेदन करने वाले हैं और राजा कौरवेश्वर दुर्योधन के कुल का अन्त कर देने वाले हैं । विदुर और अक्रूर को वरदानों के प्रदाता हैं और विश्वरूप अर्थात् विराट् स्वरूप के प्रदर्शक हैं ।३५।

सत्यवाक्सत्यसंकल्पः सत्यभामारतो जयी ।
सुभद्रापूर्वजो विष्णुर्भीष्ममुक्तिप्रदायकः ॥३६

जगद्गुरुर्जगन्नाथो वेणुवाद्यविशारदः ।
वृषभासुरविध्वंसी बकारिर्बाणबाहुकृत् ॥३७

युधिष्ठिरप्रतिष्ठाता बर्हिबर्हावतंसकः ।
पार्थसारथिरव्यक्तो गीतामृतमहोदधिः ॥३८

कालीयफणिमाणिक्यरंजितः श्रीपदांबुजः ।
दामोदरो यज्ञभोक्ता दानवेंद्रविनाशनः ॥३९

नारायणः परं ब्रह्म पन्नगाशनवाहनः ।
जलक्रीडासमासक्तगोपीवस्त्रापहारकः ॥४०

पुण्यश्लोकस्तीर्थपादो वेदवेद्यो दयानिधिः ।
सर्वतीर्थात्मकः सर्वग्रहरूपी परात्परः ॥४१

इत्येवं कृष्णदेवस्य नाम्नामष्टोत्तरं शतम् ।
कृष्णेन कृष्णभक्तेन श्रुत्वा गीतामृतं पुरा ।।४२

सदा सत्य वचनों वाले तथा सत्य संकल्पों वाले हैं । सत्यभामा नाम वाली अपनी पटरानी में रति रखने वाले और जयशील हैं सुभद्रा के बड़े भाई हैं—भगवान् साक्षात् विष्णु का स्वरूप हैं तथा भीष्मपितामह को मुक्ति देने वाले हैं ।३५। इस सम्पूर्ण जगत् के गुरु हैं—इस जगत् के नाथ हैं और वेणु (वंशी) के वादन करने में महापंडित हैं । वृषभासुर के विध्वंस करने वाले हैं—बकासुर के निहन्ता और बाणासुर की बाहुओं के कर्त्तन करने वाले हैं ।३७। राजा युधिष्ठिर को राज्य गद्दी पर प्रतिष्ठित करने वाले हैं और मयूर की पंख के भूषण वाले हैं । पार्थ पृथा के पुत्र अर्जुन के रथ के वहन कराने वाले सारथि हैं । इनका ऐसा स्वरूप है जो अव्यक्त है अर्थात् जिसको कोई पहिचान ही नहीं सकता है-गीता के उपदेशों से जो कि अमृत के समान हैं यह महोदधि हैं । जैसे अमृत समुद्र से उत्पन्न हुआ था वैसे ही गीता के उपदेश इनके ही हृदय से निकले हैं ।३८। कालिय नाग के मस्तक पर नृत्य करने से माणिक्य मणि से रञ्जित श्रीपद कमल वाले हैं । दाम से बद्ध उदर वाले हैं । दधिमन्थन के महाभाण्ड का भङ्ग कर देने पर यशोदा माता ने पकड़कर डोरी से बाँध दिया था तभी से दामोदर नाम हुआ है । यज्ञों के भोक्ता और दानवेन्द्रों के विनाशक है ।३९। आप साक्षात् क्षीरशायी नारायण—परं ब्रह्म और पन्नगों के अशन करने वाले गरुण के वाहन वाले हैं । यमुना के जल में दिगम्बर होकर क्रीड़ा करने वाली व्रज बाला गोपियों के वस्त्रों का अपहरण करने वाले हैं । आप पुण्य अर्थात् परम पुनीत यश वाले हैं—तीर्थ के समान चरणों वाले वेदों के द्वारा जानने के योग्य और दया के निधि हैं । समस्त तीर्थों के स्वरूप वाले—सब ग्रहों से रूप वाले और पर से भी पर हैं ।४०-४१। इस प्रकार से श्रीकृष्ण देव के एक सौ आठ नामों का यह शतक है । श्रीकृष्ण के भक्त कृष्ण ने अर्थात् वेद व्यासजी ने पहिले गीतामृत का श्रवण किया था ।४२।

स्तोत्रं कृष्णप्रियकरं कृतं तस्मान्मया श्रुतम् ।
कृष्णप्रेमामृतं नाम परमानन्ददायकम् ।।४३
अत्युपद्रवदुःखघ्नं परमायुष्यवर्द्धनम् ।
दानं व्रतं तपस्तीर्थं यत्कृतं त्विह जन्मनि ।।४४

पठतां शृण्वतां चैव कोटिकोटिगुणं भवेत् ।
पुत्रप्रदमपुत्राणामगतीनां गतिप्रदम् ॥४५
धनवाहं दरिद्राणां जयेच्छूनां जयावहम् ।
शिशूनां गोकुलानां च पुष्टिदं पुण्यवर्द्धनम् ॥४६
बालरोगग्रपादीनां शमनं शांतिकारकम् ।
अंते कृष्णस्मरणदं भवतापत्रयापहम् ॥४७
असिद्धसाधकं भद्रे जपादिकरमात्मनाम् ।
कृष्णाय यादवेंद्राय ज्ञानमुद्राय योगिने ॥४८
नाथाय रुक्मिणीशाय नमो वेदांतवेदिने ।
इमं मंत्रं महादेवि जपन्नेव दिवानिशम् ॥४९

कृष्ण द्वैपायन महामुनि ने यह श्रीकृष्ण के प्रिय को करने वाला स्तोत्र रचित किया था। उन्हीं से इसका श्रवण मैंने किया था। यह श्रीकृष्ण प्रेमामृत नामक स्तोत्र परमाधिक आनन्द के प्रदान करने वाला है।४३। यह अत्यधिक उपद्रव और दुःखों का हनन करने वाला है तथा इसके श्रवण और पठन से अधिकाधिक आयु का वर्धन होता है। इस लोक में जन्म ग्रहण करके जो भी कुछ दान-व्रत-तप-तीर्थ आदि किया है वह सभी इस परम पुनीत स्तोत्र के पढ़ने वालों तथा श्रवण किया है वह सभी इस परम पुनीत स्तोत्र के पढ़ने वालों तथा स्रवण करने वालों को करोड़ों गुना फल देने वाला होती है। जो पुत्रों से रहित है उनको यह पुत्रों के प्रदान करने वाला है तथा जिनकी सद्गति का कोई भी साधन नहीं है उनको सुगति अर्थात् उद्धार के प्रदान करने वाला है।४४-४५। जो धन से महीन महान् दरिद्र है उनको धन का वहन कराने वाला है और जो सर्वत्र युद्ध स्थल में अपनी विजय के इच्छुक हैं उनको जय देने वाला है। यह स्तोत्र शिशुओं की और गोकुलों की पुष्टि का बढ़ाने वाला है।४६। बालरोग और ग्रहों आदि का शमन करने वाला तथा परम शान्ति के करने वाला है। यह समय में श्रीकृष्ण की स्मृति का देने वाला तथा संसार के तीनों (आध्यात्मिक-आधिभौतिक-आधिदैविक) तापों का अपहरण करने वाला है।४७। हे भद्रे ! यह स्तोत्र अपने असिद्ध जप आदि के साधन करने वाला अर्थात् सिद्धि कारक है। पादवेन्द्र-ज्ञान की मुद्रा वाले-योगी—रुक्मिणी के स्वामी—

वेदान्त के वेदी नाथ श्री कृष्ण के लिए नमस्कार है---हे महादेवि ! यह मन्त्र है इसका अहर्निश जाप करते रहना चाहिए ।४८-४९।

सर्वग्रहानुग्रहभावसर्वप्रियतमो भवेत् ।
पुत्रपौत्रैः परिवृतः सर्वसिद्धिसमृद्धिमान् ।।५०
निषेव्य भोगानंतेऽपि कृष्णसायुज्यमाप्नुयात् ।
अगस्त्य उवाच—
एतावदुक्तो भगवाननंतो मूर्त्तिस्तु संकर्षणसंज्ञिता विभो ।।५१
धराधरोऽलं जगतां धरायै निर्दिश्य भूयो विरराम मानदः ।
ततस्तु सर्वे सनकादयो ये समास्थितास्तत्परितः कथादृताः ।
आनंदपूर्णा बुनिधौ निमग्नाः
सभाजयामासुरहीश्वरं तम् ।।५२
ऋषय ऊचुः—
नमो नमस्तेऽखिलविश्वभावन प्रपन्नभक्ता-
र्त्तिहराव्ययात्मन् ।
धराधरायापि कृपार्णवाय शेषाय विश्वप्रभवे नमस्ते ।।५३
कृष्णामृतं नः परिपायितं विभो विधूतपापा
भवता कृता वयम् ।
भवादृशा दीनदयालवो विभो समुद्धरंत्येव
निजान्हि संनतान् ।।५४
एवं नमस्कृत्य फणीश पादयोर्मनो विधायाखिलकामपूरयोः ।
प्रदक्षिणीकृत्य धराधराधरं सर्वे वयं स्वावसथानुपागताः ।।५५

इस परमोत्तम एवं दिव्य स्तोत्र का सेवन करने वाला पुरुष समस्त ग्रहों के अनुग्रह को प्राप्त करने वाला हो जाता है और वह सभी का परम प्रिय बन जाया करता है । इस अष्टोत्तर शतक कृष्ण स्तोत्र के श्रवण तथा पठन करने से भजन पुत्र-पौत्रादि से परिवृत होता है और उसके सभी प्रकार की सिद्धियों की समृद्धि हो जाया करती है ।५०। वह मनुष्य इस लोक में सब प्रकार के सुखों का उपभोग करके भी अन्त समय में भगवान् श्री

कृष्ण के सायुज्य की प्राप्ति किया करता है। अगस्त्य मुनि ने कहा—हे विभो ! इतना कहकर भगवान् अनन्त देव चुप हो गये थे जो कि संकर्षण की संज्ञा वाली मूर्त्ति थी। यह भगवान् समस्त जगतों की इस धरा के धारण करने में पूर्णतया समर्थ थे। मान के देने वाले प्रभु ने पुनः धरा के लिए निर्देश किया था। इसके अनन्तर कथा का आदर करने वाले सनकादिक मुनिगण सब जो उनको चारों ओर से घेरकर समवस्थित थे आनन्द से परिपूर्ण सागर में निमग्न हो गये थे और उन सबने अहीश्वर प्रभु को सभाजित किया था।५१-५१। ऋषिगणों ने कहा—हे प्रभो ! आप तो इस सम्पूर्ण विश्व पर अनुकम्पा करते हुए इसका परिपालन किया करते हैं। हे अव्यय स्वरूप वाले ! आप तो शरण में समागत अपने भक्तों की आर्त्ति के हरण करने वाले हैं आपके लिए हमारा सबका बारम्बार प्रणाम है। आप इस धरा के धारण करने वाले होते हुए भी परम कृपा के सागर हैं और आप समग्र विश्व की समुत्पत्ति करने वाले हैं। ऐसे शेष भगवान् आपकी सेवा में हमारा प्रणिपात है।५३। हे विभो ! आपने हम सबको श्रीकृष्ण के नामों का जो अष्टोत्तर शतक रूपी अमृत है उसका भली भाँति से पान कराया है और आपने हम सबको पापों से रहित कर दिया है। हे विभो ! आप सरीखे महापुरुष ही दीनों पर दया की वृष्टि करने वाले होते हैं जो कि अपने चरणों की शरण में समागत अपने भक्तों का भली भाँति उद्धार किया करते हैं।५४। इस रीति से नमस्कार करके और समस्त कामनाओं को पूर्ण करने वाले भगवान् शेष के चरणों में मन लगाकर तथा धराधर को परिक्रमा करके हम सब अपने-अपने निवास स्थानों को उपागत हो गये थे।५५।

इति तेऽभिहितं राम स्तोत्रं प्रेमामृताभिधम् ।
कृष्णस्य परिपूर्णस्य राधाकांतस्य सिद्धिदम् ।।५६

इदं राम महाभाग स्तोत्रं परमदुर्लभम् ।
श्रुतं साक्षाद्भगवतः शेषात्कथयतः कथाः ।।५७

यावंति मन्त्रजालानि स्तोत्राणि कवचानि च ।।५८
त्रैलोक्ये तानि सर्वाणि सिद्ध्यंत्येवास्य शीलनात् ।

वसिष्ठ उवाच—

एवमुक्त्वा महाराज कृष्णप्रेमामृतं स्तवम् ।
यावद्धयरंसीत्स मुनिस्तावत्स्वर्यानमागतम् ।।५९

चतुर्भिरद्भुतैः सिद्धैः कामरूपैर्मनोजवैः ।
अनुयातमथोत्प्लुत्य स्त्रीपुंसौ हरिणौ तदा ।
अगस्त्यचरणौ नत्वा समारुरुहतुर्मुदा ॥६०
दिव्यदेहधरौ भूत्वा शंखचक्रादिचिह्नितौ ।
गतौ च वैष्णवं लोकं सर्वदेवनमस्कृतम् ।
पश्यतां सर्वभूतानां भार्गवागस्त्ययोस्तथा ॥६१

अगस्त्य महामुनि ने कहा कि हे राम ! श्री राधा के कान्त-परिपूर्ण भगवान् श्रीकृष्ण का यह समस्त सिद्धियों का प्रदान कर देने वाला प्रेमामृत नाम वाला स्तोत्र मैंने आपको बता दिया है ।५६। हे महाभाग राम ! यह स्तोत्र अत्यन्त दुर्लभ है । मैंने कथाओं का वर्णन करते हुए साक्षात् भगवान् शेष के ही मुख से इसका श्रवण किया है ।५७। इस लोक में जितने भी मन्त्रों के समूह है तथा स्तोत्र और कवच आदि हैं इस त्रिभुवन में वे सभी इस स्तोत्र के ही परिशीलन करने से सिद्ध हो जाया करते हैं । वसिष्ठजी ने कहा—हे महाराज ! इस रीति से श्रीकृष्ण प्रेमामृत स्तव को बतलाकर जब तक अगस्त्य मुनि विरत हुए थे तभी तक वहाँ स्वर्ग से एक यान आ गया था ।५८-५६। उस मान में चार स्वेच्छया स्वरूप धारण करने वाले—मन के ही समान वेग से समन्वित और अतीव अद्भुत सिद्धों से युक्त था । इसके अनन्तर वे दोनों हरिण और हरिणी स्त्री एवं पुरुष के स्वरूप में होकर अगस्त्य मुनि को प्रणाम करके उस समय में परम हर्ष से उछल कर उस यान में समारूढ़ हो गये ।६०। वे दोनों परम दिव्य देह के धारण करने वाले हो गये थे जो शङ्ख-चक्र आदि भगवान् के चिह्नों से संयुत थे । इसके पश्चात् वे समस्त देवगणों के द्वारा वन्दित भगवान् विष्णु के लोक में चले गये थे । उस समय इस विलक्षण घटना को वहाँ पर संस्थित सभी प्राणी तथा भार्गव राम और अगस्त्य मुनि भी देख रहे थे उन सबकी आँखों के ही सामने ऐसा हुआ था ।६१।

भार्गव चरित्र (१)

वसिष्ठ उवाच—

दृष्ट्वा परशुरामस्तु तदाश्चर्यं महाद्भुतम् ।
जगाद सर्ववृत्तांतं मृगयोस्तु यथाश्रुतम् ॥१

तच्छ्रुत्वा भगवान्साक्षादगस्त्यः कुंभसंभवः ।
मोदमान उवाचेदं भार्गवं पुरतः स्थितम् ।।२
अगस्त्य उवाच—
शृणु राम महाभाग कार्याकार्यविशारद ।
हितं वदामि यत्तेऽद्य तत्कुरुष्व समाहितः ।।३
इतो विदूरे सुमहत्स्थानं विष्णोः सुदुर्लभम् ।
पदानि यत्र दृश्यंते न्यस्तानि सुमहात्मना ।।४
यत्र गंगा समुद्भूता वामनस्य महात्मनः ।
पदाग्रात्क्रमतो लोकांस्तद्बलेस्तु विनिग्रहे ।।५
तत्र गत्वा स्तवं चेदं मासमेकमनन्यधीः ।
पठस्व नियमेनैव नियतो नियताशनः ।।६
यत्वया कवचं पूर्वमभ्यस्तं सिद्धिमिच्छता ।
शत्रूणां निग्रहार्थाय तच्च ते सिद्धिदं भवेत् ।।७

श्री वसिष्ठजी ने कहा—उस समय में परशुराम ने इस महान आश्चर्य को देखकर उन दोनों हरिण-हरिणियों का सम्पूर्ण वृत्तान्त जैसा भी सुना गया था अगस्त्य मुनि से कह दिया था।१। साक्षात् कुम्भ से समुत्पत्ति ग्रहण करने वाले अगस्त्य भगवान् ने इस वृत्तान्त का श्रवण करके बहुत ही अधिक प्रसन्न होते हुए अपने समक्ष में संस्थित भार्गव राम से यह कहा था।२। अगस्त्य जी ने कहा—हे राम ! आप तो महान् भाग वाले हो और क्या करना चाहिए और क्या नहीं करना चाहिए—इस विषय में आप बहुत विद्वान हैं। आज मैं जो आपके हित की बात है उसको आपको बतलाता हूँ। उसे आप बहुत ही सावधान होते हुए कर डालिए।३। इस स्थल से विशेष दूरी पर भगवान विष्णु का परम दुर्लभ एक बड़ा भारी स्थान है जहाँ पर भगवान् के कमनीय कोमल चरणों के चिह्न दिखलाई दिया करते हैं जहाँ पर महान् आत्मा वाले प्रभु ने उन अपने चरणों को रक्खा था।४। यह वह स्थल है जहाँ पर प्रभु ने वामन का अवतार लेकर राजा बलि को विनिगृहीत करने के कार्य में अपने चरण के अग्रभाग से सभी लोकों को समाक्रान्त कर लिया था। उस समय में ब्रह्माजी ने भगवान के चरणों को प्रक्षालित किया था और जहाँ पर महात्मा वामन के चरणों के जलसे गङ्गा

का समुद्भव हुआ था ।५। अब आप उसी स्थल में जाकर अनन्य बुद्धि वाले होते हुए एक मास तक इस स्तोत्र का पाठ करो और पूर्ण नियम से ही नियत तथा नियत अशन (भोजन) वाले होकर रहो ।६। आपने सिद्धि की इच्छा रखते हुए जिस कवच का पूर्व में अभ्यास किया था और अपने समस्त शत्रुओं के निग्रह करने की कामना से ही किया था वही अब आपको सिद्धि के देने वाला हो जायगा ।७।

वसिष्ठ उवाच—

एवमुक्तो ह्यगस्त्येन रामः शत्रुनिबर्हणः ।
नमस्कृत्य मुनिं शांतं निर्जगाश्रमाद्बहिः ।।८
पुनस्तेनैव मार्गेण संप्राप्तस्तत्र सत्वरम् ।
यत्रोत्तरात्पदन्यासान्निर्गता स्वर्णदी नृप ।।९
तत्र वासं प्रकल्प्यासावकृतव्रणसंयुतः ।
समभ्यस्यत्स्तवं दिव्यं कृष्णप्रेमामृताभिधम् ।।१०
नित्यं व्रतपतेस्तस्य स्तोत्रं तुष्टोऽभवद्धरिः ।
जगाम दर्शनं तस्य जायदग्न्यस्य भूपते ।।११
चतुर्व्यूहाधिपः साक्षात्कृष्णः कमललोचनः ।
किरीटेनार्कवर्णेन कुंडलाभ्यां च राजितः ।।१२
कौस्तुभोद्भासितोरस्कः पीतवासा घनप्रभः ।
मुरलीवादनपरः साक्षान्मोहनरूपधृक् ।।१३
तं दृष्ट्वा सहसोत्थाय जामदग्न्यो मुदान्वितः ।
प्रणम्य दंडवद्भूमौ तुष्टाव प्रयतो विभुम् ।।१४

वसिष्ठजी ने कहा—इस प्रकार से शत्रुओं के निवर्हण करने वाले राम से जब अगस्त्य मुनि के द्वारा कहा गया था तो फिर राम ने मुनि को नमस्कार करके जो महा मुनि परम शान्त स्वभाव वाले थे उस आश्रम से राम बाहिर निकलकर चला गया था ।८। हे भूप ! फिर उसी मार्ग से वह बहुत शीघ्र वहाँ पर पहुँच गया था जहाँ पर उत्तर पद के न्यास से स्वर्ग गङ्गा निकली थी ।९। उस स्थल पर उस परशुराम ने अकृतव्रण के साथ ही रहकर निवास करने का अपने मन में संकल्प किया था और श्रीकृष्ण प्रेमा-

मृत नामक दिव्य स्तव का भली-भाँति अभ्यास किया था।१०। हे भूपते ! ब्रज के स्वामी उन भगवान श्रीकृष्ण उस पर परम प्रसन्न हो गये थे और उन्होंने जमदग्नि के पुत्र के लिए अपना दर्शन दिया था ।११। अब भगवान के स्वरूप का वर्णन किया जाता है जिस रूप से राम को उन्होंने दर्शन दिया था—उनके नेत्र कमलों के समान परम सुन्दर थे—भगवान कृष्ण साक्षात् चतुर्व्यूहों के अधिप थे–सूर्य के वर्ण के सदृश जाज्वल्यमान किरीट और दोनों कानों में कुण्डलों की शोभा से समन्वित थे ।१२। वक्षःस्थल में कौस्तुभ महामणि धारण किये हुए थे जिसकी प्रभा से उनका उरःस्थल समुद्भासित हो रहा था—पीताम्बर का परिधान करने वाले नील जलद के समान प्रभा वाले थे। उनके करकमलों में वंशी थी जिसका वादन वे कर रहे थे तथा वे साक्षात् मोहन करने वाले स्वरूप को धारण करने वाले थे। ।१३। ऐसे उन भगवान् श्री कृष्ण के दर्शन करके जमदग्नि के पुत्र परशुराम ने तुरन्त ही अपने आसन से उठकर गात्रोत्थान दिया था और वह बहुत ही हर्ष से समन्वित हो गये थे। उस राम ने उनके सामने चरणों में दण्ड की भाँति गिरकर उन विभु को प्रणाम किया था और फिर बहुत ही प्रणत होकर उनकी स्तुति की थी ।१४।

परशुराम उवाच–

नमो नमः कारणविग्रहाय प्रपन्नपालाय सुरार्त्तिहारिणे ।
ब्रह्मेशविष्ण्विन्द्रमुखस्तुताय ततोऽस्मि नित्यं
परमेश्वराय ॥१५

यं वेदवादैर्विविधप्रकारैर्निर्णेतुमीशानमुखा न शक्नुयुः ।
तं त्वामनिर्देश्यमजं पुराणमनंतमीडे भव मे दयापरः ॥१६

यस्त्वेक ईशो निजवांछितप्रदो धत्ते तनूर्लोकविहाररक्षणे ।
नानाविधा देवमनुष्यतिर्यग्यादःसु भूमेर्भरवारणाय ॥१७

तं त्वामहं भक्तजनानुरक्तं विरक्तमत्यंतमपीदिरादिषु ।
स्वयं समक्षं व्यभिचारदुष्टचित्तास्वपि प्रेमनिबद्धमानसम् ॥१८

यं वै प्रसन्ना असुराः सुरा नराः
सकिन्नरास्तिर्यग्योतयोऽपि हि ।

गता: स्वरूपं निखलं विहाय ते देहस्त्र्यपत्यार्थम-
मत्वमीश्वर ॥१९

तं देवदेवं भजतामभीप्सितप्रदं निरीहं गुणवर्जितं च ।
अचिन्त्यमव्यक्तमघौघनाशनं प्राप्तोऽरणं
प्रेमनिधानमादरात् ॥२०

तर्पंति तापैर्विविधैः स्वदेहमन्ये तु यज्ञैर्विविधैर्यजंति ।
स्वप्नेऽपि ते रूपमलौकिकं विभो पश्यन्ति
नैवार्थनिवद्धवासना: ॥२१

परशुराम ने कहा—भक्तों की सुरक्षा करने के कारणों से शरीर धारण करने वाले—अपनी शरणागति में सम्प्राप्त जनों का प्रतिपालन करने वाले और सुरगणों की पोड़ा का हरण करने वाले आपके लिए मेरा बार-म्बार नमस्कार है । ब्रह्मा-शिव-विष्णु और इन्द्र जिनमें प्रमुख हैं ऐसे समस्त देवगणों के द्वारा जिनका स्तवन किया गया है ऐसे परमेश्वर प्रभु के लिए मैं नित्य ही प्रणाम निवेदन करने वाला हूँ ।१५। शिव आदि प्रमुख देव भी अनेक प्रकार के वेदों के वादों के द्वारा जिनके स्वरूप का निर्णय करने में समर्थ नहीं हुआ करते हैं उन निर्देशन करने के योग्य-अजन्मा-पुराण पुरुष तथा अनन्त प्रभु का मैं स्तवन करता हूँ । आप मेरे ऊपर दया में परायण हो जाइए ।१६। जो एक ही ईश हैं और नित्य हो अपने भक्तों के मनोवाञ्छितों को प्रदान करने वाले हैं वे आप इस भूमि के भार को उतारने के लिए लोकों में विहार और उनकी रक्षा करने के वास्ते अनेक प्रकार के देव-मनुष्य-तिर्यग् तथा जल जीवों में शरीर धारण करके अवतार ग्रहण किया करते हैं ।१७। ऐसे उन प्रभु आपको मैं स्वयं साक्षात् देख रहा हूँ जो अपने ही भक्तों में अनुराग रखने वाले हैं और इन्दिरा आदि में भी अत्यन्त विरक्त रहते हैं तथा व्यभिचार से दुष्ट चित्त वालियों में भी प्रेम से निवद्ध मन वाले हैं ।१८। हे ईश्वर ! जिन आपके स्वरूप की प्राप्ति परम प्रसन्न होते हुए सम्पूर्ण अपने देह-स्त्री-सन्तति और वैभव की ममता का त्यागकर असुर-सुर-नर-किन्नर-और तिर्यग् योनि वाले भी कर चुके हैं ।१९। उन्हीं देवों के भी देव-भजन करने वालों के लिये अभीप्सित प्रदान करने वाले-निरीह गुणों से रहित अर्थात् रजोगुणादि से रहित-न चिन्तन करने के योग्य-अव्यक्त और अघों के समुदायों के विनाश करने वाले-अरण तथा प्रेम के निधान

आपको मैंने आदर से इस समय साक्षात् प्राप्त कर लिया है ।२०। अन्य जन तो नाना भाँति के तपश्चर्या जनित तापों से अपने देह को संतप्त किया करते हैं और विविध यज्ञों के द्वारा आपका यजन किया करते हैं । हे विभो ! इस प्रकार के परम क्लिष्ट विधानों के करते हुए भी वे सब किसी प्रयोजनों की सिद्धि के लिए निबद्ध वासना वाले आपके इस अलौकिक स्वरूप का दर्शन स्वप्न में भी नेत्रों से नहीं किया करते हैं ।२१।

ये वै त्वदीयं चरणं भवश्रमान्निर्विण्णचित्ता
विधिवत्स्मरंति ।
नमन्ति भक्त्याऽथ समर्चयन्ति वै परस्परं संसदि
वर्णयंति ॥२२

तेनैकजन्मोद्भवपंकभेदनप्रसक्तचित्ता भवतोऽघ्रिपद्मे ।
तरंति चान्यानपि तारयंति हि भवौषधं नाम
सुधा तवेश ॥२३

अहं प्रभो कामनिबद्धचित्तो भवंतमायं विविधप्रयत्नैः ।
आराधये नाथ भवानभिज्ञः किं ते ह
विज्ञाप्यमिहास्ति लोके ॥२४

वसिष्ठ उवाच—

इत्येवं जामदग्न्यं तु स्तुवंतं प्रणतं पुरः ।
उवाचागाधया वाचा मोहयन्निव मायया ॥२५

कृष्ण उवाच—

हंत राम महाभाग सिद्धं ते कार्यमुत्तमम् ।
कवचस्य स्तवस्यापि प्रभावादवधारय ॥२६

हत्वा तं कार्तवीर्यं हि राजानं दृप्तमानसम् ।
साधयित्वा पितुर्वैरं कुरु निःक्षत्रियां महीम् ॥२७

मम चक्रावतारो हि कार्तवीर्यो धरातले ।
कुलकार्यो द्विजश्रेष्ठ तं समापय मानद ॥२८

जो-जो भी भक्तगण आपके चरणाम्बुजों का इस संसार के बारम्बार जन्म-मरण के घोर श्रम से वैराग्य वाले होकर विधि के साथ स्मरण किया करते हैं—भक्ति की परम पूत भावना से नमन करते हैं और आपके चरणों का भली भाँति अर्चन किया करते हैं तथा परस्पर में एक-दूसरे सभा में इनका वर्णन किया करते हैं।२२। उस रीति से आपके चरण कमल में एक जन्म में समुत्पन्न पङ्क के भेदन करने में प्रसक्त चित्त वाले भक्तजन स्वयं तर जाते हैं और दूसरों को तार दिया करते हैं। हे ईश ! आपका परम पुनीत नाम निश्चित रूप से इस साँसारिक रोग के दूर करने के लिए अमृत स्वरूप महौषध है।२३। हे प्रभो ! मैं तो कुछ कामना से निबद्ध चित्त वाला वाला हूँ। मैंने परम श्रेष्ठतम आपकी विधिपूर्वक प्रबल प्रयत्नों के साथ आराधना की थी। हे नाथ ! आप तो स्वयं ही इसके अभिज्ञ हैं अर्थात् आपको सभी कुछ ज्ञात है। आपके लिए इस लोक में क्या बात विज्ञापित करने के योग्य है ? अर्थात् कुछ भी नहीं है।२४। वसिष्ठ जी ने कहा—इस प्रकार से स्तवन करते हुए अपने चरणों में आगे प्रणत होने वाले परशुराम से माया से मोहित करते हुए के समान ही अगाध वाणी से प्रभु ने कहा था।२५। श्रीकृष्ण चन्द्र भगवान् ने कहा—बड़ी ही प्रसन्नता की बात है हे राम ! आप महान् भाग्य वाले हो। आपका उत्तम कार्य सिद्ध हो गया है। इसकी सिद्धि कवच और स्तव के ही प्रभाव से हुई है—इसको मन में समझ लीजिए।२६। बहुत हो वर्ष से युक्त मन वाले राजा कार्त्तवीर्य का हनन करके अपने पिता के साथ किये हुए कुत्सित व्यवहार के बैर का बदला लेकर इस भूमि को क्षत्रियों से रहित कर डालिए।२७। इस धरातल में यह कार्त्तवीर्य मेरे ही चक्र का अवतार है हे मानद द्विजश्रेष्ठ ! उसको समाप्त करके आप सफल हो जाइए।२८।

अद्य प्रभृति लोकेऽस्मिन्नंशावे शेन मे भवान् ।
चरिष्यति यथाकालं कर्त्ता हर्त्ता स्वयं प्रभुः ॥२९

चतुर्विंशे युगे वत्स त्रेतायां रघुवंशजः ।
रामो नाम भविष्यामि चतुर्व्यूहः सनातनः ॥३०

कौसल्यानन्दजनको राज्ञो दशरथादहम् ।
तदा कौशिकयज्ञं तु साधयित्वा सलक्ष्मणः ॥३१

गमिष्यामि महाभाग जनकस्य पुरं महत् ।
तत्रेशचापं निर्भज्य परिणीय विदेहजाम् ॥३२

तदा यास्यन्नयोध्यां ते हरिष्ये तेज उन्मदम् ।

वसिष्ठ उवाच—

कृष्ण एवं समादिश्य जामदग्न्यं तपोनिधिम् ।

पश्यतोऽन्तर्दधे तत्र रामस्य सुमहात्मनः ।।३३

आज से ही आरम्भ करके आप इस लोक में मेरे ही अंश के वेश से चरण करेंगे और यथा समय आप स्वयं ही कर्त्ता और हर्त्ता प्रभु हो जायेंगे ।२९। हे वत्स ! आगे चौबीसवें युग में जब त्रेतायुग होगा तब मैं राजा रघु के बंश में चतुर्व्यूह सनातन राम नाम वाला होऊँगा अर्थात् मेरा रामावतार होगा ।३०। मैं राजा दशरथ के वीर्य से उसकी रानी कौशल्या के गर्भ से जन्म ग्रहण कर उसके आनन्द को उत्पन्न करने वाला आत्मज होऊँगा। उस समय में लक्ष्मण के साथ कौशिक विश्वामित्र महर्षि के यज्ञ को पूर्ण कराकर जिसमें दानव बाधा डाल रहे थे मैं फिर हे महाभाग ! राजा जनक के महान् नगर को जाऊँगा। वहाँ पर धनुषशाला में समस्त वीर नृपों के मध्य में शिव के धनुष का भञ्जन करके विदेह की पुत्री जानकी के साथ विवाह करूँगा ।३१-३२। उस समय में अपनी राजधानी अयोध्यापुरी के लिये गमन करते हुए आपके उन्मदतेज का हनन कर दूँगा। वसिष्ठ जी ने कहा—इस रीति से भगवान् श्रीकृष्ण ने जमदग्नि के पुत्र परशुराम को अपना आदेश भली-भाँति देकर जो कि राम तप की निधि थे। वहीं पर महात्मा राम के देखते-देखते हुए ही भगवान् कृष्ण अन्तर्हित हो गये थे ।३३।

भार्गव-चरित्र (२)

वसिष्ठ उवाच—

अंतर्द्धानं गते कृष्णे रामस्तु सुमहायशाः ।

समुद्रिक्तमथात्मानं मेने कृष्णानुभावतः ।।१

अकृतव्रणसंयुक्तः प्रदीप्ताग्निरिव ज्वलन् ।

समायातो भार्गवोऽसौ पुरीं माहिष्मतीं प्रति ।।२

यत्र पापहरा पुण्या नर्मदा सरितां वरा ।

पुनाति दर्शनादेव प्राणिनः पापिनो ह्यपि ।।३

पुरा यत्रहरेणापि निविष्टेन महात्मना ।
त्रिपुरस्य विनाशाय कृतो यत्नो महीपते ॥४
तत्र किं वर्ण्यते पुण्यं नृणां देवस्वरूपिणाम् ।
स दृष्ट्वा नर्मदां भूप भार्गवः कुलनन्दनः ॥५
नमश्चकार सुप्रीतः शत्रुसाधनतत्परः ।
नमोऽस्तु नर्मदे तुभ्यं हरदेहसमुद्भवे ॥६
क्षिप्रं नाशय शत्रून्मे वरदा भव शोभने ।
इत्येवं स नमस्कृत्य नर्मदां पापनाशिनीम् ॥७

श्री वसिष्ठ जी ने कहा—भगवान् श्री कृष्ण के अन्तर्द्धान हो जाने पर सुमहान् यश वाले परशुराम ने इसके उपरान्त अपने आपको श्रीकृष्ण चन्द्र के अनुभाव समुद्रिक्त मान लिया था अर्थात् अपने आपको उच्चस्तरीय व्यक्ति मान लिया था ।१। अकृतव्रण से समन्वित होकर जलती हुई अग्नि के ही समान जलता हुआ यह भार्गव राम माहिष्मती नगरी की ओर आ गया था ।२। यह पुरी वहाँ पर थी जहाँ पर समस्त सरिताओं में परम श्रेष्ठ-पुण्य प्रदा और पापों का हरण करने वाली नर्मदा नाम वाली नदी बहती है । यह नदी बहती है । यह नदी केवल दर्शन मात्र ही से महापापी प्राणियों को पुनीत बना दिया करती है ।३। हे महीपते ! प्राचीन काल में त्रिपुर के हनन करने वाले भगवान् शम्भु ने भी जो कि महान् आत्मा वाले हैं यहीं पर निविष्ट होते हुए त्रिपुरासुर के विनाश के लिये यत्न किया था ।४। वहाँ पर जो भी मनुष्य हैं वे महापुण्य शाली देवों के समान स्वरूप वाले हैं । उनके महान् पुण्य का क्या वर्णन किया जावे अर्थात् उनका पुण्य तो अवर्णनीय है । उस भार्गव परशुराम ने जो अपने कुल को अभिनन्दित करने वाले थे, हे भूप ! उस पुण्यमयी परम पावनी नदी का दर्शन किया था ।५। फिर राम ने जो अपने महाशत्रु कार्त्तवीर्य के साधन करने में परायण थे परम-प्रीतिमान् होकर नर्मदा को प्रणाम किया था और सविनय प्रार्थना की थी कि हे नर्मदे ! आप तो साक्षात् भगवान् शङ्कर के देह से शरीर धारण करने वाली हैं । आपकी सेवा में मेरा प्रणिपात स्वीकार होवे ।६। हे शोभने ! मेरा यही विनम्र निवेदन है कि आप मेरे शत्रुओं का बहुत ही शीघ्र विनाश करने की मेरे ऊपर अनुकम्पा कीजिए और मेरे लिए वर-

दान देने वाली हो जाइए। इस प्रकार से अभ्यर्थना करते हुए उस परशुराम ने पापों के विनाश कर देने वाली नर्मदा के लिए नमस्कार की थी।७।

दूतं प्रस्थापयामास कार्त्तवीर्यार्जुनं प्रति ।
दूत राजा त्वया वाच्यो यदहं वच्मि तेऽनघ ॥८
न संदेहस्त्वया कार्यो दूतः क्वापि न वध्यते ।
यद्बलं तु समाश्रित्य जमदग्निमुनि नृपः ॥६
तिरस्त्वं कृतवान्मूढ तत्पुत्रो योद्धुमागतः ।
शीघ्रं निर्गच्छ मंदात्मन्युद्धं रामाय देहि तत् ॥१०
भार्गवं त्वं समासाद्य गच्छ लोकांतरं त्वरा ।
इत्येवमुक्त्वा राजानं श्रुत्वा तस्य वचस्तथा ॥११
शीघ्रमागच्छ भद्रं ते विलम्बो नेह शस्यते ।
तेनैवमुक्तो दूतस्तु गतो हैहयभूपतिम् ॥१२
रामोदितं तत्सकलं श्रावयामास संसदि ।
स राजात्रेयभक्तस्तु महाबलपराक्रमः ॥१३
चुक्रोध श्रुत्वा वाच्यं तद्दूतमुत्तरमावहत् ।
कार्त्तवीर्य उवाच—
मया भुजबलेनैव दत्तदत्तेन मेदिनी ॥१४

उसके अनन्तर वहीं से एक दूत को कार्त्तवीर्यार्जुन के राजा के पास भेजा था। उन्होंने उस दूत से कहा था कि हे दूत ! तुमको वहाँ पहुँच कर उस राजा कार्त्तवीर्य से यह कहना चाहिए हे अनघ ! अर्थात् निष्पाप ! जो कुछ भी मैं इस समय में तुमको बोल रहा हूँ।८। ऐसे कहने में तुमको डरना नहीं चाहिए और अपने लिये पाये जाने वाले किसी तरह के दण्ड का हृदय में कुछ भी सन्देह नहीं करना चाहिए क्योंकि राजाओं के यहाँ पर ऐसा नियम है कि जो दूत बनकर आता है वह चाहे कैसी ही सूचना लेकर क्यों न आया हो उसका वध किसी भी दशा में कहीं पर भी नहीं किया जाता है। उस राजा से तुम कह देना कि हे नृप ! जिस बल का समाश्रय लेकर तू ने जमदग्नि महामुनि का महान् तिरस्कार किया था हे मूढ़ ! उसी मुनि का पुत्र तुझसे युद्ध करके बदला लेने के लिए समागत हुआ है। हे मन्द

आत्मा वाले ! अब तनिक भी बिलम्ब न करके बहुत ही शीघ्र अपनी नगरी से बाहर निकलकर आ जाओ और राम के साथ युद्ध करो ।६-१०। उस भार्गव राम के समीप में पहुँच कर शीघ्र ही दूसरे लोक को गमन कर अर्थात् मृत्यु के मुख में चला जा । इस तरह से स्पष्टतया उस राजा से कह देना और वह इसका उत्तर क्या देता है उसके वचनों का स्रवण करना ।११। हे दूत ! तुम बहुत ही शीघ्र वापिस आ जाना । तुम्हारा इसमें ही ही कल्याण होगा । इस काय में बिलम्ब बिल्कुल भी न होवे— इसी में तुम्हारी प्रशंसा है । जब इस रीति से उस दूत से कहा गया था तो वह दूत तुरन्त ही हैहय भूपति के समीप में वहाँ से चला गया था ।१२। उस राजा की सभा में उस दूत ने जैसा भी जो कुछ परशुराम के द्वारा गया था वह सब उसी प्रकार से उसने राजा को सुना दिया था । वह राजा कार्त्तवीर्य तो दत्तात्रेय महामुनि का परम भक्त था—इसका भी उसको बड़ा अभिमान था और वह महान् बल-पराक्रम से भी संयुत था ।१३। जब उसने दूत के द्वारा परशुराम का कहा हुआ सन्देश सुना तो उसको बहुत ही अधिक क्रोध आ गया था और उसने उस दूत को इसका उत्तर दिया था । कार्त्तवीर्य राजा ने कहा—मैंने इस सम्पूर्ण मेदिनी को दत्तात्रेय के द्वारा प्रदान किये हुए अपनी भुजाओं के ही बल-पराक्रम से अपने अधिकार में किया है ।१४।

जिता प्रसह्य भूपालान्बद्ध्वानीय निजं पुरम् ।
तद्बलं मयि वर्त्तेत युद्धं दास्ये तवाधुना ॥१५
इत्युक्त्वा विससर्जाशु दूतं हैहयभूपतिः ।
सेनाध्यक्षं समाहूय प्रोवाच वदतांवरः ॥१६
सज्जं कुरु महाभाग सैन्यं मे वीरसंमत ।
योत्स्ये रामेण भृगुणा विलंबो मा भवत्विति ॥१७
एवमुक्तो महावीरः सेनाध्यक्षः प्रतापनः ।
सैन्यं सज्जं विधायाशु चतुरंगं न्यवेदयत् ॥१८
सैन्यं सज्जं समाकर्ण्य कार्त्तवीर्यो नृपो मुदा ।
सूतोपनीतं स्वरथमारुरोह विशांपते ॥१९
तस्य राज्ञः समंतात्तु सामंता मंडलेश्वराः ।
अनेकाक्षौहिणीयुक्ताः परिवार्योपतस्थिरे ॥२०

नागास्तु कोटिशस्तत्र हयस्यंदनपत्तयः ।
असंख्याता महाराज सैन्ये सागरसन्निभे ।।२१

मैंने इस समस्त भूमि को जीत लिया है और बलात् समस्त भूपालों को बांधकर अपने पुर में मैं ले आया हूँ। वह सभी बल मुझमें विद्यमान है। एतएव अब मैं तुम्हारे साथ युद्ध अवश्य करूँगा ।१५। इतना कहकर उस हैहय पति ने उस दूत को अपने यहाँ से शीघ्र ही विदाकर दिया था। और फिर बोलने वालों में परम श्रेष्ठ ने अपनी समस्त सेना के अध्यक्ष को बुला कर उसको आदेश दिया था।१६। हे महाभाग ! आप तो महान् वीरों के द्वारा माने हुए वीर हैं। इसी समय मेरी अपनी सब सेना को सज्जित करिए। मैं अभी भृगु राम के साथ युद्ध करूँगा अतः इस कार्य में बिलम्ब न होवे ।१७। जब इस रीति से शीघ्र ही सेना के सुसज्जित करने के लिये सेनाध्यक्ष से कहा गया था तो उस प्रतापन नामक सेनाध्यक्ष ने चतुरङ्गिणी सेना को बहुत ही शीघ्र सज्जित करके राजा से निवेदन कर दिया था कि सब सेना प्रस्तुत है ।१८। हे बिशांपते ! जिस समय में कार्त्तवीर्य नृप ने आनन्द से युक्त होते हुए अपनी सेना को पूर्णतया सुसज्जित सुना था तो वे सारथि के द्वारा लाये हुए अपने रथ पर समारूढ़ हो गये थे ।१९। उस राजा कार्त्तवीर्य के चारों ओर अनेक अक्षौहिणीयों से समन्वित होकर बड़े-बड़े सामन्त मंडलेश्वर उस राजा को परिवारित करके स्थित हो गये थे ।२०। हे महाराज ! वहाँ पर सेना में करोड़ों की संख्या में हाथी-अश्व-रथ और पैदल सैनिज थे जिनकी कोई भी संख्या नहीं थी और वह सेना एक महान् सागर के ही सदृश थी ।२१।

दृश्यन्ते तत्र भूपाला नानावंशसमुद्भवाः ।
महावीरा महाकाया नानायुद्धविशारदाः ।।२२
नानाशस्त्रास्त्रकुशला नानावाहगता नृपाः ।
नानालंकारसंयुक्ता मत्ता दानविभूषिताः ।।२३
महामात्रकृतोद्देशा भांति नागा ह्यनेकशः ।
नानाज्ञातिसमुत्पन्ना हयाः पवनरंहसः ।।२४
प्लवंतो भांति भूपाल सादिभिः कृतशिक्षणाः ।
स्यन्दनानि सुदीर्घाणि जवनाश्वयुतानि च ।।२५

चक्रनिर्घोषयुक्तानि प्रावृण्मेघोपमानि च ।
पदातयस्तु राजंते खड्गचर्मधरा नृप ॥२६
अहंपूर्वमहंपूर्वमित्यहंपूर्वकान्विता: ।
यदा प्रचलितं सैन्यं कार्त्तवीर्यार्जुनस्य वै ॥२७
तदा प्राच्छादितं व्योम रजसा च दिशो दश ।
नानावादित्रनिर्घोषैर्हयानां ह्रेषितैस्तथा ॥२८

वहाँ पर उस सेना में अनेक वंशों में समुत्पन्न हुए भूपाल दिखलाई दे रहे थे जो परम महान् वीर-बड़े विशाल शरीर को धारण करने वाले तथा अनेक प्रकार के युद्ध करने के कौशल में विशारद थे ।२२। वे सब नृप विविध प्रकार के शस्त्रों और अस्त्रों के चलाने में प्रवीण थे और बहुत के वाहनों से युक्त थे । ये सब नृप नाना भाँति के अलङ्कारों से भूषित थे । इस सेना में बड़े मदमत्त हाथी थे जो मद से विभूषित थे ।२३। उस सेना में अनेक प्रकार के नाग शोभा दे रहे थे । जिनका उद्देश बड़े-बड़े कार्य करना ही था । विविध प्रकार की ज्ञानियों में समुत्पन्न होने वाले अश्व थे जिनकी गति का वेग वायु के ही सदृश था ।२४। हे भूपाल ! उन अश्वों को उनके साईशों के द्वारा ऐसी शिक्षा दी गयी थी कि वे प्लवन करते हुए शोभा दे रहे थे । उस सेना में बड़े-बड़े सुविशाल और लम्बे-चौड़े रथ में जिनमें ऐसे घोड़े जुड़े हुए थे जो बड़ी ही शीघ्रता से गमन किया करते थे ।२५। रथों के पहियों के चलने के समय में बड़ी जोरदार ध्वनि होती थी जो ऐसे ही प्रतीत हो रहे थे मानों वर्षा काल के मेघ गर्जते चले जा रहे होवें । हे नृप ! जो पैदल सैनिक थे वे सब ढाल और तलवार धारण करने वाले थे ।२६। वे पैदल सैनिक परस्पर में चलने के लिये—मैं आगे चलूँगा—मैं सबसे पहिले बढ़ूँगा—इस प्रकार से सभी आगे-आगे बढ़कर सेना में युद्ध के लिये वीर भावना से समन्वित थे । इस रीति से जिस समय में राजा कार्त्तवीर्य की वह सुमहान् विशाल सेना युद्ध के लिए वहाँ से चल दी थी उस समय से सम्पूर्ण दशों दिशाएँ और आकाश सेना के सैनिकों और उनके वाहनों के चलने से उठकर उड़ी हुई धूलि से आच्छादित हो गये थे अर्थात् चारों ओर रज छा गयी थी । सेना के प्रस्थान के समय में अनेक तरह के बाजे बज रहे थे इनके घोष से तथा अश्वों के हिन-हिनाने से आकाश मण्डल व्याप्त हो गया था अर्थात् नभ में गूँज उठ रही थी ।२७-२८।

गजानां बृंहितै राजन्व्याप्तं गगनमंडलम् ।
मार्गे ददर्श राजेंद्रो विपरीतानि भूपते ॥२९
शकुनानि रणे तस्य मृत्युदौत्यकराणि च ।
मुक्तकेशां छिन्ननासां रुदतीं च दिगंबराम् ॥३०
कृष्णवस्त्रपरीधानां वनितां स ददर्श ह ।
कुचैलं पतितं भग्नं नग्नं काषायवाससम् ॥३१
अंगहीनं ददर्शासौ नरं दुःखितमानसम् ।
गोधां च शशकं शल्यं रिक्तकुम्भं सरीसृपम् ॥३२
कार्पासं कच्छपं तैलं लवणं चास्थिखंडकम् ।
स्वदक्षिणे शृगालं च कुर्वंतं भैरवं रवम् ॥३३
रोगिणं पुल्कसं चैव वृषं च श्येनभल्लुकौ ।
दृष्ट्वापि प्रययौ योद्धुं कालपाशावृतो हठात् ॥३४
नर्मदोत्तरतीरस्थो ह्यकृतव्रणसंयुतः ।
वटच्छायासमासीनो रामोऽपश्यदुपागतम् ॥३५

हे राजन् ! हाथियों की चिंघाड़ों से सम्पूर्ण गगन मण्डल भर कर गूंज गया था । हे भूपते ! जिस समय वह राजेन्द्र अपनी महती सेना को लेकर परशुराम से युद्ध करने के लिए गमन कर रहा था उस समय में मार्ग में विपरीत बहुत से शकुन देखे थे जो कि रण स्थल में मृत्यु के होने की सूचना देने वाले दूतों के ही समान थे । यहाँ से आगे उन बुरे असगुनों के विषय में बतलाया जाता है जो-जो उस राजा ने मार्ग में देखे थे-उस राजा ने एक ऐसी नारी को देखा था जो अपने शिर के केशों को खोले हुई थी—वह रुदन कर रही थी और बिल्कुल नग्न थी ।२९-३०। वह काले वर्ण का परिधान की हुई थी । इसका तात्पर्य यह है कि ऐसी स्त्री मार्ग में मिले तो बड़ा ही बुरा सगुन है । ऐसा पुरुष भी यदि मिल जावे तो वह भी बुरा सगुन है जैसा उस कार्त्तवीर्य ने देखा था । उसे एक ऐसा पुरुष दिखाई दिया था जो बहुत ही मैले-कुचैले वस्त्र पहिने हुए था—भूमि पर पड़ा था—उनका शरीर जीर्ण-शीर्ण था और काषाय (गेहुआ) रङ्ग के वस्त्र धारण किये हुए था ।३१। वह पुरुष अङ्गों से हीन था और उनके मन में बड़ा ही

अधिक दु.ख था । काना-नकटा-लूना-लँगड़ा मनुष्य जो किसी भी अपने अङ्ग से हीन हो वह शुभ कार्य के करने के समय में मार्ग में मिल जावे तो असगुन होता है । मार्ग से तात्पर्य अपने स्थान से निकलते ही मिल जाने से है । उस राजा ने इसके अतिरिक्त अन्य भी बुरे-बुरे असगुन थे। उनके नाम बताये जाते हैं—उसने गोधा (गोह)—शशक (खरगोश)—शल्य जल से रिक्त कलश और सरीसृप को देखा था ।३२। उसने फिर कपास-कच्छ-तैल-लवण-हड्डी का टुकड़ा और अपनी दाहिनी ओर भैरव शब्द करते हुए श्रृंगाल को देखा था ।३३। इनमें से कोई भी एक एदि मार्ग में गृह से निकलते ही देखने को मिल जाता है तो असगुन होता है जिसमें उस राजा ने इन सभी बुरे सगुनों को देखा था । फिर राजा ने पुल्कस–रोगी मनुष्य-वृष-श्येन और भल्लुक को देखा था । इन सब बुरे-बुरे असुगुनों को बार-बार देखकर भी हठ के वश वह राजा युद्ध करने के लिये चल ही दिया था क्योंकि वह तो काल के पाश से समावृत था ।३४। राम अकृतव्रण के सहित नर्मदा नदी के उत्तर की ओर तट पर स्थित था और एक वट वृक्ष की छाया का समाश्रय ग्रहण कर रक्खा था। उस परशुराम ने इत राजा कार्त्तवीर्य को सेना सहित आया हुआ देख लिया था ।३५।

कार्त्तवीर्यं नृपवरं शतकोटिनृपान्वितम् ।
सहस्राक्षौहिणीयुक्तं दृष्ट्वा हृष्टो बभूव ह ।।३६

अद्य मे सिद्धिमायातं कार्यं चिरसमीहितम् ।
यद्दृष्टिगोचरो जात: कार्त्तवीर्यो नृपाधम: ।।३७
इत्येवमुक्त्वा चोत्थाय धृत्वा परशुमायुधम् ।
व्यंजृभतारिनाशाय सिंह: क्रुद्धो यथा तथा ।।३८
दृष्ट्वा समुद्यतं रामं सैनिकानां वधाय च ।
चकंपिरे भृशं सर्वे मृत्योरिव शरीरिण: ।।३९
स यत्र यत्रानिलरंहसा भृगुश्चिक्षेप रोषेण युत: परश्वधम् ।
ततस्ततश्छिन्नभुजोरुकंधरा नागा हया: शूरनरा
निपेत: ।।४०
यथा गजेंद्रो मदयुक्समंततो नालं वनं मर्द्दयति प्रधावन् ।

तथैव रामोऽपि मनोनिलौजा विमर्दयामास
नृपस्य सेनाम् ॥४१

दृष्ट्वा ममिस्थं प्ररतमोजसा रामं रणे शस्त्रभृतां वरिष्ठम् ।
उद्यम्य चापं महदास्थितो रथं सज्यं च कृत्वा
किल मत्स्यराजः ॥४२

परशुराम ने श्रेष्ठ नृप कार्त्तवीर्यार्जुन को देखा था जो सौ करोड़ राजाओं के साथ संयुत था और सहस्र अक्षौहिणी सेनाएँ भी उसके साथ थीं—ऐसे विशाल समुदायों को देखकर परशुराम मन में बहुत ही प्रसन्न हुए थे। हर्षातिरेक का कारण यही था कि जब मेदिनी को क्षत्रियों से हीन ही करना है तो इस समय में एक ही साथ बहुत से क्षत्रिय समागत हो गये हैं।३६। परशुराम ने अपने मन में विचार किया कि बहुत समय से चाहा हुआ मेरा कार्य आज सिद्धि को प्राप्त हुआ है कि यह महान् अधम नृप कार्त्तवीर्य मेरी दृष्टि के सामने आ गया है।३७। अपने मन में यह कहकर वह वहाँ से उठकर खड़े हो गये थे और अपने आयुध परशु को धारण कर लिया था। फिर अपने शत्रु के विनाश करने के लिए परशुराम ने गर्जना की थी जिस तरह से क्रुद्ध हुआ सिंह गर्जा करता है।३८। फिर समस्त है।३८। फिर समस्त सैनिकों के बध करने के लिए समुद्यत हुए परशुराम को देखकर सभी मृत्यु से शरीर धारियों के हो समान बहुत ही अधिक काँप गये थे।३९। उन महावीर परशुराम ने रोष से युक्त होकर जहाँ-जहाँ पर अपने परशु को फैंककर प्रहार किया था जो कि वायु के वेग के ही समान किया गया था वहाँ-वहाँ पर ही कटे हुए बाहु-वक्षःस्थल और गरदन वाले करी—अश्व और शूर वीर मनुष्य मरकर भूमि पर गिर गये थे।४०। जिस तरह से मद से ग्रस्त कोई गजेन्द्र दौड़ लगाता हुआ नाल वनका मर्दन कर दिया करता है ठीक उसी भाँति से परशुराम ने भी मन और वायु के सदृश ओज से युक्त होकर उस नृप की सेना का मर्दन कर कर दिया था।४१। उस रणस्थल में इस रीति से अपने ओज के द्वारा प्रहार करते हुए शस्त्रधारियों में परमश्रेष्ठ परशुराम को देखकर मत्स्यराज नामक राजा ने अपने धनुष को उठाया था तथा फिर वह अपने विशाल रथ पर सजास्थित हो गया था।४२।

आकृष्य बाणाननलोग्रतेजसः समाकिरन्भार्गवमाससाद ।
दृष्ट्वा तमायांतमथो महात्मा रामो
गृहीत्वा धनुषं महोग्रम् ॥४३
वायव्यमस्त्रं विदधे रुषाप्लुतो निवारयन्मंगलबाणवर्षम् ।
स चापि राजाऽतिबलो मनस्वी ससर्ज रामाय तु
पर्वतास्त्रम् ॥४४
तस्तंभ तेनातिबलं तदस्त्रं वायव्यमिष्वस्त्रविधानदक्षः ।
रामोऽपि तत्रातिबलं विदित्वा तं मत्स्यराजं
विविधास्त्रपूगैः ॥४५
किरंतमाजौ प्रसभं मुमोच नारायणास्त्रं विधिमन्त्रयुक्तम् ।
नारायणास्त्रे भृगुणा प्रयुक्ते रामेण राजन्नृपतेर्वधाय ॥४६
दिशस्तु सर्वाः सुभृशं हि तेजसा प्रजज्वलुर्मत्स्यपतिश्चकंपे ।
रामस्तु तस्याथ विलक्ष्य कम्पं बाणैश्चतुर्भि-
र्निजघान वाहान् ॥४७
शरेण चैकेन ध्वजं महात्मा चिच्छेद चापं च शरद्वयेन ।
बाणेन चैकेन प्रसह्य सारथिं निपात्य
भूमौ रथमार्द्दयस्त्रिभिः ॥४८
त्यक्त्वा रथं भूमिगतं च मंगलं परश्वधेनाशु जघान मूर्द्धनि ।
स भिन्नशीर्षो रुधिरं वमन्मुहुर्मूर्च्छामवाप्याथ
ममार च क्षणात् ॥४९
तत्सैन्यनस्त्रेण च संप्रदग्धं विनाशमायादथ भस्मसात्क्षणात् ।
तस्मिन्निपतिते राज्ञि चन्द्रवंशसमुद्भवे ॥५०
मंगले नृपतिश्रेष्ठें रामो हर्षमुपागतः ॥५१

उस राजा मत्स्यराज ने अपने धनुष की प्रत्यञ्चा को खींचकर उसने अग्नि के समान उग्र तेज वाले बाणों की चारों ओर भली-भाँति वर्षा करते हुए भार्गव के समीप में वह प्राप्त हो गया था। इसके अनन्तर

महात्मा परशुराम ने भी अपने ऊपर आक्रमण करके आये हुए उसको देख कर अपने महान उस धनुष को ग्रहण कर लिया था।४३। राम ने भी क्रोध से आप्लुत होकर उस मंगल बाणों की वृष्टि का निवारण करते हुए अपने वायव्य कस्त्र का प्रयोग किया था। वह राजा मत्स्यराज भी बहुत अधिक बली था और बड़ा मनस्वी था उसने परशुराम के ऊपर पर्वतास्त्र का प्रयोग किया था अर्थात् राम के ऊपर छोड़ दिया था।४४। बाणों और अस्त्रों के विधान में परम दक्ष उसने उस राम के अति बलशाली वायव्य अस्त्र को स्तम्भित कर दिया था अर्थात् जहाँ की तहाँ रोककर क्रियाहीन बना दिया था। परशुराम ने भी वहाँ पर उस मत्स्यराज को अत्यधिक बल-विक्रम वाला समझकर विविध भाँति के अस्त्रों के समुदाओं की मत्स्यराज पर वर्षा करते हुए फिर रणभूमि में विधि के साथ मन्त्र से युक्त बलपूर्वक नारायणास्त्र को छोड़ दिया था। हे राजन् ! उस राजा के वध के लिए भृगुराम के द्वारा नारायणास्त्र का प्रयोग करने पर सर्वत्र दाह उत्पन्न हो गया था।४५-४६। उस अस्त्र के तेज से समस्त दिशाएं बहुत ही अधिक प्रज्वलित हो गयी थी और वह मत्स्य देश का राजा भी उस भीषण दशा को देखकर काँप गया था। परशुराम ने जब उस राजा के कम्प को देखा तो फिर उसमें चार बाणों से उसके वाहनों का हनन किया था।४७। उस महात्मा ने एक बाण से उसकी ध्वजा को काट दिया था और दोशरों से धनु का छेदन किया था तथा एक बाण से बल पूर्वक सारथि का निपातन करके तीन बाणों से भूमि पर रथ को चूर्ण कर दिया था।४८। अपने रथ का त्याग करके भूमि पर स्थित मंगल के मस्तक में शीघ्र ही परशु से प्रहार करके उसका हनन कर दिया था। जब उसका शिर भग्न हो गया था तो वह रुधिर का वमन करता हुआ बार-बार मूर्च्छा प्राप्त करके एक ही क्षण में मृत्यु के मुख में चला गया था।४६। उसकी समस्त सेना भी अस्त्र से प्रदग्ध हो गयी थी और क्षण भर में ही इसके उपरान्त भस्मसात् होकर विनाश को प्राप्त हो गयी थी। चन्द्रवंश में समुत्पन्न नृपों में श्रेष्ठ उस राजा मङ्गल के निपतित हो जाने पर राम को परम हर्ष प्राप्त हुआ।५०-५१।

—×—

भार्गव-चरित्र (३)

वसिष्ठ उवाच—

मत्स्यराजे निपतिते राजा युद्धविशारदः ।
राजेंद्रान्प्रेरयामास कार्त्तवीर्यो महाबलः ॥१
बृहद्बलः सोमदत्तो विदर्भो मिथिलेश्वरः ।
निषधाधिपतिश्चैव मगधाधिपतिस्तथा ॥२
आययुः समरे योद्धुं भार्गवेंद्रेण भूपते ।
वर्षंतः शरजालानि नानायुद्धविशारदाः ॥३
वीराभिमानिनः सर्वे हैहयस्याज्ञया तदा ।
पिनाकहस्तः स भृगुर्ज्वलदग्निशिखोपमः ॥४
चिक्षेप नागपाशं च अभिमंत्र्य शरोत्तमम् ।
तदस्त्रं भार्गवेन्द्रेण क्षिप्तं संग्राममूर्द्धनि ॥५
चकर्त्त गारुडास्त्रेण सोमदत्तो महाबलः ।
ततः क्रुद्धो महाभागो रामः शत्रुविदारणः ॥६
रुद्रदत्तेन शूलेन सोमदत्तं जघान ह ।
बृहद्बलं च गदया विदर्भं मुष्टिना तथा ॥७

वसिष्ठजी ने कहा—मत्स्यराज के मर जाने पर युद्ध करने की कला के महामनीषी—महान बलशाली कार्त्तवीर्य ने फिर वहाँ रणभूमि में अन्य राजेन्द्रों को भेजा था ।१। मिथिला का स्वामी विदर्भ सोमदत्त बहुत अधिक बल वाला था । निषध देश का अधिपति और मगध देश का स्वामी—ये सब हे भूपते ! भार्गवेन्द्र परशुराम के साथ युद्ध करने के लिए समागत हो गये थे । ये सभी अनेक प्रकार के युद्ध करने में परम पण्डित थे और ये वहाँ अपने बाणों के जालों की वर्षा कर रहे थे ।२-३। ये सभी वीरता के अभिमान रखने वाले थे और उस समय में राजा हैहय की आज्ञा पाकर ही युद्ध करने के लिए आये थे । वह भृगु परशुराम अपने हाथ में धनुष ग्रहण किये थे तथा जलती हुई अग्नि के समान परम तेजस्वी थे ।४। भार्गवेन्द्र परशुराम ने नागपाश नामक एक अस्त्र था उसके उत्तम शर को अभिमन्त्रित करके

संग्राम में फेंका था ।५। किन्तु भार्गवेन्द्र के द्वारा प्रक्षिप्त किये उस अस्त्र को महा बलवान् सोमदत्त ने काट दिया था और उसको अपने गरुड़ास्त्र से ही खण्डित कर दिया था। इसके अनन्तर महाभाग राम अत्यन्त क्रुद्ध हुए थे जो कि अपने शत्रुओं का विदारण करने वाले थे ।६। इसके पश्चात् परशुराम ने भगवान रुद्र के द्वारा दिये हुए शूल में सोमदत्त का हनन कर दिया था—गदा से वृहद्बल का और मुष्टि के प्रहार से विदर्भ का निपातन कर दिया था ।७।

मैथिलं मुद्गरेणैव शक्त्या च निषधाधिपम् ।
मागधं चरणाघातैरस्त्रजालेन सैनिकान् ।।८
निहत्य निखिलां सेनां संहाराग्निसमीरणे ।
दुद्राव कार्त्तवीर्यं च जामदग्न्यो महाबल: ।।९
दृष्ट्वा तं योद्धुमायांतं राजानोऽन्ये महारथा: ।
कार्य्याकार्यविधानज्ञा: पृष्ठे कृत्वा च हैहयम् ।।१०
रामेण युयुधुश्चैव दर्शयंतश्च सौहृदम् ।
कान्यकुब्जाश्च शतश: सौराष्ट्राऽवंतयस्तथा ।।११
चक्रुश्च शरजालानि रामस्य च समंतत: ।
शरजालावृतस्तेषां राम: संग्राममूर्द्धनि ।।१२
न चादृश्यत राजेंद्र तदा स त्वक्रुतव्रण: ।
सस्मार रामचरितं यदुक्तं हरिणेन वै ।।१३
कुशलं भार्गवेंद्रस्य याचमानो हरिं मुनि: ।
एतस्मिन्नेव काले तु राम: शस्त्रास्त्रकोविद: ।।१४

राम ने मिथिला के नृप का हनन मुद्गर के द्वारा और शक्ति से निषध देश के नृप का वध तथा मगधदेशाधिपति का निपातन चरणों के आघातों से एवं उनके सब सैनिकों का वध अपने अनेक अस्त्रों के प्रहारों से कर दिया ।८। इस रीति से परशुरामजी ने वहाँ पर स्थित सम्पूर्ण सेना को मारकर महान् बलवान् जामदग्नि के पुत्र ने उस संहार की अग्नि के समीरण में राजा कार्त्तवीर्य पर दौड़कर आक्रमण किया था ।९। उस समय में महारथी अन्य राजाओं ने जो कि कार्य और अकार्य के विधान के ज्ञाता थे जब

यह देखा कि परशुराम कार्त्तवीर्य से युद्ध करने के लिए आ रहे हैं तो उन सबने उस कार्त्तवीर्य को अपने पीठ पीछे कर दिया था ।१०। और हैहय राजा के प्रति अपना सौहार्द दिखलाते हुए वे सब परशुराम के साथ युद्ध कर रहे थे । इन राजाओं में कान्य कुब्ज-सौराष्ट्र और सैकड़ों ही अवन्ति के नृप थे ।११। इन सभी ने परशुराम पर सभी ओर अपने शरों के जालों की ऐसी घोर वर्षा की थी कि उस समय में परशुराम उनके बाणों से उस संग्राम भूमि में चारों ओर से ढक गये थे ।१२। हे राजेन्द्र ! इस बाणों की वृष्टि से राम दिखाई नहीं दे रहे थे । तब उस अकृतव्रण ने उस श्रीराम के चरित का स्मरण किया था जो हरिण के द्वारा कहा गया था ।१३। उस मुनि ने भगवान् श्रीहरि से भार्गवेन्द्र परशुराम के कुशल रहने की याचना की थी । इतने ही बीच में ऐसा हुआ कि समस्त शस्त्रों और अस्त्रों के महा-पण्डित परशुराम ने अपने महान् आयुधों का प्रयोग किया था ।१४।

विधूय शरजालानि वायव्यास्त्रेण मंत्रवित् ।
उदतिष्ठद्रणाकांक्षी नीहारादिव भास्करः ।।१५

त्रिरात्रं समरे रामस्तैः सार्द्धं युयुधे बली ।
द्वादशाक्षौहिणीस्तत्र चिच्छेद लघुविक्रमः ।।१६

रम्भास्तम्भवनं यद्वत् परश्वधवरायुधः ।
सर्वांस्तान्भूपवर्गांश्च तदीयाश्च महाचमूः ।।१७

दृष्ट्वा विनिहतां तेन रामेण सुमहात्मना ।
आजगाम महावीर्यः सुचन्द्रः सूर्यवंशजः ।।१८

लक्षराजन्यसंयुक्तः सप्ताक्षौहिणिसंयुतः ।
तत्रानेकमहावीरा गर्जंतस्तोयदा इव ।।१९

कंपयंतो भुवं राजन् युयुधुर्भार्गवेण च ।
तैः प्रयुक्तानि शस्त्राणि महास्त्राणि च भूपते ।।२०

क्षणेन नाशयामास भार्गवेन्द्रः प्रतापवान् ।
गृहीत्वा परशुं दिव्यं कालांतकयमोपमम् ।।२१

मन्त्रों के परमज्ञाता राम ने अपने अस्त्र के द्वारा समस्त शरों के समुदाय को दूर करके कुहरे से निकले हुए भगवान् सूर्य देवकी भाँति वहाँ

पर रण करने की इच्छा वाले उठकर खड़े हो गये थे ।१५। महान् बलवान् उन परशुराम ने उन सबके साथ तीन दिन और रात्रि पर्यन्त समराङ्गण में घोर युद्ध किया था। और परम लघु विक्रम वाले परशुराम ने वहाँ पर बारह अक्षौहिणी सेनाओं का छेदन कर दिया था अर्थात् सबको काटकर मार गिराया था ।१६। जिस तरह से केलाओं के वन को काटकर गिरा दिया जाया करता है उसी भाँति से परम श्रेष्ठ परशुराम ने अपने परशु से उन सब भूपों को और उनकी बड़ी भारी सेनाओं को काटकर मार दिया था। जब सूर्यवंश में समुत्पन्न महान् वीर्य वाले सुचन्द्र नामक नृप ने यह देखा था कि उस महात्मा राम ने सब सेना को मार गिराया है तो वह वहाँ पर युद्ध करने के लिए स्वयं सामने आगया था ।१८-१६। उसके साथ लाखों अन्य राजा थे और सात अक्षौहिणी सेना भी थी। उनमें बहुत से ऐसे महान् वीर थे जो घनघोर मेघों के ही समान गर्जन कर रहे थे ।१६। हे राजन् ! वे अपनी गर्जना-तर्जना से सम्पूर्ण भूमि के प्राणियों को कंपा रहे थे और उन्होंने वहाँ आकर परशुराम के साथ घोर युद्ध किया था। हे भूपते ! उन्होंने अनेक शस्त्रों और अस्त्रों का वहाँ पर प्रयोग किया था ।२०। तब एक ही क्षण में महान् प्रताप वाले परशुराम ने कालान्तक यमराज के सदृश अपने परम दिव्य परशु (फर्शा) का ग्रहण करके उन सबका विनाश कर दिया था ।२१।

कालयन्सकलां सेनां चिच्छेद भृगुनन्दनः ।
कर्षकस्तु यथा क्षेत्रे पक्वं धान्यं तथा तृणम् ॥२२
निःशेपयति दात्रेण तथा रामेण तत्कृतम् ।
लक्षराजन्यसैन्यं तद्दृष्ट्वा रामेण दारितम् ॥२३
सुचन्द्रः पृथिवीपालो युयुधे संगरे नृप ।
तावुभौ तत्र संक्षुब्धौ नानाशस्त्रास्त्रकोविदौ ॥२४
युयुधाते महावीरौ मुनीशनृपतीश्वरौ ।
रामोऽस्मै यानि शस्त्राणि चिक्षेपास्त्राणि चापि हि ॥२५
तानि सर्वाणि चिच्छेद सुचंद्रो युद्धपंडितः ।
ततः क्रुद्धो रणे रामः सुचंद्रं पृथिवीश्वरम् ॥२६

कृतप्रतिकृताभिज्ञं ज्ञात्वोपस्पृश्य वार्यथ ।
नारायणास्त्रं विशिखे संदधे चानिवारितम् ॥२७
तदस्त्रं शतसूर्याभं क्षिप्तं रामेण धीमता ।
हृष्टोत्तीर्य रथात्सद्यः सुचंद्रः प्रणनाम ह ॥२८

उस सम्पूर्ण सेना को काटते हुए भृगुनन्दन ने छिन्न-भिन्न करके मार गिराया था जिस तरह से कोई खेतिहर किसान अपने खेत में पकी हुई फसल को तथा घास फूँस को काट दिया करता है ।२२। कृषक अपनी दराँत से जैसे काट देता है वैसे ही परशुरामजी ने उस सेना को काट दिया था । जब लाखों राजाओं की सेना को राम के परशु के द्वारा विदीर्ण हुई देखा गया था ।२३। तो हे नृप ! राजा सुचन्द्र ने समर में परशुराम के साथ स्वयं ही समागत होकर युद्ध किया था । वे दोनों ही बहुत अधिक क्षुब्ध हो रहे थे और दोनों अनेक शस्त्रास्त्रों के प्रयोग करने में बहुत ही कुशल पंडित थे ।२४। वे दोनों मुनीन्द्र और राजा महान् वीर थे और और युद्ध कर रहे थे । परशुराम ने जिन-जिन शस्त्रों तथा अस्त्रों का भी उस पर प्रक्षेप किया था ।२५। युद्ध में परम प्रवीण पण्डित उस सुचन्द्र नृपने उन सभी शस्त्रास्त्रों को काट गिया था । इसके अनन्तर परशुराम को उस रण में बहुत अधिक क्रोध आ गया था और परशुराम को ऐसा ज्ञान हुआ था कि यह सुचन्द्र नृप ऐसा कुशल है कि जिसका भी इस पर प्रयोग किया जाता है उसी का प्रतिकार करना यह अच्छी तरह से जानता है तो उस समय में जल का उपस्पर्शन किया था और फिर विशिख नारायण अस्त्र का सन्धान किया था। जो कि किसी भी प्रकार से निवारित नहीं हो सकता था ।२६-२७। वह नारायणास्त्र सैकड़ों सूर्यों की आभा वाला था जिसका कि प्रक्षेप बुद्धिमान् परशुराम ने सुचन्द्र पर किया था । उस समय में इस नारायणास्त्र को देख कर सुचन्द्र नृप तुरन्त ही अपने रथ से नीचे उतर गया था और उसने उस अस्त्र को प्रणाम किया था ।२८।

सर्वास्त्रपूज्यं तच्चापि नारायणविनिर्मितम् ।
तमेवं प्रणतं त्यक्त्वा ययौ नारायणांतिकम् ॥२९
विस्मितोऽभूत्तदा रामः समरे शत्रुसूदनः ।
दृष्ट्वा व्यर्थं महास्त्रं तद्भूपं स्वस्थं विलोक्य च ॥३०

राम: शक्ति च मुसलं तोमरं पट्टिशं तथा ।
गदां च परशुं कोपाच्चिक्षेप नृपमूर्द्धनि ।।३१
जग्राह तानि सर्वाणि सुचंद्रो लीलयैव हि ।
चिक्षेप शिवशूलं च रामो नृपतये यदा ।।३२
बभूव पुष्पमालां च तच्छूलं नृपतेर्गले ।
ददर्श च पुरस्तस्य भद्रकालीं जगत्प्रसूम् ।।३३
वहंतीं मुंडमालां च विकटास्यां भयंकरीम् ।
सिंहस्थां च त्रिनेत्रां च त्रिशूलवरधारिणीम् ।।३४
दृष्ट्वा विहाय शस्त्रास्त्रं नमस्कृत्य समैडत ।
राम उवाच—
नमोस्तु ते शंकरवल्लभायै जगत्सवित्र्यै समलंकृतायै ।।३५

और वह अस्त्र भी समस्त अस्त्रों में परम पूज्य था क्योंकि साक्षात् भगवान् नारायण ने ही उसका निर्माण किया था । जब उस सुचन्द्र को इस भाँति से प्रणाम करते हुए देखा तो वह अस्त्र उसको छोड़कर भगवान् नारायण के ही समीप में चला गया था ।२९। अपने शत्रुओं के विनाश करने वाले परशुराम को उस समय में समर स्थल में बहुत ही अधिक विस्मय हो गया था जबकि उन्होंने यह देखा था कि उनके द्वारा प्रयोग किया हुआ वह महान् अस्त्र भी व्यर्थ हो गया था और कुछ भी शत्रु का न करके उसी रूप में स्वस्थ वह बना रहा था ।३०। फिर राम ने अनेक शक्ति—मुसल—तोमर—पट्टिश—गदा और परशु आदि का उस सुचन्द्र पर प्रक्षेप बड़े ही क्रोध पूर्वक किया था ।३१। किन्तु इन सबका कुछ भी प्रभाव उस पर नहीं हुआ था और उसने उन सबको यों ही लीला से ही ग्रहण कर लिया था । जिस समय में परशुराम ने उस सुचन्द्र पर शिवशूल का प्रक्षेप दिया था ।३२। तो वह शिव शूल भी आकर उस राजा के गले में पुष्पों की माला होकर गिर गया था । उस समय में परशुराम ने यह देखा था कि उसके आगे समस्त जगत् की जननी भद्रकाली संस्थित हो रही है ।३३। वह भद्रकाली देवी नरमुण्डों की माला कण्ठ में पहिने हुई थीं तथा उसका मुख बहुत ही भीषण था और सबको भय देने वाली थी । वह एक सिंह के ऊपर सवार रही थी—तीन उसके नेत्र थे और हाथों में त्रिशूल धारण कर रही थी

।२४। ऐसी भगवती भद्रकाली का दर्शन करके परशुराम जी ने अपने सभी शस्त्र-अस्त्रों का परित्याग कर दिया था और देवी के चरणों में प्रणाम करके फिर उसकी भली भाँति स्तुति की थी। परशुराम ने कहा—आप तो भगवान् शङ्कर की प्रियबल्लभा हैं और इस सम्पूर्ण जगत् को जन्म देने वाली हैं। आपके लिए मेरा नमस्कार है।३५।

नानाविभूषाभिरिभारिगायै प्रपन्नरक्षाविहितोद्यमायै।
दक्षप्रसूत्यै हिमवद्भवायै महेश्वरार्द्धांगसमास्थितायै ॥३६
काल्यै कलानाथकलाधरायै भक्तप्रियायै भुवनाधिपायै।
ताराभिधायै शिवतत्परायै गणेश्वराराधितपादुकायै ॥३७
परात्परायै परमेष्ठिदायै तापत्रयोन्मूलनचिंतनायै।
जगद्धितायास्तपुरत्रयायै बालादिकायै त्रिपुराभिधायै ॥३८
समस्तविद्यासुविलासदायै जगज्जनन्यै निहिताहितायै।
बकाननायै बहुसौख्यदायै विध्वस्तनानासुरदानवायै ॥३९
वराभयालंकृतदोर्लतायै समस्तगीर्वाणनमस्कृतायै।
पीतांबरायै पवनाशुगायै शुभप्रदायै शिवसंस्तुतायै ॥४०
नागारिगायै नवखण्डपायै नीलाचलाभांगलसत्प्रभायै।
लघुक्रमायै ललिताभिधायै लेखाधिपायै लवणाकरायै ॥४१
लोलेक्षणायै लयवर्जितायै लाक्षारसालंकृतपंकजायै।
रमाभिधायै रतिसुप्रियायै रोगापहायै रचिताखिलायै ॥४२

आप विविध प्रकार के आभूषणों से समलंकृता हैं और इभारि के द्वारा गान की गयी हैं। आपकी शरणागति में प्रपन्न हो जाते हैं उनकी सुरक्षा के लिये आप उद्यम करने वाली हैं। आपने प्रजापति दक्ष के घर में जन्म धारण किया है और हिमवान् के यहाँ भी आप समुत्पन्न हुई हैं। आप साक्षात् महेश्वर की पाणिपरिणीता प्रिय पत्नी बनकर उनके अर्द्धाङ्ग में समास्थित हुई है।३६। आप कला नाथ की कला के धारण करने वाली हैं—अपने भक्तों की प्रिय काली हैं और समस्त भुवनों की स्वामिनी हैं। तारा नाम वाली हैं—भगवान् शिव की सेवा में सर्वदा तत्पर रहा करती हैं

और विश्वेश्वर गणेश आपकी पादुकाओं का समाराधन किया करते हैं ।३७। आप पर से भी परा हैं–परमेष्ठी के पद को प्रदान करने वाली हैं और आध्यात्मिक-आधिदैविक-आधिभौतिक—इन तीनों प्रकार के तापों का उन्मूलन करने वाला आपका चिन्तन हुआ करता है—इस जगत् के हित के लिए ही आपने त्रिपुरासुर को निहत किया था । वाला से आदि लेकर अनेक आपके शुभ नाम हैं तथा आपका परम शुभ त्रिपुरा—यह भी नाम है । ऐसी आपके लिये मेरा प्रणाम है ।३८। आप समस्त विद्याओं के सुविलास के प्रदान करने वाली हैं—इस सम्पूर्ण जगत् के जनन देने वाली जननी हैं—आप अहित करने वाले शत्रुओं को निहत कर देने वाली हैं—आप बकानना है अर्थात् बगुलामुखी हैं—आपके अनेक असुरों और दानवों का निहनन किया है और अत्यधिक सौख्य प्रदान किया है ।३९। आपके कर कमलों में वरदान और अभयदान रहते हैं और इनसे आपकी भुजलताएं भूषित रहा करती हैं—समस्त देवगणों के द्वारा आपके चरण कमल वन्दित हैं—आप पीताम्बरा अर्थात् पीतवर्ण के वस्त्र धारण करने वाली हैं—आप पवन के ही समान अपने भक्तों की पीड़ा दूर करने के लिये शीघ्र गमन करने वाली हैं—आपका संस्तवन भगवान् शङ्कर भी किया करते हैं तथा आप आप सबको शुभ प्रदान करने वाली हैं—ऐसी आपकी चरण सेवा में मेरा अनेक बार प्रणिपात है ।४०। आप नागारि के द्वारा गान की गयी हैं—नव खण्डों वाले विश्व का पालन एवं रक्षण करने वाली हैं तथा नीलाचल की आभा वाले अंगों की प्रभा से शोभित हैं । आप लघुक्रमा–ललिता नाम धारिणी–लेखाधिपा और लवणाकारा हैं—।४१। आपके नेत्र परमाधिक चञ्चल हैं–आप लय से वर्जित हैं और आपके चरणों में लाक्षारस लगा हुआ है जिससे आपके चरण कमल समलंकृत हैं । आपका शुभ नाम रमा है—आप सुरति से प्यार करने वाली हैं—आप सभी रोगों का अपहरण करने वाली हैं और आपने ही सबकी रचना की है—ऐसी आपके लिए मेरा प्रणाम निवेदित है ।४२।

राज्यप्रदायै रमणोत्सुकायै रत्नप्रभायै रुचिरांबरायै ।
नमो नमस्ते परतः पुरस्तात् पार्श्वाधरोर्ध्वं च
नमो नमस्ते ।।४३

सदा च सर्वत्र नमो नमस्ते नमो नमस्तेऽखिलविग्रहायै ।
प्रसीद देवेशि मम प्रतिज्ञां पुरां कृतां पालय भद्रकालि ।।४४

त्वमेव माता च पिता त्वमेव जगत्त्रयस्यापि नमो नमस्ते ।

वसिष्ठ उवाच–

एवं स्तुता तदा देवी भद्रकाली तपस्विनी ॥४५

उवाच भार्गवं प्रीता वरदानकृतोत्सवा ।

भद्रकाल्युवाच–

वत्स राम महाभाग प्रीतास्मि तव सांप्रतम् ॥४६

वरं वरय मत्तो यस्त्वया चाभ्यर्थितो हृदि ।

राम उवाच–

मातर्यदि वरो देयस्त्वया मे भक्तवत्सले ॥४७

तत्सुचंद्रं जये युद्धे तवानुग्रहभाजनम् ।

इति मेऽभिहितं देवि कुरु प्रीतेन चेतसा ॥४८

आप राज्य के प्रदान करने वाली हैं—आप रमण करने के लिए परम समुत्सुक रहा करती है—आपकी रत्नों के सदृश प्रभा है और आप रुचिर वस्त्रों के परिधान करने वाली हैं—ऐसी आपके लिए बारम्बार मेरा नमस्कार है ।४३। आपकी सेवा में मेरा सदा और सर्वत्र अनेक बार नमस्कार है । आप समस्त प्रकार के शरीर को धारण करने वाली हैं । आपकी सेवा में बारम्बार प्रणिपात है । हे देवेशि ! आप मेरे ऊपर अनुकम्पा करके प्रसन्न हो जाइए और हे भद्रकालि ! मैंने जो समग्र भूमि को क्षत्रियों से हीन कर देने की पहिले प्रतिज्ञा की है उसको परिपूर्ण करा दीजिए।४४। आप ही मेरी माता-पिता हैं और मेरी ही क्या इन तीन जगतों की माता हैं और आप ही पिता हैं—ऐसी आपके चरणों में मेरा बार-बार प्रणाम निवेदित है । वसिष्ठ जी ने कहा—उस समय में परमाधिक वेगवाली भद्रकाली देवी इस प्रकार से संस्तुत की गयी थी ।४५। तो वह देवी परम प्रसन्न होकर वरदान द्वारा आनन्द देने वाली होती हुई भार्गव परशुराम से बोली—भद्रकाली ने कहा—हे वत्स राम ! आप महान भाग वाले हैं । अब इस समय में मैं आपके ऊपर बहुत प्रसन्न हो गई हूँ ।४६। आप मुझसे वरदान प्राप्त कर लो जो भी कुछ तुमने अपने हृदय में विचार करके मेरी प्रार्थना की है । परशुराम ने कहा—हे भक्तवत्सले ! यदि आप हे माता !

मुझे कोई वरदान ही देना चाहती हैं तो मैं यही वरदान चाहता हूँ कि यह राजा सुचन्द्र से इस युद्ध में मेरा जय हो जावे तभी मैं आपकी अनुकम्पा का पात्र होऊँगा। हे देवि! यही मेरा निवेदन आपकी सेवा में मैंने किया है सो आप परम प्रसन्न चित्त से हो कर दीजिए।४७-४८।

येन केनाप्युपायेन जगन्मातर्नमोऽस्तु ते।
भद्रकाल्युवाच—
आग्नेयास्त्रेण राजेंद्रं सुचंद्रं नय मद्गृहम् ॥४६
ममातिप्रियमद्यैव पार्षदो मे भवत्वयम्।
वसिष्ठ उवाच—
इत्युक्तमाकर्ण्य स सार्गवेंद्रो देव्याः प्रियं
कर्तुमथोद्यतोऽभूत् ॥५०
प्राणान्नियम्याचमनं च कृत्वा सुचंद्रमुद्दिश्य च तत्समादधे।
अस्त्रं प्रयुक्तं नृपतेर्वधाय रामेण राजन् प्रसभं तदा तत् ॥५१
दग्ध्वा वपुर्भूतमयं तदीयं निनाय लोकं परदेवतायाः।
ततस्तु रामेण कृतप्रणामा सा भद्रकाली जगदादिकर्त्री ॥५२
अंतर्हिताभूदथ जामदग्न्यस्तस्थौ रणे भूपवधाभिकांक्षी ॥५३

हे जगत् की माता! जिस किसी भी उपाय से मेरा विजय हो जावे यही मेरी इच्छा है। मेरा आपके लिए नमस्कार है। भद्रकाली देवी ने कहा—राजेन्द्र सुचन्द्र को तुम आग्नेयास्त्र द्वारा ही मेरे स्थान में पहुँचा दो।४६। यह मेरा अत्यधिक प्रिय भक्त है सो आज ही यह मेरे गृह में पहुँचकर मेरा पार्षद हो जावेगा। वसिष्ठ जो ने कहा—उस भार्गव परशुराम जी ने यह इतना ही देवी के द्वारा कहा हुआ श्रवण करके इसके अनन्तर वह देवी का प्रिय कार्य करने के लिए समुद्यत हो गया था।५०। फिर परशुराम जी ने प्राणों का आयाम करके आचमन किया था और फिर राजा सुचन्द्र को उद्दिष्ट करके वह अस्त्र धारण किया था उस अस्त्र का हे राजन! राम ने नृप के वध के लिए बलपूर्वक उस समय में प्रयोग किया था।५१। उसके उस भौतिक शरीर को अपने अस्त्र से भस्मीभूत करके उसको फिर पर देवता के लोक को पहुँचा दिया था। इसके अनन्तर परशुराम के द्वारा प्रणिपात

की हुई वह जगत की आदि कर्त्री भद्रकाली देवी वहाँ पर अन्तर्हित हो गयी थी और परशुराम उस रण स्थल में भूप के वध की आकांक्षा वाला होकर स्थित हो गये थे ।५२-५३।

—×—

परशुराम द्वारा कार्तवीर्य-वध

वसिष्ठ उवाच—

सुचंद्रे पतिते राजान् राजेंद्राणां शिरोमणौ ।
तत्पुत्रः पुष्करगाक्षस्तु रामं योद्धुमथागतः ।।१
स रथस्थो महावीर्यः सर्वशस्त्रास्त्रकोविदः ।
अभिवीक्ष्य रणेत्युग्रं रामं कालांतकोपमम् ।।२
चकार शरजालं च भार्गवेंद्रस्य सर्वतः ।
मुहूर्त्तं जामदग्न्योऽपि बाणैः संछादितोऽभवत् ।।३
ततो निष्क्रम्य सहसा भार्गवेंद्रो महाबलः ।
शरबंधान्महाराज समुदैक्षत सर्वतः ।।४
दृष्ट्वा तं पुष्काराक्षं तु सुचंद्रतनयं तदा ।
क्रोधमाहारयामास दिधक्षन्निव पावकः ।।५
स क्रोधेन समाविष्टो वारुणं समवासृजत् ।
ततो मेघाः समुत्पन्ना गर्जंतो भैरवानुवान् ।।६
ववृषुर्जलधाराभिः प्लावयंतो धरां नृप ।
पुष्कराक्षो महावीर्यो वायव्यास्त्रमवासृजत् ।।७

श्री वसिष्ठजी ने कहा—हे राजन् ! अब राजा सुचन्द्र का निपातन हो गया था जो कि सभी राजेन्द्रों को शिरोमणि था तब उसका पुत्र पुष्कराक्ष परशुरामजी मे युद्ध करने के लिए वहाँ पर आगया था ।१। वह महान बल वीर्य वाला था और अपने रथ पर संस्थित था और सभी प्रकार के शस्त्राशस्त्रों के प्रयोग करने में बहुत बड़ा पण्डित था तथापि उसकी दृष्टि में परशुराम रण में अतीव उग्र और कालान्तक यम के समान दिखाई दिये थे ।२। उस पुष्कराक्ष ने ऐसी बाणों की वृष्टि उनके सभी ओर की थी एक

घड़ी के लिए परशुरामजी को शरों के जाल से भली भाँति ढक दिया था ।३। इसके अनन्तर भार्गवेन्द्र जो महान बल से समन्वित थे उस बाणों के जाल से सहसा बाहिर निकल आये और हे महाराज ! उसने शरों के बन्धों को सभी ओर देखा था ।४। उस समय में परशुराम ने सुचन्द्र के पुत्र पुष्कराक्ष के ऊपर अपनी दृष्टि डाली थी और उनको बड़ा भारी क्रोध उत्पन्न हो गया था । उस समय में क्रोध से वे जलती हुई अग्नि के ही समान दिखाई दे रहे थे ।५। उस काल में क्रोध से समाविष्ट होकर वारुण अस्त्र को छोड़ा था । इसके अस्त्र के प्रभाव से सभी ओर से महान भैरव गर्जना करते हुए मेघ समुत्पन्न हो गये थे ।६। हे नृप ! उन मेघों ने जल के धारा सम्पात से इस पृथ्वी को प्लावित करते हुए बड़ी घोर वृष्टि की थी । पुष्कराक्ष महान वीर्य वाला था उसने भी उस समय में वायव्य अस्त्र को छोड़ दिया था ।७।

तेन तेऽदर्शनं नीताः सद्य एव बलाहकाः ।
अथ रामो भृशं क्रुद्धो ब्राह्मं तत्राभिसंदधे ।।८
पुष्कराक्षोऽपि तेनैव विचकर्ष महाबलः ।
ब्राह्मं सोऽप्याहितं दृष्ट्वा दंडाहत इवोरगः ।।९
घोरं परशुमादाय निःश्वसंस्तमधावत ।
रामस्याधावतस्तत्र पुष्कराक्षो धनुर्धरः ।।१०
संदधे पंचविशिखान्दीप्तास्यानुरगानिव ।
एकैकेन च बाणेन हृदि शीर्षे भुजद्वये ।।११
शिखायां च क्रमाद्भित्त्वा तस्तंभ भृशमातुरम् ।
स चैवं पीडितो रामः पुष्कराक्षेण संयुगे ।।१२
क्षणं स्थित्वा भृशं धावन्परशुं मूर्ध्न्यपातयत् ।
शिखामारभ्य पादांतं पुष्कराक्षं द्विधाऽकरोत् ।।१३
पतिते शकले भूमौ तत्कालं पश्यतां नृणाम् ।
आश्चर्यं सुमहज्जातं दिवि चैव दिवौकसाम् ।।१४

उसने वायव्य अस्त्र के द्वारा उन सभी मेघों को तितर-बितर करके तुरन्त ही दूर भगा दिया था जो कि वहाँ बिल्कुल भी दिखाई न दे रहे थे ।

इसके अनन्तर परमाधिक क्रुद्ध हुए और उन्होंने ब्रह्मास्त्र अभिसन्धान किया था ।८। महान बली पुष्कराक्ष ने भी उसी समय में ब्रह्म अस्त्र का ही प्रयोग करके उसको निकृष्ट कर दिया था। तब वह इतना क्रोधित हो गया था जैसे दण्ड से आहत सर्प हो जाया करता है ऐसा जब परशुराम ने उसको देखा था ।६। फिर उष्ण श्वास लेते हुए राम ने अपना महान घोर परशु ले लिया था और उसकी ओर दौड़े थे। धनुर्धारी पुष्कराक्ष ने वहाँ पर दौड़ते हुए परशुराम के ऊपर पाँच बाण छोड़े थे जो परम दीप्त उरगों के ही समान थे। उसने एक-एक बाण से परशुराम के शरीर का वेधन किया था और एक हृदय में—एक शिर में दो भुजाओं में और एक शिखा में मारकर इनका भेदन कर दिया था तथा बहुत ही आतुर करके स्तम्भित कर दिया था। वह राम इस प्रकार से प्रपीड़ित हो गये थे और युद्ध स्थल में पुष्कराक्ष ने उनको जहाँ तहाँ रोक दिया था ।१०-१२। पर क्षण भर स्थित रहकर बहुत ही बहुत अधिक बल से दौड़कर उन्होंने फिर उस पुष्कराक्ष के मस्तक में अपने परशु का प्रहार किया था और चोटी से लेकर पैरों तक उसके दो टुकड़े कर दिये थे ।१३। दो खण्डों में कटकर उसके भूमि पर निपतित हो जाने पर जो भी मनुष्य वहाँ पर देख रहे थे उनको तथा देवलोक में देवों को बहुत बड़ा आश्चर्य हुआ था कि इतने बड़े बलशाली को किस तरह से टुकड़े कर मार गिराया है ।१४।

विदार्य रामस्तं क्रोधात्पुष्कराक्षं महाबलम् ।
तत्सैन्यमदहत्क्रुद्धः पावको विपिनं यथा ।।१५
यतो यतो धावति भार्गवेंद्रो मनोऽनिलौजाः प्रहरन्परश्वधम् ।
ततस्ततो वाजिरथेभमानवा निकृत्तगात्राः शतशो निपेतुः।।१६
रामेण तत्रातिबलेन संगरे निहन्यमानास्तु परश्वधेन ।
हा तात मातस्त्विति जल्पमाना भस्मीबभूवुः
सुविचूर्णितास्तदा ।।१७
मुहूर्त्तमात्रेण च भार्गवेण तत्पुष्कराक्षस्य बलं समग्रम् ।
अनेकराजन्यकुलं हतेश्वरं हृतं नवाक्षौहिणिकं भृशातुरम् ।।१८
पतिते पुष्कराक्षे तु कार्त्तवीर्यार्जुनः स्वयम् ।
आजगाम महावीर्यः सुवर्णरथमास्थितः ।।१६

नानाशस्त्रसमाकीर्णं नानारत्नपरिच्छदम् ।
दशनल्वप्रमाणं च शतवाजियुतं नृपः ॥२०
युते बाहुसहस्रेण नानायुधधरेण च ।
बभौ स्वर्लोकमारोक्ष्यन्देहांते सुकृती यथा ॥२१

परशुराम ने क्रोध करके उस महाबली पुष्कराक्ष को बिदीर्ण करके फिर क्रुद्ध होकर उसकी जो परम विशाल सेना थी उसको भी भस्मीभूत करके जला दिया जिस तरह से दावाग्नि बड़े भारी वन को जला दिया करता है ।१५। मन और वायु के सदृश ओज वाले परशुराम जहाँ-जहाँ पर भी दौड़कर जाते थे और अपने फरशा से प्रहार कर रहे थे वहीं-वहीं पर अश्व-रथ-हाथी और मानव सैनिक कट-कटकर छिन्न भिन्न शरीर वाले सैकड़ों ही गिर गये थे ।१६। अत्यन्त बल वाले राम ने वहाँ युद्ध भूमि में अपने परशु से जिनको मारकर गिरा दिया था अथवा अधमरे होकर गिर गये थे वे उस समय में मूच्छित होकर पड़े हुए चीत्कार कर रहे थे और हे तात ! हे माता ! हम मर रहे हैं—यह कहते हुए भस्मीभूत हो गये थे ।१७। मुहूर्त्त मात्र में ही अर्थात् दो घड़ियों के समय में भार्गव ने उस पुष्कराक्ष की सम्पूर्ण सेना को तथा बहुत से राजाओं के समुदाय को जिनके स्वामी निहत हो गये हैं एवं अत्यन्त आतुर नौ अक्षौहिणी सैन्य को निहत कर दिया था ।१८। जब यह देखा गया था कि पुष्कराक्ष जैसा महाबली मर गया तो कार्त्तवीर्यार्जुन जिसका महान बल-वीर्य था स्वयं एक सुवर्ण से निर्मित रथ पर समास्थित होकर वहाँ पर युद्ध करने के लिए समागत हो गया था ।१९। उसका वह ऐसा रथ था जिसमें अनेक भाँति के शस्त्र भरे हुए थे और विविध भाँति के रत्नों का परिच्छद था । उसका प्रमाण दशनल्व था और उसमें सौ अश्व लगे हुए थे ।२०। वह राजा भी अनेक आयुध धारी सहस्र बाहुओं से युक्त था। उसकी उस समय में ऐसी शोभा हो रही थी जैसे कोई पुण्यात्मा देह के अन्त समय में स्वर्गलोक को जा रहा होवे ।२१।

पुत्रास्तस्य महावीर्या शतं युद्धविशारदाः ।
सेनाः संव्यूह्य संतस्थुः संग्रामे पितुराज्ञया ॥२२
कार्त्तवीर्यस्तु बलवान्रामं दृष्ट्वा रणाजिरे ।
कालांतकयमप्रख्यं योद्धं समुपचक्रमे ॥२३

दक्षे पंचशतं बाणान्वामे पंचशतं धनुः ।
जग्राह भार्गवेंद्रस्य समरे जेतुमुद्यतः ॥२४
बाणवर्षं चकाराथ रामस्योपरि भूपते ।
यथा बलाहको वीर पर्वतोपरि वर्षति ॥२५
बाणवर्षेण तेनाजौ सत्कृतो भृगुनन्दनः ।
जग्राह स्वधनुर्दिव्यं बाणवर्षं तथाऽकरोत् ॥२६
तावुभौ रणसंदृप्तौ तदा भार्गवहैहयौ ।
चक्रतुर्यु द्धमतुलं तुमुलं लोमहर्षणम् ॥२७
ब्रह्मास्त्रं च स भूपालः संदधे रणमूर्द्ध नि ।
वधाय भार्गवेंद्रस्य सर्वशस्त्रास्त्रधृग्बली ॥२८

उस कार्त्तवीर्य के पुत्र भी सौ थे जो महान वीर्य वाले थे और युद्ध करने की विद्या में महान पण्डित थे । वे भी सब अपने पिता की आज्ञा से सेनाओं का संग्रह करके संग्राम में समवस्थित हो गये थे ।२२। उस बलवान कार्त्तवीर्य ने रणभूमि में जब परशुराम को देखा था उसको उनका स्वरूप ऐसा प्रतीत होता था मानों वह कालान्तक यम ही होवें फिर भी वह युद्ध करने को प्रस्तुत हो गया था ।२३। भार्गव को युद्ध में जीतने के लिए उसके दाहिनी ओर पाँच सौ बाण थे और वामभाग में पाँच सौ धनुष थे ।२४। हे भूपते ! उस सहस्रार्जुन ने परशुराम के ऊपर बाणों का प्रक्षेप ऐसा किया था जैसे मेघ वृष्टि कर रहे होवें । जिस प्रकार बलाहक मेघ किसी पर्वत पर धुँआधार जल की वर्षा किया करते हैं ।२५। उसने बाणों की वर्षा के द्वारा ही उस रणभूमि में भृगुनन्दन का सत्कार किया था। उसने अपना दिव्य धनुष ग्रहण किया था । और उसी भाँति से बाणों की थी ।२६। वे दोनों ही कार्त्तवीर्य और भार्गव राम उस समय में रण करके के दर्प वाले थे और उन दोनों ने अनुपम युद्ध किया था जो बड़ा ही तुमुल और रोम हर्षण था उस रण के प्राङ्गण में उस राजा ने ब्रह्मास्त्र का सन्धान किया था । वह राजा सभी शस्त्रों और अस्त्रों के धारण करने वाला और बलवान था जिसने के वध के ही लिए इस अस्त्र का प्रयोग किया था ।२८।

रामोऽपि वायुं पस्पृश्य ब्राह्मं ब्राह्माय संदधे ।
ततो व्योम्नि सदा सक्ते द्वे चाप्यस्त्रे नराधिप ॥२९

बवृधाते जगत्प्रांते तेजसा ज्वलनार्कवत् ।
त्रयो लोकाः सपाताला दृष्ट्वा तन्महदद्‌भुतम् ॥३०
ज्वलदस्त्रयुगं तप्ता मेनिरेऽस्योपसंयमम् ।
रामस्तदा वीक्ष्य जगत्प्रणाशं जगन्निवासोक्त-
मथास्मरत्तदा ॥३१
रक्षा विधेयाऽद्य मयाऽस्य संयमो निवारणीयः
परमांशधारिणा ।
इति व्यवस्य प्रभुरुग्रतेजा नेत्रद्वयेनाथ तदस्त्रयुग्मम् ॥३२
पीत्वातिरामं जगदाकलय्य तस्थौ क्षणं ध्यानगतो महात्मा ।
ध्यानप्रभावेण ततस्तु तस्य ब्रह्मास्त्रयुग्मं विगतप्रभावम् ॥३३
पपात भूमौ सहसाऽथ यत्क्षणं सर्वं जगत्स्वास्थ्यमुपाजगाम ।
स जामदग्न्यो महतां महीयान्स्रष्टुं तथा
पालयितुं निहंतुम् ॥३४
विभुस्तथापीह निजं प्रभावं गोपायितुं लोकविधिं चकार ।
धनुर्द्धरः शूरतमो महस्वान्सदग्रणीः संसदि तथ्यवक्ता ॥३५

इधर परशुराम जी ने भी जल का उपस्पर्शन करके ब्रह्मास्त्र के निराकरण करने के लिए ब्रह्मास्त्र का ही सन्धान किया था। हे नराधिप! उस समय में वे दोनों अस्त्र सदा ही अन्तरिक्ष में प्रसक्त हो गये थे।२९। वे दोनों ही तेज से जाज्वल्यमान सूर्यों के समान जग त्प्रान्त में विशेष रूप से बढ़ रहे थे। उस समय में पाताल के सहित तीनों लोक इस महान अद्‌भुत अस्त्रों के पारस्परिक संघर्ष को देख रहे थे।३०। वे दोनों ब्रह्मास्त्र जाज्वल्य-मान थे और सभी लोग उनके तेज से संतप्त ही रहे थे। उस समय में इसका उपसंयम सभी ने माना था। परशराम ने भी तब सम्पूर्ण जगत का प्रकृष्ट नाश देखकर उसी समय में जगन्निवास के कथन का स्मरण किया था।३१। आज मेरे द्वारा किसी भी रीति से सुरक्षा करनी चाहिए और इसका संयम करके निवारण करना ही चाहिए क्योंकि मैं तो परमांश का अर्थात् प्रभु के ही अंश का धारण करने वाला हूँ जिसकी यह सृष्टि है। यह निश्चय करके अतीव उग्र तेज वाले प्रभु ने अपने दोनों नेत्रों से उन दोनों

नेत्रों से उन दोनों अस्त्रों का पान कर लिया था ।३२। जगत के कल्याण का विचार करके ही उनका पान किया और फिर महान आत्मा वाले उनने क्षण भर के लिए ध्यान में अवस्थित होकर चुपचाप वे खड़े रह गये थे । इसके उपरान्त उनके ध्यान के प्रबल प्रभाव से वे दोनों ही ब्रह्मास्त्र प्रभाव हीन हो गये थे ।३३। फिर इसके अनन्तर वह दोनों अस्त्रों का जोड़ा भूमि पर गिर गया था ।३४। वह परशुराम तो महान पुरुषों में भी परम महान थे और इस संसार के सृजन-पालन और निहनन करने में पूर्ण समर्थ थे । ।३४। वे साक्षात् विभु थे तो भी अपने वास्तविक प्रभाव को छिपाने के ही लिए इस लौकिक विधान को किया करते थे जिससे लोग उनके असली स्वरूप को न पहिचान पावें । वह ऐसा ही सबकी दृष्टि में दर्शित किया करते थे कि वे बड़े धनुर्धारी-विशिष्टशूर-तेजस्वी-सभा में प्रमुख और संसद में तथ्य के बोलने वाले हैं ।३५।

कलाकलापेषु कृतप्रयत्नो विद्यासु शास्त्रेषु बुधो विधिज्ञः
एवं नृलोके प्रथयन्स्वभावं सर्वाणि कल्यानि
करोति नित्यम् ।।३६

सर्वे तु लोका विजितास्तु तेन रामेण राजन्यनिषूदनेत ।
एवं स रामः प्रथित प्रभावः प्रशामयित्वा तु तदस्त्रयुग्मम् ।।३७
पुनः प्रवृत्तो निधनं प्रकर्तुं रणांगणे हैहयवंशकेतोः ।
तूणीरतः पत्रियुगं गृहीत्वा पुंखे निधायाथ धनुर्ज्यकायाम् ।।३८
आलक्ष्य लक्ष्यं नृपकर्णयुग्मं चकर्त्तचूडामणिहर्तुकामः ।
स कृत्तकर्णो नृपतिर्महात्मा विनिर्जिताशेषजगत्प्रवीरः ।।३९
मेने निजं वीर्यमिह प्रणष्टं रामेण भूमीश तिरस्कृतात्मा ।
क्षणं धराधीशतनुर्विवर्णा गतानुभावा नृपतेर्बभूव ।।४०
लेखयेव सच्चित्रकरप्रयुक्ता सुदीनचित्तस्य विलक्ष्यतेऽग ।
ततः स राजा निजवीर्यवैभवं समस्तलोकाधिकतां
प्रयातम् ।।४१
विचिन्त्य पौलस्त्यजयादिलब्धं शोचन्निवासीत्स
जयाभिकांक्षी ।
दध्यौ पुनर्मीलितलोचनो नृपो दत्तं तमात्रेयकुलप्रदीपम् ।।४२

जितनी भी कलायें हैं उन सबके ज्ञान प्राप्त करने के लिए प्रयत्न करने वाले हैं तथा समस्त विद्याओं में एवं शास्त्रों में बुध है और विधि के ज्ञाता हैं। इसी रीति से लोक में अपने प्रभाव एवं स्वभाव को दिखलाते हुए सभी कल्पों नित्य किया करते हैं।३६। क्षत्रियों का निषूदन करने वाले परशुराम ने समस्त लोकों को जीत लिया है इस प्रकार से ही परशुराम प्रथित प्रभाव वाथे थे। उन्होंने उसी समय में उन दोनों ब्रह्मास्त्रों को प्रशामित कर दिया था।३७। फिर वे उस रण भूमि में हैहय वंश के केतु कार्त्तवीर्य का निधन करने के लिये युद्ध में प्रवृत्त हो गये थे। तूणीर से दो बाणों को लेकर धनुष की प्रत्यञ्चा को खींचकर उसमें वाणों को चढ़ाया था। ।३८। नृप की चूड़ामणि का हरण करने की कामना वाले रामने लक्ष्य पर निशाना लगाकर नृप के दोनों कानों को काट गिराया था। जिस कार्त्तवीर्य ने जगत् में समस्त महान् वीरों को पराजित कर लिया था वह महात्मा जब कटे हुए कानों वाला हो गया था तो अपने मन में भयभीत हो गया था तो अपने मन में भयभीत हो गया था।३९। उस समय में यह मान लिया था कि हे भूमीश ! वह राम के द्वारा तिरस्कृत आत्मा वाला होगया है और अब उसका वीर्य-विक्रम सब नष्ट होगया है। हे नृपते ! एक ही क्षण में उनका शरीर विवर्ण होकर भूमि पर गिर गया था और उनके सभी अनुभाव विगत हो गये थे।४०। उसके अनन्तर उस कार्त्तवीर्य राजाने देखा था कि समस्त लोकों में अधिकता को प्राप्त होने वाला अपने वीर्यविक्रम से सर्वथा गया हुआ है और उस दीनचित्त वाले का शरीर किसी अच्छे चित्रकार के द्वारा निर्मित चित्र के ही समान हो गया है।४१। वह अपने विजय की आकाङ्क्षा वाला राजा यही चिन्तन करके कि मैंने पौलस्त्य रावण जैसे बलवान् पर भी विजय प्राप्त की थी जब मेरी क्या दशा हो रही है-यही सोच करता हुआ वह वहाँ पड़ा था। फिर उस राजा ने अपने दोनों नेत्र मूँद लिये थे और आत्रेय कुल के प्रदीप दत्तात्रेय का उसने ध्यान किया था।४२।

यस्य प्रभावानुगृहीत ओजसा तिरश्चकाराखिलयोकपालकान् ।
यदास्य हृद्येष महानुभावो दत्तः प्रयातो न हि दर्शनं तदा ।।४३

खिन्नोऽतिमात्रं धरणीपतिस्तदा पुनः पुनर्ध्यानपथं जगाम ।

स ध्यायमानोऽपि न चाजगाम दत्तो मनोगोचरमस्य राजन् ।।४४

तपस्विनो दांततमस्य साधोरनागसो दुष्कृतिकारिणो विभुः ।
एवं यदात्रेस्तनयो महात्मा दृष्टो न ध्यानपथे नृपेण ।।४५

तदाऽतिदुःखेन विदूयमानः शोकेन मोहेन युतो बभूव ।
तं शोकमग्नं नृपति महात्मा रामो जगादाखिलचित्तदर्शी ।।४६

मा शोकभावं नृपते प्रयाहि नैवानुशोचंति महानुभावाः ।
यस्ते वरायाभवमादिसर्गे स एव चाहं तव सादनाम ।।४७

समागतस्त्वं भव धीरचित्तः संग्रामकाले न विषादचर्चा ।
सर्वो हि लोकः स्वकृतं भुनक्ति शुभाशुभं दैतकृतं विपाके ।।४८

अन्योन कोऽप्यस्य शुभाशुभस्य विपर्ययं कर्तुमलं नरेश ।
यत्तो सुपुण्यं बहुजन्मसंचितं तेनेहं दत्तस्य वरार्हपात्रम् ।।४९

जिस दत्तात्रेय के प्रभाव एवं अनुग्रह से मैंने इतना अधिक अनुपम ओज प्राप्त किया था कि उससे मैंने समस्त लोकपालों का भी तिरस्कार कर दिया था और वे भी मेरे सामने नहीं पड़ते थे। जिस समय में यह यह महापुरुष मेरे हृदय में विराजमान थे वे महानुभाव भी अब मेरे हृदय का त्याग करके प्रयाण कर गये हैं क्योंकि उस समय में उनके भी दर्शन नहीं हो रहे थे।४३। वह राजा कार्त्तवीर्य बहुत ही अधिक खिन्न हो गया था और बार-बार ध्यान करता था। हे राजन्! बहुत ही अच्छी तरह से ध्यान किये गये भी वे दत्तात्रेय इस राजा के मन में गोचर नहीं हुए थे।४४। दत्तात्रेय मुनि उसके ध्यान में इसीलिए समागत नहीं हुए थे क्योंकि वे तो विभु थे और यह जानते थे कि यह परमाधिक दमन शील-तपस्वी-निरपराध साधु जमदग्नि के साथ भी इसने परम-दुष्कृत किया है। इसी कारण से राजा के द्वारा बार-बार ध्यान करने पर भी महान् आत्मा वाले अत्रि के पुत्र उसके ध्यान में नहीं आये थे और उस राजा को उनका दर्शन प्राप्त नहीं हुआ था।४५। उस समय में यह कार्त्तवीर्य अत्यधिक दुःख से

विशेष परितप्त हो रहा था और शोक एवं मोह से भी युक्त हो गया था। जब वह इस रीति से राजा शोक में मग्न हो रहा था तो सबके चित्तों की गति के देखने वाले महात्मा राम ने उससे कहा था।४६। हे राजन् ! अब तुम इतने अधिक शोक को मत करो। जो महानुभाव होते हैं वे कभी भी ऐसा शोक नहीं किया करते हैं आदि सर्ग में जो तुझे वरदान देने के लिए हुआ था वही मैं अब तेरे सादन करने के लिए हुआ है।४७। वही तू यहाँ पर समागत हुआ है। अब तुम चित्त में धैर्य धारण करो। यह तो संग्राम करने का समय है। इसमें विषाद करने की तो कोई चर्चा का अवसर ही नहीं आना चाहिए। तुम तो ज्ञानी हो यह भी भली भाँति समझते ही हो कि सभी प्राणी अपने किये हुए ही कर्मों का योग चाहे वह शुभ हो या अशुभ हो विपाक हो जाने पर दैव के द्वारा किये हुए का भोगा करते हैं। ।४८। हे नरेश ! इस शुभ और अशुभ का विपर्यय करने के लिये अन्य कोई भी सामर्थ्य नहीं रखता है। जो कुछ भी बहुत से जन्मों में किये गये पुण्य कर्मों का सञ्चय था उसी का यह प्रभाव था कि भगवान् दत्तात्रेय महा-मुनि का इस लोक में तुम वरदान के योग्य पात्र बन गये थे। तात्पर्य यही है कि सभी फलाफल किये हुए कर्मों के ही अनुसार हुआ करते हैं यह सभी कर्माधीन हैं जिस का विचार कोई भी नहीं किया करता है।४९।

जातो भवानद्य तु दुष्कृतस्य फलं प्रभुंक्ष्व त्वमिहार्जितस्य।
गुर्वविमत्यापकृतस्त्वया मे यतस्ततः
कर्णनिकृन्तनं ते ।।५०

कृतं मया पश्य हरंतमोजसा चूडामणिं मामपहृत्य ते यशः।
इत्येवमुक्त्वा स भृगुर्महात्मा नियोज्य बाणं च
विकृष्य चापम् ।।५१

चिक्षेप राज्ञः स तु लाघवेन च्छित्वा मणिं राममुपाजगाम।
तद्वीक्ष्य कर्माग्र्य मुनेः सुतस्य स चार्जुनो
हैहयवंशधर्त्ता ।।५२

समुद्यतोऽभूत्पुनरप्युदायुधस्तं हंतुमाजौ द्विजमात्मशत्रुम्।
शूलशक्तिगदाचक्रखड्गपट्टिशतोमरैः ।।५३

नानाप्रहरणैश्चान्यैराजघान द्विजात्मजम् ।
स रामो लाघवेनैव संप्रक्षिप्तान्यनेन च ॥५४
शूलादीनि चकर्त्ताशु मध्य एव निजाशुगैः ।
स राजा वार्युपस्पृश्य ससर्जाग्नेयमुत्तमम ॥५५
अस्त्रं रामो वारुणेन शमयामास सत्वरम् ।
गांधर्वं विदधे राजा वायव्येनाहनद्विभुम् ॥५६

आज आपको यह परम दुष्कृत का ही फल प्राप्त हुआ है । अब यहाँ पर जो भी पाप किया है उसका फल भोगिए क्योंकि यह दुष्कृत आपने ही जो अर्जित किया है फिर इसका फल भी आप ही को भोगना है । आपने मेरे गुरु जमदग्नि का अपमान करके बड़ा भारी अपकार किया है । यही कारण है कि आपके कानों का कृन्तन हुआ है ।५०। तुम्हारे यश का अपहरण करके मैंने ओज से तुम्हारी चूड़ामणि का अपहरण किया है यह तुम देख लो । इतना कहकर उन महात्मा भृगु ने वाण चढ़ाकर धनुष की प्रत्यञ्चा को खींच लिया था ।५१। उन्होंने उस राजा के ऊपर उस वाण का प्रक्षेप किया था और बड़े ही लाघव से उस मणि का छेदन किया था जिससे कि वह मणि परशुराम के समीप में उपागत हो गयी थी । उस मुनिकुमार के इस कर्म का अभिवीक्षण करके वह हैहय के वंश के धारण करने वाले सहस्रार्जुन युद्ध को तैयार हो गया था ।५२। वह कार्त्तवीर्य राजा आयुध ग्रहण करके युद्ध में उस द्विज सुत को जिसको वह अपना शत्रु समझता था मारने के लिये समुद्यत हो गया था । शूल-शक्ति-गदा-चक्र-खड्ग-पट्टिट और तोमर तथा अन्यन्य नाना प्रकार के प्रहरणों से उस कार्त्तवीर्य द्विजवर के पुत्र परशुराम पर प्रहार किये थे किन्तु परशुराम ने उनके द्वारा जो भी अस्त्रों का प्रक्षेप किया गया था वे सब बहुत ही लाघव से उन सबको काट दिया था और जब तक वे अस्त्र लक्ष्य तक पहुँचने भी नहीं पाये थे तभी तक बीच में ही अपने वाणों के द्वारा उन सबको राम ने काटकर शीघ्र ही गिरा दिया था । उस राजा ने भी जल का उपस्पर्शन करके फिर अपने उत्तम आग्नेय अस्त्र को छोड़ दिया था ।५३-५५। रामने अपने वारुण अस्त्र के द्वारा शीघ्र ही उस आग्नेय अस्त्र का शमन कर दिया था । फिर राजा ने गान्धर्व अस्त्र को छोड़ा था और वायव्य अस्त्र से विभु परशुराम के ऊपर प्रहार किया था ।५६।

नागास्त्रं गारुडेनापि रामश्चिच्छेद भूपते ।
दत्तेन दत्तं यच्छूलमव्यर्थं मंत्रपूर्वकम् ॥५७
जग्राह समरे राजा भार्गवस्य वधाय च ।
तच्छूलं शतसूर्याभमनिवार्यं सुरासुरैः ॥५८
चिक्षेप राममुद्दिश्य समग्रेण बलेन सः ।
मूर्ध्नि तद्भार्गवस्याथ निपपात महीपते ॥५९
तेन शूलप्रहारेण व्यथितो भार्गवस्तदा ।
मूर्च्छामवाप राजेंद्र पपात च हरिं स्मरन् ॥६०
पतिते भार्गवे तत्र सर्वे देवा भयाकुलाः ।
समाजग्मुः पुरस्कृत्य ब्रह्मविष्णुमहेश्वरान् ॥६१
शंकरस्तु महाज्ञानी साक्षान्मृत्युंजयः प्रभुः ।
भार्गवं जीवयामास संजीवन्या स विद्यया ॥६२
रामस्तु चेतनां प्राप्य ददर्श पुरतः सुरान् ।
प्रणनाम च राजेंद्र भक्त्या ब्रह्मादिकांस्तु तान् ॥६३

हे भूपते ! अपने गरुड़ अस्त्र के द्वारा उस नागास्त्र का छेदन कर दिया था । दत्तात्रेय महामुनि ने जो एक शूल इस कार्त्तवीर्य को प्रदान किया था वह अव्यर्थ था अर्थात् उस का प्रयोग कभी भी व्यर्थ एवं असफल नहीं हुआ करता था । इस का प्रयोग मन्त्रोच्चारण के ही साथ हुआ करता था ।५७। इस शूल का ग्रहण राजा कार्त्तवीर्य ने परशुराम जी के वध करने के लिए किया था । वह शूल बड़ा ही तेज से युक्त था-सैकड़ों सूर्यों की आभा के ही समान उसकी आभा थी और यह ऐसा था कि जिसका प्रयोग किसी प्रकार से भी निवारित नहीं किया जा सकता था और सुर तथा असुर कोई भी उसको विफल नहीं कर सकते थे ।५८। उस कार्त्तवीर्य ने अपने सम्पूर्ण बल के द्वारा परशुराम का उद्देश्य करके इसको फेंका था । हे महीपते ! वह शूल भार्गवेन्द्र के मस्तक पर गिरा था ।५९। उस शूल के प्रहार से उस समय में परशुराम बहुत व्यथित हो गये थे और हे राजेन्द्र ! उनको इसके प्रबल प्रहार से मूर्च्छा हो गयी थी । वे श्री हरि का स्मरण करते हुए भूमि पर गिर गये थे ।६०। वहाँ पर जिस समय में भृगु वंशोद्भूत परशुराम भूमि पर गिर गये थे उस समय में समस्त देवगण महान् भय से

समाकुल हो गये थे और वे सब ब्रह्मा-विष्णु और महेश्वर को अपने आगे करके वहाँ पर समागत हो गये थे ।६१। भगवान् शङ्कर तो महाज्ञानी थे और मृत्यु के ऊपर भी विजय प्राप्त करने वाले साक्षात् प्रभु थे। उन्होंने तुरन्त ही अपनी संजीवनी विद्या से भार्गव को जीवन प्रदान करके जीवित कर दिया था ।६२। परशुराम जी को जब चेतना प्राप्त हो गयी थी तो सम्हलकर खड़े हुए थे और उन्होंने अपने आगे सभी सुरगणों को देखा था। हे राजेन्द्र ! उन्होंने ब्रह्मा आदिक उन महान् देवों के चरणों में बड़े ही भक्ति के भाव से प्रणाम किया था ।६३।

ते स्तुता भार्गवेंद्रेण सद्योऽदर्शनमागताः ।
स रामो वायुं स्पृश्य जजाप कवचं तु तत् ।।६४
उत्थितश्च सुसंरब्धो निर्दहन्निव चक्षुषा ।
स्मृत्वा पाशुपतं चास्त्रं शिवदत्तं स भार्गवः ।।६५
सद्यः संहृतवांस्तत्तु कार्त्तवीर्यं महाबलम् ।
स राजा दत्तभक्तस्तु विष्णोश्चक्रं सुदर्शनम् ।
प्रविष्टो भस्मसाज्जातं शरीरं बाहुनन्दन ।।६६

भार्गवेन्द्र के द्वारा उनकी स्तुति की गयी थी और फिर वे सभी सुरगण तुरन्त ही अन्तर्हित हो गये थे। उन परशुराम प्रभु ने जल का आचमन करके उस समय में उस कवच का जप किया था ।६४। और भली भाँति संरब्ध होकर वे उठ खड़े हुए थे। उस समय में उनके नेत्रों में ऐसा अद्भुत तेज हो गया था जिससे ऐसा प्रतीत हो रहा था मानों वे चक्षु से सब को दग्ध ही कर रहे होंवे। उन भार्गव ने भगवान् शिव के द्वारा कृपा करके प्रदान किये पाशुपत अस्त्र का स्मरण किया था ।६५। उस पाशुपत अस्त्र ने महान् बलवान् उस कार्त्तवीर्य को तुरन्त ही संहृत कर दिया था अर्थात् मार गिराया था। वह राजा दत्तात्रेय महामुनि का परम भक्त था और भगवान् विष्णु के सुदर्शन चक्र में प्रविष्ट हो गया था और सहस्रों बाहुओं के द्वारा आनन्द करने वाले उसका शरीर भस्मसात् हो गया था ।६६।

—×—

भार्गव चरित्र वर्णन (१)

वसिष्ठ उवाच–

दृष्ट्वा पितुर्वधं घोरं तत्पुत्रास्ते शतं त्वरा ।
वारयामासुरत्युग्रं भार्गवं स्वबलैः पृथक् ।।१
एकैकाक्षौहिणीयुक्ताः सर्वे ते युद्धदुर्मदाः ।
संग्रामं तुमुलं चक्रुः संरब्धास्तु पितुर्वधात् ।।२
रामस्तु दृष्ट्वा तत्पुत्राञ्छूरान्रणविशारदान् ।
परश्वधं समादाय युयुधे तैश्च संगरे ।।३
तां सेनां भगवान्रामः शताक्षौहिणिसंमिताम् ।
निजघान त्वरायुक्तो मुहूर्तद्वयमात्रतः ।।४
निःशेषितं स्वसैन्यं तु कुठारेणैव लीलया ।
दृष्ट्वा रामेण ते सर्वे युयुधुर्वीर्यसंमताः ।।५
नानाविधानि दिव्यानि प्रहरंतो महौजसः ।
परितो मंडलं चक्रुर्भार्गवस्य महात्मनः ।।६
अथ रामोऽपि बलवांस्तेषां मंडलमध्यगः ।
विरेजे भगवान्साक्षाद्यथा नाभिस्तु चक्रगा ।।७

श्री वसिष्ठ जी ने कहा—उसके पुत्रों ने जब यह महान् घोर अपने पिता का वध देखा था तो उन सौ पुत्रों ने पृथक्-पृथक् अपने सैन्य बलों लेकर अतीव उग्र भार्गव का वारण किया था ।१। वे सभी युद्ध करने में अत्यन्त दुर्मद थे और सबके साथ एक-एक अक्षौहिणी सेना थी । अपने पिता के वध हो जाने से वे अत्यन्त ही क्रोध में भरे हुए थे और उन्होंने तुमुल संग्राम किया था ।२। परशुराम जी ने देखा था कि उसके सभी पुत्र बड़े शूरवीर हैं और रण करने में बहुत कुशल हैं तब उन्होंने अपना फर्शा उठा लिया था और उन सबके साथ युद्ध क्षेत्र में घोर युद्ध किया था ।३। भगवान् राम ने सौ अक्षौहिणियों से संयुत उस समग्र सेना को बड़ी ही त्वरा से युक्त होकर दो ही मुहूर्त्त के समय में विहनन करके मार गिराया था ।४। महान् वीर्य से संमत उन्होंने जब यह देखा था कि परशुराम ने अपने कुठार के

द्वारा खेल ही खेल में लीला से ही बिना कुछ अधिक आयास किये सम्पूर्ण अपनी सेना को मारकर समाप्त कर दिया है तो सबने बड़ा भारी घोर युद्ध किया था ।५। महान् आत्मा वाले भार्गव के चारों ओर विविध प्रकार के दिव्य अस्त्रों के द्वारा प्रहार करते हुए उन महान् ओज वालों ने सबने एक मण्डल सा बना लिया था अर्थात् सब ओर से घेर कर बीच में दे लिया था ।६। इसके अनन्तर महान् बलशाली परशुराम भी उन सबके मण्डल (घेरा) में मध्य में स्थित होकर वह साक्षात् भगवान् परम सुशोभित हुए थे जिस तरह से समस्त नाड़ियों के चक्र के मध्य में स्थित नाभि शोभा दिया करती है ।७।

नृत्यन्निवाजौ विरराज रामः शतं पुनस्ते परितो भ्रमंतः ।
रेजुश्च गोपीगणमध्यसंस्थः कृष्णो यथा ताः
परितो भ्रमंत्यः ॥८
तदा तु सर्वे द्रुहिणप्रधानाः समागताः स्वस्वविमानसंस्थाः ।
समाकिरन्नन्दनमाल्यवर्षैः समंततो राममहीनवीर्यम् ॥६
यः शस्त्रपातादुदतिष्ठत ध्वनिर्हुंकारगर्भो
दिवमस्पृशत्स वै ।
तौर्यत्रिकस्येव शरक्षतानि भांतीव यद्वन्नखदंतपाताः ॥१०
क्रंदंति शस्त्रैः क्षतविक्षतांगा गायंति यद्वत्किल गीतविज्ञाः ।
एवं प्रवृत्तं नृपयुद्धमण्डलं पश्यंति देवा
भृशविस्मिताक्षाः ॥११
ततस्तु रामोऽवनिपालपुत्राञ्जिघांसुराजौ विविधास्त्रपूगैः ।
पृथक्चकारातिबलांस्तु मंडलाद्विच्छिद्य पंक्ति
प्रभुरात्तचापः ॥१२
एकैकशस्तान्निजघान वीराञ्छतं तदा पंच
ततः पलायिताः ।
शूरो वृषास्यो वृषशूरसेनौ जयध्वजश्चापि
विभिन्नधैर्याः ॥१३

महाभयेनाथ परीतचित्ता हिमाद्रिपादांतरकाननं च ।
पृथग्गतास्ते सुपरीप्सवो नृपा न कोऽपि
कांस्विद्ददृशे भृशार्त्त: ॥१४

उस संग्राम भूमि में परशुराम नृत्य करते हुए जैसे परमाधिक शोभा को प्राप्त हुए थे और एक सौ वे कार्त्तवार्य के पुत्र फिरते हुए चारों ओर शोभित हो रहे थे । उस समय में उन सब की शोभा ऐसी ही रही थी जैसी नित्य विहार स्थल वृन्दावन की निकुञ्जों में व्रजाङ्गना गोपियों के समुदाय के मध्य में महारास के समय में भगवान् श्री कृष्ण विराजमान थे और उनके चारों ओर गोपाङ्गनाएँ परिभ्रमण कर रही थीं उनकी शोभा हो रही ।८। उस समय सब जिनमें द्रुहिण प्रमुख थे अपने-अपने विमानों पर समवस्थित होकर वहाँ पर समागत हो गये थे और उन अहीनवीर्य वाले परशुराम के ऊपर सब ओर से नन्दन वन के कमनीय कुसुमों की वर्षा कर रहे थे ।९। इस प्रकार जो शस्त्रों का पात उनके ऊपर हो रहा था तब वे परशुराम उस शरों की वृष्टि में उठकर खड़े हो गये थे और उनकी ध्वनि हुङ्कार करने वाली थी तब ऐसा प्रतीत हो रहा था मानों वे स्वर्ग का ही स्पर्श कर रहे होवें । उनके शरों के क्षत ऐसे मालूम हो रहे थे जैसे नृत्यगीत करने वाले के दन्तों और नखों के पातों के ही चिन्ह दिखाई दे रहे हों ।१०। वे शस्त्रों से क्षत विक्षत अङ्गों वाले क्रन्दन कर रहे थे मानों कोई गीतों के गान में विज्ञ पुरुष गान कर रहे होंवे । इसी रीति से उन नृपों के साथ युद्ध का मण्डल प्रवृत्त हुआ था जिसको देवगण अत्यन्त विस्मित नेत्रों वाले होकर देख रहे थे ।११। इसके अनन्तर प्रभु राम ने धनुष ग्रहण करके विविध अस्त्रों के समुदाय से उन राजा के पुत्रों का रण में हनन करने की इच्छा वाला होकर यद्यपि वे अतीव बलवान् थे तो भी उनको उस मण्डल से विच्छिन्न करके पंक्ति से पृथक् कर दिया था ।१२। वे सौ वीर थे उनमें से एक-एक को पकड़कर उन्होंने मार डाला था । उस समय में केवल उनमें से पाँच ही बच गये थे जो वहाँ से भाग गये थे । उन पाँचों का धैर्य टूट गया था । उनके नाम शूर-वृषास्य-वृष-शूरसेन और जयध्वज ये थे ।१३। वे पाँचों नृप पृथक् होकर ही चले गये थे और वे सब नृप अपने प्राणों के बचाने की इच्छा वाले थे । उन में से अत्यन्त आर्त्त होकर किसी ने भी किन को भी वहाँ नहीं देखा था । तात्पर्य यह है कि सबको अपनी रक्षा को पड़ी थी और कोई भी किसी को न देख पाया था ।१४।

रामोऽपि हत्वा नृपचक्रमाजौ राज. सहायार्थमुपागतं च ।
समन्वितोऽसावकृतव्रणेन सस्नौ मुदाऽऽगत्य च
नर्मदायाम् ।।१५
स्नात्वा नित्यक्रियां कृत्वा संपूज्य वृषभध्वजम् ।
प्रतस्थे द्रष्टुमुर्वीश शिवं कैलासवासिनम् ।।१६
गुरुपत्नीमुमां चापि सुतौ स्कन्दविनायकौ ।
मनोयायी महात्माऽसावकृतव्रणसंयुतः ।।१७
कृतकार्यो मुदा युक्तः कैलासं प्राप्य तत्क्षणम् ।
ददर्श तत्र नगरीं महतीमलकाभिधाम् ।।१८
नानामणिगणाकीर्णभवनैरुपशोभिताम् ।
नानारूपधरैर्यक्षैः शोभितां चित्रभूषणैः ।।१९
नानावृक्षसमाकोर्णैर्वनैश्चोपवनैर्युताम् ।
दीर्घिकाभिः सुदीर्घाभिस्तडागैश्चोपशोभिताम् ।।२०
सर्वतोऽप्यावृतां बाह्ये सीतयालकनंदया ।
तत्र देवांगनास्नानमुक्तकुंकुमपिंजरम् ।।२१

भगवान् परशुराम ने भी उस रण में उस सम्पूर्ण नृपों के चक्र का हनन कर दिया था तथा जो राजा की सहायता करने के लिये वहाँ उपागत हुआ था उसका भी हनन कर डाला था। फिर यह अकृतव्रण के साथ रहकर नर्मदा नदी के समीप में समागत हुए थे और उस नदी में इन्होंने स्नान किया था।१५। वहाँ पर स्नान करके अपना दैनिक कृत्य समाप्त किया था तथा फिर भगवान् वृषभध्वज का भली भाँति अर्चन किया था। इसके उप-रान्त कैलाश के निवासी प्रभु शिव का दर्शन प्राप्त करने के लिये वहाँ से परशुराम जी ने प्रस्थान किया था।१६। अपने मन के ही समान शीघ्र गमन करने वाले परशुराम जी अपने पालित अकृतव्रण शिष्य के साथ गुरु पत्नी जगदम्बा उमा देवी—और उनके दोनों पुत्र स्कन्द और विनायक के दर्शनार्थ वह महात्मा वहाँ पर गये थे।१७। अपने सम्पूर्ण कार्यों में सफल होकर समस्त क्षत्रिय शत्रुओं को निहत करके बड़ी ही प्रसन्नता से युक्त होते हुए उसी क्षण में कैलास गिरि पर पहुँच गये थे और भगवान् शङ्कर की अलका

नाम वाली नगरी को देखा था जो नगरी बहुत ही विशाल थी ।१८। उस नगरी की छटा का वर्णन किया जाता है—उस नगरी में अनेक भवन ऐसे बने हुए थे जो नाना भाँति के रत्नों से संयुत थे, उन भवनों की शोभा से वह परम सुशोभित थी। उसमें बहुत से यक्ष विद्यमान थे जो विचित्र प्रकार के भूषणों के धारण करने वाले तथा विविध स्वरूपों वाले थे। इनसे भी उसकी बड़ी शोभा हो रही थी ।१९। उस नगरी में बहुत तरह के वन और उपवन थे जिनमें अनेक प्रकार के वृक्ष थे। वह नगरी अनेक विशाल वापियों (बावड़ियों) से तथा तालाबों से भी परम सुशोभित थी ।२०। उस पुरी का बाहिरी सब ओर से सीता और अलकनन्दा नाम वाली सुन्दर सरिताओं से समावृत था। वहाँ पर देवों की अङ्गनाएँ स्नान कर रही थीं जिससे उनके अङ्गों में लगा हुआ कुंकुम छूटकर उनके जल में प्रवाहित हो रहा था ।२१।

तृषाविरहिताश्चांभ: पिबन्ति करिणो मुदा ।
यत्र संगीतसंनादा श्रूयन्ते तत्र तत्र ह ।।२२
गन्धर्वैरप्सरोभिश्च सततं सहकारिभिः ।
तां दृष्ट्वा भार्गवो राजन्मुदा परमया युतः ।।२३
ययौ तदूर्ध्वं शिखरं यत्र शैवपरं गृहम् ।
ततो ददर्श राजेंद्र स्निग्धच्छायं महावटम् ।।२४
तस्याधस्ताद्वरावासं सुसेव्यं सिद्धसंयुतम् ।
ददर्श तत्र प्राकारं शतयोजनमंडलम् ।।२५
नानारत्नाचितं रम्यं चतुर्द्वारं गणावृतम् ।
नन्दीश्वरं महाकालं रक्ताक्षं विकटोदरम् ।।२६
पिंगलाक्षं विशालाक्षं विरूपाक्षं घटोदरम् ।
मंदारं भैरवं बाण रुरुं भैरवमेव च ।।२७
वीरकं वीरभद्रं च चांडं भृङ्गि रिटिं मुखम् ।
सिद्धेंद्रनाथरुद्रांश्च विद्याधरमहोरगान् ।।२८

उन सरिताओं में तृषा से विरहित करी बड़े ही आनन्द से उनका जल पी रहे थे। वहाँ पर जहाँ-तहाँ संगीत की परम मधुर ध्वनियाँ सुनाई दे रही थी ।२२। वहाँ पर बहुत से गन्धर्व गण अप्सराओं को अपने साथ में

लिए हुए निरन्तर रंगरेलियाँ कर रहे थे । भार्गव श्री परशुराम जी ने जिस समय में उस परम सुन्दर पुरी का अवलोकन किया उनको अत्यन्त हर्ष हुआ था ।२३। इसके अनन्तर वे उसके ऊपर गये थे जिस शिखर पर भगवान् शिव का परम सुरम्य निवास करने का गृह था । हे राजेन्द्र ! वहाँ पर एक महान विशाल बहुत ही घनी छाया वाला वट का वृक्ष उन्होंने देखा था ।२४। उस वट वृक्ष के नीचे एक आवास गृह बना हुआ था जो भली भाँति सेवन करने के योग्य था और बड़े-बड़े महान् सिद्धगणों से समन्वित था । वहाँ पर उसका एक प्रकार (चहार दीवारी) उन्होंने देखा था जिसका मण्डल (घेरा) एक सौ योजन वाला था ।२५। उस नगर में अनेक प्रकार के रत्न खचित हो रहे थे तथा परम रम्य और चार प्रधान द्वारों से वह समन्वित था । वहाँ पर गण सब ओर थे । अब उन प्रधान गणों में नन्दीश्वर–महाकाल–रक्ताक्ष और विकटोदर थे ।२६। इनके अतिरिक्त पिंगलाक्ष–विरूपाक्ष–घटोदर-मन्दार–भैरव-बाण–रुरु—भैरव भी थे ।२७। उन गणों में वीरभद्र–चण्ड-रिटि–मुख भी थे । वहाँ पर सिद्धेन्द्र-नाथ और रुद्र थे तथा विद्याधर और महोरग भी विद्यमान थे ।२८।

भूत तपिशाचांश्च कूष्मांडान्ब्रह्मराक्षसान् ।
वेतालान्दानवेंद्रांश्च योगीन्द्रांश्च जटाधरान् ॥२६
यक्षकिंपुरुषांश्चैव डाकिनीयोगिनीस्तथा ।
दृष्ट्वा नंद्याज्ञया तत्र प्रविष्टोऽतमुदान्वितः ॥३०
ददर्श तत्र भुवनैरावृतं शिवमंदिरम् ।
चतुर्योजनविस्तीर्णं तत्र प्राग्द्वारसंस्थितौ ॥३१
दृष्ट्वा वामे कार्त्तिकेयं दक्षे चैव विनायकम् ।
ननाम भार्गवस्तौ द्वौ शिवतुल्यपराक्रमौ ॥३२
पार्षदप्रवरास्तत्र क्षेत्रपालाश्च संस्थिताः ।
रत्नसिंहासनस्थाश्च रत्नभूषणभूषिताः ॥३३
भार्गवं प्रविशन्तं तु ह्यपृच्छच्छिवमंदिरम् ।
विनायको महाराज क्षणं तिष्ठेत्युवाच ह ॥३४
निद्रितो ह्युमया युक्तो महादेवोऽधुनेति च ।
ईश्वराज्ञां गृहीत्वाहमत्रागत्य क्षणांतरे ॥३५

वहाँ पर इन उपर्युक्त गणों के अतिरिक्त बहुत से भूत-प्रेत-पिशाच कुष्मांड-ब्रह्मराक्षस-वेताल-दानवेन्द्र और जटाजूट धारी बड़े-बड़े योगीन्द्र भी थे ।२९। वहाँ उस शिव की नगरी में यक्ष-किम्पुरुष-डाकिनी और योगिनियाँ भी थीं। इन सबका वहाँ पर परशुरामजी ने अवलोकन किया था। भगवान् शङ्कर के बाँई और स्वामी कार्त्तिकेय और उनके दाँई ओर विघ्नेश्वर विनायक विराजमान थे। भार्गवेन्द्र ने उन दोनों को प्रणाम किया था क्योंकि ये दोनों शिव के पुत्र शङ्कर के ही समान पराक्रम वाले थे। इससे पूर्व परशुरामजी ने नन्दी की आज्ञा ग्रहण करके ही उस पुर के अन्दर प्रवेश किया था। अन्दर प्रवेश करने की आज्ञा पाकर उनको बहुत ही प्रसन्नता हुई थी। वहाँ पर भुवनों से सदावृत शिवजी के मन्दिर का अवलोकन किया था। वह मन्दिर चार योजन के विस्तार वाला था ।३०-३१-३२। वहाँ पर परम श्रेष्ठ पार्षद और क्षेत्रपाल भी समवस्थित थे ये लोग रत्न जटित सिंहासनों पर रत्नों के विविध भूषणों से विभूषित होकर विराजमान थे ।३३। जिस समय में भार्गव शिव मन्दिर में प्रवेश कर रहे थे तब उन सबने इनसे पूछा था हे महाराज! उस समय में विनायक ने उनसे यही कहा था कि एक क्षण मात्र आप यहीं पर ठहरिए ।३४। इस समय में महादेव जी अपनी प्रिय पत्नी जगदम्बा उमा के साथ शयन किये हुए हैं। मैं एक ही क्षण भर में ईश्वर की आज्ञा प्राप्त करके यहीं पर समागत होता हूँ ।३५।

त्वया सार्द्धं प्रवेक्ष्यामि भ्रातस्तिष्ठात्र सांप्रतम् ।
विनायकश्चैवं श्रुत्वा ह्यचिंट भार्गवनंदनः ।।३६
प्रवक्तुमुपचक्राम गणेशं त्वरयान्वितः ।
राम उवाच--
गत्वा ह्यंतःपुरं भ्रातः प्रणम्य जगदीश्वरौ ।।३७
पार्वतीशंकरौ सद्यो यास्यामि निजमंदिरम् ।
कार्त्तवीर्यः सुचन्द्रश्च सपुत्रबलबांधवः ।।३८
अन्ये सहस्रशो भूपाः कांबोजाः पह्लवाः शकाः ।
कान्यकुब्जाः कोशलेशा मायावन्तो महाबलाः ।।३९
निहताः समरे सर्वे मया शम्भुप्रसादतः ।

तमिमं प्रणिपत्यैव यास्यामि स्वगृहं प्रति ।।४०
इत्युक्त्वा भार्गवस्तत्र तस्थौ गणपतेः पुरः ।
प्रोवाच मधुरं वाक्यं भार्गवे स गणाधिपः ।।४१
विनायक उवाच -
क्षणं तिष्ठ महाभाग दर्शनं ते भविष्यति ।
अद्य विश्वेश्वरो भ्रातर्भवान्या सह वर्त्तते ।।४२

मैं फिर हे भाई ! आपको साथ ही लेकर आपका प्रवेश वहाँ पर अभी करा दूँगा । अतएव यहाँ पर कुछ समय तक आप रुकिए । भार्गव नन्दन ने विनायक के इस वचन का श्रवण करके बड़ी ही शीघ्रता से युक्त होकर श्री गणेशजी से कुछ कथन करने का उपक्रम किया था । राम ने कहा—हे भाई ! आप अन्तः पुर में जाकर उन दोनों जगदीश्वरों को प्रणाम करिए अर्थात् मेरा प्रणिपात निवेदित कर दीजिए । पार्वती और शङ्कर इन दोनों को प्रणाम करके मैं तुरन्त ही अपने मन्दिर को गमन करूँगा । कार्त्तवीर्य और सुचन्द्र जो अपने पुत्रों-सैनिकों और बान्धवों के सहित थे एवं अन्य भी सहस्रों नृप जो कि काम्बोज–पह्लव शक–कान्यकुब्ज–कोशलेश्वर थे जो कि बड़ी ही अधिक माया वाले और महान् बलवान् थे ।३६-३७-३८-३९। मैंने भगवान् शम्भु की ही कृपा से तथा परिपूर्ण प्रसाद से युद्ध में सबका निहनन किया है । अतएव अब मैं उन्हीं प्रभु के चरणों में प्रणाम करके फिर अपने घर को चला जाऊँगा ।४०। इतना निवेदन करके परशुराम वहाँ पर गणपति के आगे स्थित हो गये थे । फिर उन गणाधिप प्रभु ने भार्गव से बहुत मधुर स्वर में कहा था ।४१। विनायक ने कहा— हे महाभाग ! एक मात्र आप यहाँ पर ठहरिए आपको भगवान् शङ्कर का दर्शन हो जायगा । हे भाई ! आज वे विश्वेश्वर प्रभु भवानी के साथ में विद्यमान हैं ।४२।

स्त्रीपुंसोर्युक्तयोस्तात सहैकासनसंस्थयोः ।
करोति सुखभंगं यो नरकं स व्रजेद्ध्रुवम् ।।४३
विशेषतस्तु पितरं गुरुं वा भूपतिं द्विज ।
रहस्यं समुपासीनं न पश्येदिति निश्चयः ।।४४
कामतोऽकामतो वापि पश्येद्यः सुरतोन्मुखम् ।

स्त्रीविच्छेदो भवेत्तस्य ध्रुवं सप्तसु जन्मसु ।।४५

श्रोणिं वक्षःस्थलं वक्त्रं यः पश्यति परस्त्रियः ।
मातुर्वापि भगिन्या वा दुहितुः स नराधमः ।।४६

भार्गव उवाच—

अहो श्रुतमपूर्वं किं वचनं तव वक्त्रतः ।
भ्रांत्या विनिर्गतं वापि हास्यार्थमथवोदितम् ।।४७

कामिनां सविकाराणामेतच्छास्त्रनिदर्शनम् ।
निर्विकारस्य च शिशोर्न दोषः कश्चिदेव हि ।।४८

यास्याम्यंतः पुरं भ्रातस्तत्र किं तिष्ठ बालक ।
यथादृष्टं करिष्यामि तत्र यत्समयोचितम् ।।४९

हे तात ! पति और पत्नी जब एक ही आसन पर संस्थित होकर संयुक्त होवें और साथ में निरत होवें उस समय में जो कोई भी सुरत-सुख का भङ्ग किया करता है वह निश्चय ही नरक में गमन किया करता है ।४३। यह तो सर्व साधारण के लिए नियम है और विशेष रूप से हे द्विज ! जो कोई अपने पिता–गुरु अथवा भूपति को जबकि वे रहस्य में समुपासीन हों तो इनको कभी भी बाधा डालते हुए नहीं देखना चाहिए—यह निश्चित सिद्धान्त की बात है ।४४। चाहे इच्छा से या बिना ही इच्छा के कहीं पर भी सुरत क्रीड़ा में उन्मुख पति-पत्नी को जो कोई देखता है अर्थात् देखा करता है उसकी स्त्री का विच्छेद सात जन्मों तक हो जाया करता है यह परम निश्चित है ।४५। जो पराई स्त्री के श्रोणि–वक्षः स्थल और मुख को देखता है तात्पर्य यह है कि बुरी दृष्टि से देखा करता है वह चाहे अपनी माता हो–भगिनी हो या दुहिता हो इनमें कोई भी हो तो वह नरों में बड़ा ही अधम होता है ।४६। भार्गव ने कहा—आज मैंने आपके मुख से निकले हुए अपूर्व ही वचन सुने हैं। ये वचन भ्रान्ति से ही निकल गये हैं अथवा आपने हास्य के ही लिये कहे हैं ? ।४७। यह तो सब विकारों से युक्त कामियों के शास्त्र का निदर्शन है अर्थात् कामवासना से वासित अन्तःकरण वाले ही ऐसे विषय की चर्चा किया करते हैं। आप तो विकारों से रहित है और शिशु हैं क्या आपको ऐसा कथन करने से कोई दोष नहीं होता है ? ।४८। हे भाई ! मैं तो अन्तः पुर में जाऊँगा। आप तो बालक हैं, आपको इस बात से क्या

प्रयोजन है आप यहाँ पर ही रहिए। मैं वहाँ पर जैसा भी देखूँगा और जो भी उस समय में उचित होगा, करूँगा ।४६।

अत्रैव माता तातश्च त्वया नाम निरूपितौ ।
जगतां पितरौ तौ च पार्वतीपरमेश्वरौ ।।५०
इत्युक्त्वा भार्गवो राजन्नंतर्गन्तुं समुद्यतः ।
विनायकस्तदोत्थाय वारयामास सत्वरम् ।।५१
वाग्युद्धं च तयोरासीन्मिथो हस्तविकर्षणम् ।
दृष्ट्वा स्कन्दस्तु सम्भ्रांतो बोधयामास तौ तदा ।।५२
बाहुभ्यां द्वौ समुद्गृह्य पृथगुत्सारितौ तथा ।
अथ क्रुद्धो गणेशाय भार्गवः परवीरहा ।
परश्वधं समादाय संप्रक्षेप्तुं समुद्यतः ।।५३
तं दृष्ट्वा गजाननो भृगुवरं क्रोधात्क्षिपंतं त्वरा
स्वात्मार्थं परशुं तदा निजकरेणोद्धृत्य वेगेन तु ।
भूर्लोकं भुवः स्वरपि तस्योर्ध्वं महर्वंजनं लोकं
चापि तपोऽथ सत्यमपरं वैकुंठमप्यानयत् ।।५४
तस्योर्ध्वं च निदर्शयन्भृगुवरं गोलोकमीशात्मजो
निष्पात्या धरलोक सप्तकमपर्थिं दर्शयामास च ।
उद्धृत्याथ ततो हि गर्भसलिले प्रक्षिप्तमात्रं त्वरा
भीतं प्राणपरिप्सुमानयदथो तत्रैव तत्रास्थितः ।।५५

वहाँ पर माता जगदम्बा हैं और पिता भगवान शंकर हैं, आपने दोनों के नाम निरूपित कर ही दिये हैं। वे पार्वती और परमेश्वर तो सम्पूर्ण जगतों के पिता-माता हैं ।५०। हे राजन ! इतना भर कहकर भार्गव राम अन्दर जाने के लिए उद्यत हो गये थे। उसी समय में विनायक ने शीघ्र ही उठकर उनका वारण कर दिया था अर्थात् अन्तः पुर में जाने से रोक दिया था ।५१। पहिले तो उन दोनों का वाग्युद्ध अर्थात् कहा सुनी हुई और फिर हाथों को खींच तान हुई, जब कार्त्तिकेय जी ने देखा तो उनको बहुत सम्भ्रान्ति हुई थी और उस समय में उन्होंने दोनों को समझाया था ।५२। स्वामी स्कन्द ने अपनी बाहुओं से पकड़कर उन दोनों को अलग-अलग

कर दिया था। इसके अनन्तर शत्रु वीरों के हनन करने वाले भार्गव गणेश जी पर बहुत क्रुद्ध हो गये थे और अपनी परशु लेकर उसका प्रहार करने के लिए उद्यत हो गये थे ।५३। गजानन ने जब यह देखा था कि भृगुवर बड़ी शीघ्रता से क्रोध में भरकर अपने लिए परशु को प्रक्षिप्त कर रहे हैं तो उन्होंने उसी समय में बड़े ही वेग से अपने हाथ से परशुराम को ऊपर उठा कर भूर्लोक-भुवर्लोक-स्वर्लोक-और उसके भी ऊपर महर्लोक-जनलोक तप-लोक-सत्यलोक और दूसरे वैकुण्ठ लोक में ले आये थे ।५४। उन भगवान शम्भु के पुत्र गजानन ने उन भृगुवर उसके ऊपर गोलोक को दिखाते हुए फिर गिराकर नीचे के सातों अतल-वितल-सुतल-तला-तल-रसातल-महातल और पाताल लोकों को दिखा दिया था। फिर नीचे के लोकों से ऊपर उठाकर सलिल के गर्भ में शीघ्रता से प्रक्षिप्त किया था। जब यह देखा कि वह भयभीत होकर अपने प्राणों की रक्षा करने की इच्छा वाले हैं तो फिर वहाँ पर उनको लाकर खड़ा कर दिया था जहाँ पर वे पहिले स्थित थे ।५५।

भार्गव-चरित्र वर्णन (२)

वसिष्ठ उवाच–

एवं संभ्रामितो रामो गणाधीशेन भूपते ।
हर्षशोकसमाविष्टो विचिन्त्यात्मपराभवम् ।।१
गणेशं चाभितो वीक्ष्य निर्विकारमवस्थितम् ।
क्रोधाविष्टो भृशं भूत्वा प्राक्षिपत्स्वपरश्वधम् ।।२
गणेशस्त्वभिवीक्ष्याथ पित्रा दत्तं परश्वधम् ।
अमोघं कर्त्तुकामस्तु वामे तं दशनेऽग्रहीत् ।।३
स तु दंतः कुठारेण विच्छिन्नो भूतलेऽपतत् ।
भुवि शोणितसंदिग्धो वज्राहत इवाचलः ।।४
दंतपातेन विध्वस्ता साब्धिद्वीपधरा धरा ।
चकंपे पृथिवीपाल लोकास्त्रासमुपागताः ।।५

हाहाकारो महानासीद्देवानां दिवि पश्यताम् ।
कार्त्तिकेयादयस्तत्र चुक्रुशुर्भृशमातुराः ।।६
अथ कोलाहलं श्रुत्वा दंतपातध्वनि तथा ।
पार्वतीशंकरौ तत्र समाजग्मतुरीश्वरौ ।।७

वसिष्ठ जी ने कहा—हे भूपते ! इस रीति से गणाधीश के द्वारा परशुराम भली भाँति भ्रमित किये गये थे । तब उनको बहुत से अद्भुत लोकों के दर्शन से हर्ष हुआ था और अपने बल पराक्रम की तुच्छता समझ कर बड़ा भारी शोक भी हुआ था ऐसे हर्ष और शोक से समाविष्ट होकर उन्होंने अपने पराभव का चिन्तन किया था ।१। उस समय में गणेश जी को सामने देखा था कि वे बिना विकार वाले अवस्थित हैं तो फिर अत्यन्त क्रोध में भरकर परशुरामजी ने अपने परशु को फेंककर चलाया था ।२। गणेशजी ने यह देखा था कि वह परशु अपने पिताजी के द्वारा राम को दिया गया था । उस परशु के प्रहार को अमोघ अर्थात् सफल करने की ही इच्छा वाले गणेशजी ने उस परशु को अपने बाँये दाँत पर ग्रहण कर लिया था ।३। गणेश जी का वह बाँया दाँत उस कुठार से विच्छिन्न होकर भूतल पर गिर गया था । रुधिर से संदिग्ध (लथपथ) वह दाँत भूमि पर एक पर्वत के ही समान गिर गया था ।४। उस दाँत का पात ऐसा भीषण हुआ था कि सम्पूर्ण सागरों और द्वीपों के सहित यह धरातल विध्वस्त हो गया था और पृथिवीपाल काँप उठे थे तथा सभी लोकों को बड़ा भारी त्रास उत्पन्न हो गया था ।५। स्वर्ग में जो देवगण देख रहे थे उनमें बड़ा भारी हाहाकार मच गया था और वहाँ पर कात्तिकेय आदि जो सब थे वे सभी अत्यन्त आतुर होकर क्रन्दन करने लगे थे ।६। इसके अनन्तर जब बड़ा भारी वहाँ पर कोलाहल हो गया था तो उस दाँत के गिरने की ध्वनि को सुनकर ईश्वर पार्वती तथा भगवान् शङ्कर वहाँ पर समागत हो गये थे ।७।

हेरम्बं पुरतो दृष्ट्वा वक्रतुंडैकदंतिनम् ।
पप्रच्छ स्कन्दं पार्वती किमेतदिति कारणम् ।।८
स तु पृष्टस्तदा मात्रा सेनानीः सर्वमादितः ।
वृत्तांतं कथयामास मात्रे रामस्य शृण्वतः ।।९
सा श्रुत्वोदंतमखिलं जगतां जननी नृप ।

उवाच शंकरं रुष्टा पार्वती प्राणनायकम् ।।१०
पार्वत्युवाच—अयं ते भार्गवः शंभो शिष्यः पुत्रः समोऽभवत् ।
त्वत्तो लब्ध्वा परं तेजो वर्म त्रैलोक्यजिद्विभो ।।११
कार्त्तवीर्यार्जुनं संख्ये जितवानूर्जितं नृपम् ।
स्वकार्यं साधयित्वा तु प्रादात्तुभ्यं च दक्षिणाम् ।।१२
तत्ते सुतस्य दशनं कुठारेण न्यपातयत् ।
अनेनैव कृतार्थस्त्वं भविष्यसि न संशयः ।।१३
त्वमिमं भार्गव शम्भो रक्षांतेवासिसत्तमम् ।
तव कार्याणि सर्वाणि साधयिष्यति सद्गुरोः ।।१४

भगवान शङ्कर ने गणेशजी को अपने सामने देखा था जिनका मुख तिरछा हो गया था और केवल एक ही दाँत था । पार्वतीजी ने स्वामी कार्त्तिकेय से पूछा था कि इस दुर्घटना के घटित होने का क्या कारण था ।८। माताजी द्वारा जब स्वामी कार्त्तिकेय से पूछा गया तो सेनानी ने आदि से सम्पूर्ण वृत्तान्त माताजी को कहकर सुना दिया था । उस समय में वहाँ पर परशुराम भी इसको सुन ही रहे थे ।९। हे नृप ! जगतों की जननी पार्वतीजी ने पूर्ण समाचार श्रवण करके रुष्ट होती हुई अपने प्राणनायक भगवान शङ्कर से बोलीं ।१०। पार्वतीजी ने कहा—हे शम्भो ! यह भार्गव तो आपका ही शिष्य है और पुत्र के ही समान हुआ था । हे विभो ! इसने आप ही से ऐसा परम तेज और त्रैलोक्य को जीतने वाला वर्म प्राप्त किया है ।११। इसने महान अर्जित कार्त्तवीर्यार्जुन नृप को युद्ध में जीत लिया है यह आप ही के द्वारा प्रदत्त बलविक्रम से इसकी विजय हुई है । इसने अपने कार्य को साधित करके अर्थात् अपने शत्रु का निहनन करके अब यह आपकी सेवा में दक्षिणा दी है ।१२। वह यही तो दक्षिणा है कि आप ही के पुत्र के दाँत को अपने कुठार से तोड़कर नीचे गिरा दिया है । आप इसी कार्य से कृतार्थ होंगे—इसमें लेशमात्र भी संशय नहीं है ।१३। हे शम्भो ! आप इस परम श्रेष्ठ अपने छात्र तथा शिष्य की रक्षा कीजिए । आप इसके बड़े ही अच्छे गुरु हैं अब आपके समस्त कार्यों को यह ही सिद्ध करेगा ।१४।

अहं नैवात्र तिष्ठामि यत्त्वया विमता विभो ।
पुत्राभ्यां सहिता यास्ये पितुः स्वस्य निकेतनम् ।।१५

संतो भुजिष्यातनयं सत्कुर्वंत्यात्मपुत्रवत् ।
भवता तु कृतो नैव सत्कारो वचसाऽपि हि ।।१६
आत्मनस्तनयस्यास्य ततो यास्यामि दुःखिता ।
वसिष्ठ उवाच–
एतच्छ्रुत्वा तु वचनं पार्वत्या भगवान्भव: ।।१७
नोवाच किंचिद्वचनं साधु वासाधु भूपते ।
सस्मार मनसा कृष्णं प्रणतक्लेशनाशनम् ।।१८
गोलोकनाथं गोपीशं नानानुनयकोविदम् ।
स्मृतमात्रोऽथ भगवान् केशव: प्रणतार्त्तिहा ।
आजगाम दयासिंधुर्भक्तश्योऽखिलेश्वर: ।।१६
मेघश्यामो विशदवदनो रत्नकेयूरहारो विद्युद्वासा
मकरसदृशे कुण्डले संदधान: ।
बर्हापीडं मणिगणयुतं बिभ्रदीषत्स्मितास्यो गोपीनाथो
गदितसुयशा: कौस्तुभोद्भासिवक्षा: ।।२०
राधया सहित: श्रीमान् श्रीदाम्ना चापराजित: ।।२१

हे विभो ! मैं अब यहां पर नहीं रहूँगी क्योंकि आपने मेरा अपमान कर दिया है अर्थात् मुझको अपनी नहीं समझा है, अब मैं तो अपने दोनों पुत्रों को साथ में लेकर अपने पिताजी के घर में चली जाऊँगी ।१५। सत्पुरुष तो अपनी पुत्री के पुत्रों को अपने ही पुत्रों के समान सत्कार किया करते हैं। आपने तो अपने वचनों से भी कभी सत्कार नहीं किया है ।१६। यह तो आपका ही पुत्र है फिर भी कभी इसका आदर-सम्मान वाणी के द्वारा भी नहीं किया है । इसी कारण से मैं अधिक दुःखित होकर ही चली जाऊँगी । वसिष्ठ जी ने कहा—भगवान शङ्कर ने अपनी परम प्रिया पत्नी पार्वती के इस वचन का श्रवण किया था ।१७। हे राजन् ! किन्तु इस वचन को सुनकर भी उन्होंने पार्वती जी से अच्छा या कुछ भी वचन उत्तर के स्वरूप में नहीं कहा था। और प्रणतों के क्लेशों का विनाश कर देने वाले भगवान श्री कृष्णचन्द्र का मन में स्मरण किया था ।१८। ब्रज की गोपियों के नाथ और गोलोक के स्वामी तथा अनेक भाँति के अनुनयों-विनयों के ज्ञाता महान

मनीषी भगवान ने ध्यान में मन के द्वारा स्मरण किया था केवल स्मरण करने ही से अपने चरणों में शिर झुकाकर प्रणत होने वाले भक्तों की पीड़ा का हनन कर देने वाले केशव भगवान् वहाँ पर आकर उपस्थित हो गये थे क्योंकि प्रभु तो समस्त चराचर के ईश्वर हैं—दया के सागर हैं और अपने भक्तों के वश में होने वाले हैं।१९। अब भगवान् के सुन्दर जगत मोहन स्वरूप का वर्णन किया जाता है—उनका वर्ण नील सजल मेघ के समान था—आपका मुख विकसित कमल के सदृश था और आप रत्न जटित केयूर और हार धारण किये हुए थे। सौदामिनी विद्युत के समान पीताम्बर पहिने हुए थे और मकरों की आकृति वाले दो कुण्डल कानों में धारण कर रहे थे। मयूर पिच्छों से निर्मित्त और अनेक मणियों से संयुत मस्तक पर मुकुट पहिन रहे थे तथा उनके मुख कमल पर मन्द मुस्कान झलक रही थी। वे गोपियों के साथ जिनके यश का वर्णन किया है कौस्तुभ मणि से उद्‌भासित वक्षःस्थल वाले थे।२०। अद्‌भुत श्री से सम्पन्न श्रीकृष्ण के साथ में रासेश्वरी राधा भी थीं और श्रीदामा से अपराजित थे।२१।

मुष्णंस्तेजांसि सर्वेषां स्वरुचा ज्ञानवारिधिः ।
अथैनमागतं दृष्ट्वा शिवः संहृष्टमानसः ॥२२
प्रणिपत्य यथान्यायं पूजयामास चागतम् ।
प्रवेश्याभ्यंतरे वेश्म राधया सहितं विभुम् ॥२३
रत्नसिंहासने रम्ये सदारं स न्यवेशयत् ।
अथ तत्र गता देवी पार्वती तनयान्विता ॥२४
ननाम चरणान्प्रभ्वोः पुत्राभ्यां सहिता मुदा ।
अथ रामोऽपि तत्रैव गत्वा नमितकंधरः ॥२५
पार्वत्याश्चरणोपांते पपाताकुलमानसः ।
सा यदा नाभ्यनंदत्तं भार्गवं प्रणतं पुरः ॥२६
तदोवाच जगन्नाथः पार्वतीं प्रीणयन्गिरा ॥२७
श्रीकृष्ण उवाच—
अयि नगनंदिनि निंदितचंद्रमुखि त्वमिमं जमदग्निसुतम् ।
नय निजहस्तसरोजसमर्पितमस्तकमंकमनंतगुणे ॥२८

भगवान् श्रीकृष्ण ज्ञान के महान् सागर थे और अपने दिव्य देह की कान्ति से सबके तेज को तिरस्कृत कर रहे थे। इसके अनन्तर जिस समय में भगवान् श्रीकृष्ण ने वहाँ पर पदार्पण किया था तो उनका दर्शन करके भगवान् शिव के मन में परमाधिक प्रसन्नता हुई थी।२२। उन वहाँ पर समागत हुए प्रभु को न्याय के अनुसार जैसा भी महापुरुषों के लिये अभिवादन किया जाता है प्रणिपात किया और अर्चन किया था। फिर बड़े ही आदर से राधिकाजी के साथ प्रभु का अपने सदन में प्रवेश कराया था।२३। वहाँ पर एक रत्न जटिल परम सुरम्य सिंहासन पर राधिका जी के सहित उनको विराजमान कराया था। इसके अनन्तर जब पार्वती जी ने साक्षात् प्रभु का आगमन देखा तो वह भी अपने दोनों पुत्रों के सहित वहाँ पर पहुँच गयी थीं।२४। बड़े ही हर्षोल्लास के साथ इन्होंने अपने दोनों पुत्रों के सहित श्रीकृष्ण और श्रीराधा चरणों में प्रणाम किया था। इसके उपरान्त परशुराम भी वहीं पर पहुँच गये थे और अपनी गरदन को नीचे की ओर झुकाये हुए आकुलित मन वाले होकर पार्वती जी के चरणों के समीप में ही भूमि में गिर गये थे। किन्तु जब अपने आगे प्रणिपात करते हुए भार्गव को पार्वती जी ने अभिनन्दित नहीं किया था तो यह भगवान् श्रीकृष्ण ने स्वयं उनके हृद्गत अमर्ष का अवलोकन किया था।२५-२६। उस समय जगतों के नाथ प्रभु श्रीकृष्ण ने अपनी परम मधुर वाणी से पार्वती जी को प्रसन्न करते हुए उनसे कहा था।२७। श्रीकृष्ण ने कहा—अयि ! नगराज की पुत्रि ! आप तो इतने अधिक सुन्दर मुख वाली हैं कि जिसकी छटा के सामने चन्द्र भी तुच्छ है। आपके अन्दर तो अनन्त गुण गण विद्यमान हैं। अब आप इस जमदग्नि के पुत्र परशुराम को अपने कर कमलों से इसका मस्तक पकड़ कर अपनी गोद में बिठा लीजिए।२८।

भवभयहारिणि शंभुविहारिणि कल्मषनाशिनि कुंभिगते।
तव चरणे पतितं सततं कृतकिल्विषमप्यव देहि वरम् ॥२६
शृणु देवि महाभागे वेदोक्तं वचनं मम।
यच्छ्रुत्वा हर्षिता नूनं भविष्यसि न संशयः।
विनायकस्ते तनयो महात्मा महतां महान् ॥३०
यं कामः क्रोध उद्वेगो भयं नाविशते कदा।
वेदस्मृतिपुराणेषु संहितासु च भामिनि ॥३१

नामान्यस्योपदिष्टानि सुपुण्यानि महात्मभिः ।
यानि तानि प्रवक्ष्यामि निखिलाघहराणि च ।।३२
प्रमथानां गणा ये च नानारूपा महाबलाः ।
तेषामीशस्त्वयं यस्माद्गणेशस्तेन कीर्त्तितः ।।३३
भूतानि च भविष्याणि वर्त्तमानानि यानि च ।
ब्रह्मांडान्यखिलान्येव यस्मिँल्लंबोदरः स तु ।।३४
यः स्थिरो देवयोगेन च्छिन्नं संयोजितं पुनः ।
गजस्य शिरसा देवि तेन प्रोक्तो गजाननः ।।३५

हे शम्भु के साथ बिहार करने वाली देवि ! आप तो समस्त सांसारिक भयों को दूर करने वाली हैं और सभी प्रकार के कल्मषों का विनाश कर देने वाली हैं । हे कुम्भिगते ! अर्थात् मत्तकरिणी के समान मन्द गति वाली ! यह परशुराम अब आपके चरणों में पड़ा हुआ आप को प्रणिपात कर रहा है । यद्यपि इसने निरन्तर आपके अपराध रूपी पाप किया है तथापि इसको क्षमा करके अब वरदान दे दीजिए ।२६। हे देवि ! आप तो महान् भाग वाली हैं । अब आप मेरे वेदों में कहे हुए वचन का श्रवण कीजिए । मुझे पूर्ण विश्वास है कि उस मेरे वचन को सुनकर आप निश्चय ही परम हर्षित हो जायगी । इसमें लेशमात्र भी संशय नहीं है । यह विनायक (गणेश) आपका पुत्र है और यह महान् आत्मा वाले तथा महान् पुरुषों में भी शिरोमणि महान् पुरुषों में भी शिरोमणि महान् हैं ।३०। इनके हृदय में कभी भी काम-क्रोध-उद्वेग और भय आदि का प्रवेश नहीं हुआ करता है । हे भामिनि ! वेदों में स्मृतियों में पुराणों में तथा संहिताओं में सर्वत्र इनके शुभमानों का वर्णन है ।३१। बड़े-बड़े महात्माओं के द्वारा सुपुण्यमय इनके नामों का उपदेश दिया गया है । वे इनके परम शुभ नाम समस्त अघों के दूर कर देने वाले हैं । जो भी वे नाम हैं उनको मैं अभी आपको बतला दूँगा ।३२। जो भी प्रमथों के गण हैं जिनके विविध स्वरूप हैं और जो महान् बल वाले हैं । उन सबके यह गणेश स्वामी हैं । यही कारण है कि इनका नाम 'गणेश' यह संसार में कहा जाया करता है ।३३। जितने भी जो भी भविष्य में होने वाले हैं और समस्त जो भी ब्रह्माण्ड हैं जिनमें यही लम्बोदर हैं अर्थात् लम्बे विशाल उदर वाले यही हैं ।३४। जो भी इस समय में स्थिर है यह पहिले एक बार दैव के योग से इनका मस्तक छिन्न हो गया

था और फिर उसको संयोजित किया था जो कि एक गज के शिर से ही जोड़ दिया गया था । हे देवि ! इसीलिए यह गजानन नाम वाले हैं ।३५।

चतुर्थ्यामुदितश्चन्द्रो दर्भिणा शप्त आतुरः ।
अनेन विधृतो भाले भालचन्द्रस्ततः स्मृतः ॥३६
शप्तः पुरा सप्तभिस्तु मुनिभिः संक्षयं गतः ।
जातवेदा दीपितोऽभूद्येनासौ शूर्पकर्णकः ॥३७
पुरा देवासुरे युद्धे पूजितो दिविषद्गणैः ।
विघ्नं निवारयामास विघ्ननाशस्ततः स्मृतः ॥३८
अद्यायं देवि रामेण कुठारेण निपात्य च ।
दशनं दैवतो भद्रे ह्येकदंतः कृतोऽमुना ॥३९
भविष्यत्यथ पर्याये ब्रह्मणो हरवल्लभे ।
वक्रीभविष्यत्तुण्डत्वाद्वक्रतुण्डः स्मृतो बुधैः ॥४०
एवं तवास्य पुत्रस्य संति नामानि पार्वति ।
स्मरणात्पापहारीणि त्रिकालानुगतान्यपि ॥४१
अस्मात्त्रयोदशीकल्पात्पूर्वस्मिन्दशमीभवे ।
मयास्मै तु वरो दत्तः सर्वदेवाग्रपूजने ॥४२

चतुर्थी तिथि में चन्द्रमा उदित हुआ था और दर्भी के द्वारा इसको शाप दे दिया गया था तब यह अत्यन्त आतुर हो गया था। उस समय में इन्हीं गणेश ने इसको अपने भाल में धारण कर लिया था। तभी से इनका नाम भाल चन्द्र कहा गया है ।३६। प्राचीन काल में पहिले सात मुनियों ने एक बार इसको शाप दे दिया था। इसी कारण से यह क्षीणता को प्राप्त हो गया था। इनके द्वारा एक बार जातवेदा (अग्नि) दीपित किया गया था। इसी कारण से तभी से इनका शूपकर्णक नाम हो गया था ।३७। पहिले समय में देवों और असुरों का महान् भीषण देवासुर संग्राम हुआ था उसमें देवगणों के द्वारा इनकी बड़ी अर्चना हुई थी। उससे परम प्रसन्न होकर इन्होंने सभी विघ्नों का निवारण कर दिया था। फिर तभी से इनका विघ्न नाश—यह शुभ नाम पड़ गया था ।३८। हे देवि ! आज परशुराम के द्वारा इसके ऊपर अपने कुठार का प्रहार किया गया है हे भद्रे ! इससे दैववशात् इनका एक

दाँत टूटकर गिर गया है। इसीलिये इनने इसको एकदन्त कर दिया है ।३९। हे हर ! बल्लभे ! इसके अनन्तर यह ब्रह्मा के पर्य्याय में होंगे। कुठार के ही प्रहार से इनका मुख कुछ वक्र सा हो गया है तभी से बुधों के द्वारा इनको वक्रतुण्ड कहा गया है ।४०। हे पार्वति ! इसी भाँति से आपके इस पुत्र (गणेश) के अनेक नाम हैं। जिनका तीनों कालों में अर्थात् प्रातः-मध्याह्न और सायंकाल में स्मरण करने वाले होते हैं ।४१। इस त्रयोदशी कल्प से पूर्व कदर्मभव में मैंने ही इनको यह वरदान दे दिया था कि समस्त देवों के पूजन के पहिले इन्हीं का सर्वप्रथम पूजन हुआ करेगा ।४२।

जातकर्मादिसंस्कारे गर्भाधानादिकेऽपि च ।
यात्रायां च वणिज्यादौ युद्धे देवार्चने शुभे ।।४३
संकष्टे काम्यसिद्धयर्थं पूजयेद्यो गजाननम् ।
तस्य सर्वाणि कार्याणि सिद्धयंत्येव न संशयः ।।४४
वसिष्ठ उवाच—
इत्युक्तं तु समाकर्ण्य कृष्णेन सुमहात्मना ।
पार्वती जगतां नाथा विस्मिताऽसीच्छुभानना ।।४५
यदा नैवोत्तरं प्रादात्पार्वती शिवसन्निधौ ।
तदा राधाऽब्रवीद्देवीं शिवरूपा सनातनी ।।४६
श्री राधोवाच—
प्रकृतिः पुरुषश्चोभावन्योन्याश्रयविग्रहौ ।
द्विधा भिन्नौ प्रकाशेते प्रपंचेस्मिन् यथा तथा ।।४७
त्वं चाहमावयोर्देवि भेदो नैवास्ति कश्चन ।
विष्णुस्त्वमहमेवास्मि शिवो द्विगुणतां गतः ।।४८
शिवस्य हृदये विष्णुर्भवत्या रूपमास्थितः ।
मम रूपं समास्थाय विष्णोश्च हृदये शिवः ।।४९

जातकर्म आदि षोडश संस्कारों के कराने के समय में तथा गर्भ के आधान आदि कर्मों में—यात्रा के करने के समय में वाणिज्य आदि व्यसायों के करने के काल में—संग्राम के आरम्भ करने के समय में एवं किसी भी

शुभ कार्य के करने के समय में तथा सङ्कट के आ पड़ने पर और किसी भी कामना से युक्त कार्य की सिद्धि के लिए जो भी कोई इन गजानन प्रभु का पूजन करेगा उस पुरुष के समस्त कार्य अवश्यमेव सिद्ध हो जाया करते हैं—इनमें कुछ भी संशय नहीं है ।४३-४४। श्री वसिष्ठजी ने कहा—परम शुभ मुख वाली जगतों की स्वामिनी पार्वती श्रीकृष्ण महान् आत्मा वाले प्रभु के द्वारा इस प्रकार से कहे हुए वचन का श्रवण करके अत्यन्त विस्मित हो गयी थीं ।४५। जब भगवान् शिव की सन्निधि में पार्वतीजी ने कुछ भी उत्तर नहीं दिया था उस समय में सनातनी शिव के स्वरूप वाली राधा जी ने देवी से कहा था ।४६। श्री राधाजी ने कहा—जिस रीति से इस प्रपञ्च में पुरुष और प्रकृति दोनों परस्पर में एक दूसरे के आश्रम में विग्रहों (स्वरूपों) को रखने वाले हैं और दो रूपों में भिन्न प्रकाशित हुआ करते हैं उसी रीति से हे देवि ! तुम और मैं दोनों में दो रूप तो हैं किन्तु वस्तुत कोई भी भेद नहीं है । तुम विष्णु और मैं ही शिव हूँ और द्विगुणता को प्राप्त हुआ है ।४७-४८। भगवान् शिव के हृदय में विष्णु आपके रूप में समास्थित हैं और मेरे रूप में समास्थित होकर भगवान् विष्णु के हृदय में शिव है ।४९।

एष रामो महाभागे वैष्णवः शैवतां गतः ।
गणेशोऽयं शिवः साक्षाद्वैष्णवत्वं समास्थितः ।।५०
एतयोरावयोः प्रभ्वोश्चापि भेदो न दृश्यते ।
एवमुक्त्वा तु सा राधा क्रोडे कृत्वा गजाननम् ।।५१
मूर्ध्न्युपाघ्राय पस्पर्श स्वहस्तेन कपोलके ।
स्पृष्टमात्रे कपोले तु क्षतं पूर्त्तिमुदागतम् ।।५२
पार्वतीसुप्रसन्नाभूदनुनीताऽथ राधया ।
पादयोः पतितं राममुत्थाप्य निजपाणिना ।।५३
क्रोडीचकार सुप्रीता मूर्ध्न्युपाघ्राय पार्वती ।
एवं तयोस्तु सत्कारं दृष्ट्वा रामगणेशयोः ।।५४
कृष्णः स्कन्दमुपाकृष्य स्वांके प्रेम्णा न्यवेशयत् ।
अथ शम्भुरपि प्रीतः श्रीदामानमुपस्थितम् ।।५५
स्वोत्संगे स्थापयामास प्रेम्णा सत्कृत्य मानदः ।।५६

हे महाभागे ! यह वैष्णव परशुराम शैवता को प्राप्त हुआ है अर्थात् शिव के स्वरूप को प्राप्त होजाने वाला हो गया है । और साक्षात् यह गणेश शिव हैं जो वैष्णवत्व को प्राप्त हुआ है अर्थात् विष्णु के स्वरूप में समास्थित है । इन हम दोनों प्रभुओं का भी भेद दिखलाई नहीं दिया करता है । इस प्रकार से कहकर श्री राधा ने अपनी गोद में गजानन को बैठा लिया था ।५०-५१। फिर गणेशजी का मस्तक सूँघ कर अपने हाथ से उनके कपोलों का स्पर्श किया था । उनके कैवल कर कमल के स्पर्श करते ही तत्क्षण जो भी दाँत के टूट जाने से क्षत हो गया था वह भरकर ठीक हो गया था ।५२। इसके अनन्तर श्री राधा जी के द्वारा अनुनय की गयी पार्वतीजी भी परम प्रसन्न हो गयी थीं और अपने चरणों में मस्तक नवाकर पड़े हुए परशुराम को उन्होंने भी अपने करकमल से पकड़ कर उठा लिया था । पार्वती जी ने परम प्रसन्न होकर उसको अपनी गोद में बिठाकर उसके शिर का उपघ्राण किया था । आर्य संस्कृति में वृद्ध एवं बड़े लोग अपने छोटे बालकों का शिर सूँघ कर उनकी आयु की वृद्धि किया करते थे । इस रीति से उन दोनों राम और गणेश का सत्कार भगवान् श्रीकृष्ण ने अपने नेत्रों से देखा था । तब श्रीकृष्ण ने भी स्कन्द को अपनी ओर उठाकर बहुत ही प्रेम के साथ अपनी गोद में बैठा लिया था । इसके अनन्तर भगवान् शम्भु ने भी परम प्रसन्न होकर वहाँ पर समुपस्थित श्रीदामा को अपनी गोद में संस्थापित कर लिया था और मान प्रदान करने वाले प्रभु ने उसका बड़ा सत्कार किया था ।५३-५४-५५-५६।

—×—

भार्गव-चरित्र वर्णन (३)

वसिष्ठ उवाच—

एवं सुस्निग्धचित्तेषु तेषु तिष्ठत्सु भूपते ।
भवान्युत्संगतो रामः समुत्थाय कृतांजलिः ।।१
तुष्टाव प्रयतो भूत्वा निर्विशेषं विशेषवत् ।
अद्वयं द्वैतमापन्नं निर्गुणं सगुणात्मकम् ।।२

राम उवाच—

प्रकृतिविकृतिजातं विश्वमेतद्विधातुं मम कियदनुभातं वैभवं तत्प्रमातुम् ।

अविदिततनुनामाऽनीष्टवस्त्वेकधामाऽभवदथ भव-
भामा पातु मां पूर्णकामा ॥३
प्रकटितगुणमानं कालसंख्याविधानं सकलभवनिदानं
कीर्त्यते यत्प्रधानम् ।
तदिह निखिलतातः संबभूवोक्षपातः कृतकृतकनिपातः
पातु मामद्य मातः ॥४
दनुजकुलविनाशी लेखपाताविनाशी प्रथम-
कुलविकाशी सर्वविद्याप्रकाशी ।
प्रसभरचितकाशी भक्तदत्ताखिलाशीरवतु विजितपाशी
मां सदा षण्मुखाशी ॥५
हरनिकटनिवासी कृष्णसेवाविलासी
प्रणतजनविभासी गोपकन्याप्रहासी ।
हरकृतबहुमानो गोपिकेशैकतानो विदितबहुविधानो
जायतां कीर्तिहा नो ॥६
प्रभुनियतमना यो नुन्नभक्तांतरायो हृतदुरितनिकायो
ज्ञानदातापरायो: ।
सकलगुणगरिष्ठो राधिकांके निविष्टो मम
कृतमपराधं क्षंतुमर्हत्वगाधम् ॥७

श्री वसिष्ठ जी ने कहा—हे भूपते ! इस रीति से उन सबके परमाधिक स्नेह से युक्त चित्त वाले हो जाने पर समवस्थित हुए देखा था तो परशुराम भवानी की गोद से उतर कर दोनों हाथों को जोड़कर पूर्णतया प्रणत हो गये थे ।१। फिर परम प्रयत्नशील होकर विशेषता से रहित की भी विशेष की भाँति स्तुति की थी । आप द्वैत से रहित होते हुए भी अर्थात् एक ही स्वरूप वाले होकर भी इस समय में द्वैत भाव को प्राप्त हो रहे हैं अर्थात् दो स्वरूपों में दर्शन दे रहे हैं । वास्तव में आप गुणों से रहित हैं तो भी अब सगुण स्वरूप से संयुत हैं ।२। परशुराम ने कहा—यह सम्पूर्ण विश्व प्रकृति के विकारों से ही समुत्पन्न हुआ है । इसकी रचना करने के लिए जो

भी आपका वैभव है उसके जानने के लिये मेरा ज्ञान कितना है अर्थात् मैं बहुत ही तुच्छ ज्ञान वाला उसको नहीं जान सकता हूँ। आपका स्वरूप और नाम किसी को भी विदित नहीं हैं किन्तु फिर भी आप अभीष्ट वस्तुओं के एक ही धाम हैं। आप भगवान् शङ्कर की भामिनी हैं और पूर्ण काम वाली हैं। आप मेरी रक्षा कीजिए।३। सत्व-रज और तम-इन गुणों का ज्ञान करने वाला—काल की सख्या का विधान करने वाला—इस सम्पूर्ण संसार का जो मूल कारण है वह प्रधान-इस नाम से कीर्त्तित किया जाया करता है वह यहाँ पर पूर्णतया कृतकृतक निपात वाला उक्षपात जिससे हुआ था हे माता ! वह आप आज मेरा परित्राण कीजिए।४। सम्पूर्ण दनुओं के कुलों का विनाश करने वाले—लेख पातों में अविनाशी-अपने कुल का सर्वप्रथम विकास करने वाले—समस्त विद्याओं के प्रकाश से समन्वित–अपने बल से ही काशी की रचना के कर्त्ता-अपने भक्तों के लिए सभी प्रकार का आशीर्वाद देने वाले और जिन्होंने पाश को भी जीत लिया है ऐसे षण्मुखों से अशन करने वाले स्वामी कार्त्तिकेय मेरी सदा-सर्वदा रक्षा करें।५। भगवान् हर के समीप में निवास करने वाले—श्रीकृष्ण की सेवा के विलास वाले–जो भक्त चरणों में प्रणत होते हैं उनको विशेष ज्ञान प्रदान करने वाले–गोपों की कन्याओं के द्वारा प्रहास किये गये–भगवान् शङ्कर जिनका बड़ा मान दिया करते हैं गोपिकेश्वर के एक ध्यान वाले और जिनको बहुत से विधान ज्ञान हैं वे मेरे कीर्त्तिहा होवे।६। जो प्रभु के चरणों में नियत मन वाले हैं तथा भक्तों के अन्तःकरण में प्रेरणा प्रदान करने वाले–समस्त पापों के समुदाय का हरण करने वाले–ज्ञान के प्रदान में तत्पर–सब प्रकार के गुणगणों में परमश्रेष्ठ और श्री राधाकाजी को गोद में विराजमान प्रभु मेरे किये हुए अगाध अपराध को क्षमा करने के योग्य होते हैं।७।

या राधा जगदुद्भवस्थितिलयेष्वाराध्यते वा जनै:
शब्दं बोधयतीशवक्त्रं विगलत्प्रेमामृतास्वादनम् ।
रासेशी रसिकेश्वरी रमणहृन्निष्ठानिजानंदिनी
नेत्री सा परिपातु मामवनतं राधेति या कीर्त्यते ॥८
यस्या गर्भसमुद्भवो ह्यतिविराडचस्यांशभूतो विराड्
यन्नाभ्यंबुरुहोद्भवेन विधिनैकांतोपदिष्टेन वै
सृष्टं सर्वमिदं चराचरमयं विश्वं च यद्रोमसु
ब्रह्मांडानि विभांति तस्य जननी शश्वत्प्रसन्नाऽस्तु सा ॥९

पायाद्यः स चराचरस्य जगतो व्यापी विभुः सच्चिदा-
नंदाब्धिः प्रकटस्थितो विलसति प्रेमांधया राधया ।
कृष्णः पूर्णतमो ममोपरि दयाक्लिन्नांतरः स्यात्सदा
येनाहं सुकृती भवामि च भवाम्यानंदलीनांतरः ।।१०

वसिष्ठ उवाच—
स्तुत्वैवं जामदग्न्यस्तु विरराम ह तत्परम् ।
विज्ञाताखिलतत्त्वार्थो हृष्टरोमा कृतार्थवत् ।।११
अथोवाच प्रसन्नात्मा कृष्णः कमललोचनः ।
भार्गवं प्रणतं भक्त्या कृपापात्रं पुरःस्थितम् ।।१२

कृष्ण उवाच—
सिद्धोऽसि भार्गवेंद्र त्वं प्रसादान्मम सांप्रतम् ।
अद्य प्रभृति वत्सास्मिँल्लोके श्रेष्ठतमो भव ।।१३
तुभ्यं वरो मया दत्तः पुरा विष्णुपदाश्रमे ।
तत्सर्वं क्रमतो भाव्यं समा बह्वीस्त्वया विभो ।।१४

जो श्री राधा इस जगत् के लय-उद्भव और स्थिति काल में भी जनों के द्वार समाराधित होती हैं-स्वामी के मुख से विगलित प्रेमरूपी अमृत के रसास्वाद का शब्द से ज्ञान कराती हैं—जो रास लीला की स्वामिनी हैं—रसिकों की ईश्वरी है अपने रमण कराने वाले के हृदय में निष्ठा वाली तथा अपने आपको आनन्द पाने वाली वह नेत्री अर्थात् गोपीगणाधीश्वरी जिनका शुभ नाम श्री राधा कीर्त्तित किया जाया करता है वह अवनत मेरी की रक्षा करें ।८। जिसके गर्भ से अति विराट् स्वरूप का उद्भव हुआ था और जिसका वह विराट् स्वरूप एक अंशभूत ही था—जिसकी नाभि से समुत्पन्न कमल से समुत्पन्न हुए विधाता ने जिसको एकान्त में उपदेश दिया गया था—इस स्थावर जङ्गम सम्पूर्ण विश्व की रचना की है और जिसके रोमों में ये समस्त ब्रह्माण्ड शोभित हो रहे हैं उस पूर्ण परमेश्वर को जन्म देने वाली जननी मेरे ऊपर निरन्तर प्रसन्न होवे ।९। जो इस चराचर जगत् में व्यापक विभु है और जो सत्-चित् और आनन्द का सागर प्रकट स्वरूप में स्थित होकर प्रेमान्ध श्रीराधा के साथ शोभा प्राप्त करता है वह मेरी रक्षा

करें। परम पूर्णतय परमेश्वर श्रीकृष्ण मेरे ऊपर करुणा से पसीजे हुए हृदय वाले मेरे ऊपर होवें जिसमे मैं कृकृती हो जाऊँ और आनन्द में लीन अन्तः करण वाला बन जाऊँ ।१०। वसिष्ठजी ने कहा—इस रीति से जमदग्नि महामुनि के पुत्र परशुराम ने भगवान श्रीकृष्णचन्द्र की स्तुति करके फिर इसके पश्चात् वह विरत होकर चुप हो गए थे। वह सम्पूर्ण तत्वों के अर्थों का ज्ञाता एक सफलता प्राप्त होने वाले के ही समान परम प्रसन्न पुलकोद्‌गम वाला हो गया था ।११। इसके अनन्तर कमलों के सदृश लोचनों वाले परम प्रसन्न आत्मा से युक्त होते हुए श्रीकृष्ण ने अपने आगे उपस्थित-भक्ति भावना से प्रणत तथा कृपा के पात्र भार्गव से कहा—।१२। श्रीकृष्ण बोले—हे भार्गवेन्द्र ! तुम इस समय मेरे प्रसाद (पूर्ण प्रसन्नता) से सिद्ध हो गये हो। हे वत्स ! तुम आज से लेकर इस लोक में सबसे अधिक श्रेष्ठ हो गए हो ।१३। पहिले समय में बिष्णु महाश्रम में मैंने आपको बर दिया था। वह सब कुछ हे विभो ! क्रम से बहुत से वर्षों में पूर्ण होना चाहिए अर्थात् पूर्ण हो ही जायगा ।१४।

दया विधेया दीनेषु श्रेय उत्तममिच्छता ।
योगश्च साधनीयो वै शत्रूणां निग्रहस्तथा ।।१५

त्वत्समो नास्ति लोकेऽस्मिस्तेजसा च बलेन च ।
ज्ञानेन यशसा वापि सर्वश्रेष्ठतमो भवान् ।।१६

अथ स्वगृहमासाद्य पित्रोः शुश्रूषणं कुरु ।
तपश्चर यथाकालं तेन सिद्धिः करस्थिता ।।१७
राधोत्संगात्समुत्थाप्य गणेशं राधिकेश्वरः ।
आलिंग्य गाढं रामेण मैत्रीं तस्य चकार ह ।।१८

अथोभावपि संप्रीतौ तदा रामगणेश्वरौ ।
कृष्णाज्ञया महाभागौ बभूवतुररिंदम ।।१९
एतस्मिन्नंतरे देवी राधा कृष्णप्रिया सती ।
उभाभ्यां च वरं प्रादात्प्रसन्नास्या मुदान्विता ।।२०

राधोवाच—सर्वस्य जगतो वंद्यौ दुराधर्षौ प्रियावहौ ।
मद्‌भक्तौ च विशेषेण भवंतौ भवतां सुतौ ।।२१

अब मेरा तुम्हारे लिए यह उपदेश है कि परम श्रेयकी अभिलाषा रखने वाले आपको जो विचारे दीन प्राणी हैं उन पर दया करनी चाहिए। और तुमको योग की साधना करनी चाहिए तथा अपने शत्रुओं का निग्रह

भी करना चाहिए ।१५। इस लोक में आपके समान अन्य कोई भी तेज-बल-ज्ञान और यश में समानता रखने वाला नहीं है और आप सबमें परम श्रेष्ठतम हैं ।१६। उसके अनन्तर आप अपने निवास गृह में पहुँचकर अपने माता-पिता की शुश्रूषा करो । और जब भी समय प्राप्त हो तब तपश्चर्या करो । इससे सिद्धि आपके करतल में स्थित हो जायगी ।१७। फिर श्री-राधिका के ईश्वर ने भी राधाजी की गोद से गणेशजी को अपनी बाहुओं से स्वयं उठाकर अपने वक्षःस्थल से लगा लिया था और भली-भाँति स्नेहा-लिङ्गन करके फिर उनकी मित्रता परशुराम के साथ करादी थी ।१८। हे शत्रुओं दमन करने वाले ! इसके उपरान्त उस समय में भगवान श्रीकृष्ण की आज्ञा से महान भाग वाले वे दोनों ही परशुराम और गणेश बहुत प्रीति वाले हो गये थे अर्थात् उन दोनों की बहुत ही गहरी प्रीतिमयी मित्रता हो गयी थी और पहिले हुआ द्वेष भाव बिल्कुल ही उनके हृदयों से निकल गया था ।१९। इसी बीच में परम सती-साध्वी श्रीकृष्ण चन्द्र की प्रिया श्रीराधा देवी अधिक आनन्द से समन्वित होकर प्रसन्न मुख कमल वाली ने उन दोनों के लिए वर दिया था ।२०। श्रीराधाजी ने कहा—हे पुत्रो ! इस सम्पूर्ण जगत के द्वारा वन्दना करने के योग्य—असह्य तेज वाले और प्रिय कार्य का आवाहन करने वाले तथा आप दोनों ही विशेष रूप से मेरे भक्त हो जावें ।२१।

भवतोर्नाम चोच्चार्य यत्कार्यं यः समारभेत् ।
सिद्धिं प्रयातु तत्सर्वं मत्प्रसादाद्धि तस्य तु ।।२२
अथोवाच जगन्माता भवानी भववल्लभा ।
वत्स राम प्रसन्नाऽहं तुभ्यं कं प्रददे वरम् ।
तं प्रब्रूहि महाभाग भयं त्यक्त्वा सुदूरतः ।
राम उवाच—
जन्मांतरसहस्रेषु येषु येषु व्रजाम्यहम् ।।२३
कृष्णयोर्भवयोर्भक्तो भविष्यामीति देहि मे ।
अभेदेन च पश्यामि कृष्णौ चापि भवौ तथा ।।२४
पार्वत्युवाच—
एवमस्तु महाभाग भक्तोऽसि भवकृष्णयोः ।

चिरंजीवी भवाशु त्वं प्रसादान्मम सुव्रत ।।२५

अथोवाच धराधीशः प्रसन्नस्तमुमापतिः ।

प्रणतं भार्गवेंद्रं तु वराहं जगदीश्वरः ।।२६

शिव उवाच--

रामभक्तोऽसि मे वत्स यस्ते दत्तो वरो मया ।

स भविष्यति कात्स्न्र्येन सत्यमुक्तं न चान्यथा ।।२७

अद्यप्रभृति लोकेऽस्मिन् भवतो बलवत्तरः ।

न कोऽपि भवताद्वत्स तेजस्वी च भवत्परः ।।२८

जो कोई पुरुष आपके शुभ नाम का उच्चारण करके जो भी कुछ कार्य का समारम्भ किया करता है उसका वह कार्य मेरे प्रसाद से निश्चित रूप से सिद्धि को प्राप्त हो जाता है ।२२। इसके उपरान्त भगवान भव (शिव) की वल्लभा भवानी देवी जो इस समस्त जगत को जन्म देने वाली माता हैं, बोली थीं । हे राम, हे वत्स ! मैं तुम से बहुत प्रसन्न हूँ, मुझे तुम यह बतला दो कि तुम्हारे लिए मैं क्या वरदान दे दूँ । हे महान भाग वाले ! उसी वरदान को जो तुमको अभिलाषित हो मुझे स्पष्ट बतलादो और इसमें सर्वथा भय मत करो तथा भय को तो एकदम बहुत दूर हटा दो । परशुराम जी ने कहा—मैं अपने सहस्रों जन्मों में भी जिन जिन देहों में गमन करके समुत्पन्न होऊँ ।२३। श्री राधा कृष्ण और भवानी-भव का अनन्य भक्त होऊँ यही वरदान आप मुझे प्रदान कीजिए। श्री राधा कृष्ण और भव-भवानी—इन दोनों युगलों का मैं कोई भेद भी नहीं देखूँ अर्थात् इनका एक ही स्वरूप मेरी दृष्टि में बना रहे ।२४। जगदम्बा पार्वतीजी ने कहा—हे महाभाग ! इसी प्रकार से होगा । तुम तो भगवान शंकर और श्रीकृष्ण-चन्द्र के परम भक्त हो । हे सुव्रत ! अर्थात् परम सुन्दर व्रत वाले ! मेरी कृपा के प्रसाद से तुम बहुत शीघ्र चिरकाल पर्यन्त जीवित रहने वाले हो जाओ ।२५। इसके पश्चात् इस वसुन्धरा के स्वामी भगवान उमापति परमाधिक प्रसन्न होकर उस राम से बोले और जगत के स्वामी ने जब देखा था कि वह भार्गवेन्द्र परशुराम उनके चरणों में प्रणत हो रहा है तथा वरदान प्राप्त करने का परम योग्य पात्र है तो उन्होंने कहा—।२६। भगवान शिव ने कहा—हे वत्स ! तुम मेरे राम के भक्त हो—यह वरदान मैंने तुमको दिया था । यह वरदान सम्पूर्णतया कहा हुआ सत्य ही होगा और इस वरमें

अन्यथा कुछ भी नहीं होगा अर्थात् इसमें कुछ भी अन्तर न होगा ।२७। हे वत्स ! इस समस्त लोक में आज ही से आरम्भ करके आपसे अधिक बलवान कोई भी नहीं होगा और न कोई आपसे अधिक तेज के धारण करने वाला तेजस्वी ही होगा ।२८।

वसिष्ठ उवाच--

अथ कृष्णोऽप्यनुज्ञाप्य शिवं च नगनंदिनीम् ।
गोलोकं प्रययौ युक्तः श्रीदाम्ना चापि राधया ।।२९
अथ रामोऽपि धर्मात्मा भवानीं च भवं तथा ।
संपूज्य चाभिवाद्याथ प्रदक्षिणमुपाक्रमीत् ।।३०
गणेशं कार्त्तिकेयं च नत्वापृच्छ्य च भूपते ।
अकृतव्रणसंयुक्तो निश्चक्राम गृहांतरात् ।।३१
निष्क्रम्यमाणो रामस्तु नंदीश्वरमुखैर्गणैः ।
नमस्कृतो ययौ राजन्स्वगृहं परया मुदा ।।३२

वसिष्ठजी ने कहा---इसके अनन्तर भगवान श्रीकृष्ण शिव और नगराज की पुत्री को अनुज्ञापित करके श्रीराधा और श्री दामा के साथ अपने गोलोक धाम को चले गये थे ।२९। इसके पश्चात् धर्मात्मा राम ने भी भगवान शिव और जगदम्बा का भली-भाँति अर्चन करके और अभिवादन करके इसके अनन्तर उन्होंने प्रदक्षिणा करने का उपक्रम किया था ।३०। हे भूपते ! फिर राम ने गणेशजी और स्वामी कार्तिकेय की सेवा में प्रणिपात करके तथा उनसे पूछकर उस गृह के मध्य भाग से बाहिर निष्क्रमण किया था ।३१। हे राजन् ! जिस बेला में राम वहाँ से बाहर निकल कर जा रहे थे उस अवसर पर नन्दीश्वर प्रभृति शिव के मुख्य गणों के द्वारा उनको प्रणाम किया गया था और फिर वह राम बड़ी ही प्रसन्नता से अपने गृह को चले गये थे ।३२।

सगरोपाख्यान (१)

वसिष्ठ उवाच-

राजन्नेवं भृगुर्विद्वान्पश्यञ्जनपदान्बहून् ।
समाजगाम धर्मात्माऽकृतव्रणसमन्वितः ।।१

निलिल्युः क्षत्रियाः सर्वे यत्र तत्र निरीक्ष्य तम् ।
व्रजंतं भार्गवं मार्गे प्राणरक्षणतत्पराः ॥२
अथाससाद राजेंद्र रामः स्वपितुराश्रमम् ।
शांतसत्त्वसमाकीर्णं वेदध्वनिनिनादितम् ॥३
यत्र सिंहा मृगा गावो नागमार्जारमूषकाः ।
समं चरंति संहृष्टा भयं त्यक्त्वा सुदूरतः ॥४
यत्र धूमं समीक्ष्यैव ह्यग्निहोत्रसमुद्भवम् ।
उन्नदंति मयूराश्च नृत्यंति च महीपते ॥५
यत्र सायंतने काले सूर्यस्याभिमुखं द्विजैः ।
जलांजलीन्प्रक्षिपद्भिः क्रियते भूर्जलाविला ॥६
यत्रांतेवासिभिर्नित्यं वेदाः शास्त्राणि संहिताः ।
अभ्यस्यंते मुदा युक्तैर्ब्रह्मचर्यव्रते स्थितैः ॥७

श्री वसिष्ठ महामुनि ने कहा—हे राजन् ! इस प्रकार से विद्वान् भृगु बहुत-से जन पदों का अवलोकन करते हुए वे धर्मात्मा राम अकृत व्रण से समन्वित होकर समागत हो गये थे ।१। मार्ग में जहाँ पर भी क्षत्रिय मिले थे वे सब उन परशुराम को देखकर छिप गये थे क्योंकि मार्ग में राम गमन करते हुए उन्हें दिखलाई पड़े थे और वे बिचारे अपने प्राणों की रक्षा में परायण होकर इधर-उधर भागे-भागे फिर रहे थे ।२। हे राजेन्द्र ! इसके पश्चात् परशुराम अपने पिता के आश्रम में पहुँच गए थे जो आश्रम परम शान्त जीवों से घिरा हुआ था और जिसमें वेद मन्त्रों की ध्वनि गूँज रही थी ।३। उस आश्रम में स्वभाव जनित वैर भाव भी नाम मात्र को भी नहीं था और परस्पर में निसर्ग शत्रु जीव भी जैसे सिंह और मृग तथा गौ-सर्प-मार्जार और मूषक भी सब मिले-जुले एक साथ सञ्चरण करते थे और अपने स्वाभाविक शत्रुओं का भी भय दूर करके त्याग दिया था ।४। हे महीपते ! जिस आश्रम में निरन्तर अग्नि होत्र के होते रहने से समुत्पन्न हुए धूम (धूँआ) को देखकर ही मेघावरण की भ्रान्ति से अर्थात् घने धूम के द्वारा समावृत अन्तरिक्ष को मेघाच्छन्न समझकर मयूर बहुत प्रसन्न हो रहे थे और अपने चित्रविचित्र पिच्छों को फैला कर नृत्य कर रहे थे जहाँ पर सायंकाल के समय में द्विजगण सूर्यदेव के सम्मुख में जल की अञ्जलियों

का प्रक्षेप कर रहे थे जिस जल से सारी भूमि आविल हो गई थी अर्थात् भीगकर मटमैले रङ्ग की हो रही थी ।६। जहाँ पर अध्ययन शील वटु ब्रह्मचारियों के द्वारा नित्य ही वेदों-शास्त्रों और संहिताओं का अभ्यास किया जाता था। ये सभी छात्र परमाधिक हर्ष से समन्वित तथा ब्रह्मचर्य व्रत में समास्थित रहा करते थे ।७।

अथ रामः प्रसन्नात्मा पश्यन्नाश्रमसंपदम् ।
प्रविवेश शनैं राजन्नकृतव्रणसंयुतः ।।८
जयशब्दं नमः शब्दं प्रोच्चरद्भिर्द्विजात्मजैः ।
द्विजैश्च सत्कृतो रामः परं हर्षमुपागतः ।।९
आश्रमाभ्यंतरे तत्र संप्रविश्य निजं गृहम् ।
ददर्श पितरं रामो जमदग्नि तपोनिधिम् ।।१०
साक्षाद्भृगुमिवासीनं निग्रहानुग्रहक्षमम् ।
पपात चरणोपान्ते ह्यष्टांगालिंगितावनिः ।।११
रामोऽहं तव दासोऽस्मि प्रोच्चरन्निति भूपते ।
जग्राह चरणौ चापि विधिवत्सज्जनाग्रणीः ।।१२
अथ मातुश्च चरणावभिवाद्य कृतांजलिः ।
उवाच प्रणतो वाक्यं तयोः संहर्षकारणम् ।।१३
राम उवाच—
पितस्तव प्रभावेण तपसोऽतिदुरासदः ।
कार्त्तवीर्यो हतो युद्धे सपुत्रबलवाहनः ।।१४

इसके अनन्तर उस परम पुनीत आश्रम की अनिर्वचनीय विशाल विभूति का अवलोकन करने से प्रसन्न आत्मा वाले राम ने हे राजन् ! अपने पालित अकृत व्रण के सहित मन्दगति से उस आश्रम में प्रवेश किया था ।८। जैसे ही राम ने भीतर अपना पदार्पण किया था वैसे ही उनका दर्शन करके वहाँ पर स्थित द्विजों के बालकों ने जय-जयकार और नमस्कार की ध्वनियों को प्रोच्चारण किया था और विप्रों के द्वारा भार्गवेन्द्र राम का बड़ा ही अधिक सम्मान-सत्कार किया गया था। इस रीति से अपने स्वागत-समादर को देखते हुए राम को परमाधिक हर्ष हुआ था ।९। उस आश्रम के

अन्दर अपने गृह में जब राम ने प्रवेश किया था तो वहाँ पर परशुराम जी ने तपस्या के परम निधि अपने पिताश्री जमदग्नि महामुनि का दर्शन किया था ।१०। वे जमदग्नि मुनि साक्षात् अपने पूर्व पुरुष भृगु मुनि के समान वहाँ पर विराजमान थे जो अपने तपोबल से विग्रह और अनुग्रह करने की विशाल सामर्थ्य धारण करने वाले थे । उनके समीप में पहुँचकर राम ने उनके चरण कमलों के निकट में अपने आठों अङ्गों से भूमि का आलिङ्गन करते हुए गिर गये थे अर्थात् भूमि पड़कर साष्टाङ्ग प्रणाम किया था ।११। हे भूपते ! परशुराम ने प्रणिपात करते हुए—मैं आपका दासानुदास राम हूँ—आपकी सेवा मैं मेरा सादर प्रणाम निवेदित है—ऐसा मुख से उच्चारण करते हुए उस सज्जनों में प्रमुख राम ने प्रणाम करने की विधि से साथ पिताश्री के दोनों चरणों का ग्रहण किया था ।१२। इसके अनन्तर उन्होंने अपनी माता श्री के चरणों में करबद्ध होते हुए अभिवादन किया था । फिर परम प्रणत होकर उन दोनों माता-पिता के अतीव हर्ष का कारण स्वरूप वाक्य कहा था ।१३। राम ने कहा—हे पिताजी, आपके परम दुरासद तप के प्रभाव से ही मैंने बड़े बलवान कार्त्तवीर्य राजा का पुत्रों-सैनिकों और वाहनों के सहित हनन कर दिया है । इस निवेदन का तात्पर्य यही है कि उस इतने बलशाली शत्रु के निपातन करने में मेरा पुरुषार्थ कुछ भी नहीं है यह सब कुछ आपके ही तप का प्रभाव है जिस से मेरे द्वारा वह दुष्ट मारा गया है ।१४।

यस्तेऽपराधं कृतवान्दुष्टमंत्रिप्रचोचितः ।
तस्य दण्डो मया दत्तः प्रसह्य मुनिपुंगव ॥१५
भवन्तं तु नमस्कृत्य गतोऽहं ब्रह्मणोंऽतिकम् ।
तं नमस्कृत्य विधिवत्स्वकार्यं प्रत्यवेदयम् ॥१६
स मामुवाच भगवाञ्छ्रुत्वा वृत्तांतमादितः ।
व्रज स्वकार्यसिद्धयर्थं शिवलोकं सनातनम् ॥१७
श्रुत्वाऽहं तद्वचस्तात नमस्कृत्य पितामहम् ।
गतवाञ्छिवलोकं वै हरदर्शनकांक्षया ॥१८
प्रविश्य तत्र भगवन्नुमया सहितः शिवः ।
नमस्कृतो मया देवो वांछितार्थप्रदायकः ॥१९

तदग्रे निखिलः स्वीयो वृत्तांतो विनिवेदितः ।
मया समाहितधिया स सर्वं श्रुतवानपि ॥२०
श्रुत्वा विचार्य तत्सर्वं ददौ मह्यं कृपान्वितः ।
त्रैलोक्यविजयं नाम कवचं सर्वसिद्धिदम् ॥२१

यह वही अधम राजा था । जिसने अपने परम दुष्ट मन्त्री की प्रेरणा से प्रेरित होकर आपका महान् अपराध किया था । उस अपराध का दण्ड मेरे द्वारा उसको दे दिया गया है । हे मुनियों में परम श्रेष्ठ ! मैंने बलपूर्वक उसको दण्डित किया है । मैंने जिस रीति से अब तक जो कुछ भी किया है उसका पूर्ण विवरण क्रमानुसार मैं आपकी सन्निधि में निवेदित करता हूँ ।१५। मैंने आपको नमस्कार करके सर्वप्रथम ब्रह्माजी के समीप में गमन किया था क्योंकि समस्त सृष्टि ब्रह्मा जी के ही द्वारा हुई हैं । अतः उनको उसके निपातन से कुछ बुरा प्रतीत न हो, उनकी आज्ञा प्राप्त करना न्यायोचित एवं आवश्यक था । मैंने वहाँ जाकर उनको विधि के साथ प्रणिपात किया था और अपना सङ्कल्पित कार्य उनसे निवेदित कर दिया था ।१६। ब्रह्माजी ने आरम्भ से लेकर सम्पूर्ण वृत्तान्त सुना था और मुझसे कहा था । समस्त क्षत्रियगण भगवान् शिव के परम भक्त हैं अतः अपने कार्य की सिद्धि के लिए सनातन शिवलोक में जाना चाहिए ।१७। हे तात ! पितामह के इस वचन का श्रवण करके ब्रह्माजी को नमस्कार करके भगवान् शिव के दर्शन की आकाङ्क्षा से फिर मैं शिवजी के लोक में गया था ।१८। हे भगवन् ! यहां पर शिव लोक में प्रवेश करके उमा देवी के सहित भगवान् शिव को नमस्कार किया था । भगवान् शिव तो ऐसे देव हैं जो सबके लिए वाञ्छित अर्थ का प्रदान कर दिया करते हैं ।१९। उन प्रभु के सामने मैंने अपना पूरा वृत्तान्त आवेदित कर दिया था । जो भी उनकी सेवा में निवेदित किया था उस सबको उन्होंने परम समाहित बुद्धि से उस सबका श्रवण भी किया था । उस सम्पूर्ण वृत्तान्त का श्रवण करके उन्होंने एक क्षण तक विचार किया था और फिर परमाधिक कृपा से समन्वित होकर समस्त सिद्धियों के देने वाले त्रलोक्य विजय नाम वाला कवच मुझे उन्होंने प्रदान किया था ।२०-२१।

तल्लब्ध्वा तं नमस्कृत्य पुष्करं समुपागतः ।
तत्राहं साधयित्वा तु कवचं हृष्टमानसः ॥२२

कार्त्तवीर्यं निहत्याजौ शिवलोकं पुनर्गतः ।
तत्र तौ तु मया दृष्टौ द्वारे स्कन्दविनायकौ ॥२३
तौ नमस्कृत्य धर्मज्ञ प्रवेष्टुं चोद्यतोऽभवम् ।
स मामवेक्ष्य गणपो विशन्तं त्वरयान्वितम् ॥२४
वारयामास सहसा नाद्यावसर इत्यथ ।
मम तेन पितस्तत्र वाग्युद्धं हस्तकर्षणम् ॥२५
सञ्जातपरशुक्षेममतोऽभूद्भृगुनन्दन ।
तज्ज्ञात्वा समुद्गृह्य मामधश्चोर्द्ध्वमेव च ॥२६
करेण भ्रामयामास पुनश्चानीतवांस्ततः ।
तं दृष्ट्वातिक्रुधा क्षिप्तः कुठारो हि मया ततः ॥२७
दंतो निपतितस्तस्य ततो देव उपागतः ।
पार्वती तत्र दृष्टाऽभूत्तदा कृष्णः समागतः ॥२८

उस कवच की सिद्धि पुष्कर तीर्थ में बतलायी थी अतएव मैंने उस को प्राप्तकर भगवान् शङ्कर को प्रणाम किया और मैं फिर उसकी सिद्धि के लिये पुष्कर में समागत हो गया था। वहाँ पर मैंने उस कवच की सिद्धि प्राप्त कर ली थी। और उसे साधित करके मेरे मन में बड़ी प्रसन्नता हुई थी।२२। फिर संग्राम भूमि में कार्त्तवीर्य का निपातन करके मैं पुनः शिवलोक में गया था कि अपनी विजय का सम्वाद प्रभु को सुनादूँ। वहाँ पर मैंने द्वारपर स्कन्द और विनायक को समवस्थित देखा।२३। हे धर्म के ज्ञान वाले भगवान्! मैंने उन दोनों की सेवा में प्रणाम किया और मैं अन्दर प्रवेश करने के लिए समुद्यत हो गया था। उस समय में बड़ी शीघ्रता से युक्त होकर अन्दर प्रविष्ट होने वाले मुझ को देखकर गणेश जी ने रोक दिया था।२४। उन्होंने मुझ से यही कह मुझको अन्दर प्रवेश करने से सहसा रोका था कि आज अन्दर गमन करने का अवसर नहीं है। हे पिताजी! उस समय में मेरा उन गणेश जी के साथ पहिले तो वाग्युद्ध अर्थात् अच्छी तरह से कहा सुनी हुई थी और फिर हाथों का कर्षण अर्थात् मेरा हाथ पकड़कर खींचातानी हुई थी।२५। उस समय में गणेश जी ने यह देखा कि भृगु नन्दन अपने परशु का प्रहार करने वाला हो रहा था। उन्होने यह जानकर मुझको पकड़ लिया था और ऊपर उठाकर नीचे की ओर कर दिया था।२६।

गणेश जी ने अपने हाथ से उठाकर अच्छी तरह से ऊपर के अनेक लोकों में घुमाया था और फिर नीचे के लोकों में घुमाकर वहीं पर मुझे लाकर रख दिया था। फिर मुझको बड़ा भारी क्रोध आ गया था और मैंने अपना कुठार उनके ऊपर प्रक्षिप्त कर दिया था।२७। उस प्रहार से गणेशजी का एक बांया दाँत टूटकर भूमि पर गिर गया था। उसी समय में महादेवजी वहाँ पर आ गये थे। उस समय में पार्वतीजी ने अपने पुत्र के दाँत के टूट जाने की दुर्घटना देखी तो वे बहुत रुष्ट हो गयी थी। उसी समय में भगवान् श्री कृष्ण भी आ गये थे।२८।

राधया सहितस्तेन सानुनीता वरं ददौ।
मह्यं कृष्णो जगामाथ तेन मैत्रीं विधाय च ॥२६
ततः प्रणम्य देवेशौ पार्वतीपरमेश्वरौ।
आगतस्तव सान्निध्यमकृतव्रणसंयुतः ॥३०
वसिष्ठ उवाच—
इत्युक्त्वा भार्गवो रामो विरराम च भूपते।
जमदग्निरुवाचेदं रामं शत्रुनिबर्हणम् ॥३१
जमदग्निरुवाच—
क्षत्रहत्याभिभूतस्त्वं तावद्दोषोपशांतये।
प्रायश्चित्तं ततस्तावद्यथावत्कर्तुमर्हसि ॥३२
इत्युक्तः प्राह पितरं रामो मतिमतां वरः।
प्रायश्चित्तं तु तद्योग्यं त्वं मे निर्देष्टुमर्हसि ॥३३
जमदग्निरुवाच—
व्रतैश्च नियमैश्चैव कर्षयन्देहमात्मनः।
शाकमूलफलाहारो द्वादशाब्दं तपश्चर ॥३४
वसिष्ठ उवाच—
इत्युक्तः प्रणिपत्यैनं मातरं च भृगूद्वहः।
प्रययौ तपसे राजन्नकृतव्रणसंयुतः ॥३५
स गत्वा पर्वत वरं महेंद्रमरिकर्षणः।

कृत्वाऽऽश्रमपदं तस्मिंस्तपस्तेपे सुदुश्चरम् ॥३६
व्रतैस्तपोभिर्नियमैर्देवताराधनैरपि ।
निन्ये वर्षाणि कति चिद्रामस्तस्मिन्महात्मना: ॥३७

भगवान् श्रीकृष्ण श्रीराधा जी को साथ में लेकर ही पधारे थे । उनके द्वारा पार्वतीजी का अनुभव किया था और पार्वती जगज्जनी ने मुझे वर-दान प्रदान किया था । और भगवान् कृष्ण ने हम दोनों की मित्रता कराकर प्रणाम किया था और वहाँ से वे चले गये थे ।२६। इसके अनन्तर देवेश्वर पार्वती और परमेश्वर दोनोंको सादर प्रणिपात करके में अकृत व्रण के ही साथ में उनके समीप में उपस्थित हो गया था ।३०। वसिष्ठजी ने कहा—हे भूपते ! इतना ही सम्पूर्ण अपना वृत्तान्त कहकर फिर परशुराम चुप हो गये थे । इसके अनन्तर महामुनि जमदग्नि ने उन शत्रुओं के विनाश कर देने वाले राम से बोले ।३१। जमदग्नि ने कहा—हे राम ! आप तो अब समस्त क्षत्रियों की हत्या से अभिभूत हो गये हैं अर्थात् क्षत्रियों के वध की हत्या आपके ऊपर छायी हुई है । अतएव अब आप उस की हुई हत्या के निवारण करने के लिये यथाविधि प्रायश्चित्त करने के योग्य हैं अर्थात् उसके शोधन के वास्ते शास्त्रोक्त प्रायश्चित्त करना ही चाहिए ।३२। इस तरह से कथन करने वाले अपने पिताजी से मतिमानों में श्रेष्ठ राम ने यह प्रार्थना की थी कि उस विशाल बध के शोधन के योग्य जो भी कोई प्रायश्चित्त हो उसको आप ही मुझे निर्देश करने के लिए परम योग्य हैं ।३३। महामुनीन्द्र जमदग्नि जी ने कहा—बहुत-से व्रतों और नियमों के द्वारा अपने शरीर का कर्षण करते हुए केवल वन्य शाकों और मूलों का आहार करने वाले होकर बारह वर्षों तक निरन्तर तपश्चर्या का समाचरण करो ।३४। जब इस प्रकार से आत्म-शोधन के लये पिताश्री के द्वारा कहा गया था तो परशुराम जी ने अपने माता-पिता के चरणों में प्रणिपात किया और अकृतव्रण को अपने साथ में लेकर हे राजन् ! वह तपस्या करने के लिये वहाँ से चले गये थे ।३५। वे परशुराम जिन्होंने अपने समस्त शत्रुओं का विनाश करके पूर्णतया कर्षणकार दिया था वे अब अपने देह की शुद्धि के लिए कर्षण करने के वास्ते महेन्द्र नामक पर्वत पर गये थे । उस गिरि पर अपना एक आश्रम बनाकर उन्होंने वहाँ पर परम दुश्चर तप किया था ।३६। वहाँ पर राम ने अनेक व्रत-तप-नियम और देवता के समाराधन के द्वारा उस आश्रम में महान् मन वाले भार्गव ने कुछ वर्ष व्यतीत कर दिये थे अर्थात् ऐसे ही अनेक साधनों को करके बहुत से वर्ष बिता दिये थे ।३७।

सगरोपाख्यान (२)

वसिष्ठ उवाच–

ततः कदाचिद्विपिने चतुरंगबलान्वितः ।
मृगयामगमच्छूरः शूरसेनादिभिः सह ॥१
ते प्रविश्य महारण्यं हत्वा बहुविधान्मृगान् ।
जग्मुस्तृषार्त्ता मध्याह्ने सरितं नर्मदामनु ॥२
तत्र स्नात्वा च पीत्वा च वारि नद्या गतश्रमाः ।
गच्छंतो ददृशुर्मार्गे जमदग्नेरथाश्रमम् ॥३
दृष्ट्वाश्रमपदं रम्यं मुनीनागच्छतः पथि ।
कस्येदमिति पप्रच्छुर्भाविकर्मप्रचोदिताः ॥४
ते प्रोचुरतिशांतात्मा जमदग्नेर्महातपाः ।
वसत्यस्मिन्सुतो यस्य रामः शस्त्रभृतां वरः ॥५
तच्छ्रुत्वा भीरभूत्तेषां रामनामानुकीर्तनात् ।
क्रोधं प्रसह्यानृशंस्यं पूर्ववैरमनुस्मरन् ॥६
अथ ते प्रोचुरन्योन्यं पितृहंतुर्वधात्पितुः ।
वैर निर्यातनं किं तु करिष्यामो दिशाधुना ॥७

श्री वसिष्ठ जी ने कहा—इसके उपरान्त यह हुआ था कि किसी समय में शूर शूरसेन आदि के साथ चतुरङ्गिणी सेना लेकर उसी वन में मृगया (शिकार) के लिये गया था। जिसमें पैदल-अश्व-हाथी और रथ ये सभी चारों साधन होते हैं वही चतुरङ्गिणी सेना कही जाती है ।१। उन्होंने उस महान् विशाल अरण्य में प्रवेश करके बहुत-से मृगों का हनन किया था। जब मध्याह्न काल हो गया तो वे सब पिपासा बेचैन होकर नर्मदा नदी की ओर पहुँच गये थे ।२। वहाँ पर उनने जल मान किया और स्नान किया था और अपने स्रम को दूर किया था। जब वहाँ से वे जा रहे थे तो भृगुवर जमदग्नि मुनि का आश्रम उनने देखा था ।३। वह आस्रम का स्थान बहुत ही सुरम्य था। उसका अवलोकन करके उन्होंने मार्ग में आगमन करते हुए मुनिगणों से पूछा था कि यह किसका ऐसा परम सुन्दर आश्रम है। उस समय में होनहार ऐसा ही था और भविष्य में होने वाले कर्मों से वे प्रेरित

हो गये थे ।४। उन मुनिगणों ने उस नृप से कहा था कि इस आश्रम में अत्यन्त ही प्रशान्त आत्मा वाले और महान् तपस्वी जमदग्नि मुनि निवास किया करते हैं जिनके पुत्र शस्त्र धारियों में परम श्रेष्ठ परशुराम हैं ।५। यह श्रवण करके परशुराम जी के नाम के अनुकीर्त्तन से पहिले तो सुनने के साथ ही उनके हृदय में बड़ा भारी भय उत्पन्न हो गया था किन्तु फिर क्रोध को सहन करके उनको परशुराम की बड़ी भारी क्रूरता के साथ किये हुए पूर्व वैर का अनुस्मरण हो गया था ।६। इसके अनन्तर उन्होंने एक दूसरे से आपस में कहा था कि इन्होंने तो हमारे पिता का बध किया था तो ऐसे पिता के हनन करने वाले के पिता का अब इस समय में वध करके हम सब इस रीति से अपने वैर का बदला अवश्य निकालेंगे ।७।

इत्युक्त्वा खड्गहस्तास्ते संप्रविश्य तदाश्रमम् ।
प्रजघ्निरे प्रयातेषु मुनिवीरेषु सर्वतः ।।८
तं हत्वाऽस्य शिरो हृत्वा निषादा इव निर्दयाः ।
प्रययुस्ते दुरात्मानः सबलाः स्वपुरीं प्रति ।।९
पुत्रास्तस्य महात्मानो दृष्ट्वा स्वपितरं हतम् ।
परिवार्य महाराज रुरुदुः शोककर्शिताः ।।१०
भर्त्तारं निहतं भूमौ पतितं वीक्ष्य रेणुका ।
पपात मूर्च्छिता सद्यो लतेवाशनिताडिता ।।११
सा स्वचेतसि संमूच्छर्य शोकपावकदीपितान् ।
दूरप्रनष्टसंज्ञेव सद्यः प्राणैर्व्ययुज्यत ।।१२
अनालपंत्यां तस्यां तु संज्ञां याता हि ते पुनः ।
न्यपतन्मूर्च्छिता भूमौ निमग्नाः शोकसागरे ।।१३
ततस्तपोधना येऽन्ये तत्तपोवनवासिनः ।
समेत्याश्वासयामासुस्तुल्यदुःखाः सुतान्मुने ।।१४

इतना कहकर वे सब करों में खड्ग लेकर उस आश्रम के अन्दर प्रविष्ट हो गये थे और सभी ओर से गमनागमन करने वाले मुनियों का हनन किया था ।८। फिर उनने जमदग्नि मुनि का हनन कर दिया था और दया से रहित निषादों के ही समान उस जमदग्नि का मस्तक काटकर हरण कर लिया था । वे महान् दुष्ट आत्मा वाले अपनी सेना के सहित

अपनी नगरी की ओर चले गये थे ।९। हे महाराज ! उस महामुनि जमदग्नि के जो अन्य पुत्र थे वे परम साधु प्रकृति से सुसम्पन्न महान् आत्मा वाले तापस ही थे जब उन्होंने देखा कि उनके पिता का बड़ी निर्दयता से हनन कर दिया गया है तो उस मृत पिता ने शव के चारों बैठकर महान शोक से उत्पीड़ित होते हुए रुदन करने लग गये थे ।१०। अपने प्राणनाथ स्वामी को निहत और भूमि पर पड़े हुए देखकर मुनि पत्नी रेणुका देवी तुरन्त ही भूमि पर पछाड़ खाकर वज्राघात से गिरी हुई कोमल लता के ही समान मूर्च्छित होकर गिर गयी थी ।११। उसके मन में मूर्च्छा आ गयी थी और उसको अपने देह का अनुसन्धान नहीं रहा था । वह शोक की अग्नि से दीपित हो गयी थी । वह बहुत अधिक संज्ञा से हीन के समान ही होकर तुरन्त ही अपने प्रिय प्राणों से वियुक्त हो गयी थी अर्थात् उसके प्राण पखेरू तुरन्त ही उड़ गए थे ।१२। जब उसके पुत्रों ने देखा कि वह कुछ भी नहीं बोल रही है तो फिर उनको होश आया था और अपनी माता का मृत शरीर देखकर वे सभी शोक के अगाध सागर में निमग्न होते हुए मूर्च्छित होकर भूमि में पछाड़ खाकर गिर गये थे ।१३। जब ऐसा शोक से वहाँ बड़ा हाहाकार मच गया तो जो अन्य तप के ही धन वाले तपस्वी गण थे जो कि उसी तपोवन में निवास करने वाले थे हे मुने ! उन सबको भी उन मुनि पति-पत्नियों के वियोग से समान ही दुःख हो रहा था और वे सब वहीं पर इकट्ठे हो गये थे तथा रेणुका के पुत्रों को समाश्वासन दिया था ।१४।

सांत्व्यमाना मुनिगणैर्जामदग्न्या यथाविधि ।
आधुक्षुर्वचसा तेषामग्नौ पित्रोः कलेवरे ।।१५
चक्रुरेव तदूर्द्ध्वं वै यत्कर्त्तव्यमनंतरम् ।
पित्रोर्मरणदुःखेन पीड्यमाना दिवानिशम् ।।१६
तत काले गते रामः समानां द्वादशावधौ ।
निवृत्तस्तपसः सख्या सहागादाश्रमं पितुः ।।१७

समस्त समागत मुनिगणों के द्वारा अब अच्छी तरह से उन पुत्रों को सान्त्वना दी गयी थी तो जमदग्नि के उन मुनियों के कहने से अपने माता-पिता के शवों का कर्मकाण्ड के अनुसार अग्नि में दाह कर दिया था ।१५। अन्त्येष्टि के अनन्तर फिर जो भी करने के योग्य ऊर्ध्व क्रिया कलाप था उस

सबको भी पूर्णतया सम्पन्न किया था। वे सभी जमदग्नि के आत्मज अपने दोनों ही माता-पिता के मरण के असह्य दुःख से रात दिन पीड़ित होते हुए रहा करते थे।१६। इसके अनन्तर कुछ काल के व्यतीत हो जाने पर जबकि बारह वर्षों की अवधि पूर्ण हो गयी थी तो अपनी तपश्चर्या से निवृत्त होकर राम अकृत व्रण के साथ अपने पिता श्री में आये थे।१७।

क्षत्रिय वंश नाश प्रतिज्ञा

वसिष्ठ उवाच—

स गच्छन्पथि शुश्राव मुनिभ्यस्तत्त्वमादितः ।
राजपुत्रव्यवसितं पित्रोः स्वर्गतिमेव च ।।१
पितुस्तु जीवहरणं शिरोहरणमेव च ।
तन्मृतेरेव मरणं श्रुत्वा मातुश्च केवलम् ।।२
विललाप महाबाहुर्दुःखशोकसमन्वितः ।
तमथाश्वासयामास तुल्यदुःखोऽकृतव्रणः ।।३
हेतुभिः शास्त्रनिर्दिष्टैर्वीर्यसामर्थ्यसूचकैः ।
युक्तिलौकिकदृष्टान्तैस्तच्छोकं संव्यशामयत् ।।४
सांत्वितस्तेन मेधावी धृतिमालंब्य भार्गवः ।
प्रययौ सहितः सख्या भ्रातॄणां तु दिदृक्षया ।।५
स तान् दृष्ट्वाभिवाद्यैताम् भार्गवो दुःखकर्षितः ।
शोकामर्षयुतस्तैश्च सह तस्थौ दिनत्रयम् ।।६
ततोऽस्य सुमहान्क्रोधः स्मरतो निधनं पितुः ।
बभूव सहसा सर्वलोकसंहरणक्षमः ।।७

श्री महामुनीन्द्र वसिष्ठजी ने कहा—परशुराम ने मार्ग में गमन करते हुए मुनि मण्डल से आरम्भ से सब तत्त्व सुन लिया था अर्थात् वहाँ पर किस तरह से सब घटनाएँ हुई थीं यह श्रवण कर लिया था। उनको यह भी ज्ञात हो गया था कि उन महान दुष्ट राज पुत्रों ने यह कुचेष्टाएँ की थीं और उनके द्वारा पिता की मृत्यु तथा शोक में माता का देहान्त हो गया है

।१। अपने पिताजी के जीवन का हरण और उनके शिर को काटकर ले जाने का समाचार भी उन्होंने जानकर यह भी उनको ज्ञात हो गया था कि उनकी माताश्री का मरण पिताजी की मृत्यु हो जाने ही से शोकोद्रेक वश हो गयी थी ।२। वह महाबाहु को बड़ा भारी शोक और असह्य दुःख हुआ था । इससे वे राम बहुत अधिक विलाप करने लग गये थे । यद्यपि अकृत व्रण को भी परशुराम के ही समान दुःख हुआ था किन्तु फिर भी उसने राम को बहुत कुछ समाश्वासन दिया था ।३। वीर्य की सामर्थ्य के सूचक शास्त्रों में निर्दिष्ट किये गए हेतुओं के द्वारा और युक्तियों से तथा लोक में होने वाले अनेक दृष्टान्तों के द्वारा परशुराम जी के उस महान शोक को अकृत व्रण ने शमित कर दिया था ।४। उस अकृत व्रण के द्वारा सान्त्वना दिए गए परशुराम ने धैर्य का अवलम्बन लिया था क्योंकि वह बहुत अधिक मेधावी थे । इकके अनन्तर परशुरामजी अपने सखा अकृत व्रण के साथ अपने भाइयों के देखने की इच्छा से अपने गृह की ओर चल दिये थे ।५। वहाँ पर भार्गव ने जाकर अभिवादन किया था और इन सबको परम दुःखित देखकर परशुरामजी को भी अत्यधिक दुःख हुआ था । उन सबके साथ में पुनः उस शोक का नवीनीकरण हो गया था और परम शोक में मग्न होकर वह वहाँ तीन दिन तक स्थित रहे थे ।६। इसके अनन्तर अपने पिता श्री के निधन का स्मरण करते हुए उनको महान क्रोध उत्पन्न हो गया था और तुरन्त ही वह सम्पूर्ण लोक के संहार कर देने में समर्थ हो गये थे ।७।

मातुरर्थे कृतां पूर्वं प्रतिज्ञां सत्यसंगरः ।
दृढीचकार हृदये सर्वक्षत्रवधोद्यतः ॥८
क्षत्रवंश्यानशेषेण हत्वा तद्‌हलोहितैः ।
करिष्ये तर्पणं पित्रोरिति निश्चित्य भार्गवः ॥९
भ्रातॄणां चैव सर्वेषामाख्यायात्मसमीहितम् ।
प्रययौ तदनुज्ञातः कृत्वा संस्थां पितुः क्रियाम् ॥१०
अकृतव्रणसंयुक्तः प्राप्य माहिष्मतीं ततः ।
तद्‌बाह्योपवने स्थित्वा सस्मार स महोदरम् ॥११
स तस्मै रथचापाद्यं सहसा श्वसमन्वितम् ।
प्रेषयामास रामाय सर्वसंहननानि च ॥१२

रामोऽपि रथमारुह्य सन्नद्धः सशरं धनुः ।
गृहीत्वापूरयच्छंखं रुद्रदत्तममित्रजित् ।।१३
ज्याघोषं च चकारोच्चै रोदसी कंपयन्निव ।
सहसाहोथ सारथ्यं चक्रे सारथिनां वरः ।।१४

माता रेणुका ने अपने पति के वियोग में विलाप करते हुए इक्कीस बार अपने वक्षःस्थल को पीटा था अतः परशुरामजी ने उसी समय में यह प्रतिज्ञा की थी कि मेरे पिता को क्षत्रिय जातीय नृप ने निहत किया है इसलिए मैं भी इक्कीस बार भूमण्डल को संहार करके क्षत्रियों से रहित कर दूँगा—माता के लिए की हुई इस प्रतिज्ञा को सत्यवादी दिया था ।८। ने समस्त क्षत्रियों के वध करने के लिये समुद्यत होकर हृदय में सुदृढ़ कर भार्गवेन्द्र ने ऐसा निश्चय कर लिया था कि क्षत्रियों के वंश में समुत्पन्न सबका निहनन करके उनके शरीरों के रुधिर से मैं अपने माता-पिता का तर्पण करूँगा ।९। अपने समस्त भाइयों से यह अपना समीहित सत्य संकल्प कहकर अपने पिताजी की संस्थित क्रिया को पूर्ण करके भाइयों की आज्ञा प्राप्त करके परशुराम चले गये थे ।१०। फिर अकृतव्रण को साथ में लेकर माहिष्मती नगरी में स्थित होकर उन्होंने महोदर (श्रीगणेश जी) का स्मरण किया था ।११। उन्होंने तुरन्त ही राम के लिए रथ-चाप आदि सभी आयुधों तथा अश्वों आदि को भेज दिया था ।१२। फिर परशुराम प्रभु भी उस रथ पर समारूढ़ होकर सन्नद्ध हो गये थे और शत्रुओं पर विजय पाने वाले ने शरके सहित धनुष का ग्रहण कर लिया था तथा भगवान रुद्र के द्वारा प्रदत्त शंख की ध्वनि करके उससे सम्पूर्ण भाग को पूरित कर दिया था ।१३। अपने धनुष की प्रत्यंचा की टंकार से अन्तरिक्ष और भूमण्डल को प्रकम्पित करते हुए बड़ा ही उच्च घोष किया था । सारथियों में परम श्रेष्ठ सहसाह ने उनके रथ का सारथि होने का कार्य ग्रहण किया था ।१४।

रथज्याशंखनादैस्तु वधात्पित्रोरमर्षिणः ।
तस्याभून्नगरी सर्वा संक्षुब्धाश्च नरद्विपाः ।।१५
रामं त्वागतमाज्ञाय सर्वक्षत्रकुलांतकम् ।
संक्षुब्धाश्चक्रुरुद्योगं संग्रामाय नृपात्मजाः ।।१६
अथ पंचरथाः शूराः शूरसेनादयो नृप ।

रामेण योद्धुं सहिता राजभिश्चक्रुरुद्यमम् ।।१७
चतुरंगबलोपेतास्ततस्ते क्षत्रियर्षभाः ।
राममासादयामासुः पतंगा इव पावकम् ।।१८
निवार्य तानापततो रथेनैकेन भार्गवः ।
युयुधे पार्थिवैः सर्वैः समरेऽमितविक्रमः ।।१९
ततः पुनरभूद्युद्धं रामस्य सह राजभिः ।
जघान यत्र संक्रुद्धो राज्ञां शतमुदारधीः ।।२०
ततः स सूरसेनादीन्हत्वा सबलवाहनान् ।
क्षणेन पातयामास क्षितौ क्षत्रियमंडलम् ।।२१

अपने माता और पिता दोनों के वध हो जाने से परशुरामजी को बड़ा भारी क्रोध हो गया था । जब परम क्रुद्ध भार्गव के रथ प्रत्यञ्चा और शंख के नाद हुए तो इनसे उस नृप की समस्त नगरी और नर तथा द्विप सभी अत्यन्त संक्षुब्ध हो गये थे ।१५। उन नृप के पुत्रों ने जब यह समझ लिया था कि सब क्षत्रियों के कुलों का अन्त कर देने वाले परशुराम समागत हो गये हैं तो वे बहुत ही क्षुब्ध हुए थे और फिर उन्होंने राम के साथ संग्राम करने के लिए उद्योग किया था ।१६। इसके अनन्तर हे नृप ! पञ्चरथ शूरसेन प्रभृति शूरों ने अनेक अन्य राजाओं के साथ परशुरामजी युद्ध करने के लिए उद्यम किया था ।१७। इसके उपरान्त वे श्रेष्ठ क्षत्रिय अपनी चतुरङ्गिणी सेनाओं से समन्वित हुए थे और सब राम के पास प्राप्त हो गये थे । जिस तरह पावक पर गिरने वाले पतङ्गों को अग्नि भस्मसात् करके निवारित कर दिया करता है उसी भाँति भार्गवेन्द्र ने अपने एक ही रथ के द्वारा उस पर संस्थित होकर अपने ऊपर चारों ओर से आक्रमण करके आपतन करने वालों को निवारित कर दिया था । अपरिमित बल-विक्रम से सुसम्पन्न राम ने समराङ्गण में उन सभी नृपों के साथ घोर युद्ध किया था ।१८-१९। इसके अनन्तर फिर भार्गव का युद्ध राजाओं के साथ हुआ था और उस उदार बुद्धि वाले परशुराम ने उन सौ राजाओं का वध कर दिया था ।२०। फिर शूरसेन आदि नृपों का सेना और वाहनों के सहित हनन करके एक ही क्षण में उस पूर्ण क्षत्रियों के मण्डल को भूमि पर गिरा दिया था ।२१।

ततस्ते भग्नसंकल्पा हृतस्वबलवाहना: ।
हतशिष्टा नृपतयो दुद्रुवु: सर्वतो दिशम् ॥२२
एवं विद्राव्य सैन्यानि हत्वा जित्वाथ संयुगे ।
जघान शतशो राज्ञ: शूराञ्छरवराग्निना ॥२३
तत: क्रोधपरीतात्मा दग्धुकामोऽखिलां पुरीम् ।
उदैरयद्भार्गवोऽस्त्रं कालाग्निसदृशप्रभम् ॥२४
ज्वालाकवलिताशेषपुरप्राकारमालिनीम् ।
पुरीं सहस्त्यश्वनरां स ददाहास्त्रपावक: ॥२५
दह्यमानां पुरीं दृष्ट्वा प्राणत्राणपरायण: ।
जीवनाय जगामाशु वीतिहोत्रो भयातुर: ॥२६
अस्त्राग्निना पुरीं सर्वां दग्ध्वा हत्वा च शात्रवान् ।
प्राशयानोऽखिलान् लोकान् साक्षात्काल इवांतक: ॥२७
अकृतव्रणसंयुक्त: सहसाहेन चान्वित: ।
जगाम रथघोषेण कंपयन्निव मेदिनीम् ॥२८

इसके अनन्तर वे समस्त नृप भग्न सङ्कल्प वाले हो गये थे और उनके सैनिक तथा सब वाहन हाथी घोड़े आदि नष्ट हो गये थे। जो भी नृप हनन करने से बच गये थे वे भय से भीत होकर सब दिशाओं की ओर इधर-उधर भाग गये।२२। इस रीति से सम्पूर्ण सेना के सैनिकों को खदेड़ कर तथा हनन करके भार्गवेन्द्र ने युद्ध में विजय प्राप्त की थी और अपने बाणों की अग्नि के द्वारा सैकड़ों शूर नृपों का वध कर दिया था।२३। फिर महान् क्रोध से भरी हुई आत्मा वाले परशुराम ने उस पुरी को दग्ध करने की इच्छा की थी तथा भार्गव ने कालाग्नि अपने अस्त्र को छोड़ दिया था।२४। उस अस्त्र की अग्नि ने उस नगरी को जिसमें सभी हाथी-घोड़े और मनुष्य थे जला दिया था और वह पुरी अस्त्राग्नि के जल कर ज्वालाओं से उसके पुरप्राकार आदि की माला से कवलित हो गयी थी अर्थात् उस महान् प्रदीप्त अग्नि ने सबको स्वाहा कर दिया था और वहाँ पर कुछ भी शेष नहीं रहा था।२५। उस समस्त पुरी को जलती हुई देखकर अपने प्राणों की रक्षा में तत्पर वीतिहोत्र भय से आतुर होकर वहाँ से जीवन के परित्राण

करने के लिये शीघ्र ही चला गया था ।२६। अपनी अस्त्र की अग्नि से उस सम्पूर्ण नगरी को जलाकर तथा सब शत्रुओं का हनन करके उस समय में भार्गवेन्द्र राम समस्त लोकों का विनाश करते हुए साक्षात् अन्त कर देने वाले काल की ही भाँति हो गये थे ।२७। फिर अकृतव्रण के सहित और सहसाह् से समन्वित होकर अपने रथ के महान् घोष से सम्पूर्ण पृथ्वी को कम्पित करते हुए वहाँ से गये थे ।२८।

विनिघ्नन् क्षत्रियान्सर्वान् संशाम्य पृथिवीतले ।
महेंद्रादि ययौ रामस्तपसे धृतमानसः ।।२६
तस्मिन्नष्टचतुष्कं च यावत्क्षत्रसमुद्गमम् ।
प्रत्येत्य भूयस्यद्धत्यै बद्धदीक्षो धृतव्रतः ।।३०
क्षत्रक्षेत्रेषु भूयश्च क्षत्रमुत्पादितं द्विजैः ।
निजघान पुनर्भूमौ राज्ञः शतसहस्रशः ।।३१
वर्षद्वयेन भूयोऽपि कृत्वा निःक्षत्रियां महीम् ।
षट्चतुष्टयवर्षान्तं तपस्तेपे पुनश्च सः ।।३२
भूयोऽपि राजन् संबुद्धं क्षत्रमुत्पादितं द्विजैः ।
जघान भूमौ निःशेषं साक्षात्काल इवांतकः ।।३३
कालेन तावता भूयः समुत्पन्नं नृपात्स्वयम् ।
निघ्नंश्चचार पृथिवीं वर्षद्वयमनारतम् ।।३४
अलं रामेण राजेंद्र स्मरता निधनं पितुः ।
त्रिसप्तकृत्वः पृथिवी तेन निःक्षत्रिया कृता ।।३५

इस पृथ्वी तल पर क्षत्रियों का निहनन करते हुए पूर्णतया इस भूमि पर शान्ति स्थापित करके फिर भार्गव राम तपश्चर्या करने के लिये मन में निश्चय करके महेन्द्र पर्वत पर वहाँ से चले गये थे ।२६। उसमें जितना भी क्षत्रियों का समुद्रय था बारह थे उनके प्रति भी आकर फिर उनके हनन करने के वास्ते व्रत धारण करने वाले परशुराम बद्ध दीक्षा वाले हुए थे ।३०। और द्विजों ने क्षत्रियों के क्षेत्रों में फिर क्षत्रियों का उत्पादन कर दिया था। जब परशुरामजी को क्षत्रियों की उत्पत्ति का ज्ञान हुआ था कि अभी और भी क्षत्रिय समुत्पन्न हो गये हैं तो पुनः उन्होंने सैकड़ों और

सहस्रों क्षत्रिय नृपों का भूमि पर हनन कर दिया था।३१। फिर भी दो वर्षों में इस भूमि को क्षत्रियों का वध करके क्षत्रियों से रहित बना दिया था और फिर दश वर्षों के लम्बे समय तक तपस्या का तपन किया था।३२। हे राजन् ! जब फिर भी उनको यह ज्ञान हुआ था कि ब्राह्मणों ने क्षत्रियों को अपने तपोबल से समुत्पन्न कर दिया है तो फिर भी उन्होंने साक्षात् विनाश करने वाले काल के ही समान इस भूमण्डल में क्षत्रियों को मार-काटकर समाप्त कर दिया था।३३। उतने में समय में फिर क्षत्रिय लोग समुत्पन्न हो गये थे तब दो वर्ष पर्यन्त निरन्तर पृथ्वी पर उन सबका हनन करते भार्गवेन्द्र ने किया था।३४। हे राजेन्द्र ! अपने पिताश्री के क्षत्रियों के द्वारा निधन का स्मरण करते हुए पूर्ण रूप से उन्होंने इक्कीस बार इस भूमि को इसी रीति से क्षत्रियों से रहित कर दिया था। उनकी माता रेणुका ने अपने पति के वियोग के शोक में रुदन करते हुए इक्कीस बार अपने वक्षःस्थल को करों से प्रताड़ित किया था उतनी ही बार परशुरामजी ने इस भूमण्डल क्षत्रियों से रहित कर दिया था।३५।

— × —

।। वसिष्ठ गमन वर्णन ।।

वसिष्ठ उवाच–

ततो मूर्द्धाभिषिक्तानां राज्ञाममिततेजसाम् ।
षट्सहस्रद्वयं रामो जीवग्राहं गृहीतवान् ।।१

ततो राजसहस्राणि गृहीत्वा मुनिभिः सह ।
स जगाम महातेजाः कुरुक्षेत्रं तपोमयम् ।।२

सरसां पंचकं तत्र खानयित्वा भृगूद्वहः ।
सुखावगाहतीर्थानि तानि चक्रे समंततः ।।३

जघान तत्र वै राज्ञः शरीरप्रभवासृजा ।
सरांसि तानि वै पंच पूरयामास भार्गवः ।।४

स्नात्वा तेषु यथान्यायं जामदग्न्यः प्रतापवान् ।
पितॄन्संतर्पयामास यथाशास्त्रमतंद्रितः ।।५

पितुः प्रेतस्य राजेंद्र श्राद्धादिकमशेषतः ।
ब्राह्मणैः सह मातुश्च तत्र चक्रे यथोदितम् ॥६
एवं तीर्णप्रतीकः स कुरुक्षेत्रे तपोमये ।
उवासातंद्रितः सम्यक् पितृपूजापरायणः ॥७

श्री वसिष्ठ जी ने कहा—इसके अनन्तर अपरिमित तेज वाले मूर्द्धाभिषिक्त अर्थात् सर्व शिरोमणि बारह सहस्र राजाओं का परशुरामजी ने जीवनों का ग्रहण किया था अर्थात् मार गिराया था ।१। इसके अनन्तर एक सहस्र राजाओं को पकड़ कर मुनिगणों के साथ महान् तेजस्वी वे परशुराम जी तपोमय कुरुक्षेत्र में गमन कर गये थे ।२। भृगुद्वह ने वहाँ पर पाँच सरोवर खुदवा कर उनको सब ओर परम सुख का आवाहन करने वाले तीर्थ कर दिया था ।३। वहीं पर उन सहस्र नृपों का हनन किया था और उनके शरीरों से निकले हुए रुधिर से भार्गव ने उन पाँचों सरोवरों को भर दिया था ।४। परमाधिक प्रतापी जमदग्नि के पुत्र ने न्यायानुसार उन सरोवरों में स्नान किया था और तन्द्रा से रहित होकर शास्त्रोक्त विधान से अपने पितरों को तृप्त किया था अर्थात् पितृगणों के लिए तर्पण किया था ।५। हे राजेन्द्र ! वहीं पर परशुरामजी ने जैसा भी शास्त्र में कहा गया है वही ब्राह्मणों के साथ रहकर अपने मृत पिता का और माता का श्राद्ध आदि पूर्ण रूप से सुसम्पन्न किया था ।६। इस रीति से पितृऋण से उत्तीर्ण होने वाले उन्होंने उस तप से परिपूर्ण कुरुक्षेत्र में पितृगणों की अर्चना में तत्पर होते हुए अतन्द्रित रहकर भली भाँति निवास किया था ।७।

ततः प्रभृत्यभूद्राजंस्तीर्थानामुत्तमोत्तमम् ।
विहितं जामदग्न्येन कुरुक्षेत्रे तपोवने ॥८
स्यमंतपंचकमिति स्थानं त्रैलोक्यविश्रुतम् ।
यत्र चक्रे भृगुश्रेष्ठः पितॄणां तृप्तिमक्षयाम् ॥९
स्नानदानतपोहोमद्विजभोजनतर्पणैः ।
भृशमाप्यायितास्तेन यत्र ते पितरोऽखिलाः ॥१०
अवापुरक्षयां तृप्तिं पितृलोकं च शाश्वतम् ।
समंतपंचकं नाम तीर्थं लोके परिश्रुतम् ॥११

सर्वपापक्षयकरं महापुण्योपबृंहितम् ।
मर्त्यानां यत्र यातानामेनांसि निखिलानि तु ।।१२
दूरादेवापयास्यंति प्रवाते शुष्कपर्णवत् ।
तत्क्षेत्रचर्यागमनं मर्त्यानामसतामिह ।।१३
न लभ्यते महाराज जातु जन्मशतैरपि ।
समंतपंचकं तीर्थं कुरुक्षेत्रेऽतिपावनम् ।।१४

इसके पश्चात् हे राजन् ! तपश्चर्या करने के उस वन कुरुक्षेत्र में जमदग्नि के पुत्र के द्वारा किया हुआ वह कुरु क्षेत्रधाम तभी से आरम्भ करके तीर्थों से सबसे परम श्रेष्ठ तीर्थ बन गया था ।८। वह स्थान सस्मय-मन्तक---इस नाम से तीनों लोकों में प्रख्यात हो गया था । क्योंकि वहाँ पर परशुरामजी ने अपने पितृगणों की अक्षय तृप्ति की थी ।९। वहाँ पर उन्होंने पितरों को बहुत ही अच्छी तरह से स्नान-दान-तप-होम-विप्रों के लिए भोजन और तर्पण आदि के द्वारा सन्तृप्त कर दिया था ।१०। और पितृगणों के लोक ने निरन्तर अक्षय तृप्ति प्राप्त की थी । स्यमन्तक नाम वाला तीर्थ लोक से परिश्रुत है ।११। यह तीर्थ समस्त पापों के क्षय का करने वाला है और महान पुण्य से उपबृहन्ति है । जहाँ पर समागत हुए मनुष्यों के सम्पूर्ण से उपबृहन्ति है । जहाँ पर समागत हुए मनुष्यों के सम्पूर्ण पार दूर से ही वायु में शुष्क पत्रों की ही भाँति उपगत हो जाता करते हैं । मनुष्यों का जो असत् है उनकी चर्या तथा गमन बड़ी ही कठिनाई से प्राप्त हुआ करता है । यह हे महाराज ! कभी भी सौ में जन्मों भी प्राप्त नहीं करता है । स्यमन्तक पंचक तीर्थ कुरुक्षेत्र में बहुत ही अधिक पावन है ।१२-१४।

यत्र स्नातः सर्वतीर्थैः स्नातो भवति मानवः ।
कृतकृत्यस्ततो रामः सम्यक् पूर्णमनोरथः ।।१५
उवास तत्र नियतः कंचित्कालं महामतिः ।
ततः संवत्सरस्यांते ब्राह्मणैः सहितो वशी ।।१६
पितृपिंडप्रदानाय जामदग्न्योऽगमद्गयाम् ।
ततो गत्वा ततः श्राद्धे यथाशास्त्रमरिंदमः ।।१७

ब्राह्मणांस्तर्पयामास पितृ नुद्दिश्य सत्कृतान् ।
शैवं तत्र परं स्थानं चन्द्रपादमिति स्मृतम् ॥१८
पितृतृप्तिकरं क्षेत्रं तादृग्लोके न विद्यते ।
यत्रार्चिताः स्वकुलजैर्यथाशक्ति मनागपि ॥१९
पितरः पिंडदानाद्यैः प्राप्स्यंति गतिमक्षयाम् ।
पितृ नुद्दिश्य तत्रासौ तर्प्पितेषु द्विजातेषु ॥२०
ददौ च विधिवत्पिंडं पितृभक्तिसमन्वितः ।
ततस्तत्पितरः सर्वे पितृलोकादुपागताः ॥२१

वह तीर्थ ऐसा महिमामय है कि जहाँ पर स्नान कर लेने वाला मनुष्य संसार के समस्त तीर्थों के स्नान का पुण्य फल प्राप्त कर लेने वाला हो जाता है। इसके अनन्तर राम अपने सब कृत्यों को पूर्ण कर लेने वाले सफल तथा भली भाँति पूर्ण मनोरथों वाले हो गये थे ।१५। फिर वे महती मति वाले नियत होकर कुछ काल तक निवासी हो गये थे। फिर सम्वत्सर के अन्त में वशी ब्राह्मणों के सहित पितृगणों के लिए पिणु समर्पित करने के लिये जमदग्नि के पुत्र गया गये थे। वहाँ पर जाकर शत्रुओं के दमन करने वाले ने शास्त्र की पद्धति के ही अनुसार श्राद्ध किया था ।१६-१७। उन्होंने श्राद्ध से अपने पितृगणों का उद्देश्य ग्रहण करके ब्राह्मणों का सत्कार किया था और उनको संतृप्त किया था। उसके आगे शैव स्थान है जो चन्द्रपाद नाम से कहा गया है ।१८। पितृगणों की तृप्ति करने वाला उसके समान लोक में अन्य कोई भी क्षेत्र नहीं है। यह ऐसा स्थान है जहाँ पर अपने कुल में समुत्पन्न मानवों के द्वारा शक्ति के अनुसार अत्यल्प रूप से भी अर्चित हुए पितृगण पिण्ड दानादिक के द्वारा अक्षय गति को प्राप्त कर लेंगे। वहाँ पर पितृगणों का उद्देश्य लेकर द्विजातियों को तृप्त किया था। जब वे पूर्णतया तृप्त हो गये थे तो पितृगण के प्रति भक्तिभाव से समन्वित होकर विधि पूर्वक पिण्डदान दिया था। इसके अनन्तर सभी पितृलोक से वहीं पर उपागत हो गये थे ।१९-२१।

जुगृहुस्तत्कृतां पूजां जमदग्निपुरोगमाः ।
अथ संप्रीतमनसः समेत्य भृगुनंदनम् ॥२२
ऊचुस्तत्पितरः सर्वेऽदृश्या भूत्वांतरिक्षगाः ।

पितर ऊचु :–

महत्कर्म कृतं वीर भवतान्यैः सुदुष्करम् ।।२३

अस्मानपि यथान्यायं सम्यक् तर्पितवानसि ।

अस्माकमक्षयां प्रीतिं तथापि त्वं न यच्छसि ।।२४

क्षत्रहत्यां हि कृत्वा तु कृतकर्माभवद्यतः ।

क्षेत्रस्यास्य प्रभावेण भक्त्या च तव दर्शनम् ।।२५

प्राप्ताः स्म पूजिताः किं तु नाक्षय्यफलभागिनः ।

तस्मात्त्वं वीरहत्यादिपापप्रशमनाय हि ।।२६

प्रायश्चित्तं यथान्यायं कुरु धर्मं च शाश्वतम् ।

वधाच्च विनिवर्तस्व क्षत्रियाणामतः परम् ।।२७

पितुर्न्न तेऽपराध्यंते न स्वतंत्रं यतो जगत् ।

तन्निमित्तं तु मरणं पितुस्ते विहितं पुरा ।।२८

जमदग्नि जिनमें आग्रगामी थे ऐसे उन सब पितृगणों ने वहाँ पर आकर उसके द्वारा की गयी पूजा का ग्रहण किया था और वे सब भृगुनन्दन पर बहुत अधिक प्रसन्न मन वाले हो गये थे ।२२। उन समस्त पितृगणों ने आकाश में स्थित होते हुए अदृश्य होकर ही उससे कहा था। पितृगण ने कहा—हे वीर ! तुमने बहुत ही बड़ा कार्य किया है जो कि अन्य जनों के द्वारा कभी भी नहीं हो सकता है अर्थात् महान् कठिन है ।२३। आपने न्याय पूर्वक बहुत ही अच्छी तरह से सन्तृप्त किया है तो भी हमारी कभी क्षीण न होने वाली प्रीति तुमने हमको नहीं दी है ।२४। कारण यह है कि आपने समस्त क्षत्रियों की हत्या करके ही आप कर्म करने वाले हुए हैं। यह तो इस क्षेत्र का ही प्रभाव है कि हमने आपको दर्शन दिया है तथा भक्ति भी इसका एक कारण है ।२५। हम लोग यहाँ पर पूजित तो अवश्य हुए हैं किन्तु फिर भी अक्षय फल के भागी नहीं हुए हैं। इस कारण से आपको उस महान् पाप के निवारण करने के लिये कुछ अवश्य ही कुछ करना ही होगा जो कि बड़े-बड़े वीरों की हत्या के प्रशमन के लिये होना चाहिए ।२६। अब आपका कर्त्तव्य है कि न्याय के अनुरूप इसका प्रायश्चित करो और निरन्तर रहने वाला धर्म का कर्म करो। तथा इससे आगे भविष्य में क्षत्रियों के वध करने के कार्य से दूर हो जाओ। अर्थात् क्षत्रियों की हत्या

करना बन्द कर दो।२७। इन विचारों के द्वारा तुम्हारे पिता का कोई भी अपराध नहीं किया गया है क्योंकि यह जगत् स्वतन्त्र नहीं हैं अर्थात् जगत् के प्राणी स्वेच्छा से ही कर्मों के करने में कभी भी स्वतन्त्र नहीं हुआ करते हैं। पहिले आपके पिता का जो मरण हुआ है उसके यह कोई भी निमित्त नहीं है क्योंकि स्वाधीनता किसी में भी कर्मों के करने की हुआ ही नहीं करती है।२८।

हंतुं कं कः समर्थः स्याल्लोके रक्षितुमेव वा।
निमित्तमात्रमेवेह सर्वः सर्वस्य चैतयोः ॥२६
ध्रुवं कर्मानुरूपं ते चेष्टंते सर्व एव हि।
कालानुवृत्तं बलवान्नृलोको नात्र संशयः ॥३०
बाधितुं भुवि भूतानि भूतानां न विधिं विना।
शक्यते वत्स सर्वोऽपि यतः शक्त्या स्वकर्मकृत् ॥३१
क्षत्रं प्रति ततो रोषं विमुच्यास्मत्प्रियेप्सया।
शममाप्नुहि भद्रं ते स ह्यस्माकं परं बलम् ॥३२
वसिष्ठ उवाच—
इत्युक्त्वांतर्दधुः सर्वे पितरो भृगुनन्दनम्।
स चापि तद्वचः सर्वं प्रतिजग्राह सादरम् ॥३३
अकृतव्रणसंयुक्तो मुदा परमया युतः।
प्रययौ च तदा रामस्तस्मात्सिद्धवनाश्रमम् ॥३४
तस्मिन्स्थित्वा भृगुश्रेष्ठो ब्राह्मणैः सहितो नृप।
तपसे धृतसंकल्पो बभूव स महामनाः ॥३५

इस लोक में कौन है जो किसी का हनन या रक्षण करने की सामर्थ्य रखता हो। तात्पर्य यही है कि किसी में भी किसी के मारने या रक्षा करने की शक्ति नहीं है। मरण और संरक्षण इन दोनों के विषय में सभी केवल इस लोक में एक निमित्त ही हुआ करते हैं और वस्तुतः स्वयं कोई भी कुछ करने वाला नहीं होता है।२६। जो भी कोई यहाँ पर किया करते हैं वे सभी यह निश्चय है कि अपने पूर्व कृत कर्मों के ही अनुसार चेष्टा किया करते हैं। तात्पर्य यही हैं कि जैसा भी जिसका कर्म पूर्व में किया हुआ होता

है वही करने के लिए सबको यहाँ पर विवश होना ही पड़ता है। यहाँ पर मानवगण काल के ही अनुसार चला करते हैं। यह निस्सन्देह सत्य है कि नृलोक बलवान् है ।३०। इस भूमण्डल में कोई भी हे वत्स ! विधि के बिना प्राणियों को कोई बाधा पहुँचा कर शक्ति के द्वारा सामर्थ्य नहीं रखा करता है कारण यही है कि यहाँ पर सभी अपने कृत कर्मों के अनुसार ही सब किया करते हैं। तात्पर्य यही है कि कर्म ही बड़ा बलवान् है जिसके वशीभूत होकर प्राणी कार्य करने को प्रेरित होता है ।३१। आपने जो क्षत्रियों के वध करने का क्रोध किया है उसको अब त्याग दो यदि आपके मन में हमारे प्रिय करने की अभिलाषा है। अब आप शम को ग्रहण करो। इस भूमण्डल में इसी शम से आपका श्रेय होगा। यह शम तो हमारा बड़ा भारी बल है ।३२। वसिष्ठजी ने कहा---उन भृगुनन्दन जी से इतना ही कहकर सब पितृगण अन्तर्हित हो गये थे। फिर उन परशुरामजी ने भी बहुत ही आदर के साथ उनके उस वचन का ग्रहण किया था ।३३। अकृतव्रण को अपने साथ में लेकर परमाधिक प्रसन्नता से संयुत होकर उसी समय में परशुराम वहाँ से सिद्धों के वन में स्थित आश्रम को चले गये थे ।३४। महान् विशाल मन वाले राम उस आश्रम में समवस्थित होकर जहाँ कि बहुत से ब्राह्मण भी उनके साथ में थे हे नृप ! फिर वे तप करने के लिए मन में सङ्कल्प धारण करने वाले हो गये थे ।३५।

सरथं सहसाहं च धनुः संहननानि च ।
पुनरागमसंकेतं कृत्वा प्रास्थापयत्तदा ।।३६
ततः स सर्वतीर्थेषु चक्रे स्नानमतंद्रितः ।
परीत्य पृथिवीं सर्वां पितृदेवादिपूजकः ।।३७
एवं क्रमेण पृथिवीं त्रिवारं भृगुनन्दनः ।
परिचक्राम राजेंद्र लोकवृत्तमनुव्रतः ।।३८
ततः स पर्वतश्रेष्ठं महेंद्रं पुनरप्यथ ।
जगाम तपसे राजन्ब्राह्मणैरभिसंवृतः ।।३९
स तस्मिंश्चिररात्राय मुनिसिद्धनिषेविते ।
निवासमात्मनो राजन्कल्पयामास धर्मवित् ।।४०
मुनयस्तं तपस्यंतं सर्वक्षेत्रनिवासिनः ।

द्रष्टुकामाः समाजग्मुर्नियता ब्रह्मवादिनः ।। ४१
ददृशुस्ते मुनिगणास्तपस्यासक्तमानसम् ।
क्षात्रं कक्षमशेषेण दग्ध्वा शांतमिवानलम् ।।४२

उस समय में परशुरामजी ने रथ के सहित सहसाह् को और धनुष तथा समस्त आयुधों को पुनः आवश्यकता पड़ने पर आगमन का संकेत करके वहाँ से प्रस्थापित कर दिया था ।३६। इसके पश्चात् उन्होंने सभी तीर्थों में अतन्द्रित होकर स्नान किया था और पितृगण तथा देवों का पूजन रीति से हे राजेन्द्र ! भृगुनन्दन ने लोक व्रत का अनुवर्त्तन करते हुए तीन बार सम्पूर्ण पृथ्वी का परिक्रमण किया था ।३८। हे राजन् ! इसके अनन्तर उन्होंने ब्राह्मणों से अभिसंवृत होकर फिर तपस्या करने के लिए महेन्द्र पर्वत पर जो कि पर्वतोंमें परमश्रेष्ठ था आगमन किया था ।३६। हे राजन् ! धर्म के ज्ञाता उन्होंने मुनिगण और सिद्ध-समुदायों के द्वारा सेवित उस पर्वत पर अधिक समय तक अपने निवास करने का विचार कर लिया था ।४०। फिर वहाँ पर समस्त क्षेत्रों के निवासी नियत और ब्रह्मवादी मुनियों ने तपश्चर्या करने वाले उन भार्गवेन्द्र के दर्शन करने की कामना रखकर वहाँ पर समागमन किया था ।४१। उन मुनिगणों ने तपश्चर्या में समासक्त उनका पूर्ण रूप से क्षत्रियों के कक्ष को दग्ध करके परम शान्त अग्नि की भाँति दर्शन किया था ।४२।

अथ तानागतान्दृष्ट्वा मुनीन्दिव्यांस्तपोमयान् ।
अर्घ्यादिसमुदाचारैः पूजयामास भार्गवः ।।४३
कृतकौशलसंप्रश्नपूर्वकाः सुमहोदयाः ।
तेषां तस्य च संवृत्ताः कथाः पुण्या मनोहराः ।।४४
ततस्तेषामनुमते मुनीनां भावितात्मनाम् ।
हयमेधं महायज्ञमाहर्तुमुपचक्रमे ।।४५
संभृत्य सर्वसंभारानौर्वाद्यैः सहितो नृप ।
विश्वामित्रभरद्वाजमार्कंडेयादिभिस्तथा ।।४६
तेषामनुमते कृत्वा काश्यपं गुरुमात्मनः ।
वाजिमेधं ततो राजन्नाजहार महाक्रतुम् ।।४७

तस्याभूत्काश्यपोऽध्वर्यु रुद्गाता गौतमो मुनिः ।
विश्वामित्रोऽभवद्धोता रामस्य विदितात्मनः ॥४८

ब्रह्मत्वमकरोत्तस्य मार्कण्डेयो महामुनिः ।
भरद्वाजाग्निवेश्याद्या वेदवेदांगपारगाः ॥४६

भार्गवेन्द्र मुनि ने जिस समय में उन समस्त परम दिव्य तप से परिपूर्ण मुनियों को वहाँ पर समागत हुए देखा था तो उन्होंने अर्घ्य आदि सब उपचारों के द्वारा सहर्ष उनका अर्चन किया था ।४३। उन समस्त महोदयों ने सर्व प्रथम तो क्षेम-कुशल का प्रश्नोत्तर किया था फिर उन सबकी और भार्गवेन्द्र की परस्पर में परम पुण्यमय मनोहर कथाएँ हुई थीं ।४४। इसको उपरान्त भावित आत्मा वाले उन्हें मुनियों की अनुमति से भृगुनन्दन ने महायज्ञ के आहरण करने का उपक्रम दिया था ।४५। इसके अनन्तर हे नृप ! और्वादि तथा विश्वामित्र—भरद्वाज और मार्कण्डेय आदि के सहित यज्ञ के उपयुक्त समस्त संभारों का संग्रह किया गया था ।४६। फिर उन्हीं सबकी अनुमति हो जाने पर भृगुनन्दन ने काश्यप को अपना गुरु बनाकर हे राजन् ! फिर वाजिमेध महान क्रतु का समाहरण किया था ।४७। विदित आत्मा वाले भृगुनन्दन के गुरु तो काश्यप हुए थे और उद्गाता गौतम मुनि हुए थे और उस यज्ञ में विश्वामित्र ऋषि होता हुए थे ।४८। महामुनि मार्कण्डेय ने वहाँ पर ब्रह्मा के पद को ग्रहण किया था । भरद्वाज-अग्निवेश्य आदि जो भी वेदों तथा वेदों के अङ्ग शास्त्रों के पारगामी प्रकाण्ड पण्डित थे ।४६।

मुनयश्चक्रुरन्यानि कर्माण्यन्ये यथाक्रमम् ।
पुत्रैः शिष्यैः प्रशिष्यैश्च सहितो भगवान्भृगुः ॥५०

सादस्यमकरोद्राजन्नन्यैश्च मुनिभिः सह ।
स तैः सहाखिलं कर्म समाप्य भृगुपुंगवः ॥५१

ब्रह्माणं पूजयामास यथावद्गुरुणा सह ।
अलंकृत्य यथान्यायं कन्यां रूपवतीं महीम् ॥५२

पुरनामशतोपेतां समुद्रांबरमालिनीम् ।
आहूय भृगुशार्दूलः सशैलवनकाननाम् ॥५३

काश्यपाय ददौ सर्वामृते तं शैलमुत्तमम् ।
आत्मनः सन्निवासार्थं त राम: पर्यकल्पयत् ।।५४
ततः प्रभृति राजेंद्र पूजयामास शास्त्रतः ।
हिरण्यरत्नवस्त्राश्वगोगजान्नादिभिस्तथा ।।५५
पुरा समाप्य यज्ञांते तथा चावभृथाप्लुतः ।
चक्रे द्रव्यपरित्यागं तेषामनुमते तदा ।।५६

इन समस्त मुनियों ने तथा अन्यों ने क्रम के अनुसार अन्यान्य जो भी कर्म उस यज्ञशाला में थे उनको किया था । उस यज्ञ में भगवान् भृगु भी अपने पुत्रों-शिष्यों और प्रशिष्यों के सहित पधारे थे । उन्होंने अन्यान्य मुनियों के साथ हे राजन् ! यज्ञ की सदस्यता की थी अर्थात् सब सदस्य बन गये थे और उन सबके साथ मिलकर भृगुपुङ्गव परशुरामजी ने उस सम्पूर्ण कर्म को सुसम्पन्न किया था ।५०-५१। जब सम्पूर्ण कर्म समाप्त हो गया था यथा रीति अपने गुरुदेव के ही साथ ब्रह्माजी का पूजन किया था । फिर रूप लावण्य वाली मही कन्या को महामूल्यवान् आभूषणों से समलंकृत किया था ।५२। फिर उस मही कन्या को जो सहस्रों पुरों और ग्रामों से समन्वित एवं सागरों और अम्बर की माला वाली थी तथा उसमें अनेकों शैल-वन और कानन भी थे । उन मुनि शार्दूल ने उसको अपने समीप में बुला लिया था ।५३। फिर सम्पूर्ण उसको काश्यप मुनि को दे दिया था केवल उस उत्तम महेन्द्र पर्वत को नहीं दिया था जिस पर वे स्वयं निवास किया करते थे क्यों कि परशुरामजी ने उस पर्वत को अपने ही निवास करने के लिए कल्पित कर लिया था ।५४। तभी से लेकर हे राजेन्द्र ! शास्त्रानुसार सुवर्ण-रत्न-वस्त्र-अश्व-गौ-गज आदि के द्वारा उसका पूजन किया था । पहिले इस सब कर्म को समाप्त करके फिर यज्ञ के अवसान समय में वे यज्ञान्त अवभृथ स्नान से आप्लुत हुए थे और उसी अवसर पर उन समस्त महा मुनियों के के अनुमति से फिर द्रव्य का परित्याग कर दिया था ।५५-५६।

दत्त्वा च सर्वभूतानामभयं भृगुनन्दनः ।
तत्रापि पर्वतवरे तपश्चर्तुं समारभत् ।।५७
ततस्तं समनुज्ञाय सदस्या ऋत्विजस्तथा ।
ययुर्यथागतं सर्वे मुनयः शंसितव्रताः ।।५८

गतेषु तेषु भगवानकृतव्रणसंयुत: ।
तपो महत्समास्थाय तत्रैव न्यवसत्सुखी ।।५९
काश्यपी तु ततो भूमिर्जननाथा ह्यनेकश: ।
सर्वदु:खप्रशांत्यर्थं मारीचानुमतेन तु ।।६०
तत्र दीपप्रतिष्ठाख्यव्रतं विष्णुमुखोदितम् ।
चचार धरणीं सम्यक् दुखै:र्मुक्ताऽभवच्च सा ।।६१
इत्येष जामदग्न्यस्य प्रादुर्भाव उदाहृत: ।
यस्मिञ्श्रुते नर: सर्वपातकैर्विप्रमुच्यते ।।६२
प्रभाव: कार्त्तवीर्यस्य लोके प्रथिततेजस: ।
प्रसंगात्कथित: सम्यङ्नातिसंक्षेपविस्तर: ।।६३

इसके पश्चात् भृगुनन्दन ने समस्त प्राणियों के लिए अभय का दान दे दिया था और वहाँ ही उस पर्वत पर तपस्या करने का आरम्भ कर दिया था ।५७। इसके अनन्तर जो भी यज्ञ में समागत सदस्य तथा ऋत्विज थे उन्होंने एवं शंसित व्रतों वाले मुनियों ने सभी ने जैसे-जैसे जहाँ से वहाँ आगमन किया वैसे ही विदा होकर चले गये थे ।५८। उन सबके चले जाने पर भगवान ने अकृतव्रण से संयुत होकर महान तप में समास्थित होकर सुख से सम्पन्न उसी स्थान पर निवास किया करते थे ।५९। इसके पश्चात् जानना था काश्यपी भूमि ने अनेक प्रकार के समस्त दु:खों की प्रशान्ति के लिए मारीच की अनुमति से एक व्रत किया था ।६०। वहाँ पर दीप प्रतिष्ठा नाम वाला व्रत जो कि भगवान विष्णु के मुख से कहा गया था उसको धरणी ने भली भाँति किया था और फिर समस्त दु:खों से मुक्त हो गयी थी ।६१। वह भगवान जामदग्न्य का प्रादुर्भाव सब बता दिया गया है जिसके श्रवण करने पर मनुष्य समस्त पातकों से मुक्त हो जाया करता है ।६२। अपरिमित तेज वाले कार्तवीर्य का लोक में जो प्रबल प्रभाव था वह भी प्रसङ्ग से दिया गया था जो न तो अति संक्षिप्त था और न विशेष विस्तृत ही था ।६३।

एवंप्रभाव: स नृप: कार्त्तवीर्योऽभवद्भुवि ।
न तादृश: पुमान्कश्चिद्भावी भूतोऽथवा श्रुत: ।।६४

दत्तात्रेयाद्वरं वव्रे मृतिमुत्तमपूरुषात् ।
यत्पुरा सोऽगमन्मुक्तिं रणे रामेण घातितः ॥६५
तस्यासीत्पंचमः पुत्रः प्रख्यातो यो जयध्वजः ।
पुत्रस्तस्य महाबाहुस्तालजंघोऽभवन्नृप ॥६६
अभूत्तस्यापि पुत्राणां शतमुत्तमधन्विनाम् ।
तालजंघाभिधा येषां वीतिहोत्रोऽग्रजोऽभवत् ॥६७
पुत्रैः सवीतिहोत्राद्यैर्हैहयाद्यैश्च राजभिः ।
कालं महांतमवसद्धिमाद्रिवनगह्वरे ॥६८
यः पूर्वं रामबाणेन द्रवन्पृष्ठेऽभिताडितः ।
तालजंघोऽपतद्भूमौ मूर्छितो गाढवेदनः ॥६९
ददर्श वीतिहोत्रस्तं द्रवन्दैववशादिव ।
रथमारोप्य वेगेन पलायनपरोऽभवत् ॥७०

वह नृप कार्त्तवीर्य इस भूमण्डल में इस प्रकार के प्रभाव वाला हुआ था कि उस प्रकार का कोई भी पुरुष न कभी हुआ और न भविष्य में भी होगा तथा न कभी सुना ही गया है ।६४। उसने दत्तात्रेय मुनीन्द्र से यह वरदान प्राप्त किया था कि उसकी मृत्यु किसी महान उत्तम पुरुष से होवे । रण से वह परशुरामजी के द्वारा निहत होकर पहिले मुक्ति को प्राप्त हो गया था ।६५। उस राजा का पाँचवां पुत्र प्रख्यात था जिसका नाम जयध्वज था । हे नृप ! उसका पुत्र महाबाहु तालजङ्घ हुआ था ।६६। उसके भी उत्तम धनुर्धारी सौ पुत्र हुए थे । उन सबके नाम तालजङ्घ था उनमें वीतिहोत्र सबमें बड़ा भाई था ।६७। वह वीतिहोत्र प्रभृति पुत्रों के तथा हैहय वंशज नृपों के सहित उस हिमाद्रि पर्वत के वन गह्वर में बहुत लम्बे समय तक उसने निवास किया था ।६८। जो पहिले राम के बाण के द्वारा भागता हुआ भी पृष्ठ भाग में प्रताड़ित हो गया था । फिर वह तालजङ्घ गहरी वेदना से युक्त होकर मूर्च्छा को प्राप्त हो गया था और भूमि पर गिर गया था ।६९। भाग्यवश उसको भागते हुए वीतिहोत्र ने देखा था । बड़े ही वेग से उसको रथ पर समारोपित करके वह भाग जाने में तत्पर हो गया था ।७०।

ते तत्र न्यवसन्सर्वे हिमाद्रौ भयपीडिताः ।
कृच्छ्रं महांतमासाद्य शाकमूलफलाशनः ॥७१
ततः शांति गते रामे तपस्यासक्तमानसे ।
तालजंघः स्वकं राज्यं सपुत्रः प्रत्यपद्यत ॥७२
सन्निवेश्य पुरीं भूयः पूर्ववन्नृपसत्तमः ।
वसंस्तदा निजं राज्यमपालयदरिंदमः ॥७३
सुपुत्रः सानुगबलः पूर्ववैरमनुस्मरन् ।
अभ्याययौ महाराज तालजंघः पुरं तव ॥७४
चतुरंगबलोपेतः कंपयन्निव मेदिनीम् ।
रुरोदाभ्येत्य नगरीमयोध्यां स महीपतिः ॥७५
ततो निष्क्रम्य नगरात्फल्गुतंत्रोऽपि ते पिता ।
युयुधे तैर्नृपैः सर्वैर्वृद्धोऽपि तरुणो यथा ॥७६
निहतानेकमातंगतुरंगरथसैनिकः ।
शत्रुभिर्निर्जितो वृद्धः पलायनपरोऽभवत् ॥७७

वे सभी भागते हुए आकर भय से बहुत पीड़ित हो गये थे और हिमाद्रि पर्वत में बस गये थे। उन सबको महान कष्ट प्राप्त हुआ था और वहाँ पर वे सब शाक-मूल और फलों का अशन करने वाले हुए थे।७१। जब वहाँ पर परशुराम परम शान्ति को प्राप्त हो जाने पर केवल तपस्या में ही आसक्त मन वाले हो गये थे और फिर उनका कोई भी भय नहीं रहा था तो तालजङ्घ ने अपने पुत्रों के सहित अपना राज्य कर लिया था।७२। उस श्रेष्ठ राजा ने फिर पूर्व की ही भाँति अपनी नगरी को सन्निवेशित करके उस समय में वहीं पर निवास करते हुए उस अरिन्दम ने अपने राज्य का परिपालन किया था।७३। हे महाराज ! सुन्दर पुत्र वाले और अपने अनुचरों तथा सेना से युक्त होकर उस तालजङ्घ ने पूर्व वैर का अनुस्मर करके वह तालजङ्घ आपके पुर में अभ्यागत हो गया था।७४। वह चतुरङ्गिणी सेना से संयुत होकर भूमि को कँपाता हुआ जैसे हो चला था। जब वह अयोध्या नगरी में पहुँचा तो वह राजा रोने लग गया था।७५। इसके पश्चात् आपके पिता के पास बहुत कम साधन थे तो भी वह नगर से निकल

आये थे और उन समस्त नृपों के साथ वृद्ध होते हुए भी तरुण पुरुष के ही समान उसने घोर युद्ध किया था ।७६। उसके बहुत से हाथी-अश्व-रथ और सैनिक जब निहत हो गये थे तो वह शत्रुओं के द्वारा निर्जित हो गया था और फिर वह वृद्ध वहां से भागने लग गया ।७७।

त्यक्त्वा स नगरं राज्यं सकोशबलवाहनम् ।
अंतर्वत्न्या च ते मात्रा सहितो वनमाविशत् ।।७८
तत्र चौर्वाश्रमोपांते निवसन्नचिरादिव ।
शोकामर्षसमाविष्टो वृद्धभावेन च स्वयम् ।।७९
विलोक्यमानो मात्रा ते बाष्पगत्गदकंठया ।
अनाथ इव राजेन्द्र स्वर्गलोकमितो गतः ।।८०
ततस्ते जननी राजन्दुःखशोकसमन्विता ।
चितामारोपयद्भर्तू रुदती सा कलेवरम् ।।८१
अनशनादिदुःखेन भर्त्तुर्व्यसनकर्शिता ।
चकाराग्निप्रवेशाय सुदृढां मतिमात्मनः ।।८२
और्वस्तदखिलं श्रुत्वा स्वयमेव महामुनि ।
निर्गत्य चाश्रमात्तां च वारयन्निदमब्रवीत् ।।८३
न मर्त्तव्यं त्वया राज्ञि सांप्रतं जठरे तव ।
पुत्रस्तिष्ठति सर्वेषां प्रवरश्चक्रवर्त्तिनाम् ।।८४

उस वृद्ध नृप ने अपना सम्पूर्ण राज्य-नगर-कोष-बल समस्त वाहनों को छोड़कर गर्भवती तुम्हारी माता को साथ में लेकर वन में प्रवेश कर कर लिया था ।७८। वहाँ वन में और्व मुनि के आश्रम के समीप में अल्प समय तक ही उसने निवास किया था और वह स्वयं वृद्धता के कारण से बहुत ही अधिक शोक तथा अमर्ष से समाविष्ट हो गया था । तुम्हारी माता उसको देख रही थी और उसके नेत्रों से अश्रुपात हो रहा था उसका कण्ठ गद्‌गद हो गया था । हे राजेन्द्र ! वह वृद्ध नृप एक अनाथ के ही समान यहाँ से स्वर्गलोक में चल बसा था ।७९-८०। इसके अनन्तर हे राजन् ! तुम्हारी माता बिचारी पति वियोग के महा दुःख और शोक से समन्वित हो गयी थी । फिर करुण क्रन्दन करती हुई उसने स्वामी के मृत शरीर को चिता

पर समारोपित कर दिया था ।८१। पति के मृत हो जाने पर उसने कुछ भी खाया नहीं था—शोक हृदय में बैठा ही था—ऐसे दुःखों से अपने स्वामी से वियोग के दुःख से वह बहुत कर्शित हो गयी थी। अतः उसने भी अपने आपको भी अग्नि में पति के ही शव के साथ प्रवेश कर सती हो जाने का सुदृढ़ निश्चय कर लिया था ।८२। और्व महामुनि ने यह सम्पूर्ण समाचार सुना तो वे महामुनि स्वयं ही अपने आश्रम से बाहिर निकलकर आ गये थे और उससे यह वचन कहा था ।८३। हे राज्ञि ! तुमको इस समय में पति के साथ प्राणत्याग नहीं करना चाहिए कारण यह है कि तुम्हारे उदर में पुत्र स्थित है जो कि समस्त चक्रवर्त्तियों में परम श्रेष्ठ होगा ।८४।

इति तद्वचनं श्रुत्वा माता तव मनस्विनी ।
विरराम मृतेस्तां तु मुनिः स्वाश्रममानयत् ।
ततः सा सर्वदुःखानि नियम्य त्वन्मुखांबुजम् ।।८५
दिदृक्षुराश्रमोपांते तस्यैव न्यवसत्सुखम् ।
सुषाव च ततः काले सा त्वामौर्वाश्रमे तदा ।।८६
जातकर्मादिकं सर्वं भवतः सोऽकरोन्मुनिः ।
और्वाश्रमे विवृद्धश्च भवांस्तेनानुकंपितः ।।८७
त्वयैव विदितं सर्वमतः परमरिंदम ।
एवं प्रभावो नृपतिः कार्त्तवीर्योऽभवद्भुवि ।।८८
व्रतस्यास्य प्रभावेण सर्वलोकेषु विश्रुतः ।
यद्वंशजैर्जितो युद्धे पिता ते वनमाविशत् ।।८९
तद्वृत्तांतमशेषेण मया ते समुदीरितम् ।
एतच्च सर्वमाख्यातं व्रतानामुत्तमं तव ।।९०
समन्त्रतन्त्रं लोकेषु सर्वलोकफलप्रदम् ।
न ह्यस्य कर्त्तुर्नृपतेः पुरुषार्थचतुष्टये ।।९१

तुम्हारी मनस्विनी माता ने इस उस मुनि के वचन का श्रवण किया था तो फिर वह सती होकर दग्ध होने से कार्य से विरत हो गयी थी और फिर उसको वह मुनि अपने आश्रम में ले आये थे। इसके पश्चात् उसने सब दुःखों की ओर से अपने मन को नियमित कर लिया था तथा उस गर्भस्थ

अपने बालक के मुख कमल को देखने की इच्छा वाली होकर उसी आश्रम के समीप में सुख पूर्वक निवास कर रही थी ।८५। जब प्रसव काल उपस्थित हुआ तो उसने उसी और्व मुनि के आश्रम में प्रसव किया था ।८६। उसी मुनि ने आपका समस्त जातकर्म आदि संस्कार किया था और आप उसी मुनि की कृपा के भाजन होते हुए और्वाश्रम में ही पालित होकर बड़े हुए हैं ।८७। हे अरिन्दम ! इसके पश्चात् जो भी कुछ हुआ है वह आपको सब ज्ञात ही है । इस प्रकार के प्रभाव वाला राजा कार्त्तवीर्य इस भूमण्डल पर हुआ था ।८८। इसी व्रत के प्रभाव से वह लोकों में प्रख्यात हुआ है । जिसके वंश में समुपत्न होने वालों के द्वारा आपके पिता को युद्ध में जीत लिया गया है और वन में चले गये थे ।८९। उसका सम्पूर्ण वृत्तान्त मैंने आपको कहकर सुना दिया है और यह सब व्रतों में उत्तम व्रत मैंने आपको बतला दिया है ।९०। यह ऐसा व्रत है कि लोकों में मन्त्रों और तन्त्रों के सहित सब ही लौकिक फल को प्रदान कर देने वाला है । जो इस व्रत को राजा किया करता है उसको चारों (धर्म-अर्थ—काम –मोक्ष) पुरुषार्थों की प्राप्ति हो जाया करती है ।९१।

भवत्यभीप्सितं किंचिद्दुर्लभं भुवनत्रये ।
संक्षेपेण मयाख्यातं व्रतं हैहयभूभुजः ।
जामदग्न्यस्य च मुने किमन्यत्कथयामि ते ॥९२
जैमिनिरुवाच—
ततः स सगरो राजा कृतांजलिपुटो मुनिम् ॥९३
उवाच भगवन्नेतत्कर्तुं मिच्छाम्यहं व्रतम् ।
सम्यक्तमुपदेशेन तत्रानुज्ञां प्रयच्छ मे ॥९४
कर्मणानेन विप्रर्षे कृतार्थोऽस्मि न संशयः ।
इत्युक्तस्तेन राज्ञा तु तथेत्युक्त्वा महामुनिः ॥९५
दीक्षयामास राजानं शास्त्रोक्तेनैव वर्त्मना ।
स दीक्षितो वसिष्ठेन सगरो राजसत्तमः ॥९६
द्रव्याण्यानीय विधिवत्प्रचचार शुभव्रतम् ।
पूजयित्वा जगन्नाथं विधिना तेन पार्थिवः ॥९७

समाप्य च यथायोग्यमनुज्ञाय गुरुं ततः ।
प्रतिज्ञामकरोद्राजा व्रतमेतदनुत्तमम् ।।९८
आजीवांतं धरिष्यामि यत्नेनेति महामतिः ।
अथानुज्ञाप्य राजानं वसिष्ठो भगवानृषिः ।।९९
सन्निवर्त्यानुगच्छंतं प्रजगाम निजाश्रमम् ।।१००

फिर इन तीनों भुवनों में कुछ भी ऐसी अभीप्सित वस्तु नहीं है जिसका प्राप्त करना दुर्लभ हो अर्थात् सभी कुछ प्राप्त हो जाया करता है । यह हैहय राजा का व्रत मैंने संक्षेप से कह दिया है और अब जमदग्नि के पुत्र परशुराम मुनि के विषय में मैं आपको क्या बतलाऊँ ? ।९२। जैमिनि ने कहा—इसके अनन्तर राजा सगर अपने हाथों की अञ्जलि को जोड़कर मुनिवर से कहने लगा था ।९३। उसने कहा—हे भगवन् ! मैं इस व्रत के करने की इच्छा करता हूँ सो आप भली भाँति उपदेश के द्वारा इसके करने में मुझे अपनी अनुज्ञा प्रदान कीजिए ।९४। हे विप्रर्षे ! इस कर्म से मैं कृतार्थ हो गया हूँ—इसमें लेशमात्र भी संशय नहीं है । जब राजा के द्वारा इस रीति से प्रार्थना की गयी तो उस मुनि ने भी ऐसा ही होगा—यह कह दिया था । फिर उस मुनि ने शास्त्रोक्त मार्ग के द्वारा उस राजा को दीक्षा दी थी और श्रेष्ठ राजा सगर वसिष्ठ मुनि के द्वारा दीक्षित होगया था ।९५-९६। फिर समस्त द्रव्यों को मंगा कर विधि-विधान के साथ उस शुभ व्रतका समाचरण किया था । राजा ने उसी विधि से भगवान् जगन्नाथ का पूजन किया ।९७। यथा योग्य उसको सङ्ग समाप्त करके फिर अपने गुरुदेव की आज्ञा प्राप्त की थी और उस राजा ने उस सर्वोत्तम व्रत के करने की दृढ़ प्रतिज्ञा की थी ।९८। महामति उस नृप ने यही प्रतिज्ञा की थी कि मैं इस व्रत को जब तक मेरा जीवन रहेगा तब तक धारण करूँगा और यत्न पूर्वक करता रहूँगा । फिर भगवान् वसिष्ठ ऋषि ने उस राजा को अपनी आज्ञा प्रदान कर दी थी ।९९। फिर अपने पीछे अनुगमन करने वाले राजा को वापिस लौटाकर वसिष्ठ जी अपने आश्रम को चले गये थे ।१००।

सगर-प्रतिज्ञा पालन

जैमिनिरुवाच—

गते तस्मिन्मुनिवरे सगरो राजसत्तमः ।
अयोध्यायामधिवसन्पालयामास मेदिनीम् ॥१
सर्वसंपद्‌गणोपेतः सर्वधर्मार्थतत्त्ववित् ।
वयसैव स बालोऽभूत्कर्मणा वृद्धसंमतः ॥२
तथापि न दिवा भुंक्ते शेते वा निशि संस्मरन् ।
सुदीर्घं निःश्वसित्युष्णमुद्विग्नहृदयोऽनिशम् ॥३
श्रुत्वा राजा स्वराज्यं निजगुरुमवजित्यारिभिः
संगृहीतं मात्रा सार्द्धं प्रयातं वनमतिगहनं स्वर्गतं
तं च तस्मिन् ।
शोकाविष्टः सरोषं सकलरिपुकुलोच्छित्तये
सत्प्रतिज्ञश्चक्रे सद्यः प्रतिज्ञां परिभवमनलं
सोढुमिक्ष्वाकुवंश्यः ॥४
स कदाचिन्महीपालः कृतकौतुकमंगलः ।
रिपुं जेतुं मनश्चक्रे दिशश्च सकलाः क्रमात् ॥५
अनेकरथसाहस्रैर्गजाश्वरथसैनिकैः ।
सर्वतः संवृतो राजा निश्चक्राम पुरोत्तमात् ॥६
शत्रून्हंतुं प्रतस्थे निजबलनिवहेनोत्पतद्‌भिस्तुरंगै-
र्नासित्वोर्मिजालाकुलजलनिधिनिभेनाथ षाडंगिकेन ।
मत्तैर्मातंगयूथैः सकुलगिरिकुलेनैव भूमंडलेन ।
श्वेतच्छत्रध्वजौघैरपि शशिसुकराभातखेनैव सार्द्धम् ॥७

जैमिनि मुनि ने कहा—उस मुनिवर के चले जाने पर श्रेष्ठ नृप सगर ने अयोध्या पुरी में अधिवास करते हुए इस मेदिनी का परिपालन किया था ।१। वह सभी प्रकार की सम्पदाओं से संयुत था और सम्पूर्ण धर्म के तात्विक अर्थों का ज्ञाता था । वह अवस्था से ही बालक था किन्तु उसके

कर्म ऐसे थे कि वह वृद्धों के सम्मत थे ।२। वह दिन में भोजन नहीं करता है अथवा रात्रि में शयन भी नहीं किया करता है और स्मरण करता हुआ बहुत लम्बी श्वास लिया करता है जो कि बहुत गर्म होती हैं तथा उसका हृदय रात दिन अत्यन्त ही उद्विग्न रहता है ।३। जब राजा ने यह श्रवण किया था कि अपने गुरु को अवजित करके अपना सम्पूर्ण राज्य शत्रुओं ने ले लिया है । वह पिता पराजित होकर मेरी माता के सहित बहुत ही गहन वन में प्रयाण कर गये हैं और वहाँ पर ही स्वर्गलोक के प्रवासी हो गये हैं । उस पर इक्ष्वाकु के वंश में समुत्पन्न उसने महान् क्रोध से युक्त होकर तथा शोक से संविष्ट होते हुए सत्प्रतिज्ञा वाले ने समस्त शत्रुओं के कुल का उच्छेदन करने के लिये तुरन्त ही प्रतिज्ञा की थी और इस परिभव की थी और इस परिभव की अग्नि को कठिनाई से सहन किया था ।४। फिर किसी समय में उस महीपाल ने मङ्गल कौतुक करके सब दिशाओं में क्रम से जाकर शत्रु के जीतने का मन में विचार किया था ।५। वह राजा अनेकों सहस्र रथ-अश्व-गज और सैनिकों से सब ओर से संवृत होकर अपने उत्तम-पुर से निकल दिया था ।६। उस राजाने शत्रुओं को जीतने के लिए प्रस्थान कर दिया था । जिस समय में वहाँ से चला है उस समय में उसकी सेनाओं का ऐसा विशाल समुदाय उसके साथ में था कि उसमें जो अश्व थे वे ऊपर की ओर उछालें मार रहे थे कि ऐसा प्रतीत होता था मानों अत्युच्च तरङ्गों से समाकुल जलनिधि ही होवे । वह सेना छओं अङ्गों से युक्त थी । मत्त हाथियों के समूह ऐसे थे मानों भूमण्डल कुलगिरियों के समुदाय से संयुत है । उसकी सेनामें श्वेत ध्वजाओं के समूह आकाश में फहरा रहे थे जो ऐसा आभास हो रहा था कि पूर्ण अन्तरिक्ष चन्द्रमा की किरणों से श्वेत चमक रहा हो । ऐसी महान् विशाल सेना को साथ लेकर ही वह चला था ।७।

तस्याग्रे सरसैन्ययूथचरणप्रक्षुण्णशैलोच्चयः
क्षोदापूरितनिम्नभागमवनीपालस्य संयास्यतः ।
प्रत्येकं चतुरंगसैन्यनिकरप्रक्षोदसंभूतरेणुप्रावृतिरुत्स्थली
समभवद्भूमिस्तु तत्रानिशम् ।।८
निघ्नन्दृप्ताननेकान्द्विपतुरगरथव्यूहसंभिन्नवीरान्सद्यः
शोभां दधानोऽसुरनिकरचमूंनिघ्नतश्चन्द्रमौलिः ।
दूरादेवाभिशंसन्नरिनगरनिरोधेषु कर्माभिषंगे
तेषां शीघ्रापयानक्षणमभिदिशति प्राणिधैर्यं विधत्ते ।।९

विजिगीषुर्दिशो राजा राज्ञो यस्याभियास्यति ॥१०
विषयं स नृपस्तस्य सद्यः प्रणतिमेष्यति ।
विजित्य नृपतीन्सर्वान्कृत्वा च स्वपदानुगान् ॥११
संकेतगामिनः कांश्चित्कृत्वा राज्ये न्यवर्त्तत ।
एवं स विसरन्दिक्षु दक्षिणाभिमुखो नृपः ॥१२
स्मरन्पूर्वकृतं वैरं हैहयानभ्यवर्त्तन ।
ततस्तस्य नृपैः सार्द्धं समग्ररथकुंजरैः ॥१३
बभूव हैहयैर्वीरैः संग्रामो रोमहर्षणः ।
राज्ञां यत्र सहस्राणि स बलानि महाहवे ॥१४

जिस समय में वह राजा सम्प्रयाण कर रहा था उस समय में उसकी जो सबसे आगे चलने वाली सेना के समुदायों के चरणों से शैलों के उच्च-भाग क्षुण्ण हुए थे उनके क्षोदों से निम्न भाग जो भूमि में थे वे भर गये थे और चतुरङ्गिणी सेना के हाथी-अश्व-रथ और पैदल सैनिकों के हर एक के एक के चरणों से जो भूमि खुदकर प्रक्षोद रेणु उठी थी उससे ऊँचे स्थल ढक गये थे। इस तरह से वह भूमि निरन्तर ऐसी ही होगयी थी।८। अनेक दृप्त अर्थात् दर्प से परिपूर्ण हाथी-घोड़े और रथों के व्यूह से संभिन्न वीरों को निहनन करने वाले उसकी शोभा तुरन्त ही असुरों के समूहों की सेनाओं का हनन करने वाले भगवान् शिव की शोभा को धारण वह नृप कर रहा था। उनके कर्मों के अभिषङ्ग होने पर दूर से ही शत्रुओं के नगर के विरोधों में ऐसा अभिशंसन करते हुए कि यहाँ से शीघ्र ही कहीं से भाग जाने के क्षणों का निर्देश करता है और प्राणियों के धैर्य का किया करता है।९। वह राजा जिसको सब दिशाओं में विजय प्राप्त करने की इच्छा है जिस राजा के ऊपर अभिमान करेगा।१०। वह राजा उसके देश को प्रणति को प्राप्त करा देगा। उस नृप ने सभी नृपतियों को जीतकर उनको अपने चरणों का अनुचर बना लिया था।११। उसे महान् वीर राजा ने कुछ नृपों की सङ्केत पर गमन करने वाले बनाकर उनको अपने ही राज्य पर भेज दिया था अर्थात् अपनी आज्ञा के इशारे वाले होना उन्होंने स्वीकार कर लिया था तो उनको राज्य पर बिठा दिया था। इस रीति से विसरण सब दिशाओं में करके फिर राजा दक्षिण की ओर अभिमुख हुआ था।१२। उस राजा ने अपने साथ पूर्व में की हुई शत्रुता स्मरण करके हैहय राजाओं के ऊपर

आक्रमण किया था। फिर उन सबके साथ जो पूर्णतया रथों और हाथियों से संयुत थे इसका महान् युद्ध हुआ था।१३। उन हैहय वीरों के साथ उसका बड़ा ही रोमाञ्चकारी भीषण युद्ध हुआ था जिस युद्ध में सहस्रों राजा थे और बड़ी विशाल सेनाऐं भी थीं।१४।

निजघान महाबाहुः संक्रुद्धः कोसलेश्वरः ।
जित्वा हैहयभूपालान्भंक्त्वा दग्ध्वा च तत्पुरीम् ॥१५
निःशेषशून्यामकरोद्वैरांतकरणो नृपः ।
समग्रबलसंमर्द्दप्रमृष्टाशेषभूतलः ॥१६
हैहयानामशेषं तु चक्रे राज्यं रजः समम् ।
राज्यं पुरीं चापहाय भ्रष्टैश्वर्या हृतत्विषः ॥१७
राजानो हतभूयिष्ठा व्यद्रवंत समंततः ।
अभिद्रुत्य नृपांस्तांस्तु द्रवमाणान्महीपतिः ॥१८
जघान सानुगान्मत्तः प्रजाः क्रुद्ध इवांतकः ।
ततस्तान्प्रति सक्रोधः सगरः समरेऽरिहा ॥१९
मुमोचास्त्रं महारौद्रं भार्गवं रिपुभीषणम् ।
तेनोत्सृष्टातिरौद्रत्रिभुवनभयदप्रस्फुरद्भार्गवास्त्र-
ज्वालादंदह्यमानावशतनुततयस्ते नृपाः सद्य एव ।
वात्यवस्त्रावृत्तधूमोद्गमपटलतमोमुष्टदृष्टिप्रसारा
भ्रेमुर्भूपृष्ठलोठद्बहुलतमरजो गूढमात्रा मुहूर्त्तम् ॥२०
आग्नेयास्त्रप्रतापप्रतिहृतगतयोऽदृष्टमार्गाः समंता-
द्भूपाला नष्टसंघाः परवशतनवो व्याकुलीभूतचित्ताः ।
भीताः संत्युक्तवस्त्रायुधकवचविभूषादिका मुक्तकेशा
विस्पष्टोन्मत्तभावान्भृशतरमनुकुर्वंत्यग्रतः
शात्रवाणाम् ॥२१

उन सभी का निहनन महान् बाहुओं वाले कोसलेश्वर ने अत्यन्त क्रुद्ध होकर कर दिया था। फिर हैहय नृपों को जीतकर उनकी पुरी को तोड़-कर दग्ध कर दिया था।१५। वैर के अन्त करने वाले नृप ने उनकी पुरी

को पूर्णतया शून्य कर दिया था । वह राजा ऐसा बलवान् था कि उसने अपनी समग्र सेना के द्वारा मर्दन करके सबको भीड़ डाला था और सम्पूर्ण भूतल को प्रमृष्ट कर दिया था ।१६। उस राजा ने हैहयों के समस्त राज्य को धूल में मिला दिया था । जब वहाँ कुछ भी शेष न रहा तो वे सब अपने राज्य और पुरोको छोड़कर क्षीण कान्ति वाले और विनष्ट ऐश्वर्य वाले हो गये थे ।१७। जो राजा मरने से बच गये थे ऐसे बहुत से वहाँ चारों ओर भाग गये थे । उस महीपति ने जो भी वहाँ से भाग रहे थे उनको वेग से आगे बढ़कर निग्रहीत कर लिया था ।१८। इस मदोन्मत्त बलवान् नृप ने क्रुद्ध अन्तक जैसे प्रजाओं को मार दिया करता है वैसे ही इसने भी सबका संहार कर दिया था । समर में शत्रुओं के हनन करने वाले राजा सगर ने उन पर बड़ा भारी क्रोध किया था ।१९। फिर सगर नृप ने महान् रौद्र-शत्रुओं के लिये बहुत ही भीषण भार्गव अस्त्र को उन पर छोड़ा था । इस महास्त्र का बड़ा भारी सब पर प्रभाव पड़ा था । उसके छोड़े जाने पर जो कि अत्यन्त ही रौद्र था, वह तीनों भुवनों को भय देने वाला था । ऐसा प्रस्फुरण करता हुआ जो भार्गव अस्त्र था उसकी ज्वालाओं से दग्ध होते हुए और अवश शरीरों वाले वे समस्त नृपगण हो गये थे । इसके उपरान्त जो वायु-अस्त्र का प्रयोग करने से चारों ओर धूम के समूह ने उनको ऐसा घेर लिया था कि वहाँ पर घोर अन्धकार से उन की दृष्टि भी मुष्ट हो गयी थी अर्थात् देखने की शक्ति समाप्त हो गयी थी और मुहूर्त भर तक तो वे सब अधिक अन्धकार और रज से ढके हुए होकर भूमि के पृष्ठ पर लोटते हुए चक्कर काट रहे थे ।२०। शत्रुओं के सैनिकों की दशा उस समय में ऐसी हो गयी थी कि छोड़े हुए आग्नेयास्त्र के प्रताप से जिनकी गति प्रतिहत हो गयी है अर्थात् वे चलने में असमर्थ हो गये थे क्योंकि उनको उस समय में मार्ग दिखलाई नहीं दे रहा था—चारों ओर उन नृपों के सञ्ज नष्ट हो गये थे और उनके शरीर परवश हो गये थे तथा उनके चित्त व्याकुल हो गये थे । वे ऐसे भीत हो गये थे कि उन्होने अपने वस्त्र-आयुध-कवच और विभूषा आदि सबका त्याग कर दिया था-उनके मस्तकों के केश खुले हुए थे—वे सब अत्यन्त उन्मत्तों के ही भावों का उस समय में अनुकरण कर रहे थे ।२१।

विजित्य हैहयान्सर्वान्समरे सगरो बली ।
संक्षुब्धसागराकारः कांबोजानभ्यवर्तत ।।२२

नानावादित्रघोषाहृतपटहरवाकर्णनध्वस्तधैर्या:
सद्य: संत्यक्तराज्यस्वबलपुरपुरंध्रीसमूहा विमूढा: ।
कांबोजास्तालजंघा: शकयवनकिरातादय:
साकमेते भ्रेमुर्भूयैस्त्रभीत्या दिशि दिशि रिपवो
यस्य पूर्वापराधा: ॥२३

भीतास्तस्त नरेश्वरस्य रिपव: केचित्प्रता
पानलज्वालामुष्टहृशो विसृज्य वसति राज्यं च पुत्रादिभि: ।
द्विट्सैन्यै: समभिद्रुता वनभुवं संप्राप्य तत्रापि तेऽ-
स्तैमित्यं समुपागता गिरिगुहासुप्तोत्थितेन द्विप: ॥२४

तालजंघान्निहत्याजौ राजा सबलवाहनान् ।
क्रमेण नाशयामास तद्राज्यमरिकर्षण: ॥२५

ततो यवनकांबोजकिरादीननेकश: ।
निजघान रुषाविष्ट: पल्हवान्पारदानपि ॥२६

हन्यमानास्तु ते सर्वे राजानस्तेन संयुगे ।
द्रुद्रुवु: संघशो भीता हृयशिष्टा: समंतत: ॥२७

युष्माभिर्यस्य राज्यं बहुभिरपहृतं तस्य
पुत्रोऽधुनाऽहं हन्तुं व: सप्रतिज्ञं प्रसभमुपगतो
वैरनिर्यातनैषी ।
इत्युच्चै: श्रावयाणो युधि निजचरितं वैरिभिर्नागवीर्य:
क्षत्रैर्विध्वंसितेजा: सगरनरपति: स्मारयामास भूप: ॥२८

समर में उस समय में सगर नृप ने सब हैहय नृपों को पराजित करके वह बलवान् नृप संक्षुब्धसागर के समान आकार वाला हो गया था और फिर उसने काम्बोजों पर आक्रमण किया था ।२२। जिन्होंने सगर नृप का पहिले अपराध किया था वे सब इस समय में बहुत ही बुरी दशा में पड़कर दिशाओं में मारे-मारे इसके शत्रुगण भूमि पर भ्रमण कर रहे थे अर्थात् प्राणों को रक्षा के लिए भटकते हुए घूम रहे थे । जब युद्ध में अनेक तरह के वाद्यों के घोष से और पटहों की ध्वनि के श्रवण करने से उन सब

की धीरज छूट गया था–उन्होंने तुरन्त ही अपना राज्य-सेना और स्त्रियों का भी त्याग कर दिया और किंकर्त्तव्य विमूढ़ हो गये थे। इनके अतिरिक्त तालजङ्घ–काम्बोज–शक–यवन और किरात आदि सब साथ ही साथ अस्त्रों के भय से भ्रमण करे रहे थे।२३। उस सगर नरेश्वर के भय से डरे हुए शत्रुगण उस समय में ऐसे हो गये कि कुछ की तो प्रताप की अग्नि की ज्वाला से दृष्टि ही नष्ट हो गयी थी और वे सब अपना राज्य-वसति का त्यागकर के पुत्रादि के साथ शत्रु की सेनाओं से खदेड़े हुए जङ्गल में पहुँच गये थे वहाँ पर भी उनके नेत्रों में स्तिमता छाया हुआ था जैसे कि गिरियों की गुफाओं में सोकर उठने पर होता है। तात्पर्य यह है कि वन में भी उनको कुछ सूझ नहीं रहा था।२४। शत्रुओं से कर्षण करने वाले उस राजा ने रण में तालजङ्घों को निहत करके और उनके सैनिक तथा वाहनों का विनाश करके उसने क्रम से उनके राज्य का ध्वंस कर दिया था।२५। इसके अनन्तर यवन–काम्बोज और किरात आदि तथा वल्हव एवं पारद प्रभृति को सब को क्रोध में समाविष्ट होकर राजा सगर ने मार गिराया था।२६। उस महायुद्ध में मारे जाते हुए वे सब राजा लोग उस प्रतापी राजाके द्वारा प्रताड़ित होकर मरने से जो भी कुछ बच गये थे भयभीत होते हुए समुदाय के समुदाय चारों ओर भाग गये थे।२७। वे सब परस्पर में यह कहते हुए और बहुत ही ऊँचे स्वर से चिल्लाते हुए भाग रहे थे कि आप सब ने जिसके राज्य को वर वश छीन लिया था। उसी का पुत्र यह है जो इस समय के अपने बैर को निकालने की इच्छा वाला होकर जबरदस्ती से यहाँ उपगत हुआ है–हाथियों के समान वीर्यवाले सगर नृप ने जिसका तेज ही विध्वसकारी है उस युद्ध क्षेत्र में वैरियों के द्वारा अपना चरित सुनाता हुआ उन्हें याद करा रहा था।२८।

तं दृष्ट्वा राजवर्यं सकलरिपुकुलप्रक्षयोपात्तदीक्षं
भीताः स्त्रीबालपूर्वं शरणमभिययुः स्वासुसंरक्षणाय।
इक्ष्वाकूणां वसिष्ठं कुलगुरुमभितः सप्त राज्ञां
कुलेषु प्रख्याताः संप्रसूता नृपवररिपवः
पारदाः पल्हवाद्याः ॥२९

वसिष्ठमाश्रमोपांते वसंतमृषिभिर्वृतम्।
उपगम्याब्रुवन्सर्वे कृतांजलिपुटा नृपाः ॥३०

शरणं भव नो ब्रह्मन्नार्त्तानामभयैषिणाम् ।
सगरास्त्राग्निनिर्दग्धशरीराणां मुमूर्षताम् ॥३१
स हंत्यस्मानशेषेण वैरांतकरणोन्मुखः ।
तस्माद्भयाद्धि निष्क्रांता वयं जीवितकांक्षिणः ॥३२
विभिन्नराज्यभोगर्द्धिस्वदारापत्यबांधवाः ।
केवलं प्राणरक्षार्थं त्वां स्वयं शरणं गतः ॥३३
न ह्यन्योऽस्ति पुमाँल्लोके सौहृदेन बलेन वा ।
यस्तं निवर्त्तयित्वास्मान्पालयेन्महतो भयात् ॥३४
त्वं किलार्कान्वयभुवां राज्ञां कुलगुरुव्रतः ।
तद्वंशपूर्वजैर्भूपैस्त्वत्प्रभावश्च तादृशः ॥३५

समस्त शत्रुओं के कुलों का पूर्णतया क्षय करने को दीक्षा ग्रहण करने वाले उस राजा को देखकर डरे हुए सब शत्रुगण स्त्री और बच्चों को आगे करके अपने प्राणों की रक्षा के लिए सगर नृप की शरणागति में आ गये । इक्ष्वाकु के वंशजों के कुलगुरु वसिष्ठजी के चारों ओर वे सात राजाओं के कुलों में परम प्रसिद्ध समुत्पन्न हुए पारद और वल्हव आदि सगर के शत्रु राजा उपस्थित हुए थे ।२९। वसिष्ठजी के समीप में ही ऋषियों से घिरे हुए निवास कर रहे थे । वहाँ पर उन सबने उपगत होकर हाथ जोड़कर उनसे कहा था ।३०। हे ब्रह्मन् आप ही हमारे रक्षा करने वाले होवें । हम बहुत ही आर्त्त हैं और अभय दान के इच्छुक हैं । हम सब राजा सगर के अस्त्र की अग्नि से निर्दग्ध शरीर वाले हैं और मर रहे हैं ।३१। वह राजा सगर तो अपने बैर का अन्त करने के लिए उन्मुख हो रहा है और हम सबको ही मार रहा है । उसी के भय से हम निकलकर भागे हुए हैं और अपने जीवन की रक्षा के चाहने वाले हैं ।३२। हमारा सबका राज्य-भोग-समृद्धि-स्त्री-सन्तति और बान्धव सभी कुछ विभिन्न हो गया है । अब तो हम केवल अपने प्राणों की रक्षा के लिए आपकी शरणागति में आये हैं ।३३। इस लोक में आपके सिवाय अन्य कोई भी पुरुष ऐसा नहीं है जो सौहार्द से तथा बल-विक्रम से उसको हटाकर इस महान भय से हमारी रक्षा कर सके ।३४। आप तो निश्चित रूप से सूर्य वंश के भूपों के कुलगुरु माने गये हैं और उस राजा के वंश में जो भी पूर्वज हुए थे उन सबने आपको कुलगुरु बनाया है और इन सब पर भी आपका प्रभाव उसी प्रकार का है ।३५।

तेनायं सगरोऽप्यद्य गुरुगौरवयंत्रित: ।
भवन्निदेशं नात्येति वेलामिव महोदधि: ।।३६
त्वं न: सुहृत्पिता माता लोकानां च गुर्रुविभो ।
तस्मादस्मान्महाभाग परित्रातुं त्वमर्हसि ।।६७
जैमिनिरुवाच--
इति तेषां वच: श्रुत्वा वसिष्ठो भगवानृषि: ।
शनैर्विलोकयामास शरणं समुपागतान् ।।३८
वृद्धस्त्रीबालभूयिष्ठान्हतशेषान्नृपान्वयान् ।
दृष्ट्वा त्वतप्यद्भगवान्सर्वभूतानुकंपक: ।।३९
चिरं निरूप्य मनसा तान्विलोक्य च सादरम् ।
उज्जीवयञ्छनैर्वाचा मा भैष्टेति महामति: ।।४०
अथावोचन्महाभाग: कृपया परयान्वित: ।
समये स्थापयामास राज्ञस्ताञ्जीवितार्थिन: ।।४१
भूपव्याकोपदग्धं नृपकुलविहिताशेषधर्मादपेतं
कृत्वा तेषां वसिष्ठ: समयमवनिपालप्रतिज्ञानिवृत्त्यै ।
गत्वा तं राजवर्यं स्वयमथ शनकै: सांत्वयित्वा यथावत् ।
सप्राणानामरीणामपगमनविधावभ्यनुज्ञां ययाचे ।।४२

इस कारण से आज भी यह राजा सगर अपने कुलगुरु आपके गौरव से यन्त्रित है । यह कभी भी आपके आदेश का उलंघन अपनी मर्यादा को समुद्र की भाँति नहीं करता है ।३६। हे विभो ! हमारे तो इस समय में आप लोगों के गुरु हैं । इसलिए हे महाभाग ! आप ही इससे हमारी रक्षा करने के योग्य होते हैं ।३७। जैमिनि ने कहा--ऋषिवर भगवान वसिष्ठजी ने उनके इस वचन का श्रवण करके शरणागति में समागत उनको धीरे से अवलौकित किया था ।३८। उनसे सभी वृद्ध-स्त्री-और बालक बहुत से थे और मरने से बचे-बचाये नृप वंशज थे । ऐसी दुरवस्था में स्थित उन सबको देखा था तो वसिष्ठजी का हृदय करुणार्द्र हो गया था क्योंकि यह तो सभी प्राणिमात्र पर अनुकम्पा करने वाले महा पुरुष थे ।३९। बहुत काल पर्यन्त उनका निरूपण

किया था और मन में बड़ा आदर करके उनका विलोकन किया था। फिर उन महती मति वाले वसिष्ठजी ने उनको उज्जीवित करते हुए धीरे से कहा था—आप लोग डरो मत।४०। इसके पश्चात् उन महाभाग ने अत्यधिक कृपा से समन्वित होकर कहा था तथा जीवन के चाहने वाले उन समस्त नृपों को समय में (सन्धि करने में) स्थापित कर दिया था।४१। वसिष्ठजी ने राजा सगर की प्रतिज्ञा की निवृत्ति के लिए ऐसा समय किया था कि वह राजा सगर की क्रोधाग्नि से दग्ध नृप समुदाय नृपों के कुल में किए हुए सम्पूर्ण धर्म से अपेत हो गया था। फिर वे स्वयं ही धीरे से उस नृप श्रेष्ठ सगर के समीप में प्राप्त हुए थे और उनको यथा-रीति सान्त्वना दी थी तथा जीवित शत्रुओं के अपगमन के विधान में उनकी आज्ञा की याचना की थी। अर्थात् वे सभी जीवित ही चले जायें—ऐसी याचना की थी।४२।

सक्रोधोऽपि महीपतिर्गुरुवचः संभावयस्तानरीन्
धर्मस्य स्वकुलोचितस्य च तथा वेषस्य सत्यागतः।
श्रौतस्मार्त्तविभिन्नकर्मनिरतान्विप्रैश्च दूरोज्झतान्
सासून्केवलमत्यजन्मृतसमानेकैकशः पार्थिवान्।।४३
अर्द्धमुण्डाञ्छकांश्चक्रे पल्हवान् श्मश्रुधारिणः।
यवनान्विगतश्मश्रून्कांवोजांश्चिबुकान्वितान्।।४४
एवं विरूपानन्यांश्च स चकार नृपान्वयान्।
वेदोक्तकर्मनिर्मुक्तान्विप्रैश्च परिवर्जितान्।।४५
कृत्वा संस्थाप्य समये जीवतस्तान्व्यसर्जयत्।
ततस्ते रिपवस्तस्य त्यक्तस्वाचारलक्षणाः।।४६
व्रात्यतां समनुप्राप्ताः सर्ववर्णविनिंदिताः।
धिक्कृताः सततं सर्वे नृशंसा निरपत्रपाः।।४७
क्रूराश्च संघशो लोके बभूवुर्म्लेच्छजातयः।।४८
मुक्तास्तेनाथ राज्ञा शकयवनकिरातादयः सद्य एव
त्यक्तस्वाचारवेषा गिरिगहनगुहाद्याश्रयाः संबभूवुः।
एता अद्यापि सद्भिः सततमवमता जातयोऽसत्प्रवृत्त्या
वर्त्तन्ते दुष्टचेष्टा जगति नरपतेः पालयंतः प्रतिज्ञाम्।।४९

यद्यपि राजा सगर को बहुत अधिक क्रोध हो रहा था तो भी उस नृप ने अपने गुरुदेव की आज्ञा का समादर करते हुए ऐसा स्वीकार कर लिया था वे सब शत्रु तभी जीवित एक-एक छोड़े जा सकते हैं जब कि वे अपने कुल के उचित धर्म और वेष का त्याग कर देवें और श्रोत तथा स्मार्त कर्मों से भिन्न कर्मों में निरत रहें और विप्रों के द्वारा दूर ही से त्यागे हुए रहें मृत के ही समान रहे तो रह सकते हैं ।४३। उसमें जो शक जाति वाले थे उनके शिर तो आधे मुण्डित कर दिये गये थे और जो पल्हव थे उनको श्मश्रुधारी करा दिया था। जो यवन थे उनकी श्मश्रुओं को मुँडा दिया गया था और काम्बोज को बुकान्वित करा दिया था ।४४। इस तरह से उस सगर ने अन्यों को विरूप विप्रों के द्वारा परिवर्तित बना दिये गये थे ।४५। ऐसा ही सबको बनाकर समय में (सन्धि में) अर्थात् इस प्रकार की शर्त में बाँधकर संस्थापित करते हुए जीवित ही छोड़ दिया था अर्थात् ऐसे ढंग से ही उनके रहने पर उनका हनन नहीं किया था। इसके अनन्तर उसके वे समस्त शत्रुगण आचार के लक्षणों के परित्याग कर देने वाले हो गए थे ।४६। इस तरह से रहने पर वे सभी व्रात्य हो गये थे और सभी वर्णों के द्वारा विनिन्दित बन गये थे अर्थात् किसी भी वर्ण वाले नहीं रहे थे। सर्वदा उनको धिक्कार दिया जा जाता था—वे बहुत क्रूर हो गये थे तथा एकदम निर्लज्ज भी बन गये थे ।४७। वे सभी अत्यन्त क्रूरों के समुदायों वाले हो गये थे जो कि लोक में म्लेच्छ जाति वाले हो गये थे जो कि लोक में म्लेच्छ जाति वाले हुए थे ।४८। उस समय में जो भी राजा सगर के द्वारा जीवित ही छोड़ दिये गये थे। वे शकयवन और किरात आदि थे वे तुरन्त ही आचार और वेष के त्याग देने वाले हो गये और फिर वे पर्वतों की गुफाओं में आश्रय लेने वाले हो गये थे। ये जातियाँ अब भी सत्पुरुषों के द्वारा बहुत ही नीच मानी जाती है क्योंकि बहुत ही बुरी प्रवृत्ति होती है और उनकी चेष्टाएँ भी दुष्ट हैं। ये जगत् में राजा सगर की प्रतिज्ञा का पालन किया करते हैं ।४६।

—×—

सगर की दिग्विजय

जैमिनिरुवाच—

अथानुज्ञाय सगरो वसिष्ठमृषिसत्तमम् ।
बलेन महता युक्तो विदर्भानभ्यवर्त्तत ।।१

ततो विदर्भराट् तस्मै स्वसुतां प्रीतिपूर्वकम् ।
केशिन्याख्यामनुपमामनुरूपां न्यवेदयत् ॥२
स तस्या राजशार्दूलो विधिवद्वह्निसाक्षिकम् ।
शुभे मुहूर्ते केशिन्याः पाणिं जग्राह भूमिपः ॥३
स्थित्वा दिनानि कतिचिद्गृहे तस्यातिसत्कृतः ।
विदर्भराज्ञा संमंत्र्य ततो गंतुं प्रचक्रमे ॥४
अनुज्ञातस्ततस्तेन पारिबर्हैश्च सत्कृतः ।
निष्क्रम्य तत्पुराद्राजा शूरसेनानुपेयिवान् ॥५
संभावितस्ततश्चैव यादवैर्मातृसोदरैः ।
धनौघैस्तर्पितस्तैश्च मथुराया विनिर्ययौ ॥६
एवं स सगरो राजा विजित्य वसुधामिमाम् ।
करैश्च स नृपान्सर्वांश्चक्रे संकेतगानपि ॥७

जैमिनी मुनि ने कहा-इसके अनन्तर नृप सगर ने परम श्रेष्ठ ऋषि वसिष्ठजी की अनुज्ञा प्राप्त करके महान सेना से समन्वित होकर विदर्भ देश पर आक्रमण किया था ।१। फिर विदर्भ के नृप ने अपनी केशिनी नाम वाली पुत्री को बहुत ही प्रीति के साथ उनकी सेवा में समर्पित कर दी थी । यह कन्या रूप लावण्यादि सब गुणों में अनुपम थी और उस नृप के सर्वथा अनुरूप थी ।२। उस राजशार्दूल नृप सगर ने अग्नि को साक्षी करके परम शुभ मुहूर्त में उस का पाणिग्रहण किया था ।३। वहाँ पर ससुराल ही में कुछ दिन तक स्थित रहकर उस विदर्भेश्वर के द्वारा बड़ा सत्कार प्राप्त किया था फिर विदर्भाधि अनुमति पाकर वहाँ से गमन करने का उपक्रम किया था ।४। उस राजा ने भी आज्ञा देदी थी तथा पारिबर्हों के अर्थात् दायों के द्वारा उसका अच्छा सत्कार किया था । फिर वहाँ पुर से राजा ने निकल कर शूरसेन देशों में पहुँचा था ।५। वहाँ पर भी माता के सादरों के द्वारा यादवों से असका सम्मान किया गया था और बहुत-सा धन देकर उन्होंने भी उसको पूर्ण सन्तुष्ट किया था । इसके पश्चात् वहाँ से निकल कर चल दिया था ।६। मथुरा से चलकर इस रीति से उस राजा सगर ने इस सम्पूर्ण वसुधा पर विजय प्राप्त की थी और समस्त नृपों पर कर लगाकर उनको अपने ही सकेतों पर चलने वाले अनुगामी बना दिया था ।७।

ततोऽनुमान्य नृपतीन्निजराज्याय सानुगान् ।
अनुजज्ञे नरपतिः समस्ताननुयायिनः ॥८
ततो बलेन महता स्कंधावारसमन्वितः ।
शनैरपीडयन्देशान्स्वराज्यमुपजग्मिवान् ॥९
संभाव्यमानश्च मुहुरुपदाभिरनेकशः ।
नानाजनपदैस्तूर्णमयोध्यां समुपागमत् ॥१०
तदागमनमाज्ञाय नागरः सकलो जनः ।
नगरीं तामलंचक्रे महोत्सवसमुत्सुकः ॥११
ततः स नगरी सर्वा कृतकौतुकमंगला ।
सिक्तसंमृष्टभूभागा पूर्णकुम्भशतावृता ॥१२
समुच्छ्रितध्वजशता पताकाभिरलंकृता ।
सर्वत्रागरुधूपाढ्या विचित्रकुसुमोज्ज्वला ॥१३
सद्रत्नतोरणोत्तुंगगोपुराट्टालभूषिता ।
प्रसूनलाजवर्षैश्च स्वलंकृतमहापथा ॥१४

इसके उपरान्त उन नृपों को अपने राज्य पर स्थित बने रहने का आदेश देकर तथा सम्मान प्रदान करके कि वे अपने अनुगों के साथ अनुयायी रहें राजा ने प्रस्थान किया था इसके पश्चात् स्कन्धावार से संयुत उसने महान सैन्य के साथ सब देशों को पीड़ित करते हुए अन्त में अपनी ही राजधानी में आकर प्राप्त हो गया था ।८-९। उस राजा का अनेक प्रकार की भेटों से बड़ा सत्कार अनेक जनपदों के द्वारा किया गया था और फिर वह शीघ्र ही अयोध्या में आ गया था ।१०। वहाँ पर समस्त नागरिक जनों को जब ज्ञात हुआ कि राजा अयोध्या में आ गये हैं तो सबने बड़ा महान् उत्सव किया था और बड़ी उत्सुकता के साथ उस अयोध्यापुरी को सजाया था ।११। फिर वह समग्र नगरी माङ्गलिक कौतुकों से समलंकृत हुई थी। उसकी समस्त भूमि पर स्वच्छता हुई थी और छिड़काव किया गया था तथा जहाँ-तहाँ सैकड़ों ही पूर्ण कुम्भ स्थापित किये गये थे ।१२। उसमें सैकड़ों ध्वजाएँ फहराईं गयी थीं तथा अनेक पताकाओं से वह विभूषित बनायी गयी थी। वहाँ पर सभी अगरु की धूपों की महक हो रही थी एवं

नाना भाँति के सुन्दर सुमनों की मालाओं से वह समुज्ज्वल बनायी गयी थीं ।१३। अच्छे-अच्छे रत्नों के द्वारा निर्मित तोरण वन्दनवारें लगायी गयी थी तथा ऊँचे-ऊँचे गोपुर और अट्टालिकाओं से वह परम भूषित थी जो महापथ थे उनमें पुष्पों और लाजाओं की वर्षा की थी जिससे वे बहुत ही सुन्दर एवं सुशोभित हो रहे थे ।१४।

महोत्सवसमायुक्ता प्रतिगेहमभूत्पुरी ।
संपूजिताशेषवास्तुदेवतागृहमालिनी ।।१५
दिक्चक्रजयिनो राज्ञः संदर्शनमुदान्वितैः ।
पौरजानपदैर्हृष्टैः सर्वतः समलंकृता ।।१६
ततः प्रकृतयः सर्वे तथांतः पुरवासिनः ।
वारकांताकदंबैश्च नगरीभिश्च संवृताः ।।१७
अभ्याययुस्ततः सर्वे समेत्य पुरवासिनः ।
स तैः समेत्य नृपतिर्लब्धाशीर्वादसत्क्रियः ।।१८
बधिरीकृतदिक्चक्रो जयशब्देन भूरिणा ।
नानावादित्रसंघोषमिश्रेण मधुरेण च ।।१९
सत्कृत्य तान्यथायोगं सहितस्तैर्मुदान्वितैः ।
आनंदयन्प्रजाः सर्वाः प्रविवेश पुरोत्तमम् ।।२०
वेदघोषैः सुमधुरैर्ब्राह्मणैरभिनन्दितः ।
संस्तूयमानः सुभृशं सूतमागधवंदिभिः ।।२१

उस समय से अयोध्या पुरी में महान् उल्लास छाया हुआ था तथा प्रत्येक घर में महोत्सव मनाया जा रहा था। वहाँ पर सभी गृहों की पंक्तियों में भलीभाँति समस्त वास्तु देवताओं का पूजन किया गया था ।१५। दिग्विजय करने वाले चक्रवर्ती राजा सगर के दर्शन करने के आनन्द से युक्त नागरिक और देशवासी बहुत ही प्रसन्न थे और इनसे सभी ओर वह पुरी समलंकृत थी ।१६। फिर वहाँ पर सभी प्रकृतियाँ तथा अन्तःपुर के निवासी परम प्रसन्न थे और वार कान्ताओं के समुदायों से और नगरियों से संवृत थी। अर्थात् बहुत सी नर्त्तिका वेश्या से भी एकत्रित थीं ।१७। इसके पश्चात् सभी पुरवासी इकट्ठे होकर वहाँ पर आ गये थे और सबने एकत्रित होकर उस राजा को सत्कृत किया था तथा आशीर्वादों से मुदित किया था ।१८।

उस समय में जयजयकार की समुच्च ध्वनि से सभी दिशाएँ बधिर हो गयी थीं अर्थात् जयघोष में कहीं पर भी कुछ भी सुनायी नहीं दे रहा था। वहाँ पर बहुत से प्रकार के वाद्य बज रहे थे उनकी भी ध्वनि बहुत मधुर उसी जयघोष में मिल रही थी ।१६। राजा ने भी उन समस्त स्वागत करने वालों का योग्यता के अनुसार सत्कार किया था जिससे उनको भी परमाधिक हर्ष हो रहा था। इन प्रसन्न पुर वासियों के ही साथ में समस्त प्रजाजनों को आनन्दित करते हुए राजा ने पुर में प्रवेश किया था ।२०। उस समय में ब्राह्मणों ने भी परम मधुर वेद के मन्त्रों की ध्वनि से राजा का अभिनन्दन किया था। तथा सूत—मागध और बन्दियों के द्वारा उस शुभ समागमन के समय में राजा का संस्तवन किया जा रहा था ।२१।

जयशब्दैश्च परितो नानाजनपदेरितैः ।
करतालरवोन्मिश्रवीणावेणुतलस्वनैः ॥२२
गायद्भिर्गायकजनैर्नृत्यद्भिर्गणिकाजनैः ।
अन्वीयमानो विलसच्छ्वेतच्छत्रविराजितः ॥२३
विकीर्यमाणः परितः सल्लाजकुसुमोत्करैः ।
पुरीमयोध्यामविशत्स्वपुरीमिव वासवः ॥२४
दृष्टिपूतेन गंधेन ब्राह्मणानां च वर्त्मना ।
जगाम मध्येनगरं गृहं श्रीमदलंकृतम् ॥२५
अवरुह्य ततो यानाद्भार्याभ्यां सहितो मुदा ।
प्रविवेश गृहं मातुर्हृष्टपुष्टजनायुतम् ॥२६
पर्यंकस्थामुपागम्य मातरं विनयान्वितः ।
तत्पादौ संस्पृशन्मूर्ध्ना प्रणाममकरोत्तदा ॥२७
साभिनंद्य समाशीर्भिर्हर्षगद्गदया गिरा ।
ससंभ्रमं समुत्थाय पर्यष्वजत चात्मजम् ॥२८

उस नृपति के दोनों ओर अनेक जनपदों के द्वारा कहे गये जयजयकार का घोष हो रहा था और करताल—की ध्वनि से मिले हुए वीणा और वेणु के मधुर स्वर निकल रहे थे ।२२। राजा के पीछे-पीछे गान करने वाले गान कर रहे थे और गणिकाएँ नृत्य करती हुई चली जा रही थीं। राजा के

ऊपर श्वेत छत्र लगा हुआ था ।२३। राजा के ऊपर लाजा और पुष्पों की वर्षा की जा रही थी । इस रीति से राजा ने अपनी पुरी अयोध्या में महेन्द्र देव जिस तरह से इन्द्रपुरी में गमन कर रहे हों उसी भाँति प्रवेश किया था ।२४। हृष्टिपूत गन्ध से युक्त ब्राह्मणों के मार्ग से नगर के मध्य में जो भी सम्पन्न एवं अलंकृत गृह था उसमें राजा ने गमन किया था ।२५। फिर अपनी दोनों भार्याओं के साथ प्रसन्नता से यान से नीचे उतर कर अपनी माताश्री के घर में राजा ने प्रवेश किया था जहाँ पर सहस्रों परम हृष्टपुष्ट जन विद्यमान थे ।२६। उनकी माताजी एक पर्यङ्क पर विराजमान थीं उनके समीप में परम विनय से युक्त होकर उस समय में उनके चरणों का स्पर्श करके माथा टेककर प्रणाम किया था ।२७। माताजी ने भी शुभाशीर्वाद देकर उसका अभिनन्दन किया था और फिर अत्यधिक हर्ष से गद्गद वाणी के द्वारा बड़े ही सम्भ्रम के साथ उठकर अपने परम प्रिय पुत्र को छाती से लगाकर परिष्वजन किया था ।२८।

सहर्षं बहुधाशीर्भिरभ्यनंददुभे स्नुषे ।
स तां संभाव्य कथया तत्र स्थित्वा चिरादिव ।।२९
अनुज्ञातस्तया राजा निश्चक्राम तदालयात् ।
ततः सानुचरो राजा श्वेतव्यजनवीजितः ।।३०
सुरराज इव श्रीमान्सभां समगमच्छनैः ।
संप्रविश्य सभां दिव्यामनेकनृपसेविताम् ।।३१
नत्वा गुरुजनं सर्वमाशीर्भिश्चाभिनंदितः ।
सिंहासने शुभे दिव्ये निषसाद नरेश्वरः ।।३२
संसेव्यमानश्च नृपैर्नानाजनपदेश्वरैः ।
नानाविधाः कथाः कुर्वन्स तत्र नृपसत्तमः ।।३३
संप्रीयमाणः सुतरामुवास सह बंधुभिः ।
प्रतिज्ञां पालयित्वैवं जितदिङ्मंडलो नृपः ।।३४
अन्वतिष्ठद्यथान्यायमर्थश्रेयमुदारधीः ।
स्वप्रभावजिताशेषवैरिदिङ्मंडलाधिपः ।।३५

इसके अनन्तर जो परम सुन्दर दो पुत्र वधुएँ साथ में ही समुपस्थित हुई थीं उनको भी बहुत आशीर्वचनों से माताजी ने अभिनन्दित किया था।

फिर राजा ने अपनी सब सुनाकर कुछ काल पर्यन्त वहाँ पर स्थिति की थी ।२९। फिर माताजी से अनुज्ञा प्राप्त करके राजा उनके घर से बाहिर निकल आये थे और इसके अनन्तर अनुचरों के सहित वहाँ से गमन कर रहे थे और श्वेत व्यजनों के द्वारा सेवकगण उनकी हवा करते जा रहे थे ।३०। देवराज इन्द्र के ही समान श्री सम्पन्न राजा धीरे-धीरे अपनी सभा के मण्डप में समागत हो गये थे। राजा ने अनेक अधीन नृपों से संसेवित परम दिव्य सभा में प्रवेश किया था ।३१। सर्व प्रथम वहाँ पर जो गुरुजन विराजमान थे उनको प्रणाम किया था और उनके द्वारा दिये हुए आशीर्वाद प्राप्त कर अभिनन्दित हुए थे। फिर नरेश्वर ने परम शुभ एवं अतीव दिव्य सिंहासन पर अपनी संस्थिति की थी ।३२। वहाँ पर अनेक जनपदों के स्वामी नृपों के द्वारा वह भली-भाँति सेव्यमान हुए थे और अनेक प्रकार की उस श्रेष्ठ नृप ने वहाँ पर कथालाप किया था ।३३। इस तरह से बन्धुओं के साथ सुतरां परम प्रसन्नता प्राप्त करते हुए वहाँ पर निवास किया था। इस रीति से नृप ने समस्त दिशाओं को जीतकर अपनी की हुई प्रतिज्ञा का पालन किया था ।३४। न्याय के अनुसार उस उदार बुद्धि वाले नृप ने तीनों धर्म-अर्थ और काम को प्राप्त किया था। उस राजा का प्रभाव ही ऐसा था कि जिसके द्वारा विविध एवं समस्त दिशाओं के मण्डल के स्वामियों को पराजित कर दिया था ।३५।

एकातपत्रां पृथिवीमन्वशासद्वृषो यथा ।
स्वर्यातस्य पितुः पूर्वं परिभावममर्षितः ॥३६
स यां प्रतिज्ञामारूढस्तां सम्यक्परिपूर्य च ।
सप्तद्वीपाब्धिनगरग्रामायतनमालिनीम् ॥३७
जित्वा शत्रूनशेषेण पालयामास मेदिनीम् ।
एवं गच्छति काले च वसिष्ठो भगवानृषिः ॥३८
अभ्याजगाम तं भूयो द्रष्टुकामो जनेश्वरम् ।
तमायांतमति क्ष्य मुनिवर्यं ससंभ्रमः ॥३९
प्रत्युज्जगामार्घहस्तः सहितस्तैर्नपैर्नृपः ।
अर्घ्यपाद्यादिभिः सम्यक्पूजयित्वा महामतिः ॥४०
प्रणाममकरोत्तस्मै गुरुभक्तिसमन्वितमः ।

आशीर्भिर्वर्द्धयित्वा तं वसिष्ठः सगरं तदा ॥४१

आस्यतामिति होवाच सह सर्वैर्नरेश्वरैः ।

उपाविशत्ततो राजा कांचने परमासने ॥४२

स्वर्ग में गये हुए पिताजी के पूर्व में परिभव से यह सगर अत्यन्त क्रुद्ध हुए थे और फिर दिग्विजय करके एक छत्र समग्र वसुधा पर इसने अनुशासन किया था ।३६। उसने जिस प्रतिज्ञा को किया था उसको अच्छी तरह परिपूर्ण करके ही छोड़ा था । समस्त शत्रुओं को जीतकर सातों द्वीप और सागर से युक्त नगर-ग्राम और आयतनों की माला मेदिनों का पालन किया था । इस रीति से जब कुछ काल व्यतीत हो गया था तब भगवान् वसिष्ठ ऋषि ने वहाँ पर पदार्पण किया था ।३७-३८। उस राजा को पुनः देखने की कामना वाले ऋषि वहाँ पर समागत हुए थे । जैसे ही वहाँ पर पदार्पण करते हुए ऋषि का अवलोकन राजा ने किया था वैसे ही सम्भ्रम के साथ राजा ने अपने हाथों में अर्घ-सामग्री ग्रहण कर तुरन्त ही उनका शुभागमन किया था उस समय में उसके साथ अन्य सभी नृप विद्यमान थे। महामति नृप ने अर्घ्य-पाद्य आदि समग्र उपचारों से भली भाँति उन ऋषि-वर का अर्चन किया था ।३६-४०। गुरुदेव की भक्ति से युक्त होकर उनको प्रणाम किया था । उस समय में वसिष्ठ जी ने भी आशीर्वचनों से सगर का वर्धन किया था ।४१। मुनि ने राजा को आज्ञा दी थी कि आठ बैठ जाइए तब फिर सब नृपों के सहित राजा सुवर्ण निर्मित आसन पर उपविष्ट हो गये थे ।४२।

मुनिना समनुज्ञातः सभार्यः सह राजभिः ।

आगतस्तु नृपश्रेष्ठमुपासीनमुपह्वरे ॥४३

उवाच शृण्वतां राज्ञां शनैर्मृद्वक्षरं वचः ।

वसिष्ठ उवाच—

कुशलं ननु ते राजन्बाह्येष्वाभ्यंतरेषु च ॥४४

मंत्रिष्वमात्यवर्गेषु राज्ये वा सकलेऽधुना ।

दिष्ट्या त्व विजिताः सर्वे समग्रबलवाहनाः ॥४५

अयत्नेनैव युद्धेषु भवता रिपवो हि यत् ।

दिष्ट्यारूढप्रतिज्ञेन मम मानयता वचः ॥४६

अरयस्त्यक्तधर्माणस्त्वया जीवविसर्जिता ।

तान्विजित्यैतराज्जेतुं पुनर्दिग्विजयेच्छया ।।४७
गतस्सवाहनबलस्त्वमित्यश्रुणवं वचः ।
जितदिङ्मंडलं भूयः श्रुत्वा त्वां नगरस्थितम् ।।४८
प्रीत्याहमागतो द्रष्टुमिदानीं राजसत्तम ।
जैमिनिरुवाच—
वसिष्ठनैवमुक्तस्तु सगरस्तालजंघजित् ।।४६

जब मुनिवर ने अपनी आज्ञा प्रदान की थी तो नृप भार्याओं तथा अधीन नृपों के सहित मुनि के ही समीप में नीचे की ओर उपासीन हो गये थे ।४३। वहाँ पर समस्त नृपों का समुदाय श्रवण कर रहा था तभी मुनिवर ने धीरे से कोमल कान्त वचन राजा से कहे थे । वसिष्ठ जी ने कहा—हे राजन् ! बाहिर-भीतर सर्वत्र कुशल-क्षेम तो है न ? ।४४। समस्त मन्त्रियों में—अमात्य वर्गों में अथवा समग्र राज्य में इस समय कुशल तो है न ? यह तो परम हर्ष की बात है कि आपने युद्धों में सेना और वाहनों के सहित सब अपने शत्रुओं को बिना ही किसी प्रयत्न के बहुत ही साधारण कर्मों द्वारा पराजित कर दिया है । मुझे बड़ी प्रसन्नता इसकी है कि अपनी प्रतिज्ञा पर समारूढ़ होते हुए भी आपने मेरे कथित वचनों को मान लिया है ।४५-४६। आपने शत्रुओं पर विजय प्राप्त करके उनको समस्त धर्मों का त्याग कर देने वाले बना कर जीवित ही रहने वाले छोड़ दिये हैं । इस रीति से उन सबको जीत कर आप अन्यों को पराजित करने के वास्ते आप दिग्विजय करने की इच्छा से सेना और वाहनों से संयुत होकर गये हैं—यह भी वचन मैंने सुन लिया है । फिर मैंने यह श्रवण किया है कि आप दिग्विजय करके वापिस लौट आये हैं और अपने ही नगर में इस समय समवस्थित हैं ।४७-४८। हे परम श्रेष्ठ राजन् ! इस वर्त्तमान काल में प्रीति से ही आपसे मिलने के ही लिये यहाँ पर समागत हुआ हूँ । जैमिनि मुनि ने कहा—महामुनीन्द्र वसिष्ठ जी ने जब इस रीति से कहा था तो तालजङ्घ पर विजय पाने वाले राजा सगर ने उनसे निवेदन किया था ।४६।

कृतांजलिपुटो भूत्वा प्रत्युवाच महामुनिम् ।
सगर उवाच—
कुशलं ननु सर्वत्र महर्षे नात्र संशयः ।।५०
कल्याणाभिमुखाः सर्वे देवताश्च मुनेऽनिशम् ।
भवान्ध्यायति कल्याणं मनसा यस्य संततम् ।।५१

तस्य मे चोपसर्गाश्च संभवंतिकथं मुने।
भवताऽनुगृहीतोऽस्मि कृतार्थश्चाधुना कृतः ।।५२
यन्मां द्रष्टुमिहायातः स्वयमेव भवान्गुरो ।
यन्महामाह भगवान्विपक्षविजयादिकम् ।।५३
तत्तथाऽनुष्ठितं किन्तु सर्वं भवदनुग्रहात् ।
भवत्प्रसादतः सर्वं मन्ये प्राप्तं महीक्षिताम् ।।५४
अन्यथा मम का शक्तिः शत्रून्हंतुं तथाविधान् ।
अनल्पी कुरुते फल्यं यन्मे व्यवसितं भवान् ।।५५
फलमल्पमपि प्रीत्यै स्यादगस्याधिरोपितुः।
जैमिनिरुवाच—
एवं संभावितः सम्यक्सगरेण महामुनिः ।।५६

दोनों हाथों को जोड़कर महामुनि को सगर ने उत्तर दिया था। सगर ने कहा—हे महर्षे ! मेरा सर्वत्र कुशल है—इसमें लेशमात्र भी संशय नहीं है।५०। जिस मुझ सेवक का निरन्तर ही आप जैसे महापुरुष कल्याण की कामना का ध्यान रक्खा करते हैं उस सेवक मेरे प्रति सभी देवगण कल्याणाभिमुख अर्थात् श्रेय करने वाले सदा ही रहा करते हैं।५१। हे मुने ! ऐसे मुझको उपद्रव कैसे हो सकते हैं। मैं तो आपके परमाधिक अनुग्रह का भाजन हो गया हूँ और अब अपने समस्त कार्यों में सफल भी बना दिया गया हूँ।५२। हे गुरुदेव ! आप जो स्वयं ही मुझको अपना दर्शन देने के लिए यहाँ पर पधारे हैं और जो आपने विपक्षियों पर विजय आदि प्राप्त करने की बातें मुझसे कही हैं।५३। यह सभी कुछ वैसा ही किया गया है किन्तु यह सब आपकी ही अनुकम्पा से हुआ है। मैं स्वयं ही इस बात को मानता हूँ कि शत्रु तथा अन्य नृपों पर जो भी मैंने विजय प्राप्त की है—यह सब आपके ही प्रसाद से ही हुआ है।५४। नहीं तो ऐसे-ऐसे प्रबल शत्रुओं का हनन कर पराजित करने की मेरे जैसे की क्या शक्ति है। जो भी मेरा व्यवसित है उसको सफल आप जैसे महान् पुरुष ही किया करते हैं।५५। अग अधि-रोपिता का अनल्प भी फल प्रीति के लिए ही होता है। जैमिनी मुनि ने कहा—इस रीति से राजा सगर के द्वारा उन महामुनि का समादर किया गया था।

अभ्यनुज्ञाय तं भूपः प्रजगाम निजाश्रमम् ।
वसिष्ठे तु गते राजा सगरः प्रीतमानसः ॥५७
अयोध्यायामभिवसन्प्रशशासाखिलां भुवम् ।
भार्याभ्यां समुपेताभ्यां रूपशीलगुणादिभिः ॥५८
बुभुजे विषयान्रम्यान्यथाकामं यथासुखम् ।
सुमतिकेशिनी चोभे विकसद्वदनांबुजे ॥५९
रूपौदार्यगुणोपेते पीनवृत्तपयोधरे ।
नील कुंचितकेशाढ्ये सर्वाभरणभूषिते ॥६०
सर्वलक्षणसंपन्ने नवयौवनगोचरे ।
प्रिये सन्निहिते तस्य नित्यं प्रियहिते रते ॥६१
स्वाचारभावचेष्टाभिर्जह्रतुस्तुस्तन्मनोऽनिशम् ।
स चापि भरणोत्कर्षप्रतीतात्मा महीपतिः ॥६२

फिर वह मुनि नृप सगर से आज्ञा ग्रहण करके अपने आश्रम को चले गये थे। वसिष्ठ मुनि के गमन कर जाने पर राजा के मन में परम हर्ष हुआ था।५७। वह राजा फिर अयोध्या पुरी अपनी राजधानी में निवास करता था और उसने समस्त भूमण्डल पर प्रशासन किया था। दोनों भार्याओं को भी अपने पास में रखता था जो रूप लावण्य, शील स्वभाव और गुण गण आदि से सुसम्पन्न थीं।५८। उस राजा सगर ने ग्राम्य विषयों के सुख का पूर्ण अपनी इच्छा के अनुरूप ही उपभोग किया था। सुमति और केशिनी ये दोनों ही विकसित कमल के समान परम सुन्दर मुखों वाली थीं।५९। सुन्दर स्वरूप के साथ-साथ इन दोनों पत्नियों में विशाल उदारता भी थी। इनके उरोज युग्म परिपुष्ट वृत्ताकर एवं समुन्नत थे। इनके केशपाश नील वर्ण के कुञ्चित अर्थात् छल्लेदार परम सुहावने थे। ये सभी आभरणों से विभूषित रहा करती थीं।६०। नूतन यौवन के उद्गम में दिखलाई देने वाली नारियों में जो गुण गण हुआ करते हैं। उन सभी से ये दोनों रानियाँ सुसम्पन्न थीं। ये दोनों बहुत ही प्रिय थीं और सदा राजा के समीप में रहा करती थीं तथा नित्य ही अपने परम प्रिय स्वामी के हित कार्य में रति रखने वाली थीं।६१। इन दोनों के अपने आचरण राजा के प्रति इतने सुन्दर थे वे अपने हाव-भाव और चेष्टाओं के द्वारा निरन्तर ही राजा के मन को अपनी ओर आकर्षित रक्खा करती थीं। वह राजा भी उन दोनों के भरण के उत्कर्ष से प्रसन्न मन वाला था।६२।

रममाणो यथाकामं सह ताभ्यां पुरेऽवसत् ।
अन्येषां भुवि राज्ञां तु राजशब्दो न चाप्यभूत् ।।६३
गुणेन चाभवत्तस्य सगरस्य महात्मनः ।
अल्पोऽपि धर्मः सततं यथा भवति मानसे ।।६४
राज्ञस्तस्यार्थकामौ तु न तथा विपुलावपि ।
अलुब्धमानसोऽर्थं च भेजे धर्ममपीडयन् ।।६५
तदर्थमेव राजेंद्र कामं चापीडयंस्तयोः ।।६६

वह राजा सगर उन दोनों अपनी परम प्रिय पत्नियों के साथ अपनी इच्छा के अनुसार रमण करता हुआ अपने नगर में निवास किया करता था। इस भूमि में अन्य राजा के लिए राजा—यह शब्द ही नहीं था। राजा का अर्थ होता जो राजित (शोभित) होता है। वह अर्थ इसी में घटित होता है। अन्य अर्थ यह भी है कि यही एक चक्रवर्ती राजा था।६३। इस राजा में ही ऐसे गुण गण विद्यमान थे कि महान् आत्मा वाले इसके लिए ही राजा शब्द अन्वर्थ होता था। इसके मन में अल्प भी धर्म निरन्तर रहा करता था।६४। इस राजा में विशेष अधिक भी अर्थ और काम वैसे नहीं थे जो उसके मन को अधिक समासक्त कर सकें। इतना लुब्धक नहीं था कि अर्थ संग्रह में ही व्यस्त रहे। यह तो धर्म में कुछ भी बाधा न करके ही अर्थ का सेवन किया करता था। इसमें काम वासना भी उतनी ही थी कि हे राजेन्द्र ! जिससे दोनों पत्नियों को सर्वदा आप्यायित करता रहे।६५-६६।

—×—

।। सगर का और्वाश्रम में आगमन ।।

जैमिनिरुवाच—

एवं स राजा विधिवत्पालयामास मेदिनीम् ।
सप्तद्वीपवतीं सम्यक्साक्षाद्धर्म इवापरः ।।१
ब्राह्मणादींस्तथा वर्णान्स्वेस्वे धर्मे पृथक्पृथक् ।
स्थापयित्वा यथान्यायं ररक्षाव्याहतेंद्रियः ।।२
प्रजाश्च सर्ववर्णेषु यथाश्रेष्ठानुवर्तिनः ।
वर्णाश्चैवानुलोम्येन तद्वदर्थेषु च क्रमात् ।।३

न सति स्थविरे बाले मृत्युरभ्युपगच्छति ।
सर्ववर्णेषु भूपाले मही तस्मिन्प्रशासति ॥४

स्फीतान्यपेतबाधानि तदा राष्ट्राणि कृत्स्नशः ।
तेष्वसंख्या जनपदाश्चातुर्वर्ण्यजनावृताः ॥५
ते चासंख्यगृहग्रामशतोपेता विभागतः ।
देशाश्चावासभूयिष्ठा नृपे तस्मिन्प्रशासति ॥६
अनाश्रमी द्विजः कश्चिन्न बभूव तदा भुवि ।
प्रजानां सर्ववर्णेषु प्रारंभाः फलदायिनः ॥७

जैमिनि मुनि ने कहा—उस राजा ने सात द्वीपों वाली मेदिनी का विधि के साथ परिपालन साक्षात् दूसरे मूर्तिमान् धर्म के ही समान किया था ।१। अव्याहत इन्द्रियों वाले उस नृप सगर ने न्यायानुरूप ब्राह्मण आदि चारों वर्णों को अपने-अपने धर्म में पृथक्-पृथक् स्थापित कर दिया था ।२। सब ही वर्णों में जो भी प्रजाजन थे वे उचित रीति से अपने से श्रेष्ठों के अनुवर्त न करने वाले थे । जो वर्ण आनुलोम्य से हुए थे उनको भी उसी भाँति कार्यों में क्रम से लगा दिया था । उच्च वर्ण वाले से नीचे वर्ण वाली स्त्री में जो समुत्पन्न होते हैं वे अनुलोम सृष्टि वाले होते हैं । इसके विपरीत क्षत्रिय से ब्राह्मणी आदि में समुत्पन्न विलोम हैं, जिसका शास्त्र में सर्वथा निषेध है ।३। वृद्ध माता-पिता के जीवित रहने पर उस नृप के राज्य में बालक की मृत्यु नहीं हुआ करती थी । यह बात उस महीपति के शासन करने पर सभी वर्णों में हुआ करती थी ।४। उस समय में राष्ट्र पूर्णतया बाधा रहित और स्फीत अर्थात् विस्तृत थे । उन राष्ट्रों में अगणित जनपद थे जिनमें चारों वर्णों के मानव रहा करते थे ।५। उस नृप के प्रशासन करने पर सभी देशों में बहुत अधिक आवास गृह थे तथा विभक्त रूप से संख्या रहित सैकड़ों ही गृह और ग्राम थे ।६। वह ऐसा समय था कि इस भू मण्डल में कोई भी द्विज ऐसा नहीं था जिसका कोई आश्रम न होवे । ब्रह्मचर्य—गार्हस्थ्य—वानप्रस्थ और संन्यास ये चार ही आश्रम थे । सभी वर्णों की प्रजाओं में जो भी आरम्भ होते हैं वे सभी निष्फल न होकर फल देने वाले हुआ करते थे ।७।

स्वोचितान्येव कर्माणि प्रारभंत च मानवाः ।
पुरुषार्थोपपन्नानि कर्माणि च तदा नृणाम् ॥८

महोत्सवसमायुक्ताः पुरग्रामव्रजाकराः ।
अन्योन्यप्रियकामाश्च राजभक्तिसमन्विताः ॥९
न निंदितोऽभिशस्तो वा दरिद्रो व्याधितोऽपि वा ।
प्रजासु कश्चिल्लुब्धो वा कृपणो वाऽपि नाभवत् ॥१०
जनाः परगुणप्रीताः स्वसंपर्काभिकांक्षिणः ।
गुरुषु प्रणता नित्यं सद्विद्याव्यसनादृताः ॥११
परापवादभीताश्च स्वदाररतयोऽनिशम् ।
निसर्गात्खलसंसर्गविरक्ता धर्मतत्पराः ॥१२
आस्तिकाः सर्वशोऽभवन् प्रजास्तस्मिन्प्रशासति ।
एवं सुबाहुतनये स्वप्रतापार्जितां महीम् ॥१३
ऋतवश्च महाभाग यथाकालानुवर्तिनः ।
शालिभूयिष्ठसस्याढ्या सदैव सकला मही ॥१४

सभी मानव उस शासन में अपने जो भी समुचित कर्म थे उन्हीं का प्रारम्भ किया करते थे । उस काल में मानवों के सभी कर्म पुरुषार्थ से समुत्पन्न हुआ करते थे ।८। नगर-ग्राम-व्रज और आकर सब महोत्सवों से समुयुक्त थे । उनमें सभी मानव परस्पर में एक दूसरे के प्रिय करने की कामना वाले थे और सबके मनों में अपने राजा के प्रति भक्ति की भावना विद्यमान रहा करती थी ।९। उस समय में प्रजाओं में कोई भी मनुष्य ऐसा नहीं दिखाई पड़ता था कि जो निन्दित-अभिशस्त-दरिद्र-व्याधित लुब्धक अथवा कृपण होते । तात्पर्य यही है कि किसी भी प्रकार से हीनता या खिन्नता आदि नहीं थी ।१०। उस काल में सभी जन ऐसे थे जो दूसरों के गुणों को देख या जानकर परम हर्षित हुआ करते थे तथा अपने से सम्पर्क करने की अभिकाङ्क्षा रखा करते थे सभी मानव सद्विद्या के व्यसन से समादृत और ज्ञान दाता गुरुजनों में उनकी नित्य ही प्रणत भावना रहा करती थी ।११। सभी जन दूसरों की बुराई से डरा करते थे—सब लोग निरन्तर अपनी ही स्त्री में रति रखने वाले थे अर्थात् पर स्त्री गामिता का नाम भी नहीं था । सबको स्वाभाविक रूप से खलों के संसर्ग से विरक्तता होती है और सभी धर्म में परायण रहा करते थे ।१२। उस धार्मिक नृप के शासन काल में सभी प्रजा सभी ओर आस्तिक अर्थात् परम प्रभु के अस्तित्व को मानने वाले थे । अपने प्रताप से अर्जित मही पर सुबाहु तनय के शासन में इस प्रकार के सब ऋतुऐं हे महाभाग ! ठीक-ठीक समय पर अनुवर्त्तन

किया करती थीं और सम्पूर्ण भूमि सदा ही शाली और सस्य की बहुलता वाली थी। अर्थात् धान्य परिपूर्ण था।१३-१४।

बभूव नृपशार्दूले तस्मिन् राज्यानि शासति ॥१५
यस्याष्टादशमंडलाधिपतिभिः सेवार्थमभ्यागतैः
प्रख्यातोरुपराक्रमैर्नृपशतैर्मूर्द्धाभिषिक्तैः पृथक्।
संविष्टैर्मणिविष्टरेषु नितरामध्यास्यमानाऽमरैः
शक्रस्येव विराजते दिवि सभा रत्नप्रभोद्भासिता ॥१६
संकेतादपयांतराभ्युपगमाः सर्वेऽपि सोपायनाः
कृत्वा सैन्यनिवेशनानि परितः पुर्याः पृथक् पार्थिवाः।
द्रष्टुं कांक्षितराजकाः सतनया विज्ञापयंतो मुहु-
र्द्वास्थैरेव नरेश्वराय सुचिरं वत्स्यन्त्यमलः पुरे ॥१७
नमन्नरेंद्रमुकुटश्रेणीनामतिघर्षणात्।
किणीकृतौ विराजेते चरणौ तस्य भूभुजः ॥१८
सेवागतनरेंद्रौघविनिकीर्णैः समंततः।
रत्नैर्भाति सभा तस्य गुहा सोमे रवौ यथा ॥१९
एवं स राजा धर्मेण भानुवंशशिखामणिः।
अनन्यशासनामुर्वीमन्वशासदरिंदमः ॥२०
इत्थं पालयतः पृथ्वीं सगरस्य महीपतेः।
न चापपात मृत पुत्रमुखालोकनजृंभिता ॥२१

जब वह राजशार्दूल इस भूमि पर शाशन कर रहा था उस समय में भूमि धान्योत्पत्ति करके सबको सुखी करता था।१५। उस राजा की सभा रत्नों की प्रभा से उद्भासित स्वर्ग में इन्द्र को सभा के ही समान शोभा दे रही थी जिसमें अठारह मण्डलों की अधिपति राजा की सेवा के लिये समागत हुए विद्यमान थे। इनके अतिरिक्त मूर्द्धाभिषिक्त सैकड़ों ही नृप पृथक् विराजमान थे जिनके विशाल पराक्रम प्रख्यात थे—जिस सभा मे मणि मण्डित आसनों पर नृपगण ऐसे ही संस्थित थे जैसे देवगण निरन्तर इन्द्र देवकी सभा में समवस्थित रहा करते हैं।१६। वे सभी नृप सङ्केत से ही अन्य विषयों का ज्ञान प्राप्त कर लेने वाले अपने-अपने उपायनों को साथ में लिये हुए थे और उन पार्थिवों ने उस पुरी के चारों ओर अपनी सेनाओं का पृथक् निवेशन कर दिया था। राजा सगर उस समय में अन्तःपुर में थे तो ये नृप गण अपने पुत्रों के सहित राजा के दर्शन करने की इच्छा वाले थे

और द्वार पर स्थित द्वारपालों के द्वारा बारम्बार बहुत काल पर्यन्त राजा को विज्ञापन करते हुए स्थित थे ।१७। उस राजा सगर के चरण युग्म समागत नृपों के मस्तक झुकाने से उनके मुकुटों से रत्नों की अतिवृष्टि होने से किणीकृत हो गये थे अर्थात् रत्नों के कण उन पर बिखरे हुए थे जिससे एक अद्भुत शोभा हो रही थी ।१८। नृप की सेवा करने के लिए जो नृपों का समुदाय वहाँ पर समागत हुआ था उनके द्वारा सभी ओर बिखर गये रत्नों से उस सगर की सभा ऐसी शोभित हो रही थी जैसे चन्द्र और सूर्य के प्रकाश में गुहा विभात हुआ करती है ।१९। इस रीति से अरियों का दमन करने वाला सूर्य वंश का शिरोमणि वह नृप धर्म से इस भूमि का जो किसी भी अन्य के शासन में न होकर इसी नृप के प्रशासन में थी शासन किया करता था ।२०। इस प्रकार से पृथ्वी के पालन करने वाले राजा सगर की उत्कंठा अपने एक पुत्र के मुख का अवलोकन करने की हुई थी क्योंकि उसके कोई भी पुत्र उत्पन्न नहीं हुआ था ।२१।

विना तां दुःखितोऽत्यर्थं चिंतयामास नैकधा ।
अहो कष्टपुत्रोऽहमस्मिन्वंशे ध्रुवं तु यत् ।।२२
प्रयांति नूनमस्माकं पितरः पिंडविप्लवम् ।
निरयादपि सत्पुत्रे संजाते पितरः किल ।।२३
प्रीत्या प्रयांति तद्गेहं जातकर्मक्रियोत्सुकाः ।
महता सुकृतेनापि संप्राप्तस्य दिवं किल ।।२४
अपुत्रस्यामराः स्वर्गे द्वारं नोद्घाटयति हि ।
पिता तु लोकमुभयोः स्वर्लोकं तत्पितामहाः ।।२५
जेष्यंति किल सत्पुत्रे जाते वंशद्वयेऽपि च ।
अनपत्यतयाऽहं तु पुत्रिणां या भवेद्गतिः ।।२६
न तां प्राप्स्यामि वै नूनं सुदुर्लभतरा हि सा ।
पदादैंद्रात्किलाभिन्नमृद्धं राज्यमखंडितम् ।।२७
मम यत्तदपुण्यस्य याति निष्फलतामिह ।
इदं मत्पूर्वजैरेव सिंहासनमधिष्ठितम् ।।२८

पुत्रोत्पत्ति के बिना वह अत्यधिक दुःखित रहा करता था और अनेक प्रकार से उसने चिन्तन किया था । अहो ! बड़ा ही कष्ट है इस वंश में मैं बिना पुत्र वाला हूँ । यह परम ध्रुव है कि मैं बड़ा भाग्यहीन हूँ ।२२। निश्चय

ही हमारे पितृगण पिण्डदान के विलम्ब को प्राप्त होंगे। यदि सत्पुत्र जन्म ग्रहण कर लेता है तो फिर वे नरक से भी निकल आया करते हैं। वे प्रीति से जातकर्म में समुत्सुक होकर उसके घर में प्रयाण किया करते हैं। यदि कोई महान् पुण्य उन्होंने किया हो तो उसके प्रभाव से वे स्वर्ग को प्राप्त होते हैं।२३-२४। किन्तु जिसके पुत्र नहीं होता है वह सुकृत के प्रभाव से स्वर्ग के द्वार तक ही पहुँच पाता है और फिर पुत्रहीन के लिए देवगण स्वर्ग का द्वार नहीं खोला करते हैं और अन्दर प्रवेश नहीं कर पाता है। पिता तो दोनों लोकों में और उसके पितामह स्वर्गलोक को दोनों वंशों में सत्पुत्र के समुत्पन्न होने पर ही जय प्राप्त करेंगे। मैं तो सन्तान हीन होने से पुत्र वालों की जो गति होती है उसको मैं निश्चय ही प्राप्त नहीं करूँगा क्योंकि पुत्रहीन के लिए वह गति अतीव दुर्लभ है। इन्द्र के पद से अभिन्न यह अखण्ड और समृद्ध राज्य भी व्यर्थ ही है।२५-२७। पुण्यहीन मेरा यह सब कुछ यहाँ पर निष्फलता को ही प्राप्त हो रहा है। यह राज्यासन जिस पर मेरे पूर्वज पुरुष विराजमान हुए थे, सब व्यर्थ ही है।२८।

अपुत्रत्वेन राज्यं च पराधीनत्वमेष्यति ।
तस्मादौर्वाश्रममहं गत्वा तं मुनिपुङ्गवम् ॥२९
प्रसादयिष्ये पुत्रार्थं भार्याभ्यां सहितोऽधुना ।
गत्वा तस्मै स्वपुत्रत्वं विनिवेद्य महात्मने ॥३०
स यद्वक्ष्यति तत्सर्वं करिष्ये नात्र संशयः ।
इति सञ्चिन्त्य मनसा सगरो राजसत्तमः ॥३१
इत्येष कृत्यविद्राजन्गंतुमौर्वाश्रमं प्रति ।
स मन्त्रिप्रवरे राज्यं प्रतिष्ठाप्य ततो वनम् ॥३२
प्रययौ रथमारुह्य भार्याभ्यां सहितो मुदा ।
जगाम रथघोषेण मेघनादातिशङ्किभिः ॥३३
स्तब्धेक्षणैर्लक्ष्यमाणो मार्गपार्श्वे शिखण्डिभिः ।
प्रियाभ्यां दर्शयन्राजन्सारंगांस्तिमितेक्षणान् ॥३४
क्षणमूर्ध्वमुखान्सद्यः पलायनपरान्पुनः ।
वृक्षान्पुष्पफलोपेतान्विलोक्य मुदितोऽभवत् ॥३५

जब मेरे कोई पुत्र ही नहीं है तो इस सिंहासन पर भविष्य में कौन बैठेगा। बड़े दुःख का विषय है यह भी आगे किसी दूसरे की ही अधीनता में चला जायेगा। इसलिए मैं अब और्व मुनि के समीप में जाकर उनसे ही

यह प्रार्थना करूँ ।२९। इस समय में दोनों अपनी पत्नियों के सहित वहाँ पहुँच कर उन महामुनि को प्रसन्न करूँगा। वे महान आत्मा वाले महापुरुष हैं वहाँ जाकर अपने पुत्र हीनता के विषय में उनसे विशेष निवेदन करना ही उचित है ।३०। वे इसके लिए जो भी कुछ उपाय बतलायेंगे वह सभी मैं करूँगा इसमें तनिक भी संशय नहीं है । नृपश्रेष्ठ सगर ने ऐसा विचार अपने मन में किया था । हे राजन् ! इसलिए कृत्यों के ज्ञाता उस नृप सगर ने और्व महामुनि की सन्निधि में गमन करने का निश्चय कर लिया था । उसने जो परम श्रेष्ठ मन्त्री था उसको राज्य के प्रशासन का भार सौंपकर फिर वन में चल दिया था ।३१-३२। बड़ी प्रसन्नता से अपनी दोनों पत्नियों को साथ में लेकर रथ पर समारूढ़ हो गया था और वहाँ से चल दिया था । जिस समय में उसका रथ चला है उसका ऐसा महान घोष हुआ था कि मयूरों को मेघों की गर्जना की शंका हो गयी थी ।३३। मार्ग के समीप में मयूरों ने एकटक होकर उसको देखा था । राजा भी उन स्तिमित नेत्रों वाले मयूरों को ओर संकेत करके अपनी पत्नियों को उनकी इस तरह से दृष्टि करते को दिखाता जा रहा था ।३४। उन वन्य मयूरों ने एक क्षण तक तो ऊपर की ओर अपने मुख किये थे और फिर वे वहाँ से पलायन करने में तत्पर हो गये थे । राजा भी उस वन में विविध भाँति के पुष्पों से और फलों से लदे हुए वृक्षों को अवलोकित करके अत्यन्त प्रसन्न हुआ था ।३५।

अम्लानकुसुमैः स्वादुफलैः शाद्वलभूमिकैः ।
सुस्निग्धपल्लवच्छायैरभितः सभृत नगैः ।।३६
चूताग्रपल्लवास्वादुस्निग्धकंठपिकारवैः ।
श्रोत्राभिरामजनकैस्सघुष्टं सर्वतो दिशम् ।।३७

सर्वर्तुकुसुमोपेतं भ्रमद्भ्रमरमंडितम् ।
प्रसूनस्तवकानम्रवल्लरीवेल्लितद्रुमम् ।।३८
कपियूथसमाक्रांतवनस्पतिशताकुलम् ।
उन्मत्तशिखिसारंगकूजत्पक्षिगणान्वितम् ।।३९
गायद्विद्याधरवधूगीतिकासुमनोहरम् ।
संचरत्किन्नरीवृन्दविराजद्वनगह्वरम् ।।४०
हंससारसचक्राह्वकारण्डवशुकादिभिः ।
सुस्वरं रागुतोपांतैः सरोभिः परिवारितम् ।।४१

सरः स्वम्बुजकह्लारकुमुदोत्पलराशिषु ।
शनैः परिवहन्मंदमारुतापूर्णदिङ्मुखम् ।।४२

वह अरण्य वृक्षों से घिरा हुआ था जिनमें अनेक अम्लान पुष्प थे—स्वादिष्ट फल थे और हरी-हरी घास वाली भूमि थी तथा बहुत घनी सुस्निग्ध पत्रों की छाया से सब वृक्ष संयुत थे।३६। वहाँ पर सभी ओर कानों को श्रवण करने में परम प्रिय लगाने वाली आम्र वृक्षों के कोमल पत्रों के खाने से स्निग्ध कण्ठों वाली कोमलों की मधुर ध्वनि थी इससे वह वन संपुष्ट हो रहा था।३७। उसमें सभी ऋतुओं के कुसुम खिल रहे थे जिन पर भ्रमर गुञ्जार करते हुए झूल रहे थे। बहुत सी लताएँ द्रुमों से लिपटी हुई थीं जो अपने ही प्रसूनों के गुच्छों के भार से नीचे की ओर झुक रही थीं।३८। वह महारण्य ऐसा ही सुषमा सम्पन्न था कि वहाँ के वृक्षों पर सैकड़ों वानरों के झुण्ड बैठे हुए थे और उस वन में उन्मत्त शिखी-सारङ्ग भ्रमण कर रहे थे तथा पक्षियों का कल कूजन चहुँ ओर हो रहा था।३६। उस वन में विद्याधरों की वधूटियाँ गीत गा रही थीं जिससे वह वन मन का हरण करने वाला हो रहा था। उस परम गहन वन में किन्नर-किन्नरियों के जोड़े सञ्चरण करते हुए शोभित हो रहे थे।४०। उस वन में बहुत से सरोवर थे जिनसे चारों ओर वन घिरा हुआ था जिनका उपान्त सुस्वरों वाले हंस-सारस-चक्रवाक-कारण्डव और शुक आदि से समावृत हो रहा था।४१। उन सरोवरों में कमल-कल्हार-कुमुद और उत्पल बहुत अधिक परिमाण में विकसित हो रहे थे। वहाँ पर मन्द मारुत के परिवहन से सभी दिशायें पूरित हो रही थीं।४२।

एवंविधगुणोपेतमधिगाह्य तपोवनम् ।
गच्छन्नथेनाथ नृपः प्रहर्षं परमं ययौ ।।४३
उपशांताशयः सोऽथ संप्राप्याश्रममंडलम् ।
भार्याभ्यां सहितः श्रीमान्वाहादवरुरोह वै ।।४४
धुर्यान्विश्रामयेत्युक्त्वा यंतारमवनीपतिः ।
आससादाश्रमोपांतं महर्षेर्भावितात्मनः ।।४५
स श्रुत्वा मुनिशिष्येभ्यः कृतनित्यक्रियादरम् ।
मुनिं द्रष्टुं विनीतात्मा प्रविवेशाश्रमं तदा ।।४६
मुनिमध्ये समासीनमृषिवृंदैः समन्वितम् ।
ननाम शिरसा राजा भार्याभ्यां सहितो मुदा ।।४७

कृतप्रणामं नृपतिमृषिरौर्वः प्रतापवान् ।
उपविशेति प्रेम्णा वै सह ताभ्यां समादिशत् ॥४८
अर्घ्यपाद्यादिभिः सम्यक्पूजयित्वा महामुनि. ।
आतिथ्येन च वन्येन सभार्यं तमतोषयत् ॥४९

इस प्रकार के गुणों से सुसम्पन्न उस तपोवन का अधिगाहन करके रथ के द्वारा गमन करते हुए नृप सगर को परमाधिक प्रसन्नता प्राप्त हुई थी ।४३। उपशान्त आश्रम के मण्डल में पहुँचकर फिर श्री सम्पन्न वह राजा अपने यान से नीचे उतर गया था ।४४। उस नृप ने सारथि से कहा था कि इन अश्वों को विश्राम करने दो और फिर भाविताल्मा महर्षि के आश्रम के उपान्त में पहुँच गया था ।४५। उस राजा ने यह मुनि के शिष्यों से सुन लिया था कि मुनिवर नित्य क्रिया कर चुके हैं तभी उस विनीत आत्मा वाले नृप ने मुनि के दर्शन करने के लिए उस आश्रम में प्रवेश किया था । ।४६। वे महामुनीन्द्र अनेक मुनियों के मध्य में विराजमान थे और चारों ओर ऋषियों के समुदाय वहाँ पर संस्थित थे । उसी समय में राजा ने भार्याओं के साथ बड़ी ही प्रसन्नता से मुनिवर के चरणों में शिर झुकाकर प्रणाम किया था ।४७। जब राजा ने प्रणाम किया था तो प्रताप वाले औौर्व ऋषि ने बड़े ही प्रेम से दोनों पत्नियों के सहित उस नृप को 'बैठ जाओ' यह आज्ञा दी थी ।४८। उस महामुनि ने समागत उस अतिथि नृप का भारतीय संस्कृति की मर्यादानुसारता से अर्घ्य पाद्य आदि से भली-भाँति अर्चन करके भार्याओं के सहित उस नृप को वन्य आतिथ्य सत्कार से भली-भाँति किया था ।४९।

अथातिथ्योपयिश्रान्तं प्रणम्यासीनमग्रतः ।
राजानमब्रवीदौर्वः शनैर्मृदक्षरं वचः ॥५०
कुशलं ननु ते राज्ये बाह्येष्वाभ्यंतरेषु च ।
अपि धर्मेण सकलाः प्रजास्त्वं परिरक्षसि ॥५१
अपि जेतुं त्रिवर्गं त्वमुपायैः सम्यगीहसे ।
फलंति हि गुणास्तुभ्यं त्वया सम्यक्प्रचोदिताः ॥५२
दिष्ट्या त्वया जिताः सर्वे रिपवो नृपसत्तम ।
दिष्ट्या च सकलं राज्यं त्वया धर्मेण रक्ष्यते ॥५३
धर्म एव स्थितिर्येषां तेषां नास्त्यत्र विप्लवः ।
न तं रक्षति किं धर्मः स्वयं येनाभिरक्षितः ॥५४

पूर्वमेवाहमश्रौषं विजित्य सकलां महीम् ।
सबलो नगरीं प्राप्तः कृतदारो भवानिति ।।५५
राज्ञां तु प्रवरो धर्मो यत्प्रजापरिपालनम् ।
भवंति सुखिनो नूनं तेनैवेह परत्र च ।।५६
स भवान्राज्यभरणं परित्यज्य मदंतिकम् ।
भार्याभ्यां सहितो राजन्समायातोऽसि मे वद ।।५७
जैमिनिरुवाच- एवमुक्तस्तु मुनिना सगरो राजसत्तमः ।
कृतांजलिपुटो भूत्वा प्राह तं मधुरं वचः ।।५८

इसके अनन्तर आतिथ्य और विश्रान्ति हो जाने पर आगे विराजमान ऋषि को प्रणाम करने के पश्चात् और्व महामुनि ने राजा से धीरे-धीरे मृदु वचन कहे थे ।५०। हे राजन ! आपके राज्य में बाहिर और भीतर सब प्रकार का कुशल-क्षेम तो है न ? और तो धर्मके साथ अपनी मस्तक प्रजा की सुरक्षा तो कर ही रहे हैं न ? ।५१। आप तीनों वर्गों को जीतने के लिए उपायों के द्वारा अच्छी तरह से अभिलाषा करते हैं न ? आपके द्वारा भली-भाँति प्रेरित गुण गण आपके लिये फल दिया ही करते हैं न ? ।५२। हे नृपश्रेष्ठ ! यह तो बड़े ही हर्ष की बात है कि आपने समस्त शत्रुओं पर विजय प्राप्त कर ली है। यह भी बड़े ही प्रसन्नता है कि आप धर्म पूर्वक सम्पूर्ण राज्य की सुरक्षा किया करते हैं ।५३। जिनकी धर्म में ही स्थिति होती है उनको महालोक में कोई भी विप्लव नहीं हुआ करता है। जब वह धर्म जिसके द्वारा अभिरक्षित होता है तो क्या वह स्वयं ही उसकी रक्षा नहीं किया करता है ? अवश्य धर्म उसकी सुरक्षित होकर रक्षा करता है ।५४। यह तो पूर्व में ही सुन लिया था कि आपके सम्पूर्ण वसुन्धरा पर विजय प्राप्त करके अपने बल के साथ सपत्नीक अपनी नगरी में प्राप्त हो गये हैं ।५५। राजाओं का तो यही परमश्रेष्ठ धर्म होता है कि इनके द्वारा अपनी प्रजा का परिपालन किया जाता है। ऐसे ही नृप निश्चय ही इस लोक में और परलोक में सुखी हुआ करते हैं ।५६। ऐसे राजा आप हैं फिर राज्य के भरण का त्याग करके इस समय में मेरे समीप में समागत हुए हैं और दोनों पत्नियों को भी साथ में लेकर आये हैं। राजन् ! क्या कारण है मुझे आप इस आगमन का जो भी कारण हो बतलाइये ।५७। जैमिनी मुनि ने कहा—उस मुनि के द्वारा इस रीति से राजा से पूछा था तो उस परम श्रेष्ठ नृप सगर ने दोनों करों को जोड़कर उनसे मधुर वचनों में निवेदन किया था ।५८।

ब्रह्माण्ड पुराण

(द्वितीय खण्ड)

(सरल भाषानुवाद सहित जनोपयोगी संस्करण)

सम्पादक:

डॉ० चमन लाल गौतम

रचयिता–प्राणायाम के असाधारण प्रयोग, ओंकार सिद्धि, मंत्र शक्ति से रोग निवारण, विपत्ति निवारण-कामना सिद्धि, श्रीमद्भागवत् सप्ताह कथा, योगासन से रोग निवारण, तन्त्र विज्ञान, तन्त्र रहस्य, मनुस्मृति, सूर्य पुराण, तंत्र महाविज्ञान, कालिका पुराण, मानसागरी आदि।

भूमिका

पुराणों में यही अन्तिम पुराण है। उच्च कोटि के पुराण में इसे महत्व-पूर्ण स्थान प्राप्त है। इसकी प्रशंसा में पुराणकार यहाँ तक चले गये कि उन्होंने इसे वेद के समान घोषित किया। इसका अभिप्राय यह हुआ कि पाठक जिस उद्देश्य की पूर्ति के लिए वेद का अध्ययन करता है, उस तरह की विषय सामग्री उसे यहाँ भी प्राप्त हो जाती है और वह जीवन को चतुर्मुखी बना सकता है।

इस पुराण के पठन-पाठन, मनन-चिन्तन और अध्ययन की परम्परा भी प्रशंसनीय है। गुरु ने अपने शिष्यों में से इसका ज्ञान अपने योग्यतम शिष्य को उसका पात्र समझ कर दिया ताकि इसकी परम्परा अबाध गति से निरन्तर चलती रहे। भगवान प्रजापति ने वसिष्ठ मुनि को, भगवान वसिष्ठ ऋषि ने परम पुण्यमय अमृत के अदृश इस तत्व ज्ञान को शक्ति के पुत्र अपने पौत्र पाराशर को दिया। प्राचीन काल में भगवान पाराशर ने इस परम दिव्य ज्ञान को जातुकूर्ण्य ऋषि को, जातुकूर्ण्य ऋषिने परम संयमी द्वैपायन को पढ़ाया। द्वैपायन ऋषि ने श्रुति के समान इस अद्भुत पुराण को अपने पाँच शिष्यों जैमिनि, सुमन्तु, वैशम्पायन पेलव और लोमहर्षण को पढ़ाया। सूत परम विनम्र, धार्मिक और पवित्र थे। अतः उनको यह अद्भुत वृतान्त वाला पुराण पढ़ाया था। ऐसी मान्यता है कि सूतजी ने इस पुराण का श्रवण भगवान व्यास देव जी से किया था। इन परम ज्ञानी सूत जी ने ही नैमिषारण्य में महात्मा मुनियों को इस पुराण का प्रवचन किया था। वही ज्ञान आज हमारे सामने है।

पुराण का लक्षण है—सर्ग अर्थात् सृष्टि और प्रति सर्ग अर्थात् उस सृष्टि से होने वाली सृष्टि, वंशों का वर्णन, मन्वन्तर अर्थात् मनुओं का कथन। इसका तात्पर्य यह है कि कौन-कौन मनु किस-किस के पश्चात् हुए! वंशों में होने वालों का चरित यह ही पाँचों बातों का होना पुराण का लक्षण है। यह सभी लक्षण इस पुराण में उपस्थित हैं। इसके चार पाद हैं—

प्रक्रिया, अनुषंग, उत्पोद्घात और उपसंहार। इन्हीं के द्वारा सम्पूर्ण वर्णन हुआ है।

इस पुराण के नामकरण का रहस्य है कि इसमें समस्त ब्रह्मांड का वर्णन है। भुवन कोष का उल्लेख तो सभी पुराणों में मिलता है परन्तु प्रस्तुत पुराण में सारे विश्व का सांगोपांग वर्णन उपलब्ध होता है। इसमें विश्व के भूगोल का विस्तृत व रोचक विवेचन है। इसमें ऐसी-ऐसी जानकारी मिलती है जिसे देखकर आश्चर्य होता है कि बिना वैज्ञानिक सहयोग के इतनी गहन खोज कैसे की होगी। वैज्ञानिक युग में अभी तक उसकी पुष्टि भी नहीं हो पायी है।

पुराण में स्वायम्भुव मनु के सर्ग व भारत आदि सब वर्षों की समस्त नदियों का वर्णन है। फिर सहस्रों द्वीपों के भेदों का सात द्वीपों में ही अन्तर्भाव हैं, जम्बूद्वीप और समुद्र के मण्डल का विस्तार से वर्णन है। पर्वतों का योजना-बद्ध उल्लेख है। जम्बूद्वीप आदि सात समुद्रों के द्वारा घिरे हुए हैं। सप्तद्वीप का प्रमाण सहित वर्णन है। सूर्य, चन्द्र और पृथ्वी को पूर्ण परिणाम बताया गया है। सूर्य की गति का भी उल्लेख है। ग्रहों की गति और परिमाण भी कहे गये हैं। इस तरह से विश्व के भूगोल का महत्व पूर्ण उल्लेख है।

वेद के सम्बन्ध में भी यह जानकारी उल्लेखनीय है कि विभु बुद्धिमान गीर्ण स्कन्ध ने सन्तान के हेतु से एक वेद के चार पाद किये थे और ईश्वर ने चार प्रकार से किया था। भगवान शिव के अनुग्रह से व्यास देव ने उसी भाँति भेद किया था। उस वेद की शिष्यों और प्रशिष्यों ने वेद की अयुत शाखाएं की थी।

इस पुराण के विषय में एक विशेष बात यह है कि ईसवी सन् ५ की शताब्दी में इस पुराण को ब्राह्मण लोग जावा द्वीप ले गये थे। वहाँ की प्राचीन "कवि भाषा" में अनुवाद हुआ जो आज भी मिलता है। इससे इस पुराण की प्राचीनता का भी बोध होता है।

पुराणकार ने श्राद्ध के विषय को बड़े ही साङ्गोपाङ्ग रूप में, मुख्य तथा अवान्तर प्रभेदों के साथ दिया है। परशुराम की महिमा तथा गौरव का विवेचन असाधारण ढंग से किया गया है। परशुराम कार्तवीर्य हैहय के संघर्ष का बड़े विस्तार के साथ वर्णन है। परशुराम जी पहले महेन्द्र पर्वत (वर्तमान गंजम जिले में पूर्वी घाट की आरम्भिक पहाड़ी) पर तप करते थे। जब वे सारी पृथ्वी को दान में दे चुके तो अपने निवास के लिए उन्हें भूमि की आवश्यकता प्रतीत हुई। उन्होंने समुद्र से भूमि की याचना की जो सत्याद्रि तथा अरब सागर के बीच में सकरी भूमि है" यही चित्पावन ब्राह्मणों का मूल स्थल कोंकण है। परशुराम से प्रमुख रूप से सम्बन्धित होने के कारण इस पुराण का उदय-स्थल सत्यादि तथा गोदावरी प्रदेश में होना उपयुक्त दिखाई देता है।

राजाओं के जीवन चरित्र से पुराण का महत्व बढ़ा है। उनके गुण व अवगुण दोनों ही उजागर हुए हैं। उत्तानपाद राजा के पुत्र ध्रुव का चरित्र घोर संघर्ष से सफलता प्राप्त करने और दृढ़ सङ्कल्प से सिद्धि प्राप्त करने का प्रतीक है। चाक्षुष मनु के सर्ग का कथन भी उपयोगी है। राजा यदु और राजर्षि देव का वर्णन भी रोचक बन पड़ा है। राजा कंस की कथा से स्पष्ट है कि जब धर्म की हानि से अत्याचार चरम सीमा तक पहुँच जाते हैं तो उनसे निवृत्ति के लिए भगवान अवतरित होते हैं। राजा शान्तनु के पराक्रम के विवरण के साथ भविष्य में होने वाले राजाओं के उपसंहार का भी कथन दिया गया है जो एक आश्चर्य है। राजा सगर और राजा भगीरथ द्वारा गङ्गा का स्वर्गलोक से पृथ्वी लोक पर अवतरण घोर श्रम द्वारा असम्भव को सम्भव बनाने की लोक प्रिय गाथा है।

तपस्वी ऋषियों की गौरव गाथाएँ भी कम अनुकरणीय नहीं हैं। कश्यप, पुलस्त्य, अत्रि, पराशर की कथाएँ रोचक हैं। भार्गव चरित्र विस्तार से वर्णित है। महर्षि वसिष्ठ ज्ञान के और महर्षि विश्वामित्र सृजन के प्रतीक होते हैं।

चारों युगों के विस्तृत वर्णन से आश्चर्य तो होता ही है, साथ ही ऋषियों की प्रतिभा का भी आभास होता है। रौरव आदि नरकों के वर्णन से सभी प्राणियों के पापों के परिणामों का निर्णय किया गया है। इससे पाठक को अपने कर्मों की समीक्षा करके जीवन मार्ग को नये ढङ्ग से निर्धारित करने की प्रेरणा मिलती है।

पुराण को साहित्य की दृष्टि से भी उत्कृष्ट माना जाता है क्योंकि निबन्ध ग्रन्थों में इसके श्लोक दिखाई देते हैं। मिताक्षरा अपरार्क, स्मृति चन्द्रिका, कल्पतरु में इसके श्लोक उद्घृत किये गये हैं। इससे लगता है साहित्यकारों की दृष्टि में यह पुराण उच्च महत्व का है। कालिदास की रचनाओं का और उनकी वैदर्भी रीति का प्रभाव भी इस पुराण के विवेचन पर है। इतिहास कारों का मत है कि पुराण की रचना गुप्तोत्तर युग में अर्थात् ६०० ईस्वी में मानना उचित है।

—चमनलाल गौतम

ब्रह्माण्ड पुराण

(द्वितीय खण्ड)

।। असमंजस का त्याग ।।

सगर उवाच–

कुशलं मम सर्वत्र महर्षे नात्र संशयः ।
यस्य मे त्वमनुध्याता शर्मं भार्गवसत्तमः ।।१
यस्तथा शिक्षितः पूर्वमस्त्रे शस्त्रे च सांप्रतम् ।
सोऽहं कथमशक्तः स्यां सकलारिविनिग्रहे ।।२
त्वं मे गुरुः सुहृद्देवं बंधुर्मित्रं च केवलम् ।
न ह्यन्यमभिजानामि त्वामृते पितरं च मे ।।३
त्वयोपदिष्टेनास्त्रेण सकला भूभृतो मया ।
विजिता यदनुस्मृत्या शक्तिः सा तपसस्तव ।।४
तपसा त्वं जगत्सर्वं पुनासि परिपासी च ।
स्रष्टुं संहर्त्तमपि च शक्नोष्येव न संशयः ।।५
महानन्यसामान्यप्रभावस्तपसश्च ते ।
इह तस्यैकदेशोऽपि दृश्यते विस्मयप्रदः ।।६
पश्य सिंहासने बाल्यादुपेत्य मृगपोतकः ।
पिबत्यंभः शनैर्ब्रह्मन्निः शंकं ते तपोवने ।।७

राजा सगर ने कहा—हे महर्षे ! मेरे यहाँ सर्वत्र कुशल है—इसमें तो कुछ भी संशय नहीं है जिस मेरे विषय में भार्गव श्रेष्ठ आप शमका अनुध्यान करने वाले विद्यमान हैं । जिसको पूर्व में ही शस्त्रास्त्रों के प्रयोग करने की भली भाँति शिक्षा-दीक्षा दे दी गयी है वह मैं इस समय समस्त

शत्रुओं के विनिग्रह करने में कैसे असमर्थ हो सकता हूँ ।१-२। आप तो मेरे गुरुदेव हैं-- सुहृत्-दैव-बन्धु और मित्र हैं । केवल आप ही मेरे सब कुछ हैं । मैं तो आपके अतिरिक्त अन्य किसी को भी मेरा पिता नहीं जानता हूँ ।३। आपके द्वारा उपदेश किये गये अस्त्र से ही मैंने सब नृपों पर विजय प्राप्त की है जिनके स्मरण से ही पूर्ण विजय मेरी हुई है यह आपके ही तप की शक्ति है । यहाँ पर उसका एक देश भी विस्मय देने वाला दिखलाई देता है ।४-६। देखिये, मृग का शिशु बचपन से ही सिंहासन पर समीप में आकर हे ब्रह्मन् ! धीरे-धीरे जल पी रहा है और वह आपके इस तपोवन में बिल्कुल ही निःशङ्क अर्थात् भय से रहित है ।७।

धयत्यत्रातिविस्रंभात् कृशाऽपि हरिणीस्तनम् ।
करोति मृगश्रृंगाग्रे गंडकंडूयनं रुरुः ॥८
नवप्रसूतां हरिणीं हत्वा वृत्त्यै वनांतरे ।
व्याघ्री त्वत्तसावासे सैव पुष्णाति तच्छिशून् ॥९
गजं द्रुतमनुद्रुत्य सिंहो यस्मादिदं वनम् ।
प्रविष्टोऽनुसरंतौ त्वद्भयादेकत्र तिष्ठतः ॥१०
नकुलस्त्वाखुमार्जारमयूरशशपन्नगाः ।
वृकसूकरशार्दूलशरभर्क्षप्लवंगमाः ॥११
श्रृगाला गवया गावो हरिणा महिषास्तथा ।
वनेऽत्र सहजं वैरं हित्वा मैत्रीमुपागताः ॥१२
एवंविधा तपः शक्तिर्लोकविस्मयदायिनी ।
न क्वापि दृश्यते ब्रह्मंस्त्वामृते भुवि दुर्लभा ॥१३
अहं तु त्वत्प्रसादेन विजित्य वसुधामिमाम् ।
रिपुभिः सह विप्रर्षे स्वराज्यं समुपागतः ॥१४

वह अत्यन्त दुबली हरिणी भी अत्यधिक विश्राम के साथ अपने स्तन को पिला रही है । हरिण मृग छौना के गण्डों को श्रृङ्ग के अग्रभाग से खुजला रहा है ।८। नव प्रसूता अर्थात् हाल ही में प्रसव करने वाली हरिणी को मारकर वृत्ति के लिए दूसरे वन में वही व्याघ्री आप के इस तपस्या के आश्रम में उसके शिशुओं के पोषण कर रही है ।९। एक सिंह एक हाथी के

पीछे आक्रमण करके जब यहाँ पर आ गया है तो प्रवेश करते ही अनुसरण करते हुए वे दोनों सिंह और गज आपके ही भय से एक ही स्थान में स्थित हो रहे हैं ।१०। जो स्वभाव से ही आपस में शत्रु होते हैं वे सभी नकुल-मूषक-मार्जार-मयूर-शश-सर्प-वृक-सूकर--शार्दूल---शरभ---प्लवङ्गम---शृगाल-- गवय---गौ हरिण और महिष ये सभी एक-एक के शत्रु होते हुए भी इस बन में अपने स्वाभाविक वैर को भूलकर परस्पर मैत्री के भाव को प्राप्त हो गये हैं ।११-१२। इस प्रकार की यह आपकी ही शक्ति है जो लोगों को बड़ा ही विस्मय देने वाली है। हे ब्रह्मन् ! आपके बिना लोक में इस भूमि पर ऐसी दुर्लभ शक्ति अन्यत्र कहीं पर भी दिखलाई नहीं देती है ।१३। और मैं तो आपके ही प्रसाद से इस सम्पूर्ण वसुधा को जीतकर सब रिपुओं को ध्वस्त करके अपने राज्य में प्राप्त हुआ हूँ ।१४।

वश्यामात्यस्त्रिवर्गेऽपि यथायोग्यकृतादरः ।
त्वयोपदिष्टमार्गेण सम्यग्राज्यमपालयम् ॥१५

एवं प्रवर्त्तमानस्य मम राज्येऽवतिष्ठतः ।
भवद्दिदृक्षा संजाता सापेक्षा भृगुपुंगव ॥१६

किं त्वद्य मयि पर्याप्तमनपत्यतयैव मे ।
पितृपिंडप्रदानेन सह संरक्षणं भुवः ॥१७

तदिदं दुःखमत्यर्थमनिवार्यं मनोगतम् ।
नान्योऽपहर्त्ता लोकेऽस्मिन् ममेति त्वामुपागतः ॥१८

इत्युक्तः सगरेणाथ स्थित्वा सोऽन्तर्मनाः क्षणम् ।
उवाच भगवानौर्वः सनिदेशमिदं वचः ॥१९

नियम्य सह भार्याभ्यां किंचित्कालमिहावस ।
अवाप्स्यसि ततोऽभीष्टं भवान्नात्र विचारणा ॥२०

स च तत्रावसत्प्रीतस्तच्छुश्रूषापरायणः ।
पत्नीभ्यां सह धर्मात्मा भक्तियुक्तश्चिरं तदा ॥२१

मेरे सभी अमात्य वश्य हैं और तीनों वर्गों में भी मैं यथायोग्य आदर प्राप्त करने वाला हूँ। आपके ही द्वारा जो उपदेश प्राप्त किया है उसी मार्ग से मैंने अच्छी तरह से राज्य का परिपालन किया है ।१५। इसी रीति से मैं

प्रवृत्त हो रहा हूँ और अपने राज्य पर स्थित हूँ किन्तु हे भृगु श्रेष्ठ ! मेरी इच्छा आपके दर्शन प्राप्त करने की हुई थी जो कि कुछ अपेक्षा से समन्वित है ।१६। आज मुझमें आपके प्रसाद से सभी कुछ पर्याप्त प्राप्त हुआ है किन्तु मेरी कोई सन्तति नहीं है । इसी कारण से मुझे इस भूमि का संरक्षण करना और पितृगण को पिण्डों का देना दुष्कर सा हो रहा है ।१७। यही मुझे बड़ा भारी घोर दुःख है जो मेरे मन में बैठा हुआ है और निवारण के योग्य नहीं है । इस लोक में मेरे इस दुःख का अपहरण करने वाला आपको छोड़कर अन्य कोई भी नहीं है । अतएव मैं आपकी सन्निधि में प्राप्त हुआ हूँ ।१८। इस प्रकार से जब सगर नृप के द्वारा उस मुनि से कहा गया था तो वह मुनि एक क्षण तक मन ही मन में सोचते हुए स्थित रहे थे और फिर और्व भगवान् ने निदेश पूर्वक यह वचन राजा से कहा था ।१९। आप नियमित रहकर अपनी दोनों पत्नियों के साथ कुछ समय तक यहीं पर निवास करें । फिर आपका जो भी अभीप्सित है उसको आप अवश्य ही प्राप्त कर लेंगे—इसमें कुछ भी संशय नहीं है ।२०। फिर वह राजा भी सेवा में तत्पर होकर वहीं पर निवास करने लगा था। उसको परम प्रसन्नता हुई थी । उस समय में दोनों पत्नियों के साथ धर्म में युक्त तथा भक्तिभाव से समन्वित होकर ही चिरकाल पर्यन्त वहाँ निवास किया था ।२१।

राजपत्न्यौ च ते तस्य सर्वकालमतंद्रिते ।
मुनेरतनुतां प्रीतिं विनयाचारभक्तिभिः ॥२२
भक्त्या शुश्रूषया चैव तयोस्तुष्टो महामुनिः ।
राजपत्न्यौ समाहूय इदं वचनमब्रवीत् ॥२३
भवत्यौ वरमस्मत्तो व्रियतां काममीप्सितम् ।
दास्यामि तं न संदेहो यद्यपि स्यात्सुदुर्लभम् ॥२४
ततः प्रणम्य शिरसा तेऽप्युभे तं महामुनिम् ।
ऊचतुर्भगवान्पुत्रान्कामयावेति सादरम् ॥२५
ततस्ते भगवानाह भवतीभ्यां मया पुनः ।
राज्ञश्च प्रियकामेन वरो दत्तोऽयमीप्सितः ॥२६
पुत्रवत्यौ महाभागे भवत्यौ मत्प्रसादतः ।

भवेतां ध्रुवमन्यच्च श्रूयतां वचनं मम ।।२७
पुत्रो भविष्यत्येकस्यामेकः सोऽनतिधार्मिकः ।
तथापि तस्य कल्पांतं संभूतिश्च भविष्यति ।।२८

उन दोनों राजा की पत्नियों ने सदा ही अतन्द्रित होकर उस मुनि की विनय—आचार और भक्ति से प्रीति को बढ़ा दिया था ।२२। उस भक्ति और शुश्रूषा से मुनिवर बहुत ही अधिक सन्तुष्ट हो गये थे और फिर उन्होंने दोनों राजा को पत्नियों को अपने समीप में बुलाकर उन से यह वचन कहा था—आप दोनों ही हमसे किसी भी वरदान का वरण करो जो भी तुम्हारी इच्छा हो और तुमको अभीप्सित हो । मैं उसी को तुम्हारे लिए दे दूँगा—इसमें कुछ भी सन्देह नहीं है यद्यपि वह वरदान बहुत दुर्लभ भी क्यों न होवे ।२३-२४। इसके अनन्तर उन दोनों ने मस्तक टेक कर प्रणाम किया था और उन महामुनि से कहा था—हे भगवान् ! हम दोनों हो आदर के साथ पुत्रों की कामना करती हैं ।२५। इसके अनन्तर और्व भगवान् ने कहा—आप दोनों के लिये राजा के प्रिय की कामना वाले मैंने यह अभीष्ट वरदान दे दिया है ।२६। हे महाभाग बालियो ! मेरे प्रसाद से तुम दोनों ही पुत्रों वाली होओगी और अन्य भी एक वचन परम ध्रुव है, उसका भी श्रवण कीजिए। ।२७। एक पत्नी में एक ही पुत्र जन्म ग्रहण करेगा किन्तु वह अति धार्मिक नहीं होगा तो भी कल्प के अन्त में उनकी संभूति होगी ।२८।

षष्टिः पुत्रसहस्राणामपरस्यां च जायते ।
अकृतार्थाश्च ते सर्वे विनंक्ष्यंत्यचिरादिव ।।२९
एवंविधगुणोपेपौ वरौ दत्तौ मया युवाम् ।
अभीप्सितं तु यद्यस्याः स्वेच्छया तत्प्रकीर्त्यताम् ।।३०
एवमुक्ते तु मुनिना वैदर्भ्यान्वियवर्द्धनम् ।
वरयामास तनयं पुत्रानन्यांस्तथा परा ।।३१
इति दत्त्वा वरं राज्ञे सगराय महामुनिः ।
सभार्यमनुमान्यैनं विससर्ज पुरीं प्रति ।।३२
मुनिना समनुज्ञातः कृतकृत्यो महीपतिः ।
रथमारुह्य वेगेन सप्रियः प्रययौ पुरीम् ।।३३

स प्रविश्य पुरीं रम्यां हृष्टपुष्टजनावृताम् ।
आनंदितः पौरजनं रेमे परमया मुदा ॥३४
एतस्मिन्नेव काले तु राजपत्न्यावुभे नृप ।
राज्ञे प्रावोचतां गर्भं मुदा परमया युते ॥३५

और दूसरी रानी के गर्भ से साठ सहस्र पुत्र समुत्पन्न होंगे। और वे भी सब अकृतार्थ अर्थात् असफल ही होकर थोड़े ही समय में विनष्ट हो जाँयगे।२९। इस प्रकार के गुणों से समन्वित दो वरदान तुम दोनों को दे दिये हैं। इन दोनों में जिसका भी आप दोनों में जो भी अभीष्ट हो उसको मुझे बतला दो।३०। महामुनीन्द्र के द्वारा जब उन दोनों से इस तरह से कहा गया था जोकि वैदर्भ्य वंश का वर्धन करने वाला था तो वैदर्भी ने तो एक पुत्र प्राप्त करने का वरदान चाहा था और दूसरी ने अन्य साठ हजार पुत्रों के नाम ग्रहण करने के वरदान की याचना की थी।३१। उस महामुनि ने इस प्रकार से राजा सगर को वरदान देकर भार्याओं के सहित उसको आज्ञा देकर अपनी नगरी की ओर विदा कर दिया था।३२। मुनि के द्वारा आज्ञा प्राप्त करके राजा कृतकृत्य हो गया था और रथ पर समारूढ़ होकर अपनी प्रियाओं के साथ बड़े वेग से पुरी की ओर चला गया था।३३। उस नृप ने अपनी नगरी में प्रवेश किया था, जो नगरी परम सुरम्य थी और हृष्ट-पुष्ट जनों से घिरी हुई थी। पुरवासी जनों के साथ हर्षोल्लास से युक्त होकर आनन्दित होते हुए प्रेम से रमण करने लगा था।३४। इसी समय में हे नृप ! उन दोनों राजा की पत्नियों ने परमाधिक प्रीति संयुत होकर राजा की सेवा में अपने-अपने गर्भों के धारण करने की सूचना दी थी।३५।

ववृधे च तयोर्गर्भः शुक्लपक्षे यथोडुराट् ।
सह संतोषसंपत्त्या पित्रोः पौरजनस्य च ॥३६
संपूर्णे तु ततः काले मुहूर्त्ते केशिनी शुभे ।
असुयताग्निगर्भाभं कुमारममितद्युतिम् ॥३७
जातकर्मादिकं तस्य कृत्वा चैव यथाविधि ।
असमंजस इत्येव नाम तस्याकरोन्नृपः ॥३८
सुमतिश्चापि तत्काले गर्भालाबुमसूयत ।
सम्प्रसूतं तु तं त्यक्तुं दृष्ट्वा राजाऽकरोन्मनः ॥३९

तज्ज्ञात्वा भगवानौर्वस्तत्रागच्छद्यदृच्छया ।
सम्यक् संभावितो राजा तमुवाच त्वरान्वितः ॥४०
गर्भालाबुरयं राजन्न त्यक्तुं भवतार्हति ।
पुत्राणां षष्टिसाहस्रबीजभूतो यतस्तव ॥४१
तस्मात्तत्सकलीकृत्य घृतकुंभेषु यत्नतः ।
निःक्षिप्य सपिधानेषु रक्षणीयं पृथक्पृथक् ॥४२

उन दोनों के गर्भ शुक्ल पक्ष में चन्द्रमा के ही समान बढ़ गये थे । इससे माता-पिता को और पुरवासियों को भी बहुत अधिक सन्तोष हुआ था ।३६। इसके अनन्तर जब गर्भ का पूरा समय सम्प्राप्त हो गया तो परम शुभ मुहूर्त्त में कोशिनी ने अपरिमित द्युति से सम्पन्न अग्नि के गर्भ की आभा वाले कुमार को जन्म ग्रहण कराया था ।३७। उस कुमार का जातकर्म आदि संस्कार करके उसका विधि के साथ असमञ्जस नाम नृप ने रक्खा था ।३८। उसी समय में सुमति रानी ने भी एक गर्भ से अलाबु को प्रसूत किया था । उसको प्रसूत हुआ देखकर उसका त्याग कर देने का विचार राजा के मन में हुआ था ।३९। किन्तु जब यह ज्ञात हुआ था कि राजा उस अलाबु का त्याग करना चाहता है तो भगवान् और्व मुनि यदृच्छा से ही वहाँ पर समागत हो गये थे । राजा सगर ने उनका भली भाँति स्वागत-सत्कार किया था । तब बहुत ही शीघ्रता से युक्त होकर मुनि ने राजा से कहा—।४०। हे राजन् ! आप इस गर्भ से निःसृत अलाबु का त्याग करने के योग्य नहीं हैं क्योंकि यह आपके साठ सहस्र पुत्रों का बीजभूत है ।४१। इस कारण से इन सबको एकत्रित करके घृत के कलशों में यत्न पूर्वक ऊपर ढकना लगाकर अलग-२ इनको रक्षा करनी चाहिए ।४२।

सम्यगेव कृते राजन्भवतो मत्प्रसादतः ।
यथोक्तसंख्या पुत्राणां भविष्यति न संशयः ॥४३
काले पूर्णे ततः कुम्भान्भित्त्वा निर्याति ते पृथक् ।
एवं ते षष्टिसाहस्रं पुत्राणां जायते नृप ॥४४
इत्युक्त्वा भगवानौर्वस्तत्रैवांतरधाद्विभुः ।
राजा च तत्तथा चक्रे यथौर्वेण समीरितम् ॥४५
ततः संवत्सरे पूर्णे घृतकुंभात्क्रमेण ते ।

भित्वा भित्वा पुनर्जज्ञुः सहसैवानुवासरम् ।।४६

एवं क्रमेण संजातास्तनयास्ते महीपते ।

ववृधुः संघशो राजन्षष्टिसाहस्रसंख्यया ।।४७

अपृथग्धर्मचरणा महाबलपराक्रमाः ।

बभूवुस्ते दुराधर्षाः क्रूरात्मानो विशेषतः ।।४८

स नातिप्रीतिमांस्तेषु राजा मतिमतां वरः ।

केशिनीतनयं त्वेकं बहुमान सुतं प्रियम् ।।४९

हे राजन् ! इसी विधि से कार्य किये जाने पर मेरे पूर्ण प्रसाद से आपके पुत्रों की जो भी बतायी गयी है वही संख्या उत्पन्न होगी—इसमें लेश मात्र भी सशय नहीं है ।४३। काल जब भी पूर्ण हो जायगा तभी वे सब इन कुम्भों को तोड़कर पृथक्-२ निकल आयेंगे। हे नृप ! इस तरह से आपके साठ सहस्र पुत्र जन्म ग्रहण करेंगे ।४४। इतना कह कर भगवान् और्व वहाँ पर ही अन्तर्हित हो गये क्योंकि वे तो विभु थे और राजा सगर ने वैसा ही सब किया था जैसा भी और्व मुनि ने उनसे कहा था ।४५। इसके पश्चात् जब एक वर्ष पूर्ण हो गया तो वे घृत कुम्भों से क्रम से उन्हें फोड़-तोड़ करके तुरन्त ही प्रतिदिन जन्म लेने लग गये थे ।४६। हे महीपते ! इसी तरह से वे सब क्रम से पुत्र समुत्पन्न हुए थे। हे राजन् ! समुदाय में ये उत्पन्न होकर साठ सहस्र सख्या में बढ़ गये थे ।४७। उन सबके धर्माचरण समान ही थे और वे सब महान बल पराक्रम से समन्वित थे। वे सभी विशेष रूप से क्रूर आत्मा वाले थे और सब दुराधर्ष थे अर्थात् उनको दबा देना बड़ा ही कठिन था, ऐसे तेजस्वी थे ।४८। राजा सगर भी मतिमानों में परम श्रेष्ठ था और इन साठ सहस्र पुत्रों पर उसकी अधिक प्रीति नहीं थी। केशिनी का जो एक पुत्र था उसका वह राजा विशेष मान किया करता था और वह उसको प्रिय भी लगता था ।४९।

विवाहं विधिवत्तस्मै कारयामास पार्थिवः ।

स चाप्यानन्दयामास स्वगुणैः सुहृदोऽखिलान् ।।५०

एवं प्रवर्तमानस्य केशिनीतनयस्य तु ।

अजायत सुतः श्रीमानंशुमानिति विश्रुतः ।।५१

स बाल्य एव मतिमानुदारैः स्वगुणैर्भृशम् ।
प्रीणयामास सुहृदः स्वपितामहमेव च ॥५२

एतस्मिन्नंतरे राज्ञस्तस्य पुत्रोऽसमंजसः ।
आविष्टो नष्टचेष्टोऽभूत्स पिशाचेन केनचित् ॥५३

स तु कश्चिदभूद्वैश्यः पूर्वजन्मनि धर्मवित् ।
कस्यचिद्विषये राज्ञः प्रभूतधनधान्यवान् ॥५४

स कदाचिदरण्येषु विचरन्निधिमुत्तमम् ।
दृष्ट्वा ग्रहीतुमारेभे वणिग्लोभपरिप्लुतः ॥५५

ततस्तद्रक्षकोऽभ्येत्य पिशाचः प्राह तं तदा ।
क्षुधितोऽहं चिरादस्मिन्नवसन्निधिपालकः ॥५६

राजा सगर ने उस असमञ्जस पुत्र का विवाह भी विधिपूर्वक करा दिया था और उसने भी अपने सद्गुणों के द्वारा सभी सुहृदों को आनन्दित किया था ।५०। इस रीति से रहने वाले उस केशिनी के पुत्र के एक सुत ने भी जन्म ले लिया था जो अंशुमान नाम से प्रख्यात हुआ था ।५१। वह बचपन की अवस्था में ही बड़ा मतिमान् था और अपने उदार गुणों से उसमें सभी सुहृदों को तथा अपने पितामह राजा सगर को बहुत ही अधिक प्रीणित किया था ।५२। इसी बीच में ऐसा हुआ था कि उस राजा का अंशुमान पुत्र असमञ्जस किसी पिशाच के द्वारा समाविष्ट हो गया था जिस कारण से उसकी चेष्टा एकदम नष्ट हो गयी थी ।५३। वह पूर्वजन्म में कोई धर्म का ज्ञाता वैश्य हुआ था । वह किसी राजा के देश में हुआ था था और बहुत धन-धान्य की समृद्धि से युक्त था ।५४। वह किसी समय में अरण्यों में विचरण कर रहा था और वहाँ पर उसने एक स्थल में उत्तम निधि देखी थी । वह वैश्य भी लोभ से मुक्त होकर उसके लेने का उपक्रम करने लगा था ।५५। उस निधि का रक्षक एक पिशाच था । वह उसी समय में वहाँ पर आगया था और उससे बोला । मैं बहुत समय से भूखा हूँ और यहाँ पर निवास करता हुआ इस निधि की रक्षा कर रहा हूँ ।५६।

तस्मात्तत्परिहाराय मम दत्वा गवामिषम् ।
कामतः प्रतिगृह्णीष्व निधिमेनं ममाज्ञया ॥५७

स तस्मै तत्परिश्रुत्य दास्यामीति गवामिषम् ।
आदत्त च निधिं तं तु पिशाचेनानुमोदितः ॥५८
न प्रादाच्च ततो मौढ्यात्तस्मै यत्तत्प्रतिश्रुतम् ।
प्रतिश्रुताप्रदानोत्थरोषं न श्रद्दधे नृप ॥५९
तमेवं सुचिरं कालं प्रतीक्ष्याशनकांक्षया ।
अपनीतधनः सोऽपि ममार व्यथितः क्षुधा ॥६०
वैश्योऽपि बालो मरणं संप्राप्य सगरस्य तु ।
बभूव काले केशिन्यां तनयोऽन्वयवर्द्धनः ॥६१
अशरीरः पिशाचेऽपि पूर्ववैरमनुस्मरन् ।
वायुभूतोऽविशद्देहं राजपुत्रस्य भूपते ॥६२
तेनाविष्टस्ततः सोऽपि क्रूरचित्तोऽभवत्तदा ।
मतिविभ्रंशमासाद्य मुहुस्तेन बलात्कृतः ॥६३

इसलिए मेरी क्षुधा को दूर करने के वास्ते तुम मुझको गो मांस लाकर दो और तभी फिर मेरी आज्ञा से इस महान् निधि का ग्रहण करो ।५७। उस वैश्य ने उसके सामने प्रतिज्ञा की थी कि मैं आपको गौओं का मांस लाकर दे दूँगा। फिर पिशाच की अनुमति से उस निधि का ग्रहण कर लिया था ।५८। और मूर्खता से उसको खाने के लिए वह वस्तु नहीं दी थी जिसके देने की उससे प्रतिज्ञा की थी । हे नृप ! प्रतिज्ञा करके भी गौ मांस न देने से उसका बड़ा क्रोध हो गया था । जिसको वह सहन नहीं कर सका था ।५९। उस पिशाच ने बहुत लम्बे समय तक खाने की इच्छा से प्रतीक्षा की थी किन्तु जब वह वैश्य न पहुँचा तो उस पिशाच ने क्षुधा से व्यथित होकर उसका समस्त धन छीन लिया और उसको मार भी डाला था ।६०। वह वैश्य भी मृत्युगत होकर फिर सगर के यहाँ बालक होकर जन्मधारी हुआ था । जब समय प्राप्त हुआ था तो वह केशिनी का पुत्र वंश को वृद्धि करने वाला हुआ था ।६१। वह पिशाच भी शरीरधारी तो था नहीं, हे भूपते ! उसने अपने पूर्व के होने वाले वैर का अनुस्मरण करके वायुभूत होकर उसी राजा सगर के पुत्र के पुत्र के देह में प्रवेश कर लिया था ।६२। उसी के द्वारा आविष्ट होकर वह भी फिर बड़ा भारी क्रूर हाचित्त बोला

गया था । मति का विभ्रंश हो गया था और वह बार-२ बल पूर्वक असदाचरण करने लग गया था ।६३।

असमंजसत्वं नगरे चक्रे सोऽपि नृशंसवत् ।
बालांश्च यूनः स्थविरान्योषितश्च सदा खलः ।।६४
हत्वा हत्वा प्रचिक्षेप सरय्वामतिनिर्दयः ।
ततः पौरजनाः सर्वे दृष्ट्वा तस्य कदर्यताम् ।।६५
बहुशो निकृतास्तेन गत्वा राज्ञे व्यजिज्ञपन् ।
राजा च तदुपश्रुत्य तमाहूय प्रयत्नतः ।।६६
वारयामास बहुधा दुःखेन महतान्वितः ।
बहुशः प्रतिषिद्धोऽपि पित्रा तेन महात्मना ।।६७
जले तप्ते च संतप्ताः सं बभूवुर्यथा यवाः ।
नाशकत्तं यदा पापाद्विनिवर्त्तयितुं नृपः ।।६८
लोकापवादभीरुत्वाद्विषयानत्यजत्तदा ।।६६

उसने भी फिर तो अपने नगर में एक नृशंस के ही समान असमंकरदी थी । वह खल ऐसा दुष्ट हो गया था कि छोटे बालकों को—युवकों को—वृद्धों को और स्त्रियों को सदा ही पकड़ लिया करता था ।६४। सबको मार-मार कर वह अत्यन्त निर्दयता से सरयू नदी में फैंक दिया करता था । फिर तो सभी नगर निवासियों ने उसकी उस नीचता को देखा था । वह सभी का निरादर करके डाँट देता था । ऐसा जब बहुत बार हुआ जो उन सबने जाकर राजा से कहा था और राजा ने अब यह सुना तो उसको प्रयत्न पूर्वक अपने समीप में बुलाया था । राजा ने कितनी ही बार ब त अधिक दुःख से संयुत होकर उसको इस महान नीच कुकर्म से रोका था । बहुत बार उसको रोका भी गया था तो भी महात्मा पिता का कथन उसने नहीं माना था ।६५-५७। जिस तरह से संतप्त जल में यव हो जाते हैं उसी प्रकार की दशा राजा की हो गयी थी । जब राजा में उस महान पापकर्म से हटाने की शक्ति न रही थी तो बहुत ही वह दुःखित हो गया था । लोक में बड़ा भारी अपवाद होगा कि राजा ही का पुत्र ऐसा अन्याय करता है तो अब न्याय कहाँ होगा—इससे डरकर उसने उस समय में विषयों का त्याग किया था ।६८-६६।

अश्वमोचन वर्णन

जैमिनिरुवाच–

त्यक्त्वा पुत्रं स धर्मात्मा सगरः प्रेम तद्गतम् ।
धर्मशीले तदा बाले चकारांशुमति प्रभुः ॥१
एतस्मिन्नेव काले तु सुमत्यास्तनया नृप ।
ववृधुः संघशः सर्वे परस्परमनुव्रताः ॥२
वज्रसंहननाः क्रूरा निर्दया निरपत्रपाः ।
अधर्मशीला नितरामेकधर्माण एव च ॥३
एककार्याभिनिरताः क्रोधना मूढचेतसः ।
अधृष्याः सर्वभूतानां जनोपद्रवकारिणः ॥४
विनयाचारसन्मार्गनिरपेक्षाः समंततः ।
बबाधिरे जगत्सर्वमसुरा इव कामतः ॥५
विध्वस्तयज्ञसन्मार्गं भुवनं तैरुपद्रुतम् ।
निःस्वाध्यायवषट्कारं बभूवार्तं विशेषतः ॥६
विध्वस्यमाने सुभृशं सागरैर्वैरदर्पितैः ।
प्रक्षोभं परमं जग्मुर्देवासुरमहोरगाः ॥७

जैमिनी मुनि ने कहा—उस परम धर्मात्मा नृप सगर ने अपने पुत्र असमञ्जस का त्याग कर दिया था और उसमें जो उसका प्रेम था उसको तब तब धर्मशील बालक अंशुमान में उस प्रभु ने किया था ।१। इसी काल में सुमति नाम वाली रानी के जो साठ हजार पुत्र थे हे नृप ! वे सब समुदाय में समुत्पन्न होकर परस्पर में अनुव्रत होकर बढ़कर बड़े हो गये थे ।२। ये सभी एक ही धर्म वाले थे तथा वज्र के समान सुदृढ़ शरीरों वाले बहुत ही क्रूर-अत्यन्त निर्दयी और निर्लज्ज थे और निरन्तर अधर्म शील थे और धर्म को सर्वथा जानते ही नहीं थे ।३। ये सब एक ही कार्य में निरत रहते थे—बहुत अधिक क्रोधी और मूढ़ चित्तों वाले थे । ये सब समस्त प्राणियों को अधृष्य थे और जनों के लिए अत्यधिक पद्रवों के करने वाले थे ।४। ये सभी ओर से विनय पूर्वक आचरण और सन्मार्ग की अपेक्षा नहीं रखते थे । इन्होंने असुरों के ही समान स्वेच्छा से सम्पूर्ण जगत को बाधा पहुँचाई

थी ।५। उन्होंने यज्ञ के सन्मार्ग को विध्वस्त करके भुवन को उपद्रव से युक्त कर दिया था और इस जगत् को वेदाध्ययन और वषट्कार से रहित करके विशेष रूप से आर्त्त कर दिया था ।६। उस समय में वरदान से बढ़े हुए दर्प वाले सगर के पुत्रों के द्वारा बहुत अधिक विध्वस्तमान इस जगत् के हो जाने पर समस्त देव-असुर और महोरग अत्यधिक क्षोभ को प्राप्त हो गये थे ।७।

धरा सा सागराक्रांता न चलापि तदाचला ।
तपः समाधिभंगश्च प्रबभूव तपस्विनाम् ।।८
हव्यकव्यपरिभ्रष्टास्त्रिदशाः पितृभिः सह ।
दुःखेन महताविष्टा विरिञ्चिभवनं ययुः ।।९
तत्र गत्वा यथान्यायं देवाः शर्वपुरोगमाः ।
शशंसुः सकलं तस्मै सागराणां विचेष्टिम् ।।१०
तच्छ्रुत्वा वचनं तेषां ब्रह्मा लोकपितामहः ।
क्षणमंतर्मना भूत्वा जगाद सुरसत्तमः ।।११
देवाः शृणुत भद्रं वो वाणीमवहिता मम ।
विनंक्ष्यंत्यचिरेणैव सागरा नात्र संशयः ।।१२
कालं कंचित्प्रतीक्षध्वं तेन सर्वं नियम्यते ।
निमित्तमात्रमन्यत्तु स एव सकलेशिता ।।१३
तस्माद्युष्मद्धितार्थाय यद्वक्ष्यामि सुरोत्तमाः ।
सर्वैर्भवद्भिरधुना तत्कर्त्तव्यमतंद्रितैः ।।१४

यह वसुन्धरा अचला है तथापि उस समय में सगर के पुत्रों के द्वारा आक्रान्त होकर चलायमान हो गयी थी। उस समय में धरा की चलगति को देखकर बड़े-बड़े तपस्वियों की समाधि टूट गयी थी और तपश्चर्या कर भंग हो गया था ।८। देवगण भी पितरों के साथ अपने हव्य-कव्य से जो भी उनके लिए समर्पित किए जाते थे उनसे परिभ्रष्ट हो गए थे और उनको महान दुःख हो गया था तथा वे सभी अत्यन्त उत्पीड़ित होकर ब्रह्माजी के भवन पर गए थे ।९। वहाँ पर समस्त देवगण जिनमें शिव अग्रणी थे जाकर

न्याय के अनुरूप उन्होंने ब्रह्माजी से निवेदन किया था कि सगर नृप के पुत्रों की भूमि पर कैसी कुचेष्टायें हो रही हैं ।१०। सब लोकों के पितामह ब्रह्माजी उनके कहे वचनों कर श्रवण करके एक क्षण के अन्दर विचार वाले हुए थे और इसके पश्चात् सुरों में श्रेष्ठ ब्रह्माजी ने उनसे कहा—।११। हे देवगणों ! आप सबका कल्याण होवे । अब आप लोग सावधान होकर मेरी वाणी का श्रवण कीजिए जो भी कुछ मैं आपके सामने इस समय में कह रहा हूँ—ये सगर के पुत्र सबके सब विनष्ट हो जायेंगे—यह सर्वथा सत्य है इसमें कुछ भी संशय नहीं है ।१२। कुछ काल पर्यन्त प्रतीक्षा करो। समय के ही द्वारा सब नियमित हो जाया करता है । यह काल बड़ा बलवान है । अन्य तो केवल निमित्त ही हुआ करते हैं करने वाला तो वास्तव में काल ही होता है । यह ही सबको खाने वाला होता है । इसके सामने सब बल-वैभव और प्रताप धूल में मिल जाया करते हैं ।१३। हे सुरश्रेष्ठो ! मैं आप सभी के हित-सम्पादन होने के लिए जो भी कुछ कहूँगा वही अब आप सब को अतन्द्रित होकर कर डालना चाहिए ।१४।

विष्णोरंशेन भगवान्कपिलो जयतां वरः ।
जातो जगद्धितार्थाय योगीन्द्रप्रवरो भुवि ।।१५

अगस्त्यपीतसलिले दिव्यवर्षशतावधि ।
ध्यायन्नास्तेऽम्बुनांऽभोधादेकांते तत्र कुत्रचित् ।।१६

गत्वा यूयं ममादेशात्कपिलं मुनिपुंगवम् ।
ध्यानावसानमिच्छंतस्तिष्ठध्वं तदुपह्वरे ।।१७

समाधिविरतौ तस्य स्वाभिप्रायमशेषतः ।
नत्वा तस्मै वदिष्यध्वं स वः श्रेयो विधास्यति ।।१८

समाधिभंगश्च मुनेर्यथा स्यात्सागरैः कृतः ।
कुरुध्वं च तथा यूयं प्रवृत्तिं विबुधोत्तमाः ।।१९

जैमिनिरुवाच—

इत्युक्तास्तेन विबुधास्तं प्रणम्य पितामहम् ।
गत्वा तं त्रिबुधश्रेष्ठं ते कृतांजलयोऽब्रुवन् ।।२०

देवा ऊचुः—

प्रसीद नो मुनिश्रेष्ठ वयं त्वां शरणं गताः ।

उपद्रुतं जगत्सर्वं सागरैः संप्रणश्यति ॥२१

जपशीलों में श्रेष्ठ भगवान् कपिल मुनि भगवान विष्णु के ही अंश से इस जगत के हित के लिए समतीर्ण हुए है। यह विष्णु भगवान का ही अंशावतार है और भूमण्डल में योगीन्द्रों में परम श्रेष्ठ हैं।१५। अगस्त्य मुनि के द्वारा इस विशाल सागर का जल पी लेने पर दिव्य सौ वर्षों की अवधि हो गयी है वे इसी अम्भोधि में वहाँ पर किसी स्थल में इस समय में इस समय में ध्यान करने वाले स्थित हैं।१६। मेरा यह आदेश है कि आप लोग मुनियों में परम श्रेष्ठ कपिलजी के समीप में चले जाओ। जब उनकी ध्यानावस्था का अन्त होवे तब तक इच्छा रखने वाले आप लोग वहीं उप-गह्वर में संस्थित रहें।१७। जब उनकी समाधि समाप्त हो जावे तभी आप अपना अभिप्राय पूर्ण रूप से नमस्कार करके उनको बतला देवें। वही ऐसे शक्तिशाली हैं कि वे आप लोगों का कल्याण कर देंगे।१८। हे देवगणो! जिस भी रीति से उन मुनिवर की समाधि का भङ्ग सगर के पुत्रों द्वारा किया हुआ होवे आप लोगों को वैसी ही प्रवृत्ति करनी चाहिए। इसी से आप का कार्य सुसम्पन्न हो जायगा।१९। जैमिनि मुनि ने कहा—पितामह के द्वारा जब देवगणों से इस तरह से कहा था तो वे सब पितामह को प्रणाम करके उन देवों में श्रेष्ठ मुनिवर के समीप में चले गये थे और हाथ जोड़कर उन्होंने उनसे कहा था।२०। देवों ने कहा—हे मुनिश्रेष्ठ! आप हमारे ऊपर प्रसन्न हो जाइए। हम लोग आपकी शरणागति में प्राप्त हुए हैं। राजा सगर के पुत्रों ने जगत् में बड़ा उपद्रव मचा दिया है और ऐसा हो गया है कि यह सम्पूर्ण जगत् विनष्ट ही हो जायगा।२१।

त्वं किलाखिललोकानां स्थितिसंहारकारणः ।

विष्णोरंशेन योगींद्रस्वरूपो भुवि संस्थितः ॥२२

पुंसां तापत्रयार्त्तानामार्तिनाशाय केवलम् ।

स्वेच्छया ते धृतो देहो न तु त्वं तपतां वरः ।२३

ममसैव जगत्सर्वं स्रष्टुं संहर्तुमेव च ।

विधातुं स्वेच्छया ब्रह्मन्भवाञ्छक्नोत्यसंशयम् ॥२४

त्वं नो धाता विधाता च त्वं गुरुस्त्वं परायणम् ।
परित्राता त्वमस्माकं विनिवर्त्तय चापदम् ॥२५
शरणं भव वि ेंद्र वि न्द्राणां विशेषतः ।
सागरैर्दह्यमानानां लोकत्रयनिवासिनाम् ॥२६
ननु वै सात्विकी चेष्टा भवतीह भवादृशाम् ।
त्रातुमर्हसि तस्मात्वं लोकानस्मांश्च सुव्रत ॥२७
न चेदकाले भगवन्विनंक्ष्यत्यखिलं जगत् ।
जैमिनिरुवाच—
इत्युक्तः सकलैर्देवैरुन्मील्य नयने शनैः ॥२८

आप तो समस्त लोकों की स्थिति और संहार के कारण हैं। आप तो भगवान् विष्णु के अंश से ही अवतीर्ण हुए हैं और इस भूमण्डल में योगीन्द्र के स्वरूप को धारण करके समवस्थित हैं।२२। आप कोई महान् श्रेष्ठ तपस्वी ही नहीं हैं। आपने तो अपने इस देह को अपनी ही इच्छा से धारण किया है और यह भी केवल तीनों तापों से अत्यधिक आर्त्त पुरुषों की आर्त्ति पुरुषों की आर्त्ति के ही विनाश के लिए धारण किया है।२३। हे ब्रह्मन् ! आप तो एसे अद्भुत शक्तिशाली हैं कि अपने मन से ही इस सम्पूर्ण जगत् का सृजन, संस्थिति और संहार अपनी इच्छा के अनुसार बिना किसी संशय के कर सकते है।२४। आप तो हमारे धाता और विधाता हैं तथा आप गुरु हैं और परायण हैं। आप हमारा परित्राण भी करने वाले हैं। अब आप हमारी इस वर्त्तमान आपदा को दूर भगाइए।२५। हे विप्रेन्द्र ! आप हमारे रक्षक होइए और विशेष रूप से हम विप्रों की रक्षा करने वाले होइए। हम तीनों लोकों में निवासी सगर के पुत्रों के द्वारा दह्यमान हो रहे हैं।२६। हे सुव्रत ! इस लोक में आप जैसे महापुरुषों की सात्विकी चेष्टा हुआ करती है। इसलिए आप समस्त लोकों की और हमारी रक्षा करने के योग्य हैं।२७। हे भगवान् ! यदि आप ही हम सबकी रक्षा नहीं करेंगे तो यह सम्पूर्ण जगत् अकाल में ही विनष्ट हो जायगा। जैमिनि मुनि ने कहा—जब इस प्रकार से सब देवगणों ने अभ्यर्थना की थी तो कपिल मुनि ने धीरे से अपने दोनों नेत्रों को खोला था।२८।

विलोक्य तानुवाचेदं कपिलः सूनृतं वचः ।

स्वकर्मणैव निर्दग्धाः प्रविनङ्क्ष्यंति सागराः ।।२९
काले प्राप्ते तु युष्माभिः स तावत्परिपाल्यताम् ।
अहं तु कारणं तेषां विनाशाय दुरात्मनाम् ।।३०
भविष्यामि सुरश्रेष्ठा भवतामर्थसिद्धये ।
मम क्रोधाग्निविप्लुष्टाः सागराः पापचेतसः ।।३१
भविष्यंतु चिरेणैव कालोपहृतबुद्धयः ।
तस्माद्गतज्वरा देवा लोकाश्चैवाकुतोभयाः ।।३२
भवंतु ते दुराचाराः क्षिप्रं यास्यंति संक्षयम् ।
तद्यूयं निर्भया भूत्वा व्रजध्वं स्वां पुरीं प्रति ।।३३
कालं कंचित्प्रतीक्षध्वं ततोऽभीष्टमवाप्स्यथ ।
कपिलेनैवमुक्तास्ते देवाः सर्वे सवासवाः ।।३४
तं प्रणम्य ततो जग्मुः प्रतीताग्निदिवं प्रति ।
एतस्मिन्नंतरे राजा सगरः पृथिवीपतिः ।।३५

फिर उस सबका अवलोकन करके कपिल भगवान ने यह परम सुनृत वचन कहा था । ये सगर के पुत्र सब अपने ही कर्म से निर्दग्ध होकर विनष्ट होकर विनष्ट हो जायेंगे ।२९। जब भी इनके विनाश का काल प्राप्त होगा तभी नाश होगा । तब तक उस काल की आप सब लोग प्रतीक्षा कीजिए । और मैं तो उन दुष्ट आत्मा वालों के विनाश करने का कारण बनूंगा ।३० हे सुरश्रेष्ठो ! आप लोगों के अर्थ की सिद्धि के लिए केवल मैं कारण स्वरूप बनूंगा । महापापी ये सगर के पुत्र मेरे क्रोध की अग्नि से विप्लुष्ट होकर भस्मीभूत हो जायेंगे ।३१। ऐसा ही काल होगा कि इन सबकी बुद्धि उपहृत हो जायगी और चिरकाल में इनका विनाश होगा । इसलिए सभी देवों का दुःख दूर हो जायगा और सभी लोक सभी ओर से भयहीन हो जायेंगे ।३२। वे सभी बुरे आचरण वाले हो जायेंगे । इसलिए अब आप लोग सब निर्भय होकर अपनी पुरी की ओर गमन कीजिए ।३३। आप लोगों को कुछ काल की प्रतीक्षा अवश्य ही करनी होगी । तभी आप अपने अभीप्सित की प्राप्ति करेंगे । जब इस प्रकार से कपिल मुनि के द्वारा देवगणों से कहा गया था तो इन्द्र के सहित सब देवों ने उनका अभिवादन किया था ।३४।

फिर उन मुनीश्वर को प्रणाम करके परम समाश्वस्त होकर उन सबने स्वर्ग की ओर प्रस्थान किया था। इसी बीच में पृथिवी के स्वामी राजा सगर ने एक महान् यज्ञ करने का विचार मन में किया था।३५।

वाजिमेधं महायज्ञं कर्तुं चक्रे मनोरथम् ।
आहृत्य सर्वसंभारान्वसिष्ठानुमते तदा ॥३६
और्वाद्यैः सहितो विप्रैर्यथावद्दीक्षितोऽभवत् ।
दीक्षां प्रविष्टो नृपतिर्हयसंचारणाय वै ॥३७
पुत्रान्सर्वान्समाहूय संदिदेश महयशाः ।
संचारयित्वा तुरगं परीत्य पृथिवीतले ॥३८
क्षिप्रं ममांतिकं पुत्राः पुनराहर्तुमर्हथ ।
जैमिनिरुवाच—
ततस्ते पितुरादेशात्तमादाय तुरंगमम् ॥३९
परिचक्रमयामासुः सकले क्षितिमंडले ।
विधिचोदनयैवाश्वः स भूमौ परिवर्त्तितः ॥४०
न तु दिग्विजयार्थाय करादानार्थमेव च ।
पृथिवीभूभुजा तेन पूर्वमेव विनिर्जिता ॥४१
नृपाश्चोदारवीर्येण करदाः समरे कृताः ।
ततस्ते राजतनया निस्तोये लवणांबुधौ ॥४२
भूतले विविशुर्हृष्टाः परिवार्य तुरंगमम् ॥४३

उस समय में वसिष्ठ मुनि की अनुमति से सगर नृपति ने अश्वमेध नामक एक महान् यज्ञ के करने का मन में मनोरथ किया था और उस यज्ञ कार्य के सम्पादन करने के लिये सभी सम्भारों का समाहरण किया गया था।३६। उस समय में और्व आदि जो विप्र थे उनके द्वारा राजा विधि-विधान के साथ दीक्षित हुआ था। जब राजा ने दीक्षा लेकर यज्ञ का समाचरण करने के लिये दीक्षा में प्रविष्ट हो गया था तो उसमें जो अश्व छोड़ा जाता है उसके भली भाँति चारण करने के लिये नियुक्ति की थी।३७। महा यशस्वी सगर ने उन सब सहस्र पुत्रों को अपने समीप में बुलाकर उनको

आदेश दिया था । इस अश्व को इस पृथ्वी तल में चारों ओर चारण कराने को गमन करो ।३८। फिर हे पुत्रो ! शीघ्र ही आप लोग घुमाकर इस अश्व को फिर मेरे पास ले आओ । जैमिनि मुनि ने कहा—इसके अनन्तर उन पुत्रों ने अपने पिताश्री की आज्ञा से उस अश्व को वहाँ से अपने साथ में ले लिया था ।३९। उन्होंने उस अश्व को समस्त पृथिवी तल में चारों ओर घुमाया था । विधि की प्रेरणा से ही वह अश्व भूमि में परिवर्त्तित हो गया था ।४०। उस राजा ने अश्व को दिग्विजय करने के लिये तथा करों का आदान करने के लिये तो छोड़ा ही नहीं था क्योंकि समस्त नृपों को तो नृप सगर ने पहिले ही जीत लिया था ।४१। उदार वीर्य वाले सगर ने सभी नृपों को समर में कर देने वाले बना लिया था । इसके पश्चात् जब वह अश्व दिखाई नहीं दिया था तो फिर उन समस्त राजपुत्रों ने जल से रहित क्षार सागर के पास गमन किया था ।४२। उस अश्व को परिवारित करके उन सबने भूतल के अन्दर प्रसन्न होकर प्रवेश किया था ।४३।

सगर विनाश वर्णन

जैमिनिरुवाच–

तेषु तत्र निविष्टेषु वासवेन प्रचोदितः ।
जहार तुरगं वायुस्तत्क्षणेन रसातलम् ।।१
अदृष्टमश्वं तैः सर्वैरपहृत्य सदागतिः ।
अनयत्तत्पथा राजन्कपिलस्यांतिकं मुनेः ।।२
ततः समाकुलाः सर्वे विनष्टेऽश्वे नृपात्मजाः ।
परीत्य वसुधां सर्वां प्रमार्गंतस्तुरंगमम् ।।३
विचित्य पृथिवीं ते तु स पुराचलकाननाम् ।
अपश्यंतो यज्ञपशुं दुःखं महदवाप्नुवन् ।।४
ततोऽयोध्यां समासाद्य ऋषिभिः परिवारिताम् ।
दृष्ट्वा प्रणम्य पितरं तस्मै सर्वं न्यवेदयन् ।।५
परीत्य पृथ्वीमस्माभिर्निविष्टे वरुणालये ।
रक्ष्यमाणोऽपि पश्यद्भिः केनापि तुरगो हृतः ।।६

इत्युक्तस्तैरुषाविष्टस्तानुवाच नृपोत्तमः ।
प्रयास्यध्वमधर्मिष्ठाः सर्वेऽनावृत्तये पुनः ।।७

जैमिनि मुनि ने कहा—वे सगर के पुत्र जब वहाँ प्रविष्ट हो गये थे तो इसके अनन्तर इन्द्रदेव के द्वारा प्रेरणा प्राप्त करके वायु ने उसी क्षण में उस अश्व का हरण करके रसातल में पहुँचा दिया था ।१। जब उन सगर पुत्रों ने वहाँ कहीं पर भी उस अश्व को नहीं देखा था । वायु देव ने उसका अपहरण करके हे राजन् ! उसी मार्ग से कपिल मुनि के समीप में पहुँचा दिया था ।२। उस अश्व के वहाँ पर न दिखलाई देने पर सब नृप के पुत्र बहुत ही अधिक बेचैन हो गये थे और सम्पूर्ण पृथ्वी परिक्रमा लगाकर उस अश्व को खोज कर रहे थे ।३। उन्होंने पहिले सम्पूर्ण भूतल पर उस अश्व को ढूंढ़ा था फिर सब नगर-पर्वत और वनों में उसकी खोज की थी । जब उन्होंने कहीं पर भी उस यज्ञ के पशु अश्व को नहीं देखा था तो उन सबके हृदयों में बड़ा भारी दुःख हुआ था ।४। फिर वे सब अनेक ऋषियों से घिरी हुई अयोध्या पुरी में समागत हो गये थे । अपने पिता सगर का दर्शन कर उन्होंने प्रणाम करके सभी घटित घटना के विषय में अपने पिता से निवेदन किया था ।५। उन्होंने कहा—हम सबने पूरी पृथ्वी की परिक्रमा करके फिर वरुणालय (सागर) में प्रवेश किया था । हम उस अश्व को बराबर देखते रहे थे किन्तु हमारे द्वारा रक्षा किया हुआ भी वह अश्व को किसी के द्वारा सहसा हरणकर लिया गया है ।६। जब इस रीति से उनके द्वारा राजा सगर से कहा गया था तो यह सुनकर उसको बड़ा भारी क्रोध हो गया था और उस उत्तम नृप ने उन सबसे यह कहा था—तुम सब बड़े पापी हो, यहाँ से इसी समय निकलकर चले जाओ और फिर लौटकर अपना मुँह मत दिखाना ।७।

कथं भवद्भिर्जीवद्भिर्विनष्टो वै दुरात्मभिः ।
तुरगेण विना सत्यं नेहागमनमस्ति वः ।।८
ततः समेत्य तस्मात्ते संप्रयाताः परस्परम् ।
ऊचुर्न दृश्यतेऽद्यापि तुरगः किं प्रकुर्महे ।।९
वसुधा विचिताऽस्माभिः सशैलवनकानना ।
न चापि दृश्यते वाजी तद्वार्त्तापि न कुत्रचित् ।।१०

तस्मादब्धेः समारभ्य पातालवधि मेदिनीम् ।
विभज्य खात्वा पातालं विविशाम तुरंगमम् ॥११
इति कृत्वा मतिं सर्वे सागराः क्रूरनिश्चयाः ।
निचख्नुर्भूमिमंबोधेस्तटादारभ्य सर्वतः ॥१२
तैः खन्यमाना वसुधा रराम भृशविह्वला ।
चुक्रुशुश्चापि भूतानि दृष्ट्वा तेषां विचेष्टतम् ॥१३
ततस्ते भारतं खंडं खात्वा संक्षिप्य भूतले ।
भूमेर्योजनसाहस्रं योजयामासुरंबुधौ ॥१४

तुम सबने जीवित रहते हुए ही किस तरह से उस अश्व को खो दिया है ! तुम बड़े डरपोक हो । जब वह अश्व ही नहीं हैं तो उसके बिना आप सबका यहाँ पर आगमन सचमुच नहीं होना चाहिए ।८। इसके अनन्तर वे सब इकट्ठे होकर वहाँ से प्रयाण कर गये थे और परस्पर में कहते थे कि अभी तक भी वह अश्व कहीं पर भी दिखलाई नहीं दे रहा है। हम अब क्या करें ।९। हमने सम्पूर्ण वसुधा तो देख डाली है और पर्वत-वन और कानन भी देख लिये हैं किन्तु वह अश्व कहीं पर भी दिखाई नहीं दे रहा है। अश्व का दिखाई देना तो दूर रहा, उसकी कहीं पर चर्चा भी नहीं हो रही है कि वह कहाँ पर होकर निकला था ।१०। इसलिए समुद्र से आरम्भ करके पाताल पर्यन्त इस भूमि का विभाजन कर खोद डालें और पाताल में उस अश्व की खोज करें ।११। फिर सगर के पुत्रों ने यही अपना विचार बना लिया था और उन सबका यह बड़ा ही क्रूर निश्चय था। उन सबने समुद्र के तट से आरम्भ करके सब ओर से उस भूमि को खोदना आरम्भ कर दिया था ।२१। उनके द्वारा खोदी जाने वाली भूमि बहुत ही बेचैन होती हुई उत्पीड़ित हुई थी। उन सबके इस महान भीषण कृत्य को देखकर समस्त प्राणी रोने लग गये थे ।१३। इसके पश्चात उन्होंने भूमण्डल में भारतखण्ड को खोदकर संक्षिप्त कर दिया था और भूमि के एक सहस्र योजन भाग को सागर के स्वरूप में योजित कर दिया था जिससे यह भूभाग कम हो गया था ।१४।

आपातालतलं ते तु खनंतो मेदिनीतलम् ।
चरंतमश्वं पाताले ददृशुर्नृपनन्दनाः ॥१५

संप्रहृष्टास्ततः सर्वे समेत्य च समंततः ।
संतोषाज्जहसुः केचिन्ननृतुश्च मुदान्विताः ॥१६
ददृशुश्च महात्मानं कपिलं दीप्ततेजसम् ।
वृद्धं पद्मासनासीनं नासाग्रन्यस्तलोचनम् ॥१७
ऋज्वायतशिरोग्रीवं पुरोविष्टब्धवक्षसम् ।
स्वतेजसाऽभिसरता परिपूर्णेन सर्वतः ॥१८
प्रकाश्यमानं परितो निवातस्थप्रदीपवत् ।
स्वांतप्रकाशिताशेषविज्ञानमयविग्रहम् ॥१६
समाधिगतचित्तं तु निभृतांभोधिसन्निभम् ।
आरूढयोगं विधिवद्धयेयसलीनसम् ॥२०
योगींद्रप्रवरं शांतं ज्वालामालमिवानलम् ।
विलोक्य तत्र तिष्ठंतं विमृशंतः परस्परम् ॥२१

उन नृप के पुत्रों ने उस समय भूमि को खोदते हुए पाताल लोक के तले तक खोद डाला था और उसके अन्दर पाताल में फिर उस अश्व को देखा था ।१५। फिर जब उनको वह यज्ञ का अश्व वहाँ दिखाई पड़ गया तो सब चारों ओर से एकत्रित होकर बहुत अधिक प्रसन्न हुए थे । उनका बहुत अधिक सन्तोष हो गया था । उनमें कुछ तो बहुत अधिक हँसने लगे थे और कुछ परमानन्दित होते हुए नाचने लग गये थे ।१६। वहाँ पर महान आत्मा वाले कपिल मुनि का दर्शन किया था जो कि परम वृद्ध थे और तेज से देदीप्यमान हो रहे थे । उन्होंने पद्मासन बाँध रक्खा था । इस तरह से बैठकर अपने नेत्रों को नासिका के अग्रभाग लगाकर ध्यान में योग क्रिया के अनुसार मग्न हो रहे थे ।१७। उनका शिर और ग्रीवा एकदम सीधे थे और आगे की ओर उनका वक्षःस्थल विष्टब्ध था । उनका परिपूर्ण तेज सभी ओर से अभिसरण कर रहा था अर्थात् उनका अपना आत्म तेज उनके चारों ओर एक मण्डलाकार में उद्दीप्त होकर दिखाई दे रहा था ।१८। जिस तरह से निर्वात स्थान में एक रस दीपक की लौ प्रकाशित हुआ करती है कि उसी भाँति से सब ओर उनका तेज प्रकाशित होता हुआ दिखाई दे रहा था । उनके अपने अन्तःकरण में प्रकाशित जो विज्ञान था उसी से परिपूर्ण उनका कलेवर था ।१६। समाधि में उनका संलग्न चित्त छिपे हुए समुद्र के ही

समान था और वे विधि के साथ योगाभ्यास में समारूढ़ होकर अपने ध्येय परब्रह्म में संलग्न मन वाले थे ।२०। उन्होंने परम शान्त योगीन्द्रों में अधिक श्रेष्ठ मुनि का अवलोकन किया तो ऐसा उस समय में आभास हो रहा था कि यह कोई जलती हुई ज्वालाओं की मालाओं से परिपूर्ण साक्षात् अग्नि का ही स्वरूप है। जब उनको समाधि स्थित सबने देखा था तो सब आपस में विचार करने लगे थे कि यह अत्यधिक तेजस्वी कौन महापुरुष है ।२१।

मुहूर्त्तमिव ते राजन्साध्वसं परमं गताः ।
ततोऽयमश्वहर्त्तेति सागरा कालचोदिताः ।।२२
परिवव्रुर्दुरात्मानः कपिलं मुनिसत्तमम् ।
ततस्तं परिवार्योचुश्चौरोऽयं नात्र संशयः ।।२३
अश्वहर्त्ता ततोह्येष वध्योऽस्माभिर्दुराशयः ।
तं प्राकृतवदासीनं ते सर्वे हतबुद्धयः ।।२४
आसन्नमरणाश्चक्रुर्धर्षितं मुनिमंजसा ।
जैमिनिरुवाच–
ततो मुनिरदीनात्मा ध्यानभंगप्रधर्षितः ।।२५
क्रोधेन महताऽऽविष्टश्चुक्षुभे कपिलस्तदा ।
प्रचचाल दुराधर्षो धर्षितस्तैर्दुरात्मभिः ।।२६
व्यजृंभत च कल्पांते मरुद्भिरिव चानलः ।
तस्य चार्णवगंभीराद्वपुषः कोपपावकः ।।२७
दिधक्षुरिव पातालाल्लोकान्सांकर्षणोऽनलः ।
शुशुभे धर्षणक्रोधपरामर्शविदीपितः ।।२८

हे राजन ! मुहूर्त मात्र समय तक तो दङ्ग से होकर रह गये थे और उनको बड़ा भारी डर लगा था। फिर भावी की प्रबलता से प्रेरित होकर उन सगर के पुत्रों ने यही निश्चय बना लिया कि हो न हो यही इस अश्व के हरण करने वाला है ।२२। उन दुष्ट आत्माओं वालों ने परम श्रेष्ठ मुनि कपिल को चारों ओर घेर लिया था और घेरा डालकर उन्होंने कहा था–यही चोर है—इसमें लेश भर भी संशय नहीं है ।२३। क्योंकि इसने अश्व का अपहरण किया है इसलिए इस बुरे विचार वाले का हमको वध कर

डालना चाहिए। उन सबकी बुद्धि तो होनहार के वश क्षीण हो गयी थी और उनकी मृत्यु निकट में प्राप्त हो रही थी। उन सबने योगासीन उस मुनि को एक साधारण मनुष्य के ही समान सहसा धर्षित किया था अर्थात् डाट-फटकार लगाना आरम्भ कर दिया था। जैमिनी मुनि ने कहा—इसके पश्चात् यह हुआ था कि जब उन सबने बहुत शोर मचाया तो मुनि का ध्यान टूट गया था और अत्युच्च आत्मा वाले मुनि कपिल प्रधर्षित हो गये थे।२४-२५। उस समय में ध्यान के भङ्ग हो जाने से कपिल मुनि को महान् क्रोध हो गया था और उस समय में विष्ट उनके हृदय में बड़ा भारी क्षोभ हो गया था। वे तो इतने तेजस्वी थे कि उनके ऊपर किसी का भी प्रभाव नहीं पड़ सकता था और उनका दबा देना महान कठिन था। जब उन दुरात्माओं ने धर्षित करने का प्रयास किया था तो वे संचलित हो गये थे। उस समय में कपिल मुनि ऐसे ही क्रोधवेश में देदीप्यमान दिखाई पड़ रहे थे जैसे कल्प के अन्त में सर्व संहारक वायु से प्रेरित अग्नि होता है। उस समय में समुद्र के समान परम गम्भीर उनके शरीर से कोपाग्नि निकल रही थी।२६-२७। वह सर्वसंहारक क्रोधाग्नि पाताल लोकों को दग्ध करने वाले के ही समान था और धर्षण अर्थात् फटकार से जो क्रोध उत्पन्न हो गया था उसके होने से अत्यधिक प्रदीप्त होकर वह शोभित हो रहा था।२८।

उन्मीलयत्तदा नेत्रे वह्निचक्रसमद्युतिः ।
तस्याऽक्षिणी क्षणं राजन्राजेतां सुभृशारुणे ॥२९

पूर्वसंध्यासमुदितौ पुष्पवंताविवांबरे ।
ततोऽभ्युद्वर्त्तमानाभ्यां नेत्राभ्यां नृपनंदनान् ॥३०

अवैक्षत च गंभीरः कृतांतः कालपर्यये ।
क्रुद्धस्य तस्य नेत्राभ्यां सहसा पावकार्चिषः ॥३१

निश्चेरुरभितो दिक्षु कालाग्नेरिव संतताः ।
सधूमकवलोदग्राः स्फुलिंगौघमुचो मुहुः ॥३२

मुनिक्रोधानलज्वालाः समंताद्व्यानशुर्दिशः ।
व्यालोदरौग्रकुहरा ज्वालास्तन्नेत्रनिर्गताः ॥३३

विरेजुर्निभृतांभोधेर्वडवाग्नेरिवार्चिषः ।

क्रोधाग्निः सुमहाराज ज्वालाव्याप्तदिगंतरः ॥३४
दग्धांश्चकार तान्सर्वानावृण्वानो नभस्तलम् ॥३५

उस समय में कपिल मुनि ने अग्नि मण्डल के समान अपने नेत्रों को खोला था। हे राजन्! उनकी दोनों आँखें क्षण भर तो अत्यधिक अरुण दिखलाई देती हुई शोभा वाली हुई थीं।२६। और वे दोनों नेत्र पूर्व सन्ध्या में समुदित अम्बर में दो पुष्पों के ही सदृश प्रतीत हो रहे थे। इसके अनन्तर ही उन्होंने अपने खुले हुए नेत्रों को उन सब नृप सगर के पुत्रों पर डाला था।३०। संहार के समय में यमराज के ही तुल्य अत्यन्त गम्भीर मुनि ने नृप सुतों की ओर देखा था। अत्यधिक क्रोध तो समाधि के भङ्ग होने से उनको हो ही रहा था। परम क्रुद्ध उनके नेत्रों से अग्नि की ज्वालायें निकल रही थीं।३१। और वे ज्वालाएँ कालाग्नि के ही समान दिशाओं में सभी ओर फैली हुई थीं। धूम के समूहों से युक्त वे ज्वालाएँ अत्यन्त आगे की ओर बढ़ रही थीं और बारम्बार उनमें से अग्नि के कण छूटकर निकल रहे थे।३२। क्रोधाग्नि की ज्वालाओं ने सभी ओर दिशाओं को व्याप्त कर दिया था। उनके नेत्रों से निकलने वाली क्रोधाग्नि की ज्वालाएँ कालोदर के उग्र कुहरों वाली थीं तात्पर्य यह है कि ज्वालाओं के मण्डल की ऐसी व्याप्ति हो गयी थी। उस समय में कुहरे के समान कुछ भी दिखलाई नहीं दे रहा था।३३। हे सुमहाराज! उनके क्रोधाग्नि की ज्वालाएँ छिपे हुए समुद्र की बड़वाग्नि की ज्वालाओं के हो समान शोभित हो रही थीं और उन कपिल मुनि की क्रोधाग्नि ने सभी दिशाओं के अन्तर को व्याप्त कर रक्खा था वह सर्वत्र फैल गया था।३४। उस क्रोधाग्नि ने पूर्ण नभस्तल को आवृत करते हुए उन समस्त सगर के साठ सहस्र पुत्रों को दग्ध करके भस्मीभूत कर दिया था।३५।

सशब्दमुद्भ्रांतमरुत्प्रकोपविवर्त्तमानानलधूमजालैः।
महीरजोभिश्च नितांतमुद्धतैः समावृतं
लोकमभूद् भृशातुरम् ॥३६
ततः स वह्निर्विलिखन्निवाभितः समीरवेगाभि रमीभिरंबरम्।
शिखाभिरुर्वीशसुतानशेषतो ददाह सद्यः सुर-
विद्विषस्तान् ॥३७
मिषतः सर्वलोकस्य क्रोधाग्निस्तमृते हयम्।

सागरांस्तानशेषेण भस्मसादकरोत्स तान् ॥३८
एवं क्रोधाग्निना तेन सागरा: पापचेतस: ।
जज्वलु. सहसा दावे तरवो नीरसा इव ॥३९
दृष्ट्वा तेषां तु निधनं सागराणां दुरात्मनाम् ।
अन्योन्यमब्रुवन्देवा विस्मिता ऋषिभि: सह ॥४०
अहोदारुणपापानां विपाको न चिरायित: ।
दुरंत: खलु लोकेऽस्मिन्नराणामसदात्मनाम् ॥४१
यदि मे पर्वताकारा नृशंसा: क्रूरबुद्धय: ।
युगपद्विलयं प्राप्ता: सहसैव तृणाग्निवत् ॥४२

सरर-सरर करती हुई महाध्वनि से परिपूर्ण बड़ी जोरदार हवा के प्रकोप से चारों ओर फैली हुई अग्नि की धुँआ के गुब्बारों से और अत्यधिक ऊपर की ओर उठकर उड़ती हुई भूमि की धूलि के सम्पूर्ण लोक ढक सा गया था और बहुत ही अधिक लोक में विकलता हो गयी थी।३६। इसके पश्चात् वह अग्नि वायु के वेग से समाहृत शिखाओं से जो घूम-घूम करके ऊपर की ओर उठ रहीं थीं नभस्तल में मानों वे कुछ लिख रहीं होवें चारों ओर फैली हुई थी। उन्होंने उन सुरगण के शत्रु नृप के पुत्रों को पूर्णतया तुरन्त ही प्रदग्ध कर दिया था।३७। समग्र लोक का विनाश करने वाले उन सगर के पुत्रों का पूर्णतया उस कपिल मुनि की क्रोधाग्नि ने दाह करके राख की ढेरियाँ बना दिया था और उस यज्ञ के अश्व को छोड़ दिया था।३८। नीरस सूखे हुए वृक्ष तुरन्त ही दाव की अग्नि से जल जाया करते हैं उसी भाँति पुण्य रस विहीन पापात्मा के सगर सुत तुरन्त ही जल गये थे।३९। इस रीति से उन महान् दुष्ट सगर सुतों का निधन का अवलोकन करके सभी देवगण अत्यन्त विस्मय को प्राप्त हो गये थे और परस्पर में ऋषियों के साथ एक दूसरे से कहने लगे थे।४०। अहो! बड़े आश्चर्य की बात है कि महान् दारुण पाप करने वालों के पापों का निपाक कितनी शीघ्रता से हो गया है। निश्चय ही इस लोक में जो असत् आत्माओं वाले नर होते हैं उनका अन्त बड़ा ही दुःख से पूर्ण हुआ करता है। तात्पर्य यह है कि नीचों का विनाश तुरन्त ही अवश्यम्भावी होता है।।४१। यही बात है कि ये महान् क्रूर बुद्धि वाले निर्दयी जिनका कलेवराकार पर्वतों के सदृश था और कितनी अधिक संख्या में थे इस समय में तृण

में लगी हुई अग्नि के ही समान तुरन्त ही एक ही साथ विलय को प्राप्त हो गये हैं मानों हुए हो नहीं थे । आप उनका नाम मात्र ही रह गया है ।४२।

उद्वेजनीया भूतानां सद्भिरत्यंतगर्हिताः ।
आजीवांतमिमे हर्तु दिष्टचा संक्षयमागताः ॥४३
परोपतापि नितरां सर्वलोकजुगुप्सितम् ।
इह कृत्वाऽशुभं कर्म कः पुमान्विदते सुखम् ॥४४
विक्रोश्य सर्वभूतानि संप्रयाताः स्वकर्मभिः ।
ब्रह्मदंडहताः पापा निरयं शाश्वतीः समाः ॥४५
तस्मात्सदैव कर्त्तव्यं कर्म पुंसां मनीषिणाम् ।
दूरतश्च परित्याज्यमितरल्लोकनिंदितम् ॥४६
कर्त्तव्यः श्रेयसे यत्नो यावज्जीवं विजानता ।
नाचरेत्कस्यचिद्द्रोहमनित्यं जीवनं यतः ॥४७
अनित्योऽयं सदा देहः संपदश्चातिचंचलाः ।
संसारश्चातिनिस्सारस्तत्कथं विश्वसेद्बुधः ॥४८
एवं सुरमुनीन्द्रेषु कथयत्सु परस्परम् ।
मुनिक्रोधेंधनीभूता विनेशुः सगरात्मजाः ॥४९
निर्दग्धदेहाः सहसा भुवं विष्टभ्य भस्मना ।
अवापुर्निरयं सद्यः सागरास्ते स्वकर्मभिः ॥५०
सागरांस्तानशेषेण दग्ध्वा क्रोधजोऽनलः ।
क्षणेन लोकानखिलानुद्यतो दग्धुमंजसा ॥५१
भयभीतास्ततो देवाः समेत्य दिवि संस्थिताः ।
तुष्टुवुस्ते महात्मानं क्रोधाग्निशमनार्थिनः ॥५२

ये सभी प्राणियों के लिए उद्वेग करने वाले थे और सत्पुरुषों के द्वारा बहुत ही निन्दित समझे जाया करते थे । ये जीवन जब तक इनका रहा सबका अपहरण ही किया करते थे । अब बहुत ही अच्छा हुआ कि सबके सब बिनाश को प्राप्त हो गये हैं । यह तो एक प्रसन्नता की ही बात हुई है ।

।४३। जो निरन्तर ही दूसरे प्राणियों को उपताप दिया करता है तथा सदा ही सर्वत्र जिसकी लोग निन्दा किया करते हैं ऐसा इस लोक में परमाशुम कर्मों को करके कौन सा पुरुष है जो सुख प्राप्त करता है अर्थात् ऐसा कोई भी सुख नहीं प्राप्त करता है ।४४। सब प्राणियों को सता कर अपने ही कुकर्मों के द्वारा इस लोक से विदा होकर चल बसे हैं। ब्राह्मण के अपराध का दण्ड पाकर निहत हो गये हैं। ये महापापी सगर सुत निरन्तर सैकड़ों वर्षों तक नरक में रहेंगे ।४५। इस कारण से मनीषी पुरुषों को सर्वदा सत् कर्म ही करना चाहिए और जो दूसरे लोगों के द्वारा विनिन्दित कर्म हो उसका तो दूर से ही परित्याग कर देना चाहिए ।४६। मानव का परम कर्त्तव्य है कि जब तक भी उसका जीवन रहे सदा श्रेय के ही यत्न करना चाहिए क्योंकि उसको यह ज्ञान होना चाहिए कि शुभ कर्म ही सफल होता है और सदा बुरे कर्मों का बुरा ही परिणाम हुआ करता है कभी भी किसी के साथ द्रोह का समाचरण नहीं करे क्योंकि जिस जीवन में द्रोह करता है वही जीवन अनित्य है फिर द्रोह का पाप क्यों अर्जित किया जावे ।४७। यह देह तो सदा ही अनित्य है कोई चाहे कैसा भी क्यों न हो यहाँ सदा नहीं रहता है न रहा है और न कभी रहेगा। जिस सम्पदा के लिये मानव बड़े-बड़े कुत्सित कर्म किया करता है वह सम्पदा भी अत्यन्त चञ्चल है और कभी किसी के पास स्थिर नहीं रहा करती है। यह संसार अति निस्सार है अर्थात् सभी सांसारिक कर्मों में पारमार्थिक श्रेय नहीं हैं जो सार कहा जा सके। सभी यहाँ की बातें यहीं समाप्त हो जाया करती हैं फिर भी आश्चर्य यही है कि बुध पुरुष भी कैसे इसमें विश्वास किया करते हैं ।४८। इस रीति से सुरगण और मुनिगण परस्पर में कह रहे थे और नृप सगर के पुत्र सब के सब कपिल मुनि के क्रोध में इन्धन होकर विनष्ट हो गये थे। ।४९। वे सागर के पुत्र अपने ही कर्मों से दग्ध देहों वाले होकर सहसा भस्म के रूप में भूमि में मिल गये थे और तुरन्त ही नरक में पहुँच गये थे ।५०। मुनि के क्रोध की अग्नि ने पूर्ण रूप से उन सगर पुत्रों को दग्ध करके फिर वह अग्नि तुरन्त ही समस्त लोकों को दग्ध करने के लिये उद्यत हो गयी थी ।५१। तब सब देवगण भय से भीत हो गये थे और दिवलोक में ही संस्थित रहते हुए उस क्रोधाग्नि के शमन की इच्छा वालों ने उन महात्मा मुनि का स्तवन किया था ।५२।

———

कपिल आश्रम में अश्वानयन

जैमिनिरुवाच—

क्रोधाग्निमेनं विप्रेन्द्र सद्यः संहर्तु महंसि ।
नो चेदकाले लोकोऽयं सकलस्तेन दह्यते ॥१
दृष्टस्ते महिमानेन व्याप्तमासीच्चराचरम् ।
क्षमस्व संहर क्रोधं नमस्ते विप्रपुंगव ॥२
एवं संस्तूयमानस्तु भगवान्कपिलो मुनिः ।
तूर्णमेव क्षयं निन्ये क्रोधाग्निमतिभैरवम् ॥३
ततः प्रशांतमभवज्जगत्सर्वं चराचरम् ।
देवास्तपस्विनश्चैव बभूवुर्विगतज्वराः ॥४
एतस्मिन्नेव काले तु भगवान्नारदो मुनिः ।
अयोध्यामगमद्राजन्देवलोकाद्यदृच्छया ॥५
तमागतमभिप्रेक्ष्य नारदं सगरस्तदा ।
अर्घ्यपाद्यादिभिः सम्यक्पूजयामास शास्त्रतः ॥६
परिगृह्य च तत्पूजामासीनः परमासने ।
नारदो राजशार्दूलमिदं वचनमब्रवीत् ॥७

जैमिनी मुनि ने कहा—देवों ने कपिल मुनि से प्रार्थना की थी—विप्रेन्द्र ! आप इस क्रोध की महान् भीषण अग्नि का तुरन्त ही संहार करने के योग्य हैं । यदि इसका संहरण नहीं किया गया तो उससे अकाल में ही यह सम्पूर्ण लोक दाह को प्राप्त होता जा रहा है ।१। आपकी महिमा तो इसी से देखी जा चुकी है जो कि इस चराचर में व्याप्त थी । हे विप्रों में परम श्रेष्ठ ! अब क्षमा कीजिए और अपने क्रोध का संहरण कीजिए। आपकी सेवा में हम सबका प्रणाम है ।२। इस रीति से जब देवों के द्वारा उनकी स्तुति की गयी थी तो भगवान कपिल मुनि ने उस अत्यधिक भैरव क्रोधाग्नि का क्षय कर दिया था ।३। फिर यह समस्त चराचर जगत् प्रशान्त हो गया था और सब देवगण तथा तपस्वी गण दुःख से रहित हो गये थे अर्थात् इन सबका सन्ताप दूर हो गया था ।४। इसी समय में देवर्षि भगवान्

नारद मुनि स्वेच्छा से ही देवलोक से विचरण करते हुए अयोध्या पुरी में समागत हो गये थे ।५। राजा सगर ने जब भगवान् नारदजी को वहाँ पर प्राप्त हुए देखा तो शास्त्रानुसार अर्घ्य-पाद्य आदि से भली भाँति उनका अर्चन किया था ।६। नारदजी ने उसकी पूजा को ग्रहण करके आसन पर संस्थिति की थी और फिर उन्होंने उस नृप शार्दूल से यह वचन कहा था ।७।

नारद उवाच—

हयसंचारणार्थाय संप्रयातास्तवात्मजाः ।
ब्रह्मदंडहताः सर्वे विनष्टा नृपसत्तम ।।८
संरक्ष्यमाणस्तैः सर्वैर्हयस्ते यज्ञियो नृप ।
केनाप्यलक्षितः क्वापि नीतो विधिवशाद्दिवि ।।९
ततो विनष्टं तुरंग विचिन्वंतो महीतले ।
प्रालभंत न ते क्वापि तत्प्रवृत्तिं चिरान्नृप ।।१०
ततोऽवनेरधस्तेऽश्वं विचेतुं कृतनिश्चयाः ।
सागरास्ते समारभ्य प्रचख्नुर्वसुधातलम् ।।११
खनंतो वसुधामश्वं पाताले ददृशुर्नृप ।
समीपे तस्य योगींद्रं कपिलं च महामुनिम् ।।१२
तं दृष्ट्वा पापकर्माणस्ते सर्वे कालचोदिताः ।
कपिलं कोपयामासुरश्वहर्त्ताऽयमित्यलम् ।।१३
ततस्तत्क्रोधसंभूतनेत्राग्नेर्दहतो दिशः ।
इन्धनीभूतदेहास्ते पुत्राः संक्षयमागताः ।।१४

श्री नारदजी ने कहा—हे राजन् ! यज्ञ के अश्व के सञ्चारण के लिए आपके पुत्रों ने संप्रयाण किया था । हे श्रेष्ठ नृप ! ने सब ब्रह्म-दण्ड से हत होकर विनष्ट हो गये हैं ।८। उन सबके द्वारा भली भाँति रक्षा किया भी वह यज्ञिय अश्व किसी के द्वारा अलक्षित कर दिया गया था और भाग्य वश दिव में वह ले जाया गया था ।९। फिर जब वह अश्व विनष्ट अर्थात् खोया हुआ हो गया था उन्होंने महीतल में खोज की थी किन्तु उन्होंने

उसको कहीं पर भी प्राप्त नहीं किया था और वह किस ओर गया है—यह भी बहुत समय तक उनको ज्ञात नहीं हुआ था।१०। इसके पश्चात् उन्होंने इस वसुन्धरा के नीचे उस अश्व की खोज करने निश्चय किया था। उन आपके पुत्रों ने समारम्भ करके इस वसुधा के तल भाग को खोद डाला था।११। जब वे लगातर पृथ्वी को खोदते ही चले गये तो हे नृप ! उन्होंने पाताल में उस अश्व को देखा था जिस अश्व के ही समीप में योगीन्द्र महामुनि कपिल जी समाधि में स्थित हुए उनको दिखाई दिये थे।१२। उन महामुनि को वहाँ देखकर पापपूर्ण कर्मों वाले उन सबने काल की गति से प्रेरित होकर उन कपिल देव के ही ऊपर बड़ा कोप किया था और यह ही इस अश्व के हरण करने वाला है—यह कहा था।१३। इसके अनन्तर उन मुनि को क्रोध उत्पन्न हो गया था और उससे संभूत नेत्रों की अग्नि से जो दशों दिशाओं को दग्ध कर रही थी आपके समस्त पुत्र इन्धन हो गये थे और जल भुनकर उसके देह भस्मीभूत हो गये थे तथा सब नष्ट हो गये थे।१४।

क्रूराः पापसमाचाराः सर्वलोकोपरोधकाः ।
यतस्ते तेन राजेंद्र न शोकं कर्तुमर्हसि ।।१५
स त्वं धैर्यधनो भूत्वा भवितव्यतयात्मनः ।
नष्टः मृतमतीतं च नानुशोचंति पंडिताः ।।१६
तस्मात्पौत्रमिमं बालमंशुमंतं महामतिम् ।
तुरगानयनार्थाय नियुंक्ष्व नृपसत्तम ।।१७
इत्युक्त्वा राजशार्दूलं सदस्यर्त्विक्समन्वितम् ।
क्षणेन पश्यतां तेषां नारदोऽन्तर्दधे मुनिः ।।१८
तच्छ्रुत्वा वचनं तस्य नारदस्य नृपोत्तमः ।
दुःखशोकपरीतात्मा दध्यौ चिरमुदारधीः ।।१९
तं ध्यानयुक्तं सदसि समासीनमवाङ्मुखम् ।
वसिष्ठः प्राह राजानं सांत्वयन्देशकालवित् ।।२०
किमिदं धैर्यसाराणामवकाशं भवादृशाम् ।
लभते हृदि चेच्छोकः प्राप्तं धीरतया फलम् ।।२१

वे सब आपके पुत्र अत्यन्त क्रूर थे—पाप कर्मों का समाचरण करने वाले तथा समस्त लोकों के उपरोधक थे। क्योंकि ऐसे ही जघन्य थे अतः हे राजेन्द्र ! अब आप उनके लिए शोक करने के योग्य नहीं हैं।१५। आप तो धैर्य को ही धन मानने वाले हैं अतएव आपको धीरज की रक्षा करनी चाहिए। जो भी कुछ भवितव्यता होती है तथा नष्ट हो जाता है और व्यतीत हो जाता है उसको पण्डित लोग नहीं सोचा करते हैं।१६। इस कारण से अब इस अपने अंशुमान् पौत्र को जो महान् मतिमान् है हे नृप श्रेष्ठ ! उस अश्व को लाने के कार्य में नियुक्त करो।१७। समस्त सदस्य और ऋत्विजों से युक्त उस नृप शार्दूल से यही कहकर सभी के देखते हुए एक ही क्षण में नारदजी अन्तर्धान हो गये थे।१८। फिर उस राजा ने नारदजी के कहे हुए उन वचनों का श्रवण करके भी महान् दुःख और शोक मे पूर्णतया घिरा हुआ होकर उस उदार बुद्धि वाले ने बहुत काल तक चिन्तन किया था।१९। उस समय में राजा सभा में नीचे की ओर मुख वाला होकर बैठे हुए थे। उसी समय में देश और काल के ज्ञाता वसिष्ठजी ने आकर राजा को सान्त्वना देते हुए कहा था।२०। आप तो धैर्य को बहुत महत्त्व देने वाले हैं फिर आप जैसे महान् पुरुषों को यह ऐसा अवसर क्यों प्राप्त हो रहा है। यदि आपके हृदय में भी शोक ने स्थान ग्रहण कर लिया है तो धीरता से क्या फल होता है। अर्थात् फिर तो धैर्य व्यर्थ ही है।२१।

दौर्मनस्यं शिथिलयन्सर्वं दिष्टवशानुगम् ।
मन्वानोऽनंतरं कृत्यं कर्तुमर्हस्यसंशयम् ॥२२
वसिष्ठेनैवमुक्तस्तु राजा कार्यार्थतत्त्ववित् ।
धृतिं सत्त्वं समालंब्य तथेति प्रत्यभाषत ॥२३
अंशुमंतं समाहूय पौत्रं विनयशालिनम् ।
ब्रह्म क्षत्त्रसभामध्ये शनैरिदमभाषत ॥२४
ब्रह्मदंडहताः सर्वे पितरस्तव पुत्रक ।
पतिताः पापकर्माणो निरये शाश्वतीः समाः ॥२५
त्वमेव संततिर्मह्यं राज्यस्यास्य च रक्षिता ।
त्वदायत्तमशेषं मे श्रेयोऽमुत्र परत्र च ॥२६
स त्वं गच्छ ममादेशात्पाताले कपिलांतिकम् ।

तुरगानयनार्थाय यत्नेन महतान्वितः ॥२७
तं प्रार्थयित्वा विधिवत्प्रसाद्य च विशेषतः ।
आदाय तुरगं वत्स शीघ्रमागंतुमर्हसि ॥२८

आप इस मन की उदासी को शिथिल करके यह सोच लीजिये कि यह सभी कुछ भाग्य के कारण से ही हुआ है और इसमें अन्य किसी का भी कुछ वश नहीं चलता है। ऐसा ही मानकर बिना किसी संशय के जो भी कुछ पीछे करने का कृत्य है उसको ही करना अब उचित है।२२। वसिष्ठ जी के द्वारा इस रीति से कहा जाने पर कार्यों के अर्थ के तत्त्वों के ज्ञाता राजा सगर ने धैर्य का सहारा लिया था और मुनि से वही सब कुछ करने के लिये प्रार्थना की थी।२३। फिर नृप सगर ने अपने विनय शाली पौत्र अंशुमान् को अपने पास बुलाकर विप्रों और क्षत्रियों की सभा के मध्य में धीरे से उससे कहा था।२४। हे बेटा ! तुम्हारे सभी पितृगण ब्रह्मदण्ड से निहत हो गये हैं और वे पाप कर्मों के करने वाले सैकड़ों वर्षों के लिए नरक में पतित हो गये हैं।२५। इस समय में तो मेरे अन्य सभी पुत्रों का विनाश हो गया है मेरी केवल एक तुम ही सन्तति शेष रहे हो जो कि इस मेरे विशाल राज्य के रक्षा करने वाले हो। अब तो इस लोक में और परलोक में मेरे पूर्ण श्रेय को करना तुम्हारे ही अधीन है।२६। वह आप ही अब मेरी आज्ञा से पाताल लोक में कपिल मुनि के समीप में गमन करो। और महान् यत्न से उस यज्ञ के अश्व को यहाँ पर ले आओ।२७। आप वहाँ पर पहुँच कर उन मुनिवर से विधि के साथ प्रार्थना करना और विशेष रूप से उनको प्रसन्न कर लेना। फिर उस अश्व को अपने साथ लेकर हे वत्स। तुम बहुत ही शीघ्रता से यहाँ पर वापिस आ जाओ।२८।

जैमिनिरुवाच—

एवमुक्तोंऽशुमांस्तेन प्रणम्य पितरं पितुः ।
तथेत्युक्त्वा महाबुद्धिः प्रययौ कपिलांतिकम् ॥२९
तमुपागम्य विधिवन्नमस्कृत्य यथामति ।
प्रश्रयावनतो भूत्वा शनैरिदमुवाच ह ॥३०
प्रसीद विप्रशार्दूल त्वामहं शरणं गतः ।
कोपं च संहर क्षिप्रं लोकप्रक्षयकारकम् ॥३१

त्वयि क्रुद्धे जगत्सर्वं प्रकाशमुपयास्यति ।
प्रशांतिमुपयाह्याशु लोकाः संतु गतव्यथाः ।।३२
प्रसन्नोऽस्मान्महाभाग पश्य सौम्येन चक्षुषा ।
ये त्वत्क्रोधाग्निनिर्दग्धास्तत्संततिमवेहि माम् ।।३३
नाम्नांशुमंतं नप्तारं सगरस्य महीपतेः ।
सोऽहं तस्य नियोगेन त्वत्प्रसादाभिकांक्षया ।।३४
प्राप्तो दास्यसि चेद्ब्रह्मंस्तुरगानयनाय च ।
जैमिनिरुवाच–
इति तद्वचनं श्रुत्वा योगींद्रप्रवरो मुनिः ।।३५

जैमिनि मुनि ने कहा—जब राजा के द्वारा अपने पौत्र अंशुमान् से इस प्रकार से कहा गया था तो महान् बुद्धिमान उसने पिता के पिता को प्रणाम किया था और मैं ऐसा ही करूँगा—यह कहकर वह कपिल मुनि के समीप में चला गया था ।२९। उसके समीप में प्राप्त होकर उसने विधि के साथ उनके प्रणाम किया था और फिर बुद्धि के अनुसार विनम्रता से अवनत होकर धीरे से उनसे कहा था ।३०। हे विप्रशार्दूल ! मुझ पर कृपया प्रसन्न होइए—मैं तो आपके चरणों की शरण में समागत हुआ हूँ । आपके हृदय में जो कोप समुत्पन्न हो गया है उसका संहरण शीघ्र ही कर लीजिए क्योंकि आपका यह कोप समस्त लोकों के विनाश कर देने वाला है ।३१। आपके क्रुद्ध हो जाने पर तो यह समग्र जगत विनाश को ही प्राप्त हो जायगा । अब आप प्रशान्ति को शीघ्र प्राप्त हो जाइए । जिससे इन सब लोकों की व्यथा दूर हो जावे ।३२। हे महाभाग ! आप हमारे ऊपर प्रसन्न हो जाइए । सौम्य नेत्रों से हमको देखिए । जो आपके क्रोध की अग्नि से संदग्ध हो गये हैं उन्हीं की सन्तति मुझे आप समझिए ।३३। मेरा नाम अंशुमान है और मैं राजा सगर का नाती हूँ । वह मैं राजा के ही नियोग से आपकी प्रसन्नता की अभिकांक्षा से ही मैं यहाँ पर समागत हुआ हूँ ।३४। मैं तो उस यज्ञ के अश्व के ले जाने के ही लिए आया हूँ यदि कृपा कर मुझे देंगे । जैमिनि मुनि ने कहा—उस अंशुमान के इस वचन को सुनकर योगीन्द्र प्रवर मुनि ने अंशुमान का अवलोकन किया और परम प्रसन्न होकर यह वचन उससे कहा था ।३५।

अंशुमंतं समालोक्य प्रसन्न इदमब्रवीत् ।
स्वागतं भवतो वत्स दिष्ट्या च त्वमिहागतः ॥३६
गच्छ शीघ्रं हयश्चायं नीयतां सगरांतिकम् ।
अधिक्षिप्तोऽस्य यज्ञोऽपि प्रागतः संप्रवर्त्तताम् ॥३७
व्रियतां च वरो मत्तस्त्वया यस्ते मनोगतः ।
दास्ये सुदुर्लभमपि त्वद्भक्तिपरितोषितः ॥३८
एषां तु संप्रणाशं हि गत्वा वद पितामहम् ।
पापानां मरणं त्वेषां न च शोचितुमर्हसि ॥३९
ततः प्रणम्य योगींद्रमंशुमानिदमब्रवीत् ।
वरं ददासि चेन्मह्यं वरये त्वां महामुने ॥४०
वरमर्हामि चेत्त्वत्तः प्रसन्नो दातुमर्हसि ।
त्वद्रोषपावकप्लुष्टाः पितरो ये ममाखिलाः ॥४१
संप्रयास्यंति ते ब्रह्मन्निरयं शाश्वतीः समाः ।
ब्रह्मदंडहतानां तु न हि पिंडोदकक्रियाः ॥४२

हे वत्स ! आपका स्वागत है । बड़े ही हर्ष की बात है कि आप यहाँ पर आ गये हो ।३६। अब बहुत शीघ्र जाओ यह अश्व राजा सगर के समीप में ले जाओ । पूर्व से ही संप्रवृत्त हुआ इस राजा का यज्ञ रुक गया है उसको पूर्ण करो ।३७। और आपके मन में जो भी कुछ हो वह वरदान अब मुझसे प्राप्त कर लो । मैं तुम्हारी भक्ति से बहुत ही परितुष्ट हो गया हूँ यदि तुम्हारा वर परम दुर्लभ भी होगा तो भी मैं तुमको दे ही दूँगा ।३८। अब तुम इन साठ सहस्र नृप के पुत्रों का विनाश हो गया है—यह राजा से कह देना । ये महान पापी थे अतः इनके मरण के विषय में राजा से कह देना कि कोई शोक न करें ।३९। फिर उन योगीन्द्र मुनि को प्रणाम करके अंशुमान ने उनसे यह कहा था । हे मुने ! आप यदि मुझको वरदान देने की इच्छा करते हैं तो मैं आपसे वर का वरण करूँ ।४०। यदि मैं वर पाने के योग्य हूँ तो आपसे वरदान प्राप्त करूँ किन्तु वह वरदान आप सुप्रसन्न होकर ही मुझे दीजिए । आपके रोष को अग्नि से मेरे सभी पितृगण संप्लुष्ट हो गये हैं ।४१। हे ब्रह्मन् ! क्योंकि उन्होंने आपका महान अपराध किया

था इससे वे सभी बहुत वर्षों तक नरक में जायेंगे। क्योंकि वे सब ब्रह्मदण्ड से हृत हैं अतएव उनकी पिण्डोदक क्रिया भी कुछ नही हो सकती है।४२।

पिंडोदकविहीनानामिह लोके महामुने।
विद्यते पितृसालोक्यं न खलु श्रुतिचोदितम् ॥४३
अक्षयः स्वर्गवासोऽस्तु तेषां तु त्वत्प्रसादतः।
वरेणानेन भगवन्कृतकृत्यो भवाम्यहम् ॥४४
तत्प्रसीद त्वमेवैषां स्वर्गतेर्वद कारणम्।
येनोद्धारणमेतेषां वह्नेः कोपस्य वै भवेत् ॥४५
ततस्तमाह योगींद्रः सुप्रसन्नेन चेतसा।
निरयोद्धाणं तेषां त्वया वत्स न शक्यते ॥४६
तैश्चापि नरके तावद्वस्तव्यं पापकर्मभिः।
कालः प्रतीक्ष्यतां तावद्यावत्त्वत्पौत्रसंभवः ॥४७
कालांते भविता वत्स पौत्रस्तव महामतिः।
राजा भगीरथो नाम सर्वधर्मार्थतत्त्ववित् ॥४८
स तु यत्नेन महता पितृगौरवयंत्रितः।
आनेष्यति दिवो गंगां तपस्तप्त्वा महद्ध्रुवम् ॥४९

हे महामुने! इस लोक में जिनकी पिण्डोदक क्रिया नहीं होती है वे पितृगण के लोक में उनका सालोक्य प्राप्त नहीं कर सकते हैं—ऐसा श्रुति सम्मत प्रमाण है।४३। अब मेरा यही वर मुझे प्रदान कीजिए कि आपके प्रसाद से उनको अक्षय स्वर्ग का निवास प्राप्त होवे। हे भगवान! इस वरदान से मैं कृत-कृत्य हो जाऊँगा।४४। सो आप प्रसन्न हो जाइए और उनके स्वर्ग में गमन करने का कारण बता दीजिए। जिसके करने से उनका कोप की अग्नि से उद्धार हो जावे।४५। इसके अनन्तर योगीन्द्र प्रसन्न चित्त से उससे बोले—हे वत्स! उनका नरक से उद्धार तुम्हारे द्वारा नहीं किया जा सकता है।४६। पाप कर्मों के करने वालों को तब तक नरक में वास करना ही होगा। उस समय की प्रतीक्षा करो जब तक तुम्हारे यहाँ पौत्र जन्म ग्रहण करे।४७। कुछ काल के पश्चात् हे वत्स! तुम्हारा एक महामति पौत्र होगा। उसका शुभ नाम राजा भगीरथ होगा जो समस्त धर्मों के

अर्थों के तत्त्वों का ज्ञाता होगा ।४८। वह अपने पितरों के गौरव से सुसमन्वित होगा और महान यत्न से परम घोर तप करके निश्चय ही स्वर्ग से यहाँ पर गङ्गा को लावेगा ।४६।

तदंभसा पावितेषु तेषां गात्रास्थिभस्मसु ।
प्राप्नुवंति गतिं स्वर्गे भवतः पितरोऽखिला ॥५०
तथेति तस्या माहात्म्यं गंगाया नृपनन्दन ।
भागीरथीति लोकेऽस्मिन्सा विख्यातिमुपैष्यति ॥५१
यत्तोयप्लावितेष्वस्थिभस्मलोमनखेष्वपि ।
निरयादपि संयाति देही स्वर्लोकमक्षयम् ॥५२
तस्मात्त्वं गच्छ भद्रं ते न शोकं कर्त्तुमर्हसि ।
पितामहाय चैवैनमश्वं संप्रतिपादय ॥५३
जैमिनिरुवाच—
ततः प्रणम्य तं भक्त्या तथेत्युक्त्वा महामतिः ।
ययौ तेनाभ्यनुज्ञातः साकेतनगरं प्रति ॥५४
सगरं स समासाद्य तं प्रणम्य यथाक्रमम् ।
न्यवेदयच्च वृत्तांतं मुनेस्तेषां तथात्मनः ॥५५
प्रददौ तुरगं चापि समानीतं प्रयत्नतः ।
अतः परमनुष्ठेयमब्रवीत्किं मयेति च ॥५६

उस पतित पावनी गङ्गा के पुनीत जल से उन सबके गात्र-अस्थि और भस्म के पवित्र हो जाने पर वे समस्त आपके पितृगण स्वर्ग में गति को प्राप्त करेंगे ।५०। हे नृपनन्दन उस गङ्गा का माहात्म्य ही ऐसा अद्भुत है । राजा भगीरथ के द्वारा यहाँ लाने से इस लोक में उसका नाम भागीरथी प्रसिद्ध होगा ।५१। गङ्गा का बड़ा अद्भुत माहात्म्य होता है कि उसके जल में किसी भी प्राणी की अस्थि-भस्म-नख आदि कोई भी भाग जब प्लावित हो जाता है तो वह प्राणी नरक की यातनाओं से भी मुक्त होकर अक्षय स्वर्गलोक में चला जाया करता है ।५२। इस कारण से अब आप यहाँ से चले जाइए—आपका कल्याण होगा—आपको कुछ भी शोक नहीं करना चाहिए । अपने पितामह को यह अश्व ले जाकर दे दो ।५३। जैमिनि मुनि

ने कहा—इसके अनन्तर उस महामति ने—ऐसा ही करूँगा—यह कहकर उनको भक्ति से प्रणाम किया था और उनकी आज्ञा प्राप्त कर साकेत नगरी की ओर वहाँ से गमन किया था ।५४। राजा सगर के समीप में पहुँच कर उसने क्रमानुसार उनको प्रणाम किया था और फिर उन सबका—मुनि का और अपना सम्पूर्ण वृत्तान्त राजा से निवेदन कर दिया था ।५५। और वह अश्व भी राजा को दे दिया था। जिसको वह बड़े प्रयत्न से लाया था। फिर राजा की सेवा में प्रार्थना की थी कि अब आगे मुझे क्या सेवा करनी चाहिए—यह अपनी आज्ञा प्रदान कीजिए ।५६।

—×—

।। अंशुमान को राज्य प्राप्ति ।।

जैमिनिरुवाच—

ततः पौत्रं परिष्वज्य सगरः प्रेमविह्वलः ।
अभिनंद्याशिषात्यर्थं लालयन्प्रशशंस ह ।।१
अथ ऋत्विक्सदस्यैश्च सहितो राजसत्तमः ।
उपाक्रमत तं यज्ञं विधिवद्वेदपारगैः ।।२
ततः प्रववृते यज्ञः सर्वसंपद्गुणान्वितः ।
सम्यगौर्ववसिष्ठाद्यैर्मुनिभिः संप्रवर्त्तितः ।।३
हिरण्मयमयी वेदिः पात्राण्युच्चावचानि च ।
सुसमृद्धं यथाशास्त्रं यज्ञे सर्वं बभूव ह ।।४
एवं प्रवर्त्तितं यज्ञमृत्विजः सर्व एव ते ।
क्रमात्समापयामासुर्यजमानपुरस्सराः ।।५
समापयित्वा तं यज्ञं राजा विधिविदां वरः ।
यथावद्दक्षिणां चैव ऋत्विजां प्रददौ तदा ।।६
अथ ऋत्विक्सदस्यानां ब्राह्मणानां तथार्थिनाम् ।
तत्कांक्षितादभ्यधिकं प्रददौ वसु सर्वशः ।।७

जैमिनी मुनि ने कहा—इसके अनन्तर राजा सगर ने प्रेम से विह्वल होकर अपने पौत्र का परिष्वजन किया था और अत्यधिक आशीर्वचनों से उसका अभिनन्दन करके बहुत ही अधिक लाड़ करते हुए उसकी प्रशंसा की थी।१। इसके उपरान्त सब ऋत्विजों और सदस्यों के सहित उस नृप श्रेष्ठ ने वेदों के पारगामी विप्रों के द्वारा उस यज्ञ का विधि सहित उपक्रम किया था।२। इसके अनन्तर सब प्रकार की सम्पत्ति और गुणों से संयुत वह यज्ञ आरम्भ हुआ था जिसका समारम्भ और्व और वसिष्ठ आदि मुनियों के द्वारा भली भाँति सम्प्रवर्त्तित किया गया था।३। उस यज्ञ की वेदी सुवर्ण से निर्मित की गयी थी तथा उसके उपयुक्त सभी छोटे-बड़े पात्र अत्युत्तम जुटाये गये थे। उस यज्ञ में शास्त्र के अनुसार सभी वस्तुएँ सुसमृद्ध थी।४ इस प्रकार से आरम्भ किया हुआ वह यज्ञ था जिसको सभी ऋत्विजों ने किया था और यजमान के साथ उन्होंने उसको समाप्त किया था।५। विधि के ज्ञाताओं में श्रेष्ठ राजा ने उस यज्ञ को समाप्त कराकर उसी समय में ऋत्विजों के लिए उचित दक्षिणा दी थी।६। इसके उपरान्त ऋत्विज-सदस्य-ब्राह्मण तथा याचकों के लिए सबको जो भी उनका आकांक्षित था उस से अधिक धन दिया था।७।

एवं संतर्प्य विप्रादीन्दक्षिणाभिर्यथाक्रमम् ।
क्षमापयामास गुरून्सदस्यान्प्रणिपत्य च ॥८

ब्राह्मणैस्ततो वर्णैर्ऋत्विग्भिश्च समन्वितः ।
वारकीयाकदंबैश्च सूतमागधबंदिभिः ॥९
अन्वीयमानः सस्त्रीकः श्वेतच्छत्रविराजितः ।
दोधूयमानचमरो बालव्यजनराजितः ॥१०
नानावादित्रनिर्घोषैर्बधिरीकृतदिङ्मुखः ।
स गत्वा सरयूतीरं यथाशास्त्रं यथाविधि ॥११
चकारावभृथस्नानं मुदितः सह बन्धुभिः ।
एवं स्नात्वा सपत्नीकः सुहृद्भिर्ब्राह्मणैः सह ॥१२
वीणावेणुमृदंगादिनानावादित्रनिःस्वनैः ।
मंगल्यैर्वेदघोषैश्च सह विप्रजनेरितैः ॥१३

संस्तूयमानः परितः सूतमागधवंदिभिः ।
प्रविवेश पुरीं रम्यां हृष्टपुष्टजनायुताम् ।।१४

इस प्रकार से विप्रगण आदि की दक्षिणाओं से भली-भाँति तृप्ति करके क्रम के अनुसार गुरुवर्गों को और सदस्यों को प्रणिपात करके उनसे क्षमा की याचना की थी ।८। फिर वह राजा शोभा यात्रा के स्वरूप में सरयू के तट पर गया था। उसके साथ ब्राह्मण आदि सभी वर्णों वाले लोग तथा ऋत्विज गण थे और जो मार्ग में रोकथाम करने वाले लोग थे उनके भी समूह और सूत—मागध और बन्दी जन भी थे ।९। इन सब को साथ में लेकर अपनी पत्नियों के सहित राजा वहाँ से चला था जिसके ऊपर श्वेत छत्र शोभित था। उसके दोनों ओर चमर ढुराये जा रहे थे तथा बाल व्यजन भी किये जा रहे थे ।१०। अनेक वाद्य उस समय बजाये जा रहे थे जिनकी तुमुल ध्वनि से सभी दिशाओं कुछ भी सुनाई नहीं दे रहा था। इस रीति से वह शास्त्र के कथनानुसार विधिपूर्वक सरयू पर प्राप्त हो गया था ।११। समस्त बन्धु-बान्धवों के साथ परम प्रसन्न होकर अवभृथ अर्थात् यज्ञान्त स्नान राजा ने किया था। इस रीति के पत्नियों के सहित सुहृद्गण और विप्रों के साथ स्नान करके वहाँ से राजा वापिस चला था ।१२। उस समय में वीणा-वेणु-मृदङ्ग आदि अनेक बाजे रहे थे और माङ्गलिक वेद-मन्त्रों की भी ध्वनि हो रही थी जिन मन्त्रों को ब्राह्मण बोल रहे थे ।१३। सूत-मागध और बन्दीजन सभी ओर से संस्तवन कर रहे थे। इस रीति से हृष्ट-पुष्टजनों से समन्वित अपनी सुरम्यपुरी में राजा ने प्रवेश किया था ।१४।

श्वेतव्यजनसच्छत्रपताकाध्वजमालिनीम् ।
सिक्तसंमृष्टभूभागापणशोभासमन्विताम् ।।१५
कैलासाद्रिप्रकाशाभिरुज्ज्वलां सौधपङ्क्तिभिः ।
स तत्रागरुधूपोत्थगंधामोदितदिङ्मुखम् ।।१६
विकीर्यमाणः परितः पौरनारीजनैर्मुहुः ।
लाजवर्षेण सानंदं वीक्षमाणश्च नागरैः ।।१७
उपदाभिरनेकाभिस्तत्र तत्र वणिग्जनैः ।
संभाव्यमानः शनकैर्जगाम स्वपुरं प्रति ।।१८

स प्रविश्य गृहं रम्यं सर्वमंडलमंडितम् ।
सम्यक्संभावयामास सुहृदो ब्राह्मणानपि ।।१६

संसेव्यमानश्च तदा नानादेशेश्वरैर्नृपैः ।
सभायां राजशार्दूलो रेमे शक्र इवापरः ।।२०

एवं सुहृद्भिः सहितः पूरयित्वा मनोरथम् ।
सगरः सह भार्याभ्यां रेमे नृपवरोत्तमः ।।२१

उस पुरी की शोभा का वर्णन किया जाता है कि उसमें सर्वत्र छत्र पताका-ध्वजाओं की मालायें दिखाई दे रही थीं सर्वत्र पुरी का भूभाग संमार्जित तथा संसिक्त था और उसमें दुकान और बाजारों की भी अतीव अद्भुत शोभा हो रही थी ।१५। उस पुरी में बड़े-बड़े भवनों की की पंक्तियाँ थीं जो बहुत ही ऊँचे थे और जिनमें प्रकाश हो रहा था । वे ऐसे ही प्रतीत हो रहे थे मानों उज्ज्वल कैलाश गिरि के शिखर हों । वहाँ पर अगुरु की धूप की गन्ध चारों ओर फैल रही थी जिससे सभी दिशाओं के मुख आमोदित हो रहे थे ।१६। नगर निवासिनी नारियों का समुदाय सभी ओर बारम्बार खीलों की वर्षा राजा के ऊपर कर रहा था और नगर निवासी पुरुष बड़े आनन्द के साथ राजा का मुखावलोकन कर रहे थे ।१७। साकेत पुरी के वणिग्जन अपनी भेंटें लेकर जो अनेक प्रकार की थी जहाँ-तहाँ पर राजा का सम्मान कर रहे थे । इस रीति से राजा धीरे-धीरे अपने पुर की ओर गये थे ।१८। उस नृप ने सभा मण्डलों से मण्डित अपने सुरम्य गृह में प्रवेश किया था और वहाँ पर अपने सुहृदों का तथा ब्राह्मणों का भली भाँति सत्कार-समादर किया था ।१६। वहाँ पर अनेक देशों के नृप उस समय में विद्यमान थे और उनके द्वारा राजा का पूर्ण सेवा-सम्मान किया गया था । वह राजाशार्दूल अपनी सभी में दूसरे इन्द्र के ही समान रमण किया करता था ।२०। इस प्रकार से सुहृदों के सहित नृप नरोत्तम सगर ने मनोरथ को पूर्ण किया था और वह अपनी दोनों भार्याओं के साथ रमण किया करता था ।२१।

अंशुमन्तं ततः पौत्रं मुदा विनयशालिनम् ।
वसिष्ठानुमते राजा यौवराज्येऽभ्यषेचयत् ।।२२

पौरजानपदानां तु बंधूनां सुहृदामपि ।

स प्रियोऽभवदत्यर्थमुदारैश्च गुणैर्नृपः ॥२३
प्रजास्तमन्वरज्यंत बालमप्यमितौजसम् ।
नवं च शुक्लपक्षादौ शीतांशुमचिरोदितम् ॥२४
स तेन सहितः श्रीमान्सुहृद्भिश्च नृपोत्तमः ।
भार्याभ्यामनुरूपाभ्यां रममाणोऽवसच्चिरम् ॥२५
युवैव राजशार्दूलः साक्षाद्धर्म इवापरः ।
पालयामास वसुधां सशैलवनकाननाम् ॥२६
एवं महानहिमदीधितिवंशमौलिरत्नायामानवपुरुत्तर-
कोसलेशः ।
पूर्णेन्दुवत्सकललोकमनोऽभिरामः सार्द्धं
प्रजाभिरखिलाभिरलं जहर्ष ॥२७

इसके अनन्तर राजा सगर ने अपने विनयशील अंशुमान् पौत्र को वसिष्ठ मुनि की अनुमति प्राप्त करने पर यौवराज्य पद पर बड़ी प्रसन्नता से अभिषिक्त कर दिया था ।२२। वह नृप अपने अत्यन्त उदार गुण गणों से पुरवासी जनपद निवासी-बन्धुगण और सुहृदों का भी सबका परम प्रिय हो गया था ।२३। जिस तरह से शुल्क पक्ष के आदि में अचिरोदित अर्थात् तुरन्त ही उगे हुए चन्द्रमा को जो कि नवीन होता है सभी उसका दर्शन करके परम प्रसन्न हुआ करते हैं ठीक उसी भाँति से वह राजा बालक था और अपरिमित ओज से समन्वित था अतः उसको बहुत प्यार किया करती थी ।२४। वह उत्तम नृप सगर भी श्री से सुसम्पन्न उस नवीन राजा के साथ मित्रों के सहित अपनी अनुरूप दोनों भार्याओं के साथ रमण करता हुआ वहाँ पर निवास किया करता था ।२५। यद्यपि वह राजाशार्दूल युवा ही था किन्तु साक्षात् दूसरे धर्म के ही समान था । उसने पर्वतों और काननों के सहित पृथ्वी का पालन किया था ।२६। इस प्रकार से सूर्यवंश के शिरोमणि रत्न के सदृश वपु वाला महान् उत्तर कोसल का स्वामी राजा अंशुमान पूर्ण चन्द्र के समान सभी लोकों में परम सुन्दर अपनी सब प्रजाओं के साथ परमाधिक प्रसन्न हुआ था ।२७।

——

गंगा का पृथ्वी पर आगमन

जैमिनिरुवाच–

एतत्ते चरितं सर्वं सगरस्य महात्मनः ।
संक्षेपविस्तराभ्यां तु कथितं पापनाशनम् ।।१
खंडोऽयं भारतो नाम दक्षिणोत्तरमायतः ।
नवयोजनसाहस्रं विस्तारपरिमंडलम् ।।२
पुत्रैस्तस्य नरेंद्रस्य मृगयद्भिस्तुरंगमम् ।
योजनानां सहस्रं तु खात्वाष्टौ विनिपातिताः ।।३
सगरस्य सुतैर्यस्माद्वर्द्धितो मकरालयः ।
ततः प्रभृति लोकेषु सागराख्यामवाप्तवान् ।।४
ब्रह्म पादावधि महीं सतीर्थक्षेत्रकाननाम् ।
अब्धिः संक्रमयोमास परिक्षिप्य निजांभसा ।।५
ततस्तन्निलयाः सर्वे सदेवासुरमानवाः ।
इतस्ततश्च संजाता दुःखेन महतान्विताः ।।६
गोकर्णं नाम विख्यातं क्षेत्रं सर्वसुरार्चितम् ।
सार्द्धयोजनविस्तारं तीरे पश्चिमवारिधेः ।।७

जैमिनि मुनि ने कहा—हमने यह महात्मा सगर का सम्पूर्ण चरित संक्षेप तथा विस्तार से आपके सामने कहकर सुना दिया है जो कि पापों का विनाश कर देने वाला है ।१। यह दक्षिण से उत्तर पर्यन्त भारत खण्ड है । इसके विस्तार का परिमण्डल नौ सहस्र योजन होता है ।२। उस नरेन्द्र के पुत्रों ने उस यज्ञ के अश्व की खोज करते हुए एक सहस्र योजन खोदकर आठ ही विनिपातित किये हैं ।३। क्योंकि सगर के पुत्रों के द्वारा वह समुद्र बढ़ा दिया गया है । तभी से लेकर इसका सागर यह नाम प्राप्त हो गया है ।४। तीर्थों और काननों तथा क्षेत्रों के सहित ब्रह्म पाद की अवधि तक इस मही को समुद्र ने अपने जल से परिक्षिप्त करके संक्रामित कर दिया था ।५। फिर सब निलय-देव-असुर और मानव महान् दुःख से संयुत होते हुए इधर-उधर हो गये थे ।६। पश्चिम समुद्र के तट पर हुए योजन विस्तार वाला गोकर्ण नामक क्षेत्र विख्यात था जो सभी सुरों के द्वारा अर्चित था ।७।

तत्रासंख्यानि तीर्थानि मुनिदेवालयाश्च वै ।
वसंति सिद्धसंघाश्च क्षेत्रे तस्मिन्पुरा नृप ॥८
क्षेत्रं तल्लोकविख्यातं सर्वपापहरं शुभम् ।
तत्तीर्थमब्धेरपतद्भागे दक्षिणपश्चिमे ॥९
यत्र सर्वे तपस्तप्त्वा मुनयः शंसितव्रताः ।
निर्वाणं परमं प्राप्ताः पुनरावृत्तिवर्जितम् ॥१०
तत्क्षेत्रस्य प्रभावेण प्रीत्या भूतगणैः सह ।
देव्या च सकलैर्देवैर्नित्यं वसति शंकरः ॥११
एनांसि यत्समुद्दिश्य तीर्थयात्रां प्रकुर्वताम् ।
नृणामाशु प्रणश्यंति प्रवाते शुष्कपर्णवत् ॥१२
तत्क्षेत्रसेवनरतिर्नैव जात्वभिजायते ।
समीपे वसमानानामपि पुंसां दुरात्मनाम् ॥१३
महता सुकृतेनैव तत्क्षेत्रगमने रतिः ।
नृणां संजायते राजन्नान्यथा तु कथंचन ॥१४

हे नृप ! पहिले वहां पर उस क्षेत्र में अगणित तीर्थ मुनियों और देवों के आलय और सिद्धों के संघ निवास किया करते थे ।८। वह क्षेत्र लोक में विख्यात था और परम शुभ समस्त पापों के हरण करने वाला था । वह तीर्थ समुद्र के दक्षिण भाग में गिर गया था ।९। जहाँ पर सब मुनिगण तपश्चर्या करके संशित व्रत वाले हुए थे और वे सब निर्वाण पद को प्राप्त हो गये थे जिस पद पर पहुँच कर इस लोक में पुनः आवृत्ति नहीं होती है ।१०। उस क्षेत्र का ऐसा प्रभाव था कि उसी के कारण से भगवान् शङ्कर बड़ी ही प्रीति से अपनी प्रिया देवी-सकल देवगण और भूत गणों के साथ निवास किया करते हैं ।११। इसी का उद्देश्य करके तीर्थ यात्रा करने वाले मनुष्यों के समस्त अघ तेज वायु में शुष्क पुत्रों के ही समान शीघ्र ही विनष्ट हो जाया करते हैं ।१२। जो उसके समीप में ही निवास करने वाले दुरात्मा मनुष्य होते हैं और वहीं पर निवासी हैं उनको कभी भी उस क्षेत्र के सेवन करने की रति नहीं हुआ करती है ।१३। हे राजन् यह एक महान् सुकृत हो तभी उस क्षेत्र के गमन में रति हुआ करती है । यदि कोई महान् पुण्यों का

उदय नहीं तो फिर मानवों के हृदय में किसी भी प्रकार से उस क्षेत्र के सेवन करने की रति समुत्पन्न नहीं हुआ करती है ।१४।

निर्बंधेन तु ये तस्मिन्प्राणिनः स्थिरजंगमाः ।
म्रियंते नृप सद्यस्ते स्वर्गं प्राप्स्यंति शाश्वतम् ।।१५
स्मृत्याऽपि सकलैः पापैर्यस्य मुच्येत मानवः ।
क्षेत्राणामुत्तमं क्षेत्रं सर्वतीर्थनिकेतनम् ।।१६
स्नात्वा चैतेषु तीर्थेषु यजंतश्च सदाशिवम् ।
सिद्धिकामा वसंति स्म मुनयस्तत्र केचन ।।१७
कामक्रोधविनिर्मुक्ता ये तस्मिन्वीतमत्सराः ।
निवसंत्यचिरेणैव तत्सिद्धिं प्राप्नुवंति हि ।।१८
जपहोमरताः शांता नियता ब्रह्मचारिणः ।
वसंति तस्मिन्ये ते हि सिद्धिं प्राप्यंत्यभीप्सिताम् ।।१९
दानहोमजपाद्यं वै पितृदेवद्विजार्चनम् ।
अन्यस्मात्कोटिगुणितं भवेत्तस्मिन्फलं नृप ।।२०
अंभोधिसलिले मग्ने तस्मिन् क्षेत्रेऽतिपावने ।
महता तपसा युक्ता मुनयस्तन्निवासिनः ।।२१

हे नृप ! जो स्थावर या जंगम प्राणी निर्बन्ध होने के कारण से वहां पर अपना प्राण परित्याग किया करते हैं वे तुरन्त ही शाश्वत स्वर्ग की प्राप्ति कर लिया करते हैं। यद्यपि स्वर्ग का निवास सावधिक होता है और पुण्य क्षीण हो जाने पर वहां से हटना होता है परन्तु इस क्षेत्र के प्रभाव से सदा ही स्वर्ग निवास होता है ।१५। इसकी ऐसी अद्भुत महिमा है कि यदि इसकी स्मृति भी कोई कर लेवे तो स्मरण मात्र से ही मनुष्य सब पापों से मुक्त हो जाया करता है। यह सभी क्षेत्रों में उत्तम क्षेत्र है और सब तीर्थों का निकेतन है ।१६। कुछ मुनिगण तो इन तीर्थों में स्नान करके सदा ही शिव का यजन करते हुए सिद्धि की कामना वाले यहां पर निवास किया करते थे ।१७। जो मनुष्य काम और क्रोध से रहित होकर मत्सरता को त्याग कर उसमें निवास किया करते हैं वे थोड़े ही समय में सिद्धि को प्राप्त

कर लिया करते हैं ।१८। मन्त्रों के जाप करने तथा हवन करने में जो निरत रहते हुए परम शान्त-नियत तथा ब्रह्मचर्य पालन करने वाले इसमें निवास करते हैं वे भी अभीष्ट सिद्धि को प्राप्त कर लिया करते हैं ।१९। हे नृप ! दान-होम-जप और पितृगण तथा देवगण एवं द्विजों का अर्चन आदि सभी धार्मिक कृत्यों का फल इसमें करने से अन्य स्थल से करोड़ों गुना अधिक हुआ करता है ।२०। अति पावन उस क्षेत्र के समुद्र के जल में निमग्न हो जाने पर जो मुनिगण अपने महान तप से युक्त थे और वहाँ पर निवास किया करते थे वे पर्वत पर चले गये थे ।२१।

सह्यं शिखरिणं श्रेष्ठं निलयार्थं समारुहन् ।
वसंतस्तत्र ते सर्वे संप्रधार्य परस्परम् ॥२२
महेंद्राद्रौ तपस्यंतं रामं गन्तुं प्रचक्रमुः ।
राजोवाच–
अगस्त्यपीततोयेऽब्धौ परितो राजनंदनैः ॥२३
खात्वाधः पातिते क्षेत्रे सतीर्थाश्रमकानने ।
भूभागेषु तथान्येषु पुरग्रामाकरादिषु ॥२४
विनाशितेषु देशेषु समुद्रोपांतवर्त्तिषु ।
किमकार्षुर्मुनिश्रेष्ठ जनास्तन्निलयास्ततः ॥२५
तत्रैव चावसन्कृच्छ्रात्प्रस्थितान्यत्र वा ततः ।
कियता चैव कालेन संपूर्णोऽभूदपां निधिः ।
केन वापि प्रकारेण ब्रह्मन्नेतद्वदस्व मे ॥२६
जैमिनिरुवाच–
अनूपेषु प्रदेशेषु नाशितेषु दुरात्मभिः ॥२७
जनास्तन्निलयाः सर्वे संप्रयाता इतस्ततः ।
तत्रैव चावसन्कृच्छ्रात्केचित्क्षेत्रनिवासिनः ॥२८

उन्होंने परम श्रेष्ठ सह्य पर्वत पर निवास के लिए समारोहण किया था । वहाँ पर ही सब निवास करने लगे थे और उन्होंने परस्पर में निश्चय किया था ।२२। महेन्द्र पर्वत पर जो राम तपस्या कर रहे थे वहाँ पर गमन

करने का उन्होंने उपक्रम किया था। राजा ने कहा—जब अगस्त्य मुनि ने समुद्र के जल का पान कर लिया था और सभी ओर सगर पुत्रों ने उसका खनन किया था तथा सभी तीर्थ-क्षेत्र और कानन नीचे की ओर गिरा दिये गये थे और अन्य पुरग्राम तथा आकर आदि भू भाग एवं देश विनाशित हो गये थे जो भी समुद्र के समीप में विद्यमान थे हे मुनिश्रेष्ठ ! वहाँ पर पतरों वाले मनुष्यों ने फिर क्या किया था ? ।२३-२५। वे सब वहीं पर बस गये थे अथवा बड़ी कठिनाई से कहीं अन्य स्थलों में प्रस्थान कर गये थे ? फिर कितने समय में यह समुद्र परिपूर्ण हो गया था ? हे ब्रह्मन् ! यह किस प्रकार से सब हुआ था—यह आप अब कृपया मुझे बतलाइये ।२६। जैमिनि मुनि ने कहा--जब दुरात्माओं के द्वारा सभी अनूप प्रदेश नष्ट कर दिये गये थे तब वहाँ पर रहने वाले सभी जन इधर-उधर प्रयाण कर गये थे। कुछ क्षेत्र के निवासी बड़ी कठिनाई से वहीं पर निवास करने लगे थे ।२७-२८।

एतस्मिन्नेव काले तु राजन्नंशुमतः सुतः ।
वभूव भुवि धर्मात्मा दिलीप इति विश्रुतः ॥२९
राज्येऽभिषिच्य तं सम्यग्भुक्तभोगोऽशुमान्नृपः ।
वनं जगाम मेधावी तपसे धृतमानसः ॥३०
दिलीपस्तु ततः श्रीमानशेषां पृथिवीमिमाम् ।
पालयामास धर्मेण विजित्य सकलानरीम् ॥३१
भगीरथो नाम सुतस्तस्यासील्लोकविश्रुतः ।
सर्वधर्मार्थकुशलः श्रीमानमितविक्रमः ॥३२
राज्येऽभिषिच्य तं राजा दिलीपोऽपि वनं ययौ ।
स चापि पालयन्नुर्वी सम्यग्विहतकंटकाम् ॥३३
मुमुदे विविधैर्भोगैर्दिवि देवपतिर्यथा ।
स शुश्रावात्मनः पूर्वं पूर्वजानां महीपतिः ॥३४
निरये पतनं घोरं विप्रकोपसमुद्भवम् ।
ब्रह्मदंडहतान्सर्वान्पितॄन्श्रुत्वाऽतिदुःखितः ॥३५

इसी समय में हे राजन् ! अंशुमान का सुत परम धर्मात्मा दिलीप —इस नाम से प्रसिद्ध हुआ था। अर्थात् दिलीप ने भूमि में जन्म ग्रहण

किया था ।२६। समस्त सांसारिक भोगों के उपभोग करने वाले अंशुमान नृप ने राज्यासन पर उस अपने पुत्र को अभिषिक्त करा दिया था और मेधा सम्पन्न वह तपश्चर्या करने का संकल्प मन में करके वन में चला गया था ।३०। फिर श्री सम्पन्न राजा दिलीप ने समस्त शत्रुओं को परास्त करके इस सम्पूर्ण भूमि का परिपालन धर्म पूर्वक किया था ।३१। इस दिलीप का पुत्र भगीरथ हुआ था। जो लोक में परम प्रख्यात था सभी धर्म-अर्थ में महाकुशल और श्रीमान् अपरिमित बल-विक्रम से समन्वित था ।३२। वह दिलीप भी अवसर आने पर राज्यासन पर भगीरथ का अभिषेक कराकर वन में गमन कर गया था। उस भागीरथ ने भी भूमि का परिपालन अच्छी तरह से किया था और उसने भूमि के सभी कण्टकों को हत कर दिया था ।३३। स्वर्गलोक में देवाधीश्वर की ही भाँति नाना प्रकार भोगों का उपभोग करके परम प्रसन्न हुआ था। उस राजा ने पहिले अपने पूर्वजों की जो दशा हुई थी उसका पूरा वृत्तान्त सुन लिया था ।३४। विप्र के कोप से महान घोर नरक में पूर्वजों का पतन हुआ है और उसके सभी पितृगण ब्रह्मदण्ड से मारे गये हैं—यह सब सुनकर उसको बहुत अधिक दुःख हुआ था ।३५।

राज्ये बंधुषु भोगे वा निर्वेदं परमं ययौ ।
स मंत्रि बरे राज्यं विन्यस्य तपसे बनम् ॥३६
प्रययौ स्वपितॄन्नाकं निनीषुर्नृपसत्तम ।
तपसा महता पूर्वमायुषे कमलोद्भवम् ॥३७
आराध्य तस्माल्लेभे च यावदायुर्निजेप्सितम् ।
ततो गंगां महाराज समाराध्य प्रसाद्य च ॥३८
वरमागमनं वव्रे दिवस्तस्वा महीं प्रति ।
ततस्तां शिरसा धत्तुं तपसाऽऽराधयच्छिवम् ॥३९
स चापि तद्वरं तस्मै प्रददौ भक्तवत्सलः ।
मेरोर्मूर्ध्नस्ततो गंगां पतंती शिरसात्मनः ॥४०
सग्राहनक्रमकरां जग्राह जगतां पतिः ।
सा तच्छिरः समासाद्य महावेगप्रवाहिनी ॥४१

तज्जटामंडले शुभ्रे विलिल्ये साऽतिगह्वरे ।
चुलकोदकवच्छंभोर्विलीना शिरसि प्रभोः ॥४२

फिर तो राजा भगीरथ को उस विशाल अपने राज्य में—बन्धु-बान्धवों में तथा सुखोपभोगों में परम वैराग्य उत्पन्न हो गया था अर्थात् उसे कुछ भी नहीं सुहाता था और सबको उसने निस्सार ही समझ लिया था। उसने फिर अपने एक परमश्रेष्ठ मन्त्री को राज्य शासन का भार सौंप दिया था और तप करने के लिए वन में चला गया था।३६। उसकी उत्कट इच्छा यही थी कि वह श्रेष्ठ नृप अपने पितरों को नरक की घोर यातना से मुक्त कर स्वर्ग वासी बना देवे। सर्वप्रथम उसने महान तप के द्वारा आयु के द्वारा आयु के लिए ब्रह्माजी की समाराधना की थी।३७। उनकी आराधना से भगीरथ ने अपनी अभीष्ट आयु प्राप्त करली थी। फिर हे महाराज ! गङ्गा की आराधना की थी और गङ्गा को अपने ऊपर प्रसन्न कर लिया था।३८। भगीरथने स्वर्ग से गङ्गा का भूमि पर समागमन करने का वरदान प्राप्त किया था। फिर उस स्वर्ग से समापतन करने वाली गंगा की विशाल धारा को अपने शिर पर धारण करने की कृपा करें—इसलिए शिव की आराधना तप द्वारा की थी। क्योंकि अन्य किसी की भी ऐसी शक्ति नहीं थी जो गंगा के वेग को सह सके।३९। शिव भी भक्तों पर कृपा करने वाले हैं। उन्होंने भी यह वरदान दे दिया था। मेरु पर्वत की शिखर से समापतन करती हुई गंगा देवी को अपने शिर पर जगतों के स्वामी ने ग्रहण किया था जिसमें बड़े-बड़े ग्रह-नक्र और मकर आदि सभी जल के जीव विद्यमान थे। वह गंगा उनके शिर पर सम्प्राप्त हुई थी जिसमें महान् प्रवाह का वेग विद्यमान था।४०-४१। किन्तु वह गंगा अति गहन परम शुभ शिव के जटा-जूटों का मण्डल था उसमें ही विलीन हो गयी थी। प्रभु शम्भु के शिर में वह ऐसे ही विलीन हो गयी थी जैसे एक चुल्लू जल विहीन हो जाया करता है।४२।

विलोक्य तत्प्रमोक्षाय पुनराराधयद्धरम् ।
स तां शर्वप्रसादेन लब्ध्वा तु भुवमागताम् ॥४३
आनिन्ये सागरा दग्धा यत्र तां वै दिशं प्रति ।
सऽनुव्रजंती राजानं राजर्षेर्यजतः पथि ॥
तद्यज्ञवाटमखिलं प्लावयामास सर्वतः ।

स तु राजऋषिः संक्रुद्धो यज्ञवाटेऽखिले तथा ।।४५
मग्ने गंडूषजलवत्स पपौ तामशेषतः ।
मग्ने गंडूषजलवत्स पपौ तामशेषतः ।
अतंद्रितो वर्षशतं शुश्रूषित्वा स तं पुनः ।।४६
तस्मात्प्रसन्नान्नृपतिर्लेभे गंगां महात्मनः ।
उषित्वा सुचिरं तस्य निसृता जठराद्यतः ।।४७
प्रथितं जाह्नवीत्यस्यास्ततो नामाभवद्भुवि ।
भगीरथानुगा भूत्वा तत्पितॄणामशेषतः ।।४८
निजांभसाऽस्थिभस्मानि सिषेच सुरनिम्नगा ।
ततस्तदंभसा सिक्तेष्वस्थिभस्मसु तत्क्षणात ।।४९

राजा भगीरथ ने जब ऐसा देखा तो उस गङ्गा देवी के प्रमीक्षण के लिये पुनः भगवान् शङ्कर की आराधना की थी। फिर भगवान् शिव के प्रसाद से राजा भगीरथ ने गङ्गा को भूमि पर लाने का कार्य सम्पन्न किया था ।४३। राजा भगीरथ उस गङ्गा को उसी दिशा की ओर लाये थे जहाँ पर सगर सुत दग्ध हुए थे। वह गंगा राजा भगीरथ के पीछे ही अनुगमन कर रही थी कि उसके मार्ग में एक राजर्षि यज्ञ का यजन कर रहे थे ।४४। गंगा देवी ने उसके यज्ञ स्थल को सभी ओर से पूर्णतया प्लावित कर दिया वह राजर्षि बहुत ही अधिक क्रुद्ध हो गया था जबकि गंगा के द्वारा उसका सब यज्ञ वाट निमग्न हो गया था। उस राजर्षि ने एक कुल्ली के ही समान उस सम्पूर्ण गंगा का पान कर लिया था। फिर बहुत ही सावधान होकर भगीरथ ने सौ वर्षों तक उस राजर्षि की शुश्रूषा की थी ।४५-४६। फिर जब वह राजर्षि प्रसन्न हुए तो भगीरथ ने उन महान् आत्मा वाले से गङ्गा की प्राप्ति की थी। बहुत समय पर्यन्त निवास करके फिर उनके जटा से गंगा निकली थी। इसीलिए सभी से जह्नु के उदर से निकलने से ही उनका भूमण्डल में जाह्नवी—यह नाम प्रख्यात हो गया था। फिर भागीरथ के पीछे अनुगमन करने वाली होकर उसके समस्त पितरों का उसने उद्धार कर दिया था ।४७-४८। फिर सुर नदी ने अपने परम पुनीत जल से सगर सुतों की अस्थियों और भस्म का सेवन किया था। गंगा जल के सेचन होने पर जो उनकी अस्थियाँ और भस्म पर हुआ था उसी क्षण में उन सबका उद्धार हो गया था ।४९।

निरयात्सागरा: सर्वे नष्टपापा दिवं ययुः ।
एवं सा सागरान्सर्वान्दिवं नीत्वा महानदी ॥५०
तेनैव मार्गेण जवात्प्रयाता पूर्वसागरम् ।
मेरोर्मूर्ध्नश्चतुर्भेदा भूत्वा याता चतुर्दिशम् ॥५१
चतुर्भेदतया चाभूत्तस्या नाम्नां चतुष्टयम् ।
सीता चालकनंदा च सुचक्षुर्भद्रवत्यपि ॥५२
अगस्त्यपीतसलिलाच्चिरं शुष्कोदका अपि ।
गंगांभसा पुन: पूर्णाश्चत्वारोऽब्धयोऽभवन् ॥५३
पूर्यमाणे समुद्रे तु सागरैः परिवर्द्धिते ।
अंतर्हिताऽभवन्देशा बहवस्तत्समीपगाः ॥५४
समुद्रोपांतवर्त्तीनि क्षेत्राणि च समंततः ।
इतस्ततः प्रयाताश्च जनास्तन्निलया नृप ॥५५
गोकर्णमिति च क्षेत्रं पूर्वं प्रोक्तं तु यत्तव ।
अर्णवोपान्तवर्त्तित्वात्समुद्रेऽन्तर्द्धिमागमत् ॥५६
ततस्तन्निलयाः सर्वे तदुद्धाराभिकांक्षिणः ।
सह्याद्रेर्भृगुशार्दूलं द्रष्टुकामा ययुर्नृप ॥५७

नरकों में जो घोर यातना पा रहे थे वे सभी सगर के पुत्र समस्त पापों के नष्ट होने से नरक से उसी क्षण में स्वर्ग लोक में चले गये थे। इस रीति से उस महा नदी ने सब सगर सुतों को स्वर्ग में पहुँचा कर फिर बहन करने लगी थी।५०। उसी मार्ग से बड़े वेग से उसने पूर्व सागर की ओर प्रयाण किया था। मेरु पर्वत के मस्तक से चार भेद होकर वह चारों दिशाओं में गमन कर गयी थी।५१। उसके चार भेद होने से उसके नाम भी चार हो गये थे। वे नाम में हैं—सीता—अलक नन्दा— सुचक्षु और भद्रवती ये चार नाम हुए हैं।५२। अगस्त्य मुनि के द्वारा जल पीये जाने पर बहुत समय तक जल के शुष्क ही जाने वाले चारों समुद्र भी गंगा के जल से पुन: परिपूर्ण जल वाले हो गये थे।५३। समुद्र के पूरित होने पर और सगर सुतों के द्वारा परिवर्द्धित हो जाने पर उसके समीप में स्थित बहुत से

देश थे वे सब लुप्त हो गये थे अर्थात् समुद्र में लीन हो गये थे ।५४। समुद्र के समीप में रहने वाले समस्त क्षेत्र सभी ओर से निमग्न हो गये थे और हे नृप ! वहाँ पर जो भी जन निवास करते थे वे सभी इधर-उधर चले गये थे ।५५। गोकर्ण नाम वाला क्षेत्र है जिसके विषय में पूर्व में ही आपसे कहा गया था । वह समुद्र के ही समीप में विद्यमान होने से समुद्र के ही अन्दर में छिप गया था ।५६। इसके अनन्तर उसके विनाश करने वाले सब उसके उद्धार की आकाङ्क्षा वाले थे और सह्य अद्रि पर भृगुशार्दूल की देखने की इच्छा वाले हे नृप ! वे सब वहाँ गये थे ।५७।

———

गान्धर्व मूर्छना लक्षण

सूत उवाच—

विसर्गं मनुपुत्राणां विस्तरेण निबोधत ।
पृषध्रो हिंसयित्वा तु गुरोर्गां निशि तत्क्षये ॥१
शापाच्छूद्रत्वमापन्नश्च्यवनस्य महात्मनः ।
करूषस्य तु कारूषाः क्षत्त्रिया युद्धदुर्मदाः ॥२
सहस्रं क्षत्त्रियगणो विक्रांतः संबभूव ह ।
नाभागो दिष्टपुत्रस्तु विद्वानासीद्भलंदनः ॥३
भलंदनस्य पुत्रोऽभूत्प्रांशुर्नाममहाबलः ।
प्रांशोरेकोऽभवत्पुत्रः प्रजापतिसमो नृपः ॥४
संवर्तेन दिवं नीतः समुहृत्सहबांधवः ।
विवादोऽत्र महानासीत्संवर्त्तस्य वृहस्पतेः ॥५
ऋद्धिं दृष्ट्वा तु यज्ञस्य क्रुद्धस्तस्य वृहस्पतिः ।
संवर्त्तेन तते यज्ञे चुकोप स भृशं तदा ॥६
लोकानां स हि नाशाय दैवतैर्हि प्रसादितः ।
मरुत्तश्चक्रवर्त्ती स नरिष्यंतमवासवान् ॥७

श्री सूतजी ने कहा—अब आप मनु के पुत्रों का विसर्ग विस्तार के साथ समझ लीजिए । पृषध्र रात्रि में गुरुदेव की गौ की हिंसा करके उसके क्षय होने पर महात्मा च्यवन के शाप से शूद्रता को प्राप्त हो गया था । करूष

के कारुष क्षत्रिय हुए थे जो युद्ध करने में दुर्मद थे ।१-२। यह एक सहस्र क्षत्रियों का समुदाय था जो बहुत ही अधिक विकान्त हुआ था दिष्ट पुत्र नाभाग था और भलन्दन विद्वान था ।३। इस भलन्दन का पुत्र महान् बलवान् प्रांशु नाम वाला हुआ था । प्रांशु का एक ही पुत्र हुआ था जो नृप प्रजापति के ही समान था ।४। उसको सुहृत् और बान्धवों के साथ संवर्त्त के द्वारा स्वर्ग में ले जाया गया था । इस विषय में संवर्त्त का और बृहस्पति का बड़ा भारी विवाद हुआ था ।५। उसके यज्ञ की ऋद्धि का अवलोकन करके बृहस्पति क्रुद्ध हो गये थे । संवर्त्त के द्वारा यज्ञ के विस्तृत होने पर उस समय में वह अत्यधिक कुपित हो गया था ।६। लोकों के विनाश करने के लिए देवगणों के द्वारा वह प्रसन्न किया था । मरुत चक्रवर्त्ती उसने नरिष्यन्त को बसाया था ।७।

नरिष्यंतस्य दायादो राजा दंडधरो दमः ।
तस्य पुत्रस्तु विज्ञातो राजाऽसीद्राष्ट्रवर्द्धनः ।।८
सुधृतिस्तस्य पुत्रस्तु नरः सुधृतितः पुनः ।
केवलस्य पुत्रस्तु बंधुमान्केवलात्मजः ।।९
अथ बंधुमतः पुत्रो धर्मात्मा वेगवान्नृप ।
बुधो वेगवतः पुत्रस्तृणबिंदुर्बुधात्मजः ।।१०
त्रेतायुगमुखे राजा तृतीये संबभूव ह ।
कन्या तु तस्येडविडा माता विश्रवसो हि सा ।।११
पुत्रो योऽस्य विशालोऽभूद्राजा परमधार्मिकः ।
दाश्वान्प्रख्यातवीर्य्यौजा विशाला येन निर्मिता ।।१२
विशालस्य सुतो राजा हेमचन्द्रो महाबलः ।
सुचन्द्र इति विख्यातो हेमचन्द्रादनन्तरः ।।१३
सुचन्द्रतनयो राजा धूम्राश्व इति विश्रुतः ।
धूम्राश्वतनयो विद्वान्सृंजयः समपद्यत ।।१४

नरिष्यन्त का दायाद दण्डधर राजा दम था । उसका पुत्र परम विज्ञान राष्ट्र वर्धन राजा हुआ था ।८। उसका पुत्र सुधृति हुआ था और फिर सुधृति से नर पुत्र ने जन्म ग्रहण किया था । केवल का पुत्र तो एक

केवलात्मज बन्धुमान् हुआ था ।६। हे नृप ! फिर बन्धुमान् के यहाँ धर्मात्मा वेगवान् ने पुत्र के रूप में जन्म धारण किया था । वेगवान् का पुत्र बुध हुआ था और बुध का पुत्र तृण बन्धु उत्पन्न हुआ था ।१०। तृतीय त्रेता के मुख में राजा हुआ था । उसकी कन्या इडविडा थी जो विश्रवा की माता थी ।११। इसका पुत्र विशाल राजा हुआ था जो परम धार्मिक था । यह दाश्वान् और प्रख्यात वीर्य तथा ओज वाला था जिसने विशाल का निर्माण किया था ।१२। इस विशाल का पुत्र महाबलवान् हेमचन्द्र उत्पन्न हुआ था । इस हेमचन्द्र के अनन्तर सुचन्द्र नाम वाला विख्यात हुआ था ।१३। सुचन्द्र का पुत्र राजा धूम्राश्व हुआ था जो प्रसिद्ध था और धूम्राश्व का पुत्र परम विद्वान् सृंजय हुआ था ।१४।

सृञ्जयस्य सुतः श्रीमान्सहदेवः प्रतापवान् ।
कृशाश्वः सहदेवस्य पुत्रः परमधार्मिकः ।।१५
कृशाश्वस्य महातेजा सोमदत्तः प्रतापवान् ।
सोमदत्तस्य राजर्षेः सुतोऽभूज्जनमेजयः ।।१६
जनमेजयात्मजश्चैव प्रमतिर्नाम विश्रुतः ।
तृणबिंदुप्रभावेण सर्वे विशालका नृपाः ।।१७
दीर्घायुषो महात्मानो वीर्यवन्तः सुधार्मिकाः ।
शर्यातिर्मिथुनं त्वासीदानर्त्तो नाम विश्रुतः ।।१८
पुत्रः सुकन्या कन्या च भार्या या च्यवनस्य च ।
आनर्त्तस्य तु दायादो रेवो नाम सुवीर्यवान् ।।१९
आनर्त्तविषयो यस्य पुरी चापि कुशस्थली ।
रेवस्य रैवतः पुत्रः ककुद्मी नाम धार्मिकः ।।२०
ज्येष्ठो भ्रातृशतस्यासीद्राज्यं प्राप्य कुशस्थलीम् ।
कन्यया सह श्रुत्वा च गांधर्वं ब्रह्मणोऽतिके ।।२१

इस सृंजय का जो पुत्र समुत्पन्न हुआ था वह श्री सम्पन्न और प्रताप वाला सहदेव था । सहदेव के पुत्र का नाम कृशाश्व था । यह भी परम धार्मिक हुआ था। ।१५। कृशाश्व का तनय सोमदत्त हुआ था जो महान तेज वाला था और परम प्रतापी था । राजर्षि सोमदत्त के यहां जनमेजय ने पुत्र

के रूप में जन्म धारण किया था ।१६। इस जनमेजय का पुत्र प्रमति नाम वाला बहुत ही प्रख्यात हुआ था । तृणबिन्दु के प्रभाव से ये सब वैशालक नृप हुए थे ।१७। ये सभी सुदीर्घ आयु वाले—महान् समुच्च आत्माओं वाले—बल—वीर्य से सुसमन्वित और बहुत ही अधिक धार्मिक वृत्ति वाले हुए थे । शर्याति के एक जोड़ा हुआ था जो आनर्त्त के नाम विश्रुत था ।१८। एक पुत्र था और एक सुकन्या नाम वाली कन्या थी जो च्यवन ऋषि की भार्या थी । उस आनर्त्त के दायको ग्रहण करने वाला पुत्र रेव नामक हुआ था जो बड़ा वीर्य वाला था ।१९। आनर्त्त का देश था जिसको कुशस्थली नाम वाली पुरी थी । रेव का पुत्र रैवत ककुद्मी नाम वाला बड़ा धार्मिक हुआ था ।२०। यह सौ भाइयों में सबसे बड़ा था । इसने ही कुशस्थली के राज्य को प्राप्त किया था । ब्रह्माजी के समीप में कन्या का श्रवण करके उसके साथ गन्धर्व ज्ञान कर लिया था ।२१।

मुहूर्त्तं देवदेवस्य मार्त्यं बहुयुगं विभो ।
आजगाम युवा चैव स्वां पुरीं यादवैर्वृताम् ।।२२
कृतां द्वारवतीं नाम बहुद्वारां मनोरमाम् ।
भोजवृष्ण्यधकैर्गुप्तां वसुदेवपुरोगमैः ।।२३
तां कथां रेवतः श्रुत्वा यथातत्त्वमरिंदमः ।
कन्यां तु बलदेवाय सुव्रतां नाम रेवतीम् ।
दत्त्वा जगाम शिखरं मेरोस्तपसि संस्थितः ।।२४
रेमे रामश्च धर्मात्मा रेवत्या सहितः किल ।
तां कथामृषयः श्रुत्वा पप्रच्छुस्तदनंतरम् ।।२५
ऋषय ऊचुः—
कथं बहुयुगे काले समतीते महामते ।
न जरा रेवतीं प्राप्ता रैवतं वा ककुद्मिनम् ।
एतच्छुश्रूषमाणान्नो गान्धर्वं वद चैव हि ।।२६
सूत उवाच—
न जरा क्षुत्पिपासे वा न च मृत्युभयं ततः ।
न च रोगः प्रभवति ब्रह्मलोकं गतस्य ह ।।२७

गांधर्वं प्रति यच्चापि पृष्टस्तु मुनिसत्तमाः ।
ततोऽहं संप्रवक्ष्यामि याथातथ्येन सुव्रताः ॥२८

हे विभो ! वह समय देवों के देव का तो एक ही मुहूर्त था और मनुष्यों का वह समय बहुत से युगों के बराबर था । फिर वह युवा यादवों के समुदायों से घिरी हुई अपनी पुरी में आ गया था ।२२। वह पुरी द्वारवती नाम वाली की गयी थी जिसमें बहुत से द्वार थे और यह परम मनोहर थी । भोज-वृष्णि और अन्धक जो यादवों के विभिन्न भेद थे जिममें वसुदेव अग्रगामी थे–इन सबने उसकी रक्षा की थी ।२३। अरियों के दमन करने वाले रैवत ने ठीक तात्विक रूप से उस कथा का श्रवण किया और फिर उसने अपनी सुन्दर व्रत वाली रेवती नाम वाली कन्या को बलदेवजी के लिए समर्पित करके वह फिर मेरु पर्वत के शिखर तप चला गया था और वहाँ पर करने में संस्थित हो गया था ।२४। फिर बलरामजी भी जो परम धर्मात्मा थे, अपनी प्रिय पत्नी रेवती के साथ रमण किया करते थे । इस कथा को ऋषियों ने श्रवण करके इसके पश्चात उन्होंने पूछा था ।२५। ऋषियों ने कहा—हे महामते ! बहुत युगों वाले काल के व्यतीत जाने पर भी रेवती को और ककुद्मी रैवत को जरावस्था किस कारण से प्राप्त नहीं हुई थी ? इस सबके श्रवण करने की इच्छा वालों को वह गान्धर्व क्या है–यह भी बतलाने की कृपा कीजिए ।२६। श्रीसूतजी ने कहा-जो प्राणी ब्रह्म लोक में गमन कर जाया करता है उसको न तो कोई रोग ही होता है और उसको न मृत्यु का भय रहता है । वहां पर जरा और भूख प्यास भी नहीं सताया करती हैं ।२७। हे श्रेष्ठ मुनिगणो ! आपने जो मुझसे गान्धर्व के विषय में पूछा है उसको भी मैं हे सुव्रतो ! ठीक-ठीक रूप से बतलाऊँगा ।२८।

सप्त स्वरास्त्रयो ग्रामा मूर्छनास्त्वेकविंशतिः ।
तानाश्चैकोनपंचाशदित्येतत्स्वरमंडलम् ॥२९
षड्जर्षभौ च गांधारो मध्यमः पंचमस्तथा ।
धैवतश्चापि विज्ञेयस्तथा चापि निषादकः ॥३०
सौवीरा मध्यमा ग्रामा हरिणाश्च तथैव च ॥३१
तस्याः कालायनोपेताश्चतुर्थाशुद्धमध्यमाः ।
अग्नि च पौषा वै देव हृष्ट्वा कांच यथाक्रमः ॥३२

मध्यमग्रामिकाख्याता षड्जग्रामा निबोधत ।
उत्तरं मंद्रा रजनी तथा वाचोन्नरायता: ।।३३
मध्यषड्जा तथा चैव तथान्या चाभिमुद्गणा ।
गांधारग्रामिका श्यामा कीर्तिमाना निबोधत ।।३४
अग्निष्टोमं तु माद्यं तु द्वितीयं वाजपेयिकम् ।
यवरातसूयस्तु षष्ठवत्तु सुवर्णकम् ।।३५

सात तो स्वर होते हैं-तीन ग्राम हैं और इक्कीस मूर्च्छनाएं होती हैं। और तान उनचास हैं—यह सम्पूर्ण स्वर मण्डल होता है।२६। सात स्वरों के नाम बताये जाते हैं—षड्ज–ऋषभ-गान्धार मध्यम–धैवत और निषाद ये सात स्वर हैं।३०। सौवीरा-मध्यमा और हरिणा—ये तीन ग्राम हैं।३१। उसके कालायनोपेता चतुर्थी शुद्ध मध्यमा है। हे देव! क्रमानुसार नन्दि-पौषा और कांच ये देखकर होती हैं।३२। ये मध्य ग्रामिका कही गयी है। अब षड्ज ग्रामा को समझ लीजिए। उत्तर–मन्द्रा–रजनी और वाचोन्नारायता है।३४। तथा मध्यषड्जा है और अन्य अभिमुद्रणा होती है। गान्धारग्रामिका–श्यामा अब कीर्त्तिमाना होती है उसको समझलो।३४। अग्निष्टोम-माद्य-द्वितीय वाजयिक-यवरातसूया-षष्ठवत्-सुवर्णक है।३५।

सप्त गौसवना नाम महावृष्टिकताष्टमाम् ।
ब्रह्मदानं च नवमं प्राजापत्यमनंतरम् ।
नागयक्षाश्रयं विद्वान् तद्गोत्तरस्तथैव च ।।३६
पदकांतमृगक्रांतं विष्णुक्रांतमनोहरा ।
सूर्यकांतधरेण्यैव संतकोकिलविश्रुत: ।।३७
तेनवानित्यपवशपिशाचातीवनह्यपि ।
सावित्रमर्धसावित्रं सर्वतोभद्रमेव च ।।३८
मनोहरमधाख्यं च गन्धर्वानुपतश्च य: ।
अलंबुषेमथो विष्णुवैणवरावुभौ ।।३९
सागराविजयं चैव सर्वभूतमनोहर: ।
हतोत्सृष्टो विजानीत स्कंधं तु प्रियमेव च ।।४०

मनोहरमधाव्यं च गन्धर्वानुपतश्च यः ।
अलंवुसेष्टस्य तथा नारदप्रिय एव च ॥४१

कथितो भीमसेनेन नगरातानयप्रियः ।
विकलोपनीतविनताश्रीराख्यो भार्गवप्रियः ॥४२

सप्त गोसवना और महावृष्टिकता अष्टमा है और प्रह्लदान नवग है । इसके अनन्तर प्राजापत्य है । नागयक्षाश्रय विद्वान् और तद्गोत्तर तथा है ।३६। पदक्रान्त–मृगक्रान्त–विष्णुक्रान्त–मनोहरा । सूर्यकान्त धरेण्या-सन्त कोकिलविश्रुत है तेनवानित्यपवशपिशाचा–अतीवनही–साविश्र-अर्ध सावित्र और सर्वतोभद्र है ।३७-३८। मनोहर-अधाव्य और गन्धर्वानुपत है । अलम्बु-षेष्ट-विष्णु और वैणवर ये दो हैं ।३६। सागरा विजय और सर्वभूत मनोहर-हृतोत्सृष्ट-स्कन्ध और प्रिय जान लेना चाहिए ।४०। जो मनोहर अधाव्य तथा गन्धर्वानुपत है । अलम्बुषेष्ट की और नारद प्रिय है ।४१। नगरातान-प्रिय भीमसेन के द्वारा कहा गया है । विकलोपनीत विनता श्री नाम वाला भार्गव को प्रिय है ।४२।

चतुर्दश तथा पंचदशेच्छंतीह नापदः ।
ससौवीरां सुसोवीरा ब्रह्मणो ह्युपगीयते ॥४३

उत्तरादिस्वरश्चैव ब्रह्मा वै देवतास्त्रयः ।
हरिदेशसमुत्पन्ना हरिणस्याव्यजायत ॥४४

मूर्छना हरिणा ते वै चन्द्रस्यास्याधिदैवतम् ।
करोपनीता विवृतावनुद्रिः स्वरमंडले ॥४५

साकलोपनता तस्मान्मनुतस्यान्नदैवतः ।
मनुदेशाः समुत्पन्ना मूर्च्छनाशुद्धमात्मना ॥४६

तस्मात्तस्मान्मृगामार्गीमृगेंद्रोस्याधिदैवता ।
सावाश्रमसमाद्युम्ना अनेकापोरुपानखान् ॥४६

मूर्च्छनायोजना ह्येषा स्याद्रजसारजनी ततः ।
तानि उत्तरतद्रांसपद्गदैवतकं विदुः ॥४८

तस्मादुत्तरता यावत्प्रथमं स्वायमं विदुः ।
तमोदुत्तरमंद्रोयदेवतास्याध्रुवेन च ॥४६

यहां पर चतुर्दश और पञ्चदश की नारद इच्छा किया करते हैं ? ससौवीरा और सुसौवीरा ब्रह्माजी की उपगीत की जाती हैं।४३। और उत्तरादि स्वर है । ब्रह्मा तीन देवता हैं । हरि देश में समुत्पन्ना हरिण की हुई थी ।४४। जो मूर्च्छना हरिणा है वे इस चन्द्रकी अधिदेवत हैं । निवृत्ति में करोपनीत स्वरमण्डल में अनुद्रि है ।४५। साकलोपनता है इसलिये मन उसका अन्नदेवत है । मनुदेशा समुत्पन्ना मूर्च्छना आत्मा से शुद्ध है ।४६। इससे मृगामार्गी मृगेन्द्र इसका अधिदेवता है । वह अनेक पौरुषा नखों को समुद्युम्ना है ।४७। यह मूर्च्छना पोजना रजसारजनीत से होती है । उनको उत्तरमद्रांत सपद्ग देवत जाननी चाहिए ।४८। इस कारण से जब तक उत्त-रता हो तब तक इस स्वायम जानना चाहिए । इस देवता तमोदुत्तर मन्द्रोम निश्चित रूप से समझना चाहिए ।४९।

अपामदुत्तरत्वावधैवतस्योत्तरायण: ।
स्यादिजमूर्छनाह्येच पितर: श्राद्धदेवता: ॥५०
शुद्धषड्जस्वरं कृत्वा यस्मादग्निमहर्षय: ।
उपैति तस्मान्नजानीयाच्छुद्धयच्छिकरासभा: ॥५१
इत्येता मूर्छना: कृत्वा यस्यामीदृशभावन: ।
पक्षिणां मूर्छना: श्रुत्वा पक्षोका मूर्छना: स्मृता: ॥५२
नागादृष्टिविषागीता नोपसर्पतिमूर्छना: ।
नानासाधारणाश्चैव बडवात्रिविदस्तथा ॥५३

अपामदुत्तरत्व होने से अवधैवत का उत्तरायण हैं । यह इजमूर्च्छना है और पितर श्राद्ध देवता होते हैं।५०। शुद्ध षड्ज स्वर करके जिससे अग्नि महर्षि हैं । इससे प्राप्त होता है अतः शुद्धयच्छिकरा सभा नहीं जाननी चाहिए ।५१। ये इतनी मूर्च्छना करके जिसमें जैसा भी भाव हो । पक्षियों की मूर्च्छना का श्रवण करके पक्षी का मूर्च्छना कही गयी है । नानादृष्टि बिषा गीना बडवा त्रिविद होती हैं ।५२-५३।

गान्धर्व लक्षण वर्णन

पूर्वाचार्यमतं बुद्धा प्रवक्ष्याम्यनुपूर्वश: ।
विख्यातान्वै अलंकारांस्तन्मे निगदत: शृणु ॥१

अलंकारास्तु वक्तव्याः स्वैः स्वैर्वर्णैः प्रहेतवः ।
संस्थानयोगैश्च तथा सदा नाट्याद्यवेक्षया ॥२
वाक्यार्थपदयोगार्थैरलंकारैश्च पूरणम् ।
पदानि गीतकस्याहुः पुरस्तात्पृष्ठतोऽथ वा ॥३
स्थातोनित्रीनरो नीड्डीमनः कंठशिरस्थया ।
एतेषु त्रिषु स्थानेषु प्रवृत्तो विधिरुत्तमः ॥४
चत्वारः प्रकृतौ वर्णाः प्रविचारश्चतुर्विधा ।
विकल्पमष्टधा चैव देवाः षोडशधा विदुः ॥५
सृष्टो वर्णः प्रसंचारी तृतीयमवरोहणम् ।
आरोहणं चतुर्थं तु वर्णं वर्णविदो विदुः ॥६
तत्रैकः संचरस्थायी संचरस्तु चरोऽभवत् ।
अवरोहणवर्णानामवरोहं विनिर्दिशेत् ॥७

श्री सूतजी ने कहा—मैं अपने पूर्व में होने वाले आचार्यों के मत को समझ कर क्रम से आरम्भ से अन्त तक बताऊँगा जो भी अलंकार परम प्रसिद्ध हैं उनको मुझ से आप लोग अब श्रवण कीजिए ।१। जो अपने-अपने वर्णों से प्रकृष्ट हेतुओं वाले हैं वे ही अलंकार बताने चाहिए । और जो नाट्य आदि के अवेक्षण से संस्थान योगों से सदा समन्वित हुआ करते हैं ।२। जहाँ पर वाक्य–अर्थ–पद–योग–अर्थ और अलंकारों से पूर्ति होती है वे गीत के पद आगे अथवा पीछे कहे गये हैं ।३। स्थातोनित्रीनर-नीड्डीमनः कण्ठ और शिर में स्थित–इन तीन स्थानों में जो विधि है वही उत्तम होती है ।४। प्रकृति में चार वर्ण हैं और प्रविचार के चार-प्रकार के हैं । आठ प्रकार से विकल्प है । इसको देव १६ प्रकार का जानते हैं ।५। वर्ण प्रसंचारी सृजन किया गया है । तीसरा अवरोहण होता है । चौथा आरोहण है—इस तरह से वर्णों के ज्ञाता वर्ण को जानते हैं ।६। वहाँ पर संचर स्थायी है और संचर तो चर होगया है । जो अवरोहण वर्ण हैं उनका अवरोह विनिर्दिष्ट करना चाहिए ।७।

आरोहणेन वारोहान्वर्णान्वर्णविदो विदुः ।
एतेषामेव वर्णानामलंकारान्निबोधत ॥८

अलंकारास्तु चत्वारस्थापनी क्रमरंजनः ।
प्रमादस्याप्रमादश्च तेषां वक्ष्यामि लक्षणम् ॥९
विस्वरोऽष्टकलाश्चैव स्थानं द्वयेकतरागतः ।
आवर्त्तस्याक्रमोत्वाक्षी वैकार्यो परिमाणतः ॥१०
कुमारं संपरं विद्धि द्विस्तरं वामनं गतः ।
एष वै एष चैवस्यकुतरेकः कुलाधिकः ॥११
स्वेन स्वे कातरे जातकलामग्नितरैषितः ।
तस्मिश्चैव स्वरे वृद्धिर्निष्टप्ते तद्विचक्षणः ॥१२
स्येनस्तु अपरो हस्त उत्तरः कमला कलः ।
प्रमाणघर्सबिंदुर्ना जायते विदुरे पुनः ॥१३
कला कार्या तु वर्णानां तदा नुः स्थापितो भवेत् ।
विपर्ययस्य रोपिस्याद्यस्य प्रादुर्घटी मम ॥१४

वर्णों के ज्ञाता विद्वद्गण आरोहण वर्णों को आरोहण से ज्ञात किया ज्ञात किया करते हैं। इन्हीं वर्णों के अलंकारों को समझ लीजिए ।८। अलंकार चार हैं—थापनो-क्रम-रोजन और प्रमाद का अप्रमाद–इनका लक्षण बताऊँगा ।९। विस्वर और अष्ट कला स्थान दो—एकतर में आगत-आवर्त्त का अक्रम आक्षी और परिमाण से वैकार्य हैं ।१०। कुमार को संमर समझिए और द्विस्तर वामन को गत है। यह ही एक का है फिर एक कुलाधिक कैसे होता है ।११। अपने से अपने कातर में जात कलाको अग्नितरैषित कहा है। उसका विद्वान् उसमें ही निष्टप्त स्वर मे वृद्धि समझ लेवे ।१२। स्येन तो दूसरा हाथ है और उत्तर कमलाकल होता है। फिर विदुर में प्रमाण घम बिन्दु नहीं होता है ।१३। तभी वर्णों की कला करनी चाहिए जन नुः स्थापित होवे। विपर्यय का रोपी होती है जिसको मेरी घटी कहा करते हैं ।१४।

एकोत्तरः स्वरस्तु स्यात्षड्जतः परमः स्वरः ।
अक्षेपस्कंदनाकार्यं काकस्योपचपुष्कलम ॥१५
संतारौ तौनुसर्वाभ्यौ कार्यं वा कारणं तथा ।
आक्षिप्तमवरोह्यासीत्प्रोक्षमद्यन्तथैव च ॥१६

द्वादशे च कलास्थानामेकांतरगतस्तथा ।
ऐखोल्लिखितमलकारमेव स्वरसमन्विता ॥१७
स्वरस्वरबहुग्रामकाप्रयोष्टनुपरकला ।
प्रक्षिप्तमेव कलयाचोपादानारयो भवेत् ॥१८
द्विकथंवावथाभूत यत्रभाषितमुच्यते ।
उच्चराद्विश्वरारूढा तथायाष्टस्वरातथा ॥१९
वापः स्यादवरोहेण नारतो भवति ध्रुवम् ।
एकांतरं च ह्येतेवैतमेवस्वरसततमः ॥२०
मक्षिप्रच्छेदनामाचचतुष्कलगणः स्मृतः ।
अलंकारा भवंत्येते त्रिंशद्देवैः प्रकीर्तितताः ॥२१

एकोत्तर स्वर तो षड्ज से परम स्वर होता है । अक्षेप स्कन्दना कार्य काक का उपच पुष्कल है ।१५। वे दोनों अनुसर्वाय्य संतार हैं अथवा कार्य तथा कारण है । आक्षिप्त अवरोही था तथा प्रोक्षमद्य होता है ।१६। और द्वादश में कलास्थों का उसी भाँति एकान्तर गत होता है । प्रेखोल्लिखित अलंकार एक स्वर से समन्वित है ।१७। स्वर-स्वर बहु ग्राम का प्रयोष्टनुपरकला और कला के द्वारा प्रक्षिप्त ही उपादानारय होता है ।१८। द्विकथ अथवा अवथाभूत भाषित जहाँ पर कहा जाया करता है । उच्चर से विश्वरारूढा तथा आयाष्ट स्वरा ही ।१९। अवरोहण से वाप होता है और निश्चय ही नार से होता है और एकान्तर एतेवैत ही स्वर संतय होता है । अर्थात् श्रेष्ठ स्वर होता है ।२०। और यह मक्षिप्रच्छेद नाम वाला चतुष्कल गण कहा गया है । ये अलंकार होते हैं जो देवों के द्वारा तीस कहे गये हैं ।२१।

वर्णस्थानप्रयोगेण कलामात्राप्रमाणतः ।
संस्थानं च प्रमाणं च विकारो लक्षणस्तथा ॥२२
चतुर्विधमिदं ज्ञेयमलंकारप्रयोजनम् ।
यथात्मनो ह्यलंकारो विपर्यस्तो विगर्हितः ॥२३
वर्णमेवाप्यलंकर्त्तुं विषमा ह्यात्मसंभवाः ।
नानाभरणसंयोगा यथा नार्या विभूषणम् ॥२४

वर्णस्य चैवालंकारो विभूषा ह्यात्मसंभवः ।
न पादे कुंडलं दृष्टं न कंठे रसना तथा ॥२५
एवमेवाद्यलंकारे विपर्यस्तो विगर्हितः ।
क्रियमाणोऽप्यलंकार्यो नागं यश्चैव दर्शयत् ॥२६
यथादृष्टस्य मार्गस्यकर्त्तव्यस्य विधीयते ।
लक्षणं पर्यवस्यापिवर्त्तिकामपिवर्त्तते ॥२७
याथातथ्येन वक्ष्यामि मासोद्भवमुखोद्भव ।
त्रयोविंशतिशीतिस्तु विज्ञातपवदैवतम् ॥२८

वर्ण स्थान प्रयोग से—कला मात्रा के प्रमाण से सस्थान–प्रमाण-और लक्षण हैं ।२२। इस तरह से चार प्रकार का यह अलंकारों का प्रयोजन समझना चाहिए । जिस प्रकार से शरीर पर विपर्यस्त अर्थात् उचित स्थान के विपरीत अलंकार विगर्हित हुआ करता है ।२३। यह वर्ण को अलंकृत करने के वास्ते हैं और आत्मा में होने वाले विषम हैं । ये नाना आभरणों के संयोग हैं जिस तरह से नारी के भूषण हुआ करते हैं ।२४। वर्ण का ही यह अलंकार आत्मा की विभूषा होते हैं । अलंकार का एक उचित स्थान होता है तभी वह अलंकारण किया करता है जैसे चरण में कभी कुण्डल नहीं देखा गया है और कण्ठ में रसना नहीं दिखाई दिया करती हैं ।२५। इसी प्रकार से अलंकार में भी विपरीतता बुरी होती है और उसमें शोभाधायकता नहीं हुआ करती है । किया हुआ भी अलंकार कोई भी शोभा नहीं दिखाता है ।२६। जिस रीति से अदृष्ट कर्तव्य मार्ग का लक्षण किया जाता है और जो पर्यवस्थ है उसका भी वर्त्तिका होती है ।२७। अब मैं यथार्थ रूप से मासोद्भव को बतलाऊंगा । त्रयोविंशति शीति अपदैवत विज्ञात है ।२८।

नगोनातुपुरस्तानुमध्यमांशस्तु पर्यवः ।
तयोर्विभागो देवानां लावण्ये मार्गसंस्थितः ॥२९
अनुषंगमयो दृष्टं स्वसारं वस्वरातर ।
विपर्ययः संवर्त्तं च सप्तस्वरपदक्रमम् ॥३०
गांधारसेतुगीयन्ते वरोमद्भगवानि च ।
पंचमं मध्यमं चैव धैवतं तु निषादतः ॥३१

षड्जर्षभश्चा जानीमो मद्रकेष्वेवनांतरे ।
द्वेद्व्यपरतु किं विद्यादद्द्वयमुष्णंतिकस्य तु ॥३२
प्राकृते वैकृते चैव गांधारः संप्रयुज्यते ।
पदस्यात्ययरूपं तु सप्तरूपं तु कौशिकीम् ॥३३
गांधारस्येन कात्स्र्येन चायं यस्य विधिः स्मृतः ।
एष चैव क्रमोद्दिष्टो मध्यमांशस्य मध्यमः ॥३४
यानि प्रोक्तानि गीतानिवतुरूपं विशेषतः ।
ततः सप्तस्वरं कार्यंसप्तरूपं च कौशिकी ॥३५

नगोनातु पुरस्तानु मध्यमांश पर्यय होता है । उन दोनों का विभाग देवों के लावण्य में मार्ग संस्थित है ।२९। अनुषङ्गमय वस्वरातर स्वसार देखा गया है और संवर्त्त में सप्तस्वर पदक्रम विपर्यय है ।३०। गान्धार सेतु और वरो मद्भगवानि गाये जाया करते हैं और पंचम-मध्यम-धैवत निषाद से गाये जाते हैं ।३१। षड्ज और ऋषभ को हम मद्रकों में ही वनान्तर में जानते हैं । द्वेद्व्य पद तो उष्णान्तिक के द्वय को क्या जाने ।३२। प्राकृत और वैकृत में वह गान्धार ही प्रयुक्त किया जाया करता है । पद का अत्यय रूप और सप्तरूप कौशिकी का प्रयोग करते हैं ।३३। गान्धार की इन कात्स्र्य से यही विधि कही गयी है । यही मध्यमांश का मध्यम क्रमोद्दिष्ट है ।३४। जो भी गीत कहे गये हैं विशेष रूप से वतु रूप हैं । फिर सप्त स्वर सप्तरूप और कौशिकी करने चाहिए ।३५।

अगदर्शनमित्याहुर्मानुद्वैममके तथा ।
द्वितीयामासमात्राणाक्तिः सर्वाः प्रतिष्ठिताः ॥३६
उत्तरेवप्रकृत्येवंमाताब्राह्मतलायत ।
तथाहृतारोपिङकेयत्रमायां निवर्त्तते ॥३७
पादेनैकेनमात्रायाः पादोनामतिवारिणः ।
संख्यापनोपहतां वै तव पानमिति स्मृतम् ॥३८
द्वितीयपादभंगं च ग्रहे नाम प्रतिष्ठितम् ।
पूर्वमष्टतीटती न द्वितीयं चापरान्तिकैः ॥३९

पादभागसपादं तु चक्रुत्यामपि सस्थितम् ।
चतुर्थमुत्तरं चैवमद्रवत्पावमद्रको ।।४०
मद्रकोदक्षिणस्यापि यथोक्ता वर्त्तते कला ।
सर्वमेवानुयोगं तु द्वितीयं बुद्धिमिष्यते ।।४१
पादौ वा हरणं चास्मात्पारं नात्र विधीयते ।
एकत्वं मनुयोगस्य द्वयोर्यद्यद्विद्विजोत्तम ।।४२
अनेकसमवायस्तु पातका हरिणा स्मृताः ।
तिसृणां चैव वृत्तीनां वृत्तौ वृत्ते च दक्षिणः ।।४३
अष्टौ तु समवायस्तु वीरा संमूर्छना तथा ।
कस्यनासुतरा चैव स्वरशाखा प्रकीर्त्तिता ।।४४

तथा भानुसौममक में अगदर्शन है—यह कहते हैं। द्वितीय मास मात्राओं से सब प्रतिष्ठित हैं ।३६। इस प्रकार से प्रकृति से उत्तरा की भाँति माता ब्रह्म तलायत है। तथा हृतारोपीडक में जहाँ पर माया निवृत्त हो जाया करती है ।३७। एक पाद से माया का पादोना में अति चारी होते हैं। मख्यापनोय हृत वितत्र पान—यह कहा गया है ।३८। और द्वितीय पाद भङ्ग ग्रह में नाम प्रतिष्ठित है। पूर्व अष्ट तीर तोन द्वितीय अपरान्तिकों से होता है ।३८-३६। पदभाग सपाद तो प्रकृति में संस्थित प्राप्त होता है। चतुर्थ उत्तर इस प्रकार से पान और मद्रक को द्रवित करता था ।४०। दक्षिण की भी मद्रका यथोक्त कला होती है। सम्पूर्ण अनुयोग द्वितीय हैं जो बुद्धि को अभीष्ट किया करती है ।४१। और पादों का ही आहरण होता है और यहाँ पर पार नहीं होता है। हे द्विजोत्तम ! दोनों का जो-जो भी है वह अनुयोग का एकत्व है ।४२। अनेकों का जो समवाय है वह पातक हरण कहे गये हैं तीनों वृत्तियों का वृत्ति में और वृत्त में दक्षिण है ।४३। आठ समवाय तो तथा वीरा संमूर्च्छना होती है। कस्यना सुतरा स्वर शाखा कीर्त्तित की गयी है ।४४।

आभूत संप्लव वर्णन

श्रुत्वा पादं तृतीयं तु क्रांतं सूतेन धीमता ।
ततश्चतुर्थं पप्रच्छुः पादं वै ऋषिसत्तमः ।।१
ऋषय ऊचुः—
पादः क्रांतस्तृतीयोऽयमनुषंगेण नस्त्वया ।
चतुर्थं विस्तरात्पादं संहारं परिकीर्तय ।।२
मन्वंतराणि सर्वाणि पूर्वाण्येवापरैः सह ।
सप्तर्षीणामथैतेषां सांप्रतस्यांतरे मनोः ।।३
विस्तरावयवं चैव निसर्गस्य महात्मनः ।
विस्तरेणानुपूर्व्या च सर्वमेव ब्रवीहि नः ।।४
सूत उवाच—
भवतां कथयिष्यामि सर्वमेतद्यथातथम् ।
पादं त्विमं ससंहारं चतुर्थं मुनिसत्तमाः ।।५
मनोर्वैवस्वतस्येमं सांप्रतस्य महात्मनः ।
विस्तरेणानुपूर्व्या च निसर्गं शृणुत द्विजाः ।।६
मन्वंतराणां संक्षेपं भविष्यैः सह सप्तभिः ।
प्रलयं चैव लोकानां ब्रुवतो मे निबोधत ।।७

परम धीमान् श्री सूतजी के द्वारा वर्णित तृतीय पाद का श्रवण करके परम श्रेष्ठ ऋषियों ने फिर उनसे चतुर्थ पाद के विषय में पूछा था ।१। ऋषियों ने कहा—हे भगवन् ! आपने हमारे समक्ष में अनुषंग से यह तीसरा पाद तो भली भाँति वर्णन करके सुना दिया है । अब आप कृपा करके चतुर्थ पाद का जो संहार हो उसका परिकीर्त्तन कीजिए ।२। पूर्व में जो सब मन्वन्तर हुए हैं तथा दूसरे जो भी मन्वन्तर हैं उन्हीं के साथ इन सप्तर्षियों का वर्णन कीजिए और वर्त्तमान समय में जो भी मन्वन्तर है उसको बतलाइए ।३। इस महान् आत्मा वाले विसर्ग का अवयवों के सहित विस्तार बतलाइए । और सभी कुछ विस्तार के साथ तथा आनुपूर्वी से अर्थात् क्रमशः आरम्भ से अन्त तक हमको बतलाइए ।४। श्री सूतजी ने कहा—मैं

आपके सामने अब सभी कुछ यथार्थता से वर्णन करूँगा। हे श्रेष्ठ मुनि-गणो! अब मैं इस चतुर्थ पाद का संहार के सहित वर्णन करता हूँ।५। वर्त्तमान में महात्मा वैवस्वत मनु का भी जो निसर्ग है उसका भी वर्णन विस्तार के साथ आरम्भ से अन्त तक क्रम से करूँगा। आप लोग इस सबका श्रवण करिए।६। हे द्विजो! सभी मन्वन्तरों का संक्षेप जो भी भविष्य में होने वाले सात मन्वन्तर हैं उनके ही साथ में वर्णन करूँगा और लोकों का जो प्रत्यय होगा उसको भी बतलाऊँगा। बता देने वाले मुझसे यह सभी भली भाँति समझ लीजिए।७।

एतान्युक्तानि वै सम्यक्सप्तसप्त सु वै प्रजाः।
मन्वंतराणि संक्षेपाच्छृणुतानागतानि मे ॥८
सावर्णस्य प्रवक्ष्यामि मनोर्वैवस्वतस्य ह।
भविष्यस्य भविष्यं तु समासात्तन्निबोधत ॥९
अनागताश्च सप्तैव स्मृतास्त्विह महर्षयः।
कौशिको गालवश्चैव जामदग्न्यश्च भार्गवः ॥१०
द्वैपायनो वशिष्ठश्च कृपः शारद्वतस्तथा।
आत्रेयो दीप्तिमांश्चैव ऋष्यशृंगस्तु काश्यपः ॥११
भरद्वाजस्तथा द्रौणिरश्वत्थामा महायशाः।
एते सप्त महात्मानो भविष्याः परमर्षयः।
सुतपाश्चामिताभाश्च सुखाश्चैव गणास्त्रयः ॥१२
तेषां गणस्तु देवानामेकैको विंशकः स्मृतः।
नामतस्तु प्रवक्ष्यामि निबोधध्वं समाहिताः ॥१३
ऋतुस्तपश्च शुक्रश्च कृतिर्नेमिः प्रभाकरः।
प्रभासो भासकृद्धर्मस्तेजोरश्मिः क्रतुविराट् ॥१४

ये सात मन्वन्तर तो मैंने आपको बता दिये हैं और भली भाँति कह कर सुना दिये हैं। अब प्रजा सातों में जो होगी वे अनागत मन्वन्तर जो आगे आने वाले हैं उनको संक्षेप से बतलाता हूँ। आप लोग श्रवण कीजिए।८। अब सावर्ण वैवस्वत मनु के विषय में बताऊँगा। यह भविष्य में होने

वाला है। इसका भविष्य मैं संक्षेप से कहूँगा। आप लोग समझ लीजिए ।६। जो अभी तक नहीं हुए हैं वे सब सात ही महर्षिगण कहे गये हैं। उनके परम शुभ नाम ये हैं—कौशिक—गालव—जामदग्न्य—भार्गव—द्वैपायन—वसिष्ठ—कृप—शारद्वत—आत्रेय—दीप्तिवान्—ऋष्यशृंग—काश्यप—भरद्वाज—द्रौणि—महायशस्वी अश्वत्थामा—ये सात महान् आत्मा वाले परमर्षिगण आगे होने वाले हैं। वे सब सुन्दर तप वाले—अपरिमित आभा से सुसम्पन्न और सुखद तीस गण हैं ।१०-१२। उन देवों का गण एक-एक विंशक कहा गया है। मैं अब उनके नाम बताते हुए कहूँगा। आप लोग बहुत ही सावधान होकर उनका श्रवण कीजिए और भली भाँति समझ लीजिए ।१३। क्रतु—तप—शुक्र—कृति—नेति—प्रभाकर—प्रभास—मासकृत्—धर्म—तेजोरश्मि—क्रतु—विराट् ।१४।

अर्चिष्मान् द्योतनो भानुर्यशः कीर्त्तिर्बुधो धृतिः ।।१५
विंशतिः सुतपा ह्येते नामभिः परिकीर्त्तिताः ।
प्रभुर्विभुर्विभासश्च जेता हंतारिहा ऋतुः ।।१६
सुमतिः प्रमतिर्दीप्तिः समाख्यातो महो महान् ।
देही मुनिरिनः पोष्टा समः सत्यश्च विश्रुतः ।।१७
इत्येते ह्यमिताभास्तु विंशतिः परिकीर्त्तिताः ।
दामो दानी ऋतः सोमो वित्तं वैद्यो यमो निधिः ।।१८
होमो हव्यं हुतं दानं देयं दाता तपः शमः ।
ध्रुवं स्थानं विधानं च नियमश्चेति विंशतिः ।।१९
सुखा ह्येते समाख्याताः सावर्ण्ये प्रथमेंतरे ।
मारीचस्यैव ते पुत्राः कश्यपस्य महात्मनः ।।२०
सांप्रतस्य भविष्यन्ति षष्टिर्देवास्तदन्तरे ।
सावर्णस्य मनोः पुत्रा भविष्यंति नवैव तु ।।२१

अर्चिष्मान्—द्योतन—भानु—यश कीर्त्ति—बुध—धृति—।१५। ये सुन्दर तपों वाले हैं। इनकी विंशति है जो नाम बताकर कीर्त्तित कर दिये गये हैं। प्रभु—विभु-विभास-जेता-हंता-रिहा-क्रतु ।१६। सुमति-प्रमति-दीप्ति और महान् मह समाख्यात हुआ है। देही-मुनि-इन-पोष्टा-सम-सत्य-विश्रुत ।१७।

ये सब अमित आभा से सम्पन्न थे। इनकी भी विंशति कही गयी है अर्थात् इन बीसों का समुदाय बताया गया है। अब अन्य विंशति भी बतायी जाती है—दम-दानी–ऋत–सोम–वेद्यायम–निधि-होम-हव्य-हुत-दान-देय-दाता-तप-शम-ध्रुव-स्थान-विधान और नियम–ये विंशति होती हैं।१८-१६। ये सब सावर्ण्य मन्वन्तर में सुख बताये गये हैं। वे सब मारीच काश्यप के ही पुत्र हैं जो महान् आत्मा वाले थे।२०। इसके अन्तर में वर्त्तमान् काल के साठ देवता होंगे। सावर्णा मनु के पुत्र तो नौ ही होंगे।२१।

विरजाश्चार्वरीवांश्च निर्मोकाद्यास्तथा परे।
नव चान्येषु वक्ष्यामि सावर्णेष्वंतरेषु वै ॥२२
सावर्णमनवश्चान्ये भविष्या ब्रह्मणः सुताः।
मेरुसावर्णितस्ते वै चत्वारो दिव्यदृष्टयः ॥२३
दक्षस्य ते हि दौहित्राः क्रियाया दुहितुः सुताः।
महता तपसा युक्ता मेरुपृष्ठे महौजसः ॥२४
ब्रह्मादिभिस्ते जनिता दक्षेणैव च धीमता।
महर्लोकं गता वृत्ता भविष्या मेरुमाश्रिताः ॥२५
महानुभावास्ते पूर्वं जज्ञिरे चाक्षुषेंतरे।
जज्ञिरे मनवस्ते हि भविष्यानागतांतरे ॥२६
प्राचेतसस्य दक्षस्य दौहित्रा मनवस्तु ये।
सावर्णा नामतः पंच चत्वारः परमर्षिजाः ॥२७
संज्ञापुत्रस्तु सावर्णिरेको वैवस्वतस्तथा।
ज्येष्ठः संज्ञासुतो नाम मनुर्वैवस्वतः प्रभुः ॥२८

विरजा-चार्वरीवान् तथा दूसरे निर्मोक आद्य अन्य सावर्ण अन्तरों में नौ बतलाऊँगा।२२। अन्य सावर्ण मनु ब्रह्माजी के पुत्र होने वाले हैं। वे मेरु सावर्णि से लेकर चार दिव्य दृष्टि वाले हैं।२३। वे सब प्रजापति दक्ष के दौहित्र हैं और क्रिया नाम वाली उसकी दुहिता के पुत्र हैं। ये सब महान् तप से युक्त थे।२४। वे सब ब्रह्मादि के द्वारा तथा धीमान् दक्ष के द्वारा जनित हुए हैं। महर्लोक को गये थे और वृत्त भविष्य मेरु पर्वत पर समाश्रित थे।२५। वे महानुभाव पूर्व में समुत्पन्न हुए थे। जिस समय में चाक्षुष

मन्वन्तर था । वे सब मनु भविष्य अनागत अन्तर में समुत्पन्न हुए थे ।२६। जो मनुगण प्राचेतस दक्ष के दौहित्र थे । वे नाम से पाँच तो सावर्ण थे और चार परमर्षि से समुत्पन्न हुए थे ।२७। संज्ञा का पुत्र एक सावर्णि तथा वैवस्वत था । सबसे बड़ा संज्ञा का पुत्र प्रभु वैवस्वत मनु था ।२८।

वैवस्वतेंऽतरे प्राप्ते समुत्पत्तिस्तयोः शुभा ।
चतुर्दशैते मनवः कीर्तिताः कीर्तिवर्द्धनाः ॥२६
वेदे स्मृतौ पुराणे च सर्वे ते प्रभविष्णवः ।
प्रजानां पतयः सर्वे भूतानां पतयः स्थिताः ॥३०
तैरियं पृथिवी सर्वा सप्तद्वीपा सपत्तना ।
पूर्णं युगसहस्रं वै परिपाल्या नरेश्वरैः ॥३१
प्रजाभिस्तपसा चैव विस्तरस्तेषु वक्ष्यते ।
चतुर्द्दशैते विज्ञेयाः सर्गाः स्वायंभुवादयः ॥३२
मन्वंतराधिकारेषु वर्त्तन्तेऽत्र सकृत्सकृत् ।
विनिवृत्ताधिकारास्ते महर्लोकं समाश्रिताः ॥३३
समतीतास्तु ये तेषामष्टौ षट् च तथाऽपरे ।
पूर्वेषु सांप्रतश्चायं शास्ति वैवस्वतः प्रभुः ॥३४
ये शिष्टास्तान्प्रवक्ष्यामि सह देवर्षिदानवैः ।
सह प्रजानिसर्गेण सर्वांस्तेऽनागतान्द्विजः ॥३५

वैवस्वत मनु के अन्तर प्राप्त हो जाने पर उन दोनों की समुत्पत्ति परम शुभ हुई थी । हमने ये चौदह मनुओं का वर्णन कर दिया है जो कि परमाधिक कीर्त्ति का वर्धन करने वाले हुए हैं ।२६। वेद में—स्मृति में और पुराण में वे सभी बहुत ही होनहार बताये गये हैं । ये सभी प्रजाओं के तथा प्राणियों के स्वामी हुए हैं ।३०। उन्हीं नरेश्वरों के द्वारा पूरे सहस्र युगों तक यह सम्पूर्ण पृथ्वी सातों द्वीपों से समन्वित और बड़े-बड़े विशाल नगरों से युक्त परिपालन करने के योग्य है ।३१। प्रजाओं के द्वारा तथा तप से जो उनका विस्तार है वह सब भी बताया जा रहा है । ये चौदह सर्ग स्वायम्भुव आदि के हैं सभी जान लेने के योग्य हैं ।३२। यहाँ पर मन्वन्तरों के अधिकारों में एक-एक बार यह होता है । जब अधिकार विनिवृत्त हो जाता है

तो वे सब जाकर महर्लोक में समाश्रय वाले हो जाते हैं ।३३। उनमें जो आठ थे वे व्यतीत हो चुके थे और छै दूसरे थे । पूर्व में होने वालों में यह वर्त्तमान में होने वाला यह वैवस्वत प्रभु शासन कर रहे हैं ।३४। जो भी शिष्ट रहे हैं उनको देव-ऋषि और दानवों के ही साथ अब बतलाऊँगा । हे द्विज ! सम्पूर्ण प्रजा की सृष्टि के साथ ही उन सभी अनागतों को बतलाया जायगा अर्थात् आगे होने वाले हैं उनको कहेंगे ।३५।

वैवस्वतनिसर्गेण तेषां ज्ञेयस्तु विस्तरः ।
अनूना नातिरिक्तास्ते यस्मात्सर्वे विवस्वतः ।।३६
पुनरुक्तबहुत्वात्तु न वक्ष्ये तेषु विस्तरम् ।
मन्वन्तरेषु भाव्येषु भूतेष्वपि तथैव च ।।३७
कुले कुले निसर्गास्तु तस्माज्ज्ञेया विभागशः ।
तेषामेव हि सिद्धयर्थं विस्तरेणक्रमेण च ।।३८
दक्षस्य कन्या धर्मिष्ठा सुव्रता नाम विश्रुता ।
सर्वकन्यावरिष्ठा तु ज्येष्ठा या वीरिणीसुता ।।३९
गृहीत्वा तां पिता कन्यां जगाम ब्रह्मणोऽतिके ।
वैराजस्थमुपासीनं धर्मेण च भवेन च ।।४०
भवधर्मसमीपस्थं दक्ष ब्रह्माऽभ्यभाषत ।
दक्ष कन्या तवेयं वै जनयिष्यति सुव्रता ।।४१
चतुरो वै मनून्पुत्रांश्चातुर्वर्ण्यकराञ्छुभान् ।
ब्रह्मणो वचनं श्रुत्वा दक्षो धर्मो भवस्तदा ।।४२

वैवस्वत मनु के विसर्ग से उनका भी विस्तार जान लेना चाहिए । कारण यह है कि वे सब वैवस्वत मनु से न तो अन्यून हैं और न उससे अतिरिक्त ही हैं ।३६। वे बहुत हैं इसलिए और उनका दूसरी बार कथन होने से उनके विषय में विस्तार नहीं कहूँगा । जो भी पहिले हो गये हैं तथा जो भविष्य में होने वाले हैं उन सभी के विषय में अधिक विस्तार नहीं कहा जायगा ।३७। इस कारण से कुल-कुल में विभाग से ही निसर्ग समझ लेने चाहिए । उन्हीं की सिद्धि के लिए विस्तार से और क्रम से कहता हूँ ।३८। प्रजापति दक्ष की कन्या बड़ी ही धर्म्मिष्ठा थी तथा उसका नाम सुव्रता

प्रसिद्ध था। समस्त कन्याओं में बहुत श्रेष्ठ ज्येष्ठा थी जो वैरिणी का सुता थी।३६। पिता उस कन्या को लेकर ब्रह्माजी के समीप में गया था। ब्रह्माजी वैराज मे समवस्थित थे और धर्म तथा मन के द्वारा उपासीन थे।४०। जब दक्ष भव और धर्म के समीप में स्थित थे तब उनसे ब्रह्माजी ने कहा था—हे दक्ष ! आपकी यह सुव्रत कन्य चार मनुओं को जन्म देगी जो इसके पुत्र चारों वर्णों के करने वाले परम शुभ होंगे। ब्रह्माजी के इस वचन को सुनकर दक्ष-धर्म और भव उस समय मे यह किया था।४१-४२।

तां कन्यां मनसा जग्मुस्त्रयस्ते ब्रह्मणा सह ।
सत्याभिध्यायिनां तेषां सद्यः कन्या व्यजायत ।।४३
सदृशानूपतस्तेषां चतुरो वै कुमारकान् ।
संसिद्धाः कार्यकरणे संभूतास्ते श्रियान्विताः ।।४४
उपभोगासमर्थैश्च सद्योजातैः शरीरकैः ।
ते दृष्ट्वा तान्स्वयंभूतान्ब्रह्मव्याहारिणस्तदा ।।४५
सरंब्धा वै व्यकर्षंत मम पुत्रो ममेत्युत ।
अभिध्यायात्मनोत्पन्नानूचुर्वै ते परस्परम् ।।४६
यो अस्य वपुषा तुल्यो भजतां सततं सुतम् ।
यस्य यः सदृशश्चापि रूपे वीर्ये च मानतः ।।४७
तं गृह्णातु स भद्रं वो वर्णतो यस्य यः समः ।
ध्रुवं रूपं पितुः पुत्रः सोऽनुरुध्यति सर्वदा ।।४८
तस्मादात्मसमः पुत्रः पितुर्मातुश्च वीर्यतः ।
एवं ते समयं कृत्वा सर्वेषां जगृहुः सुतान् ।।४९

उस समय ब्रह्माजी के साथ ही मन से उन तीनों ने उस कन्या को गमन किया था। सत्याभि ध्यायी उनकी कन्या के तुरन्त ही समुत्पन्न किया था। अर्थात् रूप से उन्हीं के सदृश चार कुमारों को जन्म दिया था वे कार्यों के करने में संसिद्ध थे तथा श्री से समन्वित हुए थे।४५। उनके तुरन्त ही समुत्पन्न शरीर सभी उपभोगों के लिए समर्थ थे। स्वयं ही समुत्पन्न उन कुमारों को देखकर वे जो उस समय ब्रह्मा के व्यापारी थे आपस में बहुत ही संरम्भ वाले होकर खींचातानी करने लगे कि यह मेरा पुत्र है—

यह मेरा पुत्र है—ऐसा ही कह रहे थे । फिर उन्होंने आपस में कहा था कि ये अभिध्यान से आत्मा से ही समुत्पन्न हैं ।४५-४६। अतएव जो भी जिसके शरीर के तुल्य हो वह उसी को अपना सुत मान लेवे । जो भी जिसके रूप-वीर्य और मात में सदृश होवे अथवा वर्ण से जो जिसके समान हो उसी को वह ग्रहण कर लेवे—इसी में आप का कल्याण है । यह तो निश्चित ही है कि पुत्र पिता के रूप को सर्वदा ग्रहण किया करता है ।४७-४८। इसलिए पिता और माता के वीर्य से पुत्र सदा आत्मा के ही समान हुआ करता है । उस प्रकार से उन्होंने समझौता करके सब सुतों का ग्रहण किया था ।४९।

चाक्षुषस्यांतरेऽतीते प्राप्ते वैवस्वतस्य ह ।
रुचेः प्रजापतेः पुत्रो रौच्यो नामाभवत्सुतः ।।५०
भूत्यामुत्पादितो यस्तु भौत्यो नाम कवेः सुतः ।
वैवस्वतेंऽतरे जातौ द्वौ मनू तु विवस्वतः ।।५१
वैवस्वतो मनुर्यश्च सावर्णो यश्च वै श्रुतः ।
ज्ञेयः संज्ञासुतो विद्वान्मनुर्वैवस्वतः प्रभुः ।।५२
सवर्णायाः सुतश्चान्यः स्मृतो वैवस्वतो मनुः ।
सावर्णमनवो ये च चत्वारस्तु महर्षिजाः ।।५३
तपसा संभृतात्मानः स्वेषु मन्वन्तरेषु वै ।
भविष्येषु भविष्यंति सर्वकार्यार्थसाधकाः ।।५४
प्रथमे मेरुसावर्णेर्दक्षपुत्रस्य वै मनोः ।
परामरीचिगर्भाश्च सुधर्माणश्च ते त्रयः ।
संभूताश्च महात्मानः सर्वे वैवस्वतेंतरे ।।५५
दक्षपुत्रस्य पुत्रास्ते रोहितस्य प्रजापतेः ।
भविष्यंति भविष्यास्तु एकैको द्वादशो गणः ।।५६

चाक्षुष मन्वन्तर के व्यतीत हो जाने पर और वैवस्त मन्वन्तर के सम्प्राप्त होने पर प्रजापति का रुचि से एक पुत्र उत्पन्न हुआ था जिसका नाम रौच्य हुआ था ।५०। जो भूति के गर्भ से उत्पन्न किया गया था उस पुत्र का नाम भौत्य हुआ था और यह कवि का पुत्र था । वैवस्वत मन्वन्तर

में विवस्वत के दो मनु उत्पन्न हुए थे ।५१। और जो वैवस्वत मन था और जो सावर्ण नाम से विश्रुत था । प्रभु वैवस्वत मनु संज्ञा का ही पुत्र जानना चाहिए । यह पर विद्वान् थे ।५२। सवर्णा का अन्य सुत था वैवस्वत मनु कहा गया है । और जो सावर्ण मनु हैं वे चार महर्षियों से जन्म ग्रहण वाले हैं ।५३। वे निश्चित रूप से तपश्चर्या से सम्भृत आत्माओं वाले हुए थे और अपने मन्वन्तरों में ही हुए थे । आगे होने वालों में सभी कार्यों के अर्थों का साधन करने वाले होंगे ।५४। प्रथम मेरु सावर्ण में दक्ष प्रजापति के पुत्र मनु के मरा मरीचि गर्भ और सुधर्माण ये तीन थे । वे सब महान् आत्माओं वाले वैवस्वत मन्वन्तर में समुत्पन्न हुए थे ।५५। वे दक्ष के पुत्र प्रजापति रोहित के पुत्र थे । जो आगे होने वाले हैं वे होंगे । एक-एक द्वादश गण हैं ।५६।

ऐश्वरश्च ग्रहो राहुर्वाकुर्वंशस्तथैव च ।
पारा द्वादश विज्ञेया उत्तरांस्तु निबोधत ।।५७
वाजिपो वाजिजिच्चैव प्रभूतिश्च ककुद्यथ ।
दधिक्रावा विपश्चश्च प्रणीतो विजतो मधुः ।।५८
उतथ्योत्तमकौ द्वौ तु द्वादशैते मरीचयः ।
सुधर्माणस्तु वक्ष्यामि नामतस्तान्निबोधत ।।५९
वणस्तथाथर्वविश्च भुरण्यो ब्रजनोऽमितः ।
अमितो द्रवकेतुश्च जंभोऽथाजस्तु शक्रकः ।।६०
मुनेमिद्युतयश्चैव सुधर्माणः प्रकीर्तिताः ।
तेषामिन्द्रस्तदा भाव्यो ह्यद्भुतो नाम नामतः ।।६१
स्कन्दोऽसौ पार्वतीयो वै कार्तिकेयस्तु पावकिः ।
मेधातिथिश्च पौलस्त्यो वसुः काश्यप एव च ।।६२
ज्योतिष्मान्भार्गवश्चैव द्युतिमानंगिरास्तथा ।
वसितश्चैव वासिष्ठ आत्रेयो हव्यवाहनः ।।६३

ऐश्वर-ग्रह-राहु-वाकु-वंश- ये पारा बारह हैं जो जान लेने चाहिए । अब उत्तर जो है उनको भी जान लो ।५७। वाजिप-वाजिजित्-प्रभूति-ककुदी-दधिक्रावा-प्रणीत-विजय-मधु-उतथ्य-उत्तमक ये दो हैं—ये द्वादश

मरीचि हैं। सुधर्माण को बतलाऊँगा। उनको नाम से समझ लो।६८-६९। वर्ण अवगर्ज-भुरण्य-ब्रजन-अभित-ध्रवकेतु-जम्भ-आज-शक्रक-सुनेमि-द्युतय—ये सब सुधर्माण कीर्तित किये गये हैं। उस समय में उनका जो होने वाला इन्द्र है उसका नाम अद्‌भुत है।६०-६१। स्कन्द-पार्वतीय-कार्त्तिकेय-पावकि-मेधातिथि-पौलस्त्य-वसु-काश्यप।६२। ज्योतिष्मान्-भार्गव-द्युतिमान्-अङ्गिरा वसित-वासिष्ठ-आत्रेय-हव्य वाहन।६३।

सुतपाः पौलहश्चैव सप्तैते रोहितेतरे।
धृतिकेतुर्दीप्तिकेतुः शापहस्तनिरामयाः॥६४
पृथुश्रवास्तथाऽनीको भूरिद्युम्नो बृहद्यशः।
प्रथमस्य तु सावर्णेर्नव पुत्राः प्रकीर्तिताः॥६५
दशमे त्वथ पर्याये धर्मपुत्रस्य वै मनोः।
द्वितीयस्य तु सावर्णेर्भाव्यस्यैवांतरे मनोः॥६६
सुधमानो विरुद्धाश्च द्वावेव तु गणौ स्मृतौ।
दीप्तिमन्तश्च ते सर्वे शतसंख्याश्च ते समाः॥६७
प्राणानां यच्छतं प्रोक्तं ऋषिभिः पुरुषेति वै।
देवास्ते वै भविष्यन्ति धर्मपुत्रस्य वै मनोः॥६८
तेषामिंद्रस्तथा विद्वान्भविष्यः शांतिरुच्यते।
हविष्मान्पौलहः श्रीमान्सुकीर्तिश्चाथ भार्गवः॥६९
आपोमूर्तिस्तथात्रेयो वसिष्ठश्चापवः स्मृतः।
पौलस्त्योऽप्रतिमश्चापि नाभागश्चैव काश्यपः॥७०

सुतपा-पौलह—ये सात रोहितेतर हैं। धृतिकेतु-दीप्तिकेतु-शाप-हस्त निरामय।६४। पृथुश्रवा-अनीक-भूरिद्युम्न-बृहद्यश—ये प्रथम सावर्णि के नौ पुत्र बताये गये हैं।६५। इसके अनन्तर दशम पर्याय में धर्म के पुत्र द्वितीय सावर्णि मनु के जो आगे होने वाला है उस मनु के अन्तर में।६५। सुधामान और विरुद्ध—ये दो ही गण कहे गये हैं। वे सभी दीप्तिमान् थे और वे सम शत संख्या वाले थे।६७। ऋषियों ने प्राणों के शत को पुरुष—यह कहा है। वे धर्म के पुत्र मनु के देवगण होंगे।६८। उनका इन्द्र भविष्य विद्वान् हैं और

शान्ति नाम वाला कहा जाता है। हविष्मान्-पौलह-श्रीमान्-सुकीर्ति-भार्गव-आयोमूर्त्ति-आत्रेय-वसिष्ठ-अपव-पौलस्त्य-अप्रतिम-गाभाग-काश्यप।६९-७०।

अभिमन्युश्चांगिरसः सप्तैते परमर्षयः ।
सुक्षेत्रश्चोत्तमौजाश्चाश्च वीर्यवान् ॥७१
शतानीको निरामित्रो वृषसेनो जयद्रथः ।
भूरिद्युम्नः सुवर्चाश्च दशैते मानवाः स्मृताः ॥७२
एकादशे तु पर्याये सावर्णे वै तृतीयके ।
निर्वाणरतयो देवाः कामगा वै मनोजवाः ॥७३
गणास्त्वेते त्रयः ख्याता देवतानां महात्मनाम् ।
एकैकस्त्रिशतस्तेषां गणस्तु त्रिदिवौकसाम् ॥७४
मासस्याहानि त्रिंशत्तु यानि वै कवयो विदुः ।
निर्वाणरतयो देवा रात्र्यस्तु विहंगमा ॥७५
गणस्तृतीयो यः प्रोक्तो देवतानां भविष्यति ।
मनोजवा मूहूर्त्तास्तु इति देवाः प्रकीर्तिताः ॥७६
एते हि ब्रह्मण पुत्रा भविष्या मानवाः स्मृताः ।
तेषामिंद्रो वृषा नाम भविष्यः सुरराट् ततः ॥७७

अभिमन्यु—आङ्गिरस—ये सात परम ऋषि अर्थात् सर्वोत्तम सात ऋषि हैं। सुक्षेत्र-उत्तमौजा-भूरिसेन-वीर्यवान्—शतानीक-निरामित्र—वृषसेन-जयद्रथ-भूरिसेन-सुवर्चा—ये दश मानव कहे गये हैं।७१-७२। एकादश पर्याय में तीसरे सावर्ण में निर्माण रति वाले देवगण हैं जो स्वेच्छा से गमन करने वाले है और मन के ही तुल्य वेग से समन्वित है।७३। महान् आत्माओं वाले देवताओं वाले देवताओं के ये तीन गण विख्यात हैं। उन स्वर्गवासियों एक-एक तीन सौ गण हैं।७४। एक मास के तीस होते हैं जिनको कविगण जानते हैं। निर्वाण (मोक्ष) में रति अर्थात् अनुराग रखने वाले हैं और रात्रियाँ तो विहङ्गम (पक्षी) हैं।७५। तीसरा गण जो कहा गया है वह देवताओं का होगा। मन के वेग और मुहूर्त्त—ये देव कीर्तित किये गये हैं।७६। ये सब ब्रह्माजी के पुत्र होने वाले हैं जो कि मानव कहे गये हैं। फिर उनका इन्द्र वृषा नाम वाला सुरराट् होने वाला है।७७।

हविष्मान्काश्यपश्चापि वपुष्मांश्चैव भार्गवः ।।७८

आरुणिश्च तथात्रेयो वसिष्ठो नग एव च ।

पुष्टिरांगिरसो ज्ञेयः पौलस्त्यो निश्चरस्तथा ।।७९

पौलहो ह्यतितेजाश्च देवा ह्येकादशेतरे ।

सर्ववेगः सुधर्मा च देवानीकः पुरोवहः-।।८०

क्षेमधर्मा ग्रहेषुश्च आदर्शः पौंड्रको मरुः ।

सावर्णस्य तु ते पुत्राः प्राजापत्यस्य वै नव ।।८१

द्वादशे त्वथ पर्याये रुद्रपुत्रस्य वै मनोः ।

चतुर्थो रुद्रसावर्णो देवांस्तस्यांतरे शृणु ।।८२

पंचैव तु गणाः प्रोक्ता देवतानामनागशाः ।

हरिता रोहिताश्चैव देवाः सुमनसस्तथा ।।८३

सुकर्माणः सुतारश्च विद्वांश्चैव सहस्रदः ।

पर्वतोऽनुचरश्चैव अपाशुश्च मनोजवः ।।८४

उनके जो सप्त ऋषिगण होंगे वे भी बतलाये जा रहे हैं। उनको भली भाँति समझ लो। हविष्मान्-काश्यप-वपुष्मान्-भार्गव-आरुणि-आत्रेय-वसिष्ठ-नग पुष्टि-आङ्गिरस-पौलस्त्य-निश्चर--पौलह—अतितेजा—ये सब प्राजापत्य सावर्ण के नौ पुत्र हैं।८१। अब बारह वे पर्याय में रुद्र के पुत्र मनु के चतुर्थ रुद्र सावर्ण है। उसके अन्तर में जो देवगण हैं उनका भी आप लोग श्रवण कर लेवे।८२। जो अभी नहीं आगत हुए हैं वे देवताओं के पाँच ही गण कहे गये हैं। देव हारित--रोहित तथा सुमनस होते हैं।८३। सुकर्माण-सुतार-विद्वान्-सहस्रद—पर्वत-अनुचर-अपाशु-मनोजव।८४।

ऊर्जा स्वाहा स्वाधा तारा दशैते हरिताः स्मृताः ।

तपो ज्ञानी मृतिश्चैव वर्चा वंधश्च यः स्मृतः ।।८५

रजश्चैव तु राजश्च स्वर्णपादस्तथैव च ।

पुष्टिर्विधिश्च वै देवा दशैते रोहिताः स्मृताः ।।८६

तुषिताद्यास्तु ये देवास्त्रयस्त्रिंशत्प्रकीर्तिताः ।
ते वै सुमनसो वेद्यान्निबोधत सुकर्मणः ॥८७
सुपर्वा वृषभः पृष्टा कपिद्युम्नविपश्चितः ।
विक्रमश्च क्रमश्चैव विभृतः कांत एव च ॥८८
एते देवाः सुकर्माणः सुतरांश्च निबोधत ।
वर्षो दिव्यस्तथांजिष्ठो वर्चस्वी द्युतिमान्कविः ॥८९
शुभो हविः कृतप्राप्तिर्व्यापृतो दशमस्तथा ।
सुतारा नामतस्त्वेते देवा वै संप्रकीर्तिताः ॥९०
तेषामिंद्रस्तु विज्ञेयो ऋतधामा महायशाः ।
द्युतिर्वसिष्ठपुत्रस्तु आत्रेयः सुतपास्तथा ॥९१

ऊर्जा–स्वाहा–स्वधा–तारा ये दश हरित कहे गये हैं तप—ज्ञानी—मूर्ति वर्चा—जो बन्धु कहा गया है ।८५। रज–राज–स्वर्णपाद–पुष्टि और विधि ये दश देव रोहित संज्ञा वाले कहे गये हैं ।८६। जो तुषित आदि देव हैं वे तैंतीस बताये गए हैं । वे सुमनस जानने के योग्य होते हैं । अब सुकर्मण संज्ञा वालों को समझलो ।८७। सुपर्वा–वृषभ–पृष्टा–कपिद्युम्न–विपश्चित्–विक्रम–क्रम–विभृत—कान्त ।८८। ये देव सुकर्माण संज्ञा वाले हैं । अब जो सुतर संज्ञक है उनको जान लीजिए । वर्ष—अंजिष्ठ—वर्चस्वी—द्युतिमान् कवि—शुभ—हवि—कृत प्राप्ति—व्यापृत-दशम—ये सब सुतार नाम वाले देवगण हैं जिनको कीर्त्तित कर दिया गया है ।८९-९०। उनका इन्द्र ऋतधामा जान लेना चाहिए जो कि महान् यश वाला है । द्युति—वसिष्ठ पुत्र—आत्रेय—सुतपा ।९१।

तपोमूर्तिस्त्वांगिरसस्तपस्वी काश्यपस्तथा ।
तपोधनश्च पौलस्त्यः पौलहश्च तपोरतिः ॥९२
भार्गवः सप्तमस्तेषां विज्ञेयस्तु तपोधृतिः ।
एते सप्तर्षयः सिद्धा अंत्ये सावर्णिकेऽन्तरे ॥९३
देववानुपदेवश्च देवश्रेष्ठो विदूरथः ।
मित्रवान् मित्रसेनोऽथ चित्रसेनो ह्यमित्रहा ॥९४

निष्प्रकंप्यस्तथाऽत्रेयो निर्मोह· काश्यपस्तथा ।
सुतपाश्चैव वासिष्ठः सप्तते तु त्रयोदश ॥१०३
चित्रसेनो विचित्रश्च नयो धर्मो धृतो भवः ।
अनेकः क्षत्रविद्धश्च सुरसो निर्भयो दश ॥१०४
रौच्यस्यैते मनोः पुत्रा ह्यंतरे तु त्रयोदशे ।
चतुर्दशे तु पर्याये भौत्यस्याप्यंतरे मनोः ॥१०५

जो तैंतीस देव है उनको पृथक रूप से समझ लो । सुत्रामाण प्रकृष्ट रूप से यजन के योग्य होते हैं क्योंकि वे इस समय में आज्य (घृत) की आशा वाले होते हैं ।६६। सुकर्माण जो देवता हैं वे पश्चात् यजन करने वाले नामों के हैं क्योंकि वे पृषदाज्य के अशन करने वाले होते हैं । सुकर्माण देव उपयाज्य होते हैं । इस प्रकार से देवगण कीर्त्तित किए गए हैं ।१०१। उनका महान् सत्व वाला दिवस्पति इन्द्र होगा । वे पुलह के आत्मज रुचि के सुत जानने चाहिए ।१०१। अङ्गिरा ही धृति के धारण करने वाला है और वह पौलस्त्य भी अव्यय है । पौलह तत्वों का देखने वाला है तथा भार्गव उत्सुकता से रहित है ।१०२। निष्प्रकम्प्य तथा आत्रेय-निर्मोह-काश्यप-सुतपा और वसिष्ठ—ये सात हैं । ऐसे कुल तेरह हैं ।१०३। चित्रसेन–विचित्र–नय धर्म–धृत–भव–अनेक क्षत्रविद्ध–सुरस और निर्भय—ये दश हैं ।१०४। ये सब रौच्य के पुत्र हैं । जो तेरहवें अन्तर में मनु हैं। चौदहवें पर्याय में जो कि भौत्य मनु का अन्तर है ।१०५।

देवतानां गणाः पंच प्रोक्ता ये तु भविष्यति ।
चाक्षुषाश्च पवित्राश्च कनिष्ठा भ्राजितास्तथा ॥१०६
वाचावृद्धाश्च इत्येते पंच देवगणाः स्मृताः ।
निषादाद्याः स्वराः सप्त सप्त तान्विद्धि चाक्षुषान् ॥१०७
बृहदाद्यानि सामानि कनिष्ठान्सप्त तान्विदुः ।
सप्त लोकाः पवित्रास्ते भ्राजिताः सप्तसिंधवः ॥१०८
वाचावृद्धानृषीन्विद्धि मनोः स्वायंभुवस्य ये ।
सर्वे मन्वंतरेन्द्राश्च विज्ञेयास्तुल्यलक्षणाः ॥१०९

तेजसा तपसा बुद्ध्या बलश्रुतपराक्रमैः ।
त्रैलोक्ये यानि सत्वानि गतिमंति ध्रुवाणि च ।।११०
सर्वशः स्वैर्गुणैस्तानि इन्द्रास्तेऽभिभवन्ति वै ।
भूतापवादिनो हृष्टा मध्यस्था भूतवादिनः ।।१११
भूताभिवादिनः शक्तास्त्रयो वेदाः प्रवादिनाम् ।
अग्नीध्रः काश्यपश्चैव पौलस्त्यो मागधश्च यः ।।११२

देवताओं के पाँच गण बताये गये हैं जो कि होंगे। चाक्षुष-पवित्र-कनिष्ठ तथा भ्राजित और वाचा वृद्ध—ये ही देवोंके पाँच गण कहे गये हैं। निषाद आदि सात स्वर है वैसे ही चाक्षुषों को भी सात समझ लो।१०७। बृहद् आदिक साम हैं। उनको कनिष्ठ सात समझ लो । वे सात लोक पवित्र हैं वे भ्राजित सात सिन्धु हैं।१०८। जो स्वाम्भुव मनु के ऋषि है उनको वाचा वृद्ध समझ लो। ये सभी तुल्य लक्षणों वाले मन्वन्तरों के इन्द्र जान लेने योग्य है ।१०९। तेज-तप-बुद्धि-बल-श्रुत पराक्रम के द्वारा इस त्रिभुवन में जो भी जीव गतिमान् और ध्रुव है।११०। वे इन्द्र सभी प्रकार से अपने गुणों के द्वारा उनका अभिभव किया करते हैं। भूतापवादी हृष्ट-मध्य में स्थित और भूतवादी हैं।१११। भूतों के अभिवादी प्रवादियों के लिए तीन वेद ही शक्ति वाले होते हैं। अग्नीध्र-काश्यप-पौलस्त्य और जो मागध है।११२।

भार्गवो ह्यग्निबाहुश्च शुचिरांगिरसस्तथा ।
शुक्रश्चैव तु वासिष्ठः पौलहो मुक्त एव च ।।११३
आत्रेयः श्वाजितः प्रोक्तो मनुपुत्रानतः शृणु ।
उरुर्गुरुश्च गंभीरो बुद्धः शुद्धः शुचिः कृती ।।११४
ऊर्जस्वी सुबलश्चैव भौत्यस्यैते मनोः सुताः ।
सावर्णा मनवो ह्येते चत्वारो ब्रह्मणः सुताः ।।११५
एको वैवस्वतश्चैव सावर्णो मनुरुच्यते ।
रौच्यो भौत्यश्च यौ तौ तु मनौ पौलहभार्गवौ ।
भौत्यस्यैवाधिपत्ये तु तूर्णं कल्पस्तु पूर्यते ।।११६

सूत उवाच—

निःशेषेषु तु सर्वेषु तदा मन्वंतरेष्विह ॥११७

अंतोऽनेकयुगे तस्मिन्क्षीणे संहार उच्यते ।

सप्तैते भार्गवा देवा अंते मन्वंतरे तदा ॥११८

भुक्त्वा त्रैलोक्यमध्यस्था युगाख्या ह्येकसप्ततिः ।

पितृभिर्मनुभिः सार्द्धं क्षीणे मन्वंतरे तदा ॥११९

भार्गव-अग्निबाहु-शुचि-आङ्गिरस-शुक्र-वासिष्ठ पौलह-मुक्त-आत्रेय-श्वाजित कहे गये हैं। इसके बाद में जो मनु के पुत्र हैं उसका श्रवण करो। उरु-गुरु-गम्भीर-बुद्ध-शुद्ध-शुचि-कृती-ऊर्जस्वी-सुबल-ये सब भौत्य मनु के पुत्र हैं। ये सावर्ण मनु हैं और चारों ब्रह्माजी के पुत्र हैं।११३-११५। एक वैवस्वत ही सावर्ण मनु कहा जाता है। रौच्य और भौत्य जो ये दो हैं वे पौलह और भार्गव माने गए हैं। भौत्य के ही आधिपत्य में तूर्ण कल्प पूर्ण हो जाता है।११६। श्री सूतजी ने कहा—यहाँ पर जब सभी मन्वन्तर निःशेष हो जाते हैं।११७। तब अनेक युगों के क्षीण हो जाने पर अन्त में संहार कहा जाया करता है। उस समय के अन्त में मन्वन्तर में ये सात भार्गव देव होते हैं।११८। ये त्रैलोक्य के मध्य में संस्थित हुए भोग करते हैं। युगों की आख्या एकहत्तर होती है। उस समय में पितरों और मनुओं के साथ मन्वन्तर क्षीण हो जाता है।११९।

अनाधारमिदं सर्वं त्रैलोक्यं वै भविष्यति ।

ततः स्थानानि शुभ्राणि स्थानिनां तानि वै तदा ॥१२०

प्रभ्रश्यंते विमुक्तानि तारा ऋक्षग्रहैस्तथा ।

ततस्तेषु व्यतीतेषु त्रैलोक्यस्येश्वरेष्विह ॥१२१

संप्राप्तेषु महर्लोकं यस्मिंस्ते कल्पवासिनः ।

अजिताद्या गणा यत्र आयुष्मंतश्चतुर्दश ॥१२२

मन्वंतरेषु सर्वेषु देवास्ते वै चतुर्द्दश ।

सशरीराश्च श्रूयंते जनलोके सहानुगाः ॥१२३

एवं देवेष्वतीतेषु महर्लोकाज्जनं प्रति ।

भूतादिष्ववशिष्टेषु स्थावरां तेषु तेषु वै ॥१२४

शून्येषु लोकस्थानेषु महान्तेषु भुवादिषु ।
देवेषु च गतेषूर्द्ध्वं सायुज्यं कल्पवासिनाम् ॥१२५

संहृत्य तांस्ततो ब्रह्मा देवर्षिपितृदानवान् ।
संस्थापयति वै सर्गमहर्द्दृष्ट्वा युगक्षये ॥१२६

चतुर्युगसहस्रांतमहर्यद्ब्रह्मणो विदुः ।
रात्रि युगसहस्रांतां तेऽहोरात्रविदो जनाः ॥१२७

तब यह सम्पूर्ण त्रैलोक्य आधार से रहित होता है । फिर जो भी स्थानीयों के परम शुभ्र स्थान हैं वे सभी नष्ट भ्रष्ट हो जाते हैं ।१२०। ये सभी तारे और नक्षत्र तथा ग्रहों द्वारा विमुक्त होते हुए विनष्ट हो जाया करते हैं । फिर जब ये सभी व्यतीत हो जाया करते हैं जो इन तीनों लोकों के स्वामी तथा संचलक होते हैं ।१२१। जिसमें जो भी कल्पवासी अर्थात् पूरे कल्पों तक रहने वाले हैं वे सभी महर्लोक में चले जाया करते हैं । जहाँ पर अजित आदि गण हैं और ये चौदह आयुष्मान हैं ।१२२। सभी मन्वन्तरों में देवता ये चौदह ही होते हैं । वे ऐसे सुने जाया करते हैं कि सब अपने अनुयायियों के साथ ही में शरीरों के सहित जनलोक में निवास किया करते हैं ।१२३। इस तरह से महर्लोक से जनलोक की ओर सभी देवों के व्यतीत हो जाने पर और स्थावरों के अन्त पर्यन्त सब भूतादि के अवशिष्ट होने पर ।१२४। भूलोक से लेकर महर्लोक तक जितने भी लोक स्थान हैं वे सब शून्य हो जाते हैं । सभी वेद भी कल्पवासियों के समीप में ऊपर की ओर चले जाया करते हैं ।१२५। इसके अनन्तर ब्रह्माजी उन सबका देव-ऋषि-पितृ-और दानवों का संहार करके युग क्षय में दिन को देखकर फिर सर्ग को संस्थापित किया करते हैं ।१२६। एक सहस्र चारों युगों की चौकड़ी का जब अन्त हो जाता है तब ब्रह्माजी का दिन हुआ करता है और इसी रीति से एक सहस्र चारों युगों की चौकड़ी का जब अन्त होता है तब ब्रह्माजी की एक रात्रि हुआ करती है । ऐसे पितामह का अहोरात्र होता है ।१२७।

नैमित्तिकः प्राकृतिको यश्चैवात्यंतिकोऽर्थतः ।
त्रिविधिः सर्वभूतानामित्येष प्रतिसंचरः ॥१२८

ब्राह्मो नैमित्तिकस्तस्य कल्पदाहः प्रसंयमः ।
प्रतिसर्गे तु भूतानां प्राकृतः करणक्षयः ॥१२९

ज्ञानाच्चात्यंतिकः प्रोक्तः कारणानामसंभवः ।
ततः संहृत्य तान्ब्रह्मा देवांस्त्रैलोक्यवासिनः ॥१३०
प्रहरांते प्रकुरुते सर्गस्य प्रलयं पुनः ।
सुषुप्सुर्भगवान्ब्रह्मा प्रजाः संहरते तदा ॥१३१
ततो युगसहस्रांते संप्राप्ते च युगक्षये ।
तत्रात्मस्थाः प्रजाः कर्तुं प्रपेदे स प्रजापतिः ॥१३२
तदा भवत्यनावृष्टिः संतता शतवार्षिकी ।
तया यान्यल्पसाराणि सत्वानि पृथिवीतले ॥१३३

यह समस्त प्राणियों का सञ्चर तीन प्रकार का हुआ करता है—अर्थानुसार एक नैमित्तिक होता है—दूसरा प्राकृतिक है और तीसरा आत्यान्तिक होता है ।१२८। ब्रह्माजी का जो नैमित्तिक है वह प्रसंयम कल्पदाह है। प्रत्येक भूतों के सर्ग में प्राकृत करना क्षय होता है ।१२९। ज्ञान से अत्यधिक कहा गया है जहाँ पर कारणों की कोई सम्भवता नहीं होती है । इसके अनन्तर ब्रह्माजो उन समस्त त्रैलोक्य के निवासी देवों का संहार किया करते हैं ।१३०। फिर प्रहर के अन्त में सर्ग का प्रलय किया करते हैं । भगवान् ब्रह्माजी जब शयन करने की इच्छा वाले होते हैं उसी समय में समस्त प्रजाओं का संहार किया करते हैं ।१३१। फिर चारों युगों की एक सहस्र चौकड़ो का अन्त हो जाता है और युगों का क्षय प्राप्त होता है उस काल में वही प्रजापति समस्त प्रजाओं को अपनी ही आत्मा में स्थित करने के लिए समुद्यत हो जाया करते हैं । उस समय में जो महान् प्रजाओं का संहार होता है उसका आरम्भ इस तरह से हुआ करता है कि सबसे पूर्व तो वर्षा का एकदम निरन्तर रहने वाला अभाव सौ वर्षों तक होता है । उस समय में जल के एकदम सर्वथा न रहने दो जो बहुत अल्प सार वाले जीव हैं और इस पृथ्वी तल में निवास करते हैं वे सभी नष्ट हो जाया करते हैं ।१३२-१३३।

तान्येवात्र प्रलीयंते भूमित्वमुपयांति च ।
सप्तरश्मिरथो भूत्वा उदतिष्ठद्विभावसुः ॥१३४
असह्यरश्मिर्भगवान्पिबत्यंभो गभस्तिभिः ।
हरिता रश्मयस्तस्य दीप्यमानास्तु सप्ततिः ॥१३५

भूय एव विवर्त्तन्तो व्यापनुवंतोबरं शनैः ।
भौमं काष्ठेंधनं तेजो भृशमद्भिस्तु दीपयते ॥१३६
तस्मादुदकभृत्सूर्यस्तपतीति हि कथ्यते ।
नावृष्टया तपते सूर्य्यो नावृष्टया परिषिच्यते ॥१३७
नावृष्टया परिविश्येत वारिणा दीपयते रविः ।
तस्मादपः पिबन्यो वै दीपयते रविरंबरे ॥१३८
तस्य ते रश्मयः सप्त पिबंत्यंभो महार्णवात् ।
तेनाहारेण संदीप्ताः सूर्याः सप्त भवंत्युत ॥१३६
ततस्ते रश्मयः सप्त सूर्यभूताश्चतुर्दिशम् ।
चतुर्लोकमिमं सर्वं दहंति शिखिनस्तदा ॥१४०

उस जलाभाव में वे ही जीव प्रलीन होकर भूमि में मिल जाया करते हैं। फिर सूर्यदेव सात रश्मियों वाले होकर अर्थात् सात गुने तेजस्वी होकर उदित हुआ करते हैं।१३४। उस समय में सूर्य भगवान् न सहन करने के योग्य किरणों वाले हो जाया करते हैं और वे अपनी किरणों से भूमि गत सम्पूर्ण जल को पी जाया करते हैं। उस सूर्य को संप्तति हरित रश्मियाँ दीप्यमान हो जाती हैं।१३५। फिर नभोमण्डल को व्याप्त करती हुई धीरे बढ़ती हैं। भूमि का काष्ठेन्धन बहुत ही तेज युक्त होकर दीप्त होता है जो जल के ही कारण से हो जाता है।१३६। इसी कारण से जल के भरने वाला सूर्य तपता है—यही कहा जाया करता है। सूर्य अवृष्टि से नहीं तपा करता है और अवृष्टि से सूर्य परिषिक्त भी नहीं होता है।१३७। अवृष्टि से सूर्य परिवृष्ट नहीं होता है प्रत्युत जल के ही द्वारा रवि दीप्त हुआ करता है। इसी कारण से जो जलों का पान करता रहता है वही रवि अम्बर में दीप्त हुआ करता है।१३८। उस सूर्य की सात रश्मियाँ (किरणें) महा सागर से जल का पान किया करती हैं। उसी आहार से सात सूर्य प्रदीप्त होते हैं। ।१३६। इसके अनन्तर वे रश्मियाँ चारों दिशाओं मे सात सूर्यों के समान होती हुई उस समय में वे अग्नियाँ इन चारों लोकों को दग्ध किया करती हैं।१४०।

प्राप्नुवंति च ताभिस्तु ह्यूर्द्ध्वं चाधश्च रश्मिभिः ।
दीप्यंते भास्कराः सप्त युगांताग्निप्रतापिनः ॥१४१

ते वारिणा प्रदीप्ताश्च बहुसाहस्ररश्मय: ।
स्वं समावृत्य तिष्ठंति निर्दहंतो वसुंधराम् ॥१४२
ततस्तेषां प्रतापेन दह्यमाना वसुन्धरा ।
साद्रिनद्यर्णवा पृथ्वी निस्नेहा समपद्यत ॥१४३
दीप्तिभि: संतताभिश्च चित्राभिश्च समंतत: ।
अधश्चोर्ध्वं च तिर्यक् च संरुद्धा सूर्यरश्मिभि: ॥१४४
सूर्याग्नीनां प्रवृद्धानां संसृष्टानां परस्परम् ।
एकत्वमुपयातानामेकज्वाला भवत्युत ॥१४५
सर्वलोकप्रणाशश्च सोऽग्निभूत्वाऽनुमंडली ।
चतुर्लोकमिदं सर्वं निर्दहत्याशुतेजसा ॥१४६
तत: प्रलीने सर्वस्मिञ्जङ्गमे स्थावरे तथा ।
निर्वृक्षा निस्तृणा भूमि: कूर्मपृष्ठसमा भवेत् ॥१४७

उन रश्मियों के द्वारा ऊपर की ओर तथा नीचे की ओर अग्नियाँ प्राप्त होती हैं युग के अन्त में प्रताप देने वाले सात सूर्य दीप्त हुआ करते हैं ।१४१। सहस्र रश्मियों की बाहुएँ वारि के ही द्वारा ही प्रदीप्त होती हैं। वे आकाश को समावृत करके ही सम्पूर्ण वसुन्धरा का निर्दहन करती हुई स्थिर रहा करती हैं ।१४२। इसके पश्चात् उनके परिताप से दहन को प्राप्त होती हुई सम्पूर्ण वसुन्धरा पर्वत-नदी और समुद्रों के सहित यह पृथ्वी स्नेह (द्रव जल) से रहित हो गयी थी ।१४३। निरन्तर विद्यमान रहने वाली-सुदीप्त और विचित्रता से चारों ओर युक्त सम्पूर्ण भूमि ऊपर-नीचे और तिरछी ओर सूर्य की किरणों से संरुद्ध हो गयी थी ।१४४। प्रवृद्ध हुई और परस्पर में संसृष्ट हुई सूर्य की अग्नियाँ एक स्वरूप को प्राप्त होकर एक ही विशाल ज्वाला हो जाती है ।१४५। वह अग्नि अनुमण्डल वाली होकर समस्त लोकों का प्रणाश किया करता है और इन चारों लोकों का सबका बहुत ही शीघ्र तेज के द्वारा निर्दहन कर देती है ।१४६। इसके अनन्तर इस सम्पूर्ण स्थावर और जङ्गम के प्रलीन होने पर यह समग्र पृथ्वी वृक्षों से रहित बिना तृणों वाली कछुए की पीठ के ही समान यह जैसी हो गयी थी और उस पर कुछ भी शेष नहीं रह गया था ।१४७।

अंबरीषमिवाभाति सर्वमप्यखिलं जगत् ।
सर्वमेव तदर्चिभिः पूर्णं जाज्वल्यते घनः ॥१४८

भूतले यानि सत्वानि महोदधिगतानि च ।
ततस्तानि प्रलीयंते भूमित्वमुपयांति च ॥१४९

द्वीपाश्च पर्वताश्चैव वर्षाण्यथ महोदधिः ।
सर्वं तद्भस्मसाच्चक्रे सर्वात्मा पावकस्तु सः ॥१५०

समुद्रेभ्यो नदीभ्यश्च पातालेभ्यश्च सर्वशः ।
पिबत्यपः समिद्धोऽग्निः पृथिवीमाश्रितो ज्वलन् ॥१५१

ततः संवर्द्धितः शैलानतिक्रम्य ग्रहांस्तथा ।
लोकान्संहरते दीप्तो घोरः संवर्त्तकोऽनलः ॥१५२

ततः स पृथिवीं भित्वा रसातलमशोषयत् ।
निर्दह्यांते तु पातालं वायुलोकमथादहत् ॥१५३

अधस्तात्पृथिवीं दग्ध्वा तूर्द्ध्वं स दहतो दिवम् ।
योजनानां सहस्राणि प्रयुतान्यर्बुदानि च ॥१५४

यह सब जगत् उस समय में अम्बरीष के ही समान आभात होता था। और यह सम्पूर्ण उस अग्नि की अर्चियों से पूर्ण घन प्रज्वलित हो रहा था।१४८। इस भूतल में जितने भी प्राणी थे तथा महासागर में जो भी सत्व थे वे सबके सब प्रलीन हो जाते हैं और भूमि को मिट्टी में मिल जाया करते हैं।१४९। समस्त द्वीप—पर्वत—वर्ष और महासागर इन सभी को उस सर्वात्मा पावक ने जलाकर भस्म के तुल्य ही बना दिया था।१५०। इस भूमि में रहने वाला वह परमाधिक प्रदीप्त अग्नि जलता हुआ होकर समुद्रों से-नदियों से और पातालों से सभी जगह से जल का पान किया करता है।।१५१। इसके अनन्तर वह परम घोर सम्वर्त्तक अनल अधिक सम्वर्धित होकर शैलों और ग्रहों का अतिक्रमण करके परम दीप्त होता हुआ समस्त लोकों का संहार किया करता है।१५२। इसके पश्चात् वह भीषण अनल इस पृथ्वी का भेदन करके रसातल में पहुँच कर उसका भी शोषण कर देता है। अन्त में पाताल लोक को निर्दग्ध करके फिर वायु लोक को दग्ध कर दिया था।१५३। नीचे पृथ्वी का दाह करके और ऊपर की ओर स्वर्ग लोक को

दग्ध कर दिया था। सहस्त्रों तथा प्रयुतों और अर्बुदों योजन पर्यन्त उस कालानल की ज्वालाएँ ऊँची उठ रही थीं।१५४।

उर्द्धतिष्ठन्ति शिखास्तस्य बह्वयः संवर्त्तकस्य तु।
गन्धर्वांश्च पिशाचांश्च समहोरगराक्षसान् ॥१५५
तदा दहति संदीप्तो गोलकं चैव सर्वशः।
भूर्लोकं च भुवर्लोकं स्वर्लोकं च महस्तथा ॥१५६
घोरो दहति कालाग्निरेवं लोकचतुष्टयम्।
व्याप्तेषु तेषु लोकेषु तिर्यगूर्द्ध्वमथाग्निना ॥१५७
तत्तेजः समनुप्राप्य कृत्स्नं जगदिदं शनैः।
अयोगुडनिभं सर्वं तदा ह्येवं प्रकाशते ॥१५८
ततो गजकुलाकारास्तडिद्भिः समलंकृताः।
उत्तिष्ठन्ति तदा घोरा व्योम्नि संवर्तका घनाः ॥१५६
केचिन्नीलोत्पलश्यामाः केचित्कुमुदसन्निभाः।
केचिद्वैडूर्यसंकाशा इन्द्रनीलनिभाः परे ॥१६०
शंखकुन्दनिभाश्चान्ये जात्यंजननिभास्तथा।
धूम्रवर्णा घनाः केचित्केचित्पीताः पयोधराः ॥१६१

उस सम्वर्तक अनल की शिखाऐं बहुत सी ऊपर की ओर उठ रही थीं और वे ज्वालाएँ ऊपर में संस्थित गन्धर्वों—पिशाचों और महोरगों तथा राक्षसों को निर्दग्ध कर रही थीं।१५५। उस समय में यह संदीप्त अनल सभी ओर से गोलक को दग्ध कर देता है। भूलोक-भुवर्लोक—स्वर्लोक और महर्लोक को भी जला देता है।१५६। यह परम कालग्नि इस रीति से चारों लोकों को निर्दग्ध कर दिया करता है। तिरछा और ऊपर की ओर इस प्रकार से उन समस्त लोकों में इसके व्याप्त हो जाने पर सभी को भस्मसात् कर देता है।१५७। धीरे-धीरे यह तेज इस सम्पूर्ण जगत् में सम्प्राप्त हो जाता है। उस समय में यह सम्पूर्ण जगत् एक परमाधिक संतप्त लोहे के गोले के ही समान प्रकाशित हुआ करता है।१५८। इसके उपरान्त उस समय में नभोमंडल में हाथियों के समूह के आकार वाले विद्युल्लता से समलङ्कृत परम घोर सम्वर्त्तक मेघ उमड़ कर उठते हैं।१५६। उन मेघों

में कुछ तो नील कमलों के सदृश आकार वाले होते हैं और कुछ कुमुदों के तुल्य हुआ करते हैं। कुछ वैडूर्यमणि के समान होते हैं तो दूसरे इन्द्रनील मणि के तुल्य हुआ करते हैं।१६०। कुछ शङ्ख और कुन्द पुष्प के सदृश श्वेत होते हैं तथा कुछ जाती और अञ्जन के समान हुआ करते हैं। कुछ मेघों का वर्ण धूम्र के समान होता है तथा कुछ पयोधर पीतवर्ण वाले होते हैं।१६१।

केचिद्रासभवर्णाभा लाक्षारसनिभास्तथा ।
मनशिलाभास्त्वपरे कपोताभास्तथांबुदाः ॥१६२
इन्द्रगोपनिभाः केचिद्धरितालनिभास्तथा ।
चाषपत्रनिभाः केचिदुत्तिष्ठंति घना दिवि ॥१६३
केचित्पुरवराकाराः केचिद्गजकुलोपमाः ।
केचित्पर्वतसंकाशाः केचित्स्थलनिभा घनाः ॥१६४
क्रीडागारनिभाः केचित्केचिन्मीनकुलोपमाः ।
बहुरूपा घोररूपा घोरस्वरनिनादिनः ॥१६५
तदा जलधराः सर्वे पूरयंति नभस्तलम् ।
ततस्ते जलदा घोरराविणो भास्करात्मकाः ॥१६६
सप्तधा संवृतात्मानस्तमग्निं शमयंत्युत ।
ततस्ते जलदा वर्षं मुंचंति च महौघवत् ॥१६७
सुघोरमशिवं सर्वं नाशयंति च पावकम् ।
प्रवृष्टैश्च तथात्यर्थं वारिणा पूर्यते जगत् ॥१६८

कुछ मेघों का वर्ण रासभ (गधा) के सदृश होता है तथा कुछ लाख के रस के सदृश हुआ करते हैं। दूसरे कुछ मैनसिल के सदृश एकदम सुर्ख होते हैं तथा कुछ कबूतरों के समान वर्णों वाले होते हैं।१६२। कुछ इन्द्र गोप के सदृश हैं तो कुछ हरिताल के समान रङ्ग वाले हुआ करते हैं। उस समय में अन्तरिक्ष में चाष के पत्रों के ही सदृश मेघ उमड़कर उठा करते हैं।१६३। कुछ घन श्रेष्ठ पुर के आकार वाले हैं तो कुछ द्विज (पक्षी) कुलों के सदृश हुआ करते हैं। कुछ घन तो उस समय में विशाल पर्वतों के समान आकार वाले होते हैं तथा कुछ ऐसे प्रतीत होते हैं मानों स्थल ही होवें।१६४। कुछ

मेघ क्रीड़ा ग्रहों के तुल्य होते हैं तो कुछ मीनों के समुद्यम के सदृश दिखलाई दिया करते हैं। उस समय में मेघों के अनेक स्वरूप दिखाई दिया करते हैं। उनका स्वरूप परमाधिक घोर होता है और वे भयङ्कर गर्जन किया करते हैं।१६५। उस समय जलधर आकर नभस्तल को एक साथ समाच्छादित कर देते हैं। इसके अनन्तर वे मेघ परम भीषण घोष किया करते हैं और भास्कर के ही स्वरूप वाले होते हैं।१६६। सात स्वरूपों में संवृत होने वाले वे मेघ उस परम घोर अग्नि का शमन कर दिया करते हैं। इसके उपरान्त वे मेघ महान् घोर मूसलाधार वर्षा किया करते हैं।१६७। परम घोर अशिव उस अग्नि का विनाश कर दिया करते हैं और अत्यधिक वर्षा के द्वारा जल से सम्पूर्ण जगत् को भर दिया करते हैं।१६८।

अद्भिस्तेजोभिभूतं च तदाग्निः प्रविशत्यपः ।
नष्टे चाग्नौ वर्षगते पयोदाः पावकोद्भवाः ॥१६९
प्लावयंतो जगत्सर्वं बृहज्जलपरिस्रवैः ।
धाराभिः पूरयंतीमं चोद्यमानाः स्वयंभुवा ॥१७०
अन्ये तु सलिलौघैस्तु वेलामभिभवन्त्यपि ।
साद्रिद्वीपांतरं पीतं जलमन्येषु तिष्ठति ॥१७१
पुनः पतति भूमौ तत्पयोधस्तान्नभस्तले ।
संवेष्टयति घोरात्मा दिवि वायुः समंततः ॥१७२
तस्मिन्नेकार्णवे घोरे नष्टे स्थावरजंगमे ।
पूर्णे युगसहस्रे वै निःशेषः कल्प उच्यते ॥१७३
अथांभसाऽऽवृते लोके प्राहुरेकार्णवं बुधाः ।
अथ भूमिर्जलं खं च वायुश्चैकार्णवे तदा ॥१७४
नष्टेऽनलेऽन्धभूते तु प्राज्ञायत न किंचन ।
पार्थिवास्त्वथ सामुद्रा आपो दैव्याश्च सर्वशः ॥१७५

उस समय में तेज से समुद्भूत वह अग्नि जलों के द्वारा परिभूरित होकर फिर जल में प्रवेश कर जाया करती है। जब वर्षा से वह अग्नि विनष्ट हो जाती है तो पयोद भी पावकोद्भव हो जाया करते हैं।१६६। विशाल जलों उप्लवों से सम्पूर्ण जगत् प्लावित कर देते हैं और स्वयम्भू के

द्वारा प्रेरित होते हुए अपनी धाराओं से इस जगत् को भर दिया करते हैं ।१७०। कुछ अन्य मेघ अपने जलों के समुदायों से वेला को भी अभिभूत कर दिया करते हैं । सातों द्वीपों के अन्दर जो भी जल था उसका पान कर लिया था और वह जल अन्यत्र स्थित था ।१७१। फिर वही जल आकाश से नीचे भूमि में गिर रहा था । उस काल में आकाश में परम घोर स्वरूप वाला वायु सभी ओर से ढक लिया करता है ।१७२। उस समय में केवल परम घोर एक समुद्र ही दिखाई दिया करता है तथा अन्य स्थावर और जंगम स्वरूप पूर्णतया विनष्ट हो जाता है । पूर्ण जब एक सहस्र युगों की चौकड़ी होती है तभी निःशेष कल्प कहा जाया करता है ।१७३। इसके अनन्तर जब जल के द्वारा यह लोक समावृत होजाता है तो बुध जन इसको एक मात्र सागर ही कहा करते हैं । इसके अनन्तर भूमि—जल—आकाश और वायु—इन सबका एक ही सागर हो जाता है ।१७४। अनल के नष्ट होने पर एकदम अन्धकार हो जाता है और उस समय में अन्य कुछ भी नहीं दिखाई देता है । पार्थिव—अर्थात् पृथ्वी के भाग तथा सामुद्र अर्थात् समुद्र के भाग ये सभी ओर से दैव्य जल ही जल दिखाई दिया करते हैं ।१७५।

असरन्त्यो व्रजंत्यैक्यं सलिलाख्यां भजन्त्युत ।
आगतागतिके चैव तदा तत्सलिलं स्मृतम् ।।१७६
प्रच्छादयति महीमेतामर्णवाख्यं तु तज्जलम् ।
आभाति यस्मात्तद्भाभिर्भा शब्दो व्याप्तिदीप्तिषु ।।१७७
भस्म सर्वमनुप्राप्य तस्मादंभो निरुच्यते ।
नानात्वे चैव शीघ्रे च धातुर्वै अर उच्यते ।।१७८
एकार्णवे तदा ह्यो वै न शीघ्रस्तेन ता नराः ।
तस्मिन्युगसहस्रांते दिवसे ब्रह्मणो गते ।।१७६
तावंतं कालमेवं तु भवत्येकार्णवं जगत् ।
तदा तु सर्वे व्यापारा निवर्त्तंते प्रजापतेः ।।१८०
एकमेकार्णवे तस्मिन्नष्टे स्थावरजंगमे ।
तदा स भवति ब्रह्मा सहस्राक्षः सहस्रपात् ।।१८१

सहस्रशीर्षा सुमनाः सहस्रपात्सहस्रचक्षुर्वदनः सहस्रवाक्
सहस्रबाहुः प्रथम; प्रजापतिस्त्रयीमयो यः पुरुषो
निरुच्यते ॥१८२

इनका सरण सर्वथा नहीं होता है और सब एक रूपता को प्राप्त हो जाया करती हैं जिसका नाम सलिल ही होता है। वह आगत और आगतिक जो भी है वह सब सलिल ही कहा गया है।१७६। वह अर्णव नाम वाला जल इस समग्र पृथ्वी को प्रच्छादित कर लिया करता है। क्योंकि उसकी भाओं से वह आभात होता है। यहाँ भी शब्द व्याप्ति और दीप्ति में आया है।१७७। वह सब भस्म को अनुप्राप्त करके ही—हुआ है अतएव अम्भ कहा जाया करता है। नानात्व में और शीघ्र में अरधातु कही जाती है।१७८। उस समय में एकार्णव में कल है और शीघ्र नहीं है इसीलिए वे नरा हैं। उस एक सहस्र चारों की चौकड़ी के अन्त में ब्रह्माजी का एक दिन व्यतीत होने पर उसने काल पर्यन्त यह जगत् एकार्णव के रूप में रहता है। वह समय ऐसा होता है कि उसमें प्रजापति के सभी व्यापार अर्थात् कार्यशीलता निवृत्त हो जाते हैं।१८०। उस समय में जब सभी स्थावर और जंगम विनष्ट हो जाया करते हैं और एकमात्र अर्णव हो रहता है तो एक ही ब्रह्माजी रहा करते हैं जो अनेक नेत्रों और चरणों वाले हैं।१८१। सहस्रों मस्तकों वाले—सुन्दर मन से सम्पन्न—अनेक चरणों सहस्रों चक्षुओं से युक्त और अनेकों वाणियों वाले एवं सहस्र बाहुओं से संयुत प्रथम प्रजापति त्रयीमय है जो पुरुष—इस नाम से कहा जाया करता है अर्थात वही परम पुरुष हैं।१८२।

आदित्यवर्णो भुवनस्य गोप्ता अपूर्व एकः प्रथमस्तुराषाट्।
हिरण्यगर्भः पुरुषो महान्वै संपठ्यते वै रजसः
परस्तात ॥१८३

चतुर्युगसहस्रान्ते सर्वतः सलिलाप्लुते।
सुषुप्सुरप्रकाशेप्सुः स रात्रिं कुरुते प्रभुः ॥१८४

चतुर्विधा यदा शेते प्रजाः सर्वा लयं गताः।
पश्यंति तं महात्मानं कालं सप्त महर्षयः ॥१८५

एवं स लोके निर्वृ॑त्त उपशांते प्रजापतौ ।
ब्राह्मे नैमित्तिके तस्मिन्कल्पितो वै प्रसंयमे ।।१६२
देहैर्वियोगः सत्त्वानां तस्मिन्वै कृत्स्नशः स्मृतः ।
ततो दग्धेषु भूतेषु सर्वेष्वादित्यरश्मिभिः ।।१६३
देवर्षिमनुवर्येषु तस्मिन्नंबुप्लवे तदा ।
गंधर्वादीनि सत्त्वानि पिशाचांतानि सर्वशः ।।१६४
कल्पादावप्रतप्तानि जनमेवाश्रयंति वै ।
तिर्यग्योनीनि नरके यानि यानि गतान्यपि ।।१६५
तदा तान्यपि दग्धानि धूतपापानि सर्वशः ।
जले तान्युपपद्यंते यावत्संप्लवतो जगत् ।।१६६

इसके अनन्तर सबकी रचना करने वाले महान तेजस्वी ने सब कुछ को अपनी ही आत्मा में रखकर फिर रात्रि में ही उस एकार्णव स्वरूप जल में निवास किया करता है ।१६०। फिर उस रात्रि का क्षय प्राप्त हो जाने पर प्रजापति जागते हैं और सृष्टि के सृजन करने की इच्छा से संयुत करने के लिए मन किया करते हैं ।१६१। इसी रीति से वह लोक निर्वृ॑त्त होता है जबकि प्रजापति उपशान्त हो जाया करते हैं । वह प्रसंयम ब्राह्म और नैमित्तिक कल्पित होता है ।१६२। उसमें जीवों का अपने देहों से पूर्णतया वियोग कहा गया है । फिर सूर्य देव की परमाधिक संतप्त रश्मियों के द्वारा समस्त प्राणियों के दग्ध हो जाने पर सर्वक्षय हो जाता है ।१६३। उस जल प्लावन में उस समय में देव-ऋषि-मनुष्य-गन्धर्व-पिशाच आदि जीव सभी यहाँ से जनलोक में निवास किया करते हैं तथा नरकगामी हैं उन सबका भी विनाश हो जाया करता है ।१६४-१६५। उस समय में वे भी पापों से रहित होकर सब निर्दग्ध हो जाया करते हैं और वे सभी जब तक यह सम्पूर्ण जगत जलमय रहता है जल में ही निमग्न हो जाया करते हैं अर्थात् जल ही के रूप में रहते हैं ।१६६।

व्युष्टायां च रजन्यां तु ब्रह्मणोऽव्यक्तयोनितः ।
जायन्ते हि पुनस्तानि सर्वभूतानि कृत्स्नशः ।।१६७
ऋषयो मनवो देवाः प्रजाः सर्वाश्चतुर्विधाः ।

तेषामपि च सिद्धानां निधनोत्पत्तिरुच्यते ॥१९८
यथा सूर्यस्य लोकेऽस्मिन्नुदयास्तमने स्मृते ।
तथा जन्मनिरोधश्च भूतानामिह दृश्यते ॥१९९
आभूतसंप्लवात्तस्माद्भवः संसार उच्यते ।
यथा सर्वाणि भूतानां जायन्ते वर्षणेष्विह ॥२००
स्थावरादीनि नियमात्कल्पे कल्पे तथा प्रजाः ।
यथार्त्तावृतुलिंगानि नानारूपाणि पर्यये ॥२०१
दृश्यन्ते तानि तान्येव तथा ब्रह्माद्युरात्रिषु ।
प्रत्याहारे विसर्गे च गतिमंति ध्रुवाणि च ॥२०२
निष्क्रमन्ते विशंते च प्रजाः काले प्रजापतिम् ।
ब्रह्माणं सर्वभूतानि महायोगं महेश्वरम् ॥२०३

जिस समय में यह महानिशा नष्ट हो जाती है तब अव्यक्त योनि वाले ब्रह्मा से वे सभी भूत पूर्ण रूप से फिर समुत्पन्न हो जाया करते हैं ।१९७। ऋषिगण-मनुगण-देवगण और सब चारों प्रकार की प्रजा और उन्हीं सिद्धों की निधनोत्पत्ति कही जाया करती हैं ।१९८। जिस प्रकार से इस लोक में सूर्यदेव के उदय और अस्तमन कहे गये हैं उसी तरह से इन समस्त प्राणियों का जन्म और निरोध भी हुआ करता है जो कि सबको दिखाई दिया करता है । आत्मा तो नित्य है, उसका शरीर से वियोग ही निधन और संयोग जन्म कहा जाया करता है ।१९९। उस समस्त प्राणियों की जल निमग्नता से उत्पन्न हो जाना ही संसार कहा जाया करता है । जैसे वर्षा होने पर यहाँ पर सब भूतों के साहित्य समुत्पन्न हुआ करते हैं ।२००। स्थावर आदि सब प्रत्येक कल्प में तथा समस्त प्रजा जैसे ऋतु काल में सभी ऋतु के चिह्न नाना रूप वाले हो जाया करते हैं और बदल जाते हैं वैसे ही सब समुत्पन्न होते हैं ।२०१। जिस तरह से ब्रह्मा के दिन और रात्रि में हैं वही सबके सब दिखलाई दिया करते हैं । जब प्रत्याहरण होता है और विसर्ग होता है । उस समय में सभी निश्चित रूप से गतिमान् हुआ करते हैं ।२०२। समय के समुपस्थित हो जाने पर अपने ही आप ये सब प्रजाजन प्रजापति में प्रवेश और निष्क्रमण किया करते हैं । समस्त भूत ब्रह्माजी में

तथा महेश्वर में महायोग किया करते हैं अर्थात् सृजन काल में ब्रह्माजी में तथा संहरण काल में महेश्वर में इन सबका महान योग होता है ।२०३।

स सृष्टा सर्वभूतानां कल्पादिषु पुनः पुनः ।
व्यक्तोऽव्यक्तो महादेवस्तस्य सर्वमिदं जगत् ।।२०४
येनैव सृष्टाः प्रथमं प्रयाता आपो हि मार्गेण महीतलेऽस्मिन् ।
पूर्वं प्रयातेन यथात्वथापस्तेनैव तेनैव तु स्वर्व्रजंति ।।२०५
यथा शुभेन त्वशुभेन चैव तत्रैव विवर्त्तमानाः ।
मर्त्यास्तु देहांतरभावितत्वाद्रवेर्वशादूर्ध्वमधश्चरंति ।।२०६
ये चापि देवा मनवः प्रजेशा अन्येऽपि ये स्वर्गगताश्च सिद्धाः ।
तद्भाविताः ख्यातिवशाच्च धर्म्याः पुनर्विसर्गेण
भवन्ति सत्त्वाः ।।२०७
अत ऊर्ध्वं प्रवक्ष्यामि कालमाभूतसंलवम् ।
मन्वन्तराणि यानि स्युर्व्याख्यातानि मया द्विजाः ।।२०८
सह प्रजानिसर्गेण सह देवैश्चतुर्दश ।
सा युगाख्या सहस्रं तु सर्वाण्येवांतराणि वै ।।२०९
अस्याः सहस्रे द्वे पूर्णे विशेषः कल्प उच्यते ।
एतद्ब्राह्ममहर्ज्ञेयं तस्य संख्यां निबोधतः ।।२१०

कल्पों के आदि काल में बार-बार समस्त प्राणियों का वही सृजन करने वाला हुआ करता है । महादेव का स्वरूप व्यक्त और अव्यक्त है और उसी का यह सम्पूर्ण जगत हुआ करता है ।२०४। जिसके ही द्वारा ये सर्व प्रथम सृष्ट हुए हैं वे जल समग्र इसी महीतल में मार्ग के द्वारा चले गये हैं । जैसे पूर्व में यह गमन कर गये हैं उसी मार्ग से फिर भी स्वर्ग में चले जाते हैं ।२०५। जो भी उनका कर्म शुभ अथवा अशुभ होता है उसी के अनुसार वे वहाँ-वहाँ अन्य देहों में स्थित रहते हुए सूर्य के वंश में रहकर ऊर्ध्व में अर्थात् देवलोक में और अधोभाग में अर्थात् नरकों में सञ्चरण किया करते हैं ।२०६। और जो भी देवगण और मनुगण हैं—प्रवेश और अन्य भी जो स्वर्ग में गये हुए सिद्ध है वे सब उसी से होने वाले तथा ख्याति के वश होने से धर्म से मुक्त होते हुए प्राणी फिर विसर्ग के द्वारा हुआ

करते हैं ।२०७। इसके आगे आभूत संप्लव अर्थात् समस्त प्राणियों को जल-मग्न हो जाना मैं उस काल के विषय में वर्णन करूँगा । हे द्विजो ! जो-जो भी मन्वन्तर होते हैं। उन सबको मैंने बतला ही दिया है ।२०८। प्रजाओं के निसर्ग और देवों के साथ चतुर्दश होते हैं। वह सहस्र युगाख्या है उसी में सभी अन्तर होते हैं ।२०९। इस युगाख्या के जब पूर्ण हो सहस्र होते हैं तब विशेष कल्प कहा जाया करता है । यही ब्रह्माजी का दिन समझना चाहिए। उसकी संख्या को भी समझ लो ।२१०।

निमेषतुल्यमात्रा हि कृता लब्धक्षणेन तु ।
मानुषाक्षिनिमेषास्तु काष्ठा पंचदश स्मृताः ॥२११
नव क्षणस्तु पंचैव विंशत्काष्ठा तु ते त्रयः ।
प्रस्था सप्तोदकाश्चैव साधिकास्तु लवः स्मृतः ॥२१२
लवास्त्रिंशत्कला ज्ञेया मुहूर्त्तस्त्रिंशतः कलाः ।
मुहूर्त्तास्तु पुनस्त्रिंशदहोरात्रमिति स्थितिः ॥२१३
अहोरात्रं कलानां तु अधिकानि शतानि षट् ।
ताश्चैव संख्यया ज्ञेयाश्चंद्रादित्यगतिर्यथा ॥२१४
निमेषा दश पंचैवं काष्ठास्तास्त्रिंशतः कला ।
त्रिंशत्कला मुहूर्त्तं तु दशभागं कला स्मृतम् ॥२१५
चत्वारिंशत्कलाः पंच मुहूर्त्तो इति संज्ञितः ।
मुहूर्त्ताश्च लवाश्चापि प्रमाणज्ञैः प्रकल्पिताः ॥२१६
तथानेनांभसश्चापि पलान्यथ त्रयोदश ।
मागधेनैव मानेन जलप्रस्थो विधीयते ॥२१७

क्षण के लाभ से निमेष की मात्रा होती है। मनुष्य की आँखों की पलकें जो चलती हैं उसी काल को निमेष कहा जाता है। ऐसे पन्द्रह निमेषों की एक काष्ठा होती है । नौ और पाँच क्षण ही बीस काष्ठा है । वे तीन तथा साधिक सात प्रस्थोदक लव कहा गया है ।२११-२१२। तीस लव की एक कला होती है और तीस कला का—एक मुहूर्त्त होता है । यही स्थिति हुआ करती है ।२१३। कलाओं का अहोरात्र साधिक शत और छै है । वे ही संख्या से जैसी चन्द्र और सूर्य की गति होती है जान लेनी

चाहिए ।२१४। पन्द्रह निमेष काष्ठा है और तीस काष्ठाओं की कला होती है। तीस कला का मुहूर्त्त होता है। दशभाग ही कला कहा गया है ।१२५। चालीस कलाओं के पाँच मुहूर्त्त संज्ञा होती है। ये मुहूर्त्त और लव प्रमाणों के ज्ञाताओं के द्वारा कल्पित किये हैं। उसी भाँति से इसके द्वारा जल के भी तरह पल होते हैं। मागध मान से भी जल प्रस्थ किया जाता है। २१६-२१७।

एते वाराप्लुतप्रस्थाश्चत्वारो नालिकोच्चयः ।
हेममाषैः कृतच्छिद्रश्चतुर्भिश्चतुरंगुलैः ॥२१८
समाहनि च रात्रौ च मुहूर्त्ता वै द्विनालिकाः ।
रवेर्गतिविशेषेण सर्वेष्वेतेषु नित्यशः ॥२१९
अधिकं षट्शतं यच्च कलानां प्रविधीयते ।
तदहर्मानुषं ज्ञेयं नाक्षत्रं तु दशाधिकम् ।२२०
सावनेन तु मानेन अब्दोऽयं मानुषः स्मृत ।
एतद्दिव्यमहोरात्रमिति शास्त्रविनिश्चयः ॥२२१
अह्नानेन तु या संख्या मासर्त्वयनवार्षिकी ।
तदा बद्धमिदं ज्ञानं संज्ञया ह्युपलक्षितम् ।।२२२
कलानां तु परीमाणं कला इत्यभिधीयते ।
यदहो ब्रह्मणः प्रोक्तः दिव्या कोटी तु सा स्मृतः ।२२३
शतानां च सहस्राणि दशद्विगुणितानि च ।
नवति च सहस्राणि तथैवान्यानि यानि तु ॥२२४

ये धारा प्लुत प्रस्थ नालिकोच्चय चार हैं। चार अंगुल चार हेम-माषों से कृतच्छिद्र है ।२१८। सम दिन में और रात्रि में द्विजालि का मुहूर्त्त होते हैं। नित्य ही इन सबों में रवि की गति विशेष से होते हैं ।२१९। और अधिक छं सौ कलाओं का प्रविधान किया जाता है। वह मनुष्यों का दिन समझना चाहिए और जो नक्षत्र है वह दशाधिक होता है ।२२१। इस दिन से जो संख्या होती है वह मास-ऋतु-अयन और वर्ष की होती है। उस समय में यह बद्धज्ञान संज्ञा के द्वारा उपलक्षित होता है ।२२२। कलाओं का जो परिमाण है वह कला—इस नाम से कहा जाया करता है। जो ब्रह्माजी

का दिन कहा गया है वह दिव्य कोटी कही गयी है।२२३। शतों के सहस्र दश ही से गुणित होते हैं नब्बे सहस्र और उसी भाँति जो अन्य हैं।२२४।

एतच्छ्रुत्वा तु ऋषयो विस्मयं परमाद्भुतम् ।
संख्यासंभजनं ज्ञानमपृच्छन्सुतरां तदा ॥२२५
ऋषयु ऊचु–
संप्रकालनमानं तु मानुषेणैव सम्मतम् ।
मानेन श्रोतुमिच्छामः संक्षेपार्थपदाक्षरम् ॥२२६
तेषां श्रुत्वा स देवस्तु वायुर्लोकहिते रतः ।
संक्षेपाद्दिव्यचक्षुष्ट्वात्प्रोवाच वचनं प्रभुः ॥२२७
एते राज्यहनी पूर्वं कीर्तिते त्विह लौकिके ।
तासां संख्याथ वर्षाग्रं ब्राह्मे वक्ष्याम्यहः क्षये ॥२२८
कोटीशतानि चत्वारि वर्षाणि मानुषाणि तु ।
द्वात्रिंशच्च तथा कोटयः संख्याताः संख्यया द्विजैः ॥२२९
तथा शतसहस्राणि एकोननवतिः पुनः ।
अशीतिश्च सहस्राणि एष कालः प्लवस्य तु ॥२३०
मानुषाख्येन संख्यातः कालो ह्याभूतसंप्लवः ।
सप्तसूर्यप्रदग्धेषु तदा लोकेषु तेषु वै ।
महाभूतेषु लीयंते प्रजाः सर्वाश्चतुर्विधाः ॥२३१

समस्त ऋषियों ने जब यह सुना तो उनको बहुत ही अधिक आश्चर्य हुआ था। उस समय में पुनः इस संख्या के संभजन के ज्ञान को पूछा था।२२५। ऋषियों ने कहा—यह संप्रकालन का ज्ञान मनुष्यों के द्वारा ही सम्मत होता है। अब हम लोग मान के द्वारा संक्षेपार्थ पदाक्षर को श्रवण करने की इच्छा करते हैं।२२६। उनके इस वचन को सुनकर लोगों के हित में रति रखने वाले वायु देव ने जो प्रभु दिव्य चक्षु वाले थे यह वचन बोले।२२७। वे रात और दिन जो कि लौकिक होते हैं और यहाँ पर माने जाते हैं और यहाँ पर माने जाते हैं वे तो अपने पूर्व में ही वर्णन कर दिए हैं। उनकी सख्या और इसके पश्चात् वर्षाग्र ब्राह्म क्षय में बताऊँगा।२२८।

चार सौ करोड़ मानवों के वर्ष तथा बत्तीस करोड़ द्विजों के द्वारा संख्या से संख्यात हैं ।२२९। उसी भाँति एक सौ सहस्र और फिर उन्यासी अस्सो सहस्र यह उस महान् प्लव का काल होता है ।२३०। यह आभूत संप्लव का काल मानुष नामक संख्या से गिनकर बताया गया है । जिसमें समस्त प्राणियों का संक्षय होकर सर्वत्र जल ही जल हो जाता है उसी को आभूत संप्लव कहा जाया करता है । सात सूर्यों के द्वारा उस समय में उन लोकों के प्रदग्ध होने पर चारों प्रकार की सम्पूर्ण प्रजा महाभूतों में लीन हो जाया करती है । जरायुज—स्वेदज—अण्डज और उद्भिज—ये प्रजा के चार प्रकार होते हैं ।२३१।

सलिलेनाप्लुते लोके नष्टे स्थावरजंगमे ।।२३२
विनिवृत्ते च संहारे उपशान्ते प्रजापतौ ।
निरालोके प्रदग्धे तु नैशेन तमसा वृते ।।२३३
ईश्वराधिष्ठिते त्वस्मिंस्तदा ह्येकार्णवे किल ।
तावदेकार्णवे ज्ञेयं यावदासीदहः प्रभोः ।।२३४
रात्रिस्तु सलिलावस्था निवृत्तौ वाप्यहः स्मृतम् ।
अहोरात्रस्तथैवास्य क्रमेण परिवर्तते ।।२३५
आभूतसंप्लवो ह्येष अहोरात्रः स्मृतः प्रभोः ।
त्रैलोक्ये यानि सत्वानि गतिमंति ध्रुवाणि च ।।२३६
आभूतेभ्यः प्रलीयंते तस्मादाभूतसंप्लवः ।
अतीता वर्तमानाश्च तथैवानागताः प्रजाः ।।२३७
दिव्यसंख्या प्रसंख्याता अपरार्धगुणीकृताः ।
परार्द्धं द्विगुणं चापि परमायुः प्रकीर्तितम् ।।२३८

उस समय में सम्पूर्ण लोक जल से समाप्लुत होकर नष्ट हो जाया करता है और सभी स्थावर तथा जङ्गम विनष्ट हो जाया करते हैं ।२३२। समग्र संहार के समीप हो जाने पर और प्रजापति के उपशान्त होने पर तथा सर्वत्र प्रकाश से रहित एवं दग्ध तथा रात्रि के अन्धकार से आवृत होने पर ।२३३। उस समय में यह सम्पूर्ण जगत् ईश्वर के द्वारा ही अधिष्ठित था और सवत्र एक ही अर्णव था । यह तब तक एकार्णव का स्वरूप था जब

उसी को दिन कहा गया है। इसी रीति से इनका अहोरात्र क्रम से परिवर्त्तित हुआ करता है।२३५। यह आभूत संप्लव प्रभु का अहोरात्र कहा गया है। इन तीनों लोकों में जो भी प्राणी हैं वे सभी गतिमान् और ध्रुव हैं।२३६। जितने भी भूत हैं वे सभी प्रलीन होते हैं इसी कारण से इसका नाम आभूत संप्लव होता है। जो व्यतीत हो चुके हैं—जो भी वर्त्तमान हैं और जो प्रजा अनागत हैं और अपरार्ध से गुणी कृत हैं। परार्ध द्विगुण है और यही परम आयु कीर्तित की गयी है।२३७-२३८।

एतावान्स्थितिकालस्तु ह्यजस्येह प्रजापतेः ।
स्थित्यंतं प्रतिसर्गश्च ब्रह्मणः परमेष्ठिनः ।।२३९
यथा वायुप्रगेन दीपार्चिरुपशाम्यति ।
तथैव प्रतिसर्गेण ब्रह्मा समुपशाम्यति ।।२४०
तथा स्वप्रतिसंसृष्टे महादादौ महेश्वरे ।
महत्प्रलीयते व्यक्तो गुणसाम्यं ततो भवेत् ।।२४१
इत्येष वः समाख्यातो मया ह्याभूतसंप्लवः ।
ब्रह्मनैमित्तिको ह्येष संप्रक्षालनसंयमः ।
समासेन समाख्यातो भूयः किं वर्णयामि वः ।।२४२
य इदं धारयेन्नित्यं शृणुयाद्वाप्यभीक्ष्णशः ।
कीर्त्तयेद्वर्णयेद्वापि महतीं सिद्धिमाप्नुयात् ।।२४३

उस अजन्मा प्रजापति का इतना ही स्थिति का काल होता है। उस परमेष्ठी ब्रह्माजी का स्थिति का अन्त और प्रति सर्ग होता है।२३९। जिस प्रकार से वायु के प्रवेग से दीप की शिखा उपशान्त हो जाया करते हैं।२४० उसी भाँति महदादि महेश्वर के अपने प्रति संसृष्ट होने पर महिमा है। जो भी कोई इसको नित्य धारण किया करता है अथवा इसका बारम्बार श्रवण किया करता है अथवा इसका कीर्त्तन किया करता है या वर्णन करता है वह मानव बड़ी भारी सिद्धि को प्राप्त कर लेता है।२४३।

—×—

।। प्रतिसर्ग वर्णन ।।

सूत उवाच–

प्रत्याहारं प्रवक्ष्यामि परस्यांते स्वयंभुवः ।
ब्रह्मणः स्थितिकाले तु क्षीणे तस्मिस्तदा प्रभोः ।।१
यथेदं कुरुते व्यक्तं सुसूक्ष्मं विश्वमीश्वरः ।
अव्यक्तं ग्रसते व्यक्तं प्रत्याहारे च कृत्स्नशः ।।२
पुरांतद्व्यण काद्यानां संपूर्णे कल्पसंक्षये ।
उपस्थिते महाघोरे ह्यप्रत्यक्षे तु कस्याचित् ।।३
अंते द्रुमस्य संप्राप्ते पश्चिमस्य मनोस्तदा ।
अंते कलियुगे तस्मिन्क्षीणे संहार उच्यते ।।४
संम्प्राप्ते तदा वृत्ते प्रत्याहारे ह्युपस्थिते ।
प्रत्याहारे तदा तस्मिन्भूततन्मात्रसंक्षये ।।५
महदादिविकारस्य विशेषांतस्य संक्षये ।
स्वभावकारिते तस्मिन्प्रवृत्ते संचरे ।।६
आपो ग्रसन्ति वै पूर्वं भूमेर्गन्धात्मकं गुणम् ।
आत्तगंधा ततो भूमिः प्रलयत्वाय कल्पते ।।७

श्री सूतजी ने कहा—पर के अन्त में स्वयंम्भू का प्रत्याहार मैं कहूँगा। प्रभु ब्रह्म के स्थिति के काल में और उस समय में उसके क्षीण हो जाने पर ।१। जैसे ईश्वर इस सुसूक्ष्म व्यक्त विश्व की रचना करता है। प्रत्याहार के समय में इस अव्यक्त को व्यक्त ग्रस लिया करता है और पूर्णतया यह ग्रस्त हो जाता है ।२। पुरान्त द्वयणुक आदि का सम्पूर्ण कल्प संक्षय होने पर ।३। अन्त में उस समय में पश्चिम द्रुम मनु के सम्प्राप्त होने पर अन्त में उस कलियुग के क्षीण हो जाने पर संहार कहा जाता है ।४। उस समय में वृत्त के सम्प्राप्त होने पर और प्रत्याहार के उपस्थित होने पर उस काल में प्रत्याहार में भूतों और तन्मात्राओं का संक्षय हो जाता है ।५। महत् तत्व आदि जो प्रकृति के विकार हैं विशेषान्त पर्यन्त सबका संक्षय हो जाता है। यह सभी कुछ स्वभाव से ही किया जाता है तब वह प्रति सञ्चर

प्रवृत होता है ।६। सर्व प्रथम जल भूमि का जो विशेष गुण गन्ध है उसको ग्रस लिया करते हैं । इसके अनन्तर गन्ध हीन भूमि प्रलय को ही प्राप्त हो जाया करती है ।७।

प्रणष्टे गंधतन्मात्रे तोयावस्था धरा भवेत् ।
आपस्तदा प्रविष्टास्तु वेगवत्यो महास्वनाः ।।८
सर्वमापूरयित्वेदं तिष्ठंति विचरंति च ।
अपामपि गणो यस्तु ज्योतिः ष्वालीयते रसः ।।९
नश्यंत्यापस्तदा तत्र रसतन्मात्रसंक्षयात् ।
तीव्रतेजोहृतरसा ज्योतिष्ट्वं प्राप्नुवंत्युत ।।१०
ग्रस्ते च सलिले तेजः सर्वतोमुखमीक्षते ।
अथाग्निः सर्वतो व्याप्त आदत्ते तज्जलं तदा ।।११
सर्वमापूर्यतोऽर्चिभिस्तदा जगदिदं शनैः ।
अर्चिभिः संतते तस्मिंस्तिर्यगूर्ध्वमधस्ततः ।।१२
ज्योतिषोऽपि गुणं रूपं वायुरत्ति प्रकाशकम् ।
प्रलीयते तदा तस्मिन्दीपार्चिरिव मारुते ।।१३
प्रणष्टे रूपतन्मात्रे हृतरूपो विभावसुः ।
उपशाम्यति तेजो हि वायुराधूयते महान् ।।१४

गन्ध की तन्मात्रा जब प्रणष्ट हो जाती है तो यह समस्त पृथ्वी जल की ही अवस्था वाली हो जाया करती है और भूमि का अस्तित्व ही सर्वथा लुप्त हो जाता है । उस समय में यह जल बड़े भीषण घोष और वेग से समन्वित होकर प्रविष्ट हो जाया करते हैं ।८। ये जल सबको आपूरित करके ही स्थित हो जाया करते हैं तथा विचरण किया करते हैं । फिर जल का जो विशेष गुण रस है वह तेज में लीन हो जाता है ।९। जब रस की तन्मात्रा का विनाश हो जाता करता है । तेज की तीव्रता से जल के रस के अपहृत हो जाने पर वह जल तेज के ही स्वरूप को प्राप्त हो जाया करता है ।१०। तेज के द्वारा जल के ग्रस्त हो जाने पर वही तेज सभी ओर दिखाई दिया करता है । इसके पश्चात् सभी ओर व्याप्त हुआ अग्नि उस समय में

उस जल को अपने ही स्वरूप ले लेता है।११। धीरे-धीरे यह सब जगत् अग्नि (तेज) की ज्वालाओं से सम्पूरित हो जाता है। वे सब अर्चियाँ ऊपर-नीचे और तिरछी ओर सवत्र व्याप्त हो जाती हैं।१२। इस तेज का विशेष गुण रूप होता है जो कि इसका प्रकाश करने वाला है। इस रूप को वायु भक्षण कर जाता है। उस समय में वह तेज की ज्वालाओं वायु में दीप की शिखा के ही समान प्रलीन हो जाया करती है। जब रूप की तन्मात्रा विनष्ट हो जाती है तो वह अग्नि रूप से रहित हो जाता है। तेज तो फिर उपशान्त हो जाता है और केवल वायु ही महान् स्वरूप को धारण करके धूम धाम से सर्वत्र वहन किया करता है।१३-१४।

निरालोके तदा लोके वायुभूते च तेजसि।
ततस्तु मूलमासाद्य वायुः संबंधमात्मनः ॥१५
ऊर्ध्वं चाधश्च तिर्यक्च दोधवीति दिशो दश।
वायोरपि गुणं स्पर्शमाकाशं ग्रसते च तत् ॥१६
प्रशाम्यति तदा वायुः खं तु तिष्ठत्यनावृतम्।
अरूपमरसस्पर्शमगंधं न च मूर्तिमत् ॥१७
सर्वमापूरयच्छब्दैः सुमहत्तत्प्रकाशते।
तस्मिँल्लीने तदा शिष्टमाकाशं शब्दलक्षणम् ॥१८
शब्दमात्रं तदाऽकाशं सर्वमावृत्य तिष्ठति।
तत्र शब्दं गुणं तस्य भूतादिर्ग्रसते पुनः ॥१९
भूतेंद्रियेषु युगपद्भूतादौ संस्थितेषु वै।
अभिमानात्मको ह्येष भूतादिस्तामसः स्मृतः ॥२०
भूतादिर्ग्रसते चापि महान्वै बुद्धिलक्षणः।
महानात्मा तु विज्ञेयः संकल्पो व्यवसायकः ॥२१

तेज को जब वायु ने ग्रस लिया था तो प्रकाशक रूप के अभाव होने से लोक में आलोक सर्वथा नहीं रहा था क्योंकि तेज तो वायु के ही रूप में लीन हो गया था। इसके पश्चात् वायु अपने सम्बन्ध भूत को प्राप्त करके ।१५। वह वायु ऊपर नीचे और इधर-उधर सर्वत्र दश दिशाओं में प्रकम्पित किया करता है। इस वायु का विशेष गुण स्पर्श होता है उस स्पर्श को

आकाश ग्रस लिया करता है ।१६। उस समय में वायु भी अस्तित्व खोकर प्रशान्त हो जाता है और केवल आकाश ही अनावृत होकर स्थित रहा करता है। न तो इसके रूप है और न रस-स्पर्श-गन्ध तथा मूर्त्ति हैं। ऐसा आकाश रहा करता है ।१७। आकाश का विशेष गुण शब्द है। वह इसी से सबको पूरित करके बहुत विशाल दिखाई देता है। तात्पर्य यही है कि इसी का अस्तित्व होता है। वायु में भी लीन होने पर केवल अवशिष्ट आकाश ही होता है जिसका लक्षण ही शब्द होता है ।१८। उस समय में केवल शब्द ही जिसमें शेष रह गया था ऐसा आकाश सबको ढककर स्थित था। वहाँ पर जो उसका गुण शब्द था उसको भूतादि ग्रस लेते हैं ।१६। भूतेन्द्रियों में एक साथ भूतादि के संस्थित होने पर यह अभिमान के ही स्वरूप वाला भूतादि तमस कहा गया है ।२०। बुद्धि के लक्षण वाला यह महान् भूतादि का ग्रसन कर लेता है, महान् के स्वरूप वाला यह व्यवसाय करने वाला सङ्कल्प ही समझ लेना चाहिए ।२१।

बुद्धिर्मनश्च लिंगं च महानक्षर एव च ।
पर्यायवाचकैः शब्दैस्तमाहुस्तत्त्वचिंतकाः ।।२२

संप्रलीनेषु भूतेषु गुणसाम्ये ततो महान् ।
लीयंते गुणसाम्यं तु स्वात्मण्येवावतिष्ठते ।।२३
लीयंते सर्वभूतानां कारणानि प्रसंगमे ।
इत्येष संयमश्चैव तत्त्वानां कारणैः सह ।।२४

तत्त्वप्रसंयमो ह्येष स्मृतो ह्यावर्तको द्विजाः ।
धर्माधर्मे तपो ज्ञानं शुभं सत्यानृते तथा ।।२५
ऊर्ध्वभावो ह्यधोभावः सुखदुःखे प्रियाप्रिये ।
सर्वमेतत्प्रपंचस्थं गुणमात्रात्मकं स्मृतम् ।।२६

निरिन्द्रियाणां च तदा ज्ञानिनां तच्छुभाशुभम् ।
प्रकृत्यां चैव तत्सर्वं पुण्यं पापं प्रतिष्ठति ।।२७

यात्यवस्था तु स चैव देहिनां तु निरुच्यते ।
जंतूना पापपुण्यं तु प्रकृतौ यत्प्रतिष्ठितम् ।।२८

जो तत्वों का चिन्तन करने वाले महा मनीषी हैं वे उसको बुद्धि-मन-लिङ्ग-महान् और अक्षर—इन पर्याय वाचक शब्दों के द्वारा कहा करते हैं ।२२। जब ये सब भूतादिक भली भाँति से प्रलीन हो जाया करते हैं तब गुणों की (सत्त्व-राज-तम) समता हो जाती है और उस में वह गुणों का साम्य लीन हो जाता है तथा अपने ही स्वरूप में अवस्थित रहा करता है ।२३। समस्त भूतों के कारण प्रसङ्ग में लीन हो जाया करते हैं। यही तत्त्वों का कारणों के साथ संयम होता है ।२४। हे द्विजो ! यह तत्त्वों का प्रसंयम आवर्त्तक कहा गया है । धर्म और अधर्म, शुभ ज्ञान, सत्य और मिथ्या—ऊर्ध्वभाव और अधोभाव—सुख और दुःख–प्रिय और अप्रिय—यह सभी कुछ प्रपञ्च में स्थित गुणमात्र के स्वरूप वाला कहा गया है ।२५-२६। बिना इन्द्रियों वाले ज्ञानियों का उस समय में जो भी शुभ और अशुभ कर्म है वह सब पुण्य और पाप प्रकृति में प्रतिष्ठित होता है ।२७। और यही अवस्था होती है जो देह धारियों की कही जाया करती है और जन्तुओं का जो भी कुछ पुण्य और पाप है वह प्रकृति में प्रतिष्ठित होता है ।२८।

अवस्थास्थानि तान्येव पुण्यपापानि जंतवः ।
योजयंति पुनर्देहान्परत्वेन तथैव च ।।२९
धर्माधर्मौ तु जंतूनां गुणमात्रात्मकावुभौ ।
कारणैः स्वैः प्रचीयेते कार्यत्वेन जंतुभिः ।।३०
सचेतनाः प्रलीयंते क्षेत्रज्ञाधिष्ठिता गुणाः ।
सर्गे च प्रतिसर्गे च संसारे चैव जंतवः ।।३१
संयुज्यन्ते वियुज्यन्ते कारणैः संचरंति च ।
राजसी तामसी चैव सात्विकी चैव वृत्तयः ।।३२
गुणमात्राः प्रवर्तन्ते पुरुषाधिष्ठितास्त्रिधा ।
उद्ध्र्वदेशात्मकं सत्त्वमधोभागात्मकं तमः ।।३३
तयोः प्रवर्त्तकं मध्ये इहैवावर्त्तकं रजः ।
इत्येवं परिवर्तंते त्रयश्चेतोगुणात्मकाः ।।३४
लोकेषु सर्वभूतानां तन्न कार्यं विजानता ।
अविद्याप्रत्ययारंभा आरभ्यन्ते हि मानवैः ।।३५

उस अवस्था में स्थित हो वे ही सब पाप और पुण्य जन्तुओं को पुनः परत्व से उसी प्रकार से देहों के साथ योजित किया करते हैं अर्थात् उन्हीं पुण्य पापों के अनुसार जीव देहों को प्राप्त किया करते हैं ।२६। जीवों के धर्म और अधर्म दोनों ही गुण मात्रों के स्वरूप वाले होते हैं । जन्तुओं के द्वारा अपने ही कारणों से कार्य के रूप में परिणत होकर बढ़ जाया करते हैं ।३०। क्षेत्रज्ञ (आत्मा) में अधिष्ठित गुण चेतन के सहित धलीन होते हैं । इस संसार में सर्ग में सब जन्तु होते हैं ।३१। राजसी तामसी और सात्त्विकी वृत्तियाँ संयुक्त होती हैं—वियुक्त होती हैं और कारणों के द्वारा सञ्चरण किया करती हैं ।३२। पुरुषों में अधिष्ठित केवल गुण ही प्रवृत्त हुआ करते हैं और तीन प्रकार से होते हैं । ऊर्ध्व दशात्मक सत्त्व है—और अधोभागात्मक तम है ।३३। इन दोनों का मध्य प्रवर्त्तक रजोगुण चेत इसी रीति से यहाँ पर है और ये तीनों परिवर्त्तित हुआ करते हैं ।३४। लोकों में समस्त भूतों के कार्यों को जानने वाले को वह नहीं करना चाहिए । मानवों के द्वारा अविद्या के विश्वास से ही सभी का आरम्भ किया जाया करता है । तात्पर्य यही है कि सबका आरम्भ अविद्या के ही विश्वास से हुआ करता है ।३५।

एतास्तु गतयस्तिस्रः शुभात्पापात्मिकाः स्मृताः ।
तमसोऽभिभवाज्जंतुर्याथातथ्यं न विंदति ॥३६
अतत्त्वदर्शनात्सोऽथ विविधं बध्यते ततः ।
प्राकृतेन च बन्धेन तथावैकारिकेण च ॥३७
दक्षिणाभिस्तृतीयेन बद्धोऽत्यंतं विवर्त्तते ।
इत्येते वै त्रयः प्रोक्ता बंधा ह्यज्ञानहेतुकाः ॥३८
अनित्ये नित्यसंज्ञा च दुःखे च सुखदर्शनम् ।
अस्वे स्वमिति च ज्ञानमशुचौ शुचिनिश्चयः ॥३९
येषामेते मनोदोषा ज्ञानदोषा विपर्ययात् ।
रागद्वेषनिवृत्तिश्च तज्ज्ञानं समुदाहृतम् ॥४०
अज्ञानं तमसो मूलं कर्मद्वयफलं रजः ।
कर्मजस्तु पुनर्देहो महादुःखं प्रवर्त्तते ॥४१
श्रोत्रजा नेत्रजा चैव त्वग्जिह्वाघ्राणजा तथा ।
पुनर्भवकरी दुःखात्कर्मणा जायते तृषा ॥४२

ये तीन ही गतियाँ होती हैं जो शुभ और पापात्मिक कही गयी हैं। तमोगुण से अभिभूत होकर यह जीवात्मा यथार्थता को प्राप्त नहीं हुआ करता है।३६। तत्व के दर्शन न करने से ही वह जीवात्मा यहाँ पर अनेक प्रकार से बद्ध हो जाया करता है। वह बन्धन तत्व वैकारिक और प्राकृत है।३७। तृतीय दक्षिणओं में बद्ध हुआ यह अत्यन्त ही विवर्त्तित हो जाता है। ये ही तीन इस जीवात्मा के बन्धन होते हैं जो केवल अज्ञान के ही कारण से हुआ करते हैं।३८। यह जीवात्मा जो वस्तु अनित्य है उनमें नित्य होने का ज्ञान रखता है जो कि सर्वथा गलत है। जो दुःखमय है उसमें ही सुख का दर्शन किया करता है। जो वस्तुतः अपना नहीं है उसको ही अपना समझता है और जो वास्तव में अशुचि अर्थात् अपवित्र है उसको पवित्र जानता है।३६। ज्ञान की विपरीतता होने ही से ये सब दोष समुत्पन्न हुआ करते हैं और जिनमें ये होते हैं वे सब उनके मन के ही दोष हैं। जिसके मन में सांसारिक वस्तुओं के प्रति राग द्वेष की निवृत्ति होती है, उसी का नाम ज्ञान कहा गया है, किन्तु वास्तविक रूप से ऐसा होता नहीं है, दिखाने और कहने को भले ही कोई कुछ भी किया करे।४०। यह अज्ञान जो होता है उसका मूल तमोगुण की ही अधिकता है। ज्ञान का होना और अज्ञान का जमा रहना ये दोनों ही रजोगुण का परिणाम हैं। सभी जानते हैं कि कुछ भी साथ नहीं जाता है फिर भी सांसारिक वस्तुओं में प्रबल मोह नहीं छूटता है। यह देह तो कर्मों ही से प्राप्त होता है और फिर भी वही अज्ञान इसमें भरा ही रहता है तो यह महान् दुःख का भागी होता है।४१। विषयों के प्रति बड़ी भारी तृषा बनी रहती है। यही तृषा पुनः संसार में फँसाये रखने वाली होती है जो कर्मों के कारण दुःख से होती है। कानों में समुत्पन्न—नेत्रों से सम्भूत–त्वचा, रसना और नासिका से उत्पन्न यह विषयों के आस्वादन की पिपासा हुआ करती है।४२।

सतृष्णोऽभिहितो बालः स्वकृतैः कर्मणः फलैः ।
तैलपीडकवज्जीवस्तत्रैव परिवर्त्तते ।।४३

तस्मान्मूलमनर्थानामज्ञानमुपदिश्यते ।
तं शत्रुमवधार्यैकं ज्ञाने यत्नं समाचरेत् ।।४४

ज्ञानाद्धि त्यजते सर्वं त्यागाद्बुद्धिर्विरज्यते ।
वैराग्याच्छुध्यते चापि शुद्धः सत्त्वेन मुच्यते ।।४५

अत ऊद्ध्वं प्रवक्ष्यामि रागं भूतापहारिणम् ।
अभिष्वंग्राय योगः स्याद्विषयेष्ववशात्मनः ।।४६
अनिष्टमिष्टमप्रीतिप्रीतितापविषादनम् ।
दुःखलाभे न तापश्च सुखानुस्मरणं तथा ।।४७
इत्येष वैषयो रागः संभूत्याः कारणं स्मृतः ।
ब्रह्मादौ स्थावरांते वै संसारे ह्याधिभौतिके ।।४८
अज्ञानपूर्वकं तस्मादज्ञानं तु विवर्जयेत् ।
यस्य चार्षं न प्रमाणं शिष्टाचारं तथैव च ।।४९

बाल तृष्णा के सहित होता है और अपने ही द्वारा किये हुए कर्मों के फलों से तैल पीड़क की भाँति उसी में परिवर्त्तित हुआ करता है अर्थात् जैसे तेल निकालने की घानी में कोई पिरता है उसी तरह से इस संसार के चक्र में जीव घूमा करता है ।४३। इस कारण से अनर्थों का मूल अज्ञान ही बताया जाया करता है । उसी एक अज्ञान को अपना शत्रु मानकर ज्ञान के प्राप्त करने में ही पूर्ण प्रयत्न करना चाहिए ।४४। मन से सब कुछ का त्याग किया जाता है और त्याग जब होता है तो उस त्याग से बुद्धि में वैराग्य हो जाया करता है अर्थात् फिर संसार की सभी वस्तु सार हीन और हेय प्रतीत हुआ करती हैं । वैराग्य से शुद्धि हो जाया करती है तथा शुद्ध सत्व से युक्त हो जाता है ।४५। अब इसके आगे हम उस राग के विषय में बतलायेंगे जो भूतों का अपहरण करने वाला होता है, विषयों में अवश आत्मा वाले का अभिष्यङ्ग के लिए योग हुआ करता है ।४६। अनिष्ट–इष्ट–अप्रीति–प्रीति–ताप—विषाद—दुःखों के लाभ में ताप होता है और सुखों का अनुस्मरण नहीं हुआ करता है ।४७। इतना यही विषयों में रहने वाला राग है और संभूति कारण यही राग बताया गया है । जो ब्रह्मा से आदि लेकर स्थावर पर्यन्त इस आधिभौतिक संसार में होता है ।४८। यह सब अज्ञान पूर्वक अर्थात् अज्ञान से ही होता है । इस कारण से अज्ञान को परिवर्जित कर देना चाहिए । जिसका आर्षग्रन्थों में कोई प्रमाण नहीं है और जो शिष्ट पुरुषों का आचरण भी नहीं है ।४९।

वर्णाश्रमविरुद्धो यः शिष्टशास्त्रविरोधकः ।
एष मार्गो हि निरये तिर्य्यग्योनौ च कारणम् ।।५०

तिर्य्यग्योनिगतं चैव कारणं तत्त्रिरुच्यते ।
त्रिविधो यातनास्थाने तिर्य्यं योनौ च षड्विधे ॥५१
कारणे विषये चैव प्रतिघातस्तु सर्वशः ।
अनैश्वर्यं तु तत्सर्वं प्रतिघातात्मकं स्मृतम् ॥५२
इत्येषा तामसी वृत्तिर्भूतादीनां चतुर्विधा ।
सत्वस्थमात्रकं चित्तं यथासत्वं प्रदर्शनात् ॥५३
तत्वानां च यथातत्वं दृष्ट्वा वै तत्वदर्शनात् ।
सत्वक्षेत्रज्ञनानात्वमेतन्नानार्थदर्शनम् ॥५४
नानात्वदर्शनं ज्ञानं ज्ञानाद्वै योग उच्यते ।
तेन बद्धस्य वै बंधो मोक्षो मुक्तस्य तेन च ॥५५
संसारे विनिवृत्ते तु मुक्तो लिंगेन मुच्यते ।
निः संबंधो ह्यचैतन्यः स्वात्मन्येवावतिष्ठते ॥५६

जो कार्य वर्णों और आश्रमों के विरुद्ध है और जो शिष्ट शास्त्रों के विरोध करने वाला है—यह ऐसा ही मार्ग है जिसमें गमन करने वाला नरक में जाता है और तिर्यग् योनि में प्राप्त होने का भी यही कारण होता है। ।५०। तिर्यग् योनि में रहने वाला जो कारण है वह तीन कहे जाते हैं। यातना स्थान में तीन प्रकार का है और छः प्रकार का तिर्यग् योनि में होता है ।५१। कारण में और विषय में सभी ओर प्रतिघात है। वह सब अनैश्वर्य प्रतिघात है। यह सब अनैश्वर्य प्रतिघात के स्वरूप वाला कहा गया है। ।५२। यह इस प्रकार से भूतादिक की तामसी वृत्ति चार प्रकार की होती है। चित्त सत्वस्थ मात्रक होता है तथा सत्व प्रदर्शन से होता है यथा सत्व प्रदर्शन से होता है ।५३। और तत्वों का यथा तत्व देखकर तत्व प्रदर्शन से होता है। तत्व—क्षेत्रज्ञ का नानात्व जो है यही नानार्थ प्रदर्शन है ।५४। नानात्व का दर्शन ज्ञान है और ज्ञान से योग कहा जाया करता है उससे बद्ध का बन्ध और मुक्त का मोक्ष भी उसी से होता है ।५५। इस संसार के विशेष निवृत्त होने पर लिङ्ग से मुक्त हो जाया करता है। निःसम्बन्ध अचैतन्य अपनी ही आत्मा में अवस्थित होता है ।५६।

स्वात्मन्यवस्थितश्चापि विरूपाख्येन लिख्यते ।
इत्येतल्लक्षणं प्रोक्तं समासाज्ज्ञानमोक्षयोः ॥५७

स चापि त्रिविधः प्रोक्तो मोक्षो वै तत्वदर्शिभिः ।
पूर्वं वियोगो ज्ञानेन द्वितीये रागसंक्षयात् ॥५८
तृष्णाक्षयात्तृतीयस्तु व्याख्यातं मोक्षकारणम् ।
लिंगाभावात्तु कैवल्यं कैवल्यात्तु निरंजनम् ॥५९
निरंजनत्वाच्छुद्धस्तु नेताऽन्यो नैव विद्यते ।
अत ऊर्द्ध्वं प्रवक्ष्यामि वैराग्यं दोषदर्शनात् ॥६०
दिव्ये च मानुषे चैव विषये पंचलक्षणे ।
अप्रद्वेषोऽनभिष्वंगः कर्त्तव्यो दोषदर्शनात् ॥६१
तापप्रीतिविषादानां कार्यं तु परिवर्जनम् ।
एवं वैराग्यमास्थाय शरीरी निर्ममो भवेत् ॥६२
अनित्यमशिवं दुःखमिति बुद्ध्यानुचिंत्य च ।
विशुद्धं कार्यकरणं सत्वस्यातिनिषेवया ॥६३

वह अपने ही स्वरूप में अवस्थित होता हुआ भी विरूपात्मा के द्वारा लिखा जाता है। यह इतना ही संक्षेप से ज्ञान और मोक्ष का लक्षण कहा गया है।५७। वह मोक्ष भी तत्व दर्शियों के द्वारा तीन प्रकार का कहा गया है। पूर्व ज्ञान वियोग—दूसरे में राग का संक्षय से होता है।५८। तृष्णा के क्षय से तीसरा मोक्ष का कारण कहा गया है। लिङ्ग के अभाव से कैवल्य होता है और कैवल्य से निरञ्जन होता है। निरञ्जनत्व होने से शुद्ध होता है। अन्य कोई भी नेता नहीं होता है। इसके आगे हम दोषों के देखने से जो वैराग्य होता है उसको बतलायेंगे।५९-६०। दिव्य और मानुष पाँच लक्षणों वाला विषय है उसमें अप्रद्वेष और अनभिष्वङ्ग दोषों के देखने से करना चाहिए।६१। ताप प्रीति और विष आदि का अच्छी तरह से परिवर्जन कर देना चाहिए। उस तरह से वैराग्य में समास्थित होकर यह शरीरधारी ममता से रहित हो जाया करता है।६२। बुद्धि से ऐसा अनुचिन्तन करना चाहिए कि यह दुःख अनित्य और अशिव है। सत्व की ही अतिनिषेवा से सर्वथा परम विशुद्ध कार्यों को करे।६३।

परिपक्वकषायो हि कृत्स्नान्दोषान्प्रपश्यति ।
ततः प्रयाणकाले हि दोषैर्नैमित्तिकैस्तथा ॥६४

ऊष्मा प्रकुपितः काये तीव्रवायुसमीरितः ।
स शरीरमुपाश्रित्य कृत्स्नान्दोषान्रुणद्धि वै ॥६५

प्राणस्थानानि भिदन्हि छिदन्मर्माण्यतीत्य च ।
शैत्यात्प्रकुपितो वायुरूद्ध्वं नुत्क्रमते ततः ॥६६

स चायं सर्वभूतानां प्राणस्थानेष्ववस्थितः ।
समासात्संवृते ज्ञाने संवृत्तेषु च कर्मसु ॥६७

स जीवो नाभ्यधिष्ठानः कर्मभिः स्वैः पुराकृतैः ।
अष्टांगप्राणवृत्ति वै स विच्यावयते पुनः ॥६८

शरीरं प्रजहन्सोऽते निरुच्छ्वासस्ततो भवेत् ।
एवं प्राणैः परित्यक्तो मृत इत्यभिधीयते ॥६९
यथेह लोके स्वप्ने तं नीयमानमितस्ततः ।
रंजनं तद्विधेयस्य तेनान्यो न च विद्यते ॥७०

जब मनुष्य परिपक्व कषाय वाला होता है अर्थात् सांसारिक दु:खों के भोगों से परिपक्व होता है। ऐसा मनुष्य सभी दोषों का अवलोकन किया करता है। इसके अनन्तर प्रयाण के समय में नैमित्तिक दोषों से इस शरीर में तीव्र वायु से प्रेरित ऊष्मा प्रकुपित होकर शरीर में उपाश्रय ग्रहण करके समस्त दोषों का अवरोध कर दिया करता है।६४-६५। वह प्राण के स्थानों का भेदन करता हुआ तथा मर्म स्थलों में अतिक्रमण करके उन का छेदन किया करता है और शैत्य से प्रकुपित हुआ वायु फिर ऊपर की ओर उत्क्रमण किया करता है।६६। और वही यह समस्त प्राणियों के प्राण के स्थानों में अवस्थित होता है। संक्षेप से ज्ञान के संवृत हो जाने पर सभी कर्म भी संवृत्त हो जाते हैं।६७। वह जीव अपने पूर्व में किये हुए कर्मों से अभ्यधिष्ठान नहीं होता है। फिर वह अष्टाङ्ग प्राण वृत्ति को भी विच्यावित कर दिया करता है।६८। वह अन्त में इस पाञ्चभौतिक शरीर का त्याग करता हुआ फिर बिना श्वासों वाला हो जाया करता है। इस रीति से प्राणों के द्वारा परित्यक्त होता हुआ वह मानव मर गया है—यही कहा जाया करता है।६९। जिस तरह से इस लोक में स्वप्न में इधर से उधर नीयमान होता है। उसके विधेय का रञ्जन है उससे अन्य नहीं होता है।७०।

तृष्णाक्षयस्तृतीयस्तु व्याख्यातं मोक्षलक्षणम् ।
शब्दाद्ये विषये दोषदृष्टिर्वै पचलक्षणे ॥७१

अप्रद्वेषोऽनभिष्वंगः प्रीतितापविवर्जनम् ।
वैराग्यकारणं ह्येते प्रकृतीनां लयस्य च ॥७२

अष्टौ प्रकृतयो ज्ञेयाः पूर्वोक्ता वै यथाक्रमम् ।
अव्यक्ताद्यास्तु विज्ञेया भूतांताः प्रकृतेर्भवाः ॥७३

वर्णाश्रमाचारयुक्तः शिष्टः शास्त्राविरोधनः ।
वर्णाश्रमाणां धर्मोऽयं देवस्थानेषु कारणम् ॥७४

ब्रह्मादीनि पिशाचांतान्यष्टौ स्थानानि देवताः ।
ऐश्वर्यमणिमाद्यं हि कारणं ह्यष्टलक्षणम् ॥७५

निमित्तमप्रतीघाते दृष्टे शब्दादिलक्षणे ।
अष्टावेतानि रूपाणि प्राकृतानि यथाक्रमम् ॥७६

क्षेत्रज्ञेष्वनुसज्जंते गुणमात्रात्मकानि तु ।
प्रावृट्काले पृथग्मेघं पश्यंतीव सचक्षुषः ॥७७

तीसरा तृष्णा का क्षय है जो कि मोक्ष का लक्षण व्याख्यान किया गया है । शब्दादि पञ्च लक्षण विषय में दोष दृष्टि होती है ।७४। अप्रद्वेष-अभिष्वङ्ग-प्रीति ताप का विवर्जन ये ही प्रकृतियों का और लय का वैराग्य का कारण हैं ।७२। आठ पूर्व में वर्णित क्रमानुसार प्रकृतियाँ जाननी चाहिए। अव्यक्तादि और भूतान्त प्रकृति से उद्भूत समझने चाहिए ।७३। वर्णों ब्राह्मण-क्षत्रिय-वैश्य-शूद्र और आश्रमों (ब्रह्मचर्य-गार्हस्थ्य-वाणप्रस्थ-संन्यास) से समन्वित-शिष्ट और शास्त्रों का विरोध न करने वाला यह वर्णाश्रमों का देवों के स्थानों में कारण होता है ।७४। ब्रह्मा से आदि लेकर पिशाचों के अन्त पर्यन्त ये आठ स्थान ही देवता हैं। ऐश्वर्य और अणिमादि आठ लक्षण ही कारण हैं ।७५। शुक्रादि के लक्षण वाले अप्रतिघात के दृष्ट होने पर निमित्त हैं । ये क्रमानुसार आठ प्राकृत रूप हैं ।७६। ये गुण मात्रात्मक क्षेत्रज्ञों में अनुसज्जित होते हैं । जिस तरह से नेत्रों वाले मनुष्य वर्षा काल में मेघ को पृथक् देखा करते हैं ।७७।

पश्यंत्येवं विधाः सिद्धा जीवं दिव्येन चक्षुषा ।
खादतश्चान्नपानानि योनीः प्रविशतस्तथा ॥७८
तिर्यगूर्ध्वमधस्ताच्च धावतोऽपि यथाक्रमम् ।
जीवः प्राणस्तथा लिंगं करणं च चतुष्टयम् ॥७९
पर्यायवाचकैः शब्दैरेकार्थैः सोऽभिलप्यते ।
व्यक्ताव्यक्तप्रमाणोऽयं स वै भुंक्ते तु कृत्स्नशः ॥८०
अव्यक्तानुग्रहांतं च क्षेत्रज्ञाधिष्ठितं च यत् ।
एवं ज्ञात्वा शुचिर्भूत्वा ज्ञानाद्वै वि मुच्यते ॥८१
नष्टं चैव यथातत्वं तत्वानां तत्त्वदर्शने ।
यथेष्टं परिनिर्याति भिन्ने देहे सुनिवृते ॥८२
भिद्यते करणं चापि ह्यव्यक्तज्ञानिनस्ततः ।
मुक्तो गुणशरीरेण प्राणाद्येन तु सर्वशः ॥८३
नान्यच्छरीरमादत्ते दग्धे बीजे यथांकुरः ।
ज्ञानी च सर्वसंसाराविज्ञशारीरमानसः ॥८४

इसी प्रकार के सिद्ध पुरुष जीव को दिव्य चक्षुके द्वारा देखा करते हैं तथा उनको जो अन्न को खाते हैं और पान किया करते हैं तथा योनियों में प्रवेश किया करते हैं ।७८। ऊपर-नीचे और तिरछा दौड़ता हुआ भी जो क्रम के ही अनुरूप उसका धावन होता है उस दशा में भी उसके जीव-प्राण-लिङ्ग और करण—ये चार वस्तुएँ विद्यमान हैं ।७९। ये चारों पर्याय वाचक अर्थात समानार्थक हैं तो भी एकार्थ वाले शब्दों से वह अभिलषित होता है । व्यक्त और अव्यक्त प्रमाण वाला यह है और वह पूर्णतया भोगता है ।८०। अव्यक्त के अनुग्रह के अन्त वाला है और जो क्षेत्रज्ञ में अधिष्ठित है । इस प्रकार से ज्ञान प्राप्त करके शुचि होकर ज्ञान से ही निश्चित रूप से विमुक्ति को प्राप्त हुआ करता है ।८१। तत्वों के दर्शन में तत्व जैसे ही नष्ट होता है फिर भिन्न सुनिवृंत देह में जैसा भी इष्ट हो वह परिनिर्याण किया करता है ।८२। फिर अव्यक्त ज्ञानी का करण भी विद्यमान होता है । वह प्राणादि गुण शरीर से सब प्रकार से मुक्त ही हो जाता है ।८३। फिर वह अन्य शरीर को ग्रहण नहीं किया करता है क्योंकि जैसे जब बीज ही दग्ध हो जाता है

तो बीजांकुर भी समाप्त हो जाया करता है और ज्ञानी जो है वह तो सर्ग संसाराविद्ध शारीर मानस होता है अर्थात् सभी संसार के द्वारा उसका शरीर और मन अविद्ध ही रहता।८४।

ज्ञानाच्चतुर्दशो बुद्धः प्रकृतिस्थो निवर्त्तते।
प्रकृति सत्यमित्याहुर्विकारोऽनृतमुच्यते ॥८५
असद्भावोऽनृतं ज्ञेयं सद्भावः सत्यमुच्यते।
अनामरूपं क्षेत्रज्ञनामरूपं प्रचक्षते ॥८६
यस्मात्क्षेत्रं विजानाति तस्मात्क्षेत्रज्ञ उच्यते।
क्षेत्रं प्रत्ययते यस्मात्क्षेत्रज्ञः शुभ उच्यते ॥८७
क्षेत्रज्ञः स्मर्यते तस्मात्क्षेत्रं तज्ज्ञैर्विभाष्यते।
क्षेत्रं त्वत्प्रत्ययं दृष्टं क्षेत्रज्ञः प्रत्ययः सदा ॥८८
क्षपणात्कारणाच्चैव क्षतत्राणात्तथैव च।
भोज्यत्वविषयत्वाच्च क्षेत्रं क्षेत्रविदो विदुः ॥८९
महदाद्यं विशेषांतं सवैरूप्यं विलक्षणम्।
विकारलक्षणं तद्धि सोऽक्षरः क्षरमेति च ॥९०
तमेवानुविकारं तु यस्माद्धि क्षरते पुनः।
तस्माच्च कारणाच्चैव क्षरमित्यभिधीयते ॥९१

ज्ञान से चार प्रकार की दशा से बद्ध प्रकृति में स्थित निवृत्त हो जाता है। यह प्रकृति तो सत्य ही कही जाती है इस से जो भी विकार होता है वही मिथ्या बताया जाया करता है।८५। जो असद्भाव वाला है वही अनृत समझना चाहिए और जो सद्भाव होता है वह सत्य कहा जाता है। यह क्षेत्रज्ञ नाम और रूप से रहित होता है। यह तो क्षेत्रज्ञ इसी नाम से बोला जाया करता है।८६। क्षेत्रज्ञ इसका नाम इसीलिए होता है कि यह क्षेत्र को जानता है। जिस कारण से यह क्षेत्र को विश्वस्त मानता है इसी से क्षेत्रज्ञ परम शुभ कहा जाता है।८७। क्षेत्रज्ञ का स्मरण किया जाता है इसी कारण से उसके ज्ञाताओं के द्वारा विभास्यमान होता है। क्षेत्र तो त्वत्प्रत्यय वाला देखा गया है और सदा ही क्षेत्रज्ञ प्रत्यय होता है।८८। अब यह बताते हैं कि क्षेत्र यह नाम इसका क्यों हुआ है—इसका क्षयन होता है

एक तो यही कारण है और दूसरा कारण यह है कि क्षत का त्राणात्व वाला है। यह भोज्यत्व वाला है तथा इसमें विषय भी होता है। इसी लिये क्षेत्र के ज्ञाता इसको क्षेत्र कहा करते हैं।८९। महत तत्व से आरम्भ करके अर्थात् महत् तत्व जिसमें आदि है और विशेष के अन्त पर्यन्त में एक परम विलक्षण विरूपता रहा करती है। वह विकार का लक्षण है किन्तु वह अक्षर होता है और क्षरता को प्राप्त हो जाता है।९०। कारण यह है कि उसी अनुविकार को फिर क्षरित करता है और उसी कारण से यह क्षर—इस नाम से पुकारा जाया करता है।९१।

संसारे नरकेभ्यश्च त्रायते पुरुषं च यत्।
दुःखत्राणात्पुनश्चापि क्षेत्रमित्यभिधीयते ॥९२
सुखदुःखमहंभावाद्भोज्यमित्यभिधीयते।
अचेतनत्वाद्विषयस्तद्विधर्मा विभुः स्मृतः ॥९३
न क्षीयते न क्षरति विकारप्रसृतं तु तत्।
अक्षरं तेन वाप्युक्तमक्षीणत्वात्तथैव च ॥९४
यस्मात्पुर्यनुशेते च तस्मात्पुरुष उच्यते।
पुरप्रत्ययिको यस्मात्पुरुषेत्यभिधीयते ॥९५
पुरुषं कथयस्वाथ कथितोऽज्ञैर्विभाष्यते।
शुद्धो निरंजनाभासो ज्ञाता ज्ञानविवर्जितः ॥९६
अस्तिनास्तीति सोऽन्यो वा बद्धो मुक्तो गतः स्थितः।
नैहेतुकात्वनिर्देश्यादहस्तस्मिन्न विद्यते ॥९७
शुद्धत्वान्न तु दृश्यो वै द्रष्टृत्वात्समदर्शनः।
आत्मप्रत्ययकारित्वादन्यूनं वाप्यहेतुकम् ॥९८

जो इस परमाधिक दुःखमय संसार में नरकों से पुरुष का परित्राण किया करता है और फिर भी दुःखों के त्राण से इसका नाम क्षेत्र यह कहा जाता है।९२। इसमें सुख-दुःख और अहंभाव विद्यमान रहता है अतएव इसको भोज्य—इस नाम से भी पुकारा जाया करता है। इसमें अचेतना होती है इसीलिए यह विषय है और उससे विधर्मा होता है अतएव यह न तो क्षीण होता है और न इसका क्षरण ही होता है और विकार से प्रसृत

के द्वारा उस प्रकार से आत्मा को दिया करता है। वहाँ पर प्रकृति में कारण में अपनी आत्मा में ही उपस्थित होता है ।१०१। अस्ति—नास्ति—इससे वह अन्य है अथवा यहाँ पर अथवा परलोक में फिर होता है। एकत्व है अथवा पृथक्त्व है—क्षेत्रज्ञ है अथवा पुरुष है ।१०२। वह आत्मा है या निरात्मा है। चेतन है या अचेतन है। वह कर्त्ता है या अकर्त्ता है—वह भोक्ता है या भोज्य ही है ।१०३। जहाँ पर पहुँच कर फिर वहाँ से वापिस नहीं लौटता है क्षेत्रज्ञ निरञ्जन है। उसका कोई भी आख्यान नहीं होता है इसलिये वह अवाच्य है और वाद के हेतुओं के द्वारा अग्राह्य है ।१०४। चिन्तन न करने के योग्य होने से वह प्रतर्क के योग्य नहीं है। अवार्य योग्य नहीं है और मन के साथ भी अप्राप्त है ।१०५।

क्षेत्रज्ञे निर्गुणे शुद्धे शांते क्षीणे निरंजने ।
व्यपेतसुखदुःखे च निरुद्धे शांतिमागते ॥१०६
निरात्मके पुनस्तस्मिन्वाच्यावाच्यं न विद्यते ।
एतौ संहारविस्तारौ व्यक्ताव्यक्तौ ततः पुनः ॥१०७
सृज्यते ग्रसते चैव व्यक्तौ पर्यवतिष्ठते ।
क्षेत्रज्ञाधिष्ठितं सर्वं पुनः सर्गे प्रवर्त्तते ॥१०८
अधिष्ठानं प्रपद्येत तस्यांते बुद्धिपूर्वकम् ।
साधर्म्यवैधर्म्यकृतः संयोगो विदितस्तयोः ।
अनादिमांश्च संयोगो महापुरुषजः स्मृतः ॥१०९
यावच्च सर्गप्रति सर्गकालस्तावज्जगत्तिष्ठति संनिरुध्य ।
पूर्वं हि तस्यैव च बुद्धिपूर्वं प्रवर्त्तते तत्पुरुषार्थमेव ॥११०
एषा निसर्गप्रतिसर्गपूर्वा प्राधानिकी चेश्वरकारिता वा ।
अनाद्यनंता ह्यभिमानपूर्वकं वित्रासयन्ती जगदभ्युपैति ॥१११
इत्येष प्राकृतः सर्गस्तृतीयो हेतुलक्षणः ।
उक्तो ह्यस्मिंस्तदात्यंतं कालं ज्ञात्वा प्रमुच्यते ॥११२
इत्येष प्रतिसर्गो वस्त्रिविधः कीर्त्तितो मया ।
विस्तरेणानुपूर्व्या च भूयः किं वर्त्तयाम्यहम् ॥११३

क्षेत्रज्ञ के निर्गुण—शुद्ध—शान्त—क्षीण—निरञ्जन—अपेत अर्थात् रहित सुख दुःख वाले—निरुद्ध और शान्ति को प्राप्त होने वाले और निरात्मक होने पर फिर उसमें वाच्य और अवाच्य नहीं रहता है। ये दो संहार और विस्तार और फिर व्यक्त और अव्यक्त होते हैं।१०६-१०७। सृजन किया जाता है ग्रसन होता है और व्यक्त पर्यवस्थित होते हैं। सब क्षेत्रज्ञ में अधिष्ठित फिर सर्ग में प्रवृत्त हुआ करता है।१०८। उसके अन्त में बुद्धि पूर्वक अधिष्ठान को प्रपन्न हो जाता है। उन दोनों का संयोग साधर्म्य और वैधर्म्य के द्वारा किया हुआ विदित होता है। महापुरुष से समुत्पन्न संयोग अनादिमान् कहा गया है।१०९। और जबतक सर्ग और प्रतिसर्ग काल होता है तब तक जगत संनिरुद्ध होकर स्थित रहा करता है और उसके पूर्व में ही बुद्धिपूर्वक उसका पुरुषार्थ ही प्रवृत्त होता है।११०। यह विसर्ग और प्रतिसर्ग पूर्व वाली प्राधानिकी अर्थात् प्रधान (प्रकृति) के द्वारा की हुई या ईश्वर की कराई हुई है। यह ऐसी है जिसका न आदि है और न अन्त ही है और यह अभिमान के साथ इस जगत को नित्रस्त करती हुई ही प्राप्त हुआ करती है।१११। यही प्राकृत तीसरा सर्ग है जो हेतु के लक्षण वाला है। जो इसमें कहा गया है तब अत्यन्त काल का ज्ञान प्राप्त करके ही प्राणी प्रसक्त हुआ करता है।११२। यही प्रतिसर्ग है जो तीन प्रकार का होता है जिसका वर्णन मैंने आपके सामने किया है। मैंने इसका विस्तार से और आनुपूर्वी से अर्थात् क्रम से आदि से अन्त पर्यन्त कह दिया है। अब फिर मैं क्या बताऊँ—यह बतलाइये।११३।

—×—

ब्रह्माणवर्त वर्णन

ऋषय ऊचुः—

श्रुतं सुमहदाख्यानं भवता परिकीर्त्तितम्।
प्रजानां मनुभिः सार्द्धं देवानामृषिभिः सह ॥१
पितृगंधर्वभूतानां पिशाचोरगरक्षसाम्।
दैत्यानां दानवानां च यक्षाणामेव पक्षिणाम् ॥२
अप्यद्भुतानि कर्माणि विविधा धर्मनिश्चयाः।
विचित्राश्च कथायोगा जन्म चाग्र्यमनुत्तमम् ॥३

पूर्ववत्स तु विज्ञेयः समासात्तन्निबोधत ।
दृष्टेनैवानुमेयं च तर्कं वक्ष्यामि युक्तितः ॥१०
यस्माद्वाचो निवर्त्तन्ते ह्यप्राप्य मनसा सह ।
अव्यक्तवत्परोक्षत्वाद्गहनं तद्दुरासदम् ॥११
विकारैः प्रतिसंसृष्टो गुणः साम्येन वर्त्तते ।
प्रधानं पुरुषाणां च साधर्म्येणैव तिष्ठति ॥१२
धर्माधर्मौ प्रलीयेते ह्यव्यक्ते प्राणिनां सदा ।
सत्वमात्रात्मको धर्मो गुणे सत्वे प्रतिष्ठितः ॥१३
तमोमात्रात्मको धर्मो गुणे तमसि तिष्ठति ।
अविभागेन तावेतौ गुणसाम्ये स्थितावुभौ ॥१४

इस सर्ग की प्रवृत्ति होने की क्या रीति होती है—यही अब हम पूछते हैं उसको आप कृपा करके हमको बतला दीजिए इस तरह से अब लोम हर्षण सूतजी से पूछा गया था तो फिर उन्होंने पुनः उस सर्ग की जैसे प्रकृति हुआ करती है उसकी व्याख्या करने का उपक्रम किया था और उन्होंने कहा था कि यहाँ पर जैसे यह सर्ग प्रवृत्त होगा—उसको मैं आप लोगों को बतलाऊँगा ।८-९। हे वत्स ! यह सब पूर्व की ही भाँति समझ लेना चाहिए। और संक्षेप से अब भी समझ लो । जो भी दृष्ट है उसी से अनुमान कर लेना चाहिए। मैं युक्ति से तर्क बतलाऊँगा ।१०। वह ऐसा विषय है जहाँ पर वाणी की पहुँच नहीं हैं और मन भी वहाँ तक नहीं पहुँचता है । वह अव्यक्त के ही समान परोक्ष है अतएव बहुत ही गहन और दुरासद है ।११। विकारों के साथ प्रति संसृष्ट होता हुआ गुण समता से रहता है । प्रधान पुरुषों के साधर्म्य से ही स्थित रहा करता है ।१२। प्राणियों के सदा धर्म और अधर्म अव्यक्त में प्रलीन हो जाते हैं । उस समय में सत्व मात्रात्मक अर्थात् केवल सत्व स्वरूप वाला धर्म सत्वगुण में प्रतिष्ठित होता है ।१३। तमो मात्रात्मक धर्म तमोगुण में प्रतिष्ठित होता है । ये दोनों ही बिना ही विभाग के गुणों की समता में स्थित रहते हैं ।१४।

सर्वं कार्यं बुद्धिपूर्वं प्रधानस्य प्रपत्स्यते ।
अबुद्धिपूर्वं क्षेत्रज्ञ अधिष्ठास्यति तान्गुणान् ॥१५

तत्कथ्यमानमस्माकं भवता श्लक्ष्णया गिरा ।
मनः कर्णसुखं सूते प्रीणात्यमृतसन्निभम् ॥४

एवमाराध्य ते सूतं सत्कृत्य च महर्षयः ।
पप्रच्छुः सत्त्रिणः सर्वे पुनः सर्गप्रवर्त्तनम् ॥५

कथं सूत महाप्राज्ञ पुनः सर्गः प्रपत्स्यते ।
बन्धेषु संप्रलीनेषु गुणसाम्ये तमोमये ॥६

विकारेष्वविसृष्टेषु ह्यव्यक्ते चात्मनि स्थिते ।
अप्रवृत्ते ब्रह्मणा तु सहसा योज्यगैस्तदा ॥७

ऋषियों ने कहा—आपके द्वारा वर्णित यह महान आख्यान हमने सुन लिया है। इसमें मनुओं के साथ प्रजाओं का तथा ऋषियों के सहित देवों का—पितरों का—गन्धर्वों का—भूतों का—पिशाच—उरग और राक्षसों का—दैत्यों का—दानवों का—यक्षों का और पक्षियों का वर्णन है। इन सबके अत्यन्त अद्भुत कर्म हैं तथा धर्म आदि का भी निश्चय है और बहुत ही विचित्र कथा के योग हैं और अत्युत्तम तथा श्रेष्ठजन्म हैं। यह सभी का हमने भली श्रवण कर लिया है।१-३। आपने जो भी वर्णन किया है वह बहुत ही श्रुति प्रिय सुन्दर वाणी के द्वारा किया है और हमारे मन और कानों को सुख देने वाला है तथा अमृत के ही समान प्रीणन करने वाला है।४। उन सब महर्षियों ने सूतजी की इस रीति से आराधना करके उनका बड़ा ही सत्कार किया था। फिर उन सत्र करने वालों ने सबने पुनः सर्ग के प्रवर्तन के विषय में उनसे प्रश्न किया था।५। उन्होंने कहा था—हे सूतजी ! आप तो महान् पण्डित हैं। अब हमको यही बतलाइये कि फिर इस सर्ग का प्रवर्त्तन किस प्रकार से होगा। जब ये सभी बन्धन प्रलीन हो जाते हैं और प्रकृति के तीनों गुणों में साम्यावस्था होती है और यह सर्वत्र अन्धकार से परिपूर्ण होता है। समस्त विकार अविसृष्ट होते हैं तथा अव्यक्त आत्मा में स्थित होता है। उस समय में योज्यगों के द्वारा सहसा ब्रह्माजी के अप्रवृत्त होने पर यह सर्ग कैसे होता है।६-७।

कथं प्रपत्स्यते सर्गस्तन्नः प्रब्रूहि पृच्छताम् ।
एवमुक्तस्ततः सूतस्तदाऽसौ लोमहर्षणः ॥८

व्याख्यातुमुपचक्राम पुनः सर्गप्रवर्त्तनम् ।
अत्र वो वर्त्तयिष्यामि यथा सर्गं प्रपत्स्यते ॥९

एवं तानभिमानेन प्रपत्स्यति पुनस्तदा ।
यदा प्रवर्त्तितव्यं तु क्षेत्रक्षेत्रज्ञयोर्द्वयो: ।।१६
भोज्यभोक्तृत्वसंबंधा: प्रपत्स्यंते च तावुभौ ।
तस्मादक्षरमव्यक्तं साम्ये स्थित्वा गुणात्मकम् ।।१७
क्षेत्रज्ञाधिष्ठितं तत्र वैषम्यं भजते तु तत् ।
तत: प्रपत्स्यते व्यक्तं क्षेत्रक्षेत्रज्ञयोर्द्वयो: ।।१८
क्षेत्रज्ञाधिष्ठितं सत्त्वं विकारं जनयिष्यति ।
महदाद्यं विशेषांतं चतुर्विंशगुणात्मकम् ।।१९
क्षेत्रज्ञस्य प्रधानस्य पुरुषस्य प्रवर्त्स्यंत: ।
आदिदेव: प्रधानस्यानुग्रहाय प्रचक्षते ।।२०
अनाद्यौ बपमुत्पादौ उभौ सूक्ष्मौ तु तौ स्मृतौ ।
अनादिसंयोगयुतौ सर्वं क्षेत्रज्ञमेव च ।।२१

यह सभी कार्य बुद्धिपूर्वक प्रधान का ही होगा । यह क्षेत्रज्ञ अबुद्धि पूर्वक उन गुणों में अधिष्ठित होगा ।१५। इस प्रकार से उस समय में फिर अभिमान के साथ उनको प्राप्त होगा । जिस समय में क्षेत्र और क्षेत्रज्ञ इन दोनों का प्रवृत होना चाहिए ।१६। वे दोनों ही को भोज्य और भोक्तृत्व के सम्बन्ध प्राप्त होंगे । इससे गुणात्मक अक्षर अव्यक्त समता में स्थित होता है ।१७। वहाँ पर वह क्षेत्रत्र में अधिष्ठित विषमता को प्राप्त होता है । फिर दोनों क्षेत्र और क्षेत्रज्ञ को व्यक्त प्राप्त होगा ।१८। क्षेत्रज्ञ में अधिष्ठित सत्व विकार को उत्पन्न कर देगा । वह विकार महत् तत्व से लेकर विशेष के अन्त तक चौबीस गुणों के स्वरूप वाला है ।१९। क्षेत्रज्ञ का प्रधान का और पुरुष का प्रवृत्त होंगे । जो आदि देव हैं वे प्रधान के ही ऊपर अनुग्रह करने वाले कहे जाते हैं । वे दोनों अनादि और श्रेष्ठ उत्पाद तथा सूक्ष्म कहे गये हैं ।२०-२१।

अबुद्धिपूर्वकं युक्तमशक्तौ तु वरौ तदा ।
अप्रत्ययममोघं च स्थितावुदकमत्स्यवत् ।।२२
प्रवृत्तपूर्वौ तौ पूर्वं पुन: सर्वं प्रपत्स्यते ।
अज्ञा गुणै: प्रवर्त्तंते रज: सत्वतमोऽभिधै: ।।२३

प्रवृत्तिकाले रजसाभिपन्नो महत्वभूतादिविशेषतां च ।
विशेषतां चेंद्रियतां च याति गुणावसानौषधिभिर्मनुष्यः ।।२४
सत्याभिध्यायिनस्तस्य ध्यायिनः सन्निमित्तकम् ।
रजः सत्त्वतमौव्यक्ता विधुर्माणः परस्परम् ।।२५
आद्यंतं वै प्रपत्स्यंते क्षेत्रमज्ञाम्बु सर्वशः ।
संसिद्धकार्यकरणा उत्पद्यंतेऽभिमानिनः ।।२६
सर्वे सत्त्वाः प्रपद्यंते ह्यव्यक्तात्पूर्वमेव च ।
प्राक्सृतौ ये त्वसुवहाः साधकाश्चाप्यसाधकाः ।।२७
असंशांतास्तु ते सर्वे स्थानप्रकरणैः सह ।
कार्याणि प्रतिपत्स्यंते उत्पत्स्यन्ते पुनः पुनः ।।२८

उस समय में अबुद्धि पूर्वक युक्त है और अशक्त पर हैं यह प्रत्यय रहित और अमोघ हैं और जल में मछली के ही समान स्थित हैं ।२२। पूर्व में वे दोनों ही पूर्व की प्रवृत्ति वाले हैं फिर सर्व को प्राप्त हो जायगा । जो अज्ञ हैं वे रज-सत्व और तम नामों वाले गुणों से प्रवृत्त हुआ करते हैं ।२३। यह मनुष्य प्रवृत्ति के समय से रजोगुण से अभिपन्न होता है और महत्वभूत आदि की विशेषता और इन्द्रियतता की विशेषता को गुणामुखी के और निमित्तों के साथ ध्यायी के ये रज-सत्व और तम पर स्वर में विधर्मी होते हुए व्यक्त होते हैं ।२४-२५। आद्यन्त सभी ओर अज्ञाम्बु क्षेत्र में प्राप्त हो जांयगे । फिर संसिद्ध कार्य और करण वाले अभिमानी उत्पन्न हुआ करते हैं ।२६। सभी सत्व अव्यक्त से पूर्व ही प्रसन्न होते हैं । पूर्व में होने वाली सृति में जो भी प्राणधारी हैं वे चाहे साधक होवे या असाधक होवे ।२७। वे सभी स्थान प्रकरणों के साथ असंशान्त हैं । वे सब कार्यों को प्राप्त करेंगे और बार-बार उत्पन्न होंगे ।२८।

गुणमात्रात्मकावेव धर्माधर्मौ परस्परम् ।
आरप्सेते हि चान्योन्यं वरेणानुग्रहेण वा ।।२९
शवस्तुल्यप्रसृष्टचथ सर्गादौ याति विक्रियाम् ।
गुणास्तं प्रतिधीयंते तस्मात्तस्य रोचते ।।३०

गुणास्ते यानि कर्माणि प्राक्सृष्ट्यां प्रतिपेदिरे ।
तान्येव प्रतिपद्यंते सृज्यमानाः पुनः पुनः ॥३१
हिंस्राहिंस्रे मृदुक्रूरे धर्माधर्मावृतानृते ।
तद्भाविताः प्रपद्यंते तस्मात्तत्तस्य रोचते ॥३२
महाभूतेषु नानात्वमिद्रियार्थेषु मूर्त्तिषु ।
विप्रयोगश्च भूतानां गुणेभ्यः संप्रवर्त्तते ॥३३
इत्येष वो मया ख्यातः पुनः सर्गः समासतः ।
समासादेव वक्ष्यामि ब्रह्मणोऽथ समुद्भवम् ॥३४
अव्यक्तात्कारणात्तस्मान्नित्यात्सदसदात्मकात् ।
प्रधानपुरुषाभ्यां तु जायते च महेश्वरः ॥३५

धर्म और अधर्म परस्पर में केवल गुण के ही स्वरूप वाले होते हैं और वे एक दूसरे के वर के द्वारा या अनुग्रह के द्वारा आरम्भ हुआ करते हैं ।२६। इसके उपरान्त तुल्य प्रसृष्टि शव सर्ग के आदि काल में विक्रिया को प्राप्त होता है । गुण इस कारण से उसका प्रतिधान किया करते हैं वह उसको अच्छा लगता है ।३०। वे गुण जो भी कर्म कर्म पूर्व की सृष्टि में प्रतिपन्न हुए थे वे ही बार-बार सृज्यमान होते हुए प्रतिपन्न हुआ करते हैं ।३१। हिंस्र-अहिंस्र, मृदु-क्रूर, धर्म-अधर्म, ऋत-अनृत ये सब जो भी जिसको प्रिय लगता है उसी भाव से भावित होते हुए प्रसन्न हुआ करते हैं ।३२। महाभूतों में अनेक रूपता-इन्द्रियों के विषयों में तथा मूर्त्तियों में अनेक रूपता-इन्द्रियों के विषयों में तथा मूर्त्तियों में अनेकता होती है और प्राणियों के विप्रयोग गुणों से ही प्रवृत्त हुआ करते हैं ।३३। मैंने यह सर्ग आपको बहुत ही संक्षेप से बता दिया है । अब ब्रह्माजी का उद्भव भी मैं बहुत संक्षेप से वर्णन करूँगा ।३४। उसी अव्यक्त कारण से जो सत् और असत् स्वरूप वाला है । प्रधान से और पुरुष से महेश्वर जन्म ग्रहण किया करते हैं ।३५।

स पुनः संभावयिता जायते ब्रह्मसंज्ञितः ।
सृजते स पुनर्लोकानभिमानगुणात्मकान् ॥३६
अहंकारस्तु महतस्तस्माद्भूतानि चात्मनः ।

युगपत्संप्रवर्त्तंते भूतान्येवेंद्रियाणि च ।।३७
भूतभेदाश्च भूतेभ्य इति सर्गः प्रवर्त्तते ।
विस्तरावयवस्तेषां यथाप्रज्ञं यथाश्रुतम् ।
कीर्त्यंतो वा यथापूर्वं तथैवाप्युपधार्यताम् ।।३८
एतच्छ्रुत्वा नैमिषेयास्तदानीं लोकोत्पत्ति सुस्थितिं
चाप्ययं च ।
तस्मिन्सत्रेऽवभृथं प्राप्य शुद्धाः पुण्यं लोकमृषयः
प्राप्नुवंति ।।३९
यथा यूयं विधिना देवतादीनिष्ट्वा चैवावभृथं प्राप्य शुद्धाः ।
त्यक्त्वा देहानायुषोंऽते कृतार्थाः पुण्यं लोकं प्राप्य
मोदध्वमेवम् ।।४०
एते ते नैमिषेया वै इष्ट्वा स्पृष्ट्वा च वै तदा ।
जग्मुश्चावभृथस्नाताः स्वर्गं सर्वे तु सत्रिणः ।।४१
विप्रास्तथा यूयमपि इष्ट्वा बहुविधैर्मखैः ।
आयुषोंऽते ततः स्वर्गं गंतारः स्थ द्विजोत्तमाः ।।४२

वे ही फिर सम्मान करने वाला ब्रह्म के नाम वाले हो जाते हैं। और फिर यही ब्रह्माजी अभिमान और गुणात्मक लोकों का सृजन करते हैं।३६। महत् तत्व से अहंकार की उत्पत्ति होती है और फिर अहंकार से भूतों का उद्भव हुआ करता है। ये भूत और इन्द्रियाँ एक ही साथ सम्प्रवृत्त हुआ करते हैं।३७। इन भूतों से अन्य भूतों के भेद होते हैं—इस तरह से सर्ग प्रवृत्त हुआ करता है। उनका विस्तार और अवयव जैसी प्रज्ञा है और जैसा भी सुना है मैंने आपको पूर्व में बता दिया है उसी प्रकार से इनका अवधारण आप कर लीजिये।३८। इसको नैमिष क्षेत्र में रहने वालों ने श्रवण करके जो उस समय में लोकों की उत्पत्ति और संहार कहा गया था उस सत्रमें अवभृथ को प्राप्त करके शुद्ध हुए ऋषिगण—पुण्य लोक को प्राप्त हो जाते हैं।३९। जिस रीति से आप लोग विधि पूर्वक यजन करके और देव आदि का अर्चन करके तथा अवभृथ को प्राप्त करके शुद्ध हुए हो। फिर आयु के समाप्त होने पर शरीरों का त्याग करके कृतार्थ हुई हैं और

परम पुण्यलोक को प्राप्त करके इस प्रकार से आनन्दित हो रहे हैं ।४०। ये वे भी नैमिषेय अर्थात् नैमिष क्षेत्र में रहने वाले सभी देखकर को और स्पर्श करके उस समय में अवभृथ स्नान किये हुए सबके सब स्वर्गलोक को गमन कर गये थे ।४१। हे विप्रो ! उसी प्रकार से आप लोगों ने भी बहुत प्रकार के यज्ञों के द्वारा यजन किया है । हे उत्तम द्विजगणो ! फिर जब आपकी आयु का अवसान होगा तब आप भी सब स्वर्ग में गमन कर जांयगे ।४२।

प्रक्रिया प्रथमः पादः कथायास्तु परिग्रहः ।
अनुषंग उपोद्घात उपसंहार एव च ।।४३
एवमेव चतुः पादं पुराणं लोकसम्मतम् ।
उवाच भगवान्सक्षाद्वायुर्लोकहिते रतः ।।४४
नैमिषे सत्रमासाद्य मुनिभ्यो मुनिसत्तम ।
तत्प्रसादं च संसिद्धं भूतोत्पत्तिलयान्वितम् ।।४५
प्राधानिकीमिमां सृष्टिं तथैवेश्वरकारिताम् ।
सम्यग्विदित्वा मेधावी न मोहमधिगच्छति ।।४६
इदं यो ब्राह्मणो विद्वानितिहासं पुरातनम् ।
शृणुयाच्छ्रावयेद्वापि तथाऽध्यापयतेऽपि च ।।४७
स्थानेषु स महेंद्रस्य मोदते शाश्वतीः समाः ।
ब्रह्मसायुज्यगो भूत्वा ब्रह्मणा सह मोदते ।।४८
तेषां कीर्तिमतां कीर्ति प्रजेशानां महात्मनाम् ।
प्रथयन्पृथिवीशानां ब्रह्मभूयाय गच्छति ।।४९

इस महा पुराण में चार पाद हैं—सर्व प्रथम प्रक्रिया है जो कि प्रथम पाद है—फिर कथा का परिग्रह है । फिर अनुष्वंग है और अन्त में उपोद्घात तथा उपसंहार है ।४३। इसी रीति से चार पादों वाला यह पुराण लोक सम्मत है । इस पुराण को लोकों के हित में रति रखने वाले भगवान् वायु देव ने ही साक्षात् रूप से इसको कहा है ।४४। हे श्रेष्ठतम मुने ! नैमिष क्षेत्र में एक सत्र (यज्ञ) को प्राप्त करके मुनिगण एकत्रित हुए थे तभी उनसे कहा उसका प्रसाद संसिद्ध हो गया जो भूतों की उत्पत्ति और तप से संयुत है ।४५। इस प्राधिनिकी अर्थात् प्रधान के द्वारा की हुई तथा ईश्वर के द्वारा

करायी हुई सृष्टि को भली भाँति जानकर मेधावी पुरुष कभी भी मोह को प्राप्त नहीं होता है ।४६। जो भी कोई विद्वान विप्र इस ब्रह्माजी के परम पुरातन इतिहास का श्रवण करता है अथवा श्रवण कराता है और इसका ध्यान भी करता है वह महेन्द्र देव के स्थानों में अनन्त वर्षों पर्यन्त आनन्द प्राप्त किया करता है और ब्रह्म के सायुज्य को प्राप्त करके ब्रह्म के साथ आनन्दित होता है ।४७-४८। उन प्रजाओं के स्वामी महात्माओं तथा कीर्त्तिमानों की कीर्त्ति को जो कि इस पृथिवी के ईश हैं संसार में प्रथित करके ब्रह्म के ही समान हो जाता है ।४९।

धन्यं यशस्यमायुष्यं पुण्यं वेदैश्च संमितम् ।
कृष्णद्वैपायनेनोक्तं पुराणं ब्रह्मवादिना ।।५०
मन्वन्तरेश्वराणां च यः कीर्तिं प्रथयेदिमाम् ।
देवतानामृषीणां च भूरिद्रविणतेजसाम् ।।५१
स सर्वैर्मुच्यते पापैः पुण्यं च महदाप्नुयात् ।
यश्चेदं श्रावयेद्विद्वान्सदा पर्वणि पर्वणि ।।५२
धूतपाप्मा जितस्वर्गो ब्रह्मभूयाय कल्पते ।
अक्षयं सर्वकामीयं पितृंस्तच्चोपतिष्ठते ।
यस्मात्पुरा ह्यणंतीदं पुराणं तेन चोच्यते ।।५४
निरुक्तमस्य यो वेद सर्वपापैः प्रमुच्यते ।
तथैव त्रिषु वर्णेषु ये मनुष्या अधीयते ।।५५
इतिहासमिमं श्रुत्वा धर्माय विदधे मतिम् ।
यावंत्यस्य शरीरेषु रोमकूपानि सर्वशः ।।५६

यह पुराण परम धन्य है—यश की वृद्धि करने वाला है—आयु के बढ़ाने वाला—परम स्मरूप और वेदों की समानता रखने वाला है। यह पुराण ब्रह्मवादी श्रीकृष्ण द्वैपायन ने ही कहा है ।५०। जो मनुष्य इस मन्वन्तरों की कीर्त्ति को प्रथित करता है तथा देवों की और भूरि द्रविण तेज वाले ऋषियों की कीर्त्ति को फैलाता है वह सभी प्रकार के पापों से छूट जाता है और महान पुण्य का लाभ प्राप्त किया करता है और जो विद्वान प्रत्येक पर्व पर इसका श्रवण कराता है और इस अन्तिम पाद को श्राद्ध में ब्राह्मणों को सुनाता है वह अक्षय और सर्वकामनाओं की पूर्ति करने वाला

पितृगणों के समीप में उपस्थित होता है। कारण यही है कि पहिले यह उसी के द्वारा कहा जाता है ।५१-५४। जो पुरुष इसकी निरुक्ति को जानता है वह सभी पापों से मुक्त हो जाता है। उसी भाँति तीनों वर्णों में जो मनुष्य इसको पढ़ते हैं इस इतिहास का श्रवण करके धर्म की बुद्धि हो जाती है और शरीर में जितने भी करोड़ रोमों के छिद्र हैं उतने ही वर्ष वह सर्ग में निवास करता है ।५५-५६।

तावत्कोटिसहस्राणि वर्षाणि दिवि मोदते ।
ब्रह्मसायुज्यगो भूत्वा दैवतैः सह मोदते ।।५७

सर्वपापहरं पुण्यं पवित्रं च यशस्वि च ।
ब्रह्मा ददौ शास्त्रमिदं पुराणं मातरिश्वने ।।५८

तस्माच्चोशनसा प्राप्तं तस्माच्चापि बृहस्पतिः ।
बृहस्पतिस्तु प्रोवाच सवित्रे तदनंतरम् ।।५९

सविता मृत्यवे प्राह मृत्युश्चेंद्राय वै पुनः ।
इन्द्रश्चापि वसिष्ठाय सोऽपि सारस्वताय च ।।६०

सारस्वतस्त्रिधाम्नेऽथ त्रिधामा च शरद्वते ।
शरद्वांस्तु त्रिविष्टाय सोंऽतरिक्षाय दत्तवान् ।।६१

चर्षिणे चांतरिक्षो वै सोऽपि त्रय्यारुणाय च ।
त्रय्यारुणाद्धनंजयः स वै प्रादात्कृतंजये ।।६२

कृतंजयात्तृणंजयो भरद्वाजाय सोऽप्यथ ।
गौतमाय भरद्वाजः सोऽपि निर्य्यंतरे पुनः ।।६३

शरीर में स्थित रोम कूपों के समान उतने ही सहस्र वर्षों तक स्वर्ग में आनन्द प्राप्त किया करता है। फिर ब्रह्म के सायुज्य में गमन करने वाला होकर देवों के साथ में परमानन्दित हुआ करता है ।५७। यह महापुराण सभी पापों के हरण करने वाला—पुण्य स्वरूप—पवित्र और यश वाला है। ब्रह्माजी ने ही इस शास्त्र पुराण को वायु देव के लिये दिया था ।५८। उस वासुदेव से इसकी प्राप्ति उशना ने की थी। उशना से देव गुरु बृहस्पति

जी ने प्राप्त किया था। बृहस्पति ने फिर सविता को बताया था।५६। सविता ने मृत्यु को दिया था और मृत्यु ने फिर इन्द्र को दिया था। इन्द्र ने वसिष्ठ मुनि को बताया था और वसिष्ठजी सारस्वत को दिया था।५६-६०। सारस्वत ने त्रिधामा को दिया था और त्रिधामा ने शरद्वान् को दिया था। शरद्वान् ने त्रिविष्ट को दिया और उसने अन्तरिक्ष को दिया था।६१। अन्तरिक्ष ने चर्षी को बतलाया और उसने त्र्य्यारुण को दिया था। त्र्य्यारुण ने धनञ्जय को दिया था उसने कृतञ्जय को दिया था।६२। कृतञ्जय से तृणञ्जय को मिला था और इससे भरद्वाज को प्राप्त हुआ था। भरद्वाज ने गौतम को दिया था और उसने फिर निर्य्यन्तर को दिया था।६३।

निर्य्यंतरस्तु प्रोवाच तथा वाजश्रवाय वै।
स ददौ सोमशुष्माय स चादात्तृणबिंदवे ॥६४
तृणबिंदुस्तु दक्षाय दक्षः प्रोवाच शक्तये।
शक्तेः पराशरश्चापि गर्भस्थः श्रुतवानिदम् ॥६५
पराशराज्जातुकर्ण्यस्तस्माद्द्वैपायनः प्रभुः।
द्वैपायनात्पुनश्चापि मया प्राप्तं द्विजोत्तम ॥६६
मया चैतत्पुनः प्रोक्तं पुत्रायामितबुद्धये।
इत्येव वाक्यं ब्रह्मादिकगुरूणां समुदाहृतम् ॥६७
नमस्कार्याश्च गुरवः प्रयत्नेन मनीषिभिः।
धन्यं यशस्यमायुष्यं पुण्यं सर्वार्थसाधकम् ॥६८
पापघ्नं नियमेनेदं श्रोतव्यं ब्राह्मणैः सदा।
नाशुचौ नापि पापाय नाप्यसंवत्सरोषिते ॥६९
नाश्रद्दधानेऽविदुषे नापुत्राय कथंचन।
नाहिताय प्रदातव्यं पवित्रमिदमुत्तमम् ॥७०

निर्य्यन्तर ने वाजश्रव को यह बताया था और उसने सोम शुष्म को दिया था फिर उसने तृण बिन्दु के लिए दिया था।६४। तृण बिन्दु ने दक्ष को दिया था और उसने फिर शक्ति को बताया था। शक्ति से गर्भ में ही स्थित पराशर मुनि ने इसका श्रवण किया था।६५। पराशर से जातुकर्ण्य ने प्राप्त किया था फिर उससे प्रभु द्वैपायन ने प्राप्त किया था। हे द्विजोत्तम!

द्वैपायन मुनि से इस महापुराण को मैंने प्राप्त किया था ।६६। फिर मैंने अमित बुद्धि पुत्र को दिया था। यह इतना वाक्य ब्रह्मा से आदि लेकर गुरु वर्गों का मैंने बता दिया है ।६७। मनीषियों को प्रयत्न से इन गुरु वर्णों के लिए नमस्कार करना चाहिए। यह पुराण यशस्य—आयुष्य—पुण्य और सब अर्थों का साधक है ।६८। यह पापों के हनन करने वाला है। ब्राह्मणों को सदा ही इसका श्रवण करना चाहिए। इस पुराण को जो अशुचि हो—पापी हो तथा जो एक वर्ष से भी कम वास करने वाला हो उसको नहीं बताना चाहिए ।६९। जिसमें इसके प्रति श्रद्धा न हो उसको—अविद्वान् को और पुत्रहीन को भी कभी नहीं बताना चाहिए। यह परम पवित्र तथा उत्तम है अत: जो अपना हित न हो उसको भी नहीं देना चाहिए ।७०।

अव्यक्तं वै यस्य योनिं वदंति व्यक्तं देहं कालमेतं गतिं च।
वह्निर्वक्त्रं चन्द्रसूर्यौ च नेत्रे दिशः श्रोत्रे घ्राणमाहुश्च
वायुम् ।।७१

वाचो वेदा अंतरिक्षं शरीरं क्षितिः पादास्तारका रोमकूपाः।
सर्वाणि द्यौर्मस्तकानि त्वथो वै विद्याश्चैवोपनिषद्यस्य
पुच्छम् ।।७२

तं देवदेवं जननं जनानां यज्ञात्मकं सत्यलोकप्रतिष्ठम्।
वरं वराणां वरदं महेश्वरं ब्रह्माणमादिं प्रयतो नमस्ये ।।७३

जिसकी योनि अव्यक्त है—व्यक्त जिसका देह है—यह काल ही गति है—अग्नि मुख हैं—चन्द्र और सूर्य ही नेत्र हैं—दिशायें जिसके श्रोत्र हैं और वायु घ्राण है ।७१। वाणी जिसकी वेद हैं—अन्तरिक्ष ही शरीर है—क्षिति ही पाद हैं—तारे रोम कूप हैं—द्यौ मस्तक है—विद्या अधोभाग है और उपनिषद् जिसकी कूप है ।७२। उस देवों के भी देव को और जनों के जन्म स्थल को—यज्ञ स्वरूप तथा सत्यलोक में प्रतिष्ठित को—वरों के देने वालों के श्रेष्ठ वर को आदि महेश्वर ब्रह्माजी को प्रणत होकर नमस्कार करता हूँ ।७३।

——

अगस्त्य यात्रा जनार्दन आविर्भाव

श्रीगणेशाय नमः—

अथ श्रीललितोपाख्यान प्रारभ्यते ।

चतुर्भुजे चन्द्रकलावतंसे कुचोन्नते कुङ्कमरागशोणे ।
पुंड्रेक्षुपाशांकुशपुष्पबाणहस्ते नमस्ते जगदेकमातः ॥१
अस्तु नः श्रेयसे नित्यं वस्तु वामाङ्गसुन्दरम् ।
यतस्तृतीयो विदुषां तृतीयस्तु परं महः ॥२
अगस्त्यो नाम देवर्षिर्वेदवेदाङ्गपारगः ।
सर्वसिद्धान्तसारज्ञो ब्रह्मानन्दरसात्मकः ॥३
चचाराद्भुतहेतूनि तीर्थान्यायतनानि च ।
शैलारण्यापगामुख्यान्सर्वाञ्जनपदानपि ॥४
तेषु तेष्वखिलाञ्जंतूनज्ञानतिमिरावृतान् ।
शिश्नोदरपरान्दृष्ट्वा चिन्तयामास तान्प्रति ॥५
तस्य चिन्तयमानस्य चरतो वसुधामिमाम् ।
प्राप्तमासीन्महापुण्यं कांचीनगरमुत्तमम् ॥६
तत्र वारणशैलेन्द्रमेकाग्रनिलयं शिवम् ।
कामाक्षीं कलिदोषघ्नीमपूजयदथात्मवान् ॥७

हे इस जगत् की एक ही जननि ! आपकी सेवा में मेरा सादर प्रणाम निवेदित हैं । आप चार भुजाओं वाली हैं आपके मस्तक में चन्द्रमा की कला का भूषण विद्यमान है—आपके अत्यन्त उन्नत उरोज हैं-आपका वर्ण कुंकुम के राग के सदृश रक्त है—पुण्ड्र-इक्षु, पाश-अंकुश और पुष्पों का बाण आपके करों में सुशोभित है ।१। आपके वाम अङ्ग में परम सुन्दर वस्तु हमारे नित्य ही कल्याण के लिए होवे । जिससे विद्वानों में तीसरे और तृतीय परम तेज विद्यमान है ।२। वह अगस्त्य नाम वाले देवर्षि हैं जो वेदों और वेदाङ्ग शास्त्रों के पारगामी विद्वान् हैं । वे सब सिद्धान्तों के सार के ज्ञाता हैं और ब्रह्मानन्द के रस के ही स्वरूप वाले हैं ।३। अद्भुतता के हेतु स्वरूप तीर्थों का और पवित्र आयतनों का जिन्होंने सञ्चरण किया था

तथा समस्त शैल–अरण्य-नदियाँ आदि प्रमुख स्थलों का एवं जनपदों का भी जिन्होंने परिभ्रमण किया है ।४। उन-उन स्थलों में जहाँ-जहाँ पर उन्होंने परिभ्रमण किया था वहाँ पर सभी जन्तुओं को ज्ञान से शून्य तथा अत्यन्त ही अन्धकार से समन्वित एक केवल उदर पूर्ति तथा काम वासना में परायण देखा था। उन्होंने यह बुरी दशा देखकर उनके विषय में चिन्तन किया था ।५। वे इसी प्रकार से चिन्तन करते हुए संचरण कर रहे थे और इस भूमि पर विचर रहे थे कि उन्हें काञ्ची नगर मिला था जो महान् पुण्यमय और अत्युत्तम था ।६। वहाँ पर इन आत्मवान् अगस्त्यजी ने वारण शैल के स्वामी और एकाग्र ध्यान में तल्लीन भगवान् शिव का तथा कलियुग के दोषों का हनन करने वाली देवी कामाक्षी का अर्चन किया था ।७।

लोकहेतोर्दयार्द्रस्य धीमतश्चिन्तनो मुहुः ।
चिरकालेन तपसा तोषितोऽभूज्जनार्दन ॥८
हयग्रीवां तनुं कृत्वा साक्षाच्चिन्मात्रविग्रहाम् ।
शङ्खचक्राक्षवलयपुस्तकोज्ज्वलबाहुकाम् ॥९
पूरयित्रीं जगत्कृत्स्नं प्रभया देहजातया ।
प्रादुर्बभूव पुरतो मुनेरमिततेजसा ॥१०
तं दृष्ट्वानन्दभरितः प्रणम्य च मुहुर्मुहुः ।
विनयावनतो भूत्वा सन्तुष्टाव जगत्पतिम् ॥११
अथोवाच जगन्नाथस्तुष्टोऽस्मि तपसा तव ।
वरं वरय भद्रं ते भविता भूसुरोत्तम ॥१२
इति पृष्टो भगवता प्रोवाच मुनिसत्तमः ।
यदि तुष्टोऽसि भगवन्निमे पामरजन्तवः ॥१३
केनोपायेन मुक्ताः स्युरेतन्मे वक्तुमर्हसि ।
इति पृष्टो द्विजेनाथ देवदेवो जनार्दनः ॥१४

लोकों के कारण से दया से आर्द्र (पसीजे हुए हृदय वाले)–परमधीमान् और बारम्बार चिन्तन करने वाले उन अगस्त्य मुनि के अधिक समय तक किये हुए तप से भगवान् प्रसन्न हो गये थे ।८। हयग्रीव के शरीर को

धारण करके साक्षात् चित् (ज्ञान) ही के विग्रह वाली और शंख, चक्र, बलय और पुस्तक के धारण करने से समुज्ज्वल बाहुओं वाली तथा अपने देह से समुत्पन्न प्रभा से सम्पूर्ण जगत् जगत् को पूरित करने वाली अपने अपरिमित तेज से मुनि के आगे प्रादुर्भूत हुई थी ।९-१०। उनका दर्शन प्राप्त करके आनन्द से भरे हुए ऋषि ने उनको बारम्बार प्रणाम किया था और विनय से अवनत होकर जगत् के पति की भली भाँति स्तुति की थी ।११। इसके अनन्तर जगन्नाथ प्रभु ने कहा था—हे भूसुरों में श्रेष्ठ ! मैं आपके तप से सन्तुष्ट हो गया हूं आप किसी भी वरदान का वरण करो। तुम्हारा कल्याण होगा ।१२। जय भगवान् के द्वारा इस रीति से पूछा गया तो श्रेष्ठ मुनि ने कहा—हे भगवन् ! यदि परम सन्तुष्ट है तो यही मुझे बतलाइए कि ये पामर जन्तुगण किस उपाय से मुक्त होंगे। जब इस रीति से द्विज के द्वारा पूछा गया था तो देवों के भी देव जनार्दन ने कहा था— ।१३-१४।

एष एव पुरा प्रश्नः शिवेन चरितो मम ।
अयमेव कृतः प्रश्नो ब्रह्मणा तु ततः परम् ।।१५
कृतो दुर्वाससा पश्चाद्भवता तु ततः परम् ।।१६
भवद्भिः सर्वभूतानां गुरुभूतैर्महात्मभिः ।
ममोपदेशो लोकेषु प्रथितोऽस्तु वरो मम ।।१७
अहमादिर्हि भूतानामादिकर्ता स्वयं प्रभुः ।
सृष्टिस्थितिलयानां तु सर्वेषामपि कारकः ।।१८
त्रिमूर्तिस्त्रिगुणातीतो गुणहीनो गुणाश्रयः ।।१९
इच्छाविहारो भूतात्मा प्रधानपुरुषात्मकः ।
एवं भूतस्य मे ब्रह्मंस्त्रिजगद्रूपधारिणः ।।२०
द्विधाकृतमभूद्रूपं प्रधानपुरुषात्मकम् ।
मम प्रधानं यद्रूपं सर्वलोकगुणात्मकम् ।।२१

यह ही प्रश्न बहुत पहिले शिवजी ने मुझसे किया था। इसके पीछे ऐसा ही प्रश्न ब्रह्माजी ने भी किया था ।१५। इसके अनन्तर दुर्वासा मुनि ने यह प्रश्न किया था। इसके बाद में अब आपने भी यह प्रश्न मुझ से किया

है ।१६। यह प्रश्न जो आपने किया है इसका कारण यही है कि आप महान् आत्मा वाले हैं और समस्त प्राणियों के गुरु के ही समान है । लोकों में मेरा उपदेश ही परम प्रसिद्ध वर है ।१७। मैं समस्त प्राणियों में आदि हूँ और मैं ही आदि कर्त्ता प्रभु हूँ जो स्वयं ही हुआ हूँ । इस लोक की सृष्टि-स्थिति और संहार के करने वाला भी सबका मैं ही हूँ ।१८। मैं ही तीन मूर्त्तियाँ वाला हूँ अर्थात् ब्रह्मा-विष्णु और महादेव—ये तीन मूर्त्तियाँ मेरी ही हैं जो कि मैं गुणों से पर-गुणों से रहित और गुणों का समाश्रय भी हूँ ।१९। मैं समस्त भूतों की आत्मा हूँ और मैं अपनी ही इच्छा से बिहार करने वाला हूँ । हे ब्रह्मन् ! इस प्रकार के जगत् में तीन रूप धारण करने वाला हूँ ।२०। मेरा ही रूप दो प्रकार का है एक पुरुष और दूसरा प्रधान मेरा जो प्रधान नामक रूप है वह सब (सत्व-रज-तम) गुणों के ही स्वरूप वाला है ।२१।

अपरं यद्गुणातीतं परात्परतरं महत् ।
एवमेव तयोर्ज्ञात्वा मुच्यते ते उभे किमु ।।२२
तपोभिश्चिरकालोत्थैर्यमैश्च नियमैरपि ।
त्यागैर्दुष्कर्मनाशांते मुक्तिराश्वेव लभ्यते ।।२३
यद्रूपं यद्गुणयुतं तद्गुण्यैक्येन लभ्यते ।
अन्यत्सर्वं जगद्रूपं कर्मभोगपराक्रमम् ।।२४
कर्मभिर्लभ्यते तच्च तत्त्यागेनापि लभ्यते ।
दुस्तरस्तु तयोस्त्यागः सकलैरपि तापसैः ।।२५
अनपायं च सुगमं सदसत्कर्मगोचरम् ।।२६
आत्मस्थेन गुणेनैव सतां चाप्यसतापि वा ।
आत्मैक्येनैव यज्ज्ञानं सर्वसिद्धिप्रदायकम् ।।२७
वर्णत्रयविहीनीनां पापिष्ठानां नृणामपि ।
यद्रूपध्यानमात्रेण दुष्कृतं सुकृतायते ।।२८

दूसरा मेरा स्वरूप सब गुणों से परे है और पर से भी अधिक पर हैं तथा महान् है । इस रीति से उन दोनों के स्वरूप का ज्ञान प्राप्त करके वे दोनों ही मुक्त हो जाते हैं ।२२। चिरकाल पर्यन्त किये हुए तप-यम और

नियम तथा त्याग से दुष्कर्मों के विनाश होने के अन्त में बहुत ही शीघ्र मुक्ति प्राप्ति हो जाया करती है ।२३। जो रूप जिस गुण से युक्त होता है उन गुणों की एकता से प्राप्त किया जाता है । अन्य समस्त जगत् के स्वरूपव वाला है जो कर्म—भोग और पराक्रम से संयुत होता है ।२४। जो कर्मों के द्वारा प्राप्त किया जाता है वह कर्मों के त्याग से भी पाया जाया करता है । हे तपस्विन् ! सभी के द्वारा उन दोनों का त्याग करना बड़ा ही कठिन होता है ।२५। सत् और असत् कर्मों को प्रत्यक्ष रूप से जान लेना निर्विघ्न और सुगम होता है ।२६। आत्मा में स्थित गुण से जो सत् हो या असत् हो । आत्मा के साथ एकता से जो भी ज्ञान है वह समस्त सिद्धियों के देने वाला होता है ।२७। तीन वर्णों से जो हीन हैं और महान् पापी हैं ऐसे मनुष्यों को भी जिसके केवल ध्यान से ही दुष्कृत भी सुकृत के स्वरूप में परिणत हो जाया करता है ।२८।

येऽर्चयंति परां शक्तिं विधिनाऽविधिनापि वा ।
न ते संसारिणो नूनं मुक्ता एव न संशयः ।।२९
शिवो वा यां समाराध्य ध्यानयोगबलेन च ।
ईश्वरः सर्वसिद्धानामर्द्धनारीश्वरोऽभवत् ।।३०
अन्येऽब्जप्रमुखा देवाः सिद्धास्तद्ध्यानवैभवात् ।
तस्मादशेषलोकानां त्रिपुराराधनं विना ।।३१
न स्तो भोगापवर्गौ तु यौगपद्येन कुत्रचित् ।
तन्मनास्तद्गतप्राणस्तद्याजी तद्गतेहकः ।।३२
तादात्म्येनैव कर्माणि कुर्वन्मुक्तिमवाप्स्यसि ।
एतद्रहस्यमाख्यातं सर्वेषां हितकाम्यया ।।३३
सन्तुष्टेनैव तपसा भवतो मुनिसत्तम ।
देवाश्च मुनयः सिद्धा मानुषाश्च तथापरे ।
त्वन्मुखांभोजतोऽवाप्य सिद्धिं यांतु परात्पराम् ।।३४
इति तस्य वचः श्रुत्वा हयग्रीवस्य शार्ङ्गिणः ।
प्रणिपत्य पुनर्वाक्यमुवाच मधुसूदनम् ।।३५

जो मानव पराशक्ति का अर्चन किया करते हैं चाहे वे विधि के साथ करें या विना ही विधि से करें वे संसारी नहीं होते हैं अर्थात् बारम्बार जीवन—मरण की घोर यातनाएं सहन करने वाले नहीं रहते हैं और निश्चय ही वे मुक्त हो जाया करते हैं— इसमें लेशमात्र भी जिसकी आराधना करके और ध्यान तथा योग के बल से अर्चना करके ईश्वर भी जो सभी सिद्धों के स्वामी हैं अर्धनारीश्वर हो गये थे।२९-३०। अन्य देव भी जिनमें अब्ज प्रमुख हैं उसके ध्यान के ही वैभव से ही सिद्ध हो गये हैं। इस कारण से यह सिद्ध होता है कि समस्त लोगों को त्रिपुरदेव का ही आराधन मुख्य है। इसके विना कुछ भी नहीं होता है।३१। सुखों का उपभोग और मोक्ष दोनों ही एक साथ किसी भी प्रकार से नहीं प्राप्त हुआ करते हैं। उनमें ही मन के लगाने वाला—उसमें अपने प्राणों को संलग्न रखने वाला—उसका ही यजन करने वाला तथा अपनी इच्छा को उसमें ही केन्द्रित करने वाला मानव तादात्म्य भाव से अर्थात् उसमें ही सर्वतोभाव से एकता धारण करने वाला पुरुष कर्मों को करता हुआ मुक्ति को प्राप्त कर लेगा। यही रहस्य मैंने सबके हित की कामना से कह दिया है।३२-३३। हे मुनियों में परम श्रेष्ठ ! मैं आपके तप से परम सन्तुष्ट हो गया हूँ। इसी से मैंने आपको यह बतला दिया है। देवगण–मुनिमण्डल–सिद्धसमुदाय—मनुष्य तथा दूसरे लोग आपके मुख कमल से भी पर से भी पर सिद्धि को प्राप्त कर लेवें।३४। भगवान् हयग्रीव शार्ङ्गी के इस वचन का श्रवण करके अगस्त्य मुनि ने उनको प्रणिपात किया था और फिर मधुसूदन प्रभु से कहा था।३५।

भगवन्कीदृशं रूपं भवता यत्पुरोदितम् ।
किंविहारं किंप्रभावमेतन्मे वक्तुमर्हसि ।।३६

हयग्रीव उवाच—

एषोऽशभूतो देवर्षे हयग्रीवो ममापरः ।
श्रोतुमिच्छसि यद्यत्त्वं तत्सर्वं वक्तुमर्हति ।।३७
इत्यादिश्य जगन्नाथो हयग्रीवं तपोधनम् ।
पुरतः कुम्भजातस्य मुनेरंतरधाद्धरिः ।।३८
ततस्तु विस्मयाविष्टो हृष्टरोमा तपोधनः ।
हयग्रीवेण मुनिना स्वाश्रमं प्रत्यपद्यत ।।३९

आप मुझको बतलाइए ।३६। हयग्रीव जी ने कहा—हे देवर्ष ! यह अंशभूत मेरा अपर हयग्रीव है । आप जो-जो भी श्रवण करना चाहते हैं वही यह कहने के योग्य होता है । जगन्नाथ प्रभु इतना ही तपोधन हयग्रीव को आदेश देकर अगस्त्य मुनि के ही आगे अन्तर्हित हो गये थे ।३७-३८। इसके पश्चात् अगस्त्य मुनि बड़े ही विस्मित हुए और उनके रोम-रोम प्रसन्नता से उद्गत हो गये थे । फिर वे तप के ही मन वाले मुनि हयग्रीव मुनि के साथ अपने आश्रम में प्राप्त हो गये थे ।३९।

—×—

।। हयग्रीव अगस्त्य संवाद ।।

अथोपवेश्य चैवैनमासने परमाद्भुते ।
हयाननमुपागत्यागस्त्यो वाक्यं समब्रवीत् ।।१
भगवन्सर्वधर्मज्ञ सर्वसिद्धान्तवित्तम ।
लोकाभ्युदयहेतुर्हि दर्शनं हि भवादृशाम् ।।२
आविर्भावं महादेव्यास्तस्या रूपान्तराणि च ।
विहाराश्चैव मुख्या ये तान्नो विस्तरतो वद ।।३
हयग्रीव उवाच—
अनादिरखिलाधारा सदसत्कर्मरूपिणी ।
ध्यानैकदृश्या ध्यानांगी विद्यांगी हृदयास्पदा ।।४
आत्मैक्याद्व्यक्तिमायाति चिरानुष्ठानगौरवात् ।।५
आदौ पादुरभूच्छक्तिर्ब्रह्मणो ध्यानयोगतः ।
प्रकृतिर्नाम सा ख्याता देवानामिष्टसिद्धिदा ।।६
द्वितीयमुदभूद्रूपं प्रवृत्तेऽमृतमंथने ।
सर्वसंमोहजनकमवाङ्मनसगोचरम् ।।७

इसके अनन्तर उनको परम अद्भुत आसन पर बिठाकर फिर हयानन के समीप में उपस्थित होकर अगस्त्य जी ने यह वाक्य कहा था ।

।१। हे भगवन् ! आप तो सभी धर्मों के ज्ञाता हैं और समस्त सिद्धान्तों के परम श्रेष्ठ जानने वाले हैं। आप सरीखे महापुरुषों का दर्शन तो लोकों के अभ्युदय का ही हेतु हुआ करता है।२। महादेवी का आविर्भाव और उनके अन्य स्वरूप तथा मुख्य बिहार जो भी हैं उनको अब मेरे समक्ष में विस्तार से वर्णन कीजिए ।३। श्री हयग्रीवजी ने कहा—सत् और असत् कर्मों के रूप वाली जो पूर्ण धारा है वह अनादि है। ध्यान के ही अङ्गों वाली—विद्या ही जिसका शरीर है और उसका हृदय ही निवास का स्थल है वह ध्यान के ही द्वारा देखने के योग्य है। बहुत काल पर्यन्त अनुष्ठान के गौरव से जब अपनी आत्मा के साथ उसकी एकता हो जाती है तभी वह प्रकट हुआ करती है।४-५। आदि काल में ब्रह्माजी के ध्यान के योग से वह शक्ति प्रादुर्भूत हुई थी। उसका प्रकृति–यह नाम विख्यात हुआ था जो देवों के इष्ट की सिद्धि देने वाली थी ।६। उसका दूसरा स्वरूप उस समय में उद्भूत हुआ था जिस समय में देवों और असुरों के द्वारा अमृत के प्राप्त करने के लिये समुद्र का मन्थन करना प्रवृत्त हुआ था। जो भगवान् शिव को भी मोह उत्पन्न करने वाला था जो कि वाणी और मन के भी अगोचर हैं।७।

यद्दर्शनादभूदीशः सर्वज्ञोऽपि विमोहितः।
विसृज्य पार्वतीं शीघ्रं तया रुद्रोऽतनोद्रतम् ।।८
तस्यां वै जनयामास शास्तारमसुरार्दनम् ।।९

अगस्त्य उवाच–

कथं वै सर्वभूतेशो वशी मन्मथशासनः।
अहो विमोहितो देव्या जनयामास चात्मजम् ।।१०

हयग्रीव उवाच–

पुरामरपुराधीशो विजयश्रीसमृद्धिमान्।
त्रैलोक्यं पालयामास सदेवासुरमानुषम् ।।११
कैलासशिखराकारं गजेंद्रमधिरुह्य सः।
चचाराखिललोकेषु पूज्यमानोऽखिलैरपि।
तं प्रमत्तं विदित्वाथ भवानीपतिरव्ययः ।।१२

दुर्वाससमथाहूय प्रजिघाय तदंतिकम् ।
खण्डाजिनधरो दंडी धूलिधूसरविग्रहः ।
उन्मत्तरूपधारी च ययौ विद्याधराध्वना ।।१३
एतस्मिन्नन्तरे काले काचिद्विद्याधरांगना ।
यदृच्छया गता तस्य पुरश्चारुतराकृतिः ।।१४

जिसके दर्शन करने से ईश्वर जो सर्वज्ञ हैं वे भी विमोहित हो गये थे। उन्होंने पार्वती जी को भी त्याग करके शीघ्रता से उसके द्वारा रुद्ध होकर रति का विस्तार किया था।८। उसमें असुरों के अर्दन करने वाले एक शासक को उसने उत्पन्न किया था।९। अगस्त्यजी ने कहा—शिव तो समस्त प्राणियों के स्वामी हैं तथा वशी और कामदेव को भी भस्मीभूत कर देने वाले हैं फिर वे कैसे देवी के द्वारा विमोहित हो गये थे और उन्होंने उसमें एक पुत्र को भी जन्म ग्रहण करा दिया था ?।१०। हयग्रीव ने कहा—पहिले समय में अमर पुर का स्वामी विजय की श्री तथा समृद्धि से समन्वित था और देव-असुर और मनुष्यों के समुदाय से युक्त त्रैलोक्य का पालन किया करता था।११। वह कैलास के शिखर के समान समुच्च आकार वाले गजेन्द्र पर समारूढ़ होकर सभी लोकों में विचरण करने लग गया था और सबके द्वारा उसकी पूजा की जाती थी। भवानी को पति ने उसको प्रमत्त जानकर जो कि अविनाशी हैं उसके मद का हनन करने की इच्छा की थी। फिर दुर्वासा मुनि को बुलाकर उसके समीप में भेजा था। जो खण्ड मृगचर्म के धारण करने वाले थे और दण्डधारी थे। उनका सब शरीर धूल से मटीला हो रहा था। उनका स्वरूप उन्मत्त जैसा था। वे विद्याधरों के मार्ग से गये थे।१२-१३। इसी बीच में उस समय में कोई विद्याधर की अङ्गना वहाँ पर यदृच्छा से उसके ही आगे समागत हो गयी थी। जिसकी आकृति अधिक सुन्दर थी।१४।

चिरकालेव तपसा तोषयित्वा परांबिकाम् ।
तत्समर्पितमाल्यं च लब्ध्वा संतुष्टमानसा ।।१५
तां दृष्ट्वा मृगशावाक्षीमुवाच मुनिपुङ्गवः ।
कुत्र वा गम्यते भीरु कुतो लब्धमिदं त्वया ।।१६
प्रणम्य सा महात्मानमुवाच विनयान्विता ।

चिरेण तपसा ब्रह्मन्देव्या दत्तां प्रसन्नया ॥१७

तच्छ्रुत्वा वचनं तस्याः सोऽपृच्छन्माल्यमुत्तमम् ।
पृष्टमात्रेण सा तुष्टा ददौ तस्मै महात्मने ॥१८

कराभ्यां तत्समादाय कृतार्थोऽस्मीति सत्वरम् ।
दधौ स्वशिरसा भक्त्या तामुवाचातिहर्षितः ॥१९

ब्रह्मादीनामलभ्यं यत्तल्लब्धं भाग्यतो मया ।
भक्तिरस्तु पदांभोजे देव्यास्तव समुज्ज्वला ॥२०

भविष्यच्छोभनाकारे गच्छ सौम्ये यथासुखम् ।
सा तं प्रणम्य शिरसा ययौ तुष्टा यथागतम् ॥२१

उस अंगना ने बहुत लम्बे समय तक तप करके परा अम्बिका को प्रसन्न कर लिया था और उस अम्बिका के द्वारा अपित एक माला को प्राप्त किया था तथा उससे वह परम सन्तुष्ट मन वाली सुप्रसन्न थी ।१५। उस हिरन के समीप सुन्दर नेत्रों वाली को देखकर मुनिश्रेष्ठ ने उससे कहा था—हे भीरु ! आप कहाँ जा रही हो ? और आपने यह कहाँ से प्राप्त की है ? ।१६। उसने महात्माजी को प्रणाम करके नम्रता से कहा—हे ब्राह्मण ! बहुत समय तक तपश्चर्या करने से देवी ने प्रसन्न होकर मुझे यह दी है ।१७। उसके वचन को सुनकर फिर उसने उस उत्तम माला के बाबत पूछा था । केवल पूछने ही से परम प्रसन्न हो गयी थी और फिर उस माला को उस महात्मा को दिया था ।१८। उस महात्मा ने उसको अपने दोनों हाथों से लेकर यह कहते हुए कि मैं कृतार्थ हो गया उसको भक्तिभाव अपने शिर में धारण कर लिया था और फिर अति तर्षित होकर उससे कहा था ।१९। जो ब्रह्मादिक के लिए भी अलभ्य है वह आज मैंने भाग्य से प्राप्त की है । आपकी देवी के चरण कमलों में समुज्ज्वल भक्ति होवे ।२०। हे सौम्ये ! परम शोभन आकार वाली आप हैं अब सुख पूर्वक गमन करें । उस अंगना ने भी मुनि को प्रणाम करके और चरणों में शिर रखकर वह जैसे आई थी प्रसन्न होती हुई चली गई थी ।२१।

[illegible]षयित्वा स तां भूयो ययौ विद्याधराङ्वना ।
विद्याधरवधूहस्तात्प्रतिजग्राह वल्लकीम् ॥२२

दिव्यस्रगनुलेपांश्च दिव्यान्याभरणानि च ।
क्वचिद्दधौ क्वचिद्गृह्णन्क्वचिद्गायन्क्वचिद्धसन् ॥२३
स्वेच्छाविहारी स मुनिर्ययौ यत्र पुरंदरः ।
स्वकरस्थां ततो मालां शक्राय प्रददौ मुनिः ॥२४
तां गृहीत्वा गजस्कन्धे स्थापयामास देवराट् ।
गजस्तु तां गृहीत्वाथ प्रेषयामास भूतले ॥२५
तां दृष्ट्वा प्रेषितां मालां तदा क्रोधेन तापसः ।
उवाच न धृता माला शिरसा तु मयार्पिता ॥२६
त्रैलोक्यैश्वर्यमत्तेन भवता ह्यवमानिता ।
महादेव्या धृता या तु ब्रह्माद्यैः पूज्यते हि सा ॥२७
त्वया यच्छासितो लोकः सदेवासुरमानुषः ।
अशोभनो ह्यतेजस्को मम शापाद्भविष्यति ॥२८

उस अङ्गना को वहाँ से विदा करके वह मुनि फिर विद्याधरों के मार्ग से गये थे। विद्याधर की वधू के हाथ से वल्लकी का प्रतिग्रहण किया था।२२। और दिव्य स्रक्-अनुलेप और गन्ध तथा परम दिव्य आभरण भी ग्रहण किये थे। कहीं पर तो इनको धारण कर लेते थे और कहीं पर हाथों में ही ग्रहण करते थे—कहीं पर गान करते जाते थे और कभी हँसते जाते थे।२३। अपनी ही इच्छा से विहार करने वाले वह मुनि वहाँ पर पहुँचे थे जहाँ पुरन्दर विराजमान थे। फिर उस मुनि ने अपने करों में स्थित उस माला को इन्द्रदेव को समर्पित कर दी थी।२४। उसको ग्रहण करके देवराज ने उस माला को हाथी के कन्धे पर स्थापित कर दिया। उस गज ने उसको लेकर भूतल में भेज दिया था।२५। उस समय में उस माला को भूतल में प्रेषित की हुई देखकर तपस्वी को बड़ा क्रोध आ गया था और उसने कहा था कि मेरे द्वारा समर्पित की हुई माला को इन्द्र देव ने शिर पर धारण किया है।२६। त्रैलोक्य के ऐश्वर्य से प्रमत्त आपने मेरी दी हुई माला का अपमान किया है। जिस माला को महादेवी ने धारण किया था और वह ब्रह्मा आदि के द्वारा पूजी जाया करती है।२७। तूने देव असुर और मनुष्यों का लोक शासित किया है वह अब मेरे शाप से अशोभन तेज से रहित हो जायगा।२८।

इति शप्त्वा विनीतेन तेन संपूजितोऽपि सः ।
तूष्णीमेव ययौ ब्रह्मन्भाविकार्यमनुस्मरन् ॥२९
विजयश्रीस्ततस्तस्य दैत्यं तु बलिमन्वगात् ।
नित्यश्रीर्नित्यपुरुषं वासुदेवमथान्वगात् ॥३०
इन्द्रोऽपि स्वपुरं गत्वा सर्वदेवसमन्वितः ।
विषण्णचेता निःश्रीकश्चिन्तयामास देवराट् ॥३१
अथामरपुरे दृष्ट्वा निमित्तान्यशुभानि च ।
बृहस्पतिं समाहूय वाक्यमेतदुवाच ह ॥३२
भगवन्सर्वधर्मज्ञ त्रिकालज्ञानकोविद ।
दृश्यतेऽदृष्टपूर्वाणि निमित्तान्यशुभानि च ॥३३
किंफलानि च तानि स्युरुपायो वाऽथ कीदृशः ।
इति तद्वचनं श्रुत्वा देवेन्द्रस्य बृहस्पतिः ।
प्रत्युवाच ततो वाक्यं धर्मार्थसहितं शुभम् ॥३४
कृतस्य कर्मणो राजन्कल्पकोटिशतैरपि ।
प्रायश्चित्तोपभोगाभ्यां विना नाशो न जायते ॥३५

इस रीति से शाप देकर जब वह शान्त हुए तो विनीत उस इन्द्र ने उनका पूजन भी किया था किन्तु हे ब्रह्मन् ! आगे होने वाले कार्य का अनुस्मरण करते हुए वह चुपचाप चले गये थे ।२९। इसके अनन्तर उस इन्द्र की जो विजय की श्री थी वह असुरराज बलि का अनुगमन कर गयी थी और और जो नित्य श्री थी वह नित्य पुरुष वासुदेव के समीप में चली गयी थी ।३०। इन्द्र भी अपने पुर में पहुँच कर सब देवगणों से युक्त होता हुआ श्री से विहीन होकर ही विषाद से युक्त चित्त वाला हो गया था और वह चिन्ता करने लगा था ।३१। इसके पश्चात् उस देवों के पुर में परमाशुभ निमित्तों को उसने देखा था । फिर अपने गुरु बृहस्पतिजी को बुलाकर यह वाक्य उनसे कहा—।३२। हे भगवान् ! आप तो सभी धर्मों के ज्ञाता हैं और तीनों कालों के ज्ञान के महान् पंडित हैं । अब तो ऐसे अशुभ निमित्त दिखलाई दे रहे हैं जो पहिले कभी भी नहीं देखे गये थे । इन सबका क्या

फल होगा और इनका क्या कैसा भी कोई उपाय भी है ? बृहस्पतिजी ने देवराज के इस वाक्य का श्रवण कर फिर उन्होंने धर्मार्थ के सहित परम शुभ वाक्य में उत्तर दिया था ।३३-३४। हे राजन् ! किये हुए कर्मों का फल सैकड़ों करोड़ कल्पों में भी बिना प्रायश्चित्त और उपभोगों के कभी भी विनाश नहीं होता है ।३५।

इन्द्र उवाच–

कर्म वा कीदृशं ब्रह्मन्प्रायश्चितं च कीदृशम् ।
तत्सर्वं श्रोतुमिच्छामि तन्मे विस्तरतो वद ।।३६

बृहस्पतिरुवाच–

हननस्तेयहिंसाश्च पानमन्यांगनारतिः ।
कर्म पंचविधं प्राहुर्दुष्कृतं धरणीपतेः ।।३७
ब्रह्मक्षत्रियविट्शूद्रगोतुरंगखरोष्ट्रकाः ।
चतुष्पदोऽण्डजाब्जाश्च तिर्यंचोऽनस्थिकास्तथा ।।३८
अयुतं च सहस्रं च शतं दश तथा दश ।
दशपंचत्रिरेकार्धमानुपूर्व्यादिदं भवेत् ।।३९
ब्रह्मक्षत्रविशां स्त्रीणामुक्तार्थे पापमादिशेत् ।
पितृमातृगुरुस्वामिपुत्राणां चैव निष्कृतिः ।।४०
गुर्वाज्ञया कृतं पापं तदाज्ञालंघनेऽर्धकम् ।
दशब्राह्मणभृत्यर्थमेकं हन्याद्द्विजं नृपः ।।४१
शतब्राह्मणभृत्यर्थं ब्राह्मणो ब्राह्मणं तु वा ।
पंचब्रह्मविदामर्थे वैश्यमेकं तु दंडयेत् ।।४२

इन्द्रदेव ने कहा—हे ब्रह्मन् ! वह कर्म किस प्रकार का है और प्रायश्चित्त कैसा है ? वह सब मैं सुनने का इच्छुक हूँ । वह मुझे विस्तार के साथ बतलाइए ।३६। बृहस्पति जी ने कहा—राजा के लिये पाँच तरह के दुष्कृत कहे गये हैं—किसी का हनन करना—स्तेय (चोरी)—हिंसा—मदिरा पान और अन्य अङ्गना के साथ में रति करना ।३७। ब्राह्मण, क्षत्रिय वेश्य, शूद्र, गौ—अश्व, गधा, ऊँट, चतुष्पद—अण्डज—अब्ज—तिर्यक्—

अनास्थिक ये योनियां हैं–इनमें अयुत, सहस्र–शत–दश–दश, पाँच, तीन, एक और आधा क्रम से आरम्भ से अन्त से अन्त तक जन्म धारण करना पड़ता है।३८-३९। ब्राह्मण-क्षत्रिय-वैश्य और स्त्रियों का ऊपर में कहे हुए अर्थ में पाप समादिष्ट होता है। पिता-माता-गुरु–स्वामी और पुत्रों की निष्कृति होती है।४०। गुरु की आज्ञा से कृत पाप उसकी आज्ञालंघन में अर्थ पाता है। राजा को दश ब्राह्मणों की भृति (भरण) के लिए चाहिए कि एक द्विजका हनन कर देवे। तात्पर्य यह है कि यदि दश ब्राह्मणों की जीविका की रक्षा होती है तो एक द्विज का हनन कर देना चाहिए।४१। सौ ब्राह्मणों की भृति के लिए अथवा ब्राह्मण को ब्राह्मण तथा पाँच ब्रह्म (वेद) के ज्ञाताओं के लिए एक वैश्य को दण्ड राजा को दे देना चाहिए।४२।

वैश्यं दशविशामर्थे विशां वा दंडयेत्तथा ।
तथा शतविशामर्थे द्विजमेकं तु दंडयेत् ॥४३
शूद्राणां तु सहस्राणां दंडयेद्ब्राह्मणं तु वा ।
तच्छतार्थं तु वा वैश्यं तद्दशार्द्धं तु शूद्रकम् ॥४४
बंधूनां चैव मित्राणामिष्टार्थे तु त्रिपादकम् ।
अर्थकलत्रपुत्रार्थे स्वात्मार्ये न तु किंचन ॥४५
आत्मानं हन्तुमारब्धं ब्राह्मणं क्षत्रियं विशम् ।
गां वा तुरगमन्यं वा हत्वा दोषैर्न लिप्यते ॥४६
आत्मदारात्मजभ्रातृबंधूनां च द्विजोत्तम ।
क्रमाद्दशगुणो दोषो रक्षणे च तथा फलम् ॥४७
भूपद्विजश्रोत्रियवेदविद्व्रतोवेदान्तविद्वेदविदां विनाशे ।
एकद्विपंचाशदथायुतं च स्यान्निष्कृतिश्चेति
वदंति संतः ॥४८
तेषां च रक्षणविधौ हि कृते च दाने पूर्वोदितोत्तरगुणं
प्रवदन्ति पुण्यम् ।
तेषां च दर्शनविधौ नमने च कार्ये शुश्रूषणेऽपि चरतां
सदृशांश्च तेषाम् ॥४९

दश वैश्यों की सुरक्षा के लिये एक वैश्य अथवा वैश्यों को दण्ड दे देना चाहिए। अथवा शत (सौ) वैश्यों का हित सम्पादन होता हो तो एक द्विज को दण्ड दे देना चाहिए।४३। सहस्र शूद्रों के लिए अथवा ब्राह्मण को दण्डित करे। उसके शतार्ध वैश्य को या उसका दशार्ध शूद्र को दण्ड देवे।४४। बन्धुओं के और मित्रों के अभीष्ट अर्थ में त्रिपाद अर्थात् तीन भाग में और कलत्र तथा पुत्र के लिए भी तीन भाग अर्थ का करे अपनी आत्मा के लिए कुछ भी न करे।४५। जो आत्मा को अर्थात् अपने को हनन करना आरम्भ करे वह चाहे ब्राह्मण-क्षत्रिय वैश्य कोई भी हो अथवा अश्व—गौ या अन्य को मारता हो तो उसका हनन करके भी दोषों से लिप्त नहीं होता है।४६। हे द्विज श्रेष्ठ ! अपनी स्त्री-पुत्र–भाई और बन्धु का हनन करने में दशगुना दोष होता है और रक्षा करने में उतना ही फल भी होता है।४७। राजा—द्विज—श्रोत्रिय—वेदवेत्ता—व्रती–वेदान्त ज्ञाता और वेदों के मनीषी के विनाश करने में एक–दो-पचास और अयुत गुनी निष्कृति (प्रायश्चित्त) होता है—ऐसा सन्त पुरुष कहते हैं।४८। और इनकी रक्षा करने की विधि में और दान करने में पूर्व में जो कहा है उससे उत्तर गुना पुण्य कहते हैं। उनके दर्शन की विधि में तथा नमन करने में तथा इनकी सुश्रूषा करने में और इनके सदृश समाचरण करने वालों की भी शुश्रूषा आदि करने में भी वैसा ही फल होता है।४९।

सिंहव्याघ्रमृगादीनि लोकहिंसाकराणि तु ।
नृपो हन्याच्च सततं देवार्थे ब्राह्मणार्थके ।।५०
आपत्स्वात्मार्थके चापि हत्वा मेध्यानि भक्षयेत् ।।५१
नात्मार्थे पाचयेदन्नं नात्मार्थे पाचयेत्पशून् ।
देवार्थे ब्राह्मणार्थे वा पचमानो न लिप्यते ।।५२
पुरा भगवती माया जगदुज्जीवनोन्मुखी ।
ससर्ज सर्वदेवांश्च तथैवासुरमानुषान् ।।५३
तेषां संरक्षणार्थाय पशूनपि चतुर्दश ।
यज्ञांश्च तद्विधानानि कृत्वा चैनानुवाच ह ।।५४

सिंह-व्याघ्र और मृग आदि जो लोगों की हिंसा करने वाले हैं उनको राजा देवों के तथा ब्राह्मणों के लिए निरन्तर हनन कर सकता है।५०।

आवृत्ति के समय में अपने लिए भी हनन करके मेधों (पवित्रों) का भक्षण कर लेवे ।५१। अपने अन्न का पाचन न करे और पशुओं का भी पाचन नहीं करना चाहिए। देवों तथा ब्राह्मणों के लिये यदि पकाया भी जावे तो शेष से लिप्त नहीं होता है ।५२। पहिले इस जगत् के उज्जीवन की ओर प्रवृत्ति वाली भगवती माया ने देवों—असुरों और मानवों का सृजन किया था। उनकी रक्षा के लिए चौदह पशुओं की भी रचना की थी उसी भाँति यज्ञों की तथा उनके विधानों की भी रचना करके इनको बताया था ।५३-५४।

स्तेयपान वर्णन

इन्द्र उवाच—

भगवन्सर्वमाख्यातं हिंसाद्यस्य तु लक्षणम् ।
स्तेयस्य लक्षणं किं वा तन्मे विस्तरतो वद ॥१
बृहस्पतिरुवाच—
पापानामधिकं पापं हननं जीवजातिनाम् ।
एतस्मादधिकं पापं विश्वस्ते शरणं गते ॥२
विश्वस्य हत्वा पापिष्ठं शूद्रं वाप्यंत्यजातिजम् ।
ब्रह्महत्याधिकं पापं तस्मान्नास्त्यस्य निष्कृतिः ॥३
ब्रह्मज्ञस्य दरिद्रस्य कृच्छ्रार्जितधनस्य च ।
बहुपुत्रकलत्रस्य तेन जीवितुमिच्छतः ।
तद्द्रव्यस्तेयदोषस्य प्रायश्चित्तं न विद्यते ॥४
विश्वस्तद्रव्यहरणं तस्याप्यधिकमुच्यते ।
विश्वस्ते वाप्यविश्वस्ते न दरिद्रधनं हरेत् ॥५
ततो देवद्विजातीनां हेमरत्नापहारकम् ।
यो हन्यादविचारेण सोऽश्वमेधफलं लभेत् ॥६
गुरुदेवद्विजसुहृत्पुत्रस्वात्मसुखेषु च ।
स्तेयादधः क्रमेणैव दशोत्तरगणं त्वघम् ॥७

इन्द्र देव ने कहा—हे भगवन् ! आपने हिंसादि का सम्पूर्ण लक्षण बता दिया है। अब स्तेय का क्या लक्षण है—यह भी आप मेरे सामने विस्तार के साथ वर्णन कीजिए ।१। समस्त पापों में अधिक पाप जीव जातियों का हनन करना ही होता है। इससे भी अधिक पाप उसके हनन करने का होता है जो विश्वस्त होवे तथा शरण में समागत हो गया हो ।२। विश्वास देकर पापिष्ठ शूद्र वा अन्त्य जातिज हो जो उसका हनन करता है वह ब्रह्म हत्या से भी अधिक पाप होता है जिसका कोई भी प्रायश्चित्त ही नहीं होता है ।३। जो ब्रह्मज्ञ हो–दरिद्र हो और बड़ी ही कठिनाई से जिसने धन का अर्जन किया हो तथा बहुत पुत्रों और कलत्र वाला हो एवं उसी धन से जो जीवित रहने की इच्छा रखता हो उसके द्रव्य की चोरी इतना महान दोष होता है कि फिर उसका कोई भी प्रायश्चित्त नहीं होता है ।४। जो विश्वस्त हो उसके द्रव्य के हरण करने का पाप उससे भी अधिक होता है। विश्वस्त हो अथवा अविश्वस्त हो दरिद्र के धन का हरण कभी नहीं करना चाहिए ।५। देवों और द्विजतियों के सुवर्ण तथा रत्नों के अपहरण करने वाले को जो विना ही विचार किये मार डालता है उसको अश्वमेध यज्ञ का पुण्य-फल प्राप्त होता है ।६। गुरु–देव-द्विज–पुत्र–और आत्म सुख के धन की चोरी करता है उसका अधःक्रम से ही दश गुना उत्तर अघ होता है ।७।

अंत्यजात्पादजाद्वैश्यात्क्षत्रियाद्ब्राह्मणादपि ।
दशोत्तरगुणैः पापैर्लिप्यते धनहारकः ॥८

अत्रैवोदाहरंतीममितिहासं पुरातनम् ।
रहस्यातिरहस्यं च सर्वपापप्रणाशनम् ॥९
पुरा कांचीपुरे जातो वज्राख्यो नाम चोरकः ।
तस्मिन्पुरवरे रम्ये सर्वैश्वर्यसमन्विताः ।
सर्वे नीरोगिणो दांताः सुखिनो दययांचिताः ॥१०
सर्वैश्वर्यसमृद्धेऽस्मिन्नगरे स तु तस्करः ।
स्तोकास्तोकक्रमेणैव बहुद्रव्यमपाहरत् ॥११
तदरण्येऽवटं कृत्वा स्थापयामास लोभतः ।
तद्गोपनं निशार्धायां तस्मिन्दूरं गते सति ॥१२
किरातः कश्चिदागत्य तं दृष्ट्वा तु दशांशतः ।
जहाराविदितस्तेन काष्ठभारं वहन्ययौ ॥१३

सोऽपि तच्छिलयाच्छाद्य मृद्भिरापूर्य यत्नतः ।
पुनश्च तत्पुरं प्रायाद्वज्रोऽपि धनतृष्णया ।।१४

अन्त्यज-शूद्र-वैश्य-क्षत्रिय और ब्राह्मण से भी दश गुणोत्तर पापों से धन के हरण करने वाला लिप्त हुआ करता है ।८। इस विषय में एक पुराना इतिहास उदाहृत करते हैं। यह रहस्यों का भी अधिक रहस्य है और पापों का विनाश कर देने वाला है ।९। प्राचीन काल में काञ्चीपुर में एक वज्र नाम वाला चोर उत्पन्न हुआ था। वह पुर ऐसा था कि वहाँ पर बड़ी रम्यता थी और वहाँ के निवासी जन सभी प्रकार के ऐश्वर्य से युक्त—नीरोग—दान्त-सुखी-और दयान्वित थे ।१०। यह नगर सब तरह के ऐश्वर्य से समन्वित था उससे वह तस्कर ने स्तोकास्तोक अर्थात् न्यूनाधिक क्रम से बहुत से धन का अपहरण किया था ।११। उसको वह जङ्गल में एक गड्ढा बनाकर लोभ से रख दिया करता था। उसका गोपन आधी रात में किया करता था। जब धन रख चला गया था तब किसी किरात ने वहाँ आकर उसको देखा था उसका दशम भाग उसमें से किरात ने ले लिया था। वह तस्कर इसको नहीं जान पाया था। वह किरात तो काष्ठ का भार लेकर चला गया था ।१२-१३। वह तस्कर भी एक शिला से उस गड्ढे को ढक कर और मिट्टी से भरकर फिर उसी नगर में धन की तृष्णा से चला गया था ।१४।

एवं बहुधनं हृत्वा निश्चिक्षेप महीतले ।
किरातोऽपि गृहं प्राप्य बभाषे मुदितः प्रियाम् ।।१५
मया काष्ठं समाहर्तुं गच्छता पथि निर्जने ।
लब्धं धनमिदं भीरु समाधत्स्व धनार्थिनि ।।१६
तच्छ्रुत्वा तत्समादाय निधायाभ्यंतरे ततः ।
चिंतयंती ततो वाक्यमिदं स्वपतिमब्रवीत् ।।१७
नित्यं संचरते विप्रो मामकानां गृहेषु यः ।
मां विलोक्यैवमचिराद् बहुभाग्यवती भवेत् ।।१८
चातुर्वर्ण्यासु नारीषु स्थेयं चेद्राजवल्लभा ।
किं तु भिल्ले किराते च शैलूषे चांत्यजातिजे ।
लक्ष्मीर्न तिष्ठति चिरं शाताद्वल्मीकजन्मनः ।।१९

तथापि बहुभाग्यानां पुण्यानामपि पात्रिणे ।
दृष्टपूर्वं तु तद्वाक्यं न कदाचिद्वृथा भवेत ॥२०

अथ वात्मप्रयासेन कृच्छ्राद्यल्लभ्यते धनम् ।
तदेव तिष्ठति चिरादन्यद्गच्छति कालतः ॥२१

इस रीति से बहुत सा धन चोर कर वज्र ने भूमि में रख दिया उस किरात ने भी घर में आकर प्रसन्न होते हुए अपनी पत्नी से कहा था ।१५। मैंने काष्ठ का समाहरण करने के लिए वन में गमन करते हुए मार्ग में यह धन प्राप्त किया है । हे भीरु ! आपको तो धन की इच्छा है इसे अब अपने पास रक्खो ।१६। यह श्रवण करके उसने उस धन को ले लिया था और घर में अन्दर रख दिया था । फिर मन में कुछ चिन्तन करती हुई उसने अपने पति से यह वाक्य कहा था ।१७। जो यह विप्र हमारे घरों में नित्य ही सञ्चरण किया करता है । वह मुझ को देखकर कि यह थोड़े ही समय में बहुत भाग्य वाली हो गई है । चारों वर्णों की नारियों में यह यदि राज वल्लभा हो–ऐसा ही कहेंगे । किन्तु भील-किरात-शैलूष और अन्त्य जातीय पुरुष में वाल्मीकि के शापसे यह लक्ष्मी अधिक समय तक नहीं स्थित रहा करती है ।१८-१९। तो भी बहुत भाग्य वाले पुण्यों के पात्र के लिए यह वाक्य पूर्व में देखा गया है और यह कभी भी वृथा नहीं होता ।२०। अथवा जो धन अपने प्रयास से कष्ट के साथ प्राप्त किया जाता है वह ही धन स्थिर होता है और अधिक समय पर्यन्त ठहरता है । इसके अतिरिक्त जो अनायास मिल जाता है वह कुछ ही समय में चला जाया करता है ।२१।

स्वयमागतवित्तं तु धर्मार्थे विनियोजयेत् ।
कुरुष्वैतेन तस्मात्वं वापीकूपादिकाञ्छुभान् ॥२२

इति तद्वचनं श्रुत्वा भाविभाग्यप्रबोधितम् ।
बहूदकसमं देशं तत्रकव्यलोथयत् ॥२३

निर्ममेऽथ महेंद्रस्य दिग्भागे विमलोदकम् ।
सुबहुद्रव्यसंसाध्यं तटाकं चाक्षयोदकम् ॥२४

दत्तेषु कर्मकारिभ्यो निखिलेषु धनेषु च ।
असंपूर्णं तु तत्कर्म दृष्ट्वा चिताकुलोऽभवत् ॥२५

तं चौरं वज्रनामानमज्ञातोऽनुचराम्यहम् ।
तेनैव बहुधा क्षिप्तं धनं भूरि महीतले ।।२६
स्तोकं स्तोकं हरिष्यामि तत्र तत्र धनं बहु ।
इति निश्चित्य मनसा तेनाज्ञातस्तमन्वगात् ।।२७
तथैवाहृत्य तद्द्रव्यं तेन सेतुमपूरयत् ।
मध्ये जलावृतस्तेन प्रसादश्चापि शार्ङ्गिणः ।।२८

यह धन तो बिना ही श्रम के आपके पास आगया है । इसका तो धर्मार्थ आपको विनियोग करना चाहिए । अतः आप इस धन से शुभ कर्म बावड़ी—कूप और तालाब आदि के निर्माण करने में व्यय कर दीजिए ।२२। अपनी पत्नी के इस वचन का श्रवण करके जो कि आगे होने वाले भाग्य को सुबोधित करने वाला था उस किरात ने जहाँ-तहाँ पर देखा था कि सभी स्थल अधिक जल वाले थे ।२३। फिर ऐन्द्री दिशा में उसने एक विमल उदक वाला तलाब जो बहुत अधिक धन से बनाये जाने वाला था बनवाया था जिसमें जल कभी भी क्षीण नहीं होता था ।२४। सम्पूर्ण धन काम करने वालों को दे देने पर भी वह काम अपूर्ण देखकर वह चिन्ता से बेचैन हो गया था ।२५। उसने सोचा कि उस वज्र नामक चोर के पीछे उसके बिना जाने हुए मैं गमन करूँ । उसने ही प्रायः भूमि में अधिक धन डाला ही होगा ।२६। वहाँ-वहाँ से ही थोड़ा-थोड़ा करके बहुत-सा धन हरण करूँगा । ऐसा ही मन में निश्चय करके वह उसके बिना जाने हुए उसी के पीछे गया था ।२७। उसी भाँति से उसने उस धन का आहरण किया था और उस सेतु को पूर्ण कर दिया था । उस तालाब के मध्य में जिसके चारों ओर जल था, एक भगवान् विष्णु का प्रासाद भी बनवाया था ।२८।

———

अमृत मन्थन वर्णन

इन्द्र उवाच—
भगवन्सर्वधर्मज्ञ त्रिकालज्ञानवित्तम ।
दुष्कृतं तत्प्रतीकारो भवता सम्यगीरितः ।।१
केन कर्मविपाकेन ममापदियमागता ।
प्रायश्चित्तं च किं तस्य गदस्व वदतां वर ।।२

बृहस्पतिरुवाच–
काश्यपस्य ततो जज्ञे दित्यां दनुरिति स्मृतः ।
कन्या रूपवती नाम धात्रे तां प्रददौ पिता ।।३
तस्याः पुत्रस्ततो जातो विश्वरूपो महाद्युतिः ।
नारायणपरो नित्यं वेदवेदांगपारगः ।।४
ततो दैत्येश्वरो वव्रे भृगुपुत्रं पुरोहितम् ।
भवानधिकृतो राज्ये देवानामिव वासवः ।।५
ततः पूर्वे च काले तु सुधर्मायां त्वयि स्थिते ।
त्वया कश्चित्कृतः प्रश्नः ऋषीणां सन्निधौ तदा ।।६
संसारस्तीर्थयात्रा वा कोऽधिकोऽस्ति तयोर्गुणः ।
वदंतु तद्विनिश्चित्य भवन्तो मदनुग्रहात् ।।७

इन्द्र देव ने कहा—हे भगवन् ! आप तो सभी धर्मों के ज्ञान रखने वाले हैं और भूत वर्त्तमान और भविष्य के ज्ञान वाले हैं । आपने दुष्कृत और उसका प्रतीकार भली भाँति से वर्णित कर दिया है ।१। अब आप मुझे यही बताने की कृपा करें मुझे यह आपत्ति किस कर्म के विपाक से प्राप्त हुई है और इसका प्रायश्चित्त क्या हो सकता है ? आप तो बोलने वालों में भी परम श्रेष्ठ हैं ।२। बृहस्पतिजी ने कहा—काश्यप मुनि की पत्नी दिति में दनु नाम वाली कन्या ने जन्म ग्रहण किया था । वह कन्या रूपवती थी । पिता ने उसको धाता को दी थी ।३। उसका पुत्र फिर महती द्युति वाला विश्व-रूप उत्पन्न हुआ था वह भगवान नारायण में ही परायण था तथा वेद वेदाङ्गों का पारगामी विद्वान था ।४। इसके उपरान्त उस दैत्येश्वर ने भृगु के पुत्र पुरोहितजी से कहा था कि आप देवों में वासव की ही भांति राज्य में अधिकृत हैं ।५। फिर पूर्वकाल में देवों की सभा में आप जब स्थित थे तब आपने ऋषियों की सन्निधि में कोई प्रश्न किया था ।६। संसार अथवा तीर्थ यात्रा इन दोनों में कौन अधिक गुण वाला है । अब आप मेरे पर अनुग्रह करके उसका निश्चय करके मुझे बतलाइए ।७।

तत्प्रश्नस्योत्तरं वक्तुं ते सर्वं उपचक्रिरे ।
तत्पूर्वमेव कथितं मया विधिबलेन वै ।।८

तीर्थयात्रा समधिका संसारादिति च द्रुतम् ।
तच्छ्रुत्वा ते प्रकुपिताः शेपुर्मामृषयोऽखिलाः ॥६
कर्मभूमिं व्रजेः शीघ्रं दारिद्र्येण मितैः सुतैः ।
एवं प्रकुपितैः शप्तः खिन्नः कांचीं समाविशम् ॥१०
पुरीं पुरोधसा हीनां वीक्ष्य चिंताकुलात्मना ।
भवता सह देवैस्तु पौरोहित्यार्थमादरात् ॥११
प्रार्थितो विश्वरूपस्तु बभूव तपतां वरः ।
स्वस्रीयो दानवानां तु देवानां च पुरोहितः ॥१२
नात्यर्थमकरोद्वैरं दैत्येष्वपि महातपाः ।
बभूवतुस्तुल्यबलौ तदा दैत्येन्द्रवासवौ ॥१३
ततस्त्वं कुपितो राजन्स्वस्रीयं दानवेशितुः ।
हंतुमिच्छन्नगाश्चाशु तपसः साधनं वनम् ॥१४

उस प्रश्न का उत्तर बताने के लिए उनने सबने उपक्रम किया था। उसके पूर्व ही मैंने विधाता के बल से पूर्व में ही शीघ्र कहा था कि तीर्थयात्रा संसार से समधिक है। यह सुनकर वे सब ऋषिगण बहुत प्रकुपित हो गये थे और उन्होंने मुझको शाप दे दिया था।८-६। कर्म भूमि में मित सुतों के सहित दरिद्रता से युक्त होकर गमन कर जाओ। इस तरह कुपित ऋषियों के द्वारा शाप दिया हुआ मैं काञ्जी में प्रवेश कर गया था।१०। चिन्ता से विकल पुरोहितजी ने हीन पुरी का अवलोकन करके आपके द्वारा देवों के सहित बड़े ही आदर से पौरोहित्य कर्म के लिए उनसे प्रार्थना की गयी थी।११। तापसों में श्रेष्ठ विश्व रूप से जब प्रार्थना की गयी थी तो वह दानवों का तो बहिन का पुत्र था और देवों का पुरोहित था।१२। उस महान तपस्वी ने दैत्यों में भी अत्यधिक बैर नहीं किया था। उस समय में दैत्येन्द्र और इन्द्र दोनों तुल्य बल वाले हुए थे।१३। इसके पश्चात् हे राजन्! दानवेश्वर के स्वस्रीय पर आप कुपित हो गये थे और उसका हनन करने की इच्छा रखते हुए शीघ्र ही तप के साधन वन में चला गया था।१४।

तमासनस्थं मुनिभिस्त्रिशृंगमिव पर्वतम् ।
त्रयी मुखरदिग्भागं ब्रह्मानन्दैकनिष्ठितम् ॥१५

सर्वभूतहितं तं तु मत्वा चेशानुकूलितः ।
शिरांसि यौगपद्येन छिन्नान्यासंस्त्वयैव तु ॥१६
तेन पापेन संयुक्तः पीडितश्च मुहुर्मुहुः ।
ततो मेरुगुहां नीत्वा बहूनब्दान्हि संस्थितः ॥१७
ततस्तस्य वचः श्रुत्वा ज्ञात्वा तु मुनिवाक्यतः ।
पुत्रशोकेन संतप्तस्त्वां शशाप रुषान्वितः ॥१८
निः श्रीको भवतु क्षिप्रं मम शापेन वासवः ।
अनाथकास्ततो देवा विषण्णा दैत्यपीडिताः ॥१६
त्वया मया च रहिताः सर्वे देवाः पलायिताः ।
गत्वा तु ब्रह्मसदनं नत्वा तद्वृत्तमूचिरे ॥२०
ततस्तु चितयामास तदघस्य प्रतिक्रियाम् ।
तस्य प्रतिक्रियां वेत्तुं न शशाकात्मभूस्तदा ॥२१

मुनियों के साथ आसन पर स्थित उसको तीन शिखरों वाले पर्वत के समान वेदत्रयी से दिशाओं का भाग मुखरित हो रहा था और वह ब्रह्मानन्द में एकनिष्ठ था तथा सब भूतों का हितकर था उसको ऐसा मान कर ईशानुकूलित था। आपने ही एक साथ उसके शिरों को काट दिया था ।१५-१६। उस पाप से संयुत बार-बार पीड़ित हैं। फिर मेरु की गुहा में जाकर बहुत वर्षों तक रहा था ।१७। इसके अनन्तर उसके वचन का श्रवण करके और मुनि के वाक्य से ज्ञान प्राप्त करके पुत्र शोक से सन्तप्त होकर क्रोध से समन्वित उसने आपको शाप दे दिया था ।१८। इन्द्र मेरे शाप से शीघ्र ही श्री से विहीन हो जावे। फिर सभी देवगण बिना नाथ वाले हो गये थे और विषाद से युक्त हो गये थे तथा दैत्यों के द्वारा उत्पीड़ित हो गये थे ।१९। तुम्हारे द्वारा और मेरे द्वारा रहित सभी देव भाग गये थे। वे सब देवगण ब्रह्माजी के निवास स्थान में जाकर प्रणाम करके सम्पूर्ण वृत्त उनसे कह दिया था ।२०। इसके पश्चात् ब्रह्माजी ने उसके पाप की प्रतिक्रिया का चिन्तन किया था किन्तु उस समय में ब्रह्माजी उसकी कोई भी प्रतिक्रिया न जान सके थे ।२१।

ततो देवैः परिवृतो नारायणमुपागमन् ॥२२

नत्वा स्तुत्वा चतुर्वक्त्रस्तद्वृत्तांतं व्यजिज्ञपत् ।
विचिंत्य सोऽपि बहुधा कृपया लोकनायकः ॥२३
तदघं तु त्रिधा भित्वा त्रिषु स्थानेष्वथार्पयत् ।
स्त्रीषु भूम्यां च वृक्षेषु तेषामपि वरं ददौ ॥२४
तदा भर्तृ समायोगं पुत्रावाप्तिमृतुष्वपि ।
छेदे पुनर्भवत्वं तु सर्वेषामपि शाखिनाम् ॥२५
खातपूर्तिं धरण्याश्च प्रददौ मधुसूदनः ।
तेष्वघं प्रबभूवाशु रजोनिर्यासमूषरम् ॥२६
निर्गतो गह्वरात्तस्मात्त्वमिंद्रो देवनायकः ।
राज्यश्रियं च संप्राप्तः प्रसादात्परमेष्ठिनः ॥२७
तेनैव सांत्वितो धाता जगाद च जनार्दनम् ।
मम शापो वृथा न स्यादस्तु कालांतरे मुने ॥२८

इसके अनन्तर जब कोई भी प्रतिक्रिया समझ में नहीं आयी तो ब्रह्माजी देवों से घिरे हुए ही भगवान् नारायण के समीप में पहुँचे थे ।२२। सर्व प्रथम उन्होंने नारायण को प्रणाम किया था फिर स्तुति की थी और इसके उपरान्त यह वृत्तान्त उनकी सेवा में कहा था । उन लोकों के नायक प्रभु ने कृपाकर बहुत विचिन्तिन करके विचार किया था ।२३। उसके अघ को तीन भागों में विभक्त करने तीन स्थानों में अर्पित कर दिया था । स्त्रियों में—वृक्षा में और भूमि में उसको रख दिया था और उनको वरदान भी दिया था । उस अघ के देने के बदले में ही तीनों को तीन वरदान दिये थे ।२४। उस समय में जब ऋतुकाल हो तो स्वामी के साथ संयोग से पुत्र की प्राप्ति हो जायगी । वृक्षों का छेदन में पुनः जन्म धारण कर लेना हो जायगा ।२५। भूमि में गर्त्त कर दिया जाये तो वह अपने आप ही कुछ समय में भर जायगा—ये तीनों को तीन वरदान मधुसूदन प्रभु ने दिये थे । उसका अघ शीघ्र ही तीनों में प्रभूत हो गया था—स्त्रियों ये रजोदर्शन-वृक्षों में गोंद और भूमि में ऊपर में उसी अघ के कारण हुआ था ।२६। तुम इन्द्र उस गहन अघ से निकल गये थे और देव नायक के फिर परमेष्ठी के प्रसाद से राज्य की श्री को प्राप्त करने वाले हो गये थे ।२७। उसके द्वारा धाता को इस प्रकार सान्त्वना दी थी और जनार्दन प्रभु से कहा था । हे मुने ! मेरा शाप वृथा नहीं होगा और अन्य काल में होगा ।२८।

भगवांस्तद्वचः श्रुत्वा मुनेरमिततेजसः ।
प्रहृष्टो भाविकार्यज्ञस्तूष्णीमेव तदा ययौ ॥२९
एतावंतमिमं कालं त्रिलोकीं पालयन्भवान् ।
ऐश्वर्यमदमत्तत्वात्कैलासाद्रिमपीडयत् ॥३०
सर्वज्ञेन शिवेनाथ प्रेषितो भगवान्मुनिः ।
दुर्वासास्त्वन्मदभ्रंशं कर्तुकामो शशाप ह ॥३१
एकमेव फलं जातमुभयोः शापयोरपि ।
अधुना पश्यनिःश्रीकं त्रैलोक्यं समजायत ॥३२
न यज्ञाः संप्रवर्त्तंते न दानानि च वासव ।
न यमा नापि नियमा न तपांसि च कुत्रचित् ॥३३
विप्राः सर्वेऽपि निःश्रीका लोभोपहृतचेतसः ।
निःसत्वा धैर्यहीनाश्च नास्तिकाः प्रायशोऽभवन् ॥३४
निरौषधिरसा भूमिर्निर्वीर्या जायतेतराम् ।
भास्करो धूसराकारश्चन्द्रमाः कांतिवर्जितः ॥३५

उन अपरिमित तेज वाले मुनि के इस वचन का श्रवण करके भगवान उस समय में चुप चाप ही वहाँ से चले गये थे क्योंकि ये तो आगे होने वाले कार्य का ज्ञान रखने वाले थे।२९। आप इतने समय तक त्रिलोकी का पालन करते हुए ऐश्वर्य के मद से मत्तता होने के कारण से आपने कैलाश पर्वत को पीड़ित किया था।३०। इसके अनन्तर सर्वज्ञ भगवान शिव ने भगवान मुनि को भेजा था। दुर्वासा जी ने आपके मद को भ्रंश करने की ही इच्छा से शाप दिया था।३१। इन दोनों शापों का एक फल हुआ है। अब देखिए यह त्रैलोक्य श्री से रहित हो गया।३२। हे वासव ! न तो अब यज्ञ संप्रवृत्त हो हो रहे हैं और न दान ही दिये जा रहे हैं और इस समय में तो कहीं पर भी यम-नियम और तपश्चर्या कुछ भी नहीं हैं।३३। सभी विप्र श्री से रहित हैं और इनके हृदय में लोभ ऐसा बैठ गया है कि इनका चित्त उपहृत सा हो गया है। इनमें सत्व नाम मात्र को भी नहीं है—ये धैर्य से हीन हो गये हैं तथा बहुधा ये सब नास्तिक हो गये हैं। जो ईश्वर के अस्तित्व में विश्वास नहीं रखते हैं वे नास्तिक होते हैं।३४। यह

भूमि औषधियों के रस से विहीन है और अधिकतया वीर्य होना हो गयी है। यह सूर्य भी धूसर आकार वाला है तथा चन्द्रमा में कान्ति का अभाव दिखाई देना है ।३५।

निस्तेजस्को हविर्भोक्ता मरुद्धूलिकृताकृतिः ।
न प्रसन्ना दिशां भागा नभो नैव च निर्मलम् ।।३६
दुर्बला देवताः सर्वा विभांत्यन्यादृशा इव ।
विनष्टप्रायमेवास्ति त्रैलोक्यं सचराचरम् ।।३७
हयग्रीव उवाच—
इत्थं कथयतोरेव बृहस्पतिमहेंद्रयोः ।
मलकाद्या महादैत्याः स्वर्गलोकं बबाधिरे ।।३८
नंदनोद्यानमखिलं चिच्छिदुर्बलगर्विताः ।
उद्यानपालकान्सर्वानायुधैः समताडयन् ।।३९
प्राकारमवभिद्यैव प्रविश्य नगरांतरम् ।
मंदिरस्थान्सुरान्सर्वानत्यंतं पर्यपीडयन् ।।४०
आजह्रुरप्सरोरत्नान्यशेषाणि विशेषतः ।
ततो देवाः समस्ताश्च चक्रुर्भृशमबाधिताः ।।४१
तादृशं घोषमाकर्ण्य वासवः प्रोज्झितासनः ।
सर्वैरनुगतो देवैः पलायनपरोऽभवत् ।।४२

हवि का भोक्ता अग्नि तेजसे शून्य है तथा मरुत् धूलि कृत आकृति वाला है। समस्त दिशायें प्रसन्न नहीं हैं और नभो मण्डल में निर्मलता का अभाव है ।३६। सब देवगण भी परम दुर्बल कुछ और ही जैसे विभात हो रहे हैं। यह पूर्ण चराचर त्रैलोक्य विनष्ट युग्म सा ही हो गया है ।३७। हयग्रीवजी ने कहा—इस रीति से बृहस्पति और महेन्द्र आलाप कर ही रहे थे कि महान दैत्यों ने स्वर्ग को बाधित कर दिया था ।३८। बल के गर्व वाले दैत्यों ने नन्दन वन को पूर्णतया छेदन कर दिया था। जो उद्यान के पालक थे उन सबको दैत्यों ने आयुधों से प्रताड़ित किया था ।३९। जो स्वर्ग के चारों ओर प्राकार भित्ति थी उसका भेदन करके नगर के भीतर प्रवेश कर गये थे। अन्दर जो मन्दिरों में संस्थित देवगण थे उनको अत्यन्त ही पीड़ित

किया था ।४०। विशेष रूप से जो रत्नों के समान अप्सराएँ थीं उनका हरण कर लिया था । इसके उपरान्त सभी देवगण बहुत ही बाधित कर दिए थे ।४१। उस प्रकार का जो बड़ा भारी शोर हुआ था उसको सुनकर इन्द्र ने अपना आसन त्याग दिया था और सब देवों के साथ में वहाँ से भाग जाने में तत्पर हो गया था ।४२।

ब्राह्मं धाम समभ्येत्य विषण्णवदनो वृषा ।
यथावत्कथयामास निखिलं दैत्यचेष्टितम् ॥४३
विधातापि तदाकर्ण्य सर्वदेवसमन्वितम् ।
हृतश्रीकं हरिहयमालोक्येदमुवाच ह ॥४४
इन्द्रत्वमखिलैर्देवैर्मुकुन्दं शरणं व्रज ।
दैत्यारातिर्जगत्कर्ता स ते श्रेयो विधास्यति ॥४५
इत्युक्त्वा तेन सहितः स्वयं ब्रह्मा पितामहः ।
समस्तदेवसहितः क्षीरोदधिमुपाययौ ॥४६
अथ ब्रह्मादयो देवा भगवंतं जनार्दनम् ।
तुष्टुवुर्गिवरिष्ठाभिः सर्वलोकमहेश्वरम् ॥४७
अथ प्रसन्नो भगवान्वासुदेवः सनातनः ।
जगाद सकलान्देवाञ्जगद्रक्षणलंपटः ॥४८
श्रीभगवानुवाच—
भवतां सुविधास्यामि तेजसंवोपबृंहणम् ।
यदुच्यते मयेदानीं युष्माभिस्तद्विधीयताम् ॥४९

ब्रह्माजी के धाम में जाकर विषाद से युक्त मुख वाले इन्द्र ने जो कुछ भी दैत्यों ने किया था वह सभी ज्यों का त्यों कह दिया था ।४३। विधाता भी उसको सुनकर सब देवों के सहित और हतश्री वाले हरिहय को देखकर यह बोले थे ।४४। हे इन्द्र ! अब आप सब देवों के साथ भगवान मुकुन्द की शरण में चले जाओ । वही दैत्यों के विनाशक और इस जगत के कर्त्ता हैं और वही तुम्हारा कल्याण करेंगे ।४५। इतना कहकर पितामह ब्रह्माजी उसके तथा समस्त देवों के सहित क्षीर सागर में गये थे ।४६। इसके अनन्तर ब्रह्मा आदि देवों ने भगवान जनार्दन की जो सब लोकों के महेश्वर हैं बहुत

ही श्रेष्ठ वाणियों के द्वारा स्तुति की थी।४७। इसके अनन्तर सनातन वासु-देव भगवान प्रसन्न हुए थे और इस जगत की रक्षा करने में विशेष संसक्त प्रभू ने सम्पूर्ण देवों से कहा था।४८। श्री भगवान ने कहा—आप लोगों का उपवृंहण में तेज के ही द्वारा कर दूंगा। अब मेरे द्वारा जो भी कहा जाता है आप लोगों को वह करना चाहिए।४९।

ओषधिप्रवराः सर्वाः क्षिपत क्षीरसागरे।
असुरैरपि संधाय सममेव च तैरिह ॥५०
मंथानं मंदरं कृत्वा कृत्वा योक्त्रं च वासुकिम्।
मयि स्थिते सहाये तु मथ्यताममृतं सुराः ॥५१
समस्तदानवाश्चापि वक्तव्याः सांत्वपूर्वकम्।
सामान्यमेव युष्माकमस्माकं च फलं त्विति ॥५२
मथ्यमाने तु दुग्धाब्धौ या समुत्पद्यते सुधा।
तत्पानाद् बलिनो यूयममर्त्याश्च भविष्यथ ॥५३
यथा दैत्याश्च पीयूषं नैतत्प्राप्स्यंति किंचन।
केवलं क्लेशवंतश्च करिष्यामि तथा ह्यहम् ॥५४
इति श्रीवासुदेवेन कथिता निखिलाः सुराः।
संधानं त्वतुलैर्दैत्यैः कृतवंतस्तदा सुराः।
नानाविधौषधिगणं समानीय सुरासुराः ॥५५
क्षीराब्धिपयसि क्षिप्त्वा चंद्रमोऽधिकनिर्मलम्।
मन्थानं मंदरं कृत्वा कृत्वा योक्त्रं तु वासुकिम्।
प्रारेभिरे प्रयत्नेन मंथितुं यादसां पतिम् ॥५६

इस क्षीर सागर में आप लोग असुरों के भी साथ में सन्धि अर्थात् मेल-जोल करके सब उनके भी साथ में समस्त परम श्रेष्ठ औषधियाँ डाल दो।५०। और मन्दराचल को मन्थान बनाकर अर्थात् मन्थन करने का साधन बनाकर तथा वासुकि नामक सर्पराज को योक्त अर्थात् मथने की डोरी करके सब देवगण मेरे सहायक होने पर अमृत का मथन करो अर्थात् अमृत निकालो।५१। सान्त्वना के साथ आपको समस्त दानवों से भी इस कार्य को

सम्पन्न कराने के लिए कहना चाहिए। यह उन्हें बताओ कि इसके करने से जो भी कुछ फल होगा वह तो हम और आपको सभी को सामान्य ही होगा अर्थात् उसको हम और आप सभी प्राप्त करेंगे ।५२। इस क्षीरसागर के मन्थन किये जाने पर जो सुधा उत्पन्न होगी उस अमृत के पान करने से आप लोग बलशाली और न मरण वाले हो जाओगे ।५३। जिस प्रकार से ये दैत्यगण उस अमृत को किञ्चिन मात्र भी न प्राप्त कर पावेंगे और केवल मन्थन करने में क्लेश वाले ही होंगे उस प्रकार का उपाय तो मैं कर दूँगा ।५४। यह भगवान् वासुदेव के द्वारा समस्त सुरगणों में कहा गया था तब सब सुरगणों ने उन अतुल दैत्यों के साथ सन्धि की थी। फिर अनेक प्रकार की औषधियाँ सुरो और असुरों ने एकत्रित करके वहाँ पर प्राप्त की थी ।५५। उस क्षीर सागर के जल में डालकर चन्द्रमा से भी अधिक निर्मल मन्दराचल को मन्थन करने का साधन और वासुकि सर्प को उसको डोरी बनाया था। फिर सभी ने मिल-जुलकर क्षीर सागर के मन्थन करने का कार्य बड़े ही प्रबल प्रयत्न से प्रारम्भ कर दिया था ।५६।

वासुकेः पुच्छभागे तु सहिताः सर्वदेवताः ।
शिरोभागे तु दैतेया नियुक्तास्तत्र शौरिणा ॥५७
बलवंतोऽपि ते दैत्यास्तन्मुखोच्छ्वासपावकैः ।
निर्दग्धवपुषः सर्वे निस्तेजस्कास्तदाभवन् ॥५८
पुच्छदेशे तु कर्षंतो मुहुराप्यायिताः सुराः ।
अनुकूलेन वातेन विष्णुना प्रेरितेन तु ॥५९
आदिकूर्माकृतिः श्रीमान्मध्ये क्षीरपयोनिधेः ।
भ्रमतो मंदराद्रेस्तु तस्याधिष्ठानतामगात् ॥६०
मध्ये च सर्वदेवानां रूपेणान्येन माधवः ।
चकर्ष वासुकिं वेगाद्दैत्यमध्ये परेण च ॥६१
ब्रह्मरूपेण तं शैलं विधायाक्रांतवारिधिम् ।
अपरेण च देवर्षिर्महता तेजसा मुहुः ॥६२
उपबृंहितवान्देवानन्येन ते बलशालिनः ।
तेजसा पुनरन्येन बलात्कारसहेन सः ॥६३

वासुकि सर्प के पूँछ के भाग में तो हित के साथ समस्त देवगण और उसके शिर के हिस्से में सब दैत्यगण भगवान् ने ही नियुक्त किये थे ।५७। यद्यपि दैत्यगण बहुत बलवान् थे तो भी उस सर्प के मुख के उच्छ्वासों की अग्नि से उनके समस्त शरीर निर्दग्ध हो गये थे और उस समय में वे बिल्कुल ही तेज से क्षीण हो गये थे ।५८। भगवान् विष्णु के द्वारा प्रेरित अनुकूल वायु से पूँछ के भाग का कर्षण करते हुए देवगण बार-बार आप्यायित (सन्तृप्त) हो रहे थे ।५६। भगवान् आदि कूर्म के आकार वाले बनकर क्षीरसागर के मध्य में भ्रमण करते हुए मन्दर पर्वत के अधिष्ठान बन गये थे जिस पर वह पर्वत टिक रहा था । मध्य में सब देवों के दूसरे स्वरूप से माधव दिखाई दे रहे थे । दूसरे रूप से दैत्यों के मध्य में उन्होंने भी बड़े वेग से वासुकि का कर्षण किया था । ब्रह्म के रूप से जिसने सागर को आक्रान्त कर दिया था उस शैल को धारण किया था और एक दूसरे रूप से देवर्षि ने महान् तेज के द्वारा देवों को सबल बना दिया था ।६०-६२। भगवान् ने देवों का बलवर्धन किया था जिसके वे बली बने रहें और फिर बलात्कारके सहन करने वाले तेज से सभी को कार्य सम्पन्न करने की शक्ति प्रदान की थी ।६३।

उपबृंहितवान्नागं सर्वशक्तिजनार्दनः ।
मथ्यमाने ततस्तस्मिन्क्षीराब्धौ देवदानवैः ।।६४
आविर्बभूव पुरतः सुरभिः सुरपूजिता ।
मुदं जग्मुस्तदा देवा दैतेयाश्च तपोधन ।।६५
मथ्यमाने पुनस्तस्मिन्क्षीराब्धौ देवदानवैः ।
किमेतदिति सिद्धानां दिवि चिंतयता तदा ।।६६
उत्थिता वारुणी देवी मदाल्लोलविलोचना ।
असुराणां पुरस्तात्सा स्मयमाना व्यतिष्ठत ।।६७
जगृहुर्नैव तां दैत्या असुराश्चाभवंस्ततः ।
सुरा न विद्यते येषां तेनैवासुरशब्दिताः ।।६८
अथ सा सर्वदेवानामग्रतः समतिष्ठत ।
जगृहुस्तां मुदा देवाः सूचिताः परमेष्ठिना ।

सुराग्रहणतोऽप्येते सुरशब्देन कीर्तिता: ।।६६
मथ्यमाने ततो भूय: पारिजातो महाद्रुम: ।
आविरासीत्सुगंधेन परितो वासयञ्जगत् ।।७०

सर्वशक्ति शाली जनार्दन प्रभु ने उस नाग वासुकि की भी शक्ति का वर्धन किया था। फिर देवों और दानवों के द्वारा क्षीरसागर के मन्थन किये जाने पर ।६४। फिर आगे अर्थात् सबसे पूर्व सुरों की पूजित सुरभि प्राविर्भूत हुई थी। हे तपोधन ! उसका अवलोकन करके उस समय में देवगण और दैत्यगण सभी प्रसन्नता से भर गये थे ।६५। फिर उस क्षीर सागर के मन्थन करने पर जो कि देवों और दानवों के द्वारा किया गया था, उस समय में सिद्धगण यही चिन्तन कर रहे थे कि यह क्या वस्तु है ।६६। तब उस क्षीर सागर से वारुणी देवी उत्थित हुई थी जिसके मद के कारण परम चञ्चल नेत्र थे। वह असुरों के आगे मुस्कुराती हुई संस्थित हो गयी थी ।६७। दैत्यों ने उसका ग्रहण नहीं किया था। तभी से वे असुर हो गये थे क्योंकि सुरा ग्रहण करने वाले नहीं हुए थे जिनके पास सुरा नहीं है उसी से वे असुर शब्द से कहे गये थे ।६८। इसके पश्चात् वह समस्त देवों के सामने स्थित हो गयी थी। परमेष्ठी के द्वारा संकेतित होकर उन देवों ने बड़े ही आनन्द के साथ उसको ग्रहण कर लिया था। सुरा के ही ग्रहण करने से ये लोग सुर शब्द से कीर्तित हुए थे ।६९। फिर मन्थन किये जाने पर महान् द्रुम परिजात प्रकट हुआ था जो अपनी सुगन्ध से सम्पूर्ण जगत् को सुवासित कर रहा था ।७०।

अत्यर्थसुन्दराकारा धीराश्चाप्सरसां गणा: ।
आविर्भूताश्च देवर्षे सर्वलोकमनोहरा: ।।७१
तत: शीतांशुरुदभूत्तं जग्राह महेश्वर: ।
विषजातं तदुत्पन्नं जगृहुर्नागजातय: ।।७२
कौस्तुभाख्यं ततो रत्नमाददे तज्जनार्दन: ।
तत: स्वपत्रगंधेन मदयंती महौषधी: ।
विजया नाम संजज्ञे भैरवस्तामुपाददे ।।७३
ततो दिव्यांबरधरो देवो धन्वंतरि: स्वयम् ।
उपस्थित: करे बिभ्रदमृताढ्यं कमंडलुम् ।।७४

ततः प्रहृष्टमनसो देवा दैत्याश्च सर्वतः ।
मुनयश्चाभवंस्तुष्टास्तदानीं तपसां निधे ॥७५

ततो विकसितांभोजवासिनीवरदायिनी ।
उत्थिता पद्महस्ता श्रीस्तस्मात्क्षीरमहार्णवात् ॥७६

अथ तां मुनयः सर्वे श्रीसूक्तेन श्रियं पराम् ।
तुष्टुवुस्तुष्टहृदया गंधर्वाश्च जगुः परम् ॥७७

विश्वाचीप्रमुखाः सर्वे ननृतुश्चाप्सरोगणाः ।
गङ्गाद्याः पुण्यनद्यश्च स्नानार्थमुपतस्थिरे ॥७८

फिर हे देवर्षे ! अत्यधिक सुन्दर आकृति वाली सब लोकों में मन को हरण करने वाली और अप्सराओं के गण आविर्भूत हुए थे ।७१। इसके पश्चात् शीतांशु (चन्द्रमा) प्रकट हुआ था जिसको महेश्वर भगवान् ने मस्तक पर धारण करने के लिये ग्रहण कर लिया था । फिर महा कालकूट विष उत्पन्न हुआ था जिसका ग्रहण नाग जातियों ने किया था ।७२। इसके अनन्तर कौस्तुभ मणि जिसका नाम है वह रत्न निकला था उसको भगवान् जनार्दन ने ले लिया था । इसके पश्चात् अपने पत्रों की गन्ध से मद उत्पन्न करती हुई एक महौषधि आविर्भूत हुई थी उसका विजया नाम रक्खा गया था और भैरव ने उसका उपादान किया ।७३। इसके उपरान्त परम दिव्य व शस्त्रों के धारण करने वाले देव आविर्भूत हुए थे जो स्वयं ही धन्वन्तरि वे अपने कर में एक अमृत से परिपूर्ण कमंडल लिए हुए ही उपस्थित हुए थे ।७४। हे तपों के निधे ! फिर देवगण-दैत्यवर्ग और मुनिगण सबके सब प्रसन्न मन वाले तथा परम सन्तुष्ट हुए थे ।७५। इसके बाद उत्फुल्ल कमलों के अन्दर निवास करने वाली—वरदान देने वाली–हाथों में पद्म धारण किये हुए श्री देवी उस क्षीर सागर से उठकर बाहिर आयी थी ।७६। फिर तो सभी मुनिगणों ने उस परा देवी श्री का श्रीसूक्त के द्वारा स्तवन किया था । और परम सन्तुष्ट हृदय वाले गन्धर्वों ने बहुत सुन्दर गान किया था ।७७। जिनमें विश्वाची प्रमुख थे उन सभी ने गान किया था । और अप्सराओं के समूह ने श्री देवी के आगे नृत्य किया था । गंगा आदि जो परम पुण्यमयी सरिताएँ थी वे सभी स्नान के लिए समुपस्थित हो गयी थीं ।७८।

अष्टौ दिग्दंतिनश्चैव मेध्यपात्रस्थितं जलम् ।
आदाय स्नापयांचक्रुस्तां श्रियं पद्मवासिनीम् ॥७९

तुलसीं च समुत्पन्नां पराध्यमैक्यजां हरेः ।
पद्‌ममालां ददौ तस्यै मूर्तिमान्क्षीरसागरः ॥८०
भूषणानि च दिव्यानि विश्वकर्मा समर्पयत् ।
दिव्यमाल्यांबरधरा दिव्यभूषणभूषिता ।
ययौ वक्षःस्थलं विष्णोः सर्वेषां पश्यतां रमा ॥८१
तुलसी तु धृता तेन विष्णुना प्रभविष्णुना ।
पश्यति स्म च सा देवी विष्णुवक्षःस्थलालया ।
देवान्दयार्द्रया दृष्ट्या सर्वलोकमहेश्वरी ॥८२

आठ जो दिग्गज हैं अर्थात् आठों दिशाओं को बांध कर रोकने वाले आठ दन्ती हैं । वे सब पवित्र पात्रों में जल भरकर उस पद्‌मों में निवास करने वाली श्री स्नपन करा रहे थे ।७६। मूर्त्तिमान् क्षीर सागर ने हरि के साथ श्रेय को प्राप्त हुई समुत्पन्न तुलसी को तथा पद्म की माला उस देवी के लिये अर्पित की थी।८०। विश्वकर्मा ने परमाद्‌भुत एवं दिव्य भूषण उसकेलिए समर्पित किये थे । परम उत्तम माला और वस्त्रों के धारण करने वाली एवं दिव्य भूषणों से विभूषिता वह श्री देवी सबके देखते-देखते भगवान् विष्णु के वक्षःस्थल में चली गयी थी ।८१। प्रभविष्णु श्री विष्णु ने तुलसी को तो धारण कर लिया था । भगवान् के वक्षःस्थल में आलय वाली वह देवी देखती थी । सब लोकों की महेश्वरी देवी को दया से आर्द्र दृष्टि से देखा था ।८२।

—×—

॥ मोहिनी प्रादुर्भाव वर्णन ॥

हयग्रीव उवाच—
अथ देवा महेन्द्राद्या विष्णुना प्रभविष्णुना ।
अङ्गीकृता महाधीराः प्रमोदं परमं ययुः ॥१
मलकाद्यास्तु ते सर्वे दैत्या विष्णुपराङ्मुखाः ।
संत्यक्ताश्च श्रिया देव्या भृशमुद्वेगमागताः ॥२
ततो जगृहिरे दैत्या धन्वंतरिकरस्थितम् ।

परमामृतसाराढ्यं कलशं कनकोद्भवम् ।
अथासुराणां देवानामन्योन्यं कलहोऽभवत् ॥३
एतस्मिन्नंतरे विष्णुः सर्वलोकैकरक्षकः ।
सम्यगाराधयामास ललिता स्वैक्यरूपिणीम् ॥४
सुराणामसुराणां चरणं वीक्ष्य सुदारुणम् ।
ब्रह्मा निजपदं प्राप शम्भुः कैलासमास्थितः ॥५
मलकं योधयामास दैत्यानामधिपं वृषा ।
असुरैश्च सुराः सर्वे सांपरायमकुर्वत ॥६
भगवानपि योगीन्द्रः समाराध्य महेश्वरीम् ।
तदेकध्यानयोगेन तद्रूपः समजायत ॥७

श्री हयग्रीव ने कहा—इसके अनन्तर महेन्द्र आदि देवों को भगवान् प्रभविष्णु विष्णु ने जग अंगाकार कर लिया था तो महाधीर वे परम प्रसन्नता को प्राप्त हुए थे ।१। मलक आदि वे सब दैत्य भगवान् विष्णु के पराङ्मुख हो गये थे । जब श्री देवी के द्वारा वे संत्यक्त हो गये थे तो वे अत्यन्त अधिक उद्विग्न होगये थे ।२। इसके उपरान्त उन दैत्यों ने धन्वन्तरि भगवान् के कर में स्थित सुवर्ण निर्मित परमामृत के सार से युक्त कलश को ले लिया था अर्थात् हरण कर लिया था । इसके अनन्तर देवों का और असुरों का परस्पर में कलह उत्पन्न हो गया था ।३। इसी बीच में समस्त लोकों के एक ही रक्षा करने वाले विष्णु भगवान् ने अपने साथ एक रूप वाली ललिता की भली भाँति आराधना की थी ।४। सुरों और असुरों का परम दारुण युद्ध देखकर ब्रह्माजी अपने स्थान पर चले गये थे और शम्भु कैलास पर्वतपर समास्थित होगये थे।५।इन्द्र ने दैत्यों के अधिप मलक से युद्ध किया था । समस्त सुरों ने असुरों के साथ युद्ध किया था ।६। योगीन्द्र भगवान् ने भी महेश्वरी की समाराधना की थी । उन्होंने महेश्वरी का ध्यान योग से द्वारा करके एकता के साथ उसी रूप को प्राप्त हो गये थे ।७।

सर्वसंमोहिनी सा तु साक्षाच्छृङ्गारनायिका ।
सर्वश्रृङ्गारवेषाढ्या सर्वाभरणभूषिता ॥८

सुराणामसुराणां च निवार्य रणमुल्वणम् ।
मंदस्मितेन दैतेयान्मोहयंती जगाद ह ॥९
अलं युद्धेन किं शस्त्रैर्मर्मस्थानविभेदिभिः ।
निष्ठुरैः किं वृथालापैः कंठशोषणहेतुभिः ॥१०
अहमेवात्र मध्यस्था युष्माकं च दिवौकसाम् ।
यूयं तथामी नितरामत्र हि क्लेशभागिनः ॥११
सर्वेषां सममेवाद्य दास्याम्यमृतमद्भुतम् ।
मम हस्ते प्रदातव्यं सुधापात्रमनुत्तमम् ॥१२
इति तस्या वचः श्रुत्वा दैत्यास्तद्वाक्यमोहिताः ।
पीयूषकलशं तस्यै ददुस्ते मुग्धचेतसः ॥१३
सा तत्पात्रं समादाय जगन्मोहनरूपिणी ।
सुराणामसुराणां च पृथक्पंक्ति चकार ह ॥१४

वह देवी तो सबका संमोहन करने वाली थी और वह साक्षात् शृंगार की नायिका थी। वह सम्पूर्ण शृंगार के वेषवाली थी और असुरों का जो अतीव उल्वण युद्ध था। उसका निवारण करके अपने मन्दस्मित के द्वारा दैत्यों की मोहित करती हुई वह बोली।८-९। अब यह युद्ध समाप्त करो, मर्म स्थानों के विभेदन करने वाले शास्त्रों से क्या लाभ होगा। और परम निष्ठुर व्यर्थ के इन अलापों से भी क्या लाभ है जो कि केवल कण्ठों के शोषण करने के कारण स्वरूप ही है।१०। मैं ही आपके और देवों के मध्य में स्थित हूँ इसमें जैसा कि इस समय में आप लोग कर रहे हैं आप लोग तथा ये देवगण अत्यन्त ही क्लेश के भागी होंगे।११। मैं आप सभी के लिए आज इस अद्भुत अमृत को बराबर-बराबर दे दूँगी। अब आप लोग इस उत्तम सुधा के पात्र को मेरे हाथ में दे दीजिए।१२। इस उस महादेवी के वचन का श्रवण करके दैत्य विमोहित हो गये थे क्योंकि उसका वाक्य ही इस प्रकार था। मुग्ध चित्त वाले उन्होंने वह अमृत का कलश उस देवी को दे दिया था।१३। सम्पूर्ण इस जगत् के मोहन करने वाली उस देवी ने उस अमृत के कलश को ले लिया था और फिर उसने सुरों की तथा असुरों की पृथक्-पृथक् पंक्ति बिठा दी थी।१४।

द्वयोः पंक्त्योश्च मध्यस्थास्तानुवाच सुरासुरान् ।
तूष्णीं भवन्तु सर्वेपि क्रमशो दीयते मया ॥१५
तद्वाक्यमुररीचक्रुस्ते सर्वे समवायिनः ।
सा तु संमोहिताश्लेषलोका दातुं प्रचक्रमे ॥१६
क्वणत्कनकदर्वीका क्वणन्मंगलकंकणा ।
कमनीयविभूषाढ्या कला सा परमा बभौ ॥१७
वामे वामे करांभोजे सुधाकलशमुज्ज्वलम् ।
सुधां तां देवतापंक्तौ पूर्वं दर्व्या तदादिशत् ॥१८
दिशंती क्रमशस्तत्र चन्द्रभास्करसूचितम् ।
दर्वीकरेण चिच्छेद सैंहिकेयं तु मध्यगम् ।
पीतामृतशिरोमात्रं तस्य व्योम जगाम च ॥१९
तं दृष्ट्वाऽप्यसुरास्तत्र तूष्णीमासन्विमोहिताः ।
एवं क्रमेण तत्सर्वं विबुधेभ्यो वितीर्य सा ।
असुराणां पुरः पात्र सा निनाय तिरोदधे ॥२०
रिक्तपात्रं तु तं दृष्ट्वा सर्वे दैतेयदानवाः ।
उद्वेलं केवलं क्रोधं प्राप्ता युद्धचिकीर्षया ॥२१

उन दोनों पंक्तियों के मध्य में स्थित होकर उन समस्त सुरों और असुरों से उसने कहा था । आप सब लोग बिल्कुल चुपचाप रहें—मेरे द्वारा आप सबको क्रम से ही यह अमृत दिया जाता है ।१५। उन सभी ने जो समवायी थे उस देवी के उस वाक्य को स्वीकृत कर लिया था । वह तो सभी लोकों को संमोहित करने वाली थी । फिर उस देवी ने देने का उपक्रम किया था ।१६। उस समय में उसके सुवर्ण की करधनी क्वणित हो रही थी तथा उसके करों के कङ्कण भी क्वणित हो रहे थे जो परम मंगल स्वरूप थे । वह परम कमनीय भूषा से समन्वित थी । उस समय में वह परमाधिक मधुर मूर्त्ति सुशोभित हो रही थी ।१७। परम सुन्दर वाम कर कमल में तो वह उज्ज्वल सुधा का कलश था, उस सुधा को उसने दर्वी से प्रथम देवों की पंक्ति में ही देना आरम्भ किया था ।१८। वह वहाँ पर क्रम से देती हुई

देखती जा रही थी। उस समय में मध्य में सैंहिकेय स्थित था जिसकी सूचना संकेत द्वारा चन्द्र और सूर्य ने उसको दे दी थी। अतः दर्वी के कर से उसका उस देवी ने छेदन कर दिया था। वह अमृत का पान कर चुका था अतएव उसका केवल शिर आकाशमें चला गया था।१९।उसको देखकर वहाँ पर जो असुर थे वे विमोहित हुए चुप थे। इसी प्रकार से क्रमसे उस देवी ने वह सम्पूर्ण अमृत देवों के लिए वितीर्ण कर दिया था और असुरों के आगे उस खाली पात्र को रखकर वह तिरोहित हो गयी थी।२०। उन सब दैत्य दानवों ने उस खाली पात्र को देखा था और युद्ध करने की इच्छा से उन्होंने केवल असीम क्रोध किया था।२१।

इन्द्रादयः सुराः सर्वे सुधापानाद्बलोत्तराः।
दुर्बलैरसुरैः सार्धं समयुद्ध्यन्त सायुधाः ॥२२
ते विध्यमानाः शतशो दानवेंद्राः सुरोत्तमैः।
दिगंतान्कतिचिज्जग्मुः पातालं कतिचिद्ययुः ॥२३
दैत्यं मलकनामानं विजित्य विबुधेश्वरः।
आत्मीयां श्रियमाजह्रे श्रीकटाक्षसमीक्षितः ॥२४
पुनः सिंहासनं प्राप्य महेन्द्रः सुरसेवितः।
त्रैलोक्यं पालयामास पूर्ववत्पूर्वदेवजित् ॥२५
निर्भया निखिला देवास्त्रैलोक्ये सचराचरे।
यथाकामं चरन्ति स्म सर्वदा हृष्टचेतसः ॥२६
तदा तदखिलं दृष्ट्वा मोहिनीचरित मुनिः।
विस्मितः कामचारी तु कैलासं नारदो गतः ॥२७
नन्दिना च कृतानुज्ञः प्रणम्य परमेश्वरम्।
तेन संभाव्यमानोऽसौ तुष्टो विष्टरमास्त सः ॥२८

इन्द्र आदि समस्त सुरगण सुधा के पान से विशेष बलवान् होकर दुर्बल असुरों के साथ आयुधों को लेकर भली भाँति लड़े थे।२२। उन उत्तम सुरों के द्वारा वे दानवेन्द्र सैकड़ों बार विध्यमान हुए थे उनमें से कुछ तो अन्य दिशाओं में चले गये थे और कुछ पाताल लोक में चले गये थे।२३। श्री देवी के कटाक्षों से सम्प्रेरित होकर देवों के स्वामी इन्द्र देव ने मलक नाम वाले दैत्य को जीत लिया था और

उसने अपनी श्री का आहरण कर लिया था ।२४। सुरगणों के द्वारा सेवित महेन्द्र देव ने फिर अपने सिंहासन को प्राप्त कर लिया था और पूर्व की ही भाँति पूर्व देव जित् ने त्रैलोक्य का परिपालन किया था ।२५। फिर समस्त देवगण निर्भय होकर इस चराचर त्रिलोकी में सर्वदा प्रसन्न चित्त होते हुए अपनी इच्छा के अनुसार सञ्चरण किया करते थे ।२६। उस समय सम्पूर्ण मोहिनी के चरित को देखकर मुनि नारद बहुत ही आश्चर्यान्वित होकर स्वेच्छा से चरण करने वाले कैलास गिरि पर चले गये थे ।२७। वहाँ पर नन्दी से आज्ञा पाकर उन्होंने परमेश्वर को प्रणाम किया था । शिव प्रभु के द्वारा भली भाँति आदर प्राप्त करके परम तुष्ट हुए थे और आसन पर समवस्थित हो गये थे ।२८।

आसनस्थं महादेवो मुनिं स्वेच्छाविहारिणम् ।
पप्रच्छ पार्वतीजानिः स्वच्छस्फटिकसन्निभः ॥२९
भगवन्सर्ववृतज्ञ पवित्रीकृतविष्टर ।
कलहप्रिय देवर्षे किं वृत्तं तत्र नाकिनाम् ॥३०
सुराणामसुराणां वा विजयः समजायत ।
किं वाच्यमृतवृत्तांतं विष्णुना वापि किं कृतम् ॥३१
इति पृष्टो महेशेन नारदो मुनिसत्तमः ।
उवाच विस्मयाविष्टः प्रसन्नवदनेक्षणः ॥३२
सर्वं जानासि भगवन्सर्वज्ञोऽसि यतस्ततः ।
तथापि परिपृष्टेन मया तद्वक्ष्यतेऽधुना ॥३३
तादृशे समरे घोरे सति दैत्यदिवौकसाम् ।
आदिनारायणः श्रीमान्मोहिनीरूपमादधे ॥३४
तामुदारविभूषाढ्यां मूर्तां शृङ्गारदेवताम् ।
सुरासुराः समालोक्य विरताः समरोद्यमात् ॥३५

परम स्वच्छ स्फटिक मणि के सदृश स्वरूप वाले पार्वती के स्वामी श्री महादेवजी ने आसन पर विराजमान नारदजीजी से जो कि अपनी ही इच्छा से विहार करने वाले थे पूछा था ।२९। हे भगवान् ! आपने इस

करने वाला है। अब यह बतलाइये कि उन स्वर्गवासी देवगणों का क्या हाल है? ।३०। सुरों का अथवा असुरों का विजय हुआ है? अथवा उस अमृत का क्या हुआ—यह भी वृत्तान्त बतलाइए तथा भगवान विष्णु ने उसमें क्या किया था? ।३१। इस तरह से महेश प्रभु के द्वारा पूछे गये मुनिश्रेष्ठ नारदजी ने परम विस्मय से आविष्ट होकर प्रसन्न मुख और नेत्रों वाले नारदजी ने कहा था ।३२। हे भगवन्! आप तो सभी कुछ जानते हैं क्योंकि आप स्वयं सर्वज्ञ हैं। तो भी क्योंकि आपने मुझसे पूछा है अतः मैं अब वह सब बतलाता हूँ ।३३। उस प्रकार का महान् घोर जब दैत्यों और देवों का युद्ध शुरू हो गया था तो उस समय में आदि नारायण ने जो परम श्री सम्पन्न हैं मोहिनी का स्वरूप धारण कर लिया था ।३४। उस मोहिनी का विलोकन करते ही जो परमोज्ज्वल विभूषा से सुसम्पन्न थीं और मूर्त्तिमती शृङ्गार की देवता थी सभी सुर और असुर युद्ध के उद्यम से विरत हो गये थे ।३५।

तन्मायामोहिता दैत्याः सुधापात्रं च याचिताः ।
कृत्वा तामेव मध्यस्थामर्पयामासुरंजसा ॥३६
तदा देवी तदादाय मंदस्मितमनोहरा ।
देवेभ्य एव पीयूषमशेषं विततार सा ॥३७
तिरोहितामदृष्ट्वा तां दृष्ट्वा शून्यं च पात्रकम् ।
ज्वलन्मन्युमुखा दैत्या युद्धाय पुनरुत्थिताः ॥३८
अमरैरमृतास्वादादत्युल्वणपराक्रमैः ।
पराजिता महादैत्या नष्टाः पातालमभ्ययुः ॥३९
इमं वृत्तांतमाकर्ण्य भवानीपतिरव्ययः ।
नारदं [illegible]पयित्वाशु तदुक्तं सततं स्मरन् ॥४०
अज्ञातः प्रमथैः सर्वैः स्कन्दनंदिविनायकैः ।
पार्वतीसहितो विष्णुमाजगाम सविस्मयः ॥४१
क्षीरोदतीरगं दृष्ट्वा सस्त्रीकं वृषवाहनम् ।
भोगिभोगासनाद्विष्णुः समुत्थाय समागतः ॥४२

उस मोहिनी की माया से मोहित होते हुए दैत्यों से जब सुधा का पात्र माँगा गया था तो उन्होंने उसी मोहिनी को मध्यस्थ बनाकर तुरन्त ही वह पात्र उसको दे दिया था ।३६। मन्द मुस्कान से परम मनोहर उस देवी ने उसी समय में उस पात्र को ले लिया था। उसने इस सम्पूर्ण सुधा को देवों के ही लिए बाँटकर खाली कर दिया था ।३७। जब उन्होंने देखा था कि वह मोहिनी तो तिरोहित हो गयी है और वह सुधा का पात्र खाली है तो क्रोध से उन सबका मुख लाल हो गया था और वे दैत्य फिर युद्ध करने के लिए समुद्यत हो गये थे ।३८। अमृत के खाने से वे देवगण तो अमर हो गये थे और उनका पराक्रम भी बहुत ही उल्वण हो गया था। उन्होंने उस युद्ध में दैत्यों को पराजित कर दिया था फिर वे महादैत्य नष्ट होते हुए पाताल लोक में चले गये थे ।३९। अविनाशी भवानी के स्वामी ने इस वृत्तान्त का श्रवण करके नारदजी को तो विदा कर दिया था और उसी वृत्तान्त का निरन्तर स्मरण करने लगे थे ।४०। स्कन्द-नन्दी और विनायक इन समस्त गणों के द्वारा अज्ञात होते हुए बड़े ही आश्चर्य से समन्वित होकर केवल पार्वती को साथ में लेकर भगवान विष्णु के समीप में आ गये थे ।४१। क्षीर सागर के तट पर अपनी प्रिया के साथ भगवान शम्भु का दर्शन करके शेष की शय्या से समुत्थित होकर भगवान विष्णु तुरन्त ही वहाँ पर समागत हो गये थे ।४२।

वाहनादवरुह्येशः पार्वत्या सहितः स्थितम् ।
तं दृष्ट्वा शीघ्रमागत्य संपूज्यार्घ्यादितो मुदा ।।४३
सस्नेहं गाढमालिंगय भवानीपतिमच्युतः ।
तदागमनकार्यं च पृष्टवान्विष्टरश्रवाः ।।४४
तमुवाच महादेवो भगवन्पुरुषोत्तम ।
महायोगेश्वर श्रीमन्सर्वसौभाग्यसुन्दरम् ।।४५
सर्वसंमोहजनकमवाङ्मनसगोचरम् ।
यद्रूपं भवतोपात्तं तन्मह्यं संप्रदर्शय ।।४६
द्रष्टुमिच्छामि ते रूपं शृंगारस्याधिदैवतम् ।
अवश्यं दर्शनीयं मे त्वं हि प्रार्थितकामधुक् ।।४७
इति संप्रार्थितः शश्वन्महादेवेन तेन सः ।

यद्ध्यानवैभवाल्लब्धं रूपमद्वैतमद्भुतम् ॥४८
तदेवानन्यमनसा ध्यात्वा किंचिद्विहस्य सः ।
तथास्त्विति तिरोऽधत्त महायोगेश्वरो हरिः ॥४६

भगवान शिव वाहन से उतर कर पार्वती के सहित विष्णु भगवान के समीप में पहुँचे और संस्थित भगवान की बड़े आनन्द से पूजा की और अर्घ्य अर्पित किया था ।४३। भगवान अच्युत ने भवानी के पति का स्नेह के साथ गाढालिंगन किया था । विष्णु भगवान ने उनके समागमन का कारण पूछा था ।४४। महादेवजी ने भगवान से कहा—आप तो उत्तम पुरुष है और महान योगेश्वर हैं । आपने श्री सम्पन्न—सभी प्रकार के सौभाग्य से परम सुन्दर तथा सबको संमोह का पैदा करने वाला जो वाणी और मन से कभी गोचर नहीं हो सकता है कैसा स्वरूप आपने धारण किया था । उस स्वरूप का प्रदर्शन मुझे भी कृपाकर कराइए ।४५-४६। मैं आपके—उस स्वरूप का दर्शन करना चाहता हूँ जो कि शृंगार का अधिष्ठात्री देवता है । मुझे वह अवश्य दिखाना चाहिए । आप तो प्रार्थित पदार्थों के प्रदान करने वाले कामधेनु ही हैं ।४७। इस प्रकार से महादेवजी के द्वारा बराबर भगवान विष्णु की प्रार्थना की गयी थी । जिनके ध्यान के वैभव से अद्वैत और अद्भुत रूप प्राप्त किया था ।४८। उसी का अनन्यमन से ध्यान करके और कुछ हँसकर उन्होंने कहा—ऐसा ही होगा—और फिर महोयोगेश्वर हरि तिरोहित हो गये थे ।४६।

सर्वोऽपि सर्वतश्चक्षुर्मुहुर्व्यापारयन्क्वचित् ।
अदृष्टपूर्वमाराममभिरामं व्यलोकयत् ॥५०
विकसत्कुसुमश्रेणीविनोदिमधुपालिकम् ।
चंपकस्तबकामोदसुरभीकृतदिक्तटम् ॥५१
माकन्दवृन्दमाध्वीकमाद्यदुल्लोलकोकिलम् ।
अशोकमण्डलीकांडसतांडवशिखण्डिकम् ॥५२
भृङ्गालिनवझंकाररजितवल्लकिनिस्वनम् ।
पाटलोदारसौरभ्यपाटलीकुसुमोज्ज्वलम् ॥५३
तमालतालहितालकृतमालाविलासितम् ।
पर्यन्तदीर्घिकादीर्घपङ्कजश्रीपरिष्कृतम् ॥५४

वातपातचलच्चारुपल्लवोत्फुल्लपुष्पकम् ।
सन्तानप्रसवमोदसन्तानाधिकवासितम् ॥५५

तत्र सर्वत्र पुष्पाढ्ये सर्वलोकमनोहरे ।
पारिजाततरोर्मूले कान्ता काचिददृश्यत ॥५६

भगवान शिव ने भी सभी ओर अपनी दृष्टि डालते हुए देखा था तो एक पहिले जो कभी भी नहीं देखा था ऐसा परम सुन्दर उद्यान देखा था ।५०। जो एसा था कि प्रसून खिले हुए थे और उन पुष्पों पर मधुपों की श्रेणियाँ गुञ्जार करती हुई आनन्द ले रही थीं । चम्पा के पुष्पों के स्तवनों की परम रमणीय गन्ध से सभी दिशाएँ सुगन्धित हो रही थीं ।५१। माकन्दों के वृन्द और माध्वीक पर मदमस्त कोकिलें उल्लसित हो रही थीं । अशोक वृक्षों के समुदायों में मयूरगण अपना अद्भुत ताण्डव नृत्य कर रहे थे ।५२। भ्रमरों की पंक्तियों की गूँज की झङ्कार से वल्लभियों की ध्वनि भी वहाँ पर पराजित हो गयी थी । पाटलों की उदार सुगन्ध से पाटली कुसुमों की उज्ज्वलता वहाँ पर भरी हुई थी ।५३। ताल की सुखद मालाओं से वह शोभित था उस उद्यान के किनारों पर बड़े-बड़े सरोवर बने हुए थे जिनमें बड़ी विशाल कमलों की शोभा से वह आराम समलंकृत था ।५४। वायु के मन्द झोंके से द्रुमों के पत्र हिल रहे थे और उन पत्रों के मध्य में विकसित पुष्पों की अपूर्व छटा विद्यमान थी । प्रसून और फलों के आमोद के विस्तार से वह अभिराम उद्यान अधिक सुवासित हो रहा था । वहाँ पर सभी जगह विकसित पुष्पों की भरमार थी और वह सभी लोगों के लिए परम मनोहर था । वहाँ पर एक पारिजात के वृक्ष के नीचे कोई एक परमाधिक सुन्दरी दिखलाई दी थी ।५५-५६।

बालार्कपाटलाकारा नवयौवनदर्पिता ।
आकृष्टपद्मरागाभा चरणाब्जनखच्छदा ॥५७

यावकश्रीविनिक्षेपपादलौहित्यवाहिनी ।
कलनिःस्वनमञ्जीरपादपद्ममनोहरा ॥५८

अनंगवीरतूणीरदर्पोन्मदनजंघिका ।
करिशुण्डाकदलिकाकान्तितुल्योरुशालिनी ॥५९

अरुणेन दुकूलेन सुस्पर्शेन तनीयसा ।
अलंकृतनितंबाढ्या जघनाभोगभासुरा ॥६०

नवमाणिक्यसन्नद्धहेमकांचीविराजिता ।
नतनाभिमहावर्त्तत्रिवल्यूर्मिप्रभाझरा ॥६१

स्तनकुड्मलहिंदोलमुक्तादामशतावृता ।
अतिपीवरवक्षोजभारभंगुरमध्यभूः ॥६२

शिरीषकोमलभुजा कंकणांगदशालिनी ।
सोर्मिकांगुलिमन्मृष्टशंखसुन्दरकंधरा ॥६३

वह बाल सूर्य के समान पाटल की आकृति वाली थी और नूतन यौवन के दर्प से समन्वित थी। उसके चरण कमलोपम कोमल और नखछद आकृष्ट पद्मराग की आभा वाले थे।५७। यावक की श्री के विनिक्षेप से उसके चरणों में लालिमा थी जिसको वह वहन कर रही थी। उसके चरणों में परम मनोहर ध्वनि संयुक्त मञ्जीर थे।५८। उसके जघन कामदेव वीर के तूणीर को उन्मादित करने वाले थे। उसके उरुस्थल करिशुण्ड-कदली की कान्ति को भी शमन करने वाले थे।५९। यह अरुण वर्ण का बहुत ही बारीक और सुख स्पर्श वाला वस्त्र पहिने हुई थी जिसस उसके नितम्ब समलंकृत थे और वह जघनों के आभोग से परम भासुर थी।६०। नवीन माणिक्य से बँधी हुई सुवर्ण की करधनी से विभूषित थी। उसकी नाभि नत महावर्त्त के समान थी उसके ऊपर त्रिवली की ऊर्मियों की प्रभा झलक रही थी।६१। कलियों के आकार वाले स्तनों के हिण्डोलों पर सैकड़ों मोतियों के हार पहिले हुई थी। उसके उरोज अत्यधिक स्थूल थे और उनके भार से उसका कटिभाग झुका हुआ था।६२। उसकी भुजाएँ शिरीष के सदृश अतीव कोमल थीं जिनमें कङ्कण और अंगद धारण किये हुई थीं। उसकी अंगुलियाँ ऊर्मियों के समान प्रतीत हो रही थीं जो अत्यधिक पतली और कोमल थीं तथा उसकी ग्रीवा सुन्दर शंख के समान नतोन्नत थी।६३।

मुखदर्पणवृत्ताभचुबुकापाटलाधरा ।
शुचिभिः पंक्तिभिः शुद्धैर्विद्यारूपैर्विभास्वरैः ॥६४

कुन्दकुड्मलसच्छायैर्दन्तैर्दर्शितचन्द्रिका ।

स्थूलमौक्तिकसन्नद्धनासाभरणभासुरा ॥६५
केतकांतर्दलद्रोणिदीर्घदीर्घविलोचना ।
अर्धेन्दुतुलिताफाले सम्यक्क्लृप्तालकच्छटा ॥६६
पालीवतंसमाणिक्यकुन्डलामडितश्रुतिः ।
नवकर्पूरकस्तूरीसामोदितवीटिका ॥६७
शरच्चारुनिशानाथमंडलीमधुरानना ।
स्फुरत्कस्तूरितिलका नीलकुन्तलसंहृतिः ॥६८
सीमंतरेखाविन्यस्तसिंदूरश्रेणिभासुरा ॥६९
स्फुरच्चन्द्रकलोत्तंसमदलोलविलोचना ।
सर्वश्रृङ्गारवेषाढ्या सर्वाभरणमंडिता ॥७०

उसका मुख दर्पण के सदृश वर्तुल आभा से युक्त था तथा चुबुक और अधर पाटल थे। उसकी दाँतों की पंक्ति परम शुचि-शुद्ध-विद्या स्वरूप भास्वर थीं। उनकी कान्ति कुन्द की कलियों के समान थी जिनसे चन्द्रिका सी दिखलायी दे रही थी। का आभरण स्थूल मोती से खचित नासिका था। इससे यह परमाधिक भासुर प्रतीत हो रही थी।६४-६५। केतक के अन्तर दल के सदृश शोभित बड़े-बड़े उसके नेत्र थे। अर्ध चन्द्र की तुलना वाले मुख पर बिखरी हुई अलकों की छटा थी।६६। पालीवतंस माणिक्य के कुण्डलों से उसके दोनों कर्ण विभूषित हो रहे थे। उसके मुख में ताम्बूल की वीटिका थी जो नव कर्पूर और कस्तूरी के रस से आमोदित थी।६७। शरत्कालीन चन्द्रमा के मण्डल के समान उसका परम मधुरमुख था। उसके भाल पर स्फुरित कस्तूरी का तिलक था और ऊपर शिर पर नीलाभ केशों का जूड़ा था।६८। वह सीमान्त रेखा से विन्यस्त सिन्दूर की श्रेणी से परम भासुर भी अर्थात् मध्य में सीधी केशों में सिन्दूर की रेखा विराजमान थी।६९। स्फुरित चन्द्र की कला के उत्तंस मद से चञ्चल नेत्रों वाली थी। वह सम्पूर्ण श्रृंगार के वेष से समन्वित तथा अंगों के समस्त आभरणों से समलंकृत थी।७०।

तामिमां कंदुकक्रीडालोलामालोलभूषणम् ।
दृष्ट्वा क्षिप्रमुमां त्यक्त्वा सोऽन्वधावदथेश्वरः ॥७१

उमापि तं समावेक्ष्य धावंतं चात्मशः प्रियम् ।
स्वात्मानं स्वात्मसौन्दर्यं निंदंती चातिविस्मिता ।
तस्थावाङ्मुखी तूष्णीं लज्जासूयासमन्विता ॥७२
गृहीत्वा कथमप्येनामालिलिंग मुहुर्मुहुः ।
उद्धूयोद्धूय साप्येवं धावति स्म सुदूरतः ॥७३
पुनर्गृहीत्वा तामीशः कामं कामवशीकृतः ।
आश्लिष्टं चातिवेगेन तद्वीर्यं प्रच्युतं तदा ॥७४
ततः समुत्थितो देवो महाशास्ता महाबलः ।
अनेककोटिदैत्येंद्रगर्वनिर्वापणक्षमः ॥७५
तद्वीर्यबिंदुसंस्पर्शात्सा भूमिस्तत्र तत्र च ।
रजतस्वर्णवर्णाभूल्लक्षणाद्विध्यमर्दन ॥७६
तथैवांतर्दधे सापि देवता विश्वमोहिनी ।
निवृत्तः स गिरीशोऽपि गिरिं गौरीसखो ययौ ॥७७

वह एक कन्दुक से क्रीड़ा कर रही थी अर्थात् बार-बार गेंद को उछाल रही थी जिससे उसके सर्वाङ्ग भूषण भी समालोलित हो रहे थे। ऐसी उस रूप लावण्य एवं मादक यौवन से सुसम्पन्ना सुन्दरी को अवलोकित करके शिव ने पार्वती का त्याग कर दिया था और शीघ्र ही उस सुन्दरी को पकड़ कर आलिङ्गन करने के लिए उसके पीछे दौड़ पड़े थे। यद्यपि शिव अखिलेश्वर थे तो भी उसके सौन्दर्य को निरख कर विमोहित हो गये थे ।७१। उमा देवी ने जब अपने प्रिय पति को उसके पीछे दौड़ते हुए देखा था तो वह अपने आपको और अपनी सुन्दरता को भी हेय समझते हुए वह बहुत ही विस्मित हो गयी थी। विस्मय यही था कि परम ज्ञानी योगेश्वर को यह क्या कामदेव का अद्‌भुत विकार उत्पन्न हो गया है जब कि मैं सुन्दरी पत्नी भी समीप में विद्यमान हूँ। उस समय में उमा देवी लज्जा और असूया से युक्त होकर चुपचाप नीचे की ओर मुख करके स्थित हो गयी थीं ।७२। शिवजी ने किसी भी प्रकार से इसको पकड़ लिया था और बार-बार आलिङ्गन किया था किन्तु वह अपने आपको छुड़ा-छुड़ाकर बहुत दूर भागती चली जा रही थी ।७३। काम के वश में पड़े हुए शिव ने फिर उसको अच्छी तरह से पकड़ लिया था। उन्होंने बहुत ही वेग से आश्लेषण किया था और

उसी समय में उनका वीर्य स्खलित हो गया था ।७४। इसके अनन्तर महान बलवान और महान शासक देव उठकर खड़े हुए थे, जो कि बहुत से करोड़ों दैत्येन्द्रों के निर्वापण करने में समर्थ थे ।७५। शिवजी के वीर्य के संस्पर्श से वहाँ-वहाँ पर जो बिन्दुओं का पात हुआ था उससे हे विन्ध्य मर्दन ! वह भूमि रजत और सुवर्ण के वर्ण वाली हो गयी थी ।७६। उसी समय में वहीं पर वह विश्व मोहिनी देवता तिरोहित हो गयी थी । फिर निवृत्त हुए गिरीश भी अपनी गौरी के साथ कैलास पर चले गये थे ।७७।

अथाद्‌भुतमिदं वक्ष्ये लोपामुद्रापते शृणु ।
यन्न कस्यचिदाख्यातं ममैव हृदये स्थितम् ॥७८
पुरा भंडासुरो नाम सर्वदैत्यशिखामणिः ।
पूर्वं देवान्बहुविधान्यः शास्ता स्वेच्छया पटुः ॥७९
विशुक्रं नाम दैतेयं वर्गसंरक्षणक्षमम् ।
शुक्रतुल्यं विचारज्ञं दक्षांशेन ससर्ज सः ॥८०
वामांसेन विषांगं च सृष्टवान्दुष्टशेखरम् ।
धूमिनीनामधेयां च भगिनीं भंडदानवः ॥८१
भ्रातृभ्यामुग्रवीर्याभ्यां सहितो निहताहितः ।
ब्रह्मांडं खंडयामास शौर्यवीर्यसमुच्छ्रितः ॥८२
ब्रह्मविष्णुमहेशाश्च तं दृष्ट्वा दीप्ततेजसम् ।
पलायनपराः सद्यः स्वे स्वे धाम्नि सदा वसन् ॥८३
तदानीमेव तद्‌बाहुसंमर्दनविमूर्च्छिताः ।
श्वसितुं चापि पटवो नाभवन्नाकिनां गणाः ॥८४

इसके अनन्तर हे लोपा मुद्रापते ! मैं एक अति अद्‌भुत बात बतलाऊँगा । उसका आप श्रवण कीजिए । जिसको मैंने किसी को भी अब तक नहीं कहा था और वह मेरे हृदय में ही स्थित है ।७८। बहुत पुराने समय में भण्डासुर नामक दैत्य था जो समस्त दैत्यों का शिरोमणि था । वह इतना कुशल था कि उसने पहिले अपनी ही इच्छा से बहुत से देवों का शास्ता हुआ था ।७९। उसने विशुक्र नाम वाले दैतेय को जो सबके संरक्षण में समर्थ था । वह शुक्र के ही समान विचारज्ञ था उसको दक्ष के अंश से उसने सृजन किया

था ।८०। उसने वामांश से दुष्ट शिरोमणि विषाङ्ग को सृजित किया था। भण्ड दानव ने धूमिनी नाम वाली ध्येया भगिनी का भी सृजन किया था। ।८१। उग्रवीर्य वाले भाइयों के साथ अपने अहित को निहित करने वाला था। शौर्य और वीर्य से समुच्छ्रित उसने पूर्ण ब्रह्माण्ड को खण्डित कर दिया था ।८२। ब्रह्मा, विष्णु और महेश दीप्त तेज वाले उसको देखकर ही भागने में तत्पर हो गये थे और तुरन्त ही अपने-अपने धाम में ही उसकी भुजा के द्वारा संमर्दन से बेहोश हुए देवों के गण श्वास लेने में भी कुशल नहीं हुए थे। अर्थात् श्वास भी न ले सके थे ।८३-८४।

केचित्पातालगर्भेषु केचिदंबुधिवारिषु ।
केचिद्दिगंतकोणेषु केचित्कुंजेषु भूभृताम् ।।८५
विलीना भृशवित्रस्तास्त्यक्तदारसुतस्त्रियः ।
भ्रष्टाधिकारा ऋभवो विचेरुश्छन्नवेषकाः ।।८६
यक्षान्महोरगान्सिद्धान्साध्यान्समरदुर्मदान् ।
ब्रह्माणं पद्मनाभं च रुद्रं वज्रिणमेव च ।
मत्वा तृणायितान्सर्वांल्लोकान्भंडः शशास ह ।।८७
अथ भंडासुरं हंतुं त्रैलोक्यं चापि रक्षितुम् ।
तृतीयमुदभूद्रूपं महायागानलान्मुने ।।८८
यद्रूपशालिनीमाहुर्ललितां परदेवताम् ।
पाशांकुशधनुर्बाणपरिष्कृतचतुर्भुजाम् ।।८९
सा देवी परमा शक्तिः परब्रह्मस्वरूपिणी ।
जघान भंडदैत्येन्द्रं युद्धे युद्धविशारदा ।।९०

जब स्वर्ग लोक में देवों में भगदड़ मची थी तो उनमें से कुछ तो पाताल लोक में भागकर जा छिपे थे—कुछ महासागर के जल में चले गये थे—कुछ दूर दिशाओं के छोर में चले गये थे और कुछ पर्वतों की कुञ्जों में चले गये थे ।८५। वे सब बहुत ही भयभीत होते हुए अपने सुत दारा और स्त्रियों को वहाँ पर ही छोड़ कर परम समर्थ भी अधिकारों से भ्रष्ट होकर छिपे हुए वेष में इधर-उधर विचरण करने लगे थे ।८६। यक्ष-महोरग-सिद्ध-साध्य सबको जो समर के बड़े दुर्मद थे तथा ब्रह्मा-रुद्र और विष्णु को भी, समस्त लोकों को तिनके के समान समाचरण वाले समझकर वह भण्ड ही

सब पर शासन करने लगा था ।८७। हे मुने ! इसके अनन्तर उस महान बली भण्डासुर का हनन करने के लिए तथा तीनों लोकों की संरक्षा करने के वास्ते महायाग को अग्नि से एक तीसरा ही स्वरूप समुद्भूत हुआ था ।८८। जिस स्वरूप के धारण करने वाली को ललिता नाम से लोग कहा करते थे जो पर देवता थी । उसके चारों करों में पाश—अंकुश—धनुष और बाण ये आयुध थे ।८९। वह देवी परमाधिक शक्ति वाली थी और वह साक्षात् पर-ब्रह्म के स्वरूप वाली थी । युद्ध करने में महा विशारद उसने उस भण्ड दैत्येन्द्र को युद्ध में मार गिराया था ।९०।

भण्डासुर प्रादुर्भाव वर्णन

अगस्त्य उवाच—

कथं भंडासुरो जातः कथं वा त्रिपुरांबिका ।
कथं बभंज तं संख्ये तत्सर्वं वद विस्तरात् ॥१
हयग्रीव उवाच
पुरा दाक्षायणीं त्यक्त्वा पितुर्यज्ञविनाशनम् ॥२
आत्मानमात्मना पश्यञ्ज्ञानानन्दसात्मकः ।
उपास्यमानो मुनिभिरद्वंद्वगुणलक्षणः ॥३
गङ्गाकूले हिमवतः पर्यन्ते प्रविवेश ह ।
सापि शङ्करमाराध्य चिरकालं मनस्विनी ॥४
योगेन स्वां तनुं त्यक्त्वा सुतासीद्धिमभूभृतः ॥५
स शैलो नारदाच्छ्रुत्वा रुद्राणीति स्वकन्यकाम् ।
तस्य शुश्रूषणार्थाय स्थापयामास चांतिके ॥६
एतस्मिन्नंतरे देवास्तारकेण हि पीडिताः ।
ब्रह्मणोक्ताः समाहूय मदनं चेदमब्रुवन् ॥७

अगस्त्य मुनि ने कहा—यह भण्डासुर कैसे समुत्पन्न हुआ था अथवा यह त्रिपुराम्बिका देवी कैसे प्रादुर्भूत हुई थी । उसने समरांगण में उस महा-दैत्य को कैसे मारा था—यह सम्पूर्ण वृत्त मेरे सामने विस्तार के साथ वर्णन

कीजिए ।१। हयग्रीव जी ने कहा—पहिले दाक्षायणी का त्याग करके पिता के यज्ञ का विध्वंस हुआ था ।२। अपनी आत्मा से आत्मा को देखते हुए ज्ञान और आनन्द के रस के स्वरूप वाले जो कि अद्वन्द्व गुण के लक्षण वाले थे—मुनिगणों के द्वारा उपास्यमान थे ।३। वे प्रभु उस समय में हिमवान् पर्वत के अन्दर एक भीतरी भाग में प्रवेश कर गये थे। उस मनस्विनी ने भी बहुत लम्बे समय तक भगवान् शंकर की समाराधना की थी ।४। उस जगदम्बा ने भी योग के द्वारा अपने कलेवर का त्याग कर दिया था और फिर वह हिमवान् गिरिराज की पुत्री होकर प्रादुर्भूत हुई थी ।५। उस शैल राज ने देवर्षि नारद जी से यह सुना था कि उसकी कन्या साक्षात् रुद्राणी होगी। अतएव उस हिमवान् ने उस अपनी कन्या को समीप में ही भगवान् शिवकी शुश्रूषा करने के लिए स्थापित कर दिया था। अर्थात् शिव की आराधना करने की आज्ञा दे दी थी ।६। इसी बीच में तारक नामक महा दैत्य के द्वारा देवों को उत्पीड़ित किया गया था। ब्रह्माजी से जब देवों ने प्रार्थनाकी थी तो उन्होंने कामदेव को बुलाया था और उससे यह कहा था ।७।

सर्गादौ भगवान्ब्रह्मा सृजमानोऽखिलाः प्रजाः ।
न निर्वृतिरभूत्तस्य कदाचिदपि मानसे ।
तपश्चचार सुचिरं मनोवाक्कायकर्मभिः ॥८
ततः प्रसन्नो भगवान्सलक्ष्मीको जनार्दनः ।
वरेण च्छंदयामास वरदः सर्वदेहिनाम् ॥९
ब्रह्मोवाच—
यदि तुष्टोऽसि भगवन्ननायासेन वै जगत् ।
चराचरयुतं चैतत्सृजामि त्वत्प्रसादतः ॥१०
एवमुक्तो विधात्रा तु महालक्ष्मीमुदैक्षत ।
तदा प्रादुरभूस्त्वं हि जगन्मोहनरूपधृक् ॥११
तवायुधार्थं दत्तं च पुष्पबाणेक्षुकार्मुकम् ।
विजयत्वमजेयत्वं प्रादात्प्रमुदितो हरिः ॥१२
असौ सृजति भूतानि कारणेन स्वकर्मणा ।
साक्षिभूतः स्वजनतो भवान्भजतु निर्वृतिम् ॥१३

एष दत्तवरो ब्रह्मा त्वयि विन्यस्य तद्भरम् ।
मनसो निर्वृतिं प्राप्य वर्ततेऽद्यापि मन्मथ ।।१४

जब इस जगत् का सृजन आरम्भ किया था उसके आदि काल में भगवान् ब्रह्माजी ने समस्त प्रजाका सृजन करना चाहा था किन्तु उनके मन में किसी भी समय में सन्तोष नहीं हुआ था । तब उन्होंने बहुत समय पर्यन्त मन-वाणी और शरीर से तपश्चर्या की थी ।८। तब भगवान् उन पर परम प्रसन्न हुए थे जो कि जनार्दन प्रभु अपनी प्रिया लक्ष्मी के ही साथ में आकर प्रसन्न हो गये थे । समस्त देहधारियों को वर देने वाले प्रभु ने उनको भी वरदान देकर सन्तुष्ट किया था ।९। ब्रह्माजी ने प्रार्थना की थी—हे भगवन् ! यदि आप मुझ पर प्रसन्न हैं तो मुझे यही वरदान दीजिए कि मैं बिना ही किसी आयास के इस चराचर जगत् का आपकी कृपा से सृजन कर दूँ ।१०। जब इस रीति से ब्रह्माजी ने प्रार्थना की थी तो उन्होंने महालक्ष्मी की ओर देखा था । उसी समय में आप प्रादुर्भूत हुए थे जो कि इस जगत् को मोहित करने वाले स्वरूप को धारण करने वाले थे ।११। आपके आयुध के लिये उन्होंने आपको इक्षु का धनुष और पुष्पों का बाण प्रदान किया था । परम प्रसन्न हरि ने विजयी होना भी प्रदान किया था ।१२। यही कामदेव भूतों का सृजन अपने ही कर्म के कारण के द्वारा किया करेगा । आप अपने जन से साक्षिभूत होकर निर्वृति का समाश्रय ग्रहण करें । कामदेव ही आपके सृजन का कार्य करता रहेगा ।१३। ब्रह्माजी को यह वरदान जब दिया गया था तो उन्होंने सृजन का सब भार तुम पर छोड़कर हे मन्मथ ! ब्रह्माजी सन्तुष्ट होकर आज भी स्थित हैं ।१४।

अमोघं बलवीर्यं ते न ते मोघः पराक्रमः ।।१५
सुकुमाराण्यमोघानि कुसुमास्त्राणि ते सदा ।
ब्रह्मदत्तवरोऽयं हि तारको नाम दानवः ।।१६
बाधते सकलाँल्लोकानस्मानपि विशेषतः ।
शिवपुत्रादृतेऽन्यत्र न भयं तस्य विद्यते ।।१७
त्वां विनास्मिन्महाकार्ये न कश्चित्प्रवदेदपि ।
स्वकराच्च भवेत्कार्यं भवतो नान्यतः क्वचित् ।।१८
आत्म्यैक्यध्याननिरतः शिवो गौर्या समन्वितः ।

हिमाचलतले रम्ये वर्तते मुनिभिर्वृतः ॥१९
तं नियोजय गौर्यां तु जनिष्यति च तत्सुतः ।
ईषत्कार्यमिदं कृत्वा त्रायस्वास्मान्महाबल ॥२०
एवमभ्यर्थितो देवैः स्तूयमानो मुहुर्मुहुः ।
जगामात्मविनाशाय यतो हिमवतस्तटम् ॥२१

आपका बलवीर्य तो अमोघ है और आपका पराक्रम भी मोघ नहीं है ।१५। आपके अस्त्र भी कुसुम परम सुकुमार है तथा वे सदा ही अमोघ हैं । अब यह तारक नाम का दानव ब्रह्माजी के ही द्वारा वरदान प्राप्त कर लेने वाला है ।१६। यह समस्त लोकों को बाधा दे रहा है और हमको तो विशेष रूप से सता रहा है । इसको भगवान् शिव के पुत्र के बिना अन्य किसी से भी कुछ भय नहीं है अर्थात् इसका वध शिव का ही पुत्र कर सकता है ।१७। यह एक महान् कार्य है । आपके बिना कोई भी अन्य इसको नहीं कर सकता है चाहे किसी से भी कहा जावे । यह तो आपके ही अपने कर से होगा और अन्य किसी से भी कभी नहीं हो सकता है ।१८। आत्मा की एकता के ध्यान में निरत भगवान् शिव इस समय में है और गौरी भी वहाँ पर विद्यमान हैं ये परम रम्य हिमाचल के तल में है और मुनिगण से घिरे हैं ।१९। हे महान् बलवाले ! आप उन शिव को गौरी में नियोजित कर दो । उस का सुत जन्म धारण करेगा । यह एक छोटा सा हमारा कार्य है । इस को आप करके हमारी सुरक्षा कीजिए ।२०। इस तरह से देवों के द्वारा कामदेव से बार-बार प्रार्थना की गयी थी और बहुत स्तवन भी उसका किया गया था । तब वह अपनी आत्मा के विनाश के लिए वहाँ से कामदेव हिमवान् के तट पर गया था ।२१।

किमप्याराधयंतं तु ध्यानसंमीलितेक्षणम् ।
ददर्शेशानमासीनं कुसुमेषुरुदायुधः ॥२२
एतस्मिन्नन्तरे तत्र हिमवत्तनया शिवम् ।
आरिराधयिषुश्चागाद्बिभ्राणा रूपमद्भुतम् ॥२३
समेत्य शम्भुं गिरिजां गंधपुष्पोपहारकैः ।
शुश्रूषणपरां तत्र ददर्शातिबलः स्मरः ॥२४

अदृश्यः सर्वभूतानाम्नातिदूरेऽस्य संस्थितः ।
सुमनोमार्गणैरग्र्यैस्स विव्याध महेश्वरम् ॥२५

विस्मृत्य स हि कार्याणि बाणविद्धोऽतिके स्थिताम् ।
गौरीं विलोकयामास मन्मथाविष्टचेतनः ॥२६

धृतिमालंब्य तु पुनः किमेतदिति चिंतयन् ।
ददर्शाग्रे तु सन्नद्धं मन्मथं कुसुमायुधम् ॥२७

तं दृष्ट्वा कुपितः शूली त्रैलोक्यदहनक्षमः ।
तार्तीयं चक्षुरुन्मील्य ददाह मकरध्वजम् ॥२८

कुसुमों के बाणों वाले आयुध लिये हुए कामदेव ने वहाँ पर भगवान् शिव को देखा था जो कुछ का समाराधना करके ध्यान में नेत्रों को बन्द किये हुए समाधिस्थ संस्थित थे ।२२। इसी बीच में यह भी उसने देखा था कि हिमवान् की पुत्री पार्वती भी भगवान् शिव की आराधना की इच्छा वाली वहाँ पर आ गयी थी जो अत्यद्भुत स्वरूप से सुसम्पन्न थी ।२३। अति बलवान् मदन ने वहाँ देखा था कि यह पार्वती शम्भु के समीप में पहुँच कर गन्ध-पुष्प और उपहारों के द्वारा शिव की शुश्रूषा में संलग्न थी ।२४। वह मदन समस्त प्राणियों के द्वारा अदृश्य था और उनके समीप में ही संस्थित होकर उसने अत्युत्तम पुष्पों के बाणों से महेश्वर के हृदय को बेधा था ।२५। मन्मथ के द्वारा आविष्ट चेतना वाले उस भगवान् शिव ने समस्त ध्यान करने के कार्यों को भुलाकर काम के बाणों से विद्ध होकर समीप में स्थित गौरी की ओर देखा था ।२६। फिर उन्होंने धैर्य का समाश्रय ग्रहण किया था और मन में चिन्तन कर रहे थे कि यह विकार क्यों और कैसे हो रहा है । उसी समय में उन्होंने देखा था कि कामदेव कुसुमों के आयुध वाला आगे सन्नद्ध है ।२७। उसको देखकर त्रिशूली प्रभु बहुत ही क्रुद्ध हो गये थे जो कि तीनों लोकों को दग्ध कर देने में समर्थ थे । उन्होंने अपना मस्तक में स्थित तीसरा नेत्र खोल दिया था और उसी क्षण में मकरध्वज को भस्मसात् कर दिया था ।२८।

शिवेनैवमवज्ञाता दुःखिता शैलकन्यका ।
अनुज्ञया ततः पित्रोस्तपः कर्तुमगाद्वनम् ॥२९

तद्भस्मना तु पुरुष चित्राकार चकार सः ।।३०
तं विचित्रतनुं रुद्रो ददर्शाग्रे तु पूरुषम् ।
तत्क्षणाज्जात जीवोऽभून्मूर्तिमानिव मन्मथः ।
महाबलोऽतितेजस्वी मध्याह्नार्कसमप्रभः ।।३१
तं चित्रकर्मा बाहुभ्यां समालिग्य मुदान्वितः ।
स्तुहि बाल महादेवं स तु सर्वार्थसिद्धिदः ।।३२
इत्युक्त्वा शतरुद्रीयमुपादिशदमेयधीः ।
ननाम शतशो रुद्रं शतरुद्रियमाजपन् ।।३३
ततः प्रसन्नो भगवान्महादेवो वृषध्वजः ।
वरेण च्छंदयामास वरं वव्रे स बालकः ।।३४
प्रतिद्वंद्विबलार्थं तु मद्बलेनोपयोक्ष्यति ।
तदस्त्रमुख्यानि वृथा कुर्वंतु नो मम ।।३५

शिव के द्वारा अवज्ञात हुई शैल कन्या बहुत ही दुःखित हुई थी । फिर माता-सिता की आज्ञा से वह तपश्चर्या करने के लिए वन में चली गयी थी। इसके उपरान्त उस कामदेव की भस्म को देखकर गणेश्वर चित्रकर्मा उस भस्म से चित्र के आकार वाला पुरुष कर दिया था ।३०। भगवान् रुद्र ने विचित्र शरीर वाले पुरुष को अपने आगे देखा था । उसी क्षण में समुत्पन्न जीव वाला होगया था और ऐसा सुन्दर था । वह उसी क्षण में समुत्पन्न जीव वाला होगया था और ऐसा सुन्दर था मूर्तिमान् साक्षात् मन्मथ ही होंगे । वह महान् बलवाला और अत्यन्त मध्याह्न के सूर्य की सी प्रभा वाला तेजस्वी था ।३१। चित्रकर्मा ने उसका अपनी बाहुओं से आलिङ्गन किया था और बहुत प्रसन्न हुआ था । चित्रकर्मा ने उससे कहा था हे बाल ! भगवान् शिव की स्तुति करो क्योंकि वे समस्त अर्थों की सिद्धि के दाता है ।३२। यह कहकर उस अमेय बुद्धि वाले ने उसको शत रुद्रीय का उपदेश दे दिया था उसने शतरुद्रिय का जाप करते हुए सौ बार भगवान् रुद्र को प्रणाम किया था ।३३। इसके अनन्तर वृषध्वज महादेव जी परम प्रसन्न हुए थे । उन्होंने वरमांगने की आज्ञा दी थी और उस बालक ने यह वरदान मांगा

था ।३४। मेरे प्रतिद्वन्द्वी के बल के लिए मेरे बल से योजित करेंगे और उस मेरे प्रतिद्वन्द्वी के जो भी अस्त्र-शस्त्र होंगे वे व्यर्थ हो जायेंगे और मेरे नहीं होंगे ।३५।

तथेति तत्प्रतिश्रुत्य विचार्य किमपि प्रभुः ।
षष्टिवर्षसहस्राणि राज्यमस्मै ददौ पुनः ॥३६
एतद्दृष्ट्वा तु चरितं धाता भंडिति भंडिति ।
यदुवाच ततो नाम्ना भंडो लोकेषु कथ्यते ॥३७
इति दत्त्वा वरं सर्वैर्मुनिगणैर्वृतः ।
दत्त्वाऽस्त्राणि च शस्त्राणि तत्रैवांतरधाच्च सः ॥३८

ऐसा ही सब होगा---यह कहकर फिर प्रभु ने कुछ विचार करके साठ सहस्र वर्ष तक इसको राज्य भी दे दिया था ।३६। इस चरित को देखकर धाता ने भण्डिति–भण्डिति–यह कहा था इसीलिये वह लोक में भण्ड—इस नाम से ही कहा जाया करता है ।३७। यह वरदान उस को देकर मुनिगणों से समावृत वह अस्त्र देकर वहाँ पर ही तिरोहित हो गये थे ।३८।

ललिता प्रादुर्भाव वर्णन

रुद्रकोपानलाज्जातो यतो भण्डो महाबलः ।
तस्माद्रौद्रस्वभावो हि दानवश्चाभवत्ततः ॥१
अथागच्छन्महातेजाः शुक्रो दैत्यपुरोहितः ।
समायाताश्च शतशो दैतेयाः सुमहाबलाः ॥२
अथाहूय मयं भंडो दैत्यवंश्यादिशिल्पिनम् ।
नियुक्तो भृगुपुत्रेण निजगादार्थवद्वचः ॥३
यत्र स्थित्वा तु दैत्येन्द्रैस्त्रैलोक्यं शासितं पुरा ।
तद्गत्वा शोणितपुरं कुरुष्व त्वं यथापुरम् ॥४
तच्छ्रुत्वा वचनं शिल्पी स गत्वाथ पुरं महत् ।
चक्रेऽमरपुरप्रख्यं मनसैवेक्षणेन तु ॥५
अथाभिषिक्तः शुक्रेण दैतेयैश्च महाबलैः ।
शुशुभे परया लक्ष्म्या तेजसा च समन्वितः ॥६

हिरण्याय तु यद्दत्तं किरीटं ब्रह्मणा पुरा ।
सजीवमविनाश्यं च दैत्येन्द्रैरपि भूषितम् ।
दधौ भृगुसुतोत्सृष्टं भंडो बालार्कसन्निभम् ॥७

क्योंकि भण्ड भगवान रुद्र की कोपाग्नि से समुत्पन्न हुआ था अत एव वह महा बलवान् था और उसका स्वभाव भी परम रौद्र हुआ था । ऐसा ही यह दानव था ।१। इसके पश्चात महा तेजस्वी दैत्यों के पुरोहित शुक्राचार्य वहाँ पर आये थे और सैकड़ों महाबली दैतेय भी समागत हुए थे ।२। इसके उपरान्त भण्ड ने दैत्यों के वंश में होने वाले आदि शिल्पी मय को बुलाया था । भृगु के पुत्र के द्वारा नियुक्त होते हुए उसने उस शिल्पी से अर्थ युक्त वचन कहा था ।३। जहाँ पर स्थित होकर पहिले दैत्यों के स्वामी ने त्रैलोक्य का शासन किया था वहाँ पर जाकर जैसा भी पुर होता है वैसा शोणित पुर का निर्माण करो ।४। यह वचन श्रवण करके उस शिल्पी ने जाकर एक महान पुर की रचना की थी । वह पुर मन से ही ईक्षण के द्वारा अमरपुर के समान था ।५। इसके अनन्तर शुक्राचार्य के द्वारा तथा महाबली दैत्यों के साथ अभिषेक किया गया था । वह परोत्कृष्ट लक्ष्मी से शोभित हुआ था तथा तेज से भी समन्वित था ।६। पहिले हिरण्य के लिए जो किरीट ब्रह्माजी ने प्रदान किया था वह सजीव और विनाशन होने के योग्य था तथा दैत्येन्द्रों के भी द्वारा भूषित था । उसको भृगु सुत के द्वारा उत्सृष्ट जो था भण्ड ने धारण किया था । यह किरीट बाल सूर्य के ही सदृश था । इसके उपरान्त वह सिंहासन पर समासीन हुआ था और सभी आभरणों से विभूषित हुआ था ।७।

चामरे चन्द्रसंकाशे सजीवे ब्रह्मनिर्मिते ।
न रोगो न च दुःखानि संदधौ यन्निषेवणात् ॥८

तस्यातपत्रं प्रददौ ब्रह्मणैव पुरा कृतम् ।
यस्य च्छायानिषण्णास्तु बाध्यंते नास्त्रकोटिभिः ॥९

धनुश्च विजयं नाम शंखं च रिपुघातिनम् ।
अन्यान्यपि महार्हाणि भूषणानि प्रदत्तवान् ॥१०

तस्य सिंहासनं प्रादादक्षय्यं सूर्यसन्निभम् ।
ततः सिंहासनासीनः सर्वाभरणभूषितः ।
बभूवातीव तेजस्वी रत्नमुत्तेजितं यथा ॥११

बभुवुरथ दैतेयास्तयाष्टौ तु महाबला: ।
इन्द्रशत्रु रमित्रघ्नो विद्युन्माली विभीषण: ।
उग्रकर्मोग्रधन्वा च विजयश्रुतिपारग: ।।१२
सुमोहिनी कुमुदिनी चित्रांगी सुन्दरी तथा ।
चतस्रो वनितास्तस्य बभूवु: प्रियदर्शना: ।।१३
तमसेवंत कालज्ञा देवा: सर्वे सवासवा: ।
स्यंदनास्तुरगा नागा: पादाताश्च सहस्रश: ।।१४

दो चमर भी चन्द्रमा के समान थे जो सजीव थे और ब्रह्माजी के ही द्वारा निर्मित हुए थे । इसके निषेवण करने का यह प्रभाव था कि सेवन करने वाले कोई भी रोग और दु:ख नहीं हुआ करता था। उनको भी इसने धारण किया था ।८। उसका जो आतपत्र (छत्र) भी पहिले ही निर्मित किया हुआ ब्रह्माजी ने ही प्रदान किया था जिसकी छाया में जो भी उपविष्ट होते हैं उनको करोड़ों अस्त्र भी कुछ बाधा नहीं दिया करते हैं ।९। विजय नामक धनुष और रिपुओं का घात करने वाला शंख था। उनके अतिरिक्त अन्य-अन्य भी बहुत कीमती भूषण प्रदान किये थे ।१०। उसको जो सिंहासन प्रदान किया था वह अक्षय था और सूर्य के समान था उस पर वह बैठकर उत्तेजित रत्न के ही सदृश अतीव तेजस्वी हो गया था ।११। उसके आठ दैतेय महा बलवान हुए थे—उनके नाम ये थे—इन्द्र शत्रु—अमित्रघ्न–विद्युन्माली–विभीषण—उग्र कर्मा—उग्रधन्वा—विजय—श्रुतिपारग ।१२। उसकी चार प्रिय दर्शन वाली पत्नियाँ थीं जिनके नाम ये हैं—सुमोहिनी—कुमुदिनी—चित्रांगी और सुन्दरी ।१३। काल के ज्ञान रखने वाले इन्द्र के सहित सभी देवगणों ने उसकी सेवा की थी। उसके पास सहस्रों ही रथ—अश्व—गज और पदाति सैनिक थे ।१४।

संबभूवुर्महाकाया महांतो जितकाशिन: ।
बभूवुर्दानवा: सर्वे भृगुपुत्रमतानुगा: ।।१५
अर्चयंतो महादेवमास्थिता: शिवशासने ।
बभूवुर्दानवास्तत्र पुत्रपौत्रधनान्विता: ।
गृहे गृहे च यज्ञाश्च संबभूवु: समंतत: ।।१६

ऋचो यजूंषि सामानि मीमांसान्यायकादयः ।
प्रवर्तंते स्म दैत्यानां भूयः प्रतिगृहं तदा ॥१७
यथाश्रमेषु मुख्येषु मुनीनां च द्विजन्मनाम् ।
तथा यज्ञेषु दैत्यानां बुभुजुर्हव्यभोजिनः ॥१८
एवं कृतवतोऽप्यस्य भंडस्य जितकाशिनः ।
षष्टिवर्षसहस्राणि व्यतीतानि क्षणार्धवत् ॥१९
वर्धमानमथो दैत्यं तपसा च बलेन च ।
हीयमानबलं चेन्द्रं संप्रेक्ष्य कमलापतिः ॥२०
ससर्ज सहसा कांचिन्मायां लोकविमोहिनीम् ।
तामुवाच ततो मायां देवदेवो जनार्दनः ॥२१

उसके सभी दानव भृगुपुत्र के मत का अनुगमन करने वाले थे और इन सबके कलेवर बहुत विशाल थे और ये जितकाशी थे ।१५। ये सबके सब महादेवजी का अर्चन किया करते थे और सर्वदा शिव के ही शासन में समास्थित रहते थे । वहाँ पर जो भी दानव गण थे वे सब पुत्रों–पौत्रों और धन से सुम्पन्न थे और घर-घर में चारों ओर यज्ञ हुआ करते थे ।१६। ऋग्वेद–यजुर्वेद–सामवेद–मीमांसा और न्याय शास्त्र आदि समस्त वेद और शास्त्र उस समय में प्रत्येक घर में पुनः प्रवृत्त हो गये थे ।१७। मुनियों के और द्विजों के मुख्य आश्रमों में तथा यज्ञों में जो कि दैत्यों के थे हव्य के भोजन करने वाले भोजन किया करते थे ।१८। इस रीति से करने वाले जित काशी भंड के सहस्र वर्ष आधे क्षण के ही समान व्यतीत हो गये थे ।१९। तप से और बल के द्वारा बढ़ते हुए इस भण्ड दैत्य को और क्षीण होने वाले बल से मुक्त इन्द्र को देखकर कमलापति ने माया के रचना करने का विचार किया था ।२०। और तुरन्त ही लोकों का विमोहन करने वाली कोई एक माया का सृजन किया था । फिर देवों के भी देव जनार्दन प्रभु ने उस माया से कहा था ।२१।

त्वं हि सर्वाणि भूतानी मोहयंती निजौजसा ।
विचरस्व यथाकामं त्वां न ज्ञास्यति कश्चन ॥२२
त्वं तु शीघ्रमितो गत्वा भंडं दैतेयनायकम् ।

मोहयित्वाचिरेणैव विषयानुपभोक्ष्यसे ॥२३
एवं लब्ध्वा वरं माया तं प्रणम्य जनार्दनम् ।
ययाचेऽप्सरसो मुख्याः साहय्यार्थं काश्चन ॥२४
तया संप्रार्थितो भूयः प्रेषयामास काश्चन ।
ताभिर्विश्वाचिमुख्याभिः सहिता सा मृगेक्षणा ।
प्रययौ मानसस्याग्र्यं तटमुज्ज्वलभूरुहम् ॥२५
यत्र क्रीडति दैत्येंद्रो निजनारीभिरन्वितः ।
तत्र सा मृगशावाक्षी मूले चंपकशाखिनः ।
निवासमकरोद्रम्यं गायन्ती मधुरस्वरम् ॥२६
अथागतस्तु दैत्येंद्रो बलिभिर्मंत्रिभिर्वृतः ।
श्रुत्वा तु वीणानिनदं ददर्श च वरांगनाम् ॥२७
तां दृष्ट्वा चारुसर्वांगीं विद्युल्लेखामिवापराम् ।
मायामये महागर्ते पतितो मदनाभिधे ॥२८

तू तो अतीव अद्भुत प्रभाव वाली है। तू अपने ही ओज से समस्त प्राणियों का मोहन किया करती है। अब तू अपनी ही इच्छा के अनुसार विचरण कर और तुमको कोई भी नहीं जान सकेगा।२२। अब तू यहाँ से शीघ्र ही जाकर दैत्यों के नायक भण्ड के समीप में पहुँच जा। और तुरन्त ही उसको मोहित कर दे कि विषयों को उपयोग करेगा।२३। इस प्रकार का वरदान प्राप्त करके उस माया ने जनार्दन प्रभु को प्रणाम किया था। फिर उस माया ने भगवान् से सहायता करने के लिए कुछ प्रमुख अप्सराओं के प्राप्त करने की याचना की थी।२४। जब माया के द्वारा प्रार्थना की गयी थी तो प्रभु ने कुछ अप्सराएँ भेजी थीं उन अप्सराओं में विश्वाची आदि प्रमुख थीं। उस सबके साथ वह मृगेक्षणा माया वहाँ से प्रस्थान कर गयी थी। वह मानसरोवर के उत्तम तट पर गयी थी जहाँ पर उत्तम द्रुम लगे हुए थे।२५। वह ऐसा सुरम्य स्थल था कि वह दैत्यराज वहाँ पर अपनी नारियों से युक्त होकर विहार की क्रीड़ा किया करता था। उसी स्थल में वह मृग के शावक के समान नेत्रों वाली माया एक चम्पक वृक्ष के मूल में निवास करने लगी थी और परम सुरम्य मधुर स्वर के कुछ गाया करती

थी ।२६। इसके अनन्तर वह दैत्यराज अपने मन्त्रियों के सहित वहाँ पर आ गया था । उसने वीणा की परम मधुर ध्वनि का श्रवण किया था और फिर उस वराङ्गना को भी देखा था ।२७। उस सुन्दर अंगों वाली को देख कर दूसरी विद्युत् की लेखा के ही समान थी वह मदन नामक माया से परिपूर्ण महान् गर्त्त में गिर गया था ।२८।

अथास्य मंत्रिणोऽभूवन्हृदये स्मरतापि ताः ॥२९
तेन दैतेयनाथेन चिरं संप्रार्थिता सती ।
तैश्च संप्रार्थितास्ताश्च प्रतिशुश्रुवुरंजसा ॥३०
यास्त्वलभ्या महायज्ञैरश्वमेधादिकैरपि ।
ता लब्ध्वा मोहिनीमुख्या निर्वृतिं परमां ययुः ॥३१
विसस्मरुस्तदा वेदांस्तथा देवमुमापतिम् ।
विजहुस्ते तथा यज्ञक्रियाश्चान्याः शुभावहाः ॥३२
अवमानहतश्चासीत्तेषामपि पुरोहितः ।
मुहूर्त्तमिव तेषां तु ययाववदायुतं तदा ॥३३
मोहितेष्वथ दैत्येषु सर्वे देवाः सवासवाः ।
विमुक्तोपद्रवा ब्रह्मन्नामोदं परमं ययुः ॥३४
कदाचिदथ देवेंद्रं वीक्ष्य सिंहासने स्थितम् ।
सर्वदेवैः परिवृतं नारदो मुनिराययौ ॥३५

इसके अनन्तर उसके मन्त्रीगण भी उनका स्मरण करने वाले के साथ ही थे ।२९। उस दैत्यों के स्वामी ने बहुत समय तक उस सती से प्रार्थना की थी । उनके द्वारा जब भली भाँति उनसे प्रार्थना की गयी थी तो उन्होंने भी तुरन्त ही प्रति श्रवण किया था ।३०। जो बड़े-बड़े यज्ञों के द्वारा जैसे अश्व मेधादिक यज्ञ हैं इनके द्वारा भी अलभ्य होती हैं उनको जिनमें मोहिनी मुख्य थी प्राप्त करके उनको बहुत ही अधिक आनन्द प्राप्त हुआ था ।३१। फिर तो उन सबने उस समय में भोग विलास के आनन्द में निमग्न होकर वेदों को भुला दिया था और उमापति देव का जो अर्चन था वह भी छोड़ दिया था । यज्ञादिक की जो भी अन्य परम शुभ के देने वाली क्रियाएँ थी उनका भी परित्याग कर दिया था ।३२। फिर तो उनके जो

पुरोहित थे उनका भी अपमान करके उन्हें छोड़ दिया था। उनके सहस्रों वर्ष एक मुहूर्त्त के ही समान व्यतीत हो गये थे।३३। उन समस्त दैत्यों के विमोहित हो जाने पर इन्द्रदेव के सहित सब देवगण हे ब्रह्मन् ! विमुक्त उपद्रव वाले होकर परम आनन्द को प्राप्त हो गये थे।३४। इसके अनन्तर किसी समय में देवेन्द्र को अपने सिंहासन पर विराजमान देखकर जो कि समस्त देवों से घिरा हुआ अवस्थित था नारद मुनि वहाँ पर समागत हो गये थे।३५।

प्रणम्य मुनिशार्दूलं ज्वलंतमिव पावकम् ।
कृतांजलिपुटो भूत्वा देवेशो वाक्यमब्रवीत् ॥३६
भगवन्सर्वधर्मज्ञ परापरविदां वर ।
तत्रैव गमनं ते स्याद्यं धन्यं कर्तुमिच्छसि ॥३७
भविष्यच्छोभनाकारं तवागमनकारणम् ।
त्वद्वाक्यामृतमाकर्ण्य श्रवणानंदनिर्भरम् ।
अशेषदुःखान्युत्तीर्य कृतार्थः स्याः मुनीश्वर ॥३८

नारद उवाच—
अथ संमोहितो भंडो दैत्येंद्रो विष्णुमायया ।
तया विमुक्तो लोकांस्त्रीन्दहेताग्निरिवापरः ॥३६
अधिकस्तव तेजोभिरस्त्रैर्मायाबलेन च ।
तस्य तेजोऽपहारस्तु कर्तव्योऽतिबलस्य तु ॥४०
विनाराधनतो देव्याः पराशक्तेस्तु वासव ।
अशक्योऽन्येन तपसा कल्पकोटिशतैरपि ॥४१
पुरैवोदयतः शत्रोराराधयत बालिशाः ।
आराधिता भगवती सा वः श्रेयो विधास्यति ॥४२

जाज्वल्यमान अग्नि के समान परम तेजस्वी मुनि शार्दूल को प्रणाम करके अपने दोनों हाथों को जोड़ कर देवेन्द्र ने यह वाक्य कहा था।३६। हे भगवन् ! आप तो सभी धर्मों के ज्ञान रखने वाले हैं और आप परावर के ज्ञाताओं में भी परम श्रेष्ठ हैं। आपका गमन तो वहाँ पर हुआ करता है

जिसको आप धन्य बनाना चाहते हैं।३७। आपके शुभ आगमन का कारण भविष्य को परम शुभ बताने वाला होता है। हे मुनीश्वर ! श्रवणों को परमानन्द उपजाने वाले आपके मुख से निःसृत वाक्य को सुनकर मैं समस्त दुःखों को पार करके परम कृतार्थ होऊँगा।३८। श्री नारदजी ने कहा—दैत्यों का स्वामी भण्ड विष्णु की माया से सम्मोहित हो गया है। उसके द्वारा विमुक्त हुआ वह तीनों लोकों को दूसरी अग्नि के ही समान दहन करता है।३९। वह तेजों से-अस्त्रों से और मायाके बलसे आपसे भी अधिक है। उस अत्यधिक बलवान् के तेज का अपहरण अवश्य ही करना चाहिए।४०। हे इन्द्र ! पराशक्ति देवी की आराधना के बिना किसी भी अन्य तप से सैकड़ों करोड़ कल्पों में भी उसके अति बल का अपहरण नहीं हो सकता है।४१। हे मूर्खों ! उदीयमान शत्रु के पूर्व में ही आराधना करो अर्थात् शत्रु जैसे ही बढ़ रहा हो उसी समय में पहिले ही आराधना करनी चाहिए। आराधना की हुई वह भगवती तुम्हारा श्रेय कर देगी।४२।

एवं संबोधितस्तेन शक्रो देवगणेश्वरः।
तं मुनिं पूजयामास सर्वदेवैः समन्वितः।
तपसे कृतसन्नाहो ययौ हैमवतं तटम् ॥४३
तत्र भागीरथीतीरे सर्वर्तुकुसुमोज्ज्वले।
पराशक्तेर्महापूजां चक्रेऽखिलसुरैः समम्।
इन्द्रप्रस्थमभून्नाम्ना तदाद्यखिलसिद्धिदम् ॥४४
ब्रह्मात्मजोपदिष्टेन कुर्वतां विधिना पराम्।
देव्यास्तु महतीं पूजां जपध्यानरतात्मनाम् ॥४५
उग्रे तपसि संस्थानामनन्यार्पितचेतसाम्।
दशवर्षसहस्राणि दशाहानि च संययुः ॥४६
मोहितानथ तान्दृष्ट्वा भृगुपुत्रो महामतिः।
भंडासुरं समभ्येत्य निजगाद पुरोहितः ॥४७
त्वामेवाश्रित्य राजेंद्र सदा दानवसत्तमाः।
निर्भयास्त्रिषु लोकेषु चरंतीच्छाविहारिणा ॥४८

जातिमात्रं हि भवतो हंति सर्वान्सदा हरिः ।
तेनैव निर्मिता माया यया संमोहितो भवान् ।।४९

उस महामुनि के द्वारा इस प्रकार से जब देवगणों के स्वामी को सम्बोधित किया गया था तो उस इन्द्र ने सब देवों के सहित मुनि का पूजन किया था और तपश्चर्या करने के लिये तैयारी करने वाला वह हैमवान् के तट पर चला गया था ।४३। वहाँ पर सब ऋतुओं के कुसुमों से समुज्ज्वल भागीरथी गंगा के तीर पर समस्त सुरगणों के साथ उस इन्द्र ने उस परा शक्ति की महा पूजा की थी । उस समय से ही लेकर अखिल सिद्धियों का प्रदान करने वाला वह स्थल इन्द्रप्रस्थ नाम वाला हो गया था ।४४। ब्रह्माजी के पुत्र नारदजी के द्वारा उपदेश की गयी विधि से जप और ध्यान में निरत आत्मा वालों की उस देवी की महती परा पूजा करने वालों को बहुत समय व्यतीत हो गया था ।४५। वे सभी परम उग्र तप में संस्थित थे तथा अन्य किसी में भी उनका चित्त न लगकर उसी में निरत था । ऐसे उनको करते हुए दश सहस्र वर्ष और दश दिन बीत गये थे ।४६। इधर महामति भृगु के ने उन समस्त दैत्यों को मोहित देखकर वह भण्डासुर के समीप में पहुँचे थे और उससे पुरोहित जी ने कहा था ।४७। हे राजेन्द्र ! आपका ही समाश्रय लेकर सदा ही सब दानव गण निर्भय होकर तीनों लोकों में चरण किया करते हैं और अपनी इच्छा से ही विहार करते हैं ।४८। हरि भगवान् तो आपकी पूर्ण जाति का ही हनन किया करते हैं और सदा सबका विनाश करते हैं । उन्हीं के द्वारा इस माया की रचना की गयी है जिसके द्वारा आप समोहित हो गये हैं ।४९।

भवंतं मोहितं दृष्ट्वा रंध्रान्वेषणतत्परः ।
भवतां विजयार्थाय करोतींद्रो महत्तपः ।।५०
यदि तुष्टा जगद्धात्री तस्यैव विजयो भवेत् ।
इमां मायामयीं त्यक्त्वा मंत्रिभिः सहितो भवान् ।
गत्वा हैमवतं शैलं परेषां विघ्नमाचर ।।५१
एवमुक्तस्तु गुरुणा हित्वा पर्यंकमुत्तमम् ।
मंत्रिवृद्धानुपाहूय यथावृत्तांतमाह सः ।।५२
तच्छ्रुत्वा नृपतिं प्राह श्रुतवर्मा विमृश्य च ।

षष्टिवर्षसहस्राणां राज्यं तव शिवार्पितम् ।।५३
तस्मादप्यधिकं वीर गतमासीदनेकशः ।
अशक्यप्रतिकार्योऽयं यः कालशिवचोदितः ।।५४
अशक्यप्रतिकार्योऽयं तदभ्यर्चनतो विना ।
काले तु भोगः कर्त्तव्यो दुःखस्य च सुखस्य वा ।।५५
अथाह भीमकर्माख्यो नोपेक्ष्योऽरिर्यथाबलम् ।
क्रियाविघ्ने कृतेऽस्माभिर्विजयस्ते भविष्यति ।।५६

जब आप मोहित हो गये हैं तो ऐसी अवस्था में आपको देखकर छिद्रों की खोज में परायण इन्द्र आपके ऊपर विजय प्राप्त करने के लिये महान् तप कर रहा है ।५०। यदि जगत् की धात्री देवी प्रसन्न हो गयी तो फिर उसी की विजय होगी । इसलिए इस मायामयी को छोड़कर मन्त्रियों के साथ अन्य हैमवन्त पर्वत पर जाओ और उन देवों के नृप में विघ्न पैदा करो ।५१। श्री गुरुदेव के द्वारा जब इस रीति से कहा गया था तब दैत्येन्द्र ने अपना उत्तम पर्यंक त्याग दिया था और वृद्ध मन्त्रियों को बुलाकर को भी वृत्त था वह सब कह सुनाया था ।५२। इसका श्रवण करके श्रुतवर्मा ने विचार करके राजा से कहा था । आपका राज्य शासन साठ हजार वर्षों तक ही शिव ने आपको प्रदान किया था ।५३। हे वीर ! अब तो उसने समय से भी अधिक समय व्यतीत हो चुका है और अनेकों वर्ष निकल गये हैं । यह समय तो भगवान् शिव के द्वारा ही दिया गया था । अब इसका कोई भी प्रतीकार नहीं किया जा सकता है ।५४। अब उनके ही अभ्यर्चना के बिना यह राज्य का रहना असम्भव है और इसका कोई भी प्रतिकार नहीं हो सकता है । यह तो काल है इसमें तो सुख और दुःख का भोग करना होगा ।५५। इसके अनन्तर जो भीमकर्मा नाम वाला मन्त्री था उसने कहा—जहाँ तक बल है शत्रु की कभी भी उपेक्षा नहीं करनी चाहिए । हम लोगों के द्वारा जब क्रिया का विघ्न किया जायेगा तो ऐसा करने पर आपका ही विजय होगा ।५६।

तव युद्धे महाराज परार्थं बलहारिणी ।
दत्ता विद्या शिवेनैव तस्मात्ते विजयः सदा ।।५७
अनुमेने च तद्वाक्यं भंडो दानवनायकः ।

निर्गत्य सह सेनाभिर्ययौ हैमवतं तटम् ॥५८

तपोविघ्नकरान्दृष्ट्वा दानवाञ्जगदंबिका ।

अलंघ्यमकरोदग्रे महाप्राकारमुज्ज्वलम् ॥५९

तं दृष्ट्वा दानवेंद्रोऽपि किमेतदिति विस्मितः ।

संक्रुद्धो दानवास्त्रेण बभंजातिबलेन तु ॥६०

पुनरेव तदग्रेऽभूदलंघ्यः सर्वदानवैः ।

वायव्यास्त्रेण तं धीरो बभंज च ननाद च ॥६१

पौनः पुन्येन तद्भस्म प्राभूत्पुनरुपस्थितम् ।

एतद्दृष्ट्वा तु दैत्येंद्रो विषण्णः स्वपुरं ययौ ॥६२

तां च दृष्ट्वा जगद्धात्रीं दृष्ट्वा प्राकारमुज्ज्वलम् ।

भयाद्विव्यथिरे देवा विमुक्तसकलक्रियाः ॥६३

हे महाराज ! आपके युद्ध में परों के बल के हरण करने वाली विद्या भगवान् शिव ने ही प्रदान की है इसलिए आपकी सदा ही विजय होगी ।५७। दानवों के नायक भण्ड ने उसके वाक्य को मान लिया था और सेनाओं के साथ वह निकल कर हैमवत के तट पर चला गया था ।५८। जगम्बिका ने तपश्चर्या के अन्दर विघ्न डालने वालों को देखा था उसने आगे उज्ज्वल जो महा प्रकार था उसको न लाँघने के योग्य बना दिया था ।५९। उसको देखकर वह दानवेन्द्र भी यह क्या है—इस बात से अत्यधिक विस्मित हो गया था । वह अधिक क्रुद्ध होगया था और उसने दानवास्त्र के द्वारा उसको भंग करना चाहा था ।६०। वह फिर भी उसके आगे गया था किन्तु वह सभी दानवों के द्वारा न लाँघने के योग्य हो गया था । और उस धीर ने दानवास्त्र के द्वारा उसका भंग किया था और बड़ी गजना भी की थी ।६१। बारम्बार भी ऐसा करने से वह भस्म फिर समुत्पन्न हो गयी थी और उपस्थित हो गयी थी । यह देखकर वह दानवेन्द्र परम विषाद से युक्त होकर अपने पुर को चला गया था ।६२। देवों ने उस जगत् की धात्री का दर्शन किया था और उस उज्ज्वल प्राकार को भी देखा था । देवगण भय से बहुत ही व्यथित हो गये थे और उन्होंने समस्त क्रियाओं को छोड़ दिया था ।६३।

तानुवाच ततः शक्रो दैत्येन्द्रोऽयमिहागतः ।
अशक्यः समरे योद्धुमस्माभिरखिलैरपि ॥६४
पलायितानामपि नो गतिरन्या न कुत्रचित् ।
कुण्डं योजनविस्तारं सम्यक्कृत्वा तु शोभनम् ॥६५
महायागविधानेन प्रणिधाय हुताशनम् ।
यजामः परमां शक्तिं महामासैर्वयं सुराः ॥६६
ब्रह्मभूता भविष्यामो भोक्ष्यामो वा त्रिविष्टपम् ।
एवमुक्तास्तु ते सर्वे देवाः सेन्द्रपुरोगमाः ॥६७
विधिवज्जुहुवुर्मांसा न्युत्कृत्योत्कृत्य मंत्रतः ।
हुतेषु सर्वगांसेषु पादेषु च करेषु च ॥६८
होतुमिच्छत्सु देवेषु कलेवरमशेषतः ।
प्रादुर्बभूव परमन्तेजः पुंजो ह्यनुत्तमः ॥६९
तन्मध्यतः समुदभूच्चक्राकारमनुत्तमम् ।
तन्मध्ये तु महादेवीमुदयार्कसमप्रभाम् ॥७०

इसके पश्चात् इन्द्र देव ने उन देवगणों से कहा था कि यह दैत्येन्द्र यहाँ पर आ गया है और इसको इन सभी लोग भी जीतने में युद्ध में असमर्थ है ।६४। अगर हम सब लोग यहाँ से भागते भी हैं तो भी हमारी कहीं पर भी अन्य कोई गति नहीं है । एक योजनके विस्तार वाला कुण्ड बनाकर जो बहुत ही अच्छा और सुन्दर हो हम सब यज्ञ का कार्य सम्पन्न करें ।६५। महायाग का जो भी विधान है उसी से हुताशन का प्रणिधान करें । हम सब सुरगण महा मांसो से इस परमा शक्ति का ही इस समय में यजन करें ।६६। हम सब लोग ऐसा करने से ब्रह्मभूत हो जायगे अथवा स्वर्ग लोक का भोग करेंगे । इस प्रकार से जब सब देवों से कहा गया था तो इन्द्र ही जिनमें अग्रणी था वे सभी देवगण प्रस्तुत हो गये थे ।६७। फिर उन्होंने मन्त्रों के द्वारा काट-काट कर विधि पूर्वक मांसों से हवन किया था । शरीरों के समस्त मांस का हवन करने पर तथा चरणों और करों का भी होम करने पर जब उन्होंने अपना सम्पूर्ण शरीर ही हवन कर देने की इच्छा की थी तो उसी समय एक परम उत्तम तेज का पुञ्ज प्रादुर्भूत हुआ था ।६८-६९।

उस तेज के पुञ्ज के मध्य से एक चक्र के समान आकार का पदार्थ समुत्पन्न हुआ था और उसके मध्य में समुदित सूर्य के सदृश प्रभा से समन्वित देवी प्रकट हुई थी ।७०।

जगदुज्जीवनकरीं ब्रह्मविष्णुशिवात्मिकाम् ।
सौन्दर्यसारसीमां तामानन्दरससागराम् ।।७१
जपाकुसुमसंकाशां दाडिमीकुसुमांबराम् ।
सर्वाभरणसंयुक्तां शृङ्गारैकरसालयाम् ।।७२
कृपातरंगितापांगनयनालोककौमुदीम् ।
पाशांकुशेक्षुकोदंडपंच बाणलसत्कारम् ।।७३
तां विलोक्य महादेवी देवा: सर्वे सवासवा: ।
प्रणेमुर्मुदितात्मानो भूयोभूयोऽखिलात्मिकाम् ।।७४
तया विलोकिता: सद्यस्ते सर्वे विगतज्वरा: ।
सम्पूर्णांगा दृढतरा वज्रदेहा महाबला: ।
तुष्टुवुश्च महादेवीमंबिकामखिलार्थदाम् ।।७५

अब उस महादेवी के स्वरूप का वर्णन किया जाता है—वह देवी इस जगत् के उज्जीवन करने वाली थी और ब्रह्मा—विष्णु और शिव के स्वरूप वाली थी । उसका स्वरूप सौन्दर्य के सार की सीमा ही था । और वह आनन्द के रस का सागर थी ।७१। उसका कलेवर जपा के पुष्पों के सदृश था और उसके वस्त्र दाड़िमी के कुसुमों के समान वर्ण वाले थे । वह सभी आभरणों से भूषित थी तथा शृङ्गार रस का एक स्थल स्वरूप वह थी ।७२। कृपा से तरंगित अपांगों वाले नेत्रों से प्रकाश करने वाली वह कौमुदी थी । उसके करों में पाश–अंकुश–इक्षु–को दण्ड और पांच बाण थे जिससे वह परम सुशोभित थी ।७३। उस महादेवी का दर्शन करके इन्द्र के सहित समस्त देवगणों ने बारम्बार प्रसन्न मनों वाले होकर उस अखिलात्मिका के चरणोंमें प्रणाम किया था ।७४। उसके द्वारा अवलोकित होकर सभी देवगण दुःख रहित हो गये थे । उनके सब अंग पूर्ण हो गये थे और बहुत अधिक सुदृढ़—वज्र के समान देहों वाले तथा महान् बल से सम्पन्न हो गये थे । सब कुछ देने वाली उस अम्बिका महादेवी का उन्होंने स्तवन किया था ।७५।

—×—

।। ललिता स्तवराज वर्णन ।।

देवा ऊचुः–

जय देवि जगन्मातर्जय देवि परात्परे ।
जय कल्याणनिलये जय कामकलात्मिके ।।१
जयकारि च वामाक्षि जय कामाक्षि सुन्दरि ।
जयाखिलसुराराध्ये जय कामेशि मानदे ।।२
जय ब्रह्ममये देवि ब्रह्मात्मकरसात्मिके ।
जय नारायणि परे नन्दिताशेषविष्टपे ।।३
जय श्रीकण्ठदयिते जय श्रीललितेंबिके ।
जय श्रीविजये देवि विजयश्रीसमृद्धिदे ।।४
जातस्य जायमानस्य इष्टापूर्तस्य हेतवे ।
नमस्तस्यै त्रिजगतां पालयित्र्यै परात्परे ।।५
कलामुहूर्तकाष्ठाहर्मासर्तु शरदात्मने ।
नमः सहस्रशीर्षायै सहस्रमुखलोचने ।।६
नमः सहस्रहस्ताब्जपादपंकजशोभिते ।
अणोरणुतरे देवि महतोऽपि महीयसि ।।७

देवों ने कहा—हे परसे भी परे ! हे देवि ! आप तो इस समस्त जगत् की माता हैं, आपकी जय हो । आप तो सबके कल्याण करने का स्थल हैं और आप काम कला का स्वरूप वाली है, आपकी जय हो ।१। हे परम सुन्दर नेत्रों वाली ! हे कामाक्षि ! हे सुन्दरि ! आप जय करने वाली हैं । आप समस्त सुरों की आराधन करने के योग्य हैं । हे कामेशि ! आप मान देने वाली हैं आपकी जय हो-जय हो ।२। हे ब्रह्ममये ! हे देवि ! आप तो ब्रह्मात्मक रस के स्वरूप वाली हैं । हे नारायणि ! आप परा हैं जो सम्पूर्ण स्वर्ग वासियों के द्वारा वन्दित हैं ।३। आप श्री कण्ठ (शिव) की दायिता हैं आपकी जय हो । हे श्री ललिताम्बिके ! हे देवि ! आप श्री की विजय तथा श्री की समृद्धि का प्रदान करने वाली है ।४। हे पर से भी परे ! जो जन्म धारण कर चुका है और जन्म लेने वाला है आप उसके इष्टा पूर्त्त की हेतु

हैं। तीनों जगतों की पालन करने वाली उन आपके लिए हमारा सबका नमस्कार है।५। कला-काष्ठा-मुहूर्त्त-दिन-मास-ऋतु और वर्षों के स्वरूप वाली आप हैं। सहस्र शीर्ष-मुख और लोचनों वाली आपके लिए हमारा प्रणाम है।६। आप सहस्र हाथ—चरण कमलों से परम शोभित हैं। आप अणु तथा महान् से भी अधिक महान् से भी अधिक महान् है। हे देवि! आपके लिए हमारा नमस्कार है।७।

परात्परतरे मातस्तेजस्तेजीयसामपि ।
अतलं तु भवेत्पादौ वितलं जानुनी तव ।।८
रसातलं कटीदेशः कुक्षिस्ते धरणी भवेत् ।
हृदयं तु भुवर्लोकः स्वस्ते मुखमुदाहृतम् ।।९
दृशश्चन्द्रार्कदहना दिशस्ते बाहवोंबिके ।
मरुतस्तु तवोच्छ्वासा वाचस्ते श्रुतयोऽखिलाः ।।१०
क्रीडा ते लोकरचना सखा ते चिन्मयः शिवः ।
आहारस्ते सदानन्दो वासस्ते हृदये सताम् ।।११
दृश्यादृश्यरूपाणि स्वरूपाणि भुवनानि ते ।
शिरोरुहा घनास्ते तु तारकाः कुसुमानि ते ।।१२
धर्माद्या बाहवस्ते स्युरधर्माद्यायुधानि ते ।
यमाश्च नियमाश्चैव करपादरुहास्तथा ।।१३
स्तनौ स्वाहास्वधाकारौ लोकोज्जीवनकारकौ ।
प्राणायामस्तु ते नासा रसना ते सरस्वती ।।१४

हे माता! आप पर से भी पर हैं और जो भी तेज धारण करने वाले हैं उनका भी तेज आप ही हैं। यह अतल लोक आपके दोनों चरण हैं और वितल लोक आपके दोनों जानु हैं।८। रसातल आपका कटिभाग है और यह धरणी आपकी कुक्षि हैं। आपका मुख स्वर्लोक है तथा भुवर्लोक आपका हृदय है।९। चन्द्र—सूर्य और अग्नि आपके नेत्र हैं। वायु आपके अच्छ्वास हैं और श्रुति (कान) आपकी वाणी है।१०। यह समस्त लोकों की रचना आपकी क्रीड़ा है और ज्ञान से परिपूर्ण भगवान् शिव ही आपके सखा हैं। सर्वदा आनन्द का रहना ही आपका आहार हैं तथा आपका

निवास स्थल सत्पुरुषों का हृदय है ।११। ये समस्त भुवन ही आपके देखने के योग्य और अदृश्य रूप हैं । ये घन ही आपके केश हैं तथा तारागण आपके केशों में लगे हुए पुष्प हैं ।१२। ये धर्म आदि सब आपकी भुजाएँ हैं और अधर्म आदि सब आपके आयुध हैं । समस्त यम और नियम आपके कर और पाद के ।१३। स्वाहा और स्वधा के आकार वाले ही आपके दो स्तन है जो लोकों के उज्जीवन करने वाले हैं । प्राणायाम ही आपकी नासिका है तथा सरस्वती देवी ही आपकी रचना है ।१४।

प्रत्याहारस्त्विद्रियाणि ध्यानं ते धीस्तु सत्तमा ।
मनस्ते धारणाशक्तिर्हृदयं ते समाधिकः ।।१५
महीरुहास्तेंगरुहाः प्रभातं वसनं तव ।
भूतं भव्यं भविष्यच्च नित्यं च तव विग्रहः ।।१६
यज्ञरूपा जगद्धात्री विश्वरूपा च पावनी ।
आदौ या तु दयाभूता ससर्ज निखिलाः प्रजाः ।।१७
हृदयस्थापि लोकावामदृश्या मोहनात्मिका ।।१८
नामरूपविभागं च या करोति स्वलीलया ।
तान्यधिष्ठाय तिष्ठन्ती तेष्वसक्तार्थकामदा ।
नमस्तस्यै महादेव्यै सर्वशक्त्यै नमोनमः ।।१९
यदाज्ञया प्रवर्त्तते वह्निसूर्येंदुमारुताः ।
पृथिव्यादीनि भूतानि तस्यै देव्यै नमोनमः ।।२०
या ससर्जादिधातारं सर्गादावादिभूरिदम् ।
दधार स्वयमेवैका तस्यै देव्यै नमोनमः ।।२१

आपका प्रत्याहार ही इन्द्रियाँ हैं और ध्यान ही परम श्रेष्ठ बुद्धि है । आपकी धारणा शक्ति ही मन है और आपका हृदय समाधिक है ।१५। पर्वत ही आपके अङ्गरुह हैं और प्रभात आपका वसन है । भूत-भव्य-भविष्य और नित्य आपका विग्रह है ।१६। जगत् की धात्री आप यज्ञ स्वरूप वाली हैं और परम पावनी विश्व के रूप वाली हैं । जिसने आदि काल में दया के स्वरूप वाली होकर इन समस्त प्रजाओं का सृजन किया था ।१७। आप सबके हृदयों में स्थित भी रहती हुई मोहन स्वरूप वाली लोकों के लिए

अदृश्य हैं ।१८। आप अपने नामों का और रूप का विभाग अपनी ही लीला से किया करती है । आप उनमें अधिष्ठित रहकर ही स्थित रहा करती है और उनमें जो असक्त हैं उनके अर्थ और कामनाओं के प्रदान करने वाली हैं । उन महादेवी के लिए बारम्बार नमस्कार है और सर्वशक्ति को बार-बार प्रणाम है ।१६। जिसकी आज्ञा से ही ये अग्नि—सूर्य तथा चन्द्रमा अपने-अपने कार्यों में प्रवृत्त हुआ करते हैं और पृथिवी आदि ये भूत भी कार्यरत रहा करते हैं उस देवी के लिये बारम्बार प्रणाम है ।२०। जिसने आदि धाता का सृजन किया था और जिसने सर्ग के आदि काल में आदि भू का रूप धारण किया था तथा इस सबको स्वयं एक ही ने धारण किया था उस देवी के लिए अनेक बार प्रणाम है ।२१।

यया धृता तु धरणी ययाकाशममेयय: ।
यस्यामुदेति सविता तस्यै देव्यै नमोनमः ।।२२

यत्रोदेति जगत्कृत्स्नं यत्र तिष्ठति निर्भरम ।
यत्रांतमेति काले तु तस्यै देव्यै नमोनमः ।।२३

नमोनमस्ते रजसे भवायै नमोनमः सात्त्विकसंस्थितायै ।
नमोनमस्ते तमसे हरायै नमोनमो निर्गुणतः शिवायै ।।२४

नमोनमस्ते जगदेकमात्रे नमोनमस्ते जगदेकपित्रे ।
नमोनमस्तोऽखिलरूपतंत्रे नमोनमस्तोऽखिलयन्त्ररूपे ।।२५

नमोनमो लोकगुरुप्रधाने नमोनमस्तोऽखिलवाग्विभूत्यै ।
नमोऽतु लक्ष्म्यै जगदेकतुष्ट्यै नमोनमः
शांभवि सर्वशक्त्यै ।।२६

अनादिमध्यांतमपाञ्चभौतिकं ह्यवाङ्मनोगम्यमतर्क्यवैभवम्
अरूपमद्वंद्वमदृष्टिगोचरं प्रभावमग्रयं कथमंब वर्णये ।।२७

प्रसीद विश्वेश्वरि विश्ववंदिते प्रसीद विद्येश्वरि वेदरूपिण
प्रसीद मायामयि मंत्रविग्रहे प्रसीद सर्वेश्वरि सर्वरूपिणि ।।२८

जिसने इस धरणी को धारण किया है और जिस अमेया ने इस आकाश को धारण किया है जिसमें सविता समुदित होता है उस महादेवी

यह अन्त को प्राप्त हो जाता है उस देवी के लिए बार-बार नमस्कार निवेदित है ।२३। आप रजो रूपा भवा के लिए मेरा नमस्कार है तथा सात्विक संस्थिता के लिए नमस्कार है । तमोरूपहरा आपको नमस्कार है । निर्गुण स्वरूपा शिवा आपको प्रणाम है ।२४। आप इस सम्पूर्ण जगत् की एक ही माता हैं ऐसी आपको बारम्बार नमस्कार है । इस जगत् की आप ही एकमात्र पिता अर्थात् जनक हैं ऐसी आपके लिए अनेक बार नमस्कार हैं। आपका यह सम्पूर्ण स्वरूप तन्त्र है तथा आप अखिल यन्त्र रूपा हैं ऐसी आप की सेवा में अनेकशः हमारा प्रणाम निवेदित है ।२५। आप लोक गुरु की प्रधान हैं ऐसी अखिल वाग् की विभूति के लिए हमारा बार-बार प्रणाम है । लक्ष्मी के लिए तथा जगत की एक तुष्टि के लिए हमारा बारम्बार नमस्कार है । हे शाम्भवि ! सर्वशक्ति आपको प्रणाम है ।२६। हे अम्ब ! आपका प्रभाव अत्युत्तम है तथा अनादि मध्यान्त हैं—अपाञ्च भौतिक है—वाणी मन से अगम्य है और अप्रतर्क्य वैभव वाला है । वह रूप तथा द्वन्द्व से रहित है एवं दृष्टिगोचर नहीं है, मैं किस प्रकार से इसका वर्णन करूँ ।२७। हे विश्वेश्वरि ! हे विश्व वन्दिते ! हे वेदों के स्वरूप वाली ! आप प्रसन्न होइये । हे मायामयि ! हे मन्त्रों के विग्रह वाली ! हे सर्वेश्वरि ! हे सर्वरूपिणि ! आप प्रसन्न होइए ।२८।

इति स्तुत्वा महादेवीं देवाः सर्वे सवासवाः ।
भूयोभूयो नमस्कृत्य शरणं जग्मुरञ्जसा ॥२९

ततः प्रसन्ना सा देवी प्रणतं वीक्ष्य वासवम् ।
वरेणाच्छन्दयामास वरदाखिलदेहिनाम् ॥३०

इन्द्र उवाच—

यदि तुष्टासि कल्याणि वरं दैत्येंद्र पीडितः ।
दुर्धरं जीवितं देहि त्वां गताः शरणार्थिनः ॥३१

श्री देव्युवाच—

अहमेव विनिर्जित्य भंडं दैत्यकुलोद्भवम् ।
आहरातव तास्यामि त्रैलोक्यं सचराचरम् ॥३२

निर्भया मुदिताः सन्तु सर्वे देवगणास्तथा ।
ये स्तोष्यन्ति च मां भक्त्या स्तवेनानेन मानवाः ।।३३
भाजनं ते भविष्यन्ति धर्मश्रीयशसां सदा ।
विद्याविनयसंपन्ना नीरोगा दीर्घजीविनः ।।३४
पुत्रमित्रकलत्राढ्या भवन्तु मदनुग्रहात् ।
इति लब्धवरा देवा देवेंद्रोऽपि महाबलः ।।३५
आमोदं परमं जग्मुस्तां विलोक्य मुहुर्मुहुः ।।३६

इस प्रकार से बहुत से बहुत लम्बी स्तुति करके इन्द्र के सहित समस्त देवगण महादेवी को बार-बार प्रणाम करके तुरन्त ही जगदम्बा के शरण में चले गये थे ।२९। फिर वह देवी परम प्रसन्न हो गयी थी और उसने इन्द्र को अपने चरणों में प्रणत देखा था। फिर समस्त देहधारियों को वरदान देने वाली देवी ने उसको वरदान देने के लिए कहा था ।३०। इन्द्र ने कहा—हे कल्याणि ! यदि आप मुझ पर सुप्रसन्न हैं तो मैं तो दैत्येन्द्र से पीड़ित हूँ। मुझे यही वरदान देवें कि मेरा दुर्धर जीवित होवे। हम लोग आपकी शरण में समागत हैं ।३१। श्री देवी ने कहा—मैं स्वयं ही दैत्य कुल में समुत्पन्न भण्ड को विनिर्जित करके धरा से लेकर तीनों लोकों को जिसमें सभी चर-अचर है तुझको दे दूँगी ।३२। फिर समस्त देवगण निर्भय और प्रसन्न होंगे और जो मनुष्य सदा ही धर्म–श्री और यश के भाजन होंगे तथा वे नीरोग-विद्या तथा विनय से सम्पन्न और दीर्घ जीवन होंगे ।३४। वे मेरे अनुग्रह से पुत्र-मित्र और कलत्र से सुसम्पन्न होंगे। इस रीति से देवगण और महान बलवान देवेन्द्र भी वर प्राप्त करने वाले होगये थे और बारम्बार उस जगदम्बा का दर्शन करके परमाधिक आनन्द को प्राप्त हो गये थे ।३५-३६।

—×—

।। मदन कामेश्वर प्रादुर्भाव वर्णन ।।

हयग्रीव उवाच—

एतस्मिन्नेव काले तु ब्रह्मा लोकपितामहः ।
आजगामाथ देवेशीं द्रष्टुकामो महर्षिभिः ।।१

आजगाम ततो विष्णुरारूढो विनतासुतम् ।
शिवोऽपि वृषमारूढः समायातोऽखिलेश्वरीम् ॥२

देवर्षयो नारदाद्याः समाजग्मुर्महेश्वरीम् ।
आययुस्तां महादेवीं सर्वे चाप्सरसां गणाः ॥३

विश्वावसुप्रभृतयो गन्धर्वाश्चैव यक्षकाः ।
ब्रह्मणाथ समादिष्टो विश्वकर्मा विशांपतिः ॥४

चकार नगरं दिव्यं यथामरपुरं तथा ।
ततो भगवती दुर्गा सर्वमन्त्राधिदेवता ॥५

विद्याधिदेवता श्यामा समाजग्मतुरंबिकाम् ।
ब्राह्म्याद्या मातरश्चैव स्वस्वभूतगणावृताः ॥६

सिद्ध्यो ह्यणिमाद्याश्च योगिन्यश्चैव कोटिशः ।
भैरवाः क्षेत्रपालाश्च महाशास्ता गणाग्रणीः ॥७

हयग्रीव ने कहा—इसी समय में लोकों के पितामह—ब्रह्माजी उस देवेशी के दर्शन करने की इच्छा वाले महर्षियों के साथ वहाँ पर समागत हो गये थे। इसके पश्चात् भगवान विष्णु की गरुड़ पर समारूढ़ होकर वहाँ पर आ गये थे। भगवान शिव भी वृष पर सवार होकर अखिलेश्वरी के दर्शनार्थ आ गये थे।१-२। नारद आदि देवर्षिगण महेश्वरी के समीप में समागत हो गये थे। सभी अप्सराओं के समुदाय भी महादेवी के दर्शनार्थ आ गये थे।३। विश्वावसु आदि गन्धर्व और यक्ष भी वहाँ पर आये थे। ब्रह्माजी के द्वारा आदेश पाकर विशांपति विश्वकर्मा ने एक दिव्य नगर की रचना की थी जैसा कि साक्षात अमर पुर ही होवे। इसके पश्चात् सब मन्त्रों की अधिदेवता श्यामा ये सब अम्बिका के समीप में समागत हुए थे। ब्राह्मी आदि समस्त मातृगण अपने-अपने भूतगणों के साथ समावृत होकर वहाँ पर आयी थीं।४-६। अणिमा-महिमा आदि आठ सिद्धियाँ और करोड़ों योगिनियों वहाँ पर आ गयी थीं। भैरव और क्षेत्रपाल-महाशास्ता गणों के अग्रणी वहाँ समागत हुए।७।

महागणेश्वरः स्कन्दो बटुको वीरभद्रकः ।
आगत्य ते महादेवीं तुष्टुवुः प्रणतास्तदा ॥८

तत्राथ नगरीं रम्यां साट्टप्राकारतोरणाम् ।
गजाश्वरथशालाढ्यां राजवीथिविराजिताम् ॥९
सामंतानाममात्मानां सैनिकानां द्विजन्मनाम् ।
वेतालदासदासीनां गृहाणि रुचिराणि च ॥१०
मध्यं राजगृहं दिव्यं द्वारगोपुरभूषितम् ।
शालाभिर्बहुभिर्युक्तं सभाभिरुपशोभितम् ॥११
सिंहासनसभां चैव नवरत्नमयीं शुभाम् ।
मध्ये सिंहासनं दिव्यं चिंतामणिविनिर्मितम् ॥१२
स्वयं प्रकाशमद्वंद्वमुदयादित्यसंनिभम् ।
विलोक्य चिंतयामास ब्रह्मा लोकपितामहः ॥१३
यस्त्वेतत्समधिष्ठाय वर्तते बालिशोऽपि वा ।
पुरस्यास्य प्रभावेण सर्वलोकाधिको भवेत् ॥१४

महान् गणों के ईश्वर स्वामी कार्त्तिकेय-वटुक-वीरभद्र-इन सबने आकर उस समय में प्रणत होकर महादेवी का स्तवन किया था ।८। वहाँ पर जो एक नगरी की थी वह नगरी परमाधिक सुरम्य थी उसमें बड़ी-बड़ी अट्टालिकाएँ—प्राकार और विशाल तोरण थे । उसमें गजअश्व और रथ शालाएँ थीं । तथा राज वीथियाँ भी विद्यमान थीं । जिनसे वह परम शोभित हो रही थी ।९। उसमें सभी के पृथक्-पृथक् परम सुन्दर गृह बने थे—सामन्तों के—अमात्यों के—सैनिकों के और ब्राह्मणों के एवं वेताल के—दासों के और दासियों के गृह निर्मित थे ।१०। उस नगरी के मध्य में द्वारों और गोपुरों से समन्वित परम दिव्य राजगृह था । जिसमें बहुत सी शालायें और सभाएँ बनी हुई थीं । जिससे वह राजगृह उपशोभित था ।११। उसमें एक सिंहासन सभा थी जो नौ प्रकार के रत्नों से परिपूर्ण और परम शुभ थी । उसके मध्य में एक दिव्य सिंहासन था जो चिन्ता मणियों के द्वारा ही निर्मित था । जिस मणि के समक्ष में जो चिन्तन किया जावे वही प्राप्त हो जाता है उसी को चिन्तामणि कहा जाता है ।१२। वह सिंहासन स्वयं प्रकाश करने वाला—अद्वन्द्व और उदित सूर्य के समान प्रभा वाला था । लोकों के पितामह ब्रह्माजी ने जब उसका अवलोकन किया तो वे मन में चिन्तन करने लगे थे ।१३। जो भी कोई चाहे बालिश (महामूर्ख) ही क्यों

न हो, इस पर अधिष्ठित होता है वह इस परम सुरम्यपुर के प्रभाव से सभी लोकों से अधिक होता है।१४।

न केवला स्त्री राज्यार्हा पुरुषोऽपि तया विना।
मंगलाचार्यसंयुक्तं महापुरुषलक्षणम्।
अनुकूलांगनायुक्तमभिषिचेदिति श्रुतिः ॥१५
विभातीयं वरारोहा मूर्ता शृङ्गारदेवता।
वरोऽस्यास्त्रिषु लोकेषु न चान्यः शङ्करादृते ॥१६
जटिलो मुण्डधारी च विरूपाक्षः कपालभृत्।
कल्माषी भस्मदिग्धांमः श्मशानास्थिविभूषणः ॥१७
अमंगलास्पदं चैनं वरयेत्सा सुमंगला।
इति चिंतयमानस्य ब्रह्मणोऽग्रे महेश्वरः ॥१८
कोटिकन्दर्पलावण्ययुक्तो दिव्यशरीरवान्।
दिव्यांबरधरः स्रग्वी दिव्यगन्धानुलेपनः ॥१९
किरीटहारकेयूरकुण्डलाद्यै रलंकृतः।
प्रादुर्बभूव पुरतो जगन्मोहनरूपधृक् ॥२०
तं कुमारमथालिंग्य ब्रह्मा लोकपितामहः।
चक्रे कामेश्वरं नाम्ना कमनीयवपुर्धरम् ॥२१

केवल स्त्री तो इस राज्य के योग्य नहीं है और केवल पुरुष भी स्त्री से रहित जो हो वह भी इसके योग्य नहीं है। श्रुति का कथन तो यही है कि—मङ्गल मय आचार्य से संयुत और महापुरुषों के लक्षण वाला तथा जो अनुकूल अङ्गना से युक्त हो उसीका राज्यासन पर अभिषेक करना चाहिए।१५। यह वरारोहा शोभित होती है जो मूर्तिमती शृङ्गार की देवता है। इसका वर भी तीनों लोकों में भगवान् शिव के अतिरिक्त अन्य कोई भी नहीं है।१६। किन्तु शङ्कर तो जटा जूट धारीमुण्डों की माला धारण करने वाले-विरूप नेत्रों से युक्त और हाथ में कपाल ग्रहण करने वाले हैं वे तो कल्माषी–भस्म से भूषित अङ्गों वाले और श्मशान की अस्थियों के भूषणों वाले हैं।१७। शिव तो पूर्णतया अमङ्गलों के स्थान हैं। क्या यह सुमङ्गला उनका वरण करेगी यही इस प्रकार से ब्रह्माजी मन में विचार कर रहे थे

कि उसी समय में ब्रह्माजी के आगे महेश्वर प्रकट हो गये थे।१८। उनका स्वरूप उस समय में करोड़ों कामदेवों के लावण्य से युक्त था और परम दिव्य शरीर से वे युक्त थे। उनके वस्त्र भी परम दिव्य थे तथा मालाऐं धारण किये हुए दिव्य सुगन्धित अनुलेपन वाले थे।१९। वे किरीट—कुण्डल—केयूर और हार आदि आभरणों से समलङ्कृत थे। इस प्रकार का जगत् के तोहन करने वाले स्वरूप को धारण किये हुए ब्रह्माजी के सामने प्रादुर्भूत हुए थे।२०। लोक पितामह ब्रह्माजी ने उस कुमार का आलिङ्गन करके उनका नाम कामेश्वर रखा दिया था क्योंकि वे परम कमनीय को धारण करने वाले थे।२१।

तस्यास्तु परमाशक्तेरनुरूपो वरस्त्वयम् ।
इति निश्चित्य तेनैव सहितास्तामथाययुः ॥२२
अस्तुवंस्तु परां शक्तिं ब्रह्मविष्णुमहेश्वराः ।
तां दृष्ट्वा मृगशावाक्षीं कुमारो नीललोहितः ।
अभवन्मन्मथाविष्टो विस्मृत्य सकलाः क्रियाः ॥२३
सापि तं वीक्ष्य तन्वंगीमूर्तिमंतमिव स्मरम् ।
मदनाविष्टसर्वांगी स्वात्मरूपममन्यत ।
अन्योन्यालोकनासौ तावुभौ मदनातुरौ ॥२४
सर्वभावविशेषज्ञौ धृतिमंतौ मनस्विनौ ।
परैज्ञातचारित्रौ मुहूर्तास्वस्थचेतनौ ॥२५
अथोवाच महादेवीं ब्रह्मा लोकैकनायिकाम् ।
इमे देवाश्च ऋषयो गन्धर्वाप्सरसां गणाः ।
त्वामीशां द्रष्टुमिच्छन्ति सप्रियां परमाहवे ॥२६
को वानुरूपस्ते देवि प्रियो धन्यतमः पुमान् ।
लोकसंरक्षणार्थाय भजस्व पुरुषं परम् ॥२७
राज्ञी भव पुरस्यास्य स्थिता भव वरासने ।
अभिषिक्तां महाभागैर्देवर्षिभिरकल्मषैः ॥२८
साम्राज्यचिह्नसंयुक्तां सर्वाभरणसंयुताम् ।
सप्रियामासनगतां द्रष्टुमिच्छामहे वयम् ॥२९

उन्होंने कहा था कि यह तो उस परमा शक्ति के सर्वथा अनुकूलवग हैं—ऐसा निश्चय करके शिव के ही साथ वे वहाँ देवी के समीप में समागत हो गये थे।२२। उन ब्रह्मा-विष्णु और महेश्वर ने उस पराशक्ति का स्तवन किया था। उस शक्ति का अवलोकन करके ही जो मृगशावक के समान परम सुन्दर नेत्रों वाली थी वे नीललोहित कुमार समस्त क्रियाओं को भुला कर कामासक्त हो गये थे।२३। वह तन्वङ्गी भी मूर्तिमान् कामदेव के सदृश उनको देखकर मदन से आविष्ट अङ्ग वाली उसने भी उसको अपने ही अनुरूप मान लिया था। परस्पर में एक दूसरे के देखने में आसक्त दोनों ही काम से आतुर हो गये थे। ये दोनों हो सक्त भावों की विशेषता के ज्ञाता-धृति (धीरज) मान् और परम मनस्वी थे। दूसरों के द्वारा इनका चरित्र ज्ञात नहीं हो सकता है ऐसे ये दोनों ही एक मुहूर्त्त मात्र समय तक तो चेतना से शून्य हो गये थे।२५। इसके उपरान्त ब्रह्मा जी उस लोकों की एक नायिका से बोले—ये देवगण—ऋषि लोग—गन्धर्व और अप्सराओं का समुदाय स्वामिनी आपको इस परमाहव में अपने प्रिय के ही साथ में समन्वित देखने की इच्छा रखते हैं।२६। हे देवि ! अब आप यही कृपया बतलाइए कि आपका अनुरूप प्रिय कौनसा धन्यतम पुरुष है ? अब आप लोकों के सरक्षण के लिए परम पुरुष का सेवन करिए।२७। आप इस नगर की महारानी बनिए और इस वरासन पर विराजमान होइए। इन कल्मष रहित देवर्षियों के द्वारा ही हे महाभागे आप अभिषिक्त हो जाइए।२८। हम तो अब यही अपने नेत्रों से देखने की अभिलाषा रखते हैं कि आप साम्राज्य के चिह्नों से समन्विता होवें और सभी आभरणों से समलङ्कृत होवें। आप अपने परम प्रिय के साथ आसन पर स्थित होवें।२९।

—×—

वैवाहिकोत्सव वर्णन

तच्छ्रुत्वा वचनं देवी मंदस्मितमुखांबुजा ।
उवाच स ततो वाक्यं ब्रह्मविष्णुमुखान्सुरान् ॥१
स्वतंत्राहं सदा देवाः स्वेच्छाचारविहारिणी ।
ममानुरूपचरितो भविता तु मम प्रियः ॥२
तथेति तत्प्रतिश्रुत्य सर्वैर्देवैः पितामहः ।
उवाच च महादेवीं धर्मार्थसहितं वचः ॥३

कालक्रीता क्रयक्रीता पितृदत्ता स्वयंयुता ।
नारीपुरुषयोरेवमुद्वाहस्तु चतुर्विधः ॥४

कालक्रीता तु वेश्या स्यात्क्रयक्रीता तु दासिका ।
गन्धर्वोद्वाहिता युक्ता भार्या स्यात्पितृदत्तका ॥५

समानधर्मिणी युक्ता पितृवशंवदा ।
यदद्वैतं परं ब्रह्म सदसद्भावर्जितम् ॥६

चिदानन्दात्मकं तस्मात्प्रकृतिः समजायत ।
त्वमेवासीन्च तद्ब्रह्म प्रकृतिः सा त्वमेव हि ॥७

यह श्रवण करके देवी के मुख कमल पर मन्द सी मुस्कान रेखा दौड़ गयी थी । इसके अनन्तर उस देवी ने उन ब्रह्मादिक जिनमें प्रमुख थे उन देवों से कहा था—हे देवगणो ! मैं परम स्वतन्त्र हूँ और सदा ही अपनी ही इच्छा से विहार करने वाली हूँ । मेरे ही अनुरूप चरित वाला ही मेरा प्रिय होगा ।१-२। ऐसा ही होगा—यह प्रतिज्ञा करके सब देवों के साथ पितामह ने उस देवी से धर्मार्थ के सहित वचन कहा था ।३। विवाह तो चार प्रकार का हुआ करता है—नारी और पुरुष का विवाह होता है—एक तो काल क्रीता नारी होती है—एक क्रय क्रीतानारी है—एक पितृदत्ता है और एक स्वयं युता होती है । काल क्रीता वेश्या होती है जो कुछ काल तक उपभोग के काम आती है । क्रयक्रीता दासी होती है जिसको जीवन भर भोग के लिए खरीद लिया जाया करता है । गान्धर्व विवाह से अर्थात् दानों ही रजा मन्दी से प्रेम करके नारी बना लेते हैं यह स्वसंयुता होती है और जो भार्या होती है वह तो कन्या को पिता दान किया करता है, यही पितृदत्ता है ।५। समान धर्म वाली भार्यायुक्त होती है जो पिता के वशंवदा होती है और पिता जिसको भी योग्य वर समझता है उसे ही अपनी कन्या को दे दिया करता है । जो ब्रह्म अद्वैत है और सदसद्भाव से वर्जित है वह चिदानन्द स्वरूप वाला है । उससे प्रकृति समुत्पन्न हुआ करती है । आप ही तो वह ब्रह्म हैं और आप ही प्रकृति हैं ।६-७।

त्वमेवानादिरखिला कार्यकारणरूपिणी ।
त्वामेव सि विचिन्वंति योगिनः सनकादयः ॥८

सदसत्कर्मरूपां च व्यक्ताव्यक्तो दयात्मिकाम् ।
त्वामेव हि प्रशंसंति पञ्चब्रह्मस्वरूपिणीम् ॥६

त्वामेव हि सृजस्यादौ त्वमेव ह्यवसि क्षणात् ।
भजस्व पुरुषं कंचिल्लोकानुग्रहकाम्यया ॥१०

इति विज्ञापिता देवी ब्रह्मणा सकलैः सुरैः ।
स्रजमुद्यम्य हस्तेन चिक्षेप गगनांतरे ॥११

तयोत्सृष्टा हि सा माला शोभयन्ती नभःस्थलम् ।
पपात कण्ठदेशे हि तदा कामेश्वरस्य तु ॥१२

ततो मुमुदिरे देवा ब्रह्मविष्णुपुरोगमाः ।
ववृषुः पुष्पवर्षाणि मन्दवातेरिता घनाः ॥१३

अथोवाच विधाता तु भगवंतं जनार्दनम् ।
कर्तव्यो विधिनोद्वाहस्त्वनयोः शिवयोर्हरे ॥१४

हे देवि ! आप ही अखिला-अनारादि और कार्य का रण दोनों के स्वरूप वाली हैं। सनकादि योगीजन आपको ही खोजा करते हैं।८। सत् और असत् कर्मों के स्वरूप वाली—व्यक्त तथा अव्यक्त-दया से स्वरूप वाली आप ही की पर ब्रह्म स्वरूप वाली की सब प्रशंसा किया करते हैं। आप ही आरम्भ में सृजन किया करती हैं और आप ही क्षण भर में परिपालन किया करती हैं। अब लोकों पर अनुग्रह करने की आकाङ्क्षा से ही आप किसी भी पुरुष का सेवन करिये।६-१०। इस प्रकार से ब्रह्माजी तथा समस्त सुरों के द्वारा जब वह देवी विज्ञापित की गयी थी तो उसने अपने हाथ से एक माला उठाकर नभ मण्डल के मध्य में प्रक्षिप्त कर दी थी।११। उस देवी के द्वारा ऊपर की ओर प्रक्षिप्त की हुई वह माला आकाश मण्डल को सुशोभित करती हुई उस समय में कामेश्वर प्रभु के कण्ठ भाग में आकर गिर गयी थी।१२। फिर तो ब्रह्मा और विष्णु जिनमें अग्रणी थे ऐसे समस्त देवगण बहुत प्रसन्न हुए थे और मन्द वायु से सम्प्रेरित मेघों ने पुष्पों की वर्षा की थी।१३। इसके अनन्तर विधाता ने भगवान् जनार्दन से कहा—हे हरे ! अब इन दोनों शिव और शिवा का उद्वाह वैदिक विधान से करा देना चाहिए।।१४।

मुहूर्तो देवसम्प्राप्तो जगन्मंगलकारकः ।
स्वद्रूपा हि महादेवी सहजश्च भवानपि ॥१५
दातुमर्हसि कल्याणीमस्मै कामशिवाय तु ।
तच्छ्रुत्वा वचनं तस्य देवदेवस्त्रिविक्रमः ॥१६
ददौ तस्यै विधानेन प्रीत्या तां शङ्कराय तु ।
देवर्षिपितृमुख्यानां सर्वेषां देवयोगिनाम् ॥१७
कल्याणं कारयामास शिवयोरादिकेशवः ।
उपायनानि प्रददु सर्वे ब्रह्मादयः सुराः ॥१८
ददौ ब्रह्मेक्षुचापं तु वज्रसारमनश्वरम् ।
तयोः पुष्पायुधं प्रादादम्लानं हरिरव्ययम् ॥१९
नागपाशं ददौ ताभ्यां वरुणो यादसांपतिः ।
अङ्कुशं च ददौ ताभ्यां विश्वकर्मा विशांपतिः ॥२०
किरीटमग्निः प्रायच्छत्ताटंकौ चन्द्रभास्करौ ।
नवरत्नमयीं भूषां प्रादाद्रत्नाकरः स्वयम् ॥२१

अब देव से सम्प्राप्त जगत् का मङ्गल करने वाला मुहूर्त प्राप्त हो गया है । यह महादेवी आपके ही स्वरूप वाली है और आप भी सहज ही हैं ।१५। इस कल्याणी को आप देने के योग्य होते हैं और इन काम रूप शिव के लिये प्रदान कर दीजिए । देवों के देव त्रिविक्रम भगवान् ने यह श्रवण करके उस देवी का दान करने का उपक्रम किया था ।१६। उन देवगण योगिगण सब देव-ऋषि और पितृगणों के मध्य में भगवान् विष्णु ने उस देवी को वैदिक विधि से भगवान् शङ्कर को प्रदान किया था और बड़ी प्रसन्नता से वह कन्यादान किया था ।१७। आदि केशव प्रभु ने उन दोनों शिवा और शिव का कल्याण करा दिया था और समस्त ब्रह्मादिक सुरगणोंने बहुतसे उपायन समर्पित किये थे ।१८। ब्रह्माजी ने तो इक्षु चाप दिया था श्री अविनाशी और बज्र के समान सार वाला था । भगवान् श्रीहरि ने उन दोनों पति-पत्नी को अविनाशी और अम्लान कुसुमों का आयुध समर्पित किया था ।१९। जल सागरों के स्वामी वरुण ने उन दोनों के लिए नाग पाश दिया था और निशापति विश्वकर्मा ने उन दोनों के लिए अंकुश अर्पित किया था ।२०।

अग्नि देव ने किरीट समर्पित किया था और चन्द्र तथा भास्कर देवों ने दो ताटंक दिये थे। रत्नाकर ने स्वयं समुपस्थित होकर नौ प्रकार के रत्नों से परिपूर्ण भूषा प्रदान की थी।२१।

ददौ सुराणामधिपो मधुपात्रमथाक्षयम् ।
चिन्तामणिमयीं मालां कुबेरः प्रददौ तदा ॥२२
साम्राज्यसूचकं छत्रं ददौ लक्ष्मीपतिः स्वयम् ।
गङ्गा च यमुना ताभ्यां चामरे चन्द्रभास्वरे ॥२३
अष्टौ च वसवो रुद्रा आदित्याश्चाश्विनौ तथा ।
दिक्पाला मरुतः साध्या गन्धर्वाः प्रमथेश्वराः ।
स्वानिस्वान्यायुधान्यस्यै प्रददुः परितोषिताः ॥२४
रथांश्च तुरगान्नागान्महावेगान्महाबलान् ।
उष्ट्रानरोगानश्वांस्तान्क्षुत्तृष्णापरिवर्जितान् ।
ददुर्वज्रोपमाकारान्सायुधान्सपरिच्छदान् ॥२५
अथाभिषेकमातेनुः साम्राज्ये शिवयोः शिवम् ।
अथाकरोद्विमानं च नाम्ना तु कुसुमाकरम् ॥२६
विधाताम्लानमालं वै नित्यं चाभेद्यमायुधैः ।
दिवि भुव्यंतरिक्षे च कामगं सुसमृद्धिमत् ॥२७
यद्गन्धघ्राणमात्रेण भ्रांतिरोगक्षुधार्तयः ।
तत्क्षणादेव नश्यन्ति मनोह्लादकरं शुभम् ॥२८

सुरगणों के अधिप महेन्द्र ने उस समय में एक अक्षय मधुपात्र दिया था। उस समय में कुबेर ने एक माला दी थी जो चिन्तामणियों से निर्मित की हुई थी।२२। लक्ष्मी के स्वामी नारायण ने स्वयं ही एक साम्राज्य का सूचक छत्र अर्पित किया था। गङ्गा और यमुना ने उनको चन्द्र के ही समान भास्कर दो चमर दिए थे।२३। आठ वसुगण रुद्रगण–आदित्य–अश्विनी-कुमार–दिक्पाल–मरुद्गण–साध्य–गन्धर्व–प्रमथेश्वर–इन सभी ने परम परितोषित होते हुए अपने-अपने आयुध उस महादेवी के लिए समर्पित किये थे।२४। और रथ—तुरग तथा नाग जो महान बली और अधिक वेग से समन्वित थे एवं नीरोग उष्ट्र (ऊँट) और अश्व जो क्षुधा और प्यास से रहित

थे एवं वज्र की उपमा के आकार वाले थे तथा आयुधों के सहित एवं परिच्छदों से युक्त थे दिए थे ।२५। इसके अनन्तर उन दोनों शिवा और शिव का परम मंगल अभिषेक किया था। इसके उपरान्त एक विमान बनवाया था जिसका नाम कुसुमाकर था ।२६। इसकी रचना विधाता ने की थी जो कि अम्लान मालाओं वाला था तथा नित्य ही आयुधों के द्वारा अभेद्य था। यह इच्छा के अनुरूप दिवलोक और भूलोक में गमन करने वाला तथा सुसमृद्धि से समन्वित था ।२७। जिसके केवल गन्ध से ही भ्रान्तिक्षुधा-रोग और आर्त्ति सब नष्ट हो जाया करती हैं और यह मन के आह्लाद को करने वाला तथा परम शुभ था ।२८।

तद्विमानमथारोप्य तावुभौ दिव्यदंपती ।
चामरव्यजनच्छत्रध्वजयष्टिमनोरहरम् ।।२९
वीणावेणुमृदंगादिविविधैस्तौर्यवादनैः ।
सेव्यमाना सुरगणैर्निर्गत्य नृपमन्दिरात् ।।३०
ययौ वीथीं विहारेशा शोभायन्ती निजौजसा ।
प्रतिहर्म्याग्रसंस्थाभिरप्सरोभिः सहस्रशः ।।३१
सलाजाक्षतहस्ताभिः पुरंध्रीभिश्च वर्षिता ।
गाथाभिर्मंगलार्थाभिर्वीणावेण्वादिनिस्वनैः ।
तुष्यंती वीथिवीथीषु मन्दमन्दमथाययौ ।।३२
प्रतिगृह्याप्सरोभिस्तु कृतं नीराजनाविधिम् ।
अवरुह्य विमानाग्रात्प्रविवेश महासभाम् ।।३३
सिंहासनमधिष्ठाय सह देवेन शम्भुना ।
यद्यद्वांछंति तत्रस्था मनसैव महाजनाः ।
सर्वज्ञा साक्षिपातेन तत्तत्कामानपूरयत् ।।३४
तद्दृष्ट्वा चरितं देव्या ब्रह्मा लोकपितामहः ।
कामाक्षीति तदाभिख्यां ददौ कामेश्वरीति च ।।३५

उस विमान पर ये दोनों शुभ दम्पती समारूढ़ होकर नृप मन्दिर से बाहिर निकले थे। इस विमान में चमर-व्यजन-छत्र-ध्वजा आदि से परम

मनोहरता विद्यमान थी ।२९। उस समय में वीणा—वेणु-मृदङ्ग प्रभृति अनेक प्रकार के तौर्य वादनों से ये सेव्यमान हो रहे थे । सब सुरगण भी इनकी सेवा में समुपस्थित थे ।३०। विहार की स्वामिनी अपने ओज से शोभित करती हुई वीथी में गयी थी । वहाँ पर बड़े-बड़े धनियों के हर्म्य बने हुए थे । प्रत्येक हर्म्यों की छत पर सहस्रों अप्सरायें बैठी थीं ।३१। वहाँ पर जो पुरन्ध्रियाँ थीं उनके हाथों में लाजा और अक्षत थे जिनकी वे वर्षा कर रही थीं । परम मंगल अर्थों वाली गाथायें करती हुई थीं तथा वीणा-वेणु आदि की ध्वनियों से परम तोष को प्राप्त होती हुई वीथियों से अन्य वीथियों में धीरे-धीरे समागत हो रही थी ।३२। अप्सरायें जो मार्ग में आरती का विधान कर रही थीं उसका प्रति ग्रहण करके उस देवी ने विमान से अवरोहण करके सदा सभा में प्रवेश किया था ।३३। फिर देव शर्म्भ के ही साथ सिंहासन पर समधिष्ठित हुई थीं । वहाँ पर स्थित महाजन समुदाय ने जो भी इच्छा की थी और मन में ही कामना की थी उस सबका ज्ञान रखने वाली महादेवी ने अपनी दृष्टि के पात के ही द्वारा उन-उन सब कामनाओं को पूरा कर दिया था ।३४। लोकों के पितामह ब्रह्माजी ने उस चरित को देखकर ही उस देवी का उस समय में कामाक्षी और कामेश्वरी यह नाम रख दिया था ।३५।

ववर्षाश्चर्यमेघोऽपि पुरे तस्मिस्तदाज्ञया ।
महार्हाणि च वस्तूनि दिव्यान्याभरणानि च ।।३६

चिंतामणि: कल्पवृक्ष: कमला कामधेनव: ।
प्रतिवेश्म ततस्तस्थु: पुरो देव्या जयाय ते ।।३७
तां सेवैकरसाकारां विमुक्तान्यक्रियागुणा: ।
सर्वकामार्थसंयुक्ता हृष्यंत: सार्वकालिकम् ।।३८
पितामहो हरिश्चैव महादेवश्च वासव: ।
अन्ये दिशामधीशास्तु सकला देवतागणा: ।।३९
देवर्षयो नारदाद्या: सनकाद्याश्च योगिन: ।
महर्षयश्च मन्वाद्या वशिष्ठाद्यास्तपोधना: ।।४०
गन्धर्वाप्सरसो यक्षा याश्चान्या देवजातय: ।

दिवि भूम्यंतरिक्षेषु ससंबाधं वसन्ति ये ॥४१
ते सर्वे चाप्यसंबाधं निवसंति स्म तत्पुरे ॥४२

उसकी आज्ञा से उस पुर में आश्चर्य मेघ ने भी वर्षा की थी और उस वर्षा में बहुत अधिक मूल्यवान वस्तुयें तथा परम दिव्य आभरण बरसे थे ।३६। चिन्तामणि-कल्प वृक्ष-कमला और कामधेनु ये सब प्रति गृह में देवी के नगर में उसकी जय के लिए उपस्थित हो गये थे ।३७। सभी उसकी सेवा में ही तत्पर थे और उसकी सेवा का रस ही उनका सबका आकार था तथा अन्य क्रियाओं के गुणों का परित्याग कर दिया था । ये सभी समस्त कामों के अर्थों से संयुक्त थे तथा सर्व काल में प्रसन्न ही रहा करते थे ।३८। पिता-मह-श्रीहरि-महादेव-महेन्द्र—अन्य दिशाओं के स्वामी—सब देवगण-नारद आदि महर्षि—वसिष्ठ आदि तपस्वीगण-गन्धर्व—अप्सरायें—यक्ष और जो भी अन्य देवों की जातियाँ हैं जो भी दिव लोक भूमि और अन्तरिक्ष में बाधा-सहित निवास किया करते थे ।३९-४१। वे सभी उसके पुर में बिना ही किसी बाधा के निवास किया करते थे ।४२।

एवं सद्वत्सला देवी नान्यत्रैत्यखिलाञ्जनात् ।
तोषयामास सततमनुरागेण भूयसा ॥४३
राज्ञो महति भूर्लोके विदुषः सकलेप्सिताम् ।
राज्ञी दुदोहाभीष्टानि सर्वभूतलवासिनाम् ॥४४
त्रिलोकैकमहीपाले सांबिके कामशङ्करे ।
दशवर्षसहस्राणि ययुः क्षण इवापरः ॥४५
ततः कदाचिदागत्य नारदो भगवानृषिः ।
प्रणम्य परमां शक्तिं प्रोवाच विनयान्वितः ॥४६
परं ब्रह्म परं धाम पवित्रं परमेश्वरि ।
सदसद्भावसंकल्पविकल्पकलनात्मिका ॥४७
जगदभ्युदयार्थाय व्यक्तभावमुपागता ।
असज्जनविनाशार्था सज्जनाभ्युदयार्थिनी ।
प्रवृत्तिस्तव कल्याणि साधूनां रक्षणाय हि ॥४८
अयं भंडोऽसुरो देवि बाधते जगतां त्रयम् ।

त्वयैकयैव जेतव्यो न शक्यस्त्वपरैः सुरैः ॥४९

इस प्रकार से सब पर स्नेह एवं प्यार करने वाली वह देवी थी और अन्यत्र ऐसा कहीं भी नहीं था। उस देवी ने समस्त जनों को निरन्तर अत्यधिक अनुराग से सन्तुष्ट कर रक्खा था।४३। इस महान भूलोक में वह राज्ञी राजा हों चाहे विद्वान होवें सकल की ईप्सा रखने वाले समस्त भूतल के निवासीजनों के अभीष्ट पदार्थों का दोहन किया करती थी।४४। तीनों लोकों के एक ही महीपाल अम्बिका के सहित काम शङ्का के होने पर दश सहस्र वर्ष एक ही क्षण के समान व्यतीत हो गये थे।४५। इसके अनन्तर देवर्षि नारद जी भगवान किसी समय में वहाँ पर समागत हुए थे और उस परमा शक्ति को प्रणाम करके उन्होंने विनय से समन्वित होकर कहा था था।४६। आपतो परब्रह्म-परधाम और पवित्र हैं। हे परमेश्वरि ! आप सद-असत् भावों के कलन के स्वरूप वाली हैं।४७। इस जगत के अभ्युदय के ही लिए आप इस व्यक्तभाव को प्राप्त हुई हैं। आप इस लोक में असज्जनों के विनाश के लिए और सज्जनों के अभ्युदय करने वाली हैं। हे कल्याणि ! आपकी जो प्रवृत्ति है वह साधु पुरुषों के रक्षण के ही लिए हैं।४८। यह एक भण्डासुर है हे देवि ! यह तीनों लोकोंको बाधा दे रहा है। यह केवल आप ही के द्वारा जीता जा सकता है ऐसी एक ही आप हैं और दूसरे सुरों के द्वारा तो यह कभी भी जीता नहीं जा सकता है।४९।

त्वत्सेवकपरा देवाश्चिरकालमिहोषिताः ।
त्वदाज्ञया गमिष्यंति स्वानि स्वानि पुराणि तु ॥५०
अमंगलानि शून्यानि समृद्धार्थानि संत्वतः ।
एवं विज्ञापिता देवी नारदेनाखिलेश्वरी ।
स्वस्ववासनिवासाय प्रेषयामास चामरान् ॥५१
ब्रह्माणं च हरिं शम्भुं वासवादीन्दिशां पतीन् ।
यथार्हं पूजयित्वा तु प्रेषयामास चांबिका ॥५२
अपराधं ततस्त्यक्तुमपि संप्रेषिताः सुराः ।
स्वस्वांशैः शिवयोः सेवामादिपित्रोरकुर्वत ॥५३
एतदाख्यानमायुष्यं सर्वमंगलकारणम् ।

आविर्भावं महादेव्यास्तस्या राज्याभिषेचनम् ॥५४

यः प्रातरुत्थितो विद्वान्भक्तिश्रद्धासमन्वितः ।
जपेद्धनसमृद्धः स्यात्सुधासंमितवाग्भवेत् ॥५५

नाशुभं विद्यते तस्य परत्रेह च धीमतः ।
यशः प्राप्नोति विपुलं समानोत्तमतामपि ॥५६

ये समस्त देवगण चिरकाल से यहाँ पर ही निवास किये हुए हैं और ये आपकी सेवा में तत्पर हो रहे हैं । ये आपकी ही आज्ञा से अपने-अपने पुरों में जायेंगे ।५०। इनके सब पुर इस समय में शून्य और मङ्गल से रहित हो रहे हैं । ऐसी कृपा कीजिए कि ये सब समृद्ध अर्थों वाले हो जावे । इस रीति से जब नारद मुनि के द्वारा देवी को बताया गया था तो उस अखिलेश्वरी देवी ने देवों को अपने-अपने निवास स्थानों को भेज दिया था ।५१। फिर उस अम्बिका ने ब्रह्मा—श्री हरि-शम्भु-इन्द्र आदिक और दिक्पाल देवों का कथोचित पूजन करके विदा कर दिया था ।५२। फिर अपराध का त्याग करने के भी लिए सुरगण प्रेषित किए थे आदि पिता-माता-शिवा-शिव की अपने-अपने अंशों से सेवा भी करते थे ।५३। यह आख्यान आयु की वृद्धि करने वाला है—यह सभी प्रकार के मङ्गलों की कारण है–उस महादेवी का आविर्भाव का होना तथा उसके राज्यासन पर अभिषेचन का होना मङ्गल प्रद है ।५४। जो कोई पुरुष प्रातःकाल में उठकर भक्तिभाव से संयुत होकर विद्वान् श्रद्धालु बनकर इसका जाप किया करता है वह धन से समृद्ध हो जाता है और उसकी वाणी सुधा के सदृश ही परम मधुर हो जाया करती है ।५५। उस धीमान का इस लोक में और परलोक में कहीं पर भी कुछ भी अशुभ नहीं होता है । वह विपुल यश को प्राप्त किया करता है—उसका मान बढ़ता है तथा वह उत्तमता का लाभ किया करता है ।५६।

अचला श्रीर्भवेत्तस्य श्रेयश्चैव पदे पदे ।
कदाचिन्न भयं तस्य तेजस्वी वीर्यवान्भवेत् ॥५७

तापत्रयविहीनश्च पुरुषार्थैश्च पूर्यते ।
त्रिसंध्यं यो जपेन्नित्यं ध्यात्वा सिंहासनेश्वरीम् ॥५८

षण्मासान्महतीं लक्ष्मीं प्राप्नुयाज्जापकोत्तमः ॥५९

उसकी श्री चञ्चल होते हुए भी अचल हो जाती है और उसको पद-पद पर श्रेय होता है। उसको भय तो किसी भी समय में होता ही नहीं है और बहुत तेजस्वी तथा वीर्य वाला हो जाता है।५७। उसको तीनों प्रकार के ताप नहीं रहा करते हैं। आध्यात्मिक-आधिभौतिक और आधि-दैविक—ये तीन ताप होते हैं और वह पुरुष पुरुषार्थों से परिपूरित होता या करता है। तीनों समयों में (प्रातः-मध्याह्न-सायम्) जो नित्य ही इसका जाप किया करता है और सिंहासनेश्वरी का ध्यान करता है वह उत्तम जापक छै मास में ही महती लक्ष्मी को प्राप्त कर लेता है।५८-५९।

—×—

सेना सहित विजय यात्रा

अथ सा जगतां माता ललिता परमेश्वरी ।
त्रैलोक्यकंटकं भंडं दैत्यं जेतुं विनिर्ययौ ॥१
चकार मर्दलाकारानंभोराशींस्तु सप्त ते ।
प्रभूतमर्द्दलध्वानैः पूरयामासुरंबरम् ॥२
मृदंगमुरजाश्चैव पटहोऽतुकुलीगणाः ।
सेलुकाझल्लरीरांधाहुण्डुकाहुण्डकाघटाः ॥३
आनकाः पणवाश्चैव गोमुखाश्चार्धचंद्रिकाः ।
यवमध्या मुष्टिमध्या मर्द्दलाडिंडिमा अपि ॥४
झर्झराश्च वरीताश्च इंग्यालिग्यप्रभेदजाः ।
उद्धंकाश्चंतुहुंडाश्च निःसाणा बर्बराः परे ॥५
हुंकारा काकतुण्डाश्च वाद्यभेदास्तथापरे ।
दध्वनुः शक्तिसेनाभिराहताः समरोद्यमे ॥६
ललितापरमेशान्या अंकुशास्त्रात्समुद्गता ।
संपत्करी नाम देवी चचाल सह शक्तिभिः ॥७

इसके अनन्तर वह जगतों की माता परमेश्वरी ललिता तीनों लोकों के कण्टक भण्ड दैत्य को जीतने के लिए वहाँ से निर्गत हुई थी।१। बड़ा

हुआ जो मद्दंलों का घोष था उसने उससे आकाश को भी पूरित कर दिया था ।२। मृदंग-मुरज-पटह-अनुकुलीगण-सेलुका-झल्लरी-रप्घा-हुडुका-हुण्डुक घटा-आनक-पणव-गोमुख-अर्ध चन्द्रिका-तममध्य मद्दंल-डिण्डिम - झर्झर-बरीत-इ'ग्यातिग्य भेदज-उद्धक-एउ हुण्ड-नि:साण-बर्बर-हुँकार-काकतुण्ड तथा ये सब वाद्य और अन्य बाद्यों को उस समर के आरम्भ में शक्ति की सेनाओं के द्वारा आहत किया गया था और ये सभी बजाये गये थे ।३-६। परमेशानी ललिता के अंकुशास्त्र से समुद्गता सम्पत्करी नाम की देवी अपनी शक्तियों के साथ चलित हो गयी थी ।७।

अनेककोटिमातंगतुरंगरथपंक्तिभि: ।
सेविता तरुणादित्यपाटला संपदीश्वरी ।।८
मत्तमुद्दंडसंग्रामरसिकं शैलसन्निभम् ।
रणकोलाहलं नाम सारुरोह मतंगजम् ।।९
तामन्वगा ययौ सेना महती घोररावि्णी ।
लोलाभि: केतुमालाभिरुल्लिखन्ती घनाघनात् ।।१०
तस्याश्च संपन्नाथाया: पीनस्तनसुसंकट: ।
कंटको घनसंनाहो रुरुचे वक्षसि स्थित: ।।११
कंपमाना खड्गलता व्यरुचत्तत्करे धृता ।
कुटिला कालनाथस्य भृकुटीव भयंकरा ।।१२
उत्पातवातसंपाताच्चलिता इव पर्वता: ।
तामन्वगा ययु: कोटिसंख्याका: कुञ्जरोत्तमा: ।।१३
अथ श्रीललितादेव्या श्रीपाशायुधसंभवा ।
अतित्वरितविक्रांतिरश्वारूढाचलत्पुर: ।।१४

अनेकों करोड़ गज—अश्व और रथों की पंक्तियों के द्वारा सेवित सम्पदीश्वरी तरुण सूर्य के समान पाटल थी ।८। शैल के सदृश मत्त मुदण्ड संग्राम में रसिक रण कोलाहल नामक एक गज पर वह समा रूढ़ हुई थी ।९। परम घोर राग वाली बड़ी भारी सेना उसके पीछे अनुगमन करने वाली थी और परम चञ्चल केतुओं की मालाओं से वह सेना घनों को उल्लिसित करती हुई जा रही थी ।१०। उस सम्पदा की स्वामिनी का पीन

(स्थूल) स्तनों में सुसंकट घन के समान कंटक वक्षः स्थल में स्थित शोभित हो रहा था ।११। उसके कर में धरी हुई काँपती हुई खड्गलता शोभायुक्त हो रही थी जो काल नाथ की परम भयंकर कुटिला भृकुटी के ही समान थी ।१२। उत्पातों के वात की सम्पात वाली चलायमान पर्वतों के ही सदृश करोड़ों की संख्या वाले उत्तम कुञ्जर उस सम्पत्करी के पीछे अनुगमन करने वाले थे ।१३। इसके अनन्तर श्रीललिता देवी के श्रीपाशायुध से समुत्पन्न अतीव शीघ्र विक्रान्ति युक्त अश्व पर समारूढ़ आगे चल रही थी ।१४।

तया सह हयप्रायं सैन्यं ह्रेषातरंगितम् ।
व्यचरत्खुरकुट्टालविदारितमहीतलम् ।।१५
वनायुजाश्च कांबोजाः पारदाः सिंधुदेशजाः ।
टंकणाः पर्वतीयाश्च पारसीकास्तथा परे ।।१६
अजानेया घट्टधरा दरदाः कालवंदिजाः ।
वाल्मीकयावनोद्भूता गान्धर्वाश्चाथ ये हयाः ।।१७
प्राग्देशजाताः कैराता प्रांतदेशोद्भवास्तथा ।
विनीताः साधुवोढारो वेगिनः स्थिरचेतसः ।।१८
स्वामिचित्तविशेषज्ञा महायुद्धसहिष्णवः ।
लक्षणैर्बहुभिर्युक्ता जितक्रोधा जितश्रमाः ।।१९
पञ्चधारासु शिक्षाढ्या विनीताश्च प्लवान्विता ।।२०
फलशुक्तिश्रिया युक्ताः श्वेतशुक्तिसमन्विताः ।
देवपद्मं देवमणिं देवस्वस्तिकमेव च ।।२१

उस देवी के साथ ऐसी सेना थी जिसमें प्रायः अश्व थे जिनकी हिनहिनाहट से वह तरङ्गित थी । उन अश्वों के खुरों की टापों से सम्पूर्ण महीतल विदीर्ण हो रहा था । ऐसी सेना चली थी ।१५। उस सेना में विभिन्न प्रकार की जाति के अश्व विद्यमान थे । उनमें वनायुज–काम्बोज–पारद—सिन्धु देश में उत्पन्न होने वाले–टकण–पर्वतीय–पारसीक थे ।१६। अजानेय–घट्टधर—दरद–कालवन्दिज–वाल्मीक–यावनोद्भूत और गान्धर्व हय थे ।१७। उन अश्वों में कुछ प्राग्देशज थे कैरात तथा प्रान्त देशोद्भव

थे । ये सब अश्व बड़े ही विनीत–अच्छी तरह से वहन करने वाले–वेगगति से समन्वित और स्थिर चित्तों वाले थे ।१८। वे अश्व सभी ऐसे थे जो अपने स्वामी के मन का भाव जानने वाले थे और महान् युद्ध में परम सहिष्णु रहने वाले थे । उनमें बहुत से अच्छे-अच्छे लक्षण विद्यमान थे तथा ये सभी क्रोध को जीत लेने वाले और परमाधिक परिश्रमी थे ।१९। पञ्च धाराओं में शिक्षित—विनीत और प्लवन से संयुत थे ।२०। ये फल शुक्ति की श्री से सम्पन्न तथा श्वेत शुक्ति से समन्वित थे । उनमें देव पद्म—देव मणि और देव स्वस्तिक ये सुन्दर लक्षण विद्यमान थे ।२१।

अथ स्वस्तिकशुक्तिश्च गड्डुरं पुष्पगंडिकाम् ।
एतानि शुभलक्ष्माणि जयराज्यप्रदानि च ।
वहंतो वातजवना वाजिनस्तां समन्वयुः ।।२२
अपराजितनामानमतितेजस्विनं चलम् ।
अत्यंतोत्तुगवर्ष्माणं कविकाविलसन्मुखम् ।।२३
पार्श्वद्वयेऽपि पतितस्फुरत्केसरमंडलम् ।
स्थूलवालधिविक्षेपक्षिप्यमाणपयोधरम् ।।२४
जंघाकांडसमुन्नद्धमणिकिङ्किणिभासुरम् ।
वादयंतमिवोच्चण्डैः खुरनिष्ठुरकुट्टनैः ।।२५
भूमंडलमहावाद्यं विजयस्य समृद्धये ।
घोषमाणं प्रति मुहुः संदर्शितगतिक्रमम् ।।२६
आलोलचामरव्याजाद्वहंतं पक्षती इव ।
भांडैर्मनोहरैर्युक्तं घर्घरीजालमंडितम् ।।२७
एवां घोषस्य कपटाद्धुंकुर्वंतीमिवासुरान् ।
अश्वारूढा महादेवी समारूढा हयं ययौ ।।२८

इसके उपरान्त उनमें स्वस्तिक शुक्ति—गड्डुर और पुष्प गणिका—ये परम शुभ चिह्न विद्यमान थे जो जय और राज्य के प्रदान कराने वाले थे । ऐसे अश्व गण थे जो वहन करने वाले—वायु के समान वेग वाले थे । ऐसे अश्व उस देवी के पीछे गमन करने वाले थे ।२२। वह देवी एक ऐसे अश्व समारूढ़ थी जो अत्यन्त तेजस्वी था और अपराजित उसका नाम था

एवं बड़ा चञ्चल था। उस अश्व का कलेवर बहुत ही ऊँचा था और उसके मुख में लगाम शोभित हो रही थी।२३। उस अश्व के दोनों ओर केशरों का मण्डल स्फुरित हो रहा था। उसकी पूँछ बहुत ही स्थूल थी जिसके विक्षेप से पयोधर क्षिप्यमाण हो रहे थे।२४। जंघाओं के भाग में समुन्नद्ध मणियों की धीमी किन किनाहट की ध्वनि से भासुर था। उसके खुरों के निष्ठुर कुट्टनों से जो बहुत ही तेज थे वादन सा कर रहा था।२५। मानों ऐसा प्रतीत हो रहा था कि विजय की समृद्धि के ही लिए यह महान् वाद्य बजाया जा रहा था बार-बार गति के क्रम से छोटा करता हुआ वह संदर्शित हो रहा था।२६। चञ्चल पूँछ जो उसकी बार-बार ऊपर की ओर उठ रही थी वह ऐसी ही प्रतीत हो रही थी मानों दोनों ओर चमर ढुराये जा रहे हों। वह अश्व मनोहर भाण्डों से युक्त था और घर्घरी के जाल से समलंकृत था।२७। इनकी जो महाध्वनि हो रही थी उससे ऐसा प्रतीत हो रहा था मानों वह सभी असुरों को हुँकार की तर्जना दे रही थी। यह महा देवी अश्व पर समारूढ़ होकर वहां से गमन कर रही थी।२८।

चतुर्भिर्बाहुभिः पाशमंकुशं वेत्रमेव च।
हयवल्गां च दधती बहुविक्रमशोभिनी ।।२९
तरुणादित्यसङ्काशा ज्वलत्काञ्चीतरंगिणी।
सञ्चचाल हयारूढा नर्तयन्तीव वाजिनम् ।।३०
अथ श्रीदण्डनाथाया निर्याणपटहध्वनिः।
उद्दंडसिन्धुनिस्वानश्चकार बधिरं जगत् ।।३१
वज्रबाणैः कठोरैश्च भिदंत्यः ककुभो दश।
अत्युद्धतभुजाश्मानः शक्तयः काश्चिदुच्छ्रिताः ।।३२
काश्चिच्छ्रीदंडनाथायाः सेनानासीरसङ्गताः।
खड्गं फलमादाय पुप्लुवुश्चंडशक्तयः ।।३३
अत्यंतसैन्यसम्बाधं वेत्रसंताडनैः शतैः।
निवारयंत्यो वेत्रिण्यो व्युच्चलंति स्म शक्तयः ।।३४
अथ तुंगध्वजश्रेणीर्महिषांको मृगांकिकाम्।
सिंहांकाश्चैव बिभ्राणाः शक्तयो व्यचलन्पुरा ।।३५

ततः श्रीदण्डनाथायाः श्वेतच्छत्रं सहस्रशः ।
स्फुरत्ककराः प्रचलिताः शक्तयः काश्चिदाददुः ।।३६

अत्यधिक विक्रम की शोभा वाली वह महा देवी अपने चारों करों में पाश--अंकुश--नेत्र और अश्व की वल्गा को लिये हुई थीं ।२९। तरुण सूर्य के समान जाज्वल्यमान चमकती हुई काञ्ची की तरङ्ग वाली वह अपने अश्व को नचाती हुई-सी अश्व पर समारूढ़ वह वहाँ से चली थी ।३०। इसके अनन्तर श्री दण्ड स्वामिनी की जो निर्माण के पटहकी ध्वनि हो रही थी वह परम उद्दण्ड सागर के घोष के ही समान थी जो कि सम्पूर्ण जगत् को बधिर कर रही थी ।३१। बहुत सी शक्तियाँ उसके आगे चल रही थीं जो कठोर वज्रोपम बाणों के द्वारा दशों दिशाओं का विहनन कर रही थीं । उनकी भुजाएँ अतीव उद्धत अश्म के समान थीं और परम उच्छ्रित कोई अद्भुत शक्तियाँ थी ।३२। कुछ शक्तियाँ उस श्री दण्ड नाथा के सेना नासीर के साथ थीं । ये परम चण्ड शक्तियाँ खड्ग को और फलक को लेकर उछाल खा रही थीं ।३३। सैकड़ों ही नेत्रों के सन्ताड़नों से उस सेना की जो सम्बाधा थी उसका क्षेत्रिणी निवारण करती हुई शक्तियाँ ऊपर की ओर चल रही थीं ।३४। इसके पश्चात् ऐसी शक्तियाँ आगे चली थी जो तुङ्ग ध्वजाओं की श्रेणी और महिष के चिन्हों वाली थीं तथा मृगों के चिह्नों को और सिंह के अङ्कों को धारण करने वाली थीं ।३५। इसके पश्चात् कुछ ऐसी शक्तियाँ थी जो श्रीदण्ड नाथा के सहस्रों छत्रों को जो श्वेत थे धारण करके चल रहीं थीं जिन छत्रों से उनके कर कमल स्फुरित हो रहे थे ।३६।

।। दण्डनाथा श्यामला सेना यात्रा ।।

दण्डनाथाविनिर्याणे संख्यातीतैः सितप्रभैः ।
छत्रैर्गगनमारेजे निःसंख्यशशिमण्डितम् ।।१

अन्योन्यसक्तैर्धवलच्छत्रं रंतर्घनीभवत् ।
तिमिरं नुनुदे भूयस्तत्काण्डमणिरोचिषा ।।२

वज्रप्रभाधगधगच्छायापूरितदिङ्मुखाः ।
तालवृन्ताः शतविधाः क्रोडमुख्या बलेऽचलन् ।।३

चण्डो चण्डादयस्तीव्रा भैरवाः शूलपाणयः ।
ज्वलत्केशपिशङ्गाभास्तडिद्भासुरदिङ्मुखाः ।।४
दहन्त्य इव दैत्यौघांस्तीक्ष्णैर्मार्गणवह्निभिः ।
प्रचेलुर्दंडनाथायास्सेना नासीरधाविताः ।।५
अथ पोत्रीमुखीदेवीसमानाकृतिभूषणाः ।
तत्समानायुधकरास्तत्समानस्ववाहनाः ।।६
तीक्ष्णदंष्ट्रविनिष्ठ्यूतवह्निभूमाम्रितांबराः ।
तमालश्यामलाकाराः कपिलाः क्रूरलोचनाः ।।७

इस दण्डनाथा का जो विशेष निर्माण हुआ था उसमें संख्यातीत अर्थात् अगणित छत्र थे जिनकी श्वेत प्रभा थी। उनसे नभोण्डल ऐसा शोभित हो रहा था मानों उसमें अगणित चन्द्रमा उदित हो गये होवें ।१। वे परम धवल छत्र एक दूसरे से परस्पर में सट से रहे थे जिनसे उनका अन्तर बहुत ही घना हो गया था । उनके समुदाय में जो मणियाँ थीं उनकी कान्ति से अन्धकार का विनाश हो गया था ।२। उस बल में वज्र की प्रभा को भी पराजित करने वाली कान्ति से समस्त दिशाओं के मुखों को पूरित करने वाले सैकड़ों ही प्रकार के क्रोड़ मुख्य ताल वृन्त चले थे ।३। उस दण्डनाथा की सेनाएँ नासीर से धावित होती हुई वहाँ से चली थीं उसमें जो सैनिक थे वे चण्ड दण्ड आदिक थे तथा परम तीव्र—भैरव और हाथों में शूल लिये हुए थे । वे जलते हुए केशों के समान पिशंग आभा से समन्वित थे तथा तडित् के समान भासुर थे जिनसे सभी दिशाएँ भी भासुर हो रही थीं। अपनी परम तीक्ष्ण बाणों की अग्नि से दैत्यों के समूहों को दग्ध कर रहीं थीं ।४-५। इसके अनन्तर बहुत-सी शक्तियाँ भी उसमें चलीं थीं जो पोत्री मुखों वाली थीं और उसी के समान आकृति और भूषणों से संयुत थी। उसी के समान उनके करों में आयुध थे तथा उसी के तुल्य उनके अपने वाहन भी थे ।६। उनकी बहुत तीक्ष्ण दाढ़ें थी जिनसे वे वह्नि और धूम को निकाल रहीं थी जिससे सम्पूर्ण आकाश परिवृत हो गया था। तमाल वृक्ष के समान उनका श्यामल आकार था तथा कपिल और क्रूर नेत्रों वाली थीं ।७।

सहस्रमहिषारूढाः प्रचेलुः सूकराननाः ।
अथ श्रीदंडनाथा च करिचक्ररथोत्तमात् ॥८
अवरुह्य महासिंहमारुरोह स्ववाहनम् ।
वज्रघोष इति ख्यातं धूतकेसरमंडलम् ॥९
व्यक्तास्यं विकटाकारं विशंकटविलोचनम् ।
दंष्ट्राकटकटत्कारबधिरीकृतदिक्तटम् ॥१०
आदिकूर्मकठोरास्थि खर्परप्रतिमैर्नखैः ।
पिबंतमिव भूचक्रमापातालं निमज्जिभिः ॥११
योजनत्रयमुत्तुंगं वेगादुद्धूतबालधिम् ।
सिंहवाहनमारुह्य व्यचलद्दंडनायिका ॥१२
तस्यामसुरसंहारे प्रवृत्तायां ज्वलत्क्रुधि ।
उद्वेगं बहुलं प्राप त्रैलोक्यं सचराचरम् ॥१३
किमसौ धक्ष्यति रुषा विश्वमद्यैव पोत्रिणी ।
किं वा मुसलघातेन भूमिं द्वेधा करिष्यति ॥१४

सूकर के समान जिनका मुख था ऐसी अनेक शक्तियाँ सहस्रों महिषों पर समारूढ़ होकर वहाँ पर चली थीं। इसके अनन्तर वह श्रीदण्डनाथा देवी अपने करिचक्र उत्तम रथ से नीचे उतरीं औप अपने प्रमुख बाहन महासिंह के ऊपर समारूढ़ हो गयी थीं। उसका नाम बज्र घोर प्रसिद्ध था जो अपने केसरों के मण्डल को कम्पित कर रहा था। इसका मुख खुला हुआ था तथा परम भीषण आकार वाला था एवं उसके लोचन विशंकट थे। वह अपनी दाढ़ों को कटकटा रहा था जिसकी कटकटा हट से सभी दिशाएँ बधिरीभूत हो गयी थीं।८-१०। उसकी अस्थियाँ आदि कूर्म के सदृश कठोर थीं और उसके नख खर्पर के समान विशाल थे। जो पाताल तक निमज्जित होकर इस भूमण्डल को पी से रहे थे।११। यह तीन योजन तक ऊँचा था और बड़े वेग से अपनी पूँछ को हिला रहा था। ऐसे अपने सिंह के वाहन पर समारूढ़ होकर वह महादेवी दण्ड नायिका चली थीं।१२। समस्त असुरों के संहार करने में जब वह प्रवृत्त हुई थी तो उस समय में उसकी क्रोध प्रज्वलित हो गया था और उसके प्रभाव से चराचर तीनों

लोक बड़े भारी उद्वेग को प्राप्त हो गये थे ।१३। सभी लोग यह कह रहे थे किया यह पोत्रिणी अपने क्रोध से आज ही सबको दग्ध कर देगी अथवा अपने मुसल की चोट से इस भूमण्डल के दो टुकड़े कर देगी ? ।१४।

अथ वा हलनिर्घातैः क्षोभयिष्यति वारिधीन् ।
इति त्रस्तहृदः सर्वे गगने नाकिनां गणाः ।।१५
दूराद्द्रुतं विमानैश्च सत्रासं ददृशुर्गताः ।
ववंदिरे च तां देवा वद्धांजलिपुटान्विताः ।
मुहुर्द्वादशनामानि कीर्तयंतो नभस्तले ।।१६

अगस्त्य उवाच–

कानि द्वादशनामानि तस्या देव्या वद प्रभो ।
अश्वानन महाप्राज्ञ येषु मे कौतुकं महत् ।।१७

हयग्रीय उवाच–

शृणु द्वादशनामानि तस्या देव्या घटोद्भव ।
यदाकर्णनमात्रेण प्रसन्ना सा भविष्यति ।
पञ्चमी दंडनाथा च संकेता समयेश्वरी ।।१८
तथा समयसंकेता वाराही पोत्रिणी तथा ।
वार्ताली च महासेनाप्याज्ञा चक्रेश्वरी तथा ।।१९
अरिघ्नी चेति सम्प्रोक्तं नामद्वादशकं मुने ।
नामद्वादशकाभिख्यवज्रपञ्जरमध्यगः ।
संकटे दुःखमाप्नोति न कदाचन मानवः ।।२०
एतैर्नामभिरभ्रस्थाः संकेतां बहु तुष्टुवुः ।
तेषामनुग्रहार्थाय प्रचचाल च सा पुनः ।।२१

अथवा यह अपने हल के निर्घात से समुद्रों को क्षुब्ध कर देगी। इस प्रकार से सभी स्वर्ग वासियों के गण डरे हुए हृदय वाले गगन मण्डल में संस्थित थे ।१५। बड़े ही त्रास के साथ शीघ्र ही दूर से विमानों के द्वारा गये हुओं ने देखा था । फिर उन देवगणों ने दोनों करों को जोड़कर उसके लिए

वन्दना की थी । वे बार-बार उसके द्वादश नामों का नभस्तल में कीर्त्तन कर रहे थे ।१६। अगस्त्य जी ने कहा—हे प्रभो ! वे उस देवीके बारह नाम कौन से हैं उनको कृपया बतलाइए । हे अश्वानन ! आप तो महान् विद्वान् हैं । मेरे हृदय में इनके ज्ञान प्राप्त करने का बड़ा भारी कौतुक विद्यमान है ।।१७। श्री हयग्रीवजी ने कहा—हे घटोद्भव ! अब आप उस देवी के द्वादश नामों का श्रवण कीजिए जिन नामों के केवल श्रवण करने ही से वह परम प्रसन्न हो जाया करती है । पञ्चमी—दण्डनाथा-संकेता—समयेश्वरी—समय संकेता-वाराही—पोत्रिणी—वार्त्ताली—महासेना—आज्ञा—चक्रेश्वरी—और अरिघ्वनी—हे मुने ! ये ही उस देवी के द्वादश नाम हैं जिनको मैंने आपके सामने कहकर बता दिया है । यह द्वादश नामों का एक वज्र का पञ्जर है । इसके मध्य में रहने वाला अर्थात् इन बारह नामों का पाठ करने वाला बहुत ही सुरक्षित रहता है जैसे मानों वह वज्र निर्मित पञ्जर में बैठा होवे । वह मानव संकट में भी कभी दुःख नहीं पाता है । इन्हीं नामों के द्वारा गगन में संस्थित देवों ने उस देवी संकेता की बहुत स्तुति की थी । उन सब पर अनुग्रह करने के लिए उसका हृदय पसीज गया था और फिर वह प्रचलायमान हो उठी थी ।१८-२१।

अथ संकेतयोगिन्या मंत्रनाथा पदस्पृशः ।
निर्याणसूचनकरी दिवि दध्वान काहली ।।२२
शृङ्गारप्रायभूषाणां शार्दूलश्यामलत्विषाम् ।
वीणासंयतपाणीनां शक्तीनां निर्ययौ बलम् ।।२३
काश्चिद्गायन्ति नृत्यंति मत्तकोकिलनिःस्वनाः ।
वीणावेणुमृदंगाद्याः सविलासपदक्रमाः ।।२४
प्रचेलुः शक्तयः श्यामा हर्षयंत्यो जगज्जनान् ।
मयूरवाहनाः काश्चित्कतिचिद्धंसवाहनाः ।।२५
कतिचिन्नकुलारूढाः कतिचित्कोकिलासनाः ।
सर्वाश्च श्यामलाकाराः काश्चित्कर्णीरथस्थिता ।।२६
कादंबमधुमत्ताश्च काश्चिदारूढसैन्धवाः ।
मंत्रनाथां पुरस्कृत्य संप्रचेलुः पुरः पुरः ।।२७

अथारुह्य समुत्तुंगध्वजचक्रं महारथम् ।
बालार्कवर्णकवचा मदालोलविलोचना ॥२८

इसके उपरान्त संकेत योगिनी की मन्त्र नाथा चरणों के स्पर्श करने वाली तथा निर्याण की सूचना करने वाली दिवलोक में काहली बजी थी। ।२२। शृङ्गार प्राय भूषा वाली—शार्दूल श्यामल कान्ति वाली—वीणा से संयत करों वाली शक्तियों की सेना निकल गयी थी ।२३। उनमें कुछ तो गान करती हैं जिनकी ध्वनि मत्त कोकिलों के समान थी—कुछ नृत्य करती हैं। वीणा-वेणु और मृदंग आदि लिये हुई थीं और उनका चरणों का विन्यास का क्रम विलास से युक्त था ।२४। जगत के जनों को हर्षित करती हुई श्यामा शक्तियाँ वहाँ से चल दी थीं। कुछ का वाहन मयूर था और कुछ हंसों को वाहन बनाये हुईं थी ।२५। कुछ नकुल पर समारूढ़ थीं और कुछ कोकिलों पर विराजमान थीं। ये सभी श्यामल आकार वाली थी। इनमें कुछ कर्णी रथों पर सब संस्थित थीं ।२६। ये कादम्ब मधु मत्ता थीं और कुछ सैन्धवों पर समारूढ़ थीं। मन्त्रनाथ को अपने आगे करके ही वहाँ से रवाना हो गयीं थीं ।२७। इसके उपरान्त समुत्तुंगध्वजा वाले रथ पर आरूढ़ होकर बाल सूर्य के वर्ण के समान कवच वाली तथा मद से आलोल लोचनों वाली थी ।२८।

ईषत्प्रस्वेदकणिकामनोहरमुखांबुजा ।
प्रेक्षयंती कटाक्षौघैः किंचिद्भ्रूवल्लितांडवैः ॥२९
समस्तमपि तत्सैन्यं शक्तीनामुद्धतोद्धतम् ।
पिच्छत्रिकोणच्छत्रेण विरुदेन महीयसा ॥३०
आसां मध्ये न चान्यासां शक्तीनाभुज्ज्वलोदया ।
निर्जगाम घनश्यामश्यामला मन्त्रनायिका ॥३१
तां तुष्टुवुः षोडशभिर्नामभिर्नाकवासिनः ।
तानि षोडशनामानि शृणु कुम्भसमुद्भव ॥३२
संगीतयोगिनी श्यामा श्यामला मन्त्रनायिका ।
मन्त्रिणी सचिवेशी च प्रधानेशी शुकप्रिया ॥३३
वीणावती वैणिकी च मुद्रिणी प्रियकप्रिया ।
नीपप्रिया कदंबेशी कदंबवनवासिनी ॥३४

सदामदा च नामानि षोडशैतानि कुम्भज ।
एतैर्यः सचिवेशानीं सकृत्स्तौति शरीरवान् ।
तस्य त्रैलोक्यमखिलं हस्ते तिष्ठत्यसंशयम् ।।३५

थोड़ी २ प्रस्वेद की कणिकाओं से मनोहर मुख कमल वाली-कुछ चुकटियों को नचाकर कटाक्ष पातोंसे प्रेक्षण करती हुईथीं।२९। उन शक्तियों का सम्पूर्णउद्धत भी उद्धत सैन्यबल था जो पिच्छ त्रिकोण महान विरुद वाले छत्र से संयुत था ।३०। इनके और अन्यों के मध्य में अर्थात् शक्तियों के बीच में उज्वल उदय वाली-घन के समान श्यामला मन्त्र नायिका निकली थी। ।३१। स्वर्गवासियों ने उसका भी सोलह नामों के द्वारा स्तवन किया था। हे कुम्भोद्भव ! उन सोलह नामों का भी अब मुझसे श्रवण कर लो ।३२। संगीत योगिनी-श्यामा-श्यामल-मन्त्र नायिका—मन्त्रिणी—सचिवेशी—प्रधानेशी— शुक प्रिया—वीणावती—वैणिकी-मुद्रिणी—प्रियकप्रिया—नीप प्रिया—कदम्बेक्षी—कदम्ब वन वासिनी-सदामदा—हे कुम्भज ! ये ही सोलह नाम हैं। इनके द्वारा जो सदा शरीरधारी एक बार सचिवेशानी की स्तुति किया करता है उसके हाथ में सम्पूर्ण त्रैलोक्य निःसंशय स्थित रहा करता है ।३३-३५।

मन्त्रिनाथा यत्र यत्र कटाक्षं विकिरत्यसौ ।
तत्र तत्र गताशंकं शत्रुसैन्यं पतत्यलम् ।।३६
ललितापरमेशान्या राज्यचर्चा तु यावती ।
शक्तीनामपि चर्चा या सा सर्वत्र जयप्रदा ।।३७
अथ संगीतयोगिन्याः करस्थाच्छुकपोतकात् ।
निर्जगाम धनुर्वेदो वहन्सज्जं शरासनम् ।।३८
चतुर्बाहुयुतो वीरस्त्रिशिरास्त्रिविलोचनः ।
नमस्कृत्य प्रधानेशीमिदमाह स भक्तिमान् ।।३९
देवि भंडासुरेंद्रस्य युद्धाय त्वं प्रवर्त्तसे ।
अतस्तव मया साह्यं कर्तव्यं मन्त्रिनायिके ।।४०
चित्रजीवमिमं नाम कोदंडं सुमहत्तरम् ।
गृहाण जगतामंब दानवानां निबर्हणम् ।।४१

इमौ चाक्षयबाणाढ्यौ तूणीरौ स्वर्णचित्रितौ ।
गृहाण दैत्यनाशाय ममानुग्रहहेतवे ।।४२

वह मन्त्रनाथा जहाँ-जहाँ पर अपने कटाक्ष को विकीर्ण किया करती है वहाँ पर शत्रु की सेना गताशंक होकर पूर्णतया पतन को प्राप्त हो जाया करती है ।३६। परमेशानी ललिता की जितनी भी राज्य चर्चा होती है और उसकी शक्तियों की जो चर्चा है वह सर्वत्र विजय के प्रदान करने वाली होती है ।३७। इसके अनन्तर संगीत योगिनी के कर में स्थित शुक पोत (शिशु) से सज्जित शरासन का वहन करता हुआ धनुर्वेद निकला था ।३८। वह चार बाहुओं से संयुत था—तीन उसके शिर थे और उस वीर के तीन ही नेत्र थे । उसने प्रधानेशी को प्रणिपात करके यह उस भक्तिमान ने प्रार्थना की थी ।३९। हे मन्त्रिनायिके ! हे देवि ! इस समय में आप भण्डासुरेन्द्र के साथ युद्ध करने के लिए प्रवृत्त हो रही हैं । अतएव मेरे द्वारा आपकी सहायता करनी चाहिए ।४०। हे जगतों की जननि ! यह चित्र जीव नाम वाला को दण्ड बहुत ही अधिक महान् है । यह समस्त दानवों का निबर्हण करने वाला है । इसको आप ग्रहण कीजिए ।४१। ये दोनों तूणीर हैं जिनमें कभी भी बाणों का क्षय नहीं होता है और ये स्वर्ण से चित्रित हैं इनको भी आप केवल मुझ पर अनुग्रह करने के लिए ही ग्रहण कीजिए ।४२।

इति प्रणम्य शिरसा धनुर्वेदेन भक्तितः ।
अर्पितांश्चापतूणीराञ्जग्राह प्रियकप्रिया ।।४३
चित्रजीवं महाचापमादाय च शुकप्रिया ।
बिस्फारं जनयामास मौर्वीमुद्वाद्य भूरिशः ।।४४
संगीतयोगिनी चापध्वनिना पूरितं जगत् ।
नाकालयानां च मनोनयनानंदसंपदा ।।४५
यंत्रिणी तंत्रिणी चेति द्वे तस्याः परिचारिके ।
शुकं वीणां च सहसा वहंत्यौ परिचेरतुः ।।४६
आलोलवलयक्वाणधिष्णुगुणनिस्वनम् ।
धारयंती घनश्यामा चकारातिमनोहरम् ।।४७
चित्रजीवशरासेन भूषिता गीतयोगिनी ।
कदंबिनीव रुरुचे कदम्बच्छत्रकार्मुका ।।४८

कालीकटाक्षवत्तीक्ष्णो नृत्यद्भुजगभीषणः ।
उल्लसन्दक्षिणे पाणौ विललास शिलीमुखः ॥४६
गेयचक्ररथारूढां तां पश्चाच्च सिषेविरे ।
तद्वच्छ्यामलशोभाढ्या देव्यो बाणधनुर्धराः ॥५०
सहस्राक्षौहिणीसंख्यास्तीव्रवेगा मदालसाः ।
आपूरयंत्य ककुभं कलैः किलिकिलारवैः ॥५१

इस प्रकार से प्रार्थना पूर्वक धनुर्वेद ने भक्ति भाव से प्रार्थना की थी और शिर टेककर प्रणाम किया था तथा चाप और तूणीर समर्पित किये थे । उनको प्रियक प्रिया ने सादर ग्रहण कर लिया था ।४३। उस शुकप्रिया ने उस महाचाप को ग्रहण कर जिसका नाम चित्रग्रीव था उसका विस्फार समुत्पन्न किया था और विपुल रूप उसकी मुर्वी का उद्वादन किया था ।४४। उस संगीत योगिनी ने चाप की ध्वनि से सम्पूर्ण जगत् को पूरित कर दिया था । वह देवों के मन और नयनों के आनन्द की सम्पदा थी ।४५। मन्त्रिणी और तन्त्रिणी—ये दो उसकी परिचारिकाएँ थीं । वे शुक और वीणा का वहन करती हुई सहसा उसकी परिचर्या किया करती थीं ।४६। थोड़ा चञ्चल अर्थात् हिलने वाला जो वलय था उसके क्वणन से बढ़ने के स्वभाव वाला गुणों का निःस्वन था । वह धन के सदृश श्यामा उसको धारण करती हुई अति मनोहर ध्वनि कर रही थी ।४७। गीतयोगिनी चित्र जीव नामक शरासन से परम भूषित हो रही थी और कदम्ब छत्र कार्मुका कदम्बिनी की ही भाँति शोभित हुई थी ।४८। काली के कटाक्ष के सदृश परम तीक्ष्ण नृत्य करता हुआ भुजंग भीषण दक्षिण कर में उल्लासित होता हुआ शिलीमुख विलास कर रहा था ।४६। गेय चक्र वाले रथ पर समारूढ़ उसका पीछे सेवा कर रहे थे । उसी के समान श्यामल और शोभा से समन्वित बाण और धनुष को धारण करने वाली देवियाँ थीं ।५०। ये तीव्र वेगवाली और महालसा थीं जिनकी संख्या एक सहस्र अक्षौहिणी थी । परम मधुर जो किल किल की ध्वनि थी उससे दिशा पूरित कर रहीं थीं ।५१।

—×—

ललिता परमेश्वरी सेना जययात्रा

अथ राजनायिका श्रिता ज्वलितांकुशा फणिसमानपाशभृत् ।
कलनिक्वणद्वलयमैक्षवं धनुर्दधती प्रदीप्तकुसुमेषुपंचका ॥१
उदयत्सहस्त्रमहसा सहस्रतोऽप्यतिपाटलं निजवपुः प्रभाझरम्
किरती दिशासु वदनस्य कांतिभिः सृजतीव
चन्द्रमयमभ्रमंडलम् ॥२
दशयोजनायतिमता जगत्त्रयीमभिवृण्वता
विशदमौक्तिकात्मना ।
धवलातपत्रवलयेन भासुरा शशिमंडलस्य सखितामुपेयुषा ॥३
अभिवीजिता च मणिकांतशोभिना
विजयादिमुख्यपरिचारिकागणैः ।
नवचन्द्रिकालहरिकांतिकंदलीचतुरेण चामरचतुष्टयेन च ॥४
शक्तचक्रराज्यपदवीमभिसूचयंती साम्राज्य-
चिह्नशतमंडितसैन्यदेशा ।
संगीतवाद्यरचनाभिरथामरीणां संस्तूयमानविभवा
विशदप्रकाशा ॥५
वाचामगोचरमगोचरमेव बुद्धेरीदृक्तया न
कलनीयमनन्यतुल्यम् ॥६
त्रैलोक्यगर्भपरिपूरितशक्तिचक्रसाम्राज्यसं-
पदभिमानमभिस्पृशंती ।
आबद्धभक्तिविपुलांजलिशेखराणामारादहंप्रथमिका
कृतसेवनानाम् ॥७

इसके अनन्तर वह राज नायिका वहाँ पर विराजमान थी जिसका अंकुश ज्वलित था और जो सर्प के ही तुल्य पाश को धारण करने वाली थी। मधुर क्वणन करने वाला वलय और इक्षु का धनुष धारण किये हुए थी। उसके बाण पाँच कुसुमों के थे ।१। उदित सूर्य के तेज से भी अत्यधिक

पाटल उसका अपना कलेवर था जिससे प्रभा झर रही थी। वह अपने मुख की कान्तियों को दिशाओं में कीर्ण कर रही थी। ऐसा प्रतीत होता था मानो वह अभ्रमण्डल को चन्द्रों से परिपूर्ण बना रही हो।२। शशि मण्डल की सखिता को प्राप्त होने वाला उसका परम धवल आतपत्र था जिसका आयतन दशयोजन था और तीनों लोकों का अभिवरण करने वाला था। उसका स्वरूप परम स्वच्छ मौक्तिक के सदृश था। ऐसे धवल छत्र से वह परमाधिक भासुर हो रही थी।३। विजया आदि प्रमुख परिचारिकाओं के समुदाय के द्वारा चार चमरों से वह अभिवीजित हो रही थी जो चमर मणि के समान कान्त और शोभा वाले थे तथा नवीन चन्द्रिका की लहरी की कान्ति एवं चार कदालियों की कान्ति के समान थे।४। वह अपनी शक्ति से एक ही राज्य की पदवी को अभिसूचित कर रही थी और सैकड़ों साम्राज्य के चिन्हों से उसका सैन्य देश मण्डित था। देवांगनाओं के संगीत और वाद्य रचनाओं के द्वारा उसके वैभव का संस्तवन किया जा रहा था एवं वह परम विशद प्रकाश वाली थी।५। उसका शक्ति वैभव वाणी के तो अगोचर था ही किन्तु वह बुद्धि के भी अगोचर था। वह ऐसी है—इस तरह कथन के योग्य तथा बुद्धि में बैठने के योग्य नहीं है और उसकी तुल्यता रखने वाला कोई भी नहीं है।६। तीनों लोकों के मध्य में परिपूरित शक्ति चक्र और साम्राज्य की सम्पदा है उसके अभिमान का अभिस्पर्शन करती हुई थी। पंक्तियों बद्ध तथा दोनों करों को विपुल भक्तिभाव में जोड़कर मस्तकों पर लगाने वाले देवगण समीप में प्रथम पहुँचाकर सेवा करूँ—ऐसी रीति से वह सेवमाना थी।७।

ब्रह्मेशविष्णुवृषमुख्यसुरोत्तमानां वक्त्राणि वर्षितनुतीति
कटाक्षयन्ती ।
उद्दीप्तपुष्पशरपंचकतः समुत्थैर्ज्योतिर्मयं त्रिभुवनं
सहसा दधाना ॥८

विद्युत्समद्युतिभिरप्सरसां समूहैर्विक्षिप्य-
माणजयमंगललाजवर्षा ।
कामेश्वरीप्रभृतिभिः कमनीयभाभिः
संग्रामवेषरचनासुमनोहराभिः ॥९

दीप्तायुधद्युतितिरस्कृतभास्कराभिर्नित्याभिरंघ्रिसविधे
समुपास्यमाना ।
श्रीचक्रनामतिलकं दशयोजनातितुंगध्वजोल्लिखितमेघ-
कदंबमुच्चैः ॥१०
तीव्राभिरावणसुशक्तिपरंपराभियुक्तं रथं
समरकर्मणि चालयंती ।
प्रोद्यत्पिशंगरुचिभागमलांशुकेन वीतामनोहररुचिस्समरे
व्यभासीत् ॥११
पंचाधिकैर्विंशतिनामरत्नैः प्रपंचपापप्रशमातिदक्षैः ।
संस्तूयमाना ललिता मरुद्भिः संग्रामुद्दिश्य समुच्चचाल ॥१२
अगस्त्य उवाच—
वाजिवक्त्र महाबुद्धे पंचविंशतिनामभिः ।
ललितापरमेशान्या देहि कर्णरसायनम् ॥१३
हयग्रीव उवाच—
सिंहासना श्रीललिता महाराज्ञी परांकुशा ।
चापिनी त्रिपुरा चैव महात्रिपुरसुन्दरी ॥१४

ब्रह्मा—विष्णु और शम्भु जिनमें प्रमुख थे ऐसे देवों के मुखों को जो बराबर स्तुति कर रहे थे अपने कृपा कटाक्ष से देख रही थी । अतीव उद्दीप्त कुसुमों के पाँच शरों से समुत्थित प्रकाशों से सहसा ज्योतिर्मय त्रिभुवन को धारण करने वाली है ।८। विद्युल्लता के समान कान्तिमती अप्सराओं के समुदाय के द्वारा जय और मङ्गल के लिए लाजाओं की वर्षा जिसके ऊपर हो रही थी । कामेश्वरी आदि—परम कमनीय आभा वाली और संग्राम के वेषकी रचना में सुमनोहर—दीप्त आयुधों की दीप्ति से भास्कर की आभा को तिरस्कृत कर देने वाली ऐसी नित्या परिचारिकाओं के द्वारा चरणों के समीप में भली भाँति उपास्यमाना थी । श्रीचक्र नाम वाले रथ पर विरा-जमान होकर समर में उसको चला रही थी । वह रथ ऐसा था जिसकी ध्वजा दश योजन से भी अधिक ऊँची थी और ऐसा प्रतीत हो रहा था मानों वह आकाश को उल्लिखित कर रहीं होगें जिसमें मेघों का समुदाय

था ।६-१०। वह रथ परम तीव्र रावण की सुशक्तियों की परम्पराओं से समन्वित था। वह रथ उस समर में परम शोभित हो रहा था जिसमें उदित पिशंग रुचि के भागसे युक्त वस्त्रसे वह संवीत था औरपरम मनोहर कान्ति वाला था ।११। ललितादेवी मरुद्गणों के द्वारा संस्तूयमान होती हुई संग्राम करने के उद्देश्य से तेजी से चली थी। मरुद्गण उसके पच्चीस नाम रत्नों को कहकर ही उसका संस्तवन कर रहे थे जो नाम प्रपञ्चों के पापों के प्रशमन करने में परम दक्ष थे ।१२। अगस्त्य जी ने कहा—हे वाजि वक्त्र! आप तो महती बुद्धि वाले हैं। आप उन पच्चीस ललिता परमेशानी के नामों से हमारे कानों के लिये रसपान कराइए ।१३। हयग्रीवजी ने कहा—उनके पच्चीस नाम ये हैं—सिंहासना-महाराज्ञी—परंकुशा-चापिनी-त्रिपुरा-महात्रिपुर सुन्दरी ।१४।

सुन्दरी चक्रनाथा च साम्राज्ञी चक्रिणी तथा।
चक्रेश्वरी महादेवी कामेशी परमेश्वरी ॥१५
कामराजप्रिया कामकोटिगा चक्रवर्तिनी।
महाविद्या शिवानंगवल्लभा सर्वपाटला ॥१६
कुलनाथाम्नायनाथा सर्वाम्नायनिवासिनी।
शृङ्गारनायिका चेति पचविंशतिनामभिः ॥१७
स्तुवन्ति ये महाभागां ललितां परमेश्वरीम्।
ते प्राप्नुवन्ति सौभाग्यमष्टौ सिद्धीर्महद्यशः ॥१८
इत्थं प्रचंडसंरंभं चालयंती महद्बलम्।
भंडासुरं प्रति क्रुद्धा चचाल ललितांबिका ॥१९

सुन्दरी-चक्र नाथा-साम्राज्ञी-चक्रिणी-चक्रेश्वरी-महादेवी-कामेशी—परमेश्वरी ।१५। कामराज प्रिया—कामकोटिगा—चक्र वर्त्तिनी—महाविद्या-शिवा—अनंग वल्लभा—सर्वपाटला—।१६। कुलनाथा—आम्नाय नाथा—सर्वाम्नाय निवासिनी और शृंगार नायिका—ये ही पच्चीस नाम हैं ।१७। जो महाभाग पुरुष इन उपर्युक्त नामों से परमेश्वरी ललिता की स्तुति किया करते हैं वे परम सौभाग्य—आठों अणिमादिक सिद्धियाँ और महान् यश को प्राप्त किया करते हैं ।१८। इस प्रकार से परम प्रचण्ड के साथ अपनी महती सेना का सञ्चालन कर रही थी और भण्डासुर के प्रति अत्यधिक क्रुद्ध होकर वह ललिताम्बिका वहाँ से रवाना हुई थी ।१९।

—

।। चक्ररथ पर्वस्थ देवता नाम प्रकाशन ।।

अगस्त्य उवाच–

चक्रराजरथेंस्य याः पर्वणि समाश्रिताः ।
देवता प्रकटाभिख्यास्तासामाख्यां निवेदय ।।१
संख्याश्च तासामखिला वर्णभेदांश्च शोभनान् ।
आयुधानि च दिव्यानि कथयस्व हयानन ।।२

हयग्रीव उवाच–

नवमं पर्व दीप्तस्य रथस्य समुपस्थिताः ।
दश प्रोक्ता सिद्धिदेव्यस्तासां नामानि मच्छृणु ।।३
अणिमा महिमा चैव लघिमा गरिमा तथा ।
ईशिता वशिता चैव प्राप्तिः सिद्धिश्च सप्तमी ।।४
प्राकाम्यमुक्तिसिद्धिश्च सर्वकामाभिधापरा ।
एता देव्यश्चतुर्बाह्वयो जपाकुसुमसंनिभाः ।।५
चिंतामणिकपालं च त्रिशूलं सिद्धिकज्जलम् ।
दधाना दयया पूर्णा योगिभिश्च निषेविताः ।।६
तत्र पूर्वार्द्धभागे च ब्रह्माद्या अष्ट शक्तयः ।
ब्राह्मी माहेश्वरी चैव कौमारी वैष्णवी तथा ।
वाराही चैव माहेंद्री चामुण्डा चैव सप्तमी ।।७

श्री अगस्त्य जी ने कहा––जो देवता पर्व में चक्रराज रथेन्द्र के समाश्रित थे जिनका जो नाम प्रकट था उनका आख्यान कृपाकर बतलाइए ।१। हेहयानन ! उन सब देवों की संख्या और उनके परम शोभन वर्णों के भेद तथा उनके दिव्य आयुध यह सभी वर्णन कीजिए ।२। हयग्रीव जी ने कहा––उस दीप्त रथ के नवम पर्व में समुपस्थित ये दश सिद्धि देवियाँ कही गयी हैं । उनके नाम भी आप मुझसे श्रवण कीजिए ।३। अणिमा–लघिमा–गरिमा–ईशिता–वशिता–सातवीं प्राप्ति सिद्धि होती है । आठवी प्राकाम्य सिद्धि होती है जो सर्वकांता नाम वाली होती है । ये आठों देवियाँ चार-

चार भुजाओं वाली हैं और इनका वर्ण जपा के कुसुम के तुल्य होता है।४-५। ये चारों करों में चिन्तामणि–कपाल-त्रिशूल और सिद्धि कज्जल धारण किये रहा करती हैं। ये दया से परिपूर्ण होती हैं और योगिजनों के द्वारा सर्वदा सेवित रहा करती हैं।६। वहाँ पर पूर्वार्द्ध भाग में ब्राह्मी आदि आठ शक्तियाँ हुआ करती है। उनके नाम ये हैं—ब्राह्मी—माहेश्वरी—कौमारी—वैष्णवी—वाराही—माहेन्द्री और सातवीं चामुण्डा है।७।

महालक्ष्मीरष्टमी च द्विभुजाः शोणविग्रहाः ।
कपालमुत्पलं चैव बिभ्राणा रक्तवाससः ॥८
अथ वान्यप्रकारेण केचिद्ध्यानं प्रचक्षते ।
ब्रह्मादिसदृशाकारा ब्रह्मादिसदृशायुधाः ॥९
ब्रह्मादीनां परं चिह्नं धारयन्त्यः प्रकीर्तिताः ।
तासामूर्ध्वस्थानगतां मुद्रा देव्यो महत्तराः ॥१०
मुद्राविरचनायुक्तैर्हस्तैः कमलकांतिभिः ।
दाडिमीपुष्पसङ्काशाः पीतांबरमनोहराः ॥११
चतुर्भुजा भुजद्वन्द्वधृतचर्मकृपाणकाः ।
मदरक्तविलोलाक्ष्यस्तासां नामानि मच्छृणु ॥१२
सर्वसंक्षोभिणी चैव सर्वविद्राविणी तथा ।
सर्वाकर्षणकृन्मुद्रा तथा सर्ववशङ्करी ॥१३
सर्वोन्मादनमुद्रा च यष्टिः सर्वमहाङ्कुशा ।
सर्वखेचरिका मुद्रा सर्वबीजा तथापरा ॥१४

महालक्ष्मी आठवीं शक्ति है। इन सबकी दो-दो भुजाएँ होती हैं और इनके कलेवर का वर्ण शोण होता है। ये कपाल और उत्पल करों में लिये रहा करती हैं। इनके वस्त्र रक्त वर्ण के होते हैं।८। अथवा अन्य प्रकार से कुछ लोग इनका ध्यान कहा करते हैं। ये सब ब्रह्मा आदि के सदृश ही आयुधों वाली होती हैं।९। ये सब ब्रह्मादिक के ही परम चिह्नों को धारण करती हुई कीर्त्तित की गयी हैं। उनके ऊपर स्थान में रहने वाली मुद्रा देवियाँ इनसे भी अधिक महान् हैं।१०। कमल के समान कान्ति वाले मुद्रा विरचना से युक्त हाथों से युक्त होती है। इनका वर्ण दाडिमी के पुष्पों

के सदृश होता है और ये सब पीत अम्बर धारण करके परम मनोहर होती हैं ।११। इनकी चार-चार भुजाएँ होती हैं। ये दो-दो भुजाओं में चर्म (ढाल) और कृपाण धारण किये रहा करती हैं। मद से इनके लोचन चञ्चल और रक्त हुआ करते हैं। अब उनके भी नामों का श्रवण कीजिए ।१२। सर्वसंक्षोभिणी—सर्व विद्राविणी--सर्वाकर्षणकृन्मुद्रा—सर्ववशङ्करी—सर्वोन्मादन मुद्रा षष्ठिसर्व महाकुशा—सर्वखेचरिका मुद्रा—तथा अपरासर्व-बीजा है ।१३-१४।

सर्वयोनिश्च नवमी तथा सर्वत्रिखंडिका ।
सिद्धिब्राह्म्यादिमुद्रास्ता एताः प्रकटशक्तयः ।।१५
भंडासुरस्य संहारं कर्तुं रक्तरथे स्थिताः ।
या गुप्ताख्याः पूर्वमुक्तास्तासां नामानि मच्छृणु ।।१६
कामाकर्षणिका चैव बुद्ध्याकर्षणिका कला ।
अहङ्काराकर्षिणी च शब्दाकर्षणिका कला ।।१७
स्पर्शाकर्षणिका नित्या रूपाकर्षणिका कला ।
रसाकर्षणिका नित्या गन्धाकर्षणिका कला ।।१८
चित्ताकर्षणिका नित्या धैर्याकर्षणिका कला ।
स्मृत्याकर्षणिका नित्या नामाकर्षणिका कला ।।१९
बीजाकर्षणिका नित्या चात्माकर्षणिका कला ।
अमृताकर्षणी नित्या शरीराकर्षिणी कला ।।२०
एताः षोडश शीतांशुकलारूपाश्च शक्तयः ।
अष्टमं पर्वसम्प्राप्ता गुप्ता नाम्ना प्रकीर्तिताः ।।२१

और सर्वयोनि नवमी तथा सर्वत्रिखण्डिका है। सिद्धि ब्राह्मी आदि मुद्रा ये हैं—इतनी शकट शक्तियाँ हैं।१५। भण्डासुर के संहार करने के लिये वह रक्त रथ में संस्थित हुई थी। जो गुप्ता नाम वाली पूर्व में कही थीं उनके भी नामों का श्रवण अब आप मुझसे कीजिए ।१६। कामकर्षणिका और बुद्धया—कर्षणिका कला—अहङ्कारा कर्षणिका—शब्दाकर्षणिका कला है ।१७। स्पर्शा कर्षणिका नित्या—रूपा कर्षणिका कला। रसा कर्षणिका नित्या नित्या–गन्धाकर्षणिका कला--।१८। चित्ताकर्षणिका नित्या—धैर्या-

कर्षणिका कला–स्मृत्याकर्षणिका नित्यानामाकर्षणिका कला ।१९। बीजाकर्षणिका नित्या–आत्माकर्षणिका कला–अमृतकर्षिणी नित्या–शरीराकर्षिणी कला ।२०। ये षोडश रूप वाली शीतांशु कलारूपा शक्तियाँ हैं। अष्टम पर्व को सम्प्राप्त ये गुप्ता नामों से कीर्त्तित की गयी है ।२१।

विद्रुमद्रुमसङ्काशा मन्दस्मित मनोहराः ।
चतुर्भुजास्त्रिनेत्राश्च चन्द्रार्कमुकुटोज्ज्वलाः ॥२२
चापबाणौ चर्मखड्गौ दधाना दिव्यकान्तयः ।
भण्डारसुरवधार्थाय प्रवृत्ताः कुम्भसम्भव ॥२३
सायंतनज्वलद्दीपप्रख्यचक्ररथस्य तु ।
सप्तमे पर्वणि कृतावासा गुप्ततराभिधाः ॥२४
अनङ्गमदनानङ्गमदनातुरया सह ।
अनङ्गलेखा चानङ्गवेगानङ्गांकुशापि च ॥२५
अनंगमालिग्यपरा एता देव्यो जपात्विषः ।
इक्षुचापं पुष्पशरान्पुष्पकन्दुकमुत्पलम् ॥२६
बिभ्रत्योऽदभ्रविक्रांतिशालिन्यो ललिताज्ञया ।
भण्डासुरमभिक्रुद्धाः प्रज्वलंत्य इव स्थिताः ॥२७
अथ चक्ररथेंद्रस्य षष्ठं पर्वसमाश्रिताः ।
सर्वसंक्षोभिणीमुख्याः सम्प्रदायाख्यया युताः ॥२८

हे कुम्भ सम्भव ! जो भण्डासुर के वध के लिए प्रवृत्त हुईं वे विद्रुम के द्रुम के सदृश हैं तथा मन्दस्मित से मनोहर हैं। इनकी चार भुजाएँ हैं और तीन नेत्र हैं एवं चन्द्र और सूर्य इनके उज्ज्वल मुकुट हैं। चाप–बाण–चर्म और खड्ग को धारण करने वाली तथा दिव्यकान्ति से सुसम्पन्न हैं ।२२-२३। सायन्तन के जलते हुए दीप के समान चक्र रथ के सप्तम पर्व में आवास करने वाली गुप्ततरा नाम वाली हैं ।२४। अनङ्गमदनातुरा के साथ अनङ्गमदना—अनङ्ग लेखा—अनङ्ग वेगा—अनङ्गाकुंशा—अनङ्ग का आलिङ्गन में परायणा—ये देवियाँ जपा के कुसुम की कान्ति वाली हैं। ये इक्षु चाप, पुष्प बाण, पुष्पों का कन्दुक और उत्पल धारण करती हुईं—अभ्र की विक्रान्ति वाली हैं और ललिता की आज्ञा से भण्डासुर के प्रति

अत्यन्त क्रोध से प्रज्वलित होती हुई सी स्थित हैं।२५-२७। इसके अनन्तर चक्र रथेन्द्र के षष्ठ पर्व पर समाश्रित हैं। सर्व संक्षोभिणी मुख्य हैं और सम्प्रदाय की आख्या से युत हैं।२८।

वेणीकृतकचस्तोमाः सिंदूरतिलकोज्ज्वलाः ।
अतितीव्रस्वभावाश्च कालानलसमत्विषः ॥२९
वह्निवाणं वह्निचापं वह्निरूपमसिं तथा ।
वह्निचक्राख्यफलकं दधाना दीप्तविग्रहाः ॥३०
असुरेन्द्रं प्रति क्रुद्धाः कामभस्मसमुद्भवाः ।
आज्ञाशक्तय एवैता ललिताया महौजसः ॥३१
सर्वसंक्षोभिणी चैव सर्वविद्राविणी तथा ।
सर्वाकर्षणिका शक्तिः सर्वाह्लादिनिका तथा ॥३२
सर्वसंमोहिनी शक्तिः सर्वस्तम्भनशक्तिका ।
सर्वजृंभणशक्तिश्च सर्वोन्मादनशक्तिका ॥३३
सर्वार्थसाधिका शक्तिः सर्वसम्पत्तिपूरणी ।
सर्वमन्त्रमयी शक्तिः सर्वद्वंद्वक्षयङ्करी ॥३४
एवं तु सम्प्रदायानां नामानि कथितानि वै ।
अथ पञ्चमपर्वस्थाः कुलोत्तीर्णा इति स्मृताः ॥३५

वेणीकृत हैं कचों के स्तोम जिनके ऐसी—सिन्दूर के तिलक से समुज्ज्वल–अतीव तीव्र स्वभाव से युक्त–कमल और अनल के समान कान्ति वाली हैं।२९। इनके कलेवर परम दीप्त हैं तथा वह्निवाण—वह्निचाप—वह्निरूप असि और वह्नि चक्राख्य फलक को धारण करने वाली हैं।३०। असुरेन्द्र के प्रति क्रोध से युक्त और कामदेव की भस्म से समुत्पन्न ये सब महान् ओज वाली ललिता देवी की आज्ञा शक्तियां हैं।३१। सर्व संक्षोभिणी सर्वविद्राविणी–सर्वाकर्षणिका शक्ति–सर्वा ह्लादिनिका—सर्व संमोहिनी शक्ति—सर्व स्तम्भन शक्ति—सर्व जृम्भण शक्ति—सर्वोन्मादन शक्ति—सर्वार्थसाधिका शक्ति—सर्व सम्पत्ति पूरणी—सर्व मन्त्रमयी शक्ति–सर्वद्वन्द्व क्षयंकरी—इस प्रकार से सम्प्रदाय के ये नाम कह दिये गये हैं ये पञ्चम पर्व में स्थित हैं और कुलोत्तीर्णा कही गयी हैं।३२-३५।

ताश्च स्फटिकसङ्काशाः परशुं पाशमेव च ।
गदां घण्टां मणिं चैव दधाना दीप्तिविग्रहाः ॥३६

देवद्विषामति क्रुद्धा भ्रुकुटीकुटिलाननाः ।
एतासामपि नामानि समाकर्णय कुम्भज ॥३७

सर्वसिद्धिप्रदा देवी सर्वसम्पत्प्रदा तथा ।
सर्वप्रियंकरी देवी सर्वमंगलकारिणी ॥३८
सर्वकामप्रदा देवी सर्वदुःखविमोचिनी ॥३९
सर्वमृत्युप्रशमिनी सर्वविघ्ननिवारिणी ।
सर्वांगसुन्दरी देवी सर्वसौभाग्यदायिनी ॥४०

दशैताः कथिता देव्यो दयया पूरिताशयाः ।
चक्रे तुरीयपर्वस्था मुक्ताहारसमत्विषः ॥४१

निगर्भयोगिनी नाम्ना प्रथिता दश कीर्तिताः ।
सर्वज्ञा सर्वशक्तिश्च सर्वैश्वर्यप्रदा तथा ॥४२

सर्वज्ञानमयी देवी सर्वव्याधिविनाशिनी ।
सर्वाधारस्वरूपा च सर्वपापहरा तथा ॥४३

और इसके अनन्तर स्फटिक मणि के सदृश हैं और परशु-पाश—गदा-घण्टा और मणि को धारण करने वाली हैं और परम दीप्त विग्रह वाली हैं ।३६। वे सब देवों के शत्रु के प्रति अत्यन्त क्रुद्ध थीं और उनके मुख तथा भृकुटियाँ कुटिल हैं । हे कुम्भज ! अब उनके भी नामों का श्रवण कीजिए ।३७। सर्व सिद्धि प्रदा देवी—सर्व सम्पद प्रदा—।३७-३९। सर्व प्रियङ्करी देवी—सर्व मङ्गल कारिणी । सर्वकामप्रदा देवी—सर्व दुःख विमोचिनी—सर्व मृत्यु प्रशमनी—सर्व विघ्न निवारिणी—सर्वांग सुन्दरी देवी—सर्व सौभाग्य दायिनी है ।४०। ये दश देवियाँ बतलायी गयी हैं जिनके आशय दया से पूरित हैं । ये चक्र में चतुर्थ पर्व में संस्थित हैं और मुक्ताओं के हार के समान कान्तिमती हैं ।४१। ये दश निगर्भ योगिनी के नाम से प्रसिद्ध कही गयी हैं । सर्वज्ञा-सर्वशक्ति-सर्वैश्वर्य प्रदा हैं ।४२।

सर्वानन्दमयी देवी सर्वरक्षास्वरूपिणी ।
दशमी देवता ज्ञेया सर्वेप्सितफलप्रदा ।।४४
एताश्चतुर्भुजा ज्ञेया वज्रं शक्ति च तोमरम् ।
चक्रं चैवाभिबिभ्राणा भण्डासुरवधोद्यता: ।।४५
अथ चक्ररथेन्द्रस्य तृतीयं पर्वसंश्रिता: ।
रहस्ययोगिनी नाम्ना प्रख्याता वागधीश्वरा: ।।४६
रक्ताशोकप्रसूनाभा बाणकार्मुकपाणय: ।
कवचच्छन्नसर्वाङ्गयो वीणापुस्तकशोभिता: ।।४७
वशिनी चैव कामेशी भोगिनी विमला तथा ।
अरुणा च जविन्याख्या सर्वेशी कौलिनी तथा ।।४८
अष्टावेता: स्मृता देव्यो दैत्यसंहारहेतव: ।
अथ चक्ररथेन्द्रस्य द्वितीयं पर्वसंश्रिता: ।।४९

सर्वज्ञान से परिपूर्ण देवी—सर्व व्याधि विनाशिनी—सर्वाधार स्वरूपा—सर्व पाप हरा है ।४३। सर्वानन्दमयी देवी—सर्व रक्षा स्वरूपिणी—और इनमें जो दशमी देवी है वह सर्वेप्सित फल प्रदा जानने के योग्य हैं ।४४। इनकी चार-चार भुजाएँ हैं ये वज्र—शक्ति—तोमर और चक्र को धारण करने वाली हैं तथा ये सभी उसी भण्डासुर के वध करने के लिए समुद्यत हैं ।४५। ये सब चक्र रथेन्द्र के तीसरे पर्व में संश्रय करने वाली हैं। ये वागधीश्वरा रहस्य योगिनी के नाम से प्रख्यात हैं ।४६। इनकी आभा रक्ताशोक के पुसून के तुल्य है और इनके करों में धनुष बाण रहा करते हैं। इनके सम्पूर्ण अंग कवचों से संच्छन्न रहते हैं तथा ये वीणा और प्रस्तकों के धारण करने वाली है ।४७। वशिनी–कामेशी–भोगिनी–विमला–अरुणा–जाविनी–सर्वेशी–कौलिनी–ये आठ देवियाँ असुर के संहार की हेतु कही गयी हैं और चक्ररथेन्द्र के द्वितीय पर्व में समाश्रित हैं ।४८-४९।

चापबाणौ पानपात्रं मातुलुंगं कृपाणिकाम् ।
तिस्रस्त्रिपीठनिलया अष्टबाहुसमन्विता: ।।५०
फलकं नागपाशं च घंटां चैव महाध्वनिम् ।
बिभ्राणा मदिरामत्ता अतिगुप्तरहस्यका: ।।५१

कामेशी चैव वज्रेशी भगमालिन्यथापरा ।
तिस्र एताः स्मृता देव्यो भण्डे कोपसमन्विताः ॥५२
ललितासममाहात्म्या ललितासमतेजसः ।
एतास्तु नित्यं श्रीदेव्या अन्तरङ्गाः प्रकीर्तिताः ॥५३
अथानन्दमहापीठे रथमध्यमपर्वणि ।
परितो रचितावासाः प्रोक्ताः पञ्चदशाक्षराः ॥५४
तिथिनित्याः कालरूपा विश्वं व्याप्यैव संस्थिताः ।
भण्डासुरादिदैत्येषु प्रक्षुब्धभ्रूकुटीतटा ॥५५
देवीसमनिजाकारा देवीसमनिजायुधाः ।
जगतामुपकाराय वर्तमाना युगेयुगे ॥५६

ये चाप—बाण—पान पात्र—मातुलुंग और कृपाणिका धारण करने वाली हैं। ये तीन है और तीन पीठों पर इनका निलय है एवं आठ बाहुओं से संयुक्त है ।५०। पलक-नागपाश महाध्वनि घण्टा को धारण करने वाली हैं। ये मदिरा के पान से मत्त रहा करती है तथा अति गुप्त रहस्य वाली हैं ।५१। कामेशी-वज्रेशी-भगमालिनी—ये तीन देवियाँ कही गयी हैं जो भण्डासुर दैत्य पर अत्यधिक क्रोध से समन्वित थीं।५२। इनका माहात्म्य भी ललिता देवी के ही समान था। तथा ललिता देवी के ही समान ही इनका ओज महान् था। ये देवियाँ नित्य ही श्री देवी की अन्तरंग बतायी गयी हैं ।५३। इसके अनन्तर रथ के मध्य के पर्व पर आनन्द महापीठ पर सब ओर रचित आवास वाली पञ्चदशाक्षरा कही गयी हैं ।५४। ये तिथि नित्या-कालरूपा और विश्वको व्याप्त करके ही संस्थित रहा करती हैं। भण्डासुर आदि जो भी दैत्य हैं इनको उन पर प्रक्षुब्ध भृकुटियाँ रहा करती हैं ।५५। ये सभी देवी के ही तुल्य आकार वाली हैं और श्रीदेवी के ही समान अपने आयुधों वाली हैं। ये प्रत्येक युग में जन समूहों के उपकार के ही लिए वर्त्तमान रहा करती हैं ।५६।

तासां नामानि मत्तस्त्वमवधारय कुम्भज ।
कामेशी भगमाला च नित्यक्लिन्ना तथैव च ॥५७
भेरुण्डा वह्निवासिन्यो महावज्रेश्वरी तथा ।

द्रुती च त्वरिता देवी नवमीं कुलसुन्दरी ॥५८
नित्या नीलपताका च विजया सर्वमंगला ।
ज्वालामालिनिकाचित्रे दश पंच च कीर्तिता: ॥५९
एताभि: सहिता देवी सदा सेवैकबुद्धिभि: ।
दुष्टं भंडासुरं जेतुं निर्ययौ परमेश्वरी ॥६०
मन्त्रिनाथा महाचक्रे गीतिं चक्रे रथोत्तमे ।
सप्तपर्वाणि चोक्तानि तत्र देव्याश्च ता: शृणु ॥६१
गेयचक्ररथे पर्वमध्यपीठनिकेतना ।
संगीतयोगिनी प्रोक्ता श्रीदेव्या अतिवल्लभा ॥६२
तदेव प्रथमं पर्व मन्त्रिण्यास्तु निवासभू: ।
अथ द्वितीयपर्वस्था गेयचक्रे रथोत्तमे ॥६३

हे कुम्भज ! अब उनके शुभ नाम भी मुझ से आप अवधारित कर लीजिए । कामेशी-भगमाला-नित्य क्लिन्ना ।५७। मेरुण्डा-वह्निवासिनी—महावज्रेश्वरी—द्रुती—त्वरिता—देवी नवमी कुल सुन्दरी है ।५८। नित्या—नीलपताका—विजया—सर्वमंगला—ज्वालामालिका— चित्रा— ये पन्द्रह कही गयी हैं ।५९। ये सदा ही सेवा की ही बुद्धिवाली रहती है और इनको ही साथ में रखकर वह परमेश्वरी भन्डासुर पर विजय प्राप्त करने के लिए वहाँ से निर्गत हुई थी ।६०। महाचक्र में मन्त्रि नाथा और रथोत्तम चक्र में गीति थी । ये वहाँ पर सात पर्व हैं जो आपको बतला दिए गए हैं। वहाँ पर जो श्री देवी की हैं उनका भी श्रवण करिए ।६१। गेय चक्र रथ में पर्व के मध्य में पीठ और निकेतन वाली संगीत योगिनी कही गयी है जो श्री देवी की अत्यधिक वल्लभा (प्रिया) है ।६२। वह ही प्रथम पर्व है जो मन्त्रिणी की निवास की भूमि है। इसके उपरान्त गेयचक्र रथोत्तम में द्वितीय पर्व में स्थित ये हैं–।६३।

रति: प्रीतिर्मनोजा च वीणाकार्मुकपाणय: ।
तमालश्यामलाकारा दानवोन्मूलनक्षमा: ॥६४
तृतीयपर्वसंरूढा मनोभूबाणदेवता ।
द्राविणी शोषिणी चैव बंधिनी मोहिनी तथा ॥६५

उन्मादिनीति पंचैता दीप्तकामु‍र्कपाणय: ।
तत्र पर्वण्यधस्तात्तु वर्तमाना महौजस: ।।६६
कामराजश्च कंदर्पो मन्मथो मकरध्वज: ।
मनोभव: पंचम: स्यादेते त्रैलोक्यमोहना: ।।६७
कस्तूरीतिलकोल्लासिभालामुक्ताविराजिता: ।
कवचच्छन्नसर्वांगा: पलाशप्रसवत्विष: ।।६८
पंचकामा इमे प्रोक्ता भंडासुरवधार्थिन: ।
जेयचक्ररथेंद्रस्य चतुर्थं पर्वसंश्रिता: ।।६९
ब्राह्मीमुख्यास्तु पूर्वोक्ताश्चंडिका त्वष्टमी परा ।
तत्र पर्वण्यधस्ताच्च लक्ष्मीश्चैव सरस्वती ।।७०

रति-प्रीति-मनोज्ञा हैं जिनके करों में वीणा और कार्मुक हैं। इनका वर्ण तमाल के तुल्य श्यामल है और ये दानवों के उन्मूलन करने में परम समर्थ हैं ।६४। तीसरे पर्व में संरूढ़ मनोभूवाण देवता हैं। द्राविणी-शोषणी-बंधिनी-मोहिनी हैं ।६५। उन्मादिनी ये पाँच हैं जिनके करों में दीप्त कार्मुक हैं। वहाँ पर पर्व में नीचे की ओर महान् ओज वाले वर्त्तमान हैं ।६६। कामराज-कन्दर्प-मन्मथ-मकरध्वज और मनोभव—ये पाँच हैं जो त्रैलोक्य के मोहन करने वाले हैं ।६७। ये कस्तूरी के तिलक से उल्लासित भाल वाले तथा मुक्ताओं के तुल्य शोभित हैं। इनके सभी अंग कवचों से ढके हुए हैं और ये पलाश के पुष्पों के समान कान्ति वाले हैं ।६८। ये पाँच काम बताये गये हैं जो भन्डासुर के वध के लिए ही हैं। जय चक्र रथेन्द्र के चतुर्थ पर्व में संश्रय वाले हैं ।६९। ब्राह्मी जिनमें प्रमुख है पूर्व में वर्णित चन्डिका अष्टमी परा हैं। वहाँ पर पर्व में नीचे लक्ष्मी और सरस्वती हैं ।७०।

रति: प्रीति: कीर्तिशांती पुष्टिस्तुष्टिश्च शक्तय: ।
एताश्च क्रोधरक्ताक्ष्यो दैत्यं हंतु महाबलम् ।।७१
कुन्तचक्रधरा: प्रोक्ता: कुमार्य: कुम्भसंभव ।
पंचमं पर्व संप्राप्ता वामाद्या: षोडशापरा: ।।७२
गीतिं चक्ररथेंद्रस्य तासां नामानि मच्छृणु ।

वामा ज्येष्ठा च रौद्री च शांतिः श्रद्धा सरस्वती ।।७३

श्री भूशक्तिश्च लक्ष्मीश्च सृष्टिश्चैव तु मोहिनी ।

तथा प्रमाथिनी चाश्वसिनी वीचिस्तथैव च ।।७४

विद्युन्मालिन्यथ सुरानन्दाथो नागबुद्धिका ।

एतास्तु कुरविंदाभा जगत्क्षोभणलंपटाः ।।७५

महासरसमन्नाहमादधानाः पदे पदे ।

वज्रकंटकसंछन्ना अट्टहासोज्ज्वलाः परे ।

वज्रदंडी शतघ्नीं च संबिभ्राणा भुशुण्डिकाः ।।७६

अथ गीतिरथेन्द्रस्य षष्ठं पर्वं समाश्रिताः ।

असितांगप्रभृतयो भैरवाः शस्त्रभीषणाः ।।७७

रति-प्रीति-कीर्त्ति-शान्ति-पुष्टि-तुष्टि—ये शक्ति रक्त नेत्रों वाली हैं हैं ।७१। हे कुम्भ सम्भव ! ये कुमारियाँ कुन्त चक्रधर कही गयी हैं । पाँचवें पर्व में वामा आदिक दूसरी सोलह सम्प्राप्त हैं ।७२। गीति चक्र रथेन्द्र की हैं । उनके भी नामों का श्रवण कीजिए जिनको मैं बता रहा हूँ । वामा-ज्येष्ठा-रौद्री-शान्ति-श्रद्धा-सरस्वती-श्री-भूशक्ति-लक्ष्मी-सृष्टि-मोहिनी - प्रमाथिनी-अश्वासिनी-वीचि-विद्युन्मालिनी-सुरानन्दा-नाग बुद्धिका—ये सब कुरविन्दकी आभा वाली हैं और सम्पूर्ण जगत् के क्षोभण करने में संलग्न है ।७३-७५। ये पद-पद में महा सरसमन्नाह को धारण करने वाली हैं । ये वज्र कंकट से संच्छन्न हैं और अट्टहास करने से उज्ज्वल हैं । ये वज्र-दन्ड-शतघ्नी और भुशुन्डिकाओं को धारण करने वाली हैं ।७६। इसके पश्चात् गीतिरथेन्द्र के षष्ठ पर्व में समाश्रित है । असितांग प्रभृति शस्त्रों से महान भीषण भैरव हैं ।७७।

त्रिशिखं पानपात्रं च बिभ्राणा नीलवर्चसः ।

असितांगो रुरुश्चंडः क्रोध उन्मत्तभैरवः ।।७८

कपालीभीषणश्चैव संहारश्चाष्ट भैरवाः ।

अथ गीतिरथेंद्रस्य सप्तमं पर्वं संश्रिताः ।।७९

मातंगी सिद्धलक्ष्मीश्च महामातंगिकापि च ।

महती सिद्धलक्ष्मीश्च भोणा बाणधनुर्धरा: ॥८०
तस्यैव पर्वणोऽधस्ताद्गणप: क्षेत्रपस्तथा ।
दुर्गाम्बा बटुकश्चैव सर्वे ते शस्त्रपाणय: ॥८१
तत्रैव पर्वणोऽधस्ताल्लक्ष्मीश्चैव सरस्वती ।
शंख: पद्मो निधिश्चैव ते सर्वे शस्त्रपाणय: ॥८२
लोकद्विषं प्रति क्रुद्धा भंडं चंडपराक्रमम् ।
शक्रादयश्च विष्ण्वंतां दश दिक्चक्रनायका: ॥८३
शक्तिरूपास्तत्र पर्वण्यधस्तात्कृतसंश्रया: ।
वज्रं शक्ति कालदंडमसि पाशं ध्वज तथा ॥८४

त्रिशिख-पानपात्र को धारण करने वाले तथा नील वरचस है । असिताङ्ग-रुरु-चण्ड-क्रोध-उन्मत्त भैरव-कपाली-भीषण और संहार--ये आठ भैरव हैं और गीति रथेन्द्र के सप्तम पर्व में संशय वाले हैं ।७८-७९। मातंगी सिद्ध लक्ष्मी-महामातंगिका-महती-सिद्ध लक्ष्मी-भूशोणा-बाणधनुर्धरा-है ।८०। उसी पर्व के नीचे गणप तथा क्षेत्रप हैं---दुर्गा अम्बा और बटुक हैं । ये सब करों में शस्त्र धारण करने वाले हैं ।८१। वहाँ पर ही पर्व के नीचे लक्ष्मी और सरस्वती हैं । शंख-पद्म-निधि हैं । ये सब प्राणियों में शस्त्र वाले हैं ।८२। ये सब लोकों के शत्रु चण्ड पराक्रम वाले भन्ड के प्रति क्रुद्ध हैं । शक्र से आदि लेकर विष्णु भगवान् के अन्त पर्यन्त दश दिशाओं के चक्रनायक हैं ।८३। वहाँ पर्व के नीचे शक्ति रूप वाले संश्रय लेने वाले हैं । ये वज्र-शक्ति-कालदंड-असि-पाशध्वज के धारण करने वाले हैं ।८४।

गदां त्रिशूलं दर्भास्त्रं वज्रं च दधतस्त्वमी ।
सेवंते मंत्रिनाथां तां नित्यं भक्तिसमन्विता: ॥८५
भंडासुराद्दुरूढान्निहंतुं विश्वकंटकान् ।
मन्त्रिनाथाश्रयद्वारा ललिताज्ञापनोत्सुका: ॥८६
गीतिचक्ररथोपांते दिक्पाला: संश्रयं ददु: ।
सर्वेषां चैव देवानां मन्त्रिणी द्वारत: कृत: ॥८७
विज्ञापना महादेव्या: कार्यसिद्धिं प्रयच्छति ।

राज्ञी विज्ञापना चेति प्रधानद्वारतः कृता ॥८८

यथा खलु फलप्राप्तिः सेवाकानां हि जायते ।
अन्यथा कथमेतेषां सामर्थ्य ज्वलितौजसः ॥८९

अपधृष्यप्रभावायाः श्रीदेव्या उपसर्पणे ।
सा हि संगीतविद्येति श्रीदेव्याः अतिबल्लभा ॥९०

नातिलंघति च क्वापि तदुक्तं कार्यसिद्धिषु ।
श्रीदेव्याः शक्तिसाम्राज्ये सर्वकर्माणि मन्त्रिणी ॥९१

ये गदा-त्रिशूल–दर्भास्त्र और वज्र को धारण किए हैं। ये सब उस मन्त्रिनाथा का भक्तिभाव से संयुत होते हुए नित्य ही सेवन किया करते हैं।८५। दुर्दु ल्लु—विश्व के कंटक भंडासुरों का निहनन करने के वास्ते मन्त्रि नाथा के आश्रय के द्वारा ललिता आज्ञापन के उत्सुक रहा करते हैं।८६। गीति चक्ररथ के उपान्त में दिक्पालों ने इनको संश्रय दिया था। समस्त देवों की मन्त्रिणी द्वार से की गयी थी।८७। विज्ञापना यह महादेवी के कार्य की सिद्धि किया करती है। राज्ञी और विज्ञापना ये दो प्रधान द्वार पर की गयी हैं।८८। जैसी भी फल की प्राप्ति होती है। अन्यथा इनकी क्या सामर्थ्य है। जो ज्वलित ओज वाली और अप्रधृष्य प्रभाव वाली श्री देवी के समीप में सर्पण किया जा सके। वह निश्चय ही संगीत विद्या है जो श्री देवी की अतिवल्लभा है।८९-९०। कार्यों की सिद्धियों में कहीं पर भी उसके कथित का अतिलंघन नहीं करती हैं। श्रीदेवी के शक्ति के साम्राज्य में वह मन्त्रिणी ही सब कर्मों को किया करती है।९१।

अकर्त्तुमन्यथा कर्तुं कर्तुं चैव प्रगल्भते ।
तस्मात्सर्वेऽपि दिक्पालाः श्रीदेव्या जय कांक्षिणः ।
तस्याः प्रधानभूतायाः सेवामेव वितन्वते ॥९२

इति श्रीललितादेव्याश्चक्रराजरथोत्तमे ।
पर्वस्थितानां देवीनां नामानि कथितान्यलम् ॥९३

भंडासुरस्य संहारे तस्या दिव्यायुधान्यपि ।
प्रोक्तानि गेयचक्रस्य पर्वदेव्याश्च कीर्तिताः ॥९४

इमानि सर्वदेवीनां नामान्याकर्णयंति ये ।
सर्वपापविनिर्मुक्तास्ते स्युर्विजयिनो नराः ।।९५

जो भी कुछ करने का अथवा नहीं करने का है उस सभी को करने में प्रगल्भ होती हैं । कारण से सभी दिक्पाल श्री देवीकी ही जय की कांक्षा वाले रहा करते हैं । प्रधानभूता उसकी ही सेवा का विस्तार किया करते हैं ।९२। यह श्री ललिता देवी के चक्रराज रथोत्तम में पर्वों में संस्थित देवियों के नाम वर्णित कर दिए गए हैं।९३। भंडासुर के संहार में उसके परम दिव्य आयुधों का भी वर्णन कर दिया है । गेय चक्र और पर्वभी देवी के वर्णित किए गए हैं । इन समस्त देवियों के नामों का जो भी कोई श्रवण किया करते हैं वे नर समस्त पापों से छुटकारा पाकर विजयी हो जाते हैं ।९४-९५

किरिचक्ररथ देवता प्रकाशन

हयग्रीव उवाच–
किरिचक्र रथेन्द्रस्य पंचपर्वसमाश्रिताः ।
देवताश्च शृणु प्राज्ञ नाम यच्छृण्वतां जयः ।।१
प्रथमं पर्वविद्धाख्यं संप्राप्ता दंडनायिका ।
सा तत्र जगदुद्दंडकण्टकव्रातघस्मरी ।।२
नानाविधाभिर्ज्वालाभिर्नर्तयंती जयश्रियम् ।।३
उद्दन्डपोत्र निर्घातनिर्भिन्नोद्धतदानवाः ।
दंष्ट्राबालमृगांकांशुविभावनविभावरी ।।४
प्रावृषेण्यपयोवाहव्यूहनीलवपुर्लता ।
किरिचक्ररथेंद्रस्य सालंकारायते सदा ।
पोत्रिणी पुत्रिताशेषविश्वावर्तकदंबिका ।।५
तस्यैव रथनाभस्य द्वितीयं पर्व संश्रिताः ।
जृंभिनी मोहिनी चैव स्तंभिनी तिस्र एव हि ।
उत्फुल्लदाडिमीप्रख्यं सर्वदानवमर्दनाः ।।६

मुसलं च हलं हालापात्रं मणिगणार्पितम् ।
ज्वलन्माणिक्यवलयैर्बिभ्राणाः पाणिपल्लवैः ॥७

श्री हयग्रीव जी ने कहा—किरि चक्र रथेन्द्र के पाँच वर्षों में समाश्रित जो देवता हैं उनके नामों का भी श्रवण कीजिए। हे प्राज्ञ ! जिनके श्रवण करने वालों का जय ही हुआ करता है ।१। प्रथम पर्व बिन्दु नामक है। जिसमें दंड नायिका सम्प्राप्त है। वहाँ पर वह जगत के उदंडों के समुदाय की विनाशिका है ।२। वह नाना प्रकार की ज्वालाओं से जय श्री को नर्तन कराया करती है ।३। उद्दन्ड पौत्र के निर्घात से जिसने उद्धत दानवों को निर्भिन्न कर दिया है। दंष्ट्रा से गल मृगाङ्काशु के विभावन करने वाली विभावरी है। वर्षा कालीन मेघों के समूह के समान नील वपु वाली लता है। वह किरि चक्र रथेन्द्र की वह सदा अलंकार के समान है। पोत्रिणी पुत्रिता के अशेष विश्वके आवर्त्त की कदम्बिका है ।४-५। उसी रथनाभ के द्वितीय पर्व में संश्रय लेने वाली है। दम्भिनी-मोहिनी और स्तम्भिनी—ये तीन ही हैं। विकसित दाड़िमी के समान और सभी दानवों के मर्दन करने वाली हैं ।६। ये अपने कर पल्लवों द्वारा जिनमें देदीप्यमान मणियों के वलय है—मुसल-हल और हाला पात्र मणिगणों से समर्पित धारण करने वाली हैं ।७।

अतितीक्ष्णकरालाक्ष्यो ज्वालाभिर्दैत्यसैनिकान् ।
दहंत्य इव निःशंकं सेवंते सूकराननाम् ॥८
किरिचक्रथेंद्रस्य तृतीयं पर्व संश्रिताः ।
अंध्रिन्याद्याः पञ्च देव्यो देवीयंत्रकृतास्पदाः ॥९
कठोरेणाट्टहासेन भिदंत्यो भुवनत्रयम् ।
ज्वाला इव तु कल्पाग्नेरंगनावेषमाश्रिताः ॥१०
भंडासुरस्य सर्वेषां सैन्यानां रुधिरप्लुतिम् ।
लिलिक्षमाणा जिह्वाभिर्लेलिहानाभिरुज्ज्वलाः ॥११
सेवंते सततं दंडनाथामुद्दण्डविक्रमाम् ।
किरिचक्रथेन्द्रस्य चतुर्थं पर्व संश्रिताः ॥१२
ब्रह्माद्याः पञ्चमीवर्ज्या अष्टमीवर्जिता अपि ।

षडेव देव्यः षट्चक्रज्वलज्ज्वालाकलेवराः ॥१३

महता विक्रमौघेण पिबंत्य इव दानवान् ।

आज्ञया दंडनाथायास्तं प्रदेशमुपासते ॥१४

इनके नेत्र अत्यधिक तीक्ष्ण एवं कराल है। जिनकी ज्वालाओं से दैत्यों के सैनिकों को दग्धसी कर रही है और निःशंक होकर सूकरानना की सेना किया करती है।८। ये किरिचक्र रथेन्द्र के तीसरे पर्व में समाश्रय लेने वाली हैं। अग्निनी आदि पाँच देवियाँ देवी के यन्त्र में अपना आस्पद करने वाली हैं।९। इनका इतना कठोर अट्टहास होता है जिससे ये तीनों भुवनों का भेदन किया करती हैं। अङ्गना के वेष का आश्रय ग्रहण कर कल्पाग्नि की ज्वालाओं के ही तुल्य होती हैं।१०। भण्डासुर की समस्त सेनाओं की रुधिर के प्लावन को चाटने की इच्छा करती हुई लेलिहान ज्वालाओं की जिह्वाओं से उज्ज्वल।११। ये सभी अतीव उद्दण्ड विक्रम वाली दण्डनाथा का निरन्तर सेवन किया करती हैं। किरिचक्र रथेन्द्र के चौथे पर्व में इनका संश्रय होता है।१२। ब्राह्मी आदि पाँचवीं से रहित तथा आठवीं से रहित ये छै ही देवियां षट्चक्र की जलती हुई ज्वालाओं के कलेवर वाली हैं।१३। महान विक्रम के समुदाय के द्वारा दानवों का पान सा करने वाली हैं। दण्डनाथा की ही आज्ञा से ये उसी प्रदेश की उपासना किया करती हैं।१४।

तस्यैव पर्वणोऽधस्तात्त्वरिताः स्थानमाश्रिताः ।

यक्षिणी शंखिनी चैव लाकिनी हाकिनी तथा ॥१५

शाकिनी डाकिनी चैव तासामैक्यस्वरूपिणी ।

हाकिनी सप्तमीत्येताश्चंडदोर्दंडविक्रमाः ॥१६

पिबंत्य इव भूतानि पिबंत्य इव मेदिनीम् ।

त्वचं रक्तं तथा मांसं मेदोऽस्थि च विरोधिनाम् ॥१७

मज्जानमथ शुक्रं च पिबन्त्यो विकटाननाः ।

निष्ठुरैः सिंहनादैश्च पूरयंत्यो दिशो दश ॥१८

धातुनाथा इति प्रोक्ता अणिमाद्यष्टसिद्धिदाः ।

मोहने मारणे चैव स्तंभने ताडने तथा ॥१९

भक्षणे दुष्टदैत्यानामामूलं च निकृन्तने ।
पंडिताः खंडिताशेषविपदो भक्तिशालिषु ॥२०
धातुनाथा इति प्रोक्ताः सर्वधातुषु संस्थिताः ।
सप्तापि वारिधीनूर्मिमालासंचुम्बितांबरान् ॥२१

उसी पर्व के नीचे त्वरिता स्थान के समाश्रित हैं। यक्षिणी-शंखनी-लाकिन-हाकिनी ।१५। शाकिनी-डाकिनी—उनकी एकता के स्वरूप वाली हाकिनी सातवीं हैं—ये प्रचंड दोर्दण्डों के विक्रम वाली हैं ।१६। ये समस्त भूतों को पान सा करती हैं तथा सम्पूर्ण मेदिनी का पान सा करती हुई हैं। त्वचा-रक्त-मांस-मेद और विरोधियों की अस्थियों को तथा मज्जा और शुक्र को विकट मुखों वाली पान सा करती हुई थीं। उनके अत्यधिक कठोर सिंहनाद थे जिनसे वे दशों दिशाओं को पूरित कर रही थीं ।१७-१८। अणिमा आदि आठों सिद्धियों को प्रदान करने वाली वे धातुनाथा कही हैं। दुष्ट दैत्यों के मोहन-मारण-स्तम्भन-ताड़न भक्षण और आमूल निकृन्तन में परम पंडित और भक्ति शालियों के विषय में समस्त विपदाओं का खंडन करने वाली थीं ।१९-२०। समस्त धातुओं में संस्थित वे धातुनाथा बतायी गयी हैं। अपनी तरङ्गों की मालाओं से अम्बर को चुम्बित करने वाले सातों सागरों में संस्थित थीं ।२१।

क्षणार्धेनैव निष्पातुं निष्पन्नबहुसाहसाः ।
शकटाकारदन्ताश्च भयंकरविलोचनाः ॥२२
स्वस्वामिनीद्रोहकृतां स्वकीयसमयद्रुहाम् ।
वैदिकद्रोहणादेव द्रोहिणां वीरवैरिणाम् ॥२३
यज्ञद्रोहकृतां दुष्टदैत्यानां भक्षणे समाः ।
नित्यमेव च सेवन्ते पोत्रिणीं दंडनायिकाम् ॥२४
तस्यैव पर्वणः पार्श्वे द्वितीये दिव्यमन्दिरे ।
क्रोधिनी स्तम्भिनी ख्याते वर्तेते देवते उभे ॥२५
चामरे वीजयन्त्यौ च लोलकंकणदोर्लते ।
देवद्विषां चमूरक्तहालापानमहोद्धते ॥२६
सदा विघूर्णमानाक्ष्यौ सदा प्रहसितानने ।

अथ तस्य रथेंद्रस्य किरिचक्राश्रितस्य च ॥२७
पार्श्वद्वयकृतावासमायुधद्वंद्वमुत्तमम् ।
हलं च मुसलं चैव देवतारूपमास्थितम् ॥२८

इन सब समुद्रों को आधे ही क्षण में पान करने में इनका बहुत अधिक साहस निष्पन्न था। इनके दाँत शकट के समान आकार वाले थे और इनके मुख बहुत ही विकराल थे एवं परम भीषण लोचन थे।२२। ये अपनी स्वामिनी से द्रोह करने वाले और अपने समय के द्रोहियों के तथा वैदिक द्रोहण से द्रोही वीर वैरियों के एवं यज्ञों से द्रोह करने वाले परम दुष्ट दैत्यों के भक्षण करने में ये सब समान थीं। ये नित्य ही पोत्रिणी दण्ड नायिका का सेवन किया करती हैं ।२३-२४। उसी पर्व के पार्श्व में द्वितीय दिव्य मन्दिर में क्रोधिनी और स्तम्भिनी प्रसिद्ध हैं और ये दो देवता वर्त्तमान रहती हैं ।२५। ये दोनों चमरों को डुराया करती हैं जिससे इनकी दो भुजाएँ हिलती हैं जिनमें उनके कङ्कण भी हिलते रहा करते हैं। ये देवों के शत्रुओं की सेना के रक्त और हाला के पान करने में मदोद्धत हैं ।२६। इनके नेत्र नित्य ही विघूर्णित हैं और इनके मुखों पर प्रहास रहा करता है। इसके अनन्तर रथेन्द्र के किरि के दोनों पार्श्वों में आवास करने वाला उत्तम आयुधों का द्वन्द्व–हल–मुसल देवता के रूप में समास्थित है ।२७-२८।

स्वकीयमुकुटस्थाने स्वकीयायुधविग्रहम् ।
आबिभ्राणं जगद्द्वेषिघस्मरं विबुधैः स्मृतम् ॥२९
एतदायुधयुग्मेन ललिता दंडनायिका ।
खण्डयिष्यति संग्रामं विषंगं नाम दानहम् ॥३०
तस्यैव पर्वणो दण्डनाथाया अग्रसीमनि ।
वर्त्तमानो महाभीमः सिंहो नादैर्ध्वनन्नभः ॥३१
दंष्ट्राकटकटात्कारबधिरीकृतदिङ्मुखः ।
चंडोच्चंड इति ख्यातश्चतुर्हस्तस्त्रिलोचनः ॥३२
शूलखड्गप्रेतपाशान्दधानो दीप्तविग्रहः ।
सदा संसेवते देवीं पश्यन्नेव हि पोत्रिणीम् ॥३३
किरिचक्ररथेंद्रस्य षष्ठ पर्व समाश्रिताः ।

वार्त्तात्याद्या अष्ट देव्यो दिक्ष्वष्टासूपविश्रुता: ॥३४
अष्टपर्वतनिष्पातघोरनिर्घातनि: स्वना: ।
अष्टनागस्फुरद्भूषा अनष्टबलतेजस: ॥३५

अपने मुकुट के स्थान में स्वकीय आयुधों के विग्रह को धारण करते हुए जगत् के नाशक का देवगणों ने स्मरण किया था ।२६। इसको आयुधों के जोड़े से दण्ड नायिका ललिता विषङ्ग नामदानह् संग्राम का खण्डन कर देगी ।३०। दण्डनाथा के उसी पर्व की अग्र सीमा में वर्त्तमान महान् भीम-सिंह वर्त्तमान है जो अपनी गर्जना से नभो मण्डल को ध्वनित कर रहा था ।३१। वह अपने दाँतों को कटकटा रहा था। जिस कट कटाहटसे सब दिशाओं में बधिरता छा गयी थी यह चंडोच्चंड—इस नाम ने विख्यात था और यह हाथ का तथा तीन लोचनों वाला था ।३२। यह शूल-खंग-प्रेत और पाशों को धारण करने वाला तथा परम दीप्त विग्रह था। यह सदा ही पोत्रिणी की ओर ही देखता हुआ देवी की सेवा किया करता है ।३३। किरिचक्र रथेन्द्र के षष्ठ पर्व पर समाश्रय लेने वाली वार्त्ताली—आदि आठ देवियाँ हैं जो आठों दिशाओं मे उपविश्रुत हैं ।३४। ये आठ पर्वतों के निष्पात से परम घोर निर्घात के घोष वाली थीं। आठ नागों के स्फुरित भूषा से संयुत तथा न नष्ट होने वाले बल और तेज वाली थी ।३५।

प्रकृष्टदोष्प्रकांडोष्महुतदानवकोटय: ।
सेवंते ललितां देव्यो दंडनाथामहर्निशम् ॥३६
तासामाख्याश्च विख्याता: समाकर्णय कुम्भज ।
वार्ताली चैव वाराही सा वाराहमुखी परा ॥३७
अंधिनी रोधिनी चैव जृंभिणी चैव मोहिनी ।
स्तंभिनीति रिपुक्षोभस्तंभनोच्चाटनक्षमा: ॥३८
तासां च पर्वणो वामभागे सततसंस्थिति: ।
दंडनाथोपवाह्यस्तु कासरो धूसराकृति: ॥३९
अर्धक्रोशायत: शृंगद्वितये क्रोशविग्रह: ।
खड्गवन्निष्ठुरैर्लोमजातै: संवृतविग्रह: ॥४०
कालदंडवदुच्चंडबालकांगभयंकर: ।

नीलांजनाचलप्रख्यो विकटोन्नतरुष्टभूः ।।४१
महानीलगिरिश्रेष्ठगरिष्ठस्कन्धमंडलः ।
प्रभूतोष्मलनिश्वासप्रसराकंपितांबुधिः ।।४२

परम प्रकृष्ट बाहुओं की प्रकांड ऊष्मा में करोड़ों दानव हुत हो रहे थे । ऐसी ये देवियाँ अहर्निश दण्डनाथा श्री ललिता देवी की सेवा किया करती हैं । उनकी आख्या तो परम विख्यात है । हे कुम्भज ! उसका आप श्रवण कीजिए । वार्त्ताली-बाराही-बाराह मुखी—अन्धिनी—जृम्भिणी—मोहिनी—स्तम्भिनी—ये हैं जो शत्रुओं के क्षोभ और स्तम्भन तथा उच्चाटन करने में परम समर्थ है ।३६-३८। इनकी संस्थिति पर्व के वाम भाग में निरन्तर रहा करती है । उस दंडनाथा का उप वाह्य कासर हैं जिसको धूसर आकृति हैं ।३९। यह आधे कोश के बराबर आयत है । इसके दो सींग है और एक कोश के बराबर विग्रह वाला है । इसके जो केश हैं वे खड्ग के समान कठोर हैं जिनसे इसका कलेवर ढका हुआ है ।४०। कालडंड के तुल्य उच्चंड बालों के कांड से बड़ा ही भयंकर है । यह नीले आनन के पर्वत के समान परम विकट और उन्नत रुष्ट भ्रू वाला है ।४१। महानील गिरि के समान गरिष्ठ एवं श्रेष्ठ स्कन्धों के मंडल वाला है । प्रभूत ऊष्मा से युक्त निश्वास के प्रसार से सागर को भी प्रकम्पित करने वाला है ।४२।

घर्घरध्वनिना कालमहिषं विहसन्निव ।
वर्त्तते खुरविक्षिप्तपुष्कलावर्तवारिदः ।।४३
तस्यैव पर्वणोऽधस्ताच्चित्रस्थानकृतालयाः ।
इन्द्रादयोऽनेकभेदा दिशामष्टकदेवताः ।।४४
ललितायां कार्यसिद्धिं विज्ञापयितुमागताः ।
इन्द्रश्चाप्सरसश्चैव स चतुष्षष्टिकोटयः ।।४५
सिद्धाअग्निश्च साध्याश्च विश्वेदेवास्तथापरे ।
विश्वकर्मा मयश्चैव मातरश्च बलोन्नताः ।।४६
रुद्राश्च परिचाराश्च रुद्राश्चैव पिशाचकाः ।
क्रन्दंति रक्षसां नाथा राक्षसा बहवस्तथा ।।४७
मित्राश्च तत्र गन्धर्वाः सदा गानविशारदाः ।

विश्वावसुप्रभृतयो विख्यातास्तत्पुरोगमाः ॥४८

तथा भूतगणाश्चान्ये वरुणो वासवः परे ।

विद्याधराः किन्नराश्च मारुतेश्वर एव च ॥४९

इसकी ध्वनि घर्घराहट कालरूपी महिष का भी उपहास सा कर रही थी। इसके खुरों के निक्षेप से पुष्कल आवर्त्त वारिद हो गये थे ।४३। उसके ही पर्व के नीचे की ओर चित्रालयों में संस्थिति करने वाले इन्द्र आदि अनेक भेदों वाले दिशाओं के आठ देवता थे ।४४। ये सबललिता में कार्यों की सिद्धि के ही विज्ञापन करने के लिये वहाँ पर समागत हुए थे। इन्द्र और अप्सराएँ सब चौंसठ करोड़ थे ।४५। सिद्ध-अग्नि-साध्य-विश्वेदेवा—विश्वकर्मा-भय--बलोन्नत मातृगण--रुद्र--परिचार--रुद्र--पिशाच-राक्षसों के नाम तथा बहुत राक्षस क्रन्दन करते हैं ।४६-४७। वहाँ पर मित्र-गन्धर्व सदा ही गान करने में परायण थे। विश्वा वसु आदि सब जो विख्यात हैं उसके आगे गमन करने वाले थे ।४८। उसी भाँति से भूतगण—अन्य थे तथा वरुण और वासव—विद्याधर—किन्नरगण और मारुतेश्वर थे जो आगे-आगे गमन कर रहे थे ।४९।

तथा चित्ररथश्चैव रथकारककारकाः ।

तुंबुरुर्नारदो यक्षः सोमो यक्षेश्वरस्तथा ॥५०

देवैश्च भगवांस्तत्र गोविंदः कमलापतिः ।

ईशानश्च जगच्चक्रभक्षकः शूलभीषणः ॥५१

ब्रह्मा चवाश्विनीपुत्रो वैद्यविद्याविशारदौ ।

धन्वंतरिश्च भगवानथान्ये गणनायकाः ॥५२

कटकाण्डगलद्दान संतर्पितमधुव्रताः ।

अनंतो वासुकिस्तक्षः कर्कोटः पद्म एव च ॥५३

महापद्मः शंखपालो गुलिकः सुबलस्तथा ।

एते नागेश्वराश्चैव नागकोटिभिरावृताः ॥५४

एवंप्रकारा बहवो देवतास्तत्र जाग्रति ।

पूर्वादिदिगमारभ्य परितः कृतमंदिराः ॥५५

तत्रैव देवताश्चक्रे चक्राकारा मरुद्दिशः ।
आश्रित्य किल वर्तंते तदधिष्ठातृदेवताः ।।५६

उसी भाँति से चित्ररथ—रथकारक—तुम्बरु—नारद—यज्ञ-सोम-यज्ञेश्वर—समस्त देवगणों के सहित कमला के स्वामी भगवान् गोविन्द—जगत् चक्र के भक्षण करने वाले भीषण शूलपाणि ईशान—ब्रह्मा—अश्विनी कुमार जो कि वैद्य के विशारद थे—भगवान् धन्वन्तरि और अन्य गणों के नायक भी पुरोगामी थे ।५०-५२। इनके कटस्थलों से जो मद गिर रहा था उस पर भ्रमर झूम रहे थे। अनन्त—वासुकि—तक्षक—कर्कोट—पद्म—महापद्म—शंखपाल—गुलिक—सुबल—ये सब नागेश्वर थे जो करोड़ों नागों से समावृत होते हुए पुरोगमन कर रहे थे ।५३-५४। इस प्रकार वाले बहुत—से देवगण जाग्रत हो रहे थे। और पूर्व आदि दिशाओं से समारम्भ करके चारों ओर अपना निवास स्थल बनाये हुए थे ।५५। वहीं पर देवताओं ने मरुत् दिशा को चक्राकार कर दिया था। और उस दिशा का समाश्रयण करके वे सब अधिष्ठान देवता हो रहे थे ।५६।

जृम्भिणी स्तंभिनी चैव मोहिनी तिस्र एव च ।
तस्यैव पर्वणः प्रांते किरिचक्रस्य भास्वतः ।।५७
कपालं च गदां बिभ्रदूर्ध्वकेशो महावपुः ।
पातालतलजंबालबहुलाकारकालिमा ।।५८
अट्टहासमहावज्रदीर्णब्रह्मांडमण्डलः ।
भिन्दन्डमरुकध्वानै रोदसीकन्दरोदरम् ।।५९
फूत्कारीत्रिपुरायुक्तं फणिपाशं करे वहन् ।
क्षेत्रपालः सदा भाति सेवमानः किटीश्वरीम् ।।६०
तस्यैव च समीपस्थस्तस्या वाहनकेसरी ।
यमारुह्य प्रववृते भंडासुरवधैषिणी ।।६१
प्रागुक्तमेव देवेशीवाहसिंहस्य लक्षणम् ।
तस्यैव पर्वणोऽधस्ताद्दण्डनाथसमत्विषः ।।६२
दंडिनीसदृशाशेषभूषणायुधमंडिताः ।
शम्याः क्रोडाननाश्चंद्ररेखोत्तंसितकुन्तलाः ।।६३

जृम्भिणी--स्तम्भिनी--मोहिनी ये तीनों ही उसी पर्व के प्रान्त में जो कि भासुर किरि चक्र रथ था, विद्यमान थे ।५७। अब क्षेत्र पाल के स्वरूप का वर्णन किया जाता है—क्षेत्रपाल कपाल और गदा को करों में धारण किये हुए है—इसके केश ऊपर की ओर उठे हुए हैं तथा इसका वपु महान् है । पाताल तल में जो जम्बाल है उसके समान आकार वाली इसमें कालिमया है ।५८। इसका अट्टहास वज्र के ही तुल्य है जिससे पूर्ण ब्रह्मांड मंडल विदीर्ण हो जाता है । यह अपने डमरू के घोषों से रोदसी की कन्दराओं के उदर को भेद रहा है ।५६। फूत्कार (फुसकार) करने वाली त्रिपुरा से युक्त नागों के पाश को कर में वहन कर रहा था । ऐसा क्षेत्रपाल किटीश्वरी की सेवा करता हुआ सदा ही शोभित होता है ।६०। उसके ही समीप में स्थित उसका वाहन केसरी था जिस पर समारोहण करके भंडासुर के वध की इच्छा वाली प्रवृत्त हुई थी ।६१। देवी के वाहन सिंह का लक्षण तो पूर्व में ही कह दिया गया है । उसी पर्व के नीचे दंडनाथा के समान ही कान्ति वाली सहस्रों अन्य देवियाँ तथा देवता थे ।६२। ये सभी दंडनाथा के ही तुल्य समस्त भूषणों और आयुधों से मंडित थे । ये शम्या-क्रोडानना-चन्द्ररेखा और उत्तंसित कुन्तला थीं ।६३।

हलं च मुसलं हस्ते घूर्णयंत्यो मुहुर्मुहुः ।
ललिताद्रोहिणां श्यामाद्रोहिणां स्वामिनीद्रुहाम् ॥६४

रक्तस्रोतोभिरुत्कूलैः पूरयंत्यः कपालकम् ।
निजभक्तद्रोहकृता मन्त्रमालाविभूषणाः ॥६५

स्वगोष्ठीसमयाक्षेपकारिणां मुण्डमंडलैः ।
अखण्डरक्तविच्छर्दैर्बिभ्रत्यो वक्षसि स्रजः ॥६६

सहस्रं देवताः प्रोक्ताः सेवमानाः किटीश्वरीम् ॥६७

तासां नामानि सर्वासां दंडिन्याः कुम्भसंभव ।
सहस्रनामाध्याये तु वक्ष्यते नाधुना पुनः ॥६८

अथ तासां देवतानां कोलास्यानां समीपतः ।
वाहनं कृष्णसारंगो दंडिन्याः समये स्थितः ॥६९

क्रोशार्धार्द्धायतः शृंगे तदर्धायितो मुखे ।
क्रोशप्रमाणपादश्च सदा चोद्धृतवालधिः ॥७०

इसके कर में हल और मुसल था तथा ये बार-बार घूर्णन कर रही थीं जो भी ललिता देवी के द्रोही—श्यामा के द्रोही और स्वामिनी के साथ द्रोह करने वाले थे उन्हीं को घूर रहीं थीं ।६४। उमड़े हुए रक्त के स्रोतों से कपालों को भर रहीं थीं । इनके भूषण अपने भक्तों के साथ द्रोह करने वालों की मन्त्रों की मालाएँ ही थे ।६५। अपनी गोष्ठी के समय पर आक्षेप करने वालों के मुख मंडलों अर्थात् मुंडों से जिनसे रक्त स्राव हो रहा है अपने उर:स्थल पर मालाएँ धारण कर रहीं थीं ।६६। ऐसे उस किटीश्वरी की सेवा करते हुए सहस्रों ही देवता बताये गये हैं ।६७। हे कुम्भ सम्भव ! दंडिनी की उनके सबके नाम सहस्र नामाध्याय में कहेंगे अत: अब फिर नहीं कहते हैं ।६८। कोलास्य उन देवताओं के समीप में ही कृष्ण सारंग वाहन दंडिनी के समय में स्थित था । यह आधे कोश तक तो आयत था शृंग में और उससे आधा आयत मुख में था और एक कोश के प्रमाण वाले पाद थे और उसकी पूँछ तो सदा ही उद्धत रहा करती थी ।६९-७०।

उदरे धवलच्छायो हुंकारेण महीयसा ।
हसन्मारुतवाहस्य हरिणस्य पराक्रमम् ॥७१

तस्यैव पर्वणो देशे वर्त्तते वाहनोत्तमम् ।
किरिचक्ररथेन्द्रस्य स्थितस्तत्रैव पर्वणि ॥७२

वर्तते मदिरासिंधुर्देवतारूपमास्थिता ।
माणिक्यगिरिवच्छोणं हस्ते पिशितपिंडकम् ॥७३

दधाना घूर्णमानाक्षी हेमांभोजस्रगावृता ।
मदशक्त्या समाश्लिष्टा धृतरक्तसरोजया ॥७४

यदा यदा भंडदैत्य: संग्रामे संप्रवर्तते ।
युद्धस्वेदमनुप्राप्ता: शक्तय: स्यु: पिपासिता: ॥७५

तदा तदा सुरासिंधुरात्मानं बहुधा क्षिपन् ।
रणे खेदं देवतानामंजसापाकरिष्यति ॥७६

तदप्यद्भुतमे वर्षे भविष्यति न संशय: ।
तदा श्रोष्यसि संग्रामे कथ्यमानं मया मुदा ॥७७

महान् हुङ्कार से उसके उदर में धवल कान्ति होती थी। हंसते मारुत के वाहन हरिण का पराक्रम था ।७१। उसी पर्व के भाग में वह उत्तम वाहन रहता है जिस पर्व में किरिचक्र रथेन्द्र की स्थिति थी ।७२। वहाँ पर मदिरा का सिन्धु भी एक देवता के स्वरूप में समास्थित होकर विद्यमान था। जो माणिक्य के समान शोण था तथा उसके हाथ में माँस का एक ढेला ।७३। उसकी आँखें विशेष घूर्णित थी सुनहरी कमल के सदृश रुधिर से समावृत थीं। रक्त सरोज धारण करने वाली के द्वारा यह की शक्ति से समाश्लिष्ट थी ।७४। जब-जब भंड दैत्य संग्राम में प्रवृत्त होता है। युद्ध के स्वेद को अनुप्राप्त शक्तियाँ पिपासित हो जाती हैं ।७५। उसी-उसी समय में सुरा का सागर बहुधा अपने आपको क्षिप्त करता हुआ देवों के रण के खेद को तुरन्त ही दूर कर देता है ।७६। वह भी अद्भुततम वर्ष में होगा—इसमें कुछ भी संशय नहीं है। उस समय में मेरे द्वारा कहा जाने वाला संग्राम में बड़े ही आनन्द से तुम श्रवण करोगे ।७७।

तस्यैव पर्वणोऽधस्तादष्टदिक्ष्वध एव हि ।
उपर्यपि कृतावासा हेतुकाद्या दश स्मृताः ॥७८

महांतो भैरवश्रेष्ठाः ख्याता विपुलविक्रमाः ।
उद्दीप्तायुततेजोभिर्द्दिवा दीपितभानवः ॥७९

कल्पांतकाले दंडिन्या आज्ञया विश्वघस्मराः ।
अत्युदग्रप्रकृतयो रददष्टौष्ठसंपुटाः ॥८०

त्रिशूलाग्रविनिर्भिन्नमहावारिदमंडलाः ।
हेतुकस्त्रिपुरारिश्च तृतीयश्चाग्निभैरवः ॥८१
यमजिह्वैकपादौ च तथा कालकरालकौ ।
भीमरूपो हाटकेशस्तथैवाचलनामवान् ॥८२

एते दशैव विख्याता दशकोटिभटान्विताः ।
तस्यैव किरिचक्रस्य वर्तंते पर्वसीमनि ॥८३

एवं हि दंडनाथायाः किरिचक्रस्य देवताः ।
जृंभिण्याद्यचलेंद्रांताः प्रोक्तास्त्रैलोक्यपावनाः ॥८४

उस ही पर्व के नीचे आठों दिशाओं में नीचे ही ऊपर-ऊपर आवास करने वाले हेतुक आदि दश कहे गये हैं ।७८। विपुल विक्रम से समन्वित महान् भैरव ख्यात हैं सहस्रों तेजों से ये उद्दीप्त हैं जैसे दिन में दीपित सूर्य होवें ।७९। कल्प के अन्त समय में दंडिनी देवी की आज्ञा से हप्त सम्पूर्ण विश्व के विनाशक जिनकी अत्यन्त उदग्र स्वभाव हैं और जो अपने दांतों और होठों को पीसने वाले हैं ।८०। ये त्रिशूलों के अग्रभाग से महान् मेघों के मंडल को भी निर्भिन्न कर रहे हैं—एक हेतुक है—त्रिपुरारि है और तीसरा अग्नि भैरव है ।८१। यम जिह्वा और एक पाद हैं और काल के ही समान कराल हैं । भीम स्वरूप से युक्त तथा हाटकेश हैं और उसी अचल के नाम वाला है ।८२। ये केवल दश ही विख्यात हैं जो कि दश करोड़ भटों से संयुत हैं । उसी किरिचक्र के पर्व की सीमा में रहा करते हैं ।८३। इस रीति से उस दंडनाथा के किरिचक्र के देवता हैं । जृम्भिणी से आदि लेकर अचलेन्द्र के अन्त तक हैं—ऐसे कहे गये हैं जो त्रैलोक्य के पावन हैं ।८४।

तत्रत्यैर्देवतावृन्दैर्बहवस्तत्र संगरे ।
दानवा मारयिष्यंते पास्यंते रक्तवृष्टयः ॥८५
इत्थं बहुविधत्राणं पर्वस्थैर्देवतागणैः ।
किरिचक्रं दंडनेत्र्या रथरत्नं चचाल ह ॥८६
चक्रराजरथो यत्र तत्र गेयरथोत्तमः ।
यत्र गेयरथस्तत्र किरिचक्ररथोत्तमः ॥८७
एतद्रथत्रयं तत्र त्रैलोक्यमिव जंगमम् ।
शक्तिसेनासहस्रस्यांतश्चचार तदा शुभम् ॥८८
मेरुमन्दरविंध्यानां समवाय इवाभवत् ।
महाघोषः प्रववृते शक्तीनां सैन्यमंडले ।
चचाल वसुधा सर्वा तच्चक्ररवदारिता ॥८९
ललिता चक्रराजाख्या रथनाथस्य कीर्तिताः ।
षट्सारथय उद्दण्डपाशग्रहणकोविदाः ॥९०
यत्र गेयरथस्तत्र किरिचक्ररथोत्तमम् ।
इति देवी प्रथमतस्तथा त्रिपुरभैरवी ॥९१

संहारभैरवश्चान्यो रक्तयोगिनिवल्लभः ।
सारसः पंचमश्चैव चामुण्डा च तथा परा ।।९२

उस संग्राम में वहाँ के देवताओं के समूहों के द्वारा बहुत से दानव मारे जायेंगे और रुधिर की वृष्टि का पान किया जायगा ।८५। इस प्रकार से पर्व में स्थित देवताओं के गणों के द्वारा बहुत तरह का परित्राण होगा तथा दंड नेत्री किरिचक्र चला था ।८६। जहाँ पर चक्र राज रथ था वहाँ पर ही गेय रथोत्तम था और जहाँ जहाँ पर गेय रथोत्तम था वहाँ पर ही किरि-चक्र रथोत्तम था ।८७। इन प्रकार से वहाँ पर तीन रथ थे । ऐसा प्रतीत होता था मानों त्रैलोक्य ही जंगम है । इसके अन्दर सहस्रों शक्ति सेनाओं का शुभ संचार उस समय में हो रहा था ।८८। ऐसा मालूम होता था मानों मेरु-मन्दर और विन्ध्य पर्वतों का समवाय ही हो गया होवे । उस शक्तियों के सैन्य मंडल में उस समय में महान घोष प्रवृत्त हो गया था । उस समय में उन रथों के चक्रों की ध्वनि से सम्पूर्ण वसुधा हिल गयी थी ।८९। रथवाक की चक्रराज नाम वाली ललिता ही कीत्तित की गयी है । उनमें छै सारथि थे जो उद्दण्ड पाशों के ग्रहण में बड़े कोविद थे ।९०। जहाँ पर ही गेय रथ था वहाँ-वहाँ पर किरिचक्र उत्तम रथ था । प्रथम तो देवी थी फिर उसी भाँति त्रिपुर भैरवी थी ।९१। और अन्य संहार भैरव था जो रक्त योगिनी का वल्लभ था । सारस पाँचवाँ था तथा अपरा चामुण्डा थी ।९२।

एतासु देवतास्तत्र रथसारथयः स्मृताः ।
गेयचक्ररथेन्द्रस्य सारथिस्तु हसतिका ।।९३
किरिचक्ररथेंद्रस्य स्तंभिनी सारथिः स्मृता ।
दशयोजनमुन्नम्रो ललितारथपुङ्गवः ।।९४
सप्तयोजनमुच्छ्रायो गीतचक्ररथोत्तमः ।
षड्योजनसमुन्नम्रो किरिचक्ररथो मुने ।।५९
महामुक्तातपत्रं तु दशयोजनविस्तृतम् ।
वर्तते ललितेशान्या रथ एव न चान्यतः ।।९६
तदेव शक्तिसाम्राज्यसूचकं परिकीर्तितम् ।
सामान्यमातपत्रं तु रथद्वंद्वे पि वर्तते ।।९७

अथ सा ललितेशानी सर्वशक्तिमहेश्वरी ।
महासाम्राज्यपदवीमारूढा परमेश्वरी ॥९८
चचाल भंडदैत्यस्य क्षयसिद्ध्यभिकांक्षिणी ।
शब्दायंते दिशः सर्वाः कंपते च वसुन्धरा ॥९९

इनमें वहाँ पर देवता ही उन रथों के सारथि थे ऐसा बताया गया है। जो गेय रथचक्र था उसकी सारथि हसन्तिका थी ।९३। किरिचक्र रथेन्द्र की स्तम्भिनी सारथि कही है। ललिता का उत्तम श्रेष्ठ रथ दश योजन ऊँचा था ।९४। गीतचक्र हयोत्तम सात योजन उच्छ्राय वाला था। षट् योजन ऊँचा हे मुने ! किरिचक्र रथ था ।९५। महान मुक्ताओं से विनिर्मित आतपत्र (छत्र) दशयोजन विस्तार वाला था। ललितेशानी का रथ ही ऐसा था और अन्य का नहीं था ।९६। और वह ही शक्ति के साम्राज्य का सूचक कीर्त्तित किया गया है। सामान्य छत्र तो अन्य दोनों पर भी थे ।९७। वह ललिता ईशानी समस्त शक्तियों की महेश्वरी थी। वह परमेश्वरी महान साम्राज्य की पदवी पर समारूढ़ थी ।९८। वह चंड दैत्य के क्षय की सिद्धि की अभिकांक्षा वाली वहाँ से चली थी। सभी दिशाएँ उस समय में शब्दायमान हो रही थीं और वसुधा प्रकम्पित हो रही थी ।९९।

क्षुभ्यंति सर्वभूतानि ललितेशाविनिर्गमे ।
देवदुन्दुभयो नेदुर्निपेतुः पुष्पवृष्टयः ॥१००
विश्वावसुप्रभृतयो गन्धर्वाः सुरगायकाः ।
तुम्बुरुर्नारदश्चैव साक्षादेव सरस्वती ॥१०१
जयमंगलपद्यानि पठंतः पटुगीतिभिः ।
हर्षसंफुल्लवदनाः स्फुरत्पुलकभूषणाः ।
मुहुर्जययेत्येवं स्तुवाना ललितेश्वरीम् ॥१०२
हर्षेणाढ्या मदोन्मत्ताः प्रनृत्यंतः पदे पदे ।
सप्तर्षयो वशिष्ठाद्या ऋग्यजुः सामरूपिभिः ॥१०३
अथर्वरूपैर्मंत्रैश्च वर्धयंतो जयश्रियम् ।
हविषेव महावह्निशिखामत्यंतपाविनीम् ॥१०४
आशीर्वादेन महता वर्धयामासुरुत्तमाः ।

तैः स्तूयमाना ललिता राजमाना रथोत्तमे ॥१०५

भंडासुरं विनिर्जेतुमुद्दण्डैः सह सैनिकैः ॥१०६

जिस समय ईशानी ललिता देवी का विनिर्गम हुआ था उस समय में सभी प्राणी महान क्षुब्ध हो गये थे। देवगण दुन्दुभियाँ बजाने लगे थे तथा पुष्पों की वर्षा कर रहे थे।१००। विश्वावसु प्रभृति गन्धर्वगण जो सुरों के यहाँ गायक थे—तुम्बरु और नारद तथा साक्षात् सरस्वती देवी सब विजय के मंगल पद्यों का बहुत सुन्दर गीतों में पाठ कर रहे थे। सबके हर्ष से मुख खिले हुए थे तथा रोमाञ्चों के भूषण स्फुरित हो रहे थे। सभी बारम्बार जय हो–जय हो–इस प्रकार से ललितेश्वरी का स्तवन कर रहे थे।१०१-१०२। सभी कदम कदम पर हर्ष से युक्त और मद से उन्मत्त हो रहे थे तथा नृत्य कर रहे थे। सप्तर्षिगण जिनमें वसिष्ठ आदि महा मुनिगण थे वे ऋग्वेद-यजुर्वेद-सामवेद और अथर्ववेद के मन्त्रों से जय श्री का वर्णन कर रहे थे। जिस तरह से हवि से महा वह्नि की शिखा अत्यन्त पाविनी होती है वैसे ही ये सभी उत्तम ऋषिगण महान आशीर्वाद से वर्धन कर रहे थे। उनके द्वारा इस प्रकार से स्तवन की गयी ललिता उस उत्तम रथ में विराजमान हो रही थीं। वह देवी परम उद्दण्ड सैनिकों के साथ भंडासुर पर विजय प्राप्त करने को रवाना हुई थी।१०३-१०६।

—×—

भंडासुर अहंकार वर्णन

आकर्ण्य ललितादेव्या यात्रानिगमनिस्वनम् ।

महांतं क्षोभमायाता भंडासुरपुरालयाः ॥१

यत्र चास्ति दुराशस्य भंडदैत्यस्य दुर्धियः ।

महेन्द्रपर्वतोपांते महार्णवतटे पुरम् ॥२

तत्तु शून्यकनाम्नैव विख्यातं भुवनत्रये ।

विषंगाग्रजदैत्यस्य सदावासः किलाभवत् ॥३

तस्मिन्नेव पुरे तस्य शतयोजनविस्तरे ।

वित्रेसुरसुराः सर्वे श्रीदेव्यागमसंभ्रमात् ॥४

शतयोजनविस्तीर्णं तत्सर्वं पुरमासुरम् ।

धूमैरिवावृतमभूदुत्पातजनितैर्मुहुः ॥५

अकाल एव निर्भिन्ना भित्तयो दैत्यपत्तने ।
घूर्णमाना पतन्ति स्म महोल्का गगनस्थलात् ॥६
उत्पातानां प्राथमिको भूकंपः पर्यवर्तत ।
मही जज्वाल सकला तत्र शून्यकपत्तने ॥७

श्री ललिता देवी की यात्रा के निगम के घोष का श्रवण करके भंडासुर के पुर में निवास करने वाले बड़े भारी क्षोभ को प्राप्त होगये थे ।१। जहाँ पर दुराश और दुष्ट मति वाले भंड का नगर है वह महेन्द्र पर्वत के जपान्त में और महार्णव के तट पर है ।२। वह तो शून्यक के नाम से ही तीनों भुवनों में विख्यात है । वहाँ पर त्रिषंगाग्रज दैत्य का सदा ही आवास हुआ था ।३। सौ योजन के बिस्तार वाले उसके उसी पुर में विश्वेसुर सुर सब श्री देवी के आगम के संभ्रम से सौ योजन विस्तीर्ण वह सम्पूर्ण असुरों का पुर बार-बार उत्पातों से समुत्पन्न धूमों से आवृत के ही समान हो गया था ।४-५। अकाल में ही उस दैत्य के नगर में भित्तियाँ निर्मित होगयी थीं । गगन स्थल से घूर्णमान महोल्का गिरा करते थे ।६। उत्पातों का सबसे प्रथम होने वाला भूकम्प हुआ था । वहाँ पर उस शून्यक पत्तन में सम्पूर्ण भूमि ज्वलित हो गयी थी ।७।

अकाल एव हृत्कंपं भेजुर्दैत्यपुरौकसः ।
ध्वजाग्रवर्तिनः कंकगृध्राश्चैव बकाः खगाः ॥८
आदित्यमंडले दृष्ट्वा दृष्ट्वा चक्रुरुच्चकैः ।
क्रव्यादा बहवस्तत्र लोचनैर्नावलोकिताः ॥९
मुहुराकाशवाणीभिः परुषाभिर्बभाषिरे ।
सर्वतो दिक्षु दृश्यंते केतवस्तु मलीमसाः ॥१०
धूमायमानाः प्रक्षोभजनका दैत्यरक्षसाम् ।
दैत्यस्त्रीणां च विभ्रष्टा अकाले भूषणस्रजः ॥११
हाहेति दूरं क्रन्दंत्यः पर्यश्रु समरोदिषुः ।
दर्पणानां वर्मणां च ध्वजानां खड्गसंपदाम् ॥१२
मणीनामंबराणां च मालिन्यमभवन्मुहुः ।
सौधेषु चन्द्रशालासु केलिवेश्मसु सर्वतः ॥१३

अट्टालकेषु गोष्ठेषु विपणेषु सभासु च ।
चतुष्किकास्वलिंदेषु प्रग्रीवेषु वलेषु च ॥१४

उस दैत्य के पुर में निवास करने वाले लोग अकाल में ही हृदय के कम्प से संयत होगये थे । ध्वजाओं के आगे रहने वाले कंक-गृध्र-बक और पक्षी आदित्य मंडल में देख-देखकर बड़े ऊँचे स्वर से क्रन्दन करने लगे । वहाँ पर बहुत से (क्रव्याद राक्षस) गण थे जो नेत्रों के द्वारा दिखलाई नहीं दिये गये थे ।८-९। बार-बार आकाश वाणियों के द्वारा बोलते थे और सभी ओर दिशाओं में केतु बहुत ही मलिन दिखलाई दे रहे थे ।१०। वे सब धूमायमान हो रहे थे और दैत्यों तथा राक्षसों के हृदयों में बड़े भारी क्षोभ को उत्पन्न करने वाले थे । और असमय में ही दैत्यों की स्त्रियों के भूषण और मालाऐं भ्रष्ट होकर गिर रहे थे ।११। हा-हा—ध्वनि करके अश्रुपात करती हुई रुदन की ध्वनि में सब रो रहीं थीं । वहाँ पर दर्पण-वर्म-ध्वजाखंग और सम्पदाऐं एवं मणि तथा वस्त्रों में बार-बार मलिनता हो गयी थीं । सौधों में-नन्द्य शालाओं में और सभी ओर केलि करने के गृहों में महान् भीषण घोष सुनाई दिया करता था ।१२-१३। अट्टालिकाओं में—गोष्ठों में—विपणों में और सभा भवनों में—चतुष्किकाओं में-अलिन्दों में-प्रग्रीवों में और वलों में सर्वत्र महान् अशुभ एवं कठोर घोष सुनाई देता था ।१४।

सर्वतोभद्रवासेषु नन्द्यावर्तेषु वेश्मसु ।
विच्छंदकेषु संक्षुब्धेष्ववरोधनपालिषु ।
स्वस्तिकेषु च सर्वेषु गर्भागारपुटेषु च ॥१५

गोपुरेषु कपाटेषु वलभीनां च सीमसु ।
वातायनेषु कक्ष्यासु धिष्ण्येषु च खलेषु च ॥१६
सर्वत्र दैत्यनगरवासिभिर्जनमंडलैः ।
अश्रूयन्त महाघोषाः परुषा भूतभाषिताः ॥१७
शिथिली सर्वतो जाता घोरपर्णा भयानका ।
करटैः कटुकालापैरवलोकि दिवाकरः ।
आराविषु करोटीनां कोटयश्चापतन्भुवि ॥१८

अपतन्वेदिमध्येषु बिंदवः शोणितांभसाम् ।
केशौघकाश्च निष्पेतुः सर्वतो धूमधूसराः ॥१९
भौमांतरिक्षदिव्यानामुत्पातानामिति व्रजम् ।
अवलोक्य भृशं त्रस्ताः सर्वे नगरवासिनः ।
निवेदयामासुरमी भंडाय प्रथितौजसे ॥२०
स च भंडः प्रचंडोत्थैस्तैरुत्पातकदंबकैः ।
असंजातधृतिभ्रंशो मन्त्रस्थानमुपागमत् ॥२१

सर्वतोभद्रवासों में—नन्द्यावर्त्तों—घरों में—विच्छन्दकों में और अवरोधन पालियों में सर्वत्र विक्षोभ हो रहा था । स्वस्तिकों में और समस्त गर्भागार पुरों में—गो पुरों में—कपाटों में और बलभियों की सीमाओं में—वातायनों में—कक्ष्याओं में और खलों में-सभी जगह दैत्यों के नगर में निवासी जनों के मण्डलों के द्वारा भूतों द्वारा कहे हुए परम कठोर महान् घोष सुनाई दे रहे थे ।१५-१७। शिथिली भूत होते हुए घोरपर्ण और भयानक हो गये थे तथा कटु आलाप वाले करटों के द्वारा दिवाकर देखा गया था । आरावियों में करोटियों की कोटियाँ भूमि में गिर गई थी ।१८। वेदियों के मध्य में शोणित मिश्रित जल की बिन्दुऐं गिर रहीं थीं और केशौधक सभी ओर धूम से धूसर होकर गिर गये थे ।१९। भूमि में होने वाले—अन्तरिक्ष में और दिवलोक में होने वाले उत्पातों के समुदायों को देखकर सभी नगर के निवासीजन अत्यधिक भयभीत हो गये थे । इन सभी ने परम प्रसिद्ध ओज वाले भण्डासुर से इस दृश्यमान भीषणता के विषय में निवेदन किया था ।२०। और वह भण्डासुर को इन परम प्रचण्ड उत्पातों के समुदायों से भी धीरज का भ्रंश नहीं हुआ था और वह मन्त्र स्थान को सम्प्राप्त हो गया था ।२१।

मेरोरिव वपुर्भेदं बहुरत्नविचित्रितम् ।
अध्यासामास दैत्येंद्रः सिंहासनमनुत्तमम् ॥२२
स्फुरन्मुकुटलग्नानां रत्नानां किरणैर्घनै ।
दीपयन्नखिलाशान्तानद्य तद्दानवेश्वरः ॥२३
एकयोजनविस्तारे महत्यास्थानमंडपे ।
तुंगसिंहासनस्थं तं सिषेवाते तदानुजौ ॥२४

विशुकश्च विषंगश्च महाबलपराक्रमौ ।
त्रैलोक्यकंटकीभूतभुजदंडभयंकरौ ॥२५
अग्रजस्य सदंवाज्ञामविलंघ्य मुहुर्मुहुः ।
त्रैलोक्यविजये लब्धं वर्धयंतौ महद्यशः ॥२६
न तेन शिरसा तस्य मृद्नंतौ पादपीठिकाम् ।
कृतांजलिप्रणामौ च समुपाविशतां भुवि ॥२७
अथास्थाने स्थिते तस्मिन्नमरद्वेषिणां वरे ।
सर्वे सामंतदैत्येन्द्रास्तं द्रष्टुं समुपागताः ॥२८

वहाँ पर मेरु पर्वत के समान वपु वाले तथा बहुत से रत्नों से चित्रित अत्युत्तम सिंहासन पर दैत्येन्द्र संस्थित हो गया था।२२। वह दानवेश्वर स्फुरित मुकुटों में लगे हुए रत्नों की किरणों से सब दिशाओं को दीपित करता हुआ वहाँ पर समवस्थित हुआ था।२३। उस समय में उसके दो अनुजों के द्वारा वह सेवित हुआ था। वह आस्थान मण्डप महान् था तथा एक योजन के विस्तार से युक्त था। वहाँ पर एक बहुत ही ऊँचा सिंहासन था जिस पर यह दानवेन्द्र विराज मान हुआ था।२४। विशुक और विषंग ये दोनों इसके छोटे भाई बड़े ही अधिक बल और पराक्रम वाले थे और ये दोनों तीनों लोकों के लिये कण्डक के ही समान भुजदण्ड वाले तथा भयङ्कर थे।२५। ये दोनों ही अपने बड़े भाई की आज्ञा का कभी उल्लंघन नहीं किया करते थे और उन्होंने त्रैलोक्य के विजय करने में महान् यश प्राप्त किया था।२६। उन्होंने अपने शिर को झुकाकर उसकी पाद पीठिका को प्रणाम किया था और अपने दोनों करों को जोड़कर ये भूमि में बैठ गये थे।२७। इसके अनन्तर जब वह सुरों का महान् शत्रु उस आस्थान मण्डप में समवस्थित हो गया था तो उसका दर्शन करने के लिए उस समय में समस्त सामन्त दैत्यों के साथ वहाँ पर समुपस्थित हो गये थे।२८।

तेषामेकैकसैन्यानां गणना न हि विद्यते ।
स्वं स्वं नाम समुच्चार्य प्रणेमुर्भंडकेश्वरम् ॥२९
स च तानसुरान्सर्वानतिधीरकनीनकैः ।
संभावयन्समालोकैः कियंतं चित्क्षणं स्थितः ॥३०

अवोचत विशुक्रस्तमग्रजं दानवेश्वरम् ।
मथ्यमानमहासिंधुसमानार्गलनिस्वनः ॥३१
देव त्वदीयदोर्दंडविध्वस्तबलविक्रमाः ।
पापिनः पामराचारा दुरात्मानः सुराधमाः ॥३२
शरण्यमन्यतः क्वापि नाप्नुवंतो विषादिनः ।
ज्वलज्ज्वालाकुले वह्नौ पतित्वा नाशमागताः ॥३३
तस्माद्वात्समुत्पन्ना काचित्स्त्री बलगर्विता ।
स्वयमेव किलाश्राक्षुस्तां देवा वासवादयः ॥३४
तैः पुनः प्रबलोत्साहैः प्रोत्साहितपराक्रमाः ।
बहुस्त्रीपरिवाराश्च विविधायुधमंडिताः ॥३५

उन एक-एक की इतनी अधिक सेना थी जिसकी कोई गणना नहीं है। उनमें सबने अपने-अपने नाम का उच्चारण करके उस भंडकेश्वर के लिये प्रणिपात किया था।२९। उस दैत्येश्वर ने अत्यन्त धैर्ययुक्त नेत्रों से उन समस्त असुरों का समादर करते हुए कुछ क्षण तक चुप वह शान्त रहा था। फिर अग्रज दाननेश्वरों से विशुक्र बोला था—उस समय में उसका स्वर मथ्यमान सिन्धु के समान था।३०-३१। हे देव ! आपकी भुजाओं से जिनका बल और विक्रम विध्वस्त हो गया है ये पापी, पामर आचरण वाले दुष्ट आत्मा अधम सुरगण विषाद युक्त होकर अन्य कहीं पर भी शरण को प्राप्त नहीं हुए थे। तथा जलती हुई ज्वालाओं से समाकुल वह्नि में गिर कर विनाश को प्राप्त हो गये थे।३२-३३। उस देव से समुत्पन्न कोई स्त्री है जो अपने बल के अत्यधिक गर्व वाली है। वासव आदिक समस्त देवगण स्वयं ही उसकी शरण में गये हैं।३४। उन्हीं के द्वारा जिन को परम प्रबल उत्साह हो रहा है उनके पराक्रम को प्रोत्साहन दिया है। उसके साथ बहुत सी स्त्रियों के परिवार भी विद्यमान हैं और वे सब अनेक प्रकार के आयुधों से भूषित हैं।३५।

अस्माञ्जेतुं किलायाति हा कष्टं विधिवैशसम् ।
अबलानां समूहश्चेद्बलिनोऽस्मान्विजेष्यते ॥३६
तर्हि पल्लवभंगेन पाषाणस्य विदारणम् ।
ऊह्यमानमिदं हंतुं परिहासाय कल्प्यते ॥३७

विडंबना न किमसौ लज्जाकरमिदं न किम् ।
अस्मत्सैनिकनासीरभटेभ्योऽपि भवेद्भयम् ॥३८

कातरत्वं समापन्नाः शक्राद्यास्त्रिदिवौकसः ।
ब्रह्मादयश्च निर्विण्णविग्रहा मद्बलायुधैः ॥३९

विष्णोश्च का कथैवास्ते विश्रस्तः स महेश्वरः ।
अन्येषामिह का वार्ता दिक्पालास्ते पलायिताः ॥४०

अस्माकमिषुभिस्तीक्ष्णैरदृश्यैरंगपातिभिः ।
सर्वत्र विद्धवर्माणो दुर्मदा विबुधाः कृताः ॥४१

तादृशानामपि महापराक्रमभुजोष्मणाम् ।
अस्माकं विजयायाद्य स्त्री काचिदभिधावति ॥४२

वे सब हम लोगों पर विजय प्राप्त करने के लिये आ रही हैं। हाँ ! बड़े ही कष्टका विषय है। यह क्या विधाता का चेष्टित है। यदि यह अबलाओं का समुदाय हमको जीत लेगा।३६। तो फिर पत्तों के भंग से पाषाण का ही विदारण हो जायगा। जप इस हेतु पर विचार किया जाता है तो परिहास सा ही होता है।३७। क्या यह विडम्बना मात्र नहीं है और क्या यह लज्जा उत्पन्न करने वाली बात नहीं है ? जो हमारे सैनिकों की सेना से भी भय को प्राप्त होते हैं।३८। वे शक्र आदि देवगण कातरता को प्राप्त हुए हैं। हमारी सेना की आयुध शक्ति से ब्रह्मादिक भी निर्विण्ण विग्रह वाले होते हैं।३९। विष्णु के विषय में तो कहा ही क्या जावे साक्षात् महेश्वर भी भयभीत है। अन्यों की तो बात ही क्या है सब दिक्पाल भी भाग गये हैं। ।४०। हमारे परमाधिक तीक्ष्ण बाणों से जो अदृश्य हैं और अंग में गिरने वाले हैं सभी जगह वर्मों को भेदने वाले हैं ऐसे सब देवों को दुर्मद कर दिया है।४१। हम ऐसे हैं जिनके भुजों में महापराक्रम की ऊष्मा है उनके ऊपर विजय प्राप्त करने के लिए इस समय में कोई स्त्री अभिधावन कर रही है।४२।

यद्यपि स्त्री तथाप्येषा नावमान्या कदाचन ।
अल्पोऽपि रिपुरात्मज्ञैर्नावमान्यो जिगीषुभिः ॥४३

तस्मात्तदुत्सारणार्थं प्रेष्यणीयास्तु किङ्कराः ।
सकचग्रहमाकृष्य सानेतव्या मदोद्धता ॥४४

देव त्वदीय शुद्धांतर्वर्तितीनां मृगीदृशाम् ।
चिरेण चेटिकाभावं सा दुष्टा संश्रयिष्यति ॥४५
एकैकस्माद्भटादस्मात्सैन्येषु परिपंथिनः ।
शङ्कते खलु वित्रस्तं त्रैलोक्यं सचराचरम् ॥४६
अन्यद्देवस्य चित्तं तु प्रमाणमिति दानव ।
निवेद्य भण्डदैत्यस्य क्रोधं तस्य व्यवीवृधन् ॥४७
विषङ्गस्तु महासत्त्वो विचारज्ञो विचक्षणः ।
इदमाह महादैत्यमग्रजन्मानमुद्धतम् ॥४७
देव त्वमेव जानासि सर्वं कार्यमरिन्दम ।
न नु ते क्वापि वक्तव्यं नीतिवर्त्मनि वर्तते ॥४६

यद्यपि वह स्त्री है तो भी उसका अपमान कभी भी नहीं करना चाहिए। जो आत्मज्ञानी हैं उनके द्वारा छोटा भी शत्रु जीतने की इच्छा वालों के द्वारा कभी भी अपमानित नहीं होना चाहिए ।४३। इसलिए उसके उत्सारण के वास्ते किङ्कर अवश्य ही भेज देने चाहिए कि वे उस मद से उद्धता स्त्री के शिर के केशों को पकड़ कर उसे यहाँ ले आवें ।४४। हे देव ! आपके यहाँ अन्दर अवरोध में रहने वाली जो हरिण के समान नेत्रों वाली सुन्दरियाँ हैं उनकी दासी बनकर बहुत समय तक वह दुष्टा स्त्री उनको सेवा किया करेगी ।४५। हमारे एक-एक योद्धा से ही परिपन्थी की सेनाओं में त्रैलोक्य विशेष रूपसे त्रस्त होकर सम्पूर्ण चराचर शङ्कित होता है ।४६। हे दानव ! अन्य तो आपका चित्त ही प्रमाण है। ऐसा निवेदन करके उस भंडासुर का क्रोध और अधिक बढ़ा दिया था ।४७। महान् सत्व वाला जो विषंग वह विचक्षण और विचारों का ज्ञाता था। वह अपने बड़े भाई से यह बोला था जो कि उद्धत दैत्य था ।४८। हे देव ! आप तो स्वयं शत्रुओं के दमन करने वाले हैं आप स्वयं ही सब कार्य को जानते हैं। आपको किसी को भी कुछ भी नहीं बताना चाहिए क्योंकि आप नीति के मार्ग में रहा करते हैं।४६।

सर्वं विचार्य कर्तव्यं विचारः परमा गतिः ।
अविचारेण चेत्कर्म समूलमवकृन्तति ॥५०

परस्य कटके चाराः प्रेषणीयाः प्रयत्नतः ।
तेषां बलाबलं ज्ञेयं जयसंसिद्धिमिच्छता ।।५१
चारचक्षुर्दृढप्रज्ञः सदाशंकितमानसः ।
अशंकिताकारवांश्च गुप्तमन्त्रः स्वमंत्रिषु ।।५२
षडुपायान्प्रयुञ्जानः सर्वत्राभ्यर्हिते पदे ।
विजयं लभते राजा जाल्मो मक्षु विनश्यति ।।५३
अविमृश्यैव यः कश्चिदारम्भः स विनाशकृत् ।
विमृश्य तु कृतं कर्म विशेज्जयदायकम् ।।५४
तिर्यगित्यपि नारीति क्षुद्रा चेत्यपि राजभिः ।
नावज्ञा वैरिणां कार्या शक्तेः सर्वत्र सम्भवः ।।५५
स्तंभोत्पन्नेन केनापि नरतिर्यग्वपुर्भृता ।
भूतेन सर्वभूतानां हिरण्यकशिपुर्हतः ।।५६

जो कुछ भी करता है वह सब विचार करके ही करना चाहिए क्योंकि भली भाँति विचार का करना ही परम गति है। बिना भली भाँति से विचार के जो भी कुछ किया जाता है वह मूल के सहित ही सम्पूर्ण विनष्ट हो जाया करता है ।५०। शत्रु के कटक में दूत प्रयत्न पूर्वक भेजने चाहिए। अपनी विजय की सिद्धि की इच्छा रखने वाले को चाहिए कि शत्रु के बल और अबल का पहिले ज्ञान प्राप्त कर लेवे ।५१। जो दूतों के द्वारा ही देखने वाला है—जिसकी प्रतिज्ञा सुदृढ़ है—जो सदा ही शङ्कित मन वाला है—जो अशङ्कित आकार वाला है—जो अपने मन्त्रियों में गुप्त मन्त्रणा वाला होता है। ये छै उपाय हैं इनका प्रयोग करने वाला जो सदा अभ्यर्हित पद पर स्थित रहता है वही राजा विजय का लाभ प्राप्त किया करता है। जो जाल्म होता है उसका शीघ्र विनाश हो जाया करता है ।५२-५३। कोई भी कार्य का आरम्भ बिना आगा-पीछा सोचे ही कर दिया जाया करता है वह विनाश करने वाला ही हुआ करता है। जिसका भली भाँति विचार करके पीछे जो कर्म किया गया है वह विशेष रूप से जय देने वाला ही हुआ करता है ।५४। यह तिर्यग् है—यह नारी है अथवा यह क्षुद्रा है—इन बातों से भी राजाओं को कभी भी वैरियों की अवज्ञा नहीं करनी चाहिए क्योंकि शक्ति तो ऐसी विलक्षण है कि वह सभी जगह हो सकती है। देखिये, ऐतिहासिक

घटना विद्यमान है—खम्भे से समुत्पन्न-नर और तिर्यग् (पशु) का वपु धारण करने वाले समस्त प्राणियों का भूत नरसिंह ने हिरण्यकशिपु जैसे महान् बलवान् को मार डाला था ।५५-५६।

पुरा हि चंडिका नाम नारी मायाविजृंभिणि ।
निशुम्भशुंभौ महिषं व्यापादितवती रणे ।।५७
तत्प्रसंगेन बहवस्तया दैत्या विनाशिताः ।
अतो वदामि नावज्ञा स्त्रीमात्रे क्रियतां क्वचित् ।।५८
शक्तिरेव हि सर्वत्र कारणं विजयश्रियः ।
शक्तेराधारतां प्राप्तैः स्त्रीपुंलिगैर्न नो भयम् ।।५९
शक्तिस्तु सर्वतो भाति संसारस्य स्वभावतः ।
तर्हि तस्या दुराशायाः प्रवृत्तिर्ज्ञायतां त्वया ।।६०
केयं कस्मात्समुत्पन्ना किमाचारा किमाश्रया ।
किंबला किंसहाया वा देव तत्प्रविचार्यताम् ।।६१
इत्युक्तः स विषंगेण को विचारो महौजसाम् ।
अस्मद्बले महासत्त्वा अक्षौहिण्यधिपाः शतम् ।।६२
पातुं क्षमास्ते जलधीनलं दग्धुं त्रिविष्टपम् ।
अरे पापसमाचार किं वृथा शङ्कसे स्त्रियः ।।६३

प्राचीन समय में भी चण्डिका नाम वाली एक नारी ही तो थी जिसने रण में निशुम्भ-शुम्भ और महिष को मार डाला था ।५७। उसी के प्रसंग से उसने बहुत से दैत्यों का विनाश कर दिया था । इसी कारण से मैं यही बतलाता हूँ कि यह समझ करके केवल स्त्री ही तो है कभी भी अवज्ञा नहीं करनी चाहिए ।५८। शक्ति ही सर्वत्र विजय की श्री का कारण हुआ करती है। शक्ति के आधार को प्राप्त हैं उन स्त्री और पुरुषों से हम को भय नहीं हैं ।५९। इस संसार की स्वभाव से ही शक्ति ही सर्व ओर विभात हुआ करती है । सो उस बुरे आशय वाली की क्या प्रवृत्ति है—आप को समझ लेना चाहिए ।६०। हे देव ! आपको इन सभी बातों का विचार कर लेना चाहिए कि यह कौन है—किससे यह समुत्पन्न हुई है—इसके आचार क्या हैं—इसका आश्रय क्या है—इसका बल कैसा और कितना है—इसकी सहायता

करने वाले कौन-कौन हैं ।६६। उस विषंग छोटे भाई के द्वारा जब इस रीति से भंडासुर से कहा गया था तो उसने कहा था कि जो महान् ओज वाले हैं उनके लिए विचार का करने की क्या आवश्यकता है। हमारी सेना में महान् सत्वधारी हैं और सैकड़ों तो अक्षौहिणी सेना के अधिप हैं। वे इतने समर्थ हैं कि जलधि के जल का भी पान कर सकते हैं और स्वर्ग को भी दग्ध कर सकते हैं। अरे ! पापसमाचार ! व्यर्थ ही स्त्रियों के विषय में तू क्या ऐसी शङ्का कर रहा है ।६२-६३।

तत्सर्वं हि मया पूर्वं चारद्वारावलोकितम् ।
अग्रे समुदिता काचिल्ललितानामधारिणी ।।६४
यथार्थनामवत्येषा पुष्पवत्पेशलाकृतिः ।
न सत्त्वं न च वीर्यं वा न संग्रामेषु वा गतिः ।।६५
सा चाविचारनिवहा किंतु मायापरायणा ।
तत्सत्त्वेनाविद्यमानं स्त्रीकदम्बकमात्मनः ।।६६
उत्पादितवती किं ते न चैवं तु विचेष्टते ।
अथ वा भवदुक्तेन न्यायेनास्तु महद्बलम् ।।६७
त्रैलोक्यल्लंघिमहिमा भण्डः केन विजीयते ।।६८
इदानीमपि मद्बाहुबलसंमर्दमूर्च्छिताः ।
श्वसितुं चापि पटवो न कदाचन नाकिनः ।।६९
केचित्पातालगर्भेषु केचिदम्बुधिवारिषु ।
केचिद्दिगंतकोणेषु केचित्कुञ्जेषु भूभृताम् ।।७०

यह सब तो मैंने पहिले ही दूतों के द्वारा देख लिया है। इसके आगे कोई ललिता नाम वाली स्त्री समुदित हुई है ।६४। यह यथार्थ नाम वाली है अर्थात् जो भी इसके नाम का अर्थ होता है वैसी ही है। पुष्प के समान तो इसका परम कोमल शरीर है। न तो उसमें कोई सत्व है और न वीर्य-पराक्रम ही। संग्रामों में ऐसी स्त्री की क्या गति हो सकती है ।६५। और वह तो अविचारों का समुदाय ही है किन्तु माया फैलाने में अवश्य ही वह परायणा है। उसके सत्त्व से ही उसका अपना स्त्रियों का समुदाय अविद्य-मान है ।६६। उनसे उसने क्या उत्पादन किया है और न इस प्रकार से

विशेष चेष्टा ही करती है। अथवा आपके द्वारा कथित न्याय से महान् भी उसका बल होवे तो रहे।६७। तीनों लोकों के द्वारा जिसकी महिमा का उल्लंघन नहीं होता है ऐसा यह भण्डासुर किसके द्वारा जीता जा सकता है अर्थात् इसको कोई भी पराजित नहीं कर सकता है।६८। इस समय में भी देवगण मेरे बाहुबल के संमर्दन से मूच्छित किसी समय में भी श्वास लेने में भी समर्थ नहीं हैं।६९। उनमें से कुछ तो पाताल के गर्भों में जा छिपे हैं और कुछ समुद्र के जलों में छिपे हुए हैं। कुछ दिशाओं के अन्त में कोणों में छिप रहे हैं तथा कुछ कुञ्जों में जाकर छिपाये हैं जो कि पर्वतों में है।७०।

विलीना भृशवित्रस्तास्त्यक्तदारसुतश्रियः ।
भ्रष्टाधिकाराः पशवश्छन्नवेषाश्चरंति ते ॥७१
एतादृशं न जानाति मम बाहुपराक्रमम् ।
अवला न चिरोत्पन्ना तेनैषा दर्पमश्नुते ॥७२
न जानन्ति स्त्रियो मूढा वृथा कल्पितसाहसाः ।
विनाशमनुधावन्ति कार्याकार्यविमोहिताः ॥७३
अथ वा तां पुरस्कृत्य यद्यागच्छन्ति नाकिनः ।
यथा महोरगाः सिद्धाः साध्या वा युद्धदुर्मदाः ॥७४
ब्रह्मा वा पद्मनाभो वा रुद्रो वापि सुराधिपः ।
अन्ये वा हारितां नाथास्तान्संपेष्टु महं पटुः ॥७५
अथ वा मम सेनासु सेनान्यो रणदुर्मदाः ।
पक्वकर्करिकापेषमवपेक्ष्यंति वैरिणः ॥७६
कुटिलाक्षः कुरंडश्च करंकः कालवाशितः ।
वज्रदंतो वज्रमुखो वज्रलोमा बलाहकः ॥७७

ये सभी अपने दारा-पुत्र और श्री का त्याग करके अत्यधिक डरे हुए विलीन हो रहे हैं जिनके सब अधिकार भ्रष्ट हो गये हैं। एक पशु के समान ही अपना वेष छिपाये सब इधर-उधर विचरण कर रहे हैं।७१। इस प्रकार के मेरा जो बाहुओं का पराक्रम है उसको वह नहीं जानती है कारण यही है कि एक तो वह स्त्री है दूसरे अभी-अभी उत्पन्न हुई है। इसी से वह इतना दर्प करती है।७२। स्त्रियाँ तो स्वभाव से ही मूढ़ हुआ करती हैं।

इनका तो जो भी कुछ साहस होता है वह वृथा ही कल्पित हुआ करता है। ये कार्य और अकार्य में मोहित ही हुआ करती हैं तथा ये विनाश की ओर अनुधावन किया करती हैं ।७३। अथवा ऐसा भी हो कि उस स्त्री को आगे करके ये देवगण यदि पीछे से आते हैं तो कोई भी क्यों न होवें—चाहे वे महोरग हों—साध्य हों या दुर्मद सिद्ध भी होवें। ब्रह्मा तथा पद्मनाभ और रुद्र भी क्यों न हों। या सुराधिप इन्द्र भी होवे और दिक्पाल होवें उन सबको पीस देने में मैं एक ही परम समर्थ हूँ। मुझे इन सबका कुछ भी भय नहीं है ।७५। अथवा मेरी सेनाओं में जो भी सेनानी हैं वे बड़े रण दुर्मद हैं। वे तो वैरियों को पक्वकर्करिका के समान पीस देने की अवेक्षा ही कर रहे हैं ।७६। उन सेनानियों के कुछ प्रथित नाम मैं बतलाता हूँ—कुटिलाक्ष—कुरण्ड—कटंक—कालवाशित—वज्रदन्द—वज्रमुख—वज्रलोमा—बलाहक हैं ।७७।

सूचीमुखः फलमुखो विकटो विकटाननः ।
करालाक्षः कर्कटको मदनो दीर्घजिह्वकः ।।७८
हुंवको हलमुल्लुंचः कर्कशः कल्किवाहनः ।
पुल्कसः पुण्ड्रकेतुश्च चण्डबाहुश्च कुक्कुरः ।।७६
जंबुकाक्षो जृंभणश्च तीक्ष्णश्रृंगस्त्रिकंटक ।
चतुर्गुप्तश्चतुर्बाहुश्चकाराक्षश्चतुः शिराः ।।८०
वज्रघोषश्चोर्ध्वकेशो महामायो महाहनुः ।
मखशत्रुर्मखारस्कन्दी सिंहघोषः शिरालकः ।।८१
अंधकः सिंधुनेत्रश्च कूपकः कूपलोचनः ।
गुहाक्षो गंडगल्लश्च चण्डधर्मो यमांतकः ।।८२
लड्डनः पट्टसेनश्च पुरजित्पूर्वमारकः ।
स्वर्गशत्रुः स्वर्गबलो दुर्गाख्यः स्वर्गकण्टकः ।।८३
अतिमायो बृहन्माय उपमाय उलूकजित् ।
पुरुषेणो विषेणश्च कुन्तिषेणः परूषकः ।।८४

सूचीमुख—फलमुख—विकट—विकटानन—करालाक्ष—कर्कटक-मदन—दीर्घजिह्वक—हुम्बक—हलमुल्लुंच—कर्कश—कल्कि—वाहन—पुल्कश—

पुण्ड्रकेतु—चण्डबाहु—कुक्कुर—जम्बुकाक्ष—जृम्भण—तीक्ष्णभृङ्ग—त्रिक-ण्टक—चतुर्गुप्त—चतुर्बाहु—चकाराक्ष-चतुश्शिरा—वज्रघोष—ऊर्ध्वकेश-महामाया—महाहन—मखशत्रु—मरखास्कन्दी—सिंहघोष—शिरालक—अन्धक—सिन्धु नेत्र—कूपक—कपलोचन—गुहाक्ष—गणुगल्ल-चण्डधर्म—यमान्तक—लड्डुन—पट्टसेन—पुरजित्—पूर्वट्टारक—स्वर्गशत्रु—स्वर्गबल-दुर्गारक्ष—स्वर्गकण्टक—अतिमाय—बृहन्माय—उपमाय—उलूकजित्-पुरु-षेण—विषेण—कुन्तिषेण—परूषक ।७८-८४।

भलकश्च कशूरश्च मंगलोद्रघणस्तथा ।
कोल्लाटः कुजिलाश्वश्च दासेरो बभ्रुवाहनः ।।८५

हृष्टहासो हृष्टकेतुः परिक्षेप्तापकंचुकः ।
महामहो महादंष्ट्रो दुर्गतिः स्वर्गमेजयः ।।८६

षट्केतुः षड्वसुश्चैव षड्दन्त षट्प्रियस्तथा ।
दुःशठो दुर्विनीतश्च छिन्नकर्णश्च मूषकः ।।८७

अट्टहासी महाशी च महाशीर्षो मदोत्कटः ।
कुम्भोत्कचः कुम्भनासः कुम्भग्रीवो घटोदरः ।।८८

अश्वमेढ्रो महांडश्च कुम्भांडः पूतिनासिकः ।
पूतिदन्तः पूतिचक्षुः पूत्यास्यः पूतिमेहनः ।।८९

इत्येवमादयः शूरा हिरण्यकशिपोः समाः ।
हिरण्याक्षसमाश्चैव मम पुत्रा महाबलाः ।।९०

एकैकस्य सुतास्तेषु जाताः शूराः परःशतम् ।
सेनान्यो मे मदोद्वृत्ता मम पुत्रैरनुद्रुताः ।।९१

भलक—कशूर—मङ्गल—द्रघण—कोल्लाट—कुजिलाश्व—दासेर-बभ्रुवाहन—हृष्टहास—हृष्टकेतु—परिक्षेप्ता—अपकञ्चुक—महामह—महा-दंष्ट्र—दुर्गति—स्वर्गमेजय—षट्केतु—षड्वसु—षड्दन्त—षट्प्रिय-दुःशट-दुर्विनीत—छिन्न कर्ण—मूषक—अट्टहासी—महाशी—महाशीर्ष-मदोत्कट-कुम्भोत्कच-कुम्भनास—कुम्भग्रीव-घटोदर-अश्वमेढ्रमहाण्ड-कुम्माण्ड-पूति-नासिक—पूतिदन्त—पूति चक्षु-पूत्यास्य—पूतिमेहन—इत्यादिक इस प्रकार से ये शूर हिरण्यकशिपु के ही समान हैं। और मेरे महाबल वाले पुत्र

हिरण्याक्ष के तुल्य हैं ।८५-९०। उनके एक-एक के सैकड़ों से भी अधिक पुत्र हैं बहुत ही शूर उत्पन्न हुए हैं। मेरे सेनानी मदोद्धत्त हैं और मेरे पुत्रों के पीछे दौड़ लगाने वाले हैं ।९१।

नाशयिष्यन्ति समरे प्रोद्धतानमराधमान् ।
ये केचित्कुपिता युद्धे सहस्राक्षौहिणी वराः ।
भस्मशेषा भवेयुस्ते हा हन्त किमुताबला ॥९२
मायाविलासाः सर्वेऽपि तस्याः समरसीमनि ।
महामायाविनोदाश्च कुप्युस्ते भस्मसाद्बलम् ॥९३
तद्वृथा शंकया खिन्नं मा ते भवतु मानसम् ।
इत्युक्त्वा भंडदैत्येन्द्रः समुत्थाय नृपासनात् ॥९४
उवाच निजसेनान्यं कुटिलाक्षं महाबलम् ।
उत्तिष्ठ रे बलं सर्वं संनाह्य समंततः ॥९५
शून्यकस्य समंताच्च द्वारेषु बलमर्पय ।
दुर्गाणि संगृहाण त्वं कुरु क्षेपणिकाशतम् ॥९६
दुष्टाभिचाराः कर्तव्या मन्त्रिभिश्च पुरोहितैः ।
सज्जीकुरु त्वं शस्त्राणि युद्धमेतदुपस्थितम् ॥९७
सेनापतिषु ये केचिदग्रे प्रस्थापयाधुना ।
अनेकबलसंघातसहितं घोरदर्शनम् ॥९८

जब भी संग्राम होगा तब उसमें ये लोग प्रोद्धत और अधम अमरों का नाश कर देंगे। जो कोई भी युद्ध में कुपित होंगे परम श्रेष्ठ सहस्रों अक्षौहिणी सेनाएं हैं वे सब भस्मीभूत ही हो जायेंगे। हा ! हन्त ! विचारी स्त्रियाँ क्या हैं अर्थात् युद्ध में ये क्या ठहर सकती हैं ।९२। उसके समर की सीमा में सभी माया के विलास वाले हैं तथा महामाया के विनोद से समन्वित हैं। जब वे मेरे शूर कोप करेंगे तब सम्पूर्ण बल भस्मसात् हो जायगा ।९३। सो व्यर्थ ही शंका से तुम्हारा मन खिन्न नहीं होवे। इतना यह कहकर भण्डदैत्येन्द्र नृप के आसन से उठकर खड़ा हो गया था ।९४। और महाबली कुटिलाक्ष सेनानी से बोला था। रे उठ जाओ और अपनी समस्त सेना को सब ओर से सज्जित करो ।९५। और शून्य के सब ओर द्वारों पर सेना लगा

दो। तू दुर्गों को संग्रहण करो जहाँ पर सैकड़ों ही क्षेपणिकाएं होवें।६६। मन्त्रियों और पुरोहितों के द्वारा दुष्ट अभिचार कर्मानुष्ठान करना चाहिए। तुम शस्त्रों को सज्जित करो क्योंकि यह युद्ध अब उपस्थित हो गया है।६७। सेनापतियों में जो कोई भी हैं उनको इसी समय हमारे सामने करो। जो अनेक बल के संघात के सहित घोर दर्शन वाले हैं।६८।

तेन संग्रामसमये सन्निपत्य विनिर्जितम् ।
केशेष्वाकृष्य तां मूढां देवसत्त्वेन दर्पिताम् ॥६६
इत्याभाष्य चमूनाथे सहस्रत्रितयाधिपम् ।
कुटिलाक्षं महासत्त्वं स्वयं चान्तःपुरं ययौ ॥१००
अथापतन्त्या: श्रीदेव्या यात्रानिःसाणनिःस्वनाः ।
अश्रूयंत च दैत्येन्द्रैरतिकर्णज्वरावहाः ॥१०१

उसने संग्राम के समय में आगे समापतित होकर विजय प्राप्त की है। देवों के सत्त्व से बहुत ही दर्प वाली उसको महामूढ़ा को चोटी खींचकर खींच लाओ।६६। तीन सहस्र के अधिप महान् सत्त्व वाले चमू के नाथ कुटिलाक्ष से यह कहकर वह भण्ड अन्तःपुर में चला गया था।१००। इसके अनन्तर आक्रमण करके आती हुई श्री देवी की यात्रा के निःसाथ महान् घोर ध्वनियाँ दैत्येन्द्रों के द्वारा सुनायी दी थीं जो कानों को बहुत ही दुःखद हो रही थीं।१०१।

—×—

दुर्मद कुरंड वध वर्णन

अथ श्रीललितासेना निस्साणाप्रतिनिस्वनः ।
उच्चचालासुरेन्द्राणां योद्धतो दुन्दुभिध्वनिः ॥१
तेन मर्दितदिक्केन क्षुभ्यद्गर्भपयोधिना ।
बधिरीकृतलोकेन चकम्पे जगतां त्रयी ॥२
मर्दयन्ककुभां वृन्दं भिन्दन्भूधरकन्दराः ।
पुप्रोथे गगनाभोगे दैत्यनिःसाणनिस्वना ॥३
महानरहरिक्रुद्धहुङ्कारोद्धतिमद्ध्वनिः ।
विरसं विरराासोच्चैर्विबुधद्वेषिझल्लरी ॥४

ततः किलकिलारावमुखरा दैत्यकोटयः ।
समनह्यन्त संक्रुद्धाः प्रति तां परमेश्वरीम् ॥५

कश्चिद्रत्नविचित्रेण वर्मणाच्छन्नविग्रहः ।
चकाशे जंगम इव प्रोत्तुङ्गो रोहणाचलः ॥६

कालरात्रिमिवोदग्रां शस्त्रकारेण गोपिताम् ।
अणुनीत भटः कश्चिदतिधौतां कृपाणिकाम् ॥७

इसके अनन्तर श्री ललिता देवी की सेना के निस्सरण की प्रतिध्वनि ने असुरेन्द्रों को उच्चालित कर दिया था जो कि दुन्दुभियों की अतीव उद्धत ध्वनि उस समय में हो रही थी ।१। दिशाओं के मर्दित करने वाली उससे पयोधियों का गर्भ भी क्षुब्ध हो गया था और समस्त लोक उस महान् भीषण एवं घोर ध्वनि से बहरा हो गया था। उस समय में तीनों भुवन काँप उठे थे ।२। इधर दैत्यों के निःसाण का घोष भी दिशाओं के समूह को मर्दित कर रहा था तथा पर्वतों की कन्दराओं का भेदन कर रहा था एवं नभो मण्डल में ऊपर उठ गया था ।३। महान् नरसिंह के क्रोध से निकलने वाली हुँकार के समान जो उद्धत ध्वनि थी वह देवों के शत्रुओं की झल्लरी बहुत ही अधिक विरसता उत्पन्न कर रही थी ।४। इसके उपरान्त किल-किल की ध्वनि से शब्दायमान दैत्यों की श्रेणियाँ हो रही थी। वे सभी परमेश्वरी उस देवी के प्रति बहुत ही क्रुद्ध होकर सन्नद्ध हुए थे ।५। वह बहुत ही ऊँचा रोहणाचल रत्नों से विचित्र कर्म (कवच) से ढके हुए शरीर वाला एक जङ्गम के ही समान शोभित हो रहा था ।६। कोई भट अपनी अतिधौत कृपाण को जो शस्त्रकार से गोपित थी कालरात्रि के ही समान उदग्र को हिला रहा था ।७।

उल्लासयन्कराग्रेण कुन्तपल्लवमेकतः ।
आरूढतुरगो वीथ्यां चारिभेदं चकार ह ॥८

केचिदारुरुहुर्योधा मातंगांस्तुंगवर्ष्मणः ।
उत्पातवातसंपातप्रेरितानिव पर्वतान् ॥९

पट्टिशैर्मुद्गरैश्चैव भिदुरैर्भिडिपालकैः ।
द्रुहणैश्च भुशुण्डीभिः कुठारैर्मुसलैरपि ॥१०

गदाभिश्च शतघ्नीभिस्त्रिशिखैर्विशिखैरपि ।
अर्धचक्रैर्महाचक्रैर्वक्रांगैरुरगाननैः ॥११
फणिशीर्षप्रभेदैश्च धनुर्भिः शार्ङ्गधन्विभिः ।
दण्डैः क्षेपणिकाशस्त्रैर्वज्रबाणैर्दृषद्वरैः ॥१२
यवमध्यैर्मुष्टिमध्यैर्वललैः खंडलैरपि ।
कटारैः कोणमध्यैश्च फणिदन्तैः परः शतैः ॥१३
पाशायुधैः पाशतुण्डैः काकतुण्डैः सहस्रशः ।
एवमादिभिरत्युग्रैरायुधैर्जीवहारिभिः ॥१४

एक ओर अपने कर के अग्रभाग से भाला हाथ में लिये हुए अश्व पर समारूढ़ होकर बीथी में चरण करने वालों को तितर-बितर कर रहा था ।८। कुछ योधागण बहुत ही ऊँचे वपु वाले हाथियों पर समारूढ़ थे जो कि उत्पात वाली वायु के सम्पात से प्रेरित पर्वतों के ही तुल्य दिखाई दे रहे थे ।९। उस समय में बड़े-बड़े आयुधों के द्वारा प्रहार किये जा रहे थे—उनमें कतिपय आयुधों के नाम ये हैं—पट्टिश–मुद्गरभिदुर–भिण्डी पालक–द्रुहिण–भुशुण्डी—कुठार—मुसल—गदा—शतघ्नी—त्रिशिख—विशिख—अर्धचक्र–महाचक्र—वक्राङ्ग—उरगानन—फणि—शीर्ष—धनुष–दण्ड–क्षेपणिकास्त्र–वज्रबाण—दृषद्वर—यवमध्य—मुष्टिमध्य—वलल—खण्डल—कटार–कोण-मध्य—सैकड़ों से भी अधिक फणिदन्त—पाशायुध—पाशतुण्ड—सहस्रों काकतुण्ड—इस प्रकार से जीवों के विनाशक आयुधों का प्रयोग किया जा रहा था ।१०-१४।

परिकल्पितहस्ताग्रा वर्मिता दैत्यकोटयः ।
अश्वारोहा गजारोहा गर्दभारोहिणः परे ॥१५
उष्ट्रारोहा वृकारोहा शुनकारोहिणः परे ।
काकादिरोहिणो गृध्रारोहाः कंकादिरोहिणः ॥१६
व्याघ्रादिरोहिणश्चान्ये परे सिंहादिरोहिणः ।
शरभारोहिणश्चान्ये भेरुण्डारोहिणः परे ॥१७
सूकरारोहिणो व्यालारूढाः प्रेतादिरोहिणः ।
एवं नानाविधैर्वाहवाहिनो ललितां प्रति ॥१८

प्रचेलुः प्रबलक्रोधसंमूर्च्छितनिजाशयाः ।
कुटिलं सैन्यभर्त्तारं दुर्मदं नाम दानवम् ।
दशाक्षौहिणिकायुक्तं प्राहिणोल्ललितां प्रति ॥१६
दिधक्षुभिरिवाशेषं विश्वं सह बलोत्कटैः ।
भटैर्युक्तः स सेनानी ललिताभिमुखे ययौ ॥२०
भिदन्पटहसंरावैश्चतुर्दश जगन्ति सः ।
अट्टहासान्वितन्वानो दुर्मदस्तन्मुखो ययौ ॥२१

परिकल्पिता हस्तों के अग्रवाली वर्भित दैत्यों की कोटियाँ हैं । कुछ अश्वों पर सवार थे—कुछ हाथियों पर आरूढ़ थे—और कुछ गर्दभों पर बैठे हुए थे ।१५। कुछ ऊँटों पर सवार—कुछ वृकों पर समारूढ़ तथा कुछ श्वानों पर सवार थे । काक आदिकों पर भी सवार थे तथा गृध्रों पर और कंकों पर सवार कुछ हो रहे थे ।१६। कुछ व्याघ्र आदि पर सवार थे तथा कुछ सिंह आदि पर आरूढ़ थे । अन्य शरभों पर सवार थे सो कुछ भेरुण्डों पर समारूढ़ हो रहे थे ।१७। सूकरों पर कुछ दैत्य सवारी किये हुए थे एवं व्यालों पर और प्रेतों पर कुछ सवार थे । इस रीति से अनेक प्रकार के वाहनों पर बैठकर दैत्यगण ललिता देवी के प्रति आक्रमण कर रहे थे ।१८। प्रबल क्रोध से उनका अपना आशय भी मूर्च्छित हो रहा था । परम कुटिल दुर्मद नामक सेनापति को दश अक्षौहिणी सेना से संयुत करके ललितादेवी पर आक्रमण करने के लिए भेजा था ।१६। अपने अत्युत्कट बल के द्वारा सम्पूर्ण विश्व को दग्ध करने की इच्छा वाले की तरह ही भटों से युक्त वह सेनानी ललिता देवी के सामने गया था ।२०। वह अपने पटहों के महाघोषों से चौदह भुवनों का भेदन करता हुआ गया था । वह दुर्मद अट्टहास से समन्वित होकर उस देवी के समक्ष में प्राप्त हुआ था ।२१।

अथ भंडासुराज्ञप्तः कुटिलाक्षो महाबलः ।
शून्यकस्य पुरद्वारे प्राचीने समकल्पयत् ।
रक्षणार्थं दशाक्षौहिण्युपेतं तालजंघकम् ॥२२
अर्वाचीने पुरद्वारे दशाक्षौहिणिकायुतम् ।
नाम्ना तालभुजं दैत्यं रक्षणार्थमकल्पयत् ॥२३

प्रतीचीने पुरद्वारे दशाक्षौहिणिकायुतम् ।
तालग्रीवं नाम दैत्यं रक्षार्थं समकल्पयत् ॥२४
उत्तरे तु पुरद्वारे तालकेतुं महाबलम् ।
आदिदेश स रक्षार्थं दशाक्षौहिणिकायुतम् ॥२५
पुरस्य सालवलये कपिशीर्षकवेश्मसु ।
मण्डलाकारतो वस्तुं दशाक्षौहिणिमादिशत् ॥२६
एवं पञ्चाशता कृत्वाक्षौहिण्या पुररक्षणम् ।
शून्यकस्य पुरस्यैव तद्वृत्तं स्वामिनेऽवदत् ॥२७
कुटिलाक्ष उवाच—
देव त्वदाज्ञया दत्तं सैन्यं नगररक्षणे ।
दुर्मदः प्रेषितः पूर्वं दुष्टां तां ललितां प्रति ॥२८

इसके पश्चात् भंडासुर की आज्ञा पाकर महान बलवान कुटिलाक्ष ने शून्यक के प्राचीन पुरद्वार पर रक्षा करने के लिए दश अक्षौहिणी सेना से समन्वित तालजंघ को कल्पित किया था ।२२। जो अर्वाचीन नगर का द्वार था उस पर दश अक्षौहिणी सेना से संयुत तालभुज नामक दैत्य को रक्षण के लिए नियुक्त किया था ।२३। पश्चिमके पुर द्वार पर भी दश अक्षौहिक्षियों से युक्त तालग्रीव नाम वाले दैत्य को कल्पित किया था ।२४। उत्तर में जो पुर द्वार था उस पर महान बली तालकेतु को रक्षा के लिए उसने आज्ञा प्रदान की थी वह भी दश अक्षौहिणी सेना से समन्वित था ।२५। नगर के साल वलय में कपि शीर्षक गृहों में मण्डल के आकार से वास करने के लिये दश अक्षौहिणी सेना को आदेश दिया था ।२६। इस रीति से पाँच सौ अक्षौहिणी सेना को पुर की रक्षा के लिये नियुक्त किया था । उस नगर शून्यक को सुरक्षा के पूरे प्रबन्ध का समाचार अपने स्वामी से निवेदन कर दिया था ।२७। कुटिलाक्ष ने कहा—हे स्वामिन् ! आपकी आज्ञा से नगर की सुरक्षा के लिए सेना नियुक्त करदी है और उस ललिता पर धावा करने के लिए जो कि बहुत ही दुष्टा स्त्री है पहिले ही दुर्मद को भेज दिया गया है ।२८।

अस्मत्किंकरमात्रेण सुनिराशा हि साबला ।
तथापि राज्ञामाचारः कर्त्तव्यं पुररक्षणम् ॥२९

इत्युक्त्वा भंडदैत्येंद्रं कुटिलाक्षोऽतिगर्वितः ।
स्वसैन्यं सज्जयामास सेनापतिभिरन्वितः ॥३०
दूतस्तु प्रेषितः पूर्वं कुटिलाक्षेण दानवः ।
स ध्वनन्ध्वजिनीयुक्तो ललितासैन्यमावृणोत् ॥३१
कृत्वा किलकिलारावं भटास्तत्र सहस्रशः ।
दोधूयमानैरसिभिर्निपेतुः शक्तिसैनिकैः ॥३२
ताश्च शक्तय उद्दंडाः स्फुरिताट्टहासस्वनाः ।
देदीप्यमानशस्त्राभाः समयुध्यंत दानवैः ॥३३
शक्तीनां दानवानां च सशोभितजगत्त्रयः ।
समवर्तत संग्रामो धूलिग्रामतताम्बरः ॥३४
रथवंशेषु मूर्च्छंत्यः करिकंठैः प्रपञ्चिताः ।
अश्वनिःश्वासविक्षिप्ता धूलयः खं प्रपेदिरे ॥३५

हमारे किङ्करों से ही वह अबला तो बहुत ही निराश होगी फिर भी आपकी आज्ञा थी और राजाओं का यह आचार भी है कि अपने नगर की सुरक्षा करनी चाहिए ।२९। भंडासुर से यह कहकर कुटिलाक्ष बहुत गर्व से युक्त हुआ था और सेनापतियों के साथ उसने अपनी सेना को सुसज्जित किया था ।३०। इसके अनन्तर कुटिलाक्ष ने एक दानव दूत को भेजा था। वह ध्वजिनी से संयुत ध्वनि करता हुआ आया था और उसने ललिता की सेना को आवृत कर लिया था। उसने किल-किल की ध्वनि की थी। वहाँ पर सहस्रों की संख्या में योधा थे और कम्पायमान असियों के द्वारा शक्ति के सैनिकों ने निपात किया था ।३१-३२। वे शक्तियाँ बहुत ही उद्दण्ड थी तथा स्फुरित अट्टहास के घोष वाली थीं। वे देदीप्यमान अस्त्रों की आभा से समन्वित थीं और उन्होंने दानवों के साथ भली भाँति से युद्ध किया था ।३३। उन शक्तियों का और दानवों का ऐसा अद्भुत संग्राम हुआ था जिससे ये तीनों लोक संशोभित थे तथा उस संग्राम में इतनी धूलि उड़ी थी वह नभोमण्डल तक छा गयी थी ।३४। रथों के बाँसों में छाई हुई उठकर गजों के कण्ठों तक फैल गई थी तथा अश्वों के निश्वासों से विक्षिप्त होकर वे धूलियाँ ऊपर आकाश में पहुँच गयी थीं ।३५।

तमापतन्तमालोक्य दशाक्षौहिणिकावृतम् ।
संपत्सरस्वती क्रोधादभिदुद्राव संगरे ॥३६
सम्पत्करीसमानाभिः शक्तिभिः समधिष्ठिताः ।
अश्वाश्च दंतिनो मत्ता व्यमर्दन्दानवीं चमूम् ॥३७
अन्योन्यतुमुले युद्धे जाते किलकिलारवे ।
धूलीषु धूयमानासु ताड्यमानासु भेरिषु ॥३८
इतस्ततः प्रववृधे रक्तसिन्धुर्महीयसी ।
शक्तिभिः पात्यमानानां दानवानां सहस्रशः ॥३८
ध्वजानि लुठितान्यासन्विलूनानि शिलीमुखैः ।
विस्रस्ततत्तच्चिह्नानि समं छत्रकदम्बकैः ॥४०
रक्तारुणायां युद्धोर्व्यां पतितैश्छत्रमण्डलैः ।
आलंभि तुलना संध्यारक्ताभ्रहिमरोचिषा ॥४१
ज्वालाकपालः कल्पाग्निरिव चारुपयोनिधौ ।
दैत्यसैन्यानि निवहाः शक्तीनां पर्यवारयन् ॥४२

उस दानव को अपने ऊपर चढ़कर आते हुए को देखकर जो कि दश अक्षौहिणी सेना से समावृत था सम्पत्सरस्वती देवी क्रोध से उस संग्राम में अभिद्रुत हो गयी थीं ।३६। सम्पत्करी के समान ही शक्तियों से वह समधिष्ठित थी । उसके अश्व और मदमत्त गज थे । उसने दानवों की उस सेना का विमर्दन कर दिया था ।३७। परस्पर में यह बहुत ही तुमुल युद्ध हुआ था जिसमें सभी ओर किल-किलाहट कीध्वनि होरही थी । धूलियाँ धूममान हो रही थीं और भेरियाँ बजायी जा रही थीं ।३८। इधर-उधर बहुत बड़ी रुधिर की नदी बह निकली थी । शक्तियों के द्वारा जो सहस्रों दानव मार-काट कर गिरा दिये थे उनके ही रुधिर की नदी बह चली थी ।३६। बाणों के द्वारा काटी गयी ध्वजाएँ पड़ी हुई थी जिनमें उन-उनके छिन्न विस्रस्त हो गये थे तथा उनके ही साथ उन दानवों के छत्रों का समुदाय भी गिरा हुआ था ।४०। युद्ध की भूमि रुधिर से लाल हो गयी थी उसी में दानवों के छत्र पड़े हुए थे । उस समय में सन्ध्या कालीन चन्द्रमा की लालिमा से

तुलना हो रही थी ।४१। ज्वालाओं का समुदाय वाला कल्पान्त की अग्नि के ही समान चारु पयोनिधि में दैत्यों की सेनाओं को शक्तियों के समूह ने परिवारित कर दिया था ।४२।

शक्तिच्छन्दोज्ज्वलच्छस्त्रधारानिष्कृत्तकन्धराः ।
दानवान रणतले निपेतुर्मुण्डराशयः ।।४३
दुष्टोष्ठैर्भ्रुकुटीक्रूरैः क्रोधसंरक्तलोचनैः ।
मुण्डैरखण्डमभवत्संग्रामधरणीतलम् ।।४४
एवं प्रवृत्ते समये जगच्चक्रभयंकरे ।
शक्तयो भृशसंक्रुद्धा दैत्यसेनाममर्दयन् ।।४५
इतस्ततः शक्तिशस्त्रैस्ताडिता मूर्च्छिता इति ।
विनेशुर्दानवास्तत्र संपद्देवीबलाहताः ।।४६
अथ भग्नं समाश्वास्य निजं बलमरिन्दमः ।
उष्ट्रमारुह्य सहसा दुर्मदोऽभ्यद्रवच्चमूम् ।।४७
दीर्घग्रीवः समुन्नद्धः पृष्ठे निष्ठुरतोदनः ।
अधिष्ठितो दुर्मदेन वाहनोष्ट्रश्चचाल ह ।।४८
तमुष्ट्रवाहनं दुष्टमन्वीयुः क्रुद्धचेतसः ।
दानावनश्वसत्सर्वान्भीताञ्छक्तियुयुत्सया ।।४६

शक्तियों के समुदाय के जाज्वल्यमान शस्त्रों की धारों से कटे हुए दानवों की कन्धराएँ तथा मुण्डों की राशियाँ उस रणस्थल में भूमि पर पड़ी हुई थीं ।४३। उन मुन्डों में दाँतों से अपने होठों को चबाते हुए तथा भृकुटियाँ करते हुए और क्रोध से लाल नेत्र स्पष्ट दिखाई दे रहे थे और वे इतनी अधिक संख्या में थे कि समस्त धरणी तल एक समान हो गया था अर्थात् सर्वत्र नर मुन्ड ही मुन्ड दिखाई दे रहे थे ।४४। इस प्रकार से जब महान् भीषण एवं परम घोर युद्ध हो रहा था तो उस समय में जबकि सम्पूर्ण जगत् के लिए वह बहुत ही भयंकर था वे सब शक्तियाँ अत्यन्त क्रुद्ध हो गयी थीं और उन्होंने दैत्यों की सेनाओं का विमर्दन कर दिया था ।४५। सम्पद्देवी के सैनिकों से समाहत होकर वहाँ दानव इधर-उधर शक्तियों के

शस्त्रों से प्रताड़ित होकर मूर्च्छा को प्राप्त हो गये थे और अन्त में विनष्ट हो गये थे ।४६। इसके अनन्तर अरियों का दमन करने वाले दुर्मद ने भग्न हुए अपने सैनिकों को समाश्वासन दिया था और फिर एक ऊँट पर चढ़कर वह तुरन्त ही सेना के ऊपर आक्रमण करने लगा था ।४७। दीर्घग्रीव निष्ठुर-तोदन वाला समुन्नद्ध होकर पीछे दुर्मद के साथ अधिष्ठित था और उसका वाहन वह ऊँट वहाँ से चल दिया था ।४८। उस उष्ट्र के वाहन वाले दुष्ट के पीछे अन्य दानव भी बड़े ही क्रुद्ध होकर अनुगमन कर रहे थे और वे अन्य दानवों को समाश्वासन देते जा रहे थे जो कि शक्ति के साथ युद्ध करने में डरे हुए थे ।४६।

अवाकिरद्दिशो भल्लैरुल्लसत्फलशालिभिः ।
संपत्करीचमूचक्रं वनं वार्भिरिवांबुदः ।।५०
तेन दुःसहसत्त्वेन ताडिता बहुभिः शरैः ।
स्तंभितेवाभवत्सेना संपत्कर्याः क्षणं रणे ।।५१
अथ क्रोधारुणं चक्षुर्दधाना संपदम्बिका ।
रणकोलाहलगजमारूढायुध्यतामुना ।।५२
आलोलकंकणक्वाणरमणीयतरः करः ।
तस्याश्चाकृष्य कोदण्डमौर्वीमाकर्णमाहवे ।।५३
लघुहस्ततयापश्यन्नाकृष्टन्न च मोक्षणम् ।
ददृशे धनुषश्चक्रं केवलं शरधारणे ।।५४
आश्वर्काविरसंपर्कस्फुटप्रतिफलत्फलाः ।
शराः सम्पत्करीचापच्युताः समदहन्नरीन् ।।५५
दुर्मदस्याथ तस्याश्च समभूद्युद्धमुद्धतम् ।
अभूदन्योन्यसंघट्टाद्विस्फुलिंगशिलीमुखैः ।।५६

उल्लसित फलों वाले भालों से समस्त दिशाओं को अवकीर्ण कर दिया था और सम्पत्करी देवी की सेना का जो समूह था उसको इसी तरह से ढक दिया था जैसे मेघ जलों के द्वारा वन को आवृत कर दिया करता है। ।५०। उस दुःसह सत्व वाले के द्वारा बहुत से बाणों से ताड़ित हुई संपत्करी

देवी की सेना क्षण भर के लिए रणस्थल में स्तम्भित सी ही हो गयी थी। ।५१। इसके अनन्तर महान क्रोध से लाल नेत्रों को धारण करती हुई सम्प-दम्बिका रण कोलाहल नामक गज पर समारूढ़ होकर इस दानव के साथ युद्ध करने लगी थी ।५२। कुछ थोड़ा चंचल कङ्कण की क्वणन की ध्वनि से विशेष सुन्दर उसके करने उस युद्ध में धनुष की मौर्वी को कानों तक खींचा था ।५३। हाथ के हलकेपन से न तो मौर्वी को खींचते हुए देखा था और न उसके छोड़ने को ही देखा था केवल शर के धारण करते ही देखा गया था जो धनुष पर लगाया था ।५४। शीघ्र ही अर्कम्बिर के सम्पर्क से प्रतिफलित फल वाले शरसंपत्करी के चाप से गिरे हुए शत्रुओं का सन्दाह कर देते थे। ।५५। उस देवी का और दुर्मद का अत्यन्त ही अद्भुत युद्ध हुआ था जो कि परस्पर में एक दूसरे के संघट्ट से विस्फुलिंग निकलने वाले बाणों के द्वारा किया गया था ।५६।

प्रथमं प्रसृतैर्बाणैः सम्पद्देवीसुरद्विषोः ।
अन्धकारः समभवत्तिरस्कुर्वन्नहस्करम् ।।५७
तदन्तरे च बाणानामतिसंघट्टयोनयः ।
विस्फुलिंगा विदधिरे दधिरे भ्रमचातुरीम् ।।५८
तयाधिरूढः संश्रोण्या रणकोलाहलः करी ।
पराक्रमं बहुविधं दर्शयामास संगरे ।।५९
करेण कतिचिद्दैत्यान्पादघातेन कांश्चन ।
उदग्रदन्तमुसलघातैरन्यांश्च दानवान् ।।६०
बालकांडहतैरन्यान्फेत्कारैरपरान्रिपून् ।
गात्रव्यामर्द्दनैरन्यान्नखघातैस्तथापरान् ।।६१
पृथुमानाभिघातेन कांश्चिद्दैत्यान्व्यमर्दयत् ।
चतुरं चरितं चक्रे संपद्देवीमतंगजः ।।६२
सुदुर्मदः क्रुधा रक्तो दृढेनैकेन पत्रिणा ।
संपत्करीमुकुटगं मणिमेकमपाहरत् ।।६३

सम्पद्देवी और उस सुरों के शत्रु के प्रसृत बाणों से सर्व प्रथम ऐसा अन्धकार हो गया था जिसने सूर्य के तेज के आलोक को भी तिरस्कृत कर

दिया था ।५७। इसके पश्चात् बाणों के अत्यन्त संघट्ट से समुत्पन्न विस्फुलिंग हो गये थे फिर वे विस्फुलिंग इधर-उधर भ्रमण करने की चातुरी वाले हो गये थे ।५८। सुन्दर श्रोणी वाली उस देवी के द्वारा अधिरूढ़ गज जो रण कोलाहल नाम वाला था उसने उस संग्राम में बहुत प्रकार का पराक्रम प्रदर्शित किया था ।५९। उस गज ने भी कुछ असुरों को तो अपनी सूँड़ से और कुछ दैत्यों को अपने पदों की चोट से तथा कुछ को अपने तीक्ष्ण दाँतों के मुसलों की चोटों से मार डाला था ।६०। बालकांड से अन्यों को चोट दी थी तथा अन्यों को फेत्कारों के द्वारा शत्रु को निहत किया था। कुछ को अपने शरीर के द्वारा मर्दित किया था एवं अन्य शत्रुओं को अपने नखों के प्रहारों से मार डाला था ।६१। कुछ दैत्यों को उस गज ने पृथुमानाभिघात से विमर्दित कर दिया था। इस तरह से उस सम्पद्देवी के हाथी ने बहुत ही कौशल से पूर्ण अपना चरित दिखाया था ।६२। सुदुर्मद ने परमाधिक क्रोध से लाल होते हुए एक सुदृढ़ बाण से उस सम्पत्करी देवी के मुकट में स्थित एक मणि को गिरा दिया था ।६३।

अथ क्रोधारुणदृशा तया मुक्तैः शिलीमुखैः ।
विक्षतो वक्षसि क्षिप्रं दुर्मदो जीवितं जहौ ।।६४
ततः किलकिलारावं कृत्वा शक्तिचमूवरैः ।
तत्सैनिकवरास्त्वन्ये निहता दानवोत्तमाः ।।६५
हतावशिष्टा दैत्यास्तु शक्तिबाणैः खिलीकृताः ।
पलायिता रणक्षोण्याः शून्यकं पुरमाश्रयन् ।।६६
तद्वृत्तांतमथाकर्ण्य संक्रुद्धो दानवेश्वरः ।।६७
प्रचंडेन प्रभावेण दीप्यमान इवात्मनि ।
स पस्पर्श नियुद्धाय खड्गमुग्रविलोचनः ।
कुटिलाक्षं निकटगं बभाषे पृतनापतिम् ।।६८
कथं सा दुष्टवनिता दुर्मदं बलशालिनम् ।
निपातितवती युद्धे कष्ट एव विधेः क्रमः ।।६९
न सुरेषु न यक्षेषु नोरगेंद्रेषु यद्बलम् ।
अभूत्प्रतिहतं सोऽपि दुर्मदोऽबलया हतः ।।७०

इसके अनन्तर क्रोध से लाल नेत्रों वाली उस देवी के द्वारा छोड़े हुए बाणों से शीघ्र ही वक्षः स्थल में विक्षत हुआ था और उस दुर्मद ने अपने प्राणों को त्याग दिया था।६४। इसके अनन्तर शक्ति की श्रेष्ठ सेनाओं ने किल-किल की ध्वनि की थी और उन्होंने उस दैत्य के जो परम श्रेष्ठ अन्य सैनिक दानव थे उन सबको मार गिराया था।६५। मरने से बचे हुए जो भी दैत्य थे वे सब शक्ति के बाणों से चुटैल होकर उस रण की भूमि से भाग गये थे और शून्यक में जाकर छिप गये थे।६६। उनके द्वारा शक्तिद्वारा किये हुए युद्ध के वृत्तान्त का श्रवण करके वह दानवेश्वर बहुत ही क्रुद्ध होगया था।६७। उदग्र नेत्रों वाला वह अपने प्रचण्ड प्रभाव से आत्मा से दीप्यमान जैसा हो गया था और उसने युद्ध करने के लिए अपने खड्ग को उठाया था। और उसने समीप में ही स्थित सेनापति कुटिलाक्ष से कहा था।६८। किस प्रकार से उस महादुष्टा नारी ने बड़े भारी बल वाले दुर्मद को युद्ध में मार गिराया है। यह विधाता का क्रम बड़ा कष्ट दायक है।६९। ऐसा महान बल तो न देवों में है और न यक्षों में है और उरगेन्द्रों में भी ऐसा बल विद्यमान नहीं है वह तो ऐसा बलवान था कि उसका मारने वाला कोई भी नहीं था, वह दुर्मद भी उस अबला के द्वारा मारा गया है।७०।

तां दुष्टवनितां जेतुमाकृष्टुं च कचं हठात् ।
सेनापति कुरंडाख्यं प्रेषयाहवदुर्मदम् ॥७१
इति संप्रेषितस्तेन कुटिलाक्षो महाबलम् ।
कुरंडं चंडदोर्दंडमाजुहाव प्रभोः पुरः ॥७२
स कुरंडः समागत्य प्रणामं स्वामिनेऽदिशत् ।
उवाच कुटिलाक्षस्तं गच्छ सज्जय सैनिकान् ॥७३
मायायां चतुरोऽसि त्वं चित्रयुद्धविशारद ।
कूटयुद्धे च निपुणस्तां स्त्रियं परिमर्दय ॥७४
इति स्वामिपुरस्तेन कुटिलाक्षेण देशितः ।
निर्जगाम पुरात्तूर्णं कुरंडचण्डविक्रमः ॥७५
विंशत्यक्षौहिणीभिश्च समंतात्परिवारितः ।
मर्दयन्स महीगोलं हस्तिवाजिपदातिभिः ।
दुर्मदस्याग्रजश्चंडः कुरंडः समरं ययौ ॥७६

धूलीभिस्तुमुलीकुर्वन्दिगंतं धीरमानसः ।
शोकरोषग्रहग्रस्तो जवनाश्वगतो ययौ ।।७७

अब उस परम दुष्टा नारी को जीतने के लिए और उसकी चोटी बल पूर्वक खींचकर लाने के लिए युद्ध के परम दुर्मद कुटिलाक्ष्य सेनापति को शीघ्र मेरे पास भेज दो ।७१। इस प्रकार से उसने कुटिलाक्ष को भेजा था। महान बलवान प्रचण्ड बाहुओं वाले कुरण्ड को स्वामी के सामने बुलाया था ।७२। उस कुरण्ड ने वहाँ आकर स्वामी के लिए प्रणाम किया था और कुटिलाक्ष ने उससे कहा था कि जाओ और सैनिकों को तैयार करो ।७३। आप तो माया के फैला देने में बहुत चतुर हैं और विचित्र प्रकार के युद्ध करने में महान पंडित हैं और आप कूट युद्ध करने में भी बहुत निपुण हैं। अब जाकर उस नारी का परिमर्दन करो ।७४। इस तरह से स्वामी के हीआगे उस कुटिलाक्ष के द्वारा उसको आदेश दिया गया था। फिर वह चण्ड विक्रम वाला कुरण्ड शीघ्र ही नगर से निकलकर चला गया था ।७५। वह बीस अक्षौहिणी सेना से परिवृत था और अपने हाथी-अश्व तथा पैदल सैनिकों से इस भूमण्डल को वह मर्दित कर रहा था। दुर्मद का बड़ा भाई परम प्रचण्ड कुरन्ड युद्ध स्थल में गया था ।७६। वह धीर मन वाला जब युद्ध स्थल में गया तो इतनी धूलि उड़ने लगी थी कि सभी दिशाएँ उससे भर गयी थी। वह शोक और रोष से भरा हुआ था और बड़े वेग वाले अश्व पर समारूढ़ होकर वहाँ पर गया था ।७७।

शार्ङ्गं धनुः समादाय घोरटंकारमुत्स्वनम् ।
ववर्ष शरधाराभिः संपत्कर्या महाचमूम् ।।७८
पापे मदनुजं हत्वा दुर्मदं युद्धदुर्मदम् ।
वृथा वहसि विक्रांतिलवलेशं महामदम् ।।७९
इदानीं चैव भवतीमेतैर्नाराचमंडलैः ।
अंतकस्य पुरीमत्र प्रापयिष्यामि पश्य माम् ।।८०
अतिहृद्यमतिस्वादु त्वद्वपुर्बिलनिर्गतम् ।
अपूर्वमंगनारक्तं पिबन्तु रणपूतनाः ।।८१
ममानुजवधोत्थस्य प्रत्यवायस्य तत्फलम् ।
अधुना भोक्ष्यसे दुष्टे पश्य मे भुजयोर्बलम् ।।८२

इति संतर्जयन्संपत्करीं करिवरस्थिताम् ।
सैन्यं प्रोत्साहयामास शक्तिसेनाविमर्दने ॥८३

अथ तां पृतनां चण्डी कुरंडस्य महौजसः ।
विमर्दयितुमुद्युक्ता स्वसैन्यं प्रोदसीसहत् ॥८४

उसने परमाधिक ऊँची आवाज वाली टंकार से युक्त शार्ङ्ग धनुष लेकर सम्पत्करी की बड़ी भारी सेना पर शरों की धाराओं की वर्षा की थी ।७८। उसने सम्पत्करी से कहा—हे पापे ! से युद्ध करने में दुर्मद मेरे छोटे भाई को हनन करके विक्रान्ति के लवलेश वाले इस महान मद को व्यर्थ ही कर रही है ।७९। अब आपको मैं इन नाराचों के मन्डलों से यहीं पर यमराज की पुरी को पहुँचा दूँगा–अब तू मुझको देख ले ।८०। ये रण पूतनाएँ तेरे अतीव स्वादिष्ट-रम्य-तेरे शरीर के बिलों से निकला हुआ–अपूर्व अङ्गना का रुधिर पान करें ।८१। मेरे छोटे भाई के वध से जो तूने बड़ा अनर्थ किया है उसका यही परिणाम है । हे दुष्टे ! अब तू उस फल को भोगेगी और अब तू मेरी भुजाओं के बल को देख ले ।८२। करिवर विराजमाना उस सम्पत्करी को इस प्रकार फटकारते हुए उसने अपनी सेना को शक्ति की सेना के विमर्दन करने के लिए प्रोत्साहन दिया था ।८३। इसके पश्चात् उस चन्डी ने महान ओज वाले कुरन्ड की सेना का विमर्दन करने के लिए उद्यु क्त होकर अपनी सेना को उत्साहित किया था ।८४।

अपूर्वाहवसंजातकौतुकाथ जगाद ताम् ।
अश्वारूढा समागत्य सस्नेहार्द्रमिदं वचः ॥८५

सखि संपत्करि प्रीत्या मम वाणी निशम्यताम् ।
अस्य युद्धमिदं देहि मम कर्तुं गुणोत्तरम् ॥८६

क्षणं सहस्व समरे मयैवैष नियोत्स्यते ।
याचितासि सखित्वेन नात्र संशयमाचर ॥८७

इति तस्या वचः श्रुत्वा संपद्देव्या शुचिस्मिता ।
निवर्तयामास चमूं कुरण्डाभिमुखोत्थिताम् ॥८८

अथ बालार्कवर्णाभिः शक्तिभिः समधिष्ठिताः ।
तरंगा इव सैन्याब्धेस्तुरंगा वातरंहसः ॥८९

खरैः खुरपुटैः क्षोणीमुल्लिखंतो मुहुर्मुहुः ।
पेतुरेकप्रवाहेण कुरण्डस्य चमूमुखे ॥९०
वल्गाविभागकृत्येषु संवर्तनविवर्तने ।
गतिभेदेषु चारेषु पञ्चधा खुरपातने ॥९१

उस अपूर्व युद्ध से समुत्पन्न कौतुक वाली अश्व पर समारूढ़ा होती हुई वहाँ आकर स्नेह के सहित यह वचन उससे बोली थी ।८५। हे सखि ! हे सम्पत्करि ! प्रीति से मेरी वाणी का श्रवण करो । इसके साथ युद्ध मुझे करने दो । मेरा युद्ध करना गुणोत्तर है ।८६। क्षणभर के लिए तुम शान्त हो जाओ । यह मेरे ही द्वारा युद्ध करेगा आप मेरी सखी हैं इसीलिए यह याचना मैंने की है । इसमें कुछ भी संशय मत करना ।८७। इस प्रकार के सम्पद्देवी के वचन का श्रवण कर उस शुचिस्मिता ने कुरुन्ड के समक्ष में उठी हुई सेना को वापिस कर दिया था ।८८। इसके उपरान्त बालसूर्य की आभा वाली शक्तियों से समधिष्ठित हुई थी । वायु के समान वेग वाले इसके अश्व समुद्र की तरङ्गों के ही समान थे ।८९। वे अश्व परम प्रखर खुरों के पुटों से भूमि को बार-२ उल्लिखित कर रहे थे और एक ही प्रवाह से उस कुरुन्ड की सेना के सामने आकर उपस्थित हो गये थे ।९०। वल्गा (लगाम) के विभाग कृत्यों में-सम्वर्त्तन और निवर्त्तन में—गतिभेदों में—चारों में पाँच प्रकार का उनके खुरों का पातन था ।९१।

प्रोत्साहने च संज्ञाभिः करपादाग्रयोनिभिः ।
चतुराभिस्तुरंगस्य हृदयज्ञाभिराहवे ॥९२
अश्वारूढांबिकासैन्यशक्तिभिः सह दानवाः ।
प्रोत्साहिताः कुरण्डेन समयुध्यंत दुर्मदाः ॥९३
एवं प्रवृत्ते समरे शक्तीनां च सुरद्विषाम् ।
अपराजितनामानं हयमारुह्य वेगिनम् ।
अभ्यद्रवद्दुराचारमश्वारूढाः कुरण्डकम् ॥९४
प्रचलद्वेणिसुभगा शरच्चन्द्रकलोज्ज्वला ।
संध्यानुरक्तशीतांशुमंडलीसुन्दरानना ॥९५
स्मयमानेव समरे गृहीतमणिकार्मुका ।

अवाकिरच्छरासारैः कुरण्ड तुरगानना ॥९६
तुरगारूढयोत्क्षिप्ताः समाक्राममन्दिगंतरान् ।
दिशो दश व्यानशिरे रुक्मपुङ्खाः शिलीमुखाः ॥९७
दुर्मदस्याग्रजः क्रुद्धः कुरंडश्चण्डविक्रमः ।
विशिखैः शार्ङ्गनिष्ठ्यूतैरश्वारूढामवाकिरत् ॥९८

और नाम ले लेकर प्रोत्साहन देने में—कर पादाग्र योनियों से—चतुरा और अश्वों के हृदयों के ज्ञान रखने वाली उस युद्ध में विद्यमान थीं ।९२। अश्व पर स्थित अम्बिका की सैन्य शक्तियों के साथ दानव करन्ड के द्वारा प्रोत्साहित दुर्मद दानव युद्ध कर रहे थे ।९३। इस प्रकार से शक्तियों का और सुरद्विषों का युद्ध प्रवृत्त होने पर अपराजित नाम वाले तथा अत्यधिक वेग य युक्त अश्व पर समारूढ़ होकर उस दुष्ट आचार वाले कुरन्ड के ऊपर अश्वारूढ़ा ने आक्रमण किया था ।९४। उसकी चोटी हिलने से परम सुभगा थी तथा शरत्काल के चन्द्रमा की कला के समान ही अत्यन्त उज्ज्वल थी । सन्ध्या के समय में अनुरक्त चन्द्र के मंडल के समान सुन्दर मुख वाली थी ।९५। वह समर में भी स्मित से समन्वित थी तथा उसने मणियों से विनिर्मित धनुष को ग्रहण कर रक्खा था । उस तुरगानना ने उस कुरन्ड के ऊपर बाणों की धाराओं से उसे अवकीर्ण कर दिया था ।९६। तुरगारूढा के द्वारा प्रक्षिप्त बाणों ने दिशाओं के अन्तरों को भी समाक्रान्त कर दिया था । जिनमें सुवर्ण के पुङ्ख थे ऐसे शर दशों दिशाओं में फैल गये थे ।९७। परम प्रचन्ड विक्रम वाला वह कुरन्ड अपने छोटे भाई दुर्मद का जो अग्रज था उसने भी अपने शार्ङ्ग से फेंके हुए बाणों से उस अश्वारूढ़ा को ढक दिया था ।९८।

चण्डैः खुरपुटैः सैन्यं खडण्यन्नतिवेगतः ।
अश्वारूढातुरंगोऽपि मर्दयामास दानवान् ॥९९
तस्य ह्रेषारवाद्दूरमुत्पातांबुधिनिःस्वनः ।
अमूर्च्छयन्ननेकानि तस्यानीतानि वैरिणः ॥१००
इतस्ततः प्रचलितैर्दैत्यचक्रे हयासना ।
निजं पाशायुधं दिव्यं मुमोच ज्वलिताकृति ॥१०१
तस्मात्पाशात्कोटिशोऽन्ये पाशा भुजगभीषणाः ।

समस्तमपि तत्सैन्यं बद्धाबद्धा व्यमूर्छयन् ॥१०२
अथ सैनिकबन्धेन क्रुद्धः स च कुरंडकः ।
शरेणैकेन चिच्छेद तस्या मणिधनुर्गुणम् ॥१०३
छिन्नमौर्वि धनुस्त्यक्त्वा भृशं क्रुद्धा हयासना ।
अंकुशं पातयामास तस्य वक्षसि दुर्मतेः ॥१०४
तेनांकुशेन ज्वलता पीतजीवितशोणितः ।
कुरण्डो न्यपतद्भूमौ वज्ररुग्ण इव द्रुमः ॥१०५

उस अश्वारूढ़ा का जो अश्व था उसने भी अपने प्रचंड खुरों के पुटों के द्वारा अत्यन्त वेग से शत्रु की सेना का खंडन करते हुए दानवों का बहुत अधिक मर्दन किया था ।९९। उस अश्व की हिनहिनाहट की ध्वनि बहुत दूर तक उत्पात से समुद्र की ध्वनि के ही तुल्य थी । उस घोष ने भी वैरी के द्वारा लाये हुए सैन्यों को जो बहुत अधिक थे सबको मूर्च्छित कर दिया था ।१००। उस हयासना ने उस दैत्यों के चक्र में जो भी इधर-उधर प्रचलित थे उन पर अपना पाशायुध जो जाज्वल्यमान आकृति वाला तथा परम दिव्य था छोड़ दियाथा ।१०१। उस पाश से करोड़ों अन्य भुजङ्गोंके समान भीषण पाश निकले थे । जिन्होंने उस दैत्य की सम्पूर्ण सेना को बाँध-बाँध कर विशेष रूप से मूर्च्छित कर दिया था ।१०२। इसके अनन्तर सैनिकों के बन्धन से वह कुरण्ड बहुत ही अधिक क्रुद्ध हो गया था और उसने अपने एक बाण से उस अश्वारूढ़ा के मणियों के धनुष की मौर्वी को काट डाला था ।१०३। जिस धनुष की मौर्वी कट गयी थी उस धनुष को उसने त्याग दिया था और वह हयानना अत्यन्त ही क्रुद्ध हो गयी थी । फिर उसने उस दुष्ट मति वाले के वक्षःस्थल में अपना अंकुश डाला था ।१०४। जलते हुए उस अंकुश से जिसके जीवित रहते हुए ही रुधिर पी लिया गया था वह कुरण्ड वज्र से छिन्न द्रुम के ही समान भूमि पर गिर गया था ।१०५।

तदंकुशविनिष्ठ्युताः पूतनाः काश्चिदुद्भटाः ।
तत्सैन्यं पाशनिष्पंदं भक्षयित्वा क्षयं गताः ॥१०६
इत्थं कुरण्डे निहते विंशत्यक्षौहिणीपतौ ।
हतावशिष्टास्ते दैत्याः प्रपलायंत वै द्रुतम् ॥१०७

कुरण्डं सानुजं युद्धे शक्तिसैन्यैर्निपातितम् ।
श्रुत्वा शून्यकनाथोऽपि निशश्वास भुजंगवत् ॥१०८

उस अंकुश से निकली हुई कुछ परम उद्भट पूतनाएँ उसकी सेना के पाश से निष्यन्द भक्षण करके क्षय को प्राप्त हो गयीं थीं ।१०६। बीस अक्षौहिणी सेनाओं के स्वामी उस कुरण्ड के इस प्रकार से निहत हो जाने पर जो भी मरने से बचे हुए दैत्यगण थे वे शीघ्र ही वहाँ से भाग गये थे । उस युद्ध में छोटे भाई के साथ कुरण्ड को शक्ति की सेनाओं ने मार डाला था । जब यह वृत्तान्त शून्यक पुर के स्वामी ने सुना था तो वह भी भुजंग के ही तुल्य लम्बी श्वास लेने लगा था ।१०७-१०८।

करंकादि पंच सेनापति वध

अथाश्वारूढया क्षिप्ते कुरंडे भंडदानवः ।
कुटिलाक्षमिदं प्रोचे पुनरेव युयुत्सया ॥१
स्वप्नेऽपि यन्न संभाव्यं यन्न श्रुतमितः पुरा ।
यच्च नो शंकितं चित्ते तदेतत्कष्टमागतम् ॥२
कुरंडदुर्मदौ सत्त्वशालिनौ भ्रातरौ हितौ ।
दुष्टदास्याः प्रभावोऽयं मायाविन्या महत्तरः ॥३
इतः परं करंकादीन्पंचसेनाधिनायकान् ।
शतमक्षौहिणीनां च प्रस्थापय रणांगणे ॥४
ते युद्धदुर्मदाः शूराः संग्रामेषु तनुत्यजः ।
सर्वथैव विजेष्यंते दुर्विदग्धविलासिनीम् ॥५
इति भंडवचः श्रुत्वा भृशं च त्वरयान्वितः ।
कुटिलाक्षः करंकादीनाजुहाव चमूपतीन् ॥६
ते स्वामिनं नमस्कृत्य कुटिलाक्षेण देशिताः ।
अग्नौ प्रविष्णव इव क्रोधांधा निर्ययुः पुरात् ॥७

इसके अनन्तर जब अश्वारूढ़ा के द्वारा कुरण्ड हत हो गया था तो भंड दानव ने पुनः युद्ध करने की इच्छा से कुटिलाक्ष से यह वचन कहा था ।

।१। जिसकी कभी स्वप्न में भी सम्भावना नहीं की जा सकती है और पहिले इसके कभी जो सुना भी नहीं गया था और जिसकी चित्त में कभी शंका भी नहीं की गयी थी वही यह कष्ट इस समय में आ पड़ा है ।२। कुरन्ड और दुर्मद ये दोनों ही बहुत सत्व शाली भाई थे । इस मायाविनी दुष्ट दासी का कितना अधिक बड़ा प्रभाव है ।३। अब रणाङ्गन में यहाँ से आगे करंक प्रभृति पाँच सेनाधिनायकों को और अक्षौहिणी सेना को रवाना कर दो ।४। वे शूर बहुत ही युद्ध में दुर्मद हैं और संग्रामों में अपने शरीर का त्याग करने वाले हैं। ये लोग पूर्ण रूप से ही उस दुर्विदग्ध विलासिनी को अवश्य जीत लेंगे ।५। इस भंड के वचन को सुनकर अत्यन्त शीघ्रता से युक्त होकर कुटिलाक्ष ने करंक आदि सेनापतियों को वहाँ पर बुला लिया था ।६। कुटिलाक्ष के द्वारा देशित उन्होंने अपने स्वामी को प्रणाम किया था और फिर वे इतने अधिक क्रोधान्ध हो गये थे मानों अग्नि में ही से समुत्पन्न हुए होवें । वे सब फिर उस पुर से युद्ध के लिए निकल कर चले गये थे ।७।

तेषां प्रयाणनिःसाणरणितं भृशदुःसहम् ।
आकर्ण्य दिग्गजास्तूर्णं शीर्णकर्णा जुघूर्णिरे ।।८
शतमक्षौहिणीनां च प्राचलत्केतुमालकम् ।
उत्तरंगतुरंगादि बभौ मत्तमतंगजम् ।।९
ह्रेषमाणहयाकीर्णं क्रन्दद्भटकुलोद्भवम् ।
बृंहमाणगजं गर्जद्रथचक्रं चचाल तत् ।।१०
चक्रनेमिहतक्षोणीरेणुक्षपितरोचिषा ।
बभूव तुहिनासारच्छन्नेनेव विवस्वता ।।११
धूलीमयमिवाशेषमभवद्विश्वमंडलम् ।
क्वचिच्छब्दमयं चैव निःसाणकठिनस्वनैः ।।१२
उद्भूतैर्धूलिकाजालैराक्रांता दैत्यसैनिकाः ।
इयत्तयातः सेनायाः संख्यापि परिभाविता ।।१३
ध्वजा बहुविधाकारा मीनव्यालादिचित्रिताः ।
प्रचेलुर्धूलिकाजाले मत्स्या इव महोदधौ ।।१४

उनके प्रयाण का निःसाण रणित अत्यन्त ही दुस्सह था । दिग्गजों ने भी जब उसको सुना था वे भी शीर्ण कानों वाले होते हुए घूर्णित हो गये

थे ।८। सौ अक्षौहिणी सेनाओं के झण्डों की मालाएँ फहरा रही थीं और उस सेना में बड़े ऊँचे अश्व थे तथा मदमत्त हाथी भी उसमें थे ।९। वह सेना ऐसी थी कि उसमें हिनहिनाने वाले अश्वों की धूम थी तथा उसमें चीखते हुए भटों का समुदाय भी था—एवं बड़े-बड़े विशालकाय हाथी थे और गर्जना करते हुए रथों का समुदाय था ऐसी वह सेना वहाँ से रवाना हुई थी ।१०। रथों के पहियों से खुदी हुई पृथ्वी की रेणु से जिसकी कान्ति ढक गयी थी ऐसा सूर्य उस समय में ऐसा ही दिखलाई दे रहा था मानों तुहिनासार से ढक गया हो अर्थात् कुहरा में छिप गया होवे ।११। यह पूर्ण विश्व का मंडल ही धूलि से परिपूर्ण हो गया था। उस सेना के निर्गमन की कठोर ध्वनि से चारों ओर घोष ही घोष व्याप्त हो रहा था ।१२। उस समय में धूलि के ऐसे जाल छा गये थे कि समस्त दैत्यों के सैनिक इस धूलि से समाक्रान्त हो गये थे अर्थात् सभी धूलि से भर गये थे। अतएव इयत्ता से उसकी संख्या भी परिभावित थी ।१३। उस सेना में बहुत प्रकार की ध्वजायें थीं जो मीन तथा व्याल आदि से चित्रित हो रही थीं। वे सभी सेनाएँ उस धूलि से परिपूर्ण जाल में महोदधि में मत्स्यों के तुल्य चल रही थी ।१४।

तानापतत आलोक्य ललितासैनिकं प्रति ।
त्रित्रेसुरमरा: सर्वे शक्तीनां भङ्गशङ्कया ।।१५
ते करङ्कमुखा: पञ्च सेनापतय उद्धता: ।
सर्पिणीं नाम समरे मायां चक्रु र्महीयसीम् ।।१६
तै: समुत्पतिता दृष्टा सर्पिणी रणशांबरी ।
धूम्रवर्णा च धूम्रोष्ठी धूम्रवर्णपयोधरा ।।१७
महोदधिरिवात्यंतं गंभीरकुहरोदरी ।
पुरश्चचाल शक्तीनां त्रासयंती मनो रणे ।।१८
कद्रूरिवापरा दृष्टा बहुसर्पविभूषणा ।
सर्पाणामुद्भवस्थानं मायामयशरीरिणाम् ।।१९
सेनापतीनां नासीरे वेल्लयंती महीतले ।
वेल्लितं बहुधा चक्रे घोरारावविराविणी ।।२०
तथैव मायया पूर्वं तेऽसुरेंद्रा व्यजीजयन् ।
करंकाद्या दुरात्मान: पञ्चपञ्चत्वकामुका: ।।२१

जिस समय में इतनी विशाल सेनाएं धावा करने के लिए ललिता देवी के सैनिक की ओर आ रही थीं तो सभी देवगण शक्तियों के भङ्ग की शंका से डर गये थे ।१५। वे करंक जिनमें प्रमुख था पाँचों सेनापति गण बहुत ही उद्धत थे । उन्होंने सर्पिणी नाम वाली एक महती माया को उस समर स्थल में किया था ।१६। उनके द्वारा उठी हुई वह दुष्टा रणशाम्बरी सर्पिणी धूम्र वर्ण की थी । उसके होठ भी धूम्र वर्ण के ही थे और धूम्र ही उसके पयोधर थे ।१७। वह महासागर के ही तुल्य अत्यन्त गम्भीर कुहर उदर वाली थी । वह रणस्थल में मन को भयभीत करती हुई ही शक्तियों के आगे चली थी ।१८। वह बहुत से सर्पों के भूषण वाली दूसरी कद्रू के ही समान थी और बहुत ही दुष्टा थी । वह माया से परिपूर्ण सर्पों के जनन का स्थान थी ।१९। सेनापतियों के नासीर में महीतल को वेल्लित करती हुई वह जा रही थी । उसका महान घोर शब्द था जिसको वह कर रही थी और प्रायः उसने उस चक्र को वेल्लित सा कर दिया था ।२०। वे पाँचों सेनापति भी पञ्चत्व (मृत्यु) के ही कामुक थे और वे करंक आदि सब बहुत ही दुरात्मा थे । उसी भाँति से माया के साथ पूर्व में सब असुरेन्द्र अजित हो रहे थे ।२१।

अथ प्रववृते युद्धं शक्तीनाममरद्रुहाम् ।
अन्योन्यवीरभाषाभिः प्रोत्साहितघनक्रुधाम् ।।२२
अत्यंतसंकुलतया न विज्ञातपरस्पराः ।
शक्तयो दानवश्चैव प्रजह्रुः शस्त्रपाणयः ।।२३
अन्योन्यशस्त्रसंघट्टसमुत्थितहुताशने ।
प्रवृत्तविशिखस्रोतः प्रच्छन्नहरिदन्तरे ।।२४
बहुरक्तनदीपूरह्रियमाणमतंगजे ।
मांसकर्दमनिर्मग्ननिष्पंदरथमंडले ।।२५
विकीर्णकेशशैवालविलसद्रक्तनिर्झरे ।
अतिनिष्ठुरविध्वंसि सिंहनादभयङ्करे ।।२६
रजोऽन्धकारतुमुले राक्षसीतृप्तिदायिनि ।
शस्त्रीशरीरविच्छिन्न दैत्यकंठोत्थितासृजि ।।२७

प्रवृत्ते घोरसंग्रामे शक्तीनां च सुरद्विषाम् ।

अथ स्वबलमादाय पञ्चभिः प्रेरिता सती ।

सर्पिणी बहुधा सर्पान्विससर्ज शरीरतः ॥२८

इसके उपरान्त उन शक्तियों का और देव द्रोहियों का युद्ध प्रवृत्त हुआ था। वे परस्पर में सभी वीरों की भाषा में घने क्रोध को प्रोत्साहन दे रहे थे ।२२। उस समय में अत्यधिक संकुलता थी और परस्पर में भी एक दूसरे का ज्ञान नहीं हो रहा था। दानव गण और शक्तियों ने अपने-अपने करों में हथियार ग्रहण करके मारकट की थी ।२३। परस्पर में जो आयुधों का संघट्टन हो रहा था उस रगड़ से आँच निकल रही थी। समस्त दिशाएँ उस आयुधों की टक्कर से समुत्पन्न अग्नि के स्रोत से प्रच्छन्न हो गयी थीं ।२४। उस युद्ध में इतना रुधिरपात हुआ था कि उसकी नदियाँ बह निकली थीं और उसमें हाथी भी छिप गये थे। माँस का तो इतना विशाल कीच हो गया था कि उसमें रथों का मंडल गतिहीन हो गया था ।२५। वह युद्ध स्थल रुधिर-स्राव से पूर्ण था तथा उसमें जो केशों का जाल था वह शैवाल के ही सदृश दिखाई दे रहा था। वह युद्धस्थल अतीव निष्ठुर एवं विध्वंस समन्वित था। वहाँ पर जो सैनिकों का सिंहनाद हो रहा था उससे वह बहुत ही भयावह हो रहा था ।२६। उस समय जबकि शक्तियों का और असुरों का घोर संग्राम प्रवृत्त हुआ था तो वह बहुत ही तुमुल था और राक्षसियों को तृप्ति प्रदान करने वाला था। उस समय घोर जब अन्धकार छाया हुआ था और शस्त्रधारियों के शरों से निरन्तर दैत्यों के कंठों से रुधिर निकल रहा था। इसके अनन्तर अपने दल को लेकर पाँचों सेनापतियों के द्वारा प्रेरित हुई सर्पिणी ने प्रायः शरीर से सर्पों का सृजन किया था ।२७-२८।

तक्षककर्कोटसमा वासुकिप्रमुखत्विषः ।

नानाविधवपुर्वर्णा नानादृष्टिभयङ्कराः ॥२९

नानाविधविषज्वालानिर्दग्धभुवनत्रयाः ।

दारदं वत्सनाभं च कालकूटमथापरम् ॥३०

सौराष्ट्रं च विषं घोरं ब्रह्मपुत्रमथापरम् ।

प्रतिपन्नं शौक्लिकेयमन्यान्यपि विषाणि च ॥३१

व्यालैः स्वकीयवदनैर्विलोलरसनाद्वयैः ।

विकिरंतः शक्तिसैन्ये विसस्रुः सर्पिणीतनोः ॥३२
धूम्रवर्णा द्विवदना सर्पा अतिभयंकराः ।
सर्पिण्या नयनद्वंद्वादुत्थिताः क्रोधदीपिताः ॥३३
पीतवर्णास्त्रिफणका दंष्ट्राभिर्विकटाननाः ।
सर्पिण्याः कर्णकुहरादुत्थिताः सर्पकोटयः ॥३४
अग्रे पुच्छे च वदनं धारयंतः फणान्वितम् ।
आस्यादा नीलवपुषः सर्पिण्याः फणिनोऽभवन् ॥३५

वे सब सर्प भी तक्षक और कर्कोटक के ही सदृश थे तथा वासुकि सर्प के समान कान्ति वाले थे । उनके वर्ण और शरीर भी अनेक वर्ण के थे तथा नाना भाँति की दृष्टि से भयानक थे ।२६। अनेक प्रकार के विषों की ज्वाला से तीनों लोकों के निर्दग्ध करने वाले थे । वह विष भी कितने ही प्रकार का था—दारद-वत्सनाभ-कालकूट-सौराष्ट्र-घोर विष तथा ब्रह्म पुत्र विष था। शौक्लिकेय विष एवं अन्यान्य भी कई प्रकार के विष उनके प्रतिपन्न थे ।३०-३१। ये सभी तरह के विष उस सर्पिणी के शरीर से निकल रहे थे जो कि सर्प उस समय में समुत्पन्न हुए थे । उन सर्पों के मुख ऐसे थे जिनमें बहुत ही चञ्चल दो जीभें लपलपा रहा थी और वे विषों को उस शक्तियों की सेना में फैला रहे थे ।३२। उन सर्पों के दो-दो मुख धूम्रवर्ण के थे और वे सर्प बहुत ही अधिक भयंकर थे । उस सर्पिणी के दोनों नेत्रों से वे समुत्थित हुए थे और महान् क्रोध से दीपित थे ।३३। उन सर्पों के पीतवर्ण थे तथा तीन-तीन फण थे। उनकी दाढ़ों से उनके मुख बहुत ही विकट थे। उस सर्पिजी के कानों के कुहरों से करोड़ों ही सर्प उत्थित हो गये थे ।३४। वे आगे और पूछो में फणों से समन्वित मुखों को धारण करने वाले थे। आस्याद और नीले शरीरों वाले उस सर्पिणी के सर्प हुए थे ।३५।

अन्यैश्च बलवर्णाश्च चतुर्वक्त्राश्चतुष्पदाः ।
नासिकाविवरात्तस्या उद्गता उग्ररोचिषः ॥३६
लम्बमानमहाचर्मावृत्तस्थूलपयोधरात् ।
नाभिकुण्डाच्च बहवो रक्तवर्णा भयानकाः ॥३७
हलाहलं वहंतश्च प्रोत्थिताः पन्नगाधिपाः ।

विदशंतः शक्तिसेनां दहंतो विषवह्निभिः ॥३८
बध्नंतो भोगपाशैश्च निघ्नंतः फणमण्डलैः ।
अत्यंतमाकुलां चक्रुर्ललितेशीचमूममी ॥३९
खड्‌यमाना अपि मुहुः शक्तीनां शस्त्रकोटिभिः ॥४०
उपर्युपरि वर्धंते सपिण्डप्रविसर्पिणः ।
नश्यन्ति बहवः सर्पा जायन्ते चापरे पुनः ॥४१
एकस्य नाशसमये बह्वोऽन्ये समुत्थिताः ।
मूलभूता यतो दुष्टा सर्पिणी न विनश्यति ॥४२

और अन्य-अन्य वर्ण तथा बल से युक्त—चार मुखों वाले-चार पदों वाले उस सर्पिणी के नासिका के विवर से अत्यन्त उग्र कान्ति वाले उद्‌गत हो गये थे।३६। लम्बे महासर्प से समावृत स्थूल पयोधरों से और उसकी नाभि के कुण्ड से बहुत से रक्त वर्ण वाले तथा भयानक उत्पन्न हुए थे।३७। जो सर्प हालाहल को अपने मुखों से बहा रहे थे। ऐसे पन्नगाधिप समुत्पित हो गये थे। वे सब उस शक्तियों की सेना के सैनिकों का दर्शन कर रहे थे तथा विषों की अग्नियों से दहन कर रहे थे।३८। वे अपने भोग के पाशों से सैनिकों को बाँध रहे थे और फणों के मण्डलों से निहनन भी कर रहे थे। ये ललिता की सेना को अत्यन्त ही समाकुल कर रहे थे।३६। यद्यपि वे शक्तियों के शस्त्रों के द्वारा जो करोड़ों ही थे बारम्बार काटे भी जा रहे थे तो भी काम कर रहे थे।४०। वे ऊपर-ऊपर में सपिण्ड प्रविसर्पी बढ़ रहे थ। उनमें बहुत से सर्प नष्ट हो जाया करते हैं तथापि वे पुनः समुत्पन्न हो जाते हैं और दूसरे भी पैदा हो जाया करते हैं।४१। जब एक का नाश का समय होता है तो अन्य बहुत से पैदा हो जाया करते हैं। कारण यही था कि जो मूल भूता सर्पिणी थी जिससे वे सब पैदा होते थे वह नष्ट नहीं होती है। अतः उससे बराबर सर्प समुत्पन्न होते चले जाते थे।४२।

अतस्तत्कृतसर्पाणां नाशे सर्पांतरोद्भवः ।
ततश्च शक्तिसैन्यानां शरीराणि विषानलैः ॥४३
दह्यमानानि दुःखेन विप्लुतान्यभवन्रणे ।
किंकर्तव्यविमूढेषु शक्तिचक्रेषु भोगिभिः ॥४४

पराक्रमं बहुविधं चक्रुस्ते पञ्च दानवाः ।
करीन्द्री गर्दभशतैर्युक्तं स्यन्दनमास्थितः ॥४५
चक्रेण तीक्ष्णधारेण शक्तिसेनाममर्दयत् ।
वज्रदंताभिधश्चान्यो भंडदैत्यचमूपतिः ॥४६
वज्रबाणाभिघातेन ह्योष्ट्रतो हि रणं व्यधात् ।
अथ वज्रमुखश्चैव चक्रिवंतं महत्तरम् ॥४७
आरुह्य कुन्धाराभिः शक्तिचक्रममर्दयत् ।
वज्रदंताभिधानोऽन्यश्चमूनामधिपो बली ॥४८
गृध्रयुग्मरथारूढः प्रजहार शिलीमुखैः ।
तैः सेनापतिभिर्दुष्टैः प्रोत्साहितमथाहवे ॥४९

इसीलिये उसके शरीर से समुत्पन्न सर्पों के नाश होने पर भी दूसरे अन्य सर्पों की समुत्पत्ति हो जाया करती थी। उनके विषाग्नि से शक्तियों की सेनाओं के शरीर दह्यमान हो रहे थे और रण में वे दुःख से विप्लुत थे। उन भोगियों के द्वारा शक्तियों के चक्र किंकर्त्तव्य विमूढ़ से हो गये थे ।४३-४४। उन पाँचों दानवों ने बहुत तरह का पराक्रम किया था। वह करीन्द्री सैकड़ों गर्दभों से युक्त एक रथ पर समास्थित था ।४५। उसने अपने चक्र के द्वारा जिसकी बहुत ही अधिक तीक्ष्णधार थी शक्ति सेना का मर्दन किया था। और एक अन्य वज्रदन्त नामक भण्डासुर का सेनापति था ।४६। वज्रवाण के अभिघात के द्वारा उष्ट्र से उसने रण किया था। इसके पश्चात् वज्रमुख एक अधिक बड़े चक्रिवान् पर समवस्थित था ।४७। वह समारोहण करके भाले की धाराओं से वह शक्तियों की सेना का मर्दन करता था। एक अन्य वज्रदन्त नामक सेनापति बहुत ही बलवान् था ।४८। दो गृध्रों के रथ पर वह समारूढ़ था और बाणों के द्वारा सेना का निहनन कर रहा था। वे सेनापति अत्यन्त दुष्ट थे और उनके द्वारा युद्ध में सेना को प्रोत्साहन दिया गया था ।४९।

शतमक्षौहिणीनां च निपपातैकहेलया ।
सर्पिणी च दुराचारा बहुमायापरिग्रहा ॥५०
क्षणे क्षणे कोटिसंख्यान्विससर्ज फणाधरान् ।

तथा विकलितं सैन्यमवलोक्य रुषाकुला ।।५१

नकुली गरुडारूढा सा पपात रणाजिरे ।

प्रतप्तकनकप्रख्या ललितातालुसम्भवा ।।५२

समस्तवाङ्मयाकारा दंतैर्वज्रमयैर्युता ।

सर्पिण्यभिमुखं तत्र विससर्ज निजं बलम् ।।५३

तयाधिष्ठिततुंगांसः पक्षविक्षिप्तभूधरः ।

गरुडः प्राचलद्युद्धे सुमेरुरिव जङ्गमः ।।५४

सर्पिणीमायया जातान्सर्पान्दृष्ट्वा भयानकान् ।

क्रोधरक्तेक्षणं व्यात्तं नकुली विदधे मुखम् ।।५५

अथ श्रीनकुलीदेव्या द्वात्रिंशद्दंतकोटयः ।

द्वात्रिंशत्कोटयो जाता नकुलाः कनकप्रभाः ।।५६

सौ अक्षौहिणी सेना का एक ही हेला से निपतन हो गया था। वह सर्पिणी बहुत ही दुष्ट आचार वाली थी और बहुत-सी मायाओं के परिग्रह वाली भी थी ।५०। वह एक-एक क्षण में करोड़ों-करोड़ों सर्पों का सृजन कर रही थी। इसके पश्चात् वह सम्पूर्ण सेना बेचैन हो गयी थी। ऐसा देखकर वह—देवी बहुत ही रोष से युक्त हो गयी थी ।५१। वह नकुली गरुड़ पर समारूढ़ा उस रणाङ्गन में आ गयी थी। वह ललिता देवी के तालु से उत्पन्न हुई थी और तपे हुए सुवर्ण के समान थी ।५२। उसका समस्त वाङ्मय आकार था और उसके दांत वज्रमय थे। उसने वहाँ पर अपना बल उस सर्पिणी के समक्ष में सृजन किया था ।५३। वह गरुड़ भी ऐसा था जिसके बहुत उच्च अंश थे और वह अपने पंखों से पर्वतों को भी विक्षिप्त कर रहा था। वह गरुड़ उस युद्ध में चल दिया था जो साक्षात् जङ्गम सुमेरु के ही समान था ।५४। सर्पिणी की माया से समुत्पन्न परमाधिक भयानक सर्पों को देखकर स नकुली ने क्रोध से लाल नेत्रों वाला अपना मुख खुला हुआ कर दिया था ।५५। इसके पश्चात् श्री नकुली देवी की बत्तीस करोड़ सेना नकुलों की समुत्पन्न हो गयी थी और सुवर्ण की प्रभा वाले नकुल उत्पन्न हो गये थे ।५६।

इतस्ततः खण्डयन्तः सर्पिणीसर्पमण्डलम् ।

निजदंष्ट्राविमर्दनं नाशयन्तश्च तद्विषम् ।

व्यभ्रमन्समरे घोरे विषघ्नाः स्वर्णबभ्रवः ॥५७
उत्कर्णा क्रोधसम्पर्कादूधूनिताशेषलोमकाः ।
उत्फुल्ला नकुला व्यात्तवदना व्यदशन्नहीन् ॥५८
एकैकमायासर्पस्य बभ्रुरेकैक उद्गतः ।
तीक्ष्णदंतनिपातेन खण्डयामास विग्रहम् ॥५९
भोगिभोगसृतै रक्तैः सृक्किणी शोणतां गते ।
लिहंतो नकुला जिह्वापल्लवैः पुप्लुवुर्मृधे ॥६०
नकुलैर्दंश्यमानानामत्यन्तचटुलं वपुः ।
मुहुः कुण्डलितैर्भोगैः पन्नगानां व्यचेष्टत ॥६१
नकुलावलिदष्टानां नष्टासूनां फणाभृताम् ।
फणाभरसमुत्कीर्णा मणयो व्यरुचन्रणे ॥६२
नकुलाघातसंशीर्णफणाचक्रविनिर्गतैः ।
फणयस्तन्महोद्रोहवह्निज्वाला इवाबभुः ६३

वे नकुल सर्पिणी के सर्पों के मण्डल को अपनी दाढ़ों के विमर्दन से उनके विषों का विनाश कर रहे थे तथा उस महान् घोर समर स्थल में इधर-उधर वे नकुल स्वर्ण के समान चमकते हुए विष का नाश करने वाले भ्रमण करने लगे थे ।५७। उन समस्त नकुलों के दोनों कान ऊपर की ओर उठे हुए थे और क्रोध के सम्पर्क से वे अपने लोमों को उद्धूलित कर रहे थे । इस तरह से फूले हुए अपने मुँहों को खोले हुए सर्पों का विनाश करने वाले हुए थे ।५८। एक-एक माया से निर्मित सर्प के लिये एक-एक ही नकुल उद्गत हो गया था और ये अपने परमाधिक तीक्ष्ण दाँतों के द्वारा सर्पों के शरीरों का खण्डन कर रहे थे ।५९। सर्पों के फणों से निकले हुए रुधिर से नकुलों की सृक्किणियाँ लाल हो गयी थीं और वे अपनी जिह्वा से उस रुधिर को चाटते हुए स्वयं भी उस युद्ध में प्लावित हो गये थे ।६०। उन नकुलों के द्वारा काटे गये उनके शरीर अत्यन्त चटुल हो गये थे और बारम्बार सर्पों के कुण्डलित भोगों के साथ वे विचेष्टा कर रहे थे ।६१। नकुलों के समुदाय के द्वारा काटे गये सर्पों के प्राण जा चुके थे और उनके फणों के भार से निकल कर गिरी हुई मणियाँ उस समराङ्गण में चमक

रहीं थीं ।६२। उन नकुलों के प्रहारों के द्वारा सर्पों के फणों के समुदाय से निर्गत मणियों के समूहों से वे समस्त सर्प उस समर स्थल में अग्नियों की ज्वालाओं के ही समान दिखलायी दे रहे थे ।६३।

एवं प्रकारतो बभ्रुमण्डलैरवखण्डिते ।
मायामये सर्पजाले सर्पिणीकोपमादधे ।।६४
तया सह महद्युद्धं कृत्वा सा नकुलेश्वरी ।
गारुडास्त्रमतिक्रूरं समाधत्त शिलीमुखे ।।६५
तद्गरुडास्त्रमुद्दामज्वालादीपितदिङ्मुखम् ।
प्रविश्य सर्पिणीदेहं सर्पमायां व्यशोषयत् ।।६६
मायाशक्तेर्विनाशेन सर्पिणी विलयं गता ।
क्रोधं च तद्विनाशेन प्राप्ताः पञ्च चमूवराः ।।६७
यद्बलेन सुरान्सर्वान्सेनान्यस्तेऽवमेनिरे ।
सा सर्पिणी कथाशेषं नीता नकुलवीर्यतः ।।६८
अतः स्वबलनाशेन भृशं क्रुद्धाश्चमूचराः ।
एकोद्यमेन शस्त्रौघैर्नकुलीं तामवाकिरन् ।।६९
एकैव सा तार्क्ष्यरथा पञ्चभिः पृतनेश्वरी ।
लघुहस्ततया युद्धं चक्रे वै शस्त्रवर्षिणी ।।७०

इस प्रकार से नकुलों के समुदाय के द्वारा जब सर्पों के मंडल अवखण्डित हो गये थे तो मायामय सर्पों का समूह नष्ट हो जाने पर सर्पिणी को बड़ा भारी क्रोध हो गया था ।६४। उस सर्पिणी के साथ उस नकुलीश्वरी ने महान् युद्ध करके उसने अपने शिलीमुख में अत्यधिक क्रूर गरुडास्त्र धारण किया था ।६५। उस गरुडास्त्र ने जिसमें अत्यधिक ज्वालाएँ निकल रहीं थीं और समस्त दिशाएँ जिनसे चमक रही थीं, सर्पिणी के देह में प्रवेश किया था और उस सर्पों की माया का शोषण कर दिया था ।६६। जब उसको उस माया की शक्ति का विनाश हो गया था तब वह सर्पिणी विलीन हो गयी थी और उसके विनाश हो जाने से वे जो पाँच सेनापति थे उनको बहुत अधिक क्रोध हो गया था ।६७। वे सेनानी जिसके बल से समस्त सुरों का भी अपमान कर देते थे वह सर्पिणी के पराक्रम से विनष्ट हो गयी थी

और उसकी केवल कथा ही शेष रह गयी थी ।६८। इसीलिए अपने बल के विनाश हो जाने से वे चमूवर बहुत क्रोधित हुए थे और उन्होंने सबने मिलकर अपने शस्त्रों के समूह से उस नकुली पर प्रबल प्रहार किये थे ।६९। उस सेना की स्वामिनी अकेली ही थी और तार्क्ष्य के रथ पर समारूढ़ थी । उस अकेली ही ने उन पाँचों सेनापतियों के साथ शस्त्रों की वर्षा करने वाली ने बहुत ही हल्के हाथ होने से युद्ध किया था ।७०।

पट्टिशैर्मुसलैश्चैव भिन्दिपालैः सहस्रशः ।
वज्रसारमयैर्दंतैर्व्यदशन्मर्मसीमसु ॥७१
ततो हाहारुतं घोरं कुर्वाणा दैत्यकिङ्कराः ।
उदग्रदंशनकुलैर्नकुलैराकुलीकृता ॥७२
उत्पत्य गगनात्केचिद्घोरचीत्कारकारिणः ।
दंशंतस्तद्द्विषां सैन्यं सकुलाः प्रज्वलक्रुधः ॥७३
कर्णेषु दृष्ट्वा नासायामन्ये दष्टाः शिरस्तटे ।
पृष्ठतो व्यदशन्केचिदागत्य व्याकृतक्रियाः ॥७४
विकलाश्छिन्नवर्माणो भयविस्रस्तशस्त्रिकाः ।
नकुलैरभिभूतास्ते न्यपतन्नमरद्रुहः ॥७५
केचित्प्रविश्य नकुला व्यात्तान्यास्यानि वैरिणाम् ।
भोगिभोगानि वाकृष्य व्यदशन्रसनातलम् ॥७६
अन्ये कर्णेषु नकुलाः प्राविशन्देववैरिणाम् ।
सूक्ष्मरूपा विशंति स्म नानारन्ध्राणि बभ्रवः ॥७७

पट्टिश—मुसल और सहस्रों भिन्दिपालों से तथा वज्र की शक्ति से पूर्ण दाँतों से मर्मस्थलों में दंशन किया था प्रहार किया था ।७१। फिर तो समस्त दैत्यगण हाहाकार की ध्वनि करते हुए उन उदग्र दंशन करने वाले नकुलों के द्वारा बेचैन हो गये थे ।७२। उनमें कुछ तो आकाश से परम घोर चीत्कार करते हुए उत्पन्न कर रहे थे । अत्यन्त क्रोध से युक्त नकुल शत्रुओं की सेना का दंशन कर रहे थे ।७३। उन असुरों की उस समय में बहुत ही बुरी दशा हो गयी थी । कुछ तो कानों में काटे गये थे—कुछ नासिकाओं में और कुछ शिरों में दंशित किये गये थे एवं कुछ पीठ पर दंशन किये गये

थे—इस तरह से सब की क्रियाएँ विनष्ट हो गयी थीं ।७४। ऐसे सबके सब वे बेचैन हो गये थे और उनके कवच छिन्न हो गये थे। भय के कारण उन्होंने अपने शस्त्रों को छोड़ दिया था। वे समस्त असुर नकुलों से पराभव को प्राप्त होकर निमलित हो गये थे ।७५। कुछ नकुल तो शत्रुओं के खुले हुए मुखों में प्रवेश करके सर्पों के मुखों (फनों) को खींचकर उनके रसना के तलों को काट रहे थे ।७६। अन्य नकुल शत्रुओं के कानों के छिद्रों में प्रवेश करके उन्हें दंशित कर रहे थे तथा वे नकुल उनके अनेक छिद्रों में में सूक्ष्म रूपों वाले होकर प्रविष्ट हो रहे थे ।७७।

इति तैरभिभूतानि नकुलैरयलोकयन् ।
निजसैन्यानि दीनानि करङ्कः कोपमास्थितः ।।७८
अन्येऽपि च चमूनाथा लघुहस्ता महाबलाः ।।७६
प्रतिबभ्रु शरस्तोमान्ववृषुर्वारिदा इव ।
दैत्यसैन्यपतिप्रौढकोदंडोत्थाः शिलीमुखाः ।
बभ्रूणां दन्तकोटीषु कठोरघट्टनं व्यधुः ।।८०
चमूपतिशरव्यूहैराहतेभ्यः परःशतैः ।
बभ्रूणां वज्रदंतेभ्यो निश्चक्राम हुताशनः ।
पञ्चापि ते चमूनाथाविसृष्टैरेकहेलया ।।८१
स्फुरत्फलैः शरकुलैर्बभ्रुसेनां व्यमर्दयत् ।
इतस्ततश्चमूनाथविक्षिप्तशरकोटिभिः ।
विशीर्णगात्रा नकुला नकुलीं पर्यवारयन् ।।८२
अथ सा नकुली बाणी वाङ्मयस्यैकनायिका ।
नकुलानां परावृत्त्या महांतं रोषमाश्रिता ।।८३
अक्षीणनकुलं नाम महास्त्रं सर्वतोमुखम् ।
वह्निज्वालापरीताग्रं संदधे शार्गधन्वनि ।।८४

इस प्रकार से अपनी सेनाओं को नकुलों के द्वारा अभिभूत हुई देख कर तथा अपने सैनिकों को दीन अवलोकन करके करङ्क को बहुत अधिक क्रोध हो गया था ।७८। अन्य भी जो सेनानी थे वे भी बहुत ही हल्के हाथों

वाले और महान बलवान थे ।७९। उनने प्रत्येक नकुल के ऊपर शरों के समूहों की मेघों की भाँति वर्षा की थी। दैत्यों के सेनापतियों के परम प्रौढ़ धनुषों से निकले हुए बाणों ने नकुलों के करोड़ों दाँतों पर अथवा दाँतों के कोनों पर अतीव कठोर घट्टन किया था। अर्थात् जोरदार प्रहार किये थे ।८०। सैकड़ों से भी अधिक सेनानियों के बाणों के समुदायों से आहत नकुलों के वज्र के समान दाँतों से अग्नि की चिनगारियाँ निकल रही थीं। उन पाँचों सेनापतियों ने एक ही हल्ले में मिलकर सेना का विमर्दन कर दिया था। सेनानियों के द्वारा छोड़े हुए बाणों से जो करोड़ों की संख्या में थे विशीर्ण शरीरों वाले विचारे नकुल इधर-उधर घूमते गए नकुली के आस-पास घिरकर समागत हो गये थे ।८१-८२। इसके अनन्तर वाङ्मय की एक देवता वह नकुली नकुलों की परावृत्ति से बड़े भारी क्रोध में भर गयी थी। ।८३। उस नकुली ने अक्षीण नकुल नामक महास्त्र को जिसका सभी ओर मुख था और जो वह्नि की ज्वालाओं से घिरे हुए अग्रभाग वाला था उस को अपने धनुष पर चढ़ाया था ।८४।

तदस्त्रतो विनिष्ठ्यूता नकुलाः कोटिसंख्यकाः ।
वज्राङ्गा वज्रलोमानो वज्रदंष्ट्रा महाजवाः ॥८५
वज्रसाराश्च निबिडा वज्रजालभयंकराः ।
वज्राकारैर्नखैस्तूर्णं दारयन्तो महीतलम् ॥८६
वज्ररत्नप्रकाशेन लोचनेनापि शोभिताः ।
वज्रसंपातसदृशा नासाचीत्कारकारिणः ॥८७
मर्दयन्ति सुरारातिसैन्यं दशनकोटिभिः ।
पराक्रमं बहुविधं तेनिरे ते निरेनसः ॥८८
एव नकुलकोटीभिर्वज्रघोरैर्महाबलैः ।
विनष्टाः प्रत्यवयवं विनेशुर्दानवाधमाः ॥८९
एवं वज्रमयैर्वभ्रुमंडलैः खडिते बले ॥९०
शताक्षौहिणिके संख्ये ते स्वमात्रावशेषिताः ।
अतित्रासेन रोषेण गृहीताश्च चमूवराः ।
संग्राममधिकं तेनुः समाकृष्टशरासनाः ॥९१

उसके अस्त्र से निकले हुए करोड़ों नकुल बाहिर हुए थे जिनके वज्र के समान अङ्ग थे—वज्र जैसे ही लोम थे और वज्र के तुल्य दंष्टाएँ थीं तथा उनका महान् वेग था ।८५। वे सभी वज्र के समसार वाले—निविड़ और वज्र जाल के सदृश भयंकर थे। उनके नख भी वज्र जैसे आकार वाले थे उनसे वे इस महीतल की विदीर्ण कर रहे थे ।८५-८६। वे वज्र रत्न के समान प्रकाश वाले नेत्रों से भी शोभा वाले थे और जैसे वज्र का पात होता है वैसा ही उनका सम्पात भी था। वे अपनी नासिकाओं से चीखें मारने वाले थे ।८७। वे अपने दाँतों के कोनों से असुरों के सेनाओं का मर्दन करते हैं। निरपराधी उन्होंने अनेक प्रकार के पराक्रम को प्रदर्शित किया था ।८८। इस रीति से महान बल वाले तथा वज्र के तुल्य घोर नकुलों की कोटियों से वे अधम दानव अपने शरीरों के प्रत्येक अवयवों से विनष्ट हो गये थे ।८९। इस तरह वज्र पूर्ण नकुलों के मण्डलों से दैत्यों की सेनाएँ छिन्न-भिन्न हो गयी थीं ।९०। सौ अक्षौहिणी की संख्या में वे केवल स्वयं ही बचे थे तब तो उनने बड़े क्रोध से और अत्यधिक त्रास से उन चमूवरों को ग्रहण किया था। अपने धनुषों को खींच कर उन्होंने और अधिक संग्राम किया था ।९१।

तैः समं बहुधा युद्धं तन्वाना नकुलेश्वरी ।
पट्टिशेन करंकस्य चिच्छेद कठिनं शिरः ॥९२

काकवाशितमुख्यानां चतुर्णामपि वैरिणाम् ।
उत्पत्योत्पत्य तार्क्ष्येण व्यलुनादसिना शिरः ॥९३
तादृशं लाघवं दृष्ट्वा नकुल्या श्यामलांबिका ॥९४

बहु मेने महासत्त्वां दुष्टासुरविनाशिनाम् ।
निजांगदेवतत्त्वं च तस्यै श्यामांबिका ददौ ॥९५
लोकोत्तरे गुणे दृष्टे कस्य न प्रीतिसंभवः ।
हतशिष्टा भीतभीता नकुलीशरणं गताः ॥९६
सापि तान्वीक्ष्य कृपया मा भैष्टेति विहस्य च ।
भवद्राज्ञे रणोदंतमशेषं च निबोधत ॥९७
तयैवं प्रेषिताः शीघ्रं तदालोक्य रणक्षितिम् ।

मुदितास्ते पुनर्भीत्या शून्यकायां पलायिताः ॥६८

तदुदंत ततः श्रुत्वा भंडश्चंडो रुषाभवत् ॥६६

उस नकुलेश्वरी ने उनके साथ अनेक प्रकार से संग्राम करते हुए पट्टिश से करङ्क का शिर को काट दिया था जो महान कठिन था ।६२। वे चार शत्रु थे जिनमें काकवाशित प्रमुख था। ऊपर की ओर उछाल खा-खाकर ताक्ष्र्य खड्ग से उनका शिर काट दिया था ।६३। श्यामलाम्बिका ने उस तरह की हाथ की सफाई नकुली की देखी थी और उसको महान सत्व वाली और दुष्ट असुरों के विनाश करने वाली को बहुत मान लिया था। फिर उस श्यामाम्बिका ने अपने अंग का जो देव तत्त्व था वह उसको दे दिया था ।६४-६५। जब अलौकिक गुण दिखाई देता है तो किसके हृदय में प्रीति समुत्पन्न नहीं हुआ करती है। जो भी नकुल मरने से बचे हुए थे वे बहुत ही भयभीत होकर उन नकुली की शरण में गये थे ।६६। उसने भी उनको देखकर कि ये डरे हुए हैं कृपा करके कहा था—डरो मत—और वह हँस गयी थी। उसने कहा था कि आप अपने राजा को इस संग्राम का सब समाचार बतादो ।६७। इस रीति से बस देवी के द्वार भेजे गये उनने उस समय में युद्ध भूमि का अवलोकन किया था और वे भय से मुदित होकर फिर सब शून्य का नगरी में भाग कर चले गये थे ।६८। उस समाचार को सुनकर वह प्रचण्ड भण्डासुर बड़ा क्रुद्ध हुआ था ।६६।

—×—

बलाहाकादि सप्त सेनापति वध वर्णन

हतेषु तेषु रोषांधो निश्वसञ्छून्यकेश्वरः ।

कुजलाशमिति प्रोचे युयुत्साव्याकुलाशयः ॥१

भद्र सेनापतेऽस्माकमभद्रं समुपागतम् ।

करंकाद्याश्चमूनाथाः कन्दलद्भुजविक्रमाः ॥२

सर्पिणीमायया सर्वगीर्वाणमदभंजनाः ।

पापीयस्या तया गूढमायया विनिपातिताः ॥३

बलाहकप्रभृतयः सप्त ये सैनिकाधिपाः ।

तानुदग्रभुजासत्त्वान्प्राहिणु प्रधनं प्रति ॥४

त्रिशतं चाक्षौहिणीनां प्रस्थापय सहैव तैः ।
ते मर्दयित्वा ललितासैन्यं मायापरायणाः ॥५
अये विजयमाहार्य संप्राप्स्यंति ममांतिकम् ।
कीकसागर्भसंजातास्ते प्रचंडपराक्रमाः ॥६
बलाहकमुखाः सप्त भ्रातरो जयिनः सदा ।
तेषामवश्यं विजयो भविष्यति रणांगणे ॥७

उन सबके मर जाने पर वह शून्यक का स्वामी क्रोध से अन्धा हो गया था और लम्बी श्वास लेता हुआ युद्ध करने की इच्छा से पूर्ण अभिप्राय वाले ने कुजलाश से यह कहा था—।१। हे सेनापते ! आप तो परमभद्र हैं और हमारा इस समय अमंगल आकर उपस्थित हो गया है। देखो, बड़े भारी भुजाओं के विक्रम वाले करंक प्रभृति सेनापतिगण जो कि समस्त देवों के मद का भञ्जन करने वाले थे। सर्पिणी माया से पापिनी उसने परम गूढ़ माया के द्वारा सबको मार डाला है ।२-३। अब बलाहक आदि जो उदग्र भुजाओं के सत्व वाले भी हैं उनको युद्ध करने के लिए भेज दो ।४। उनके साथ तीन सौ अक्षौहिणी सेनाएँ भी भेज दो। वे माया में भी कुशल हैं। वे ललिता की सेनाओं का विमर्दन कर डालेंगे ।५। अये ! वे तो विजय करके ही मेरे समीप में वापिस प्राप्त होंगे। वे कीकसा के गर्भ से समुत्पन्न हुए हैं और अधिक प्रचण्ड पराक्रम से समन्वित हैं। जिनमें बलाहक प्रधान है वे सातों भाई हैं और हमेशा ही जयशील रहे हैं। मैं समझता हूँ कि इस युद्ध स्थल में उनकी तो अवश्य ही विजय होगी ।६-७।

इति भंडासुरेणोक्तः कुटिलाक्षः समाह्वयत् ।
बलाहकमुखान्सप्त सेनानाथान्मदोत्कटान् ॥८
बलाहकः प्रथमतस्तस्मात्सूचीमुखोऽपरः ।
अन्यः फालमुखश्चैव विकर्णो विकटाननः ॥९
करालायुः करटकः सप्तैते वीर्यशालिनः ।
भंडासुरं नमस्कृत्य युद्धकौतूहलोल्वणाः ॥१०
कीकसासूनवः सर्वे भ्रातरोऽन्योन्यमावृताः ।
अन्योन्यसुसहायाश्च निर्जग्मुर्नगरांतरात् ॥११

त्रिशताक्षौहिणीसेनासेनान्योऽन्वगमंस्तदा ।
उल्लिखन्ति केतुजालैरंबरे घनमण्डलम् ॥१२
घोरसंग्रामिणीपादाघातैर्मर्दितभूतला ।
पिबन्ति धूलिकाजालैरशेषानपि सागरान् ॥१३
भेरीनिः साणतंपोट्टपणवानकनिस्वनैः ।
नभोगुणमयं विश्वमादधानाः पदे पदे ॥१४

इस रीति से भण्डासुर के द्वारा कहने पर उस कुटिलाक्ष ने परमाधिक मदोत्कट बलाहक प्रमुख सात सेनापतियों को बुलाया था ।८। प्रथम तो बलाहक था—दूसरा सूचीमुख था—अन्य कालमुख था—विकर्ण—विकटानन—करालायु और करकट—ये सात परमाधिक वीर्यशाली थे। उन्होंने भण्डासुर को प्रणाम किया था ये युद्ध के कौतूहल में बहुत उल्वण थे ।९-१०। ये सब कीकसा के पुत्र थे और सभी परस्पर में भाई थे। ये परस्पर में एक दूसरे के सहायक थे और फिर वे लड़ने के लिए नगर के अन्दर से निकलकर चले गये थे ।११। तीन सौ अक्षौहिणी सेनाओं के सेनानीगण भी उस समय में उनके पीछे गये थे। ये अपनी ध्वजाओं के जाल से घन मण्डल को उल्लिखित कर रहे थे ।१२। इन संग्रामिणियों के पैरों ने जो घात हो रहा था उससे भूतल विमर्दित हो रहा था। उस समय में इनकी सेनाओं के निर्गमन से इतनी धूलि उड़ रही थी कि सभी सागरों का जल सूख गया था। इनके कदम-कदम पर भेरी-निःसाण-तम्पोट-पणव-आनक का परम घोर घोष हो रहा था और सम्पूर्ण विश्व को शंकायमान करते हुए गमन कर रहे थे। नभ का गुण शब्द है वह पूरा विश्व शब्दमय हो रहा था ।१३-१४।

त्रिशताक्षौहिणीसेनां तां गृहीत्वा मदोद्धताः ।
प्रवेष्टुमिव विश्वस्मिन्कीकसेयाः प्रतस्थिरे ॥१५
धृतरोषारुणाः सूर्यमंडलोद्दीप्तकंकटाः ।
उद्दीप्तशस्त्रभरणाश्चेलुर्दीप्तोर्ध्वकेशिनः ॥१६
सप्त लोकान्प्रमथितुं ः पिताः पूर्वमुद्धताः ।
भंडासुरेण महता जगद्विजयकारिणा ॥१७

सप्तलोकविमर्देन तेन दृष्ट्वा महाबलाः ।
प्रेषिता ललितासैन्यं जेतुकामेन दुर्धिया ।।१८
ते पतन्तो रणतलमुच्चलच्छत्रपाणयः ।
शक्तिसेनामभिमुखं सक्रोधमभिदुद्रुवुः ।।१९
मुहुः किलकिलारावैर्घोषयंतो दिशो दश ।
देव्यास्तु सैनिकं यत्र तत्र ते जग्मुरुद्धताः ।।२०
सैन्यं च ललितादेव्याः सन्नद्धं शस्त्रभीषणम् ।
अभ्यमित्रीणमभवद्बद्धभ्रुकुटिनिष्ठुरम् ।।२१

ये मद से उद्धत कैकसेय तीन सौ अक्षौहिणी उस सेना को लेकर इस सम्पूर्ण विश्व में प्रवेश मानों कर रहे थे वहाँ से रवाना हुए थे ।१५। ये धारण किए हुए क्रोध से लाल हो रहे थे और सूर्यमण्डल के समान उद्दीप्त कंकट थे । ये शस्त्रों के आभरणों से परम उद्दीप्त थे और इनके दीप्त एवं ऊर्ध्वकेश थे ऐसे परम घोर ये वहाँ से चल दिये थे ।१६। सम्पूर्ण जगत के विजय करने वाले महान भण्डासुर के द्वारा परम उद्धत इनको समस्त सात लोकों का प्रमथन करने के लिए ही भेजा गया था ।१७। जीतने की कामना वाले सातों लोकों को विमर्दित करने वाले उसने अपनी दुष्ट बुद्धि से ही महान बलवान इनको ललिता देवी की सेना में भेजा था ।१८। ये हाथों में छत्रों को ऊपर उठाते हुए रणस्थल में जा रहे थे और फिर शक्ति सेना से सामने बड़े ही क्रोध के साथ धावा बोल दिया था ।१९। बार-बार किल-कारियों की ध्वनियों से दशों दिशाओं को घोषित कर रहे थे तथा जहाँ पर देवी की सेना थी वहाँ पर उद्धत थे ।२०। ललिता देवी की सेना भी सन्नद्ध थी और शस्त्रास्त्रों से वह सेना परम भीषण थी । देवी की सेना भी अपनी भृकुटी तानकर कठोरता से शत्रु के समक्ष में हो गयी थी ।२१।

पाशिन्यो मुसलिन्यश्च चक्रिण्यश्चापरा मुने ।
मुद्‌गरिण्यः पट्टिशिन्यः कोदंडिन्यस्तथापराः ।।२२
अनेकाः शक्तयस्तीव्रा ललितासैन्यसंगताः ।
पिबंत्य इव दैत्याब्धिं सन्निपेतुः सहस्रशः ।।२३
आयातायात हे दुष्टाः पापिन्यो वनिताधमाः ।

मायापरिग्रहैदूरं मोहयंत्यो जडाशयान् ।।२४
नेष्यामो भवतीरद्य प्रेतनाथनिकेतनम् ।
इति शक्तीर्भर्त्सयंतो दानवाश्चक्रुराहवम् ।।२५
काचिच्चिच्छेद दैत्येंद्रं कण्ठे पट्टिशपातनात् ।
तद्गलोद्गलितो रक्तपूर ऊर्ध्वमुखोऽभवत् ।।२६
तत्र लग्ना बहुतरा गृध्रा मंडलतां गताः ।
तैरेव प्रेतनाथस्य च्छत्रच्छविरुदंचिता ।।२७
काचिच्छक्तिः सुराराति मुक्तशक्त्यायुधं रणे ।
लूनतच्छक्तिरेकेन बाणेन व्यलुनीत च ।।२८

हे मुने ! उनमें कुछ तो पाशधारिणी थीं—कुछ मुसलों को ग्रहण किये थीं—दूसरी चक्र धारिणी थीं—कुछ के पास मुद्गर थे तो कुछ पट्टिश लिये थीं तथा कुछ धनुष ग्रहण किये थीं ।२२। ललिता की सेना में संगत अनेक प्रकार की शक्तियाँ थीं । वे सहस्रों की संख्या में वहाँ पर समापतित हो गयीं थीं मानो दैत्यों के सागरों का पान ही कर रही थी ।२३। दैत्यगण कह रहे थे—हे दुष्टाओ ! तुम नारियों में महान अधम हो—आओ ! तुम पापिनी हो । जो जड़ आशयों वाले हैं उनको ही तुम लोग अपनी माया के परिग्रहों से मोहित कर लिया करती हो ।२४। आज तो हम लोग तुम सबको यमराज के घर पर पहुँचा देंगे । हमारे पास ऐसे अत्यन्त भीषण बाण हैं जो फूत्कार मारते हुए भुजंगों के ही तुल्य हैं उन्हीं से तुम मृत्यु प्राप्त करोगी । इस तरह से शक्तियों को भर्त्सना देते हुए ही उन दानवों ने युद्ध किया था ।२५। किसी शक्ति ने दैत्येन्द्र के कण्ठ को पट्टिश के प्रहार से काट दिया था । काटने से जो उसके कण्ठ से रुधिर निकला था वह ऊपर की ओर गया था ।२६। वहाँ पर बहुत से गिद्ध लगे हुए थे जिन्होंने एक मण्डल सा बना लिया था । उन्हीं के द्वारा यमराज का एक छत्र सा बन गया था ।२७। किसी शक्ति ने रण में मुक्त शक्त्यायुध दैत्य को एक ही बाण के द्वारा काट दिया था ।२८।

एका तु गजमारूढा कस्यचिद्दैत्यदुर्मतेः ।
उरः स्थले स्वकरिणा वप्राघातमशिक्षयत् ।।२९

काचित्प्रतिभटारूढं दंतिनं कुम्भसीमनि ।
खड्गेन सहसा हत्वा गजस्य स्वप्रियं व्यधात् ॥३०
करमुक्तेन चक्रेण कस्यचिद्देववैरिणः ।
धनुर्दंडं द्विधा कृत्वा स्वभ्रुवोः प्रतिमां तनोत् ॥३१
शक्तिरन्या शरैः शातैः शातयित्वा विरोधिनः ।
कृपाणपद्मा रोमाल्यां स्वकीयायां मुदं व्यधात् ॥३२
काचिन्मुद्गरपातेन चूर्णयित्वा विरोधिनः ।
रथचक्रनितंबस्य स्वस्य तेनातनोन्मुदम् ॥३३
रथकूबरमुग्रेण कस्यचिद्दानवप्रभोः ।
खड्गेन छिन्दती स्वस्य प्रियमुख्यास्ततान ह ॥३४
अभ्यंतरं शक्तिसेना दैत्यानां प्रविवेश ह ।
प्रविवेश च दैत्यानां सेना शक्तिबलांतरम् ॥३५

एक शक्ति हाथी पर समारूढ़ होकर युद्ध कर रही थी और उसने दुष्ट बुद्धि वाले दैत्य के उरःस्थल में अपने हाथी के द्वारा वप्राघात की शिक्षा दी थी ।२९। किसी शक्ति ने उस हाथी के जिस पर प्रतिभट बैठा हुआ था, कुम्भ स्थल में खंग का प्रहार किया था और उस हाथी के स्वप्रिय को मार डाला था ।३०। अपने हाथ से छोड़े हुए चक्र के द्वारा किसी असुर के धनुष के दो टुकड़े करके स्वभ्रू की प्रतिमा बना दी थी ।३१। अन्य शक्ति के तीक्ष्ण शरों से विरोधियों का वध कर दिया था। कृपाण पद्मा ने अपनी रोमालि में मुद किया था ।३२। किसी शक्ति ने मुद्गर के प्रहार से विरोधियों का चूर्ण किया था। उस ने अपने रथ के पहिए के नितम्ब का उसके द्वारा मुद किया था अर्थात् आनन्द प्राप्त किया था ।३३। किसी दानवों के स्वामी के रथ के कूबर को अपने उग्र खग के द्वारा छेदन करती हुई अपनी प्रीति का विस्तार किया था ।३४। शक्ति की सेना दैत्यों के अन्दर प्रवेश कर गयी थी और दुर्धर दैत्यों की सेना भी शक्ति सेना के भीतर प्रवेश कर गयी थी ।३५।

नीरक्षीरवदत्यंताश्लेषं शक्तिसुरद्विषाम् ।
संकुलाकारतां प्राप्तो युद्धकालेऽभवत्तदा ॥३६

शक्तीनां खड्गपातेन लूनशुण्डारदद्वयाः ।
दैत्यानां करिणो मत्ता महाक्रोडा इवाभवन् ॥३७
एवं प्रवृत्ते समरे वीराणां च भयंकरे ।
अशक्ये स्मर्तु माप्यंतं कातरत्ववतां नृणाम् ।
भीषणानां भीषणे च शस्त्रव्यापारदुर्गमे ॥३८
बलाहको महागृध्रं वज्रतीक्ष्णमुखादिकम् ।
कालदण्डोपमं जंघाकांडे चंडपराक्रमम् ॥३९
संहारगुप्तनामानं पूर्वमग्रे समुत्थितम् ।
धूमवद्धूसराकारं पक्षक्षेपभयंकरम् ॥४०
आरुह्य विविध युद्धं कृतवान्युद्धदुर्मदः ।
पक्षौ वितत्य क्रोशार्धं स स्थितो भीमनिःस्वनैः ।
अंगारकुण्डवच्चञ्चुं विदार्याभक्षयच्चमूम् ॥४१
संहारगुप्तं स महागृध्रः क्रूरविलोचनः ।
बलाहकमुवाहोच्चैराकृष्टधनुषं रणे ॥४२

नीर और क्षीर के ही समान शक्ति सेना और असुरों की सेना एकदम मिल गयीं थीं। उस समय में युद्ध काल में संकुलाकारता को प्राप्त हो गया था।३६। शक्तियों के खंगों के पात से दैत्यों के गज कटी हुई सूँड और दांतों वाले हो गये थे और वे मत्त महान् क्रीड़ों के तुल्य ही हो गये थे।३७। इस प्रकार से वीरों का युद्ध प्रवृत्त हुआ था जो कि कातरता को प्राप्त होने वाले मनुष्य तो उसका स्मरण करने में भी सर्वथा असमर्थ हैं और भीषणों का वह शस्त्रों का व्यापार भी महान् भीषण तथा दुर्गम था।३८। बलाहक महागृध्र—वज्रतीक्ष्ण मुख आदिक-कालदण्डोपम—जंघा काण्ड में प्रचण्ड पराक्रम—संसार गुप्त नाम वाला आगे पूर्व में समुत्थित हुआ था। उसका धूम की तरह धूसर आकार था और पंखों को जब क्षेपण करता था तब बहुत भयंकर हो जाता था।३९-४०। वह युद्ध करने में दुर्मद अनेक प्रकार के वाहनों के ऊपर आरोहण करके उसने युद्ध किया था। वह दोनों पंखों को फैला कर भयानक घोषों के द्वारा आधे कोश तक स्थित हुआ था। अंगारों के कुण्ड की भाँति अपनी चोंच को फैलाकर सेना का विदा-

रण करके वह संहार गुप्त महागिद्ध था जिसके बहुत क्रूर नेत्र थे। रण में धनुष को खींचकर बलाहक को बहुत ऊँचा उठा लिया था।४१-४२।

बलाहको वपुर्धुन्वन्गृध्रपृष्ठकृतस्थितिः।
सपक्षकूटशैलस्थो बलाहक इवाभवत् ॥४३
सूचीमुखश्च दैत्येन्द्र सूचीनिष्ठुरपक्षतिम्।
काकवाहनमारुह्य कठिनं समरं व्यधात् ॥४४
मत्तः पर्वतशृङ्गाभश्चंचूदण्डं समुद्वहन्।
कालदण्ड प्रमाणेन जंघाकाण्डेन भीषणः ॥४५
पुष्करावर्तकसमा जंबालसदृशद्युतिः।
क्रोशगात्रायतौ पक्षावुभावपि समुद्वहन् ॥४६
सूचीमुखाधिष्ठितोऽसौ करटः कटुवासितः।
मर्दयञ्चञ्चुघातेन शक्तीनां मण्डलं महत् ॥४७
अथो फलमुखः फालं गृहीत्वा निजमायुधम्।
कंकमारुह्य समरे चकाशे गिरिसन्निभम् ॥४८
विकर्णाख्यश्च दैत्येद्रश्चमूभर्ता महाबलः।
भेरुंडपतनारूढः प्रचंडयुद्धमातनोत् ॥४९

एक गिद्ध की पीठ पर स्थिति करने वाला बलाहक शरीर को विधूनित करता हुआ सपक्ष कूट शैल पर स्थित बलाहक के ही समान हो गया था।४३। और सूची मुख दैत्येन्द्र सूची के तुल्य निष्ठुर पंखों वाले काक वाहन पर समारूढ़ हुआ था और उसने बड़ा ही कठोर युद्ध किया था।४४। वह मत्त था और पर्वत की चोटी की भाँति उसकी आभा थी—वह चञ्चु दंड का उद्वहन कर रहा था। वह कालदंड के प्रमाण वाले जंघा कांड से बहुत ही भीषण दिखाई दे रहा था।४५। जंबाल के सदृश द्युति वाला पुष्परवर्त्तक के समान था। उसके दोनों पंख एक कोश के बराबर आयत थे। ऐसे पंखों का उद्वहन कर रहा था।४६। सूची मुख पर अधिष्ठित कटुवासित करट शक्तियों के महान् मंडल को चौंच के आघात से विमर्दन कर रहा था।४७। इसके अनन्तर फलमुख अपने आयुध काल को ग्रहण करके कंक पर समारूढ़ हुआ था और पर्वत की भाँति प्रकाशित हो रहा था। विकर्ण

नामक दैत्येन्द्र सेनापति महान् बलवान् था। उसने भेरुण्ड पतन पर समारोहण करके बड़ा भारी युद्ध किया था।४८-४९।

विकटाननामानं विलसत्पट्टिशायुधम्।
उवाह समरे चण्डः कुक्कुटोऽतिभयङ्करः ॥५०
गर्जन्कण्ठस्थरोमाणि हर्षयञ्ज्वलदीक्षणः।
पश्यन्पुरः शक्तिसैन्यं चचाल चरणायुधः ॥५१
करालाक्षश्च भूभर्ता षष्ठोऽन्तन्तगरिष्ठदः।
वज्रनिष्ठुरघोषश्च प्राचलत्प्रेतवाहनः ॥५२
श्मशानमन्त्रशूरेण तेन संसाधितः पुरा।
प्रेतो भूतोसमाविष्टस्तमुवाह रणाजिरे ॥५३
अवाङ्मुखो दीर्घबाहुः प्रसारितपदद्वयः।
प्रेतो वाहनतां प्राप्तः करालाक्षनथावहत् ॥५४
अन्यः करटको नाम दैत्यसेनाशिखामणिः।
मर्दयामासशक्तीनां सैन्यं वेतालवाहनः ॥५५
योजनायतमूर्तिः सन्वेतालः क्रूरलोचनः।
श्मशानभूमौ वेतालो मंत्रेणानेन साधितः ॥५६

अतीव भयङ्कर प्रचण्ड कुक्कुट ने पट्टिश नामक आयुध को ग्रहण करने वाले विकटानन नाम वाले का वहन किया था।५०। कंठ में रहने वाले रोमों को हर्षित करता हुआ और गर्जना करता हुआ वह शक्ति की सेना को देख रहा था तथा उसके नेत्र जाज्वल्यमान थे ऐसा चरणायुध वहाँ से चल दिया था।५१। करालाक्ष नामक राजा जो छठवां था वह अत्यधिक गरिष्ठद था। वज्र के समान ही उसका घोष निष्ठुर था और प्रेत के वाहन वाला था। वह भी चल दिया था।५२। उसने पहिले ही श्मशान मन्त्र शूर ने उसको संसाधित कर लिया था। ऐसे भूत समाविष्ट प्रेत ने रण में उसका वहन किया था। नीचे की ओर मुख वाले—लम्बी भुजा वाले—दोनों पैरों को फैलाये हुए प्रेत के वाहनता को प्राप्त करके कुटिलाक्ष रवाना हुआ था।५३-५४। अन्य जो करट नामक दैत्यों की सेना का स्वामी था वह वेताल के वाहन वाला था और शक्ति की सेना का मर्दन किया था।५५। वह एक

योजन तक आयत था वह बेताल क्रूर नेत्रों वाला था। इस बेताल की भी सिद्धि श्मशान की भूमि में समवस्थित होकर की थी और मन्त्र का जाप करके ही की थी।५६।

मर्दयामास पृतनां शक्तीनां तेन देशितः ।
तस्य बेतालवर्यस्य वर्तमानोंससीमनि ।
बहुधायुध्यत तदा शक्तिभिः सह दानवः ।।५७
एवमेते खलात्मानः सप्तसप्तार्णवोपमाः ।
शक्तीनां सैनिकं तत्र व्याकुलीचक्रुरुद्धताः ।।५८
ते सप्त पूर्वं तपसा सवितारमतोषयन् ।
तेन दत्तो वरस्तेषां तपस्तुष्टेन भास्वता ।।५९
कैकसेया महाभागा भवतां तपसाधुना ।
परितुष्टोऽस्मि भद्रं वो भवन्तो वृणुतां वरम् ।।६०
इत्युक्ते दिननाथेन कैकसेयास्तपःकृशाः ।
प्रार्थयामासुरत्यर्थं दुर्दान्तं वरमीदृशम् ।।६१
रणेषु सन्निधातव्यमस्माकं नेत्रकुक्षिषु ।
भवता घोरतेजोभिर्दहता प्रतिरोधिनः ।।६२
त्वया यदा सन्निहितं तपनास्माकमक्षिषु ।
तदाक्षिविषयः सर्वो निश्चेष्टो भवतात्प्रभो ।।६३

उसके द्वारा आदेशित होकर उसने शक्ति की सेना का मर्दन किया था। उस बेताल की सीमा में वर्त्तमान दानव ने शक्ति की सेना के साथ अनेक प्रकार से युद्ध किया था।५७। इस प्रकार से महान् खल सात सागरों के समान उन सातों ने जो बहुत ही उद्धत थे शक्ति की सेनाओं को व्याकुल कर दिया था।५८। उन सातों ने पहिले तप के द्वारा सविता को प्रसन्न कर लिया था। तपस्या से प्रसन्न होकर सविता ने उनको वरदान दिया था।५९। हे कैकसेयो ! आप महान् भाग वाले हैं अब मैं आपके तप से प्रसन्न हो गया हूँ। आपका कल्याण होगा। आप लोग कोई भी वरदान माँग लो।६०। सूर्य देव के द्वारा इस भाँति कहने पर तप से अतिकृत हुए उन कैक-सेयों ने अत्यन्त दुर्दान्त ऐसा वरदान माँगा था।६१। आप युद्ध स्थल में

हमारे नेत्रों में और कुक्षियों में आकर विराजमान होवें जिससे शत्रुओं को घोर तेजसे दाह होजावे । हे प्रभो ! जब आप तपते हुए हमारी आँखों में सन्निधान करेंगे तो उससे हम जिसको भी देखें वही निश्चेष्ट हो जावे ।६२-६३।

त्वत्सान्निध्यसमिद्धेन नेत्रेणास्माकमीक्षिताः ।
स्तब्धशस्त्रा भविष्यन्ति तिरोधकसैनिकाः ।।६३
ततः स्तब्धेषु शस्त्रेषु वीक्षणादेव नः प्रभो ।
निश्चेष्टा रिपवोऽस्माभिर्हंतव्याः सुकरस्त्वतः ।।६५
इति पूर्वं वरः प्राप्तः कैकसेयैर्दिवाकरात् ।
वरदानेन ते तत्र युद्धे चेरुर्मदोद्धताः ।।६६
अथ सूर्यसमाविष्टनेत्रैस्तैस्तु निरीक्षिताः ।
शक्तयः स्तब्धशस्त्रौघा विफलोत्साहतां गताः ।।६७
कीकसातनयैस्तैस्तु सप्तभिः सत्वशालिभिः ।
विष्टंभितास्त्रशस्त्राणां शक्तीनां नोद्यमोऽभवत् ।।६८
उद्यमे क्रियमाणेऽपि शस्त्रस्तम्भेन भूयसा ।
अभिभूताः सनिश्वासं शक्तयो जोषमासत ।।६९
अथ ते वासरं प्राप्य नानाप्रहरणोद्यताः ।
व्यमर्दयञ्छक्तिसैन्यं दैत्याः स्वस्वामिदेशिताः ।।७०

विपक्ष के योधा आपके सन्निधान वाले हमारे नेत्रों से देखे गये होने पर स्तब्ध शस्त्रों वाले हो जांयगे ।६४। हे प्रभो ! फिर जब सभी शस्त्र स्तब्ध होंगे और हमारे देखने मात्र से ही अवरुद्ध हो जांयगे तो फिर निश्चेष्ट शत्रु हमारे द्वारा आसानी से मारे जाने के योग्य हो जांयगे ।६५। यह पूर्व में ही वर प्राप्त किया था और कैकसेयों ने सूर्य देव से ही ऐसा वरदान पा लिया था । इसी वरदान से मदोद्धत वे उस युद्ध में गये थे ।६६। इसके उपरान्त सभी शक्तियाँ सूर्य के समाविष्ट नेत्रों द्वारा देखी गयी थी और स्तब्ध शास्त्रों वाली होकर उत्साह हीन हो गयीं थीं ।६७। कीकसा के पुत्र सातों के द्वारा जो कि बड़े ही सत्व थे शक्तियों की सेनाओं के शस्त्रास्त्र विष्टम्भित कर दिये गये थे और उनका कुछ भी उद्यम नहीं हुआ था ।

अर्थात् शक्तियां कुछ भी न कर सकीं थीं।६८। उद्यम किये जाने पर भी उसका कुछ भी प्रभाव नहीं हुआ था। क्योंकि बड़ा भारी शस्त्रों का स्तम्भन था। इस विष्टम्भ से अभिभूत हुई शक्तियों को चुप ही रहना पड़ा था। ।६९। फिर दिवस के होने पर वे सब अनेक आयुधों से संयुत होकर अपने स्वामी की आज्ञा से समन्वित होते हुए दैत्यों ने शक्तियों की सेना का विमर्दन किया था।७०।

शक्तयस्तास्तु सैन्येन निर्व्यापारा निरायुधाः।
अक्षुभ्यंत शरैस्तेषां वज्रकङ्कटभेदिभिः ॥७१
शक्तयो दैत्यशस्त्रौघैर्विद्धगात्राः सृतासृजः।
सुपल्लवा रणे रेजुः कङ्कोललतिका इव ॥७२
हाहाकारं वितन्वत्यः प्रपन्ना ललितेश्वरीम्।
चुक्रुशुः शक्तयः सर्वास्तैः स्तंभितनिजायुधाः ॥७३
अथ देव्याज्ञया दण्डनाथा प्रत्यङ्गरक्षिणी।
तिरस्करणिका देवी समुत्तस्थौ रणाजिरे ॥७४
तमोलिप्ताह्वयं नाम विमानं सर्वतोमुखम्।
महामाया समारुह्य शक्तीनामभयं व्यधात ॥७५
तमालश्यामलाकारा श्यामकंचुकधारिणी।
श्यामच्छाये तमोलिप्ते श्यामयुक्ततुरङ्गमे ॥७६
वासन्ती मोहनाभिख्यं धनुरादाय सस्वनम्।
सिंहनादं विनद्येषून्वर्षत्सर्पसन्निभान् ॥७७

वे शक्तियां तो उस समय में शत्रु की सेना के द्वारा निरायुध और निर्व्यापार वाली हो गयी थीं तथा उन दैत्यों के वज्र कङ्कट भेदी शरों के द्वारा क्षुब्ध हो गयी थीं।७१। दैत्यों के शस्त्रों के समुदायों से विद्ध शरीरों वाली हो गयी थीं और उनके शरीरों से रुधिर बह रहा था। वे रण में सुन्दर पत्तों वाली कङ्कोल लताओं की भाँति शोभित हो रही थीं।७२। वे समस्त शक्तियां हाहाकार करती हुई ललिता देवी की शरण में गयी थीं। ये सभी शक्तियां दैत्यों के द्वारा स्तम्भित शस्त्रों वाली होकर रोने लगीं थीं ।७३। इसके अनन्तर देवी की आज्ञा से प्रत्यङ्गरङ्गिणी दण्डनाथा तिरस्कर-

णिका देवी उस रण स्थल में समुत्थित हो गयी थी ।७४। तमोलिप्त नामक सर्वतोमुख विमान पर महामाया ने समारूढ़ होकर शक्तियों के भय को दूर किया था ।७५। वह रथ श्याम कान्ति वाला था-तम से लिप्त और श्याम तुरङ्गमों वाला था। उस पर तमाल के समान श्यामल आकार वाली तथा श्याम कञ्चु को को धारण करने वाली विराजमान थी ।७६। वासन्ती मोहन की अभिख्या वाले धनुष को ग्रहण करके ध्वनि के साथ सिंहनाद करके सर्पों के सदृश बाणों की वर्षा उस देवी ने की थी ।७७।

कृष्णरूप भुजङ्गभानधोमुसलसंनिभाम् ।
मोहनास्त्रविनिष्ठ्यूतान्बाणान्दैत्या न सेहिरे ॥७८
इतस्ततो मर्द्यमाना महामायाशिलीमुखैः ।
प्रकोपं परमं प्राप्ता बलाहकमुखाः खलाः ॥७९
अथो तिरस्करण्यंबा दण्डनाथानिदेशतः ।
अन्धाभिधं महास्त्रं सा मुमोच द्विषतां गणे ॥८०
बलाहकाद्यास्ते सप्त दिननाथवरोद्धताः ।
अन्धास्त्रेण निजं नेत्रं दधिरे च्छादितं यथा ॥८१
तिरस्करणिकादेव्या महामोहनधन्वनः ।
उद्गतेनांधबाणेन चक्षुस्तेषां व्यधीयत ॥८२
अन्धीकृताश्च ते सप्त न तु प्रैक्षन्त किञ्चन ।
तद्वीक्षणस्य विरहाच्छस्तम्भः क्षयं गतः ॥८३
पुनः ससिंहनादं ताः प्रोद्यतायुधपाणयः ।
चक्रुः समरसन्नाहं दैत्यानां प्रजिघांसया ॥८४

वे दैत्यगण कृष्ण स्वरूप से संयुत भुजङ्गों के समान तथा मूसल के सदृश मोहनास्त्र से निकाले गये बाणों को सहन न कर सके थे ।७८। इधर-उधर महामाया के बाणों से मर्दित होते हुए वे खल जिनमें बलाहक प्रधान था परमाधिक प्रकोप को प्राप्त हो गये थे ।७९। अनन्तर में दण्डनाथा के आदेश से तिरस्करिणी अम्बा ने शत्रुओं के युद्ध में अन्धनामक महास्त्र को छोड़ा था ।८०। सूर्य देव के वर से बड़े ही उद्धत हुए वे बलाहक आदि सातों दैत्य उस अन्धास्त्र से अपने नेत्रों को छादित हुए ही धारण किये हुए थे ।

।८१। तिरस्करिणी अम्बा के मोहनास्त्र धनुष से निकले हुए बाण के द्वारा उनके नेत्र बन्द हो गये थे ।८२। अन्धे बनाये गये वे सातों वहाँ पर कुछ भी नहीं देख पाते थे। उनके न देखने से वह शस्त्र का स्तम्भन भी क्षीण हो गया था ।८३। करों में आयुध लिये हुए उन्होंने फिर सिंहनाद करके दैत्यों के हनन करने की इच्छा से युद्ध किया था ।८४।

तिरस्करणिकां देवीमग्रे कृत्वा महाबलाम् ।
सदुपायप्रसङ्गेन भृशं तुष्टा रणं व्यधुः ॥८५
साधुसाधु महाभागे तिरस्करणिकांबिके ।
स्थाने कृततिरस्कारा द्विषामेषां दुरात्मनाम् ॥८६
त्वं हि दुर्जननेत्राणां तिरस्कारमहौषधी ।
त्वया बद्धदृशानेन दैत्यचक्रेण भूयते ॥८७
देवकार्यमिदं देवि त्वया सम्यगनुष्ठितम् ।
अस्मादृशामजय्येषु यदेषु व्यसनं कृतम् ॥८८
तत्त्वयैव दुराचारानेतान्सप्त महासुरान् ।
निहतांल्ललिता श्रुत्वा सन्तोषं परमाप्स्यति ॥८९
एवं त्वया विरचिते दण्डिनीप्रीतिमाप्स्यति ।
मंत्रिण्यपि महाभागा यास्यत्येव परां मुदम् ॥९०
तस्मात्त्वमेव सप्तैतान्निगृहाण रणाजिरे ।
एषां सैन्यं तु निखिलं नाशयाम उदायुधाः ॥९१

उन शक्तियों ने महान् बल वाली उस तिरस्करणी देवी को अपने आगे करके उसके अन्धीकरण के उपाय के प्रसङ्ग से बहुत ही प्रसन्न होकर युद्ध किया था ।८५। वे सभी शक्तियाँ यह कह रही थीं—हे तिरस्कारिणि ! अम्बिके ! हे महाभागे ! बहुत ही अच्छा किया। दुरात्मा इन शत्रुओं को आपने जो तिरस्कार किया है वह बहुत ही उचित किया है ।८६। आप ही इन दुष्टों के नेत्रों के तिरस्कार करने की महौषध हैं। आपके द्वारा दृष्टि के बन्द होने ही से यह दैत्यों का चक्र पराभूत हो रहा है ।८७। हे देवि ! यह तो देवकार्य है जो आपने भलीभाँति किया है। हम जैसी शक्तियों के द्वारा अजेय इनमें जो आपने यह व्यसन उत्पन्न कर दिया है ।८८। अब आपके ही

द्वारा इन महान सात असुरों को निहत हुआ सुनकर ललिता देवी बहुत ही प्रसन्नता को प्राप्त होंगी ।८९। आपके द्वारा ऐसा करने पर दण्डिनी देवी भी प्रीति को प्राप्त हो जाँयगी और महाभागा मन्त्रिणी देवी भी बहुत अधिक सन्तोष को प्राप्त हो जाँयगी ।९०। इस कारण से अब आप ही इन सातों का युद्धाङ्गण में वध कीजिए । इनकी जो सम्पूर्ण सेना है उसको आयुध ग्रहण कर हम विनष्ट कर देती हैं ।९१।

इत्युक्त्वा प्रेरिता ताभिः शक्तिभिर्युद्धकौतुकात् ।
तमोलिप्तेन यानेन बलाहकबलं ययौ ॥९२
तामायांतीं समावेक्ष्य ते सप्ताथ सुराधमाः ।
पुनरेव च सावित्रं वरं सस्मरुरंजसा ॥९३
प्रविष्टमपि सावित्रं नाशकं तन्निरोधने ।
तिरस्कृतं तु नेत्रस्थं तिरस्करणितेजसा ॥९४
वरदानास्त्ररोषांधं महाबलपराक्रमम् ।
अस्त्रेण च रुषा चांधं बलाहकमहासुरम् ।
आकृष्य केशेष्वसिना चकर्तांतर्धिदेवता ॥९५
तस्य वाहनगृध्रस्य लुनाना पत्रिणा शिरः ।
सूचीमुखस्याभिमुखं तिरस्करणिकाव्रजत् ॥९६
तस्य पट्टिशपातेन विलूय कठिनं शिरः ।
अन्येषामपि पञ्चानां पञ्चत्वमकरोच्छनैः ॥९७
तैः सप्तदैत्यमुण्डैश्च ग्रथितान्योन्यकेशकैः ।
हारदाम गले कृत्वा ननादांतर्धिदेवता ॥९८

इस प्रकार से कहे जाने पर उन शक्तियों के द्वारा प्रेरित हुई उस तिरस्करिणी देवी ने युद्ध कौतुक से तमोलिप्त यान के द्वारा बलाहक की सेना में गमन किया था ।९२। उस देवी को आती हुई देखकर उन सातों अधम असुरों ने फिर भी उसी सूर्य देव के दिये हुए वरदान कर तुरन्त ही स्मरण किया था ।९३। वह सावित्र वरदान प्रविष्ट भी हुआ था जो कि उसके निरोध का विनाशक था किन्तु तिरस्करणी के तेज से वह भी तिरस्कृत हो गया था ।९४। वरदानास्त्र के रोष से अन्धा तथा महान बल और पराक्रम

वाला वह असुर था। अस्त्र से और रोष से अन्धे उस महासुर बलाहक के केशों को पकड़ कर उस देवी ने अपनी ओर खींच लिया था और अन्धे बना देने वाली देवी ने उसका शिर तलवार से काट डाला था।९५। उसका जो वाहन गिद्ध था उसका भी शिर पत्री के द्वारा काटकर वह तिरस्कारिणी देवी सूची मुख के सामने गयी थी।९६। उसके शिर को पट्टिश के प्रहार से काट डाला था और शेष जो पाँच रहे थे उनके भी सबके शिर धीरे-धीरे उस देवी ने काटकर मौत के घाट सबको उतार दिया था।९७। उन सातों असुरों के मुण्ड परस्पर में केशों के द्वारा बंधे हुए थे। उनका एक हार सा बनाकर गले में डालकर तिरस्करिणी देवी गर्जना कर रही थी।९८।

मस्तमपि तत्सैन्यं शक्तयः क्रोधमूच्छिताः।
हत्वा तद्रक्तसलिलैर्बह्वीः प्रावाहयन्नदीः ॥९९

तत्राश्चर्यमभूद्भूरि महामायांबिकाकृतम्।
बलाहकादिसेनान्यां दृष्टिरोधनवैभवात् ॥१००

हतशिष्यः कतिपयाबहु वित्रासनस्ऽकुलाः।
शरणं जग्मुरत्यार्त्ताः क्रन्दंत शून्यकेश्वरम् ॥१०१

दंडिनीं च महामायां प्रशंसन्ति मुहुर्मुहुः।
प्रसादमपरं चक्षुस्तस्या आदाय पिप्रियुः ॥१०२

साधुसाध्विति तत्रस्थाः शक्तयः कम्पमौलयः।
तिरस्करणिकां देवीमश्लाघंत पदे पदे ॥१०३

क्रोध से मूच्छित उन शक्तियों ने उन असुरों की सम्पूर्ण सेना का हनन कर दिया था तथा उनके रुधिर की बहुत से नदियों को प्रवाहित कर दिया था।९९। बलाहक आदि बड़े-बड़े सेनानियों की दृष्टि के रोधन करने के वैभव से जो कि महामाया अम्बिका के द्वारा किया गया था वहाँ पर उस समय में बड़ा आश्चर्य हो गया था।१००। मरने से जो भी कुछ बच गये थे वे सब बहुत ही भयभीत होकर असुर बहुत आर्त्त होकर शून्यकेश्वर की शरण में रुदन करते हुए पहुँच गये थे और वे महामाया दण्डिनी की बारम्बार प्रशंसा कर रहे थे और उसको दूसरी प्रसन्नता से चक्षु प्राप्त करके वे प्रसन्न भी हुए थे।१०१-१०२। वहाँ पर जो शक्तियाँ थीं उनने बहुत अच्छा हुआ—यह कहकर अपना शिर हिलाते हुए पद-पद पर तिरस्करिणी देवी की श्लाघा की थी।१०३।

———

विषंग पलायन वर्णन

ततः श्रुत्वा वधं तेषां तपोबलवतामपि ।
न्यश्वसत्कृष्णसर्पेन्द्र इव भंडो महासुरः ॥१
एकांते मंत्रयामास स आहूय महोदरौ ।
भण्डः प्रचंडशौंडीर्यः कांक्षमाणो रणे जयम् ॥२
युवराजोऽपि सक्रोधो विषंगेण यवीयसा ।
भंडासुरं नमस्कृत्य मंत्रस्थानमुपागमत् ॥३
अत्याप्तैर्मंत्रिभिर्युक्तः कुटिलाक्षपुरः सरैः ।
ललिताविजये मंत्रं चकार क्वथिताशयः ॥४
भंडउवाच—
अहो बत कुलभ्रंशः समायातः सुरद्विषाम् ।
उपेक्षामधुना कर्तुं प्रवृत्तो बलवान्विधिः ॥५
मद्भृत्यनाममात्रेण विद्रवंति दिवौकसः ।
तादृशानामिहास्माकमागतोऽयं विपर्ययः ॥६
करोति बलिनं क्लीवं धनिनं धनवर्जितम् ।
दीर्घायुषमनायुष्कं दुर्धाता भवितव्यता ॥७

इसके अनन्तर महासुर भंड ने जब महान बलवान और वरदानी उन सातों का वध सुना तो वह उस समय में काले सर्प के ही समान निश्वास लेने लगा था ।१। महान शौण्डीर्य वह रण में विजय की इच्छा वाला होकर एकान्त में महोदरों को बुलाते हुए उनके साथ भंडासुर ने मन्त्रणा की थी। ।२२। युवराज भी क्रोध युक्त हुआ था और छोटे भाई विषङ्ग के साथ वहाँ उपस्थित हुआ था । उसने भंडासुर को नमस्कार किया था और फिर वह भी मन्त्रणा के स्थान पर प्राप्त हो गया था ।३। वे उसके मन्त्री बहुत ही विश्वास पात्र थे जिनमें कुटिलाक्ष आदि अग्रणी थे । बिगड़े हुए विचार वाले उस भंड ने उनके साथ ललिता के विजय करने की मन्त्रणा की थी ।४। भंड ने कहा—अहो ! अब तो असुरों के कुल का विनाश ही प्राप्त हो गया है । यह विधि बड़ा बलवान् है इसने हम लोगों की ओर में उपेक्षा ही करने में अपनी प्रवृत्ति करती है ।५। मेरे भृत्यों के नाम से ही देवगण भाग जाया

करते हैं। ऐसे हमारा भी इस समय में विपरीत समय उपस्थित हो गया है ।६। यह होनहार ऐसो बलवान है कि यह बलवान को क्लीव (नपुंसक) और धनवान को भी धनहीन कर दिया करती है। जो दीर्घ आयु वाला है उसको आयुहीन कर दिया करती है। इस होनो का प्रहार बड़ा ही कठिन है ।७।

क्व सत्वमस्मद्बाहूनां क्वेयं दुर्ल्ललिता वधूः ।
अकांड एव विधिना कृतोऽयं निष्ठुरो विधिः ॥८
सर्पिणीमाययोदग्रास्तया दुर्घटशौर्यया ।
अधिसंग्रामभूचक्रं सेनान्यो विनिपातिताः ॥६
एवमुद्दामदर्पाढ्या वनिता कापि मायिनी ।
यदि संप्रहरत्यस्मान्धिग्वलं नो भुजार्जितम् ॥१०
इमं प्रसंगं वक्तुं च जिह्वा जिह्वेति मामकी ।
वनिता किमु मत्सैन्यं मर्दयिष्यति दुर्मदा ॥११
तदत्र मूलच्छेदाय तस्या यत्नो विधीयताम् ।
मया चारमुखाज्ज्ञाता तस्या वृत्तिर्महाबला ॥१२
सर्व्वेषामपि सैन्यानां पश्चादेवावतिष्ठते ।
अग्रतश्चलितं सैन्यं पयहस्तिरथादिकम् ॥१३
अस्मिन्नेव ह्यवसरे पार्ष्णिग्राहो विधीयताम् ।
पार्ष्णिग्राहमिमं कर्तुं विषंगश्चतुरो भवेत् ॥१४

हमारी भुजाओं का बल तो कहाँ अर्थात् उस कितना विशाल है और यह दुर्ललिता वधू कहाँ है अर्थात् नारी की शक्ति हमारे सामने सर्वथा तुच्छ है। अनवसर में ही विधाता के ऐसा निष्ठुर विधान कर दिया है कि हमारा विनाश इन अबला नारियों द्वारा हो रहा है ।८। दुर्घट शूरता वाली सर्पिणी माया के द्वारा बड़े-बड़े उदग्र सेनानी गण संग्राम भूमि में मारे गये हैं ।६। इस रीति से उद्दाम दर्प से संयुत कोई माया वाली नारी यदि हमारा संहार कर देती है तो हमारी बाहुओं के द्वारा जो भी बल अर्जित किया गया है उसको धिक्कार ही है ।१०। इस प्रसङ्ग को कहने में भी मेरी जिह्वा लज्जित होती है। क्या यह दुर्मदा स्त्री हमारी सेना का मर्दन कर देगी

।११। इसलिए उसके मूल का उच्छेदन करने के लिए कोई यत्न करना ही चाहिए। मैंने दूतों के मुख से सुना है कि उसकी वृत्ति महा बलवती है ।१२। वह सब सेना के वह पीछे ही रहती है और उसके आगे हाथी-घोड़े और सेनाएँ सब चला करती हैं ।१३। अब इसी अवसर पर उसका पार्ष्णिग्राह करो। इस पार्ष्णिग्राह में अर्थात् पीछे पहुँचकर उसको पकड़ने में विषङ्ग बहुत कुशल है ।१४।

तेन प्रौढमदोन्मत्ता बहुसंग्राममदुर्मदाः ।
दश पञ्च च सेनान्यः सह यांतु युयुत्सया ॥१५
पृष्ठतः परिवारास्तु न तथा सन्ति ते पुनः ।
अल्पैस्तु रक्षिता वै स्यात्तेनैवासौ सुनिग्रहा ॥१६
अतस्त्वं बहुसन्नाहमाविधाय मदोत्कटः ।
विषंग गुप्तरूपेण पार्ष्णिग्राहं समाचर ॥१७
अल्पीयसी त्वया सार्द्धं सेना गच्छतु विक्रमात् ।
सज्जाश्चलंतु सेनान्यो दिक्पालविजयोद्धताः ॥१८
अक्षौहिण्यश्च सेनानां दश पञ्च चलंतु ते ।
त्वं गुप्तवेषस्तां दुष्टां सन्निपत्य दृढं जहि ॥१९
सैव निःशेषशक्तीनां मूलभूता महीयसी ।
तस्याः समूलनाशेन शक्तिवृन्दं विनश्यति ॥२०
कंदच्छेदे सरोजिन्या दलजालमिवांभसि ।
सर्वेषामेव पश्चाद्यो रथश्चलति भासुरः ॥२१

उस विषंग के साथ युद्ध करने की इच्छा से बड़े प्रौढ़ और मदोन्मत्त दश पाँच सेनानी भी जावें ।१५। उनके पीछे की ओर कोई परिवार नहीं है। वह बहुत थोड़े से सैनिकों के द्वारा रक्षित है अतः सबका निग्रह आसान है ।१६। इसीलिए मदोत्कट तुम बहुत संग्राम न करके गुप्त रूप से विषंग को समाचरण करो ।१७। आपके साथ बहुत थोड़ी सेना जावे और सेनानी सज्जित होकर चलें जो विक्रम से दिक्पालों के भी विजय करने से उद्धत हैं ।१८। पन्द्रह अक्षौहिणी सेनाएं भी जावें और तुम गुप्त वेष वाले होकर दुष्टा उसको मार डालो ।१९। वह ही सम्पूर्ण शक्तियों की बहुत बड़ी मूल

स्वरूपा है। उसके समूल विनाश से ही सम्पूर्ण शक्तियों का समुदाय विनष्ट हो जायगा।२०। जिस प्रकार से सरोजिनी के कन्द के उच्छेदन करने पर जल में उसके दलों का बिनाश हो जाया करता है। सबके पीछे ही जो एक बड़ा भासुर रथ चला करता है।२१।

दशयोजनसंपन्ननिजदेहसमुच्छ्रयः ।
महामुक्तातपत्रेण सर्वोद्ध्वं परिशोभितः ॥२२
वहन्मुहुर्वीज्यमानं चामराणां चतुष्टयम् ।
उत्तुंगकेतुसंघातलिखिताम्बुदमंडलः ॥२३
तस्मिन्रथे समायाति सा दृष्टा हरिणेक्षणा ।
निभृतं संनिपत्य त्वं चिह्नेनानेन लक्षिताम् ॥२४
तां विजित्य दुराचारां केशेष्वाकृष्य मर्दय ।
पुरतश्चलिते सैन्ये सत्त्वशालिनि सा वधूः ॥२५
स्त्रीमात्ररक्षा भवतो वशमेष्यति सत्वरम् ।
भवत्सहायभूतायां सेनेन्द्राणामिहाभिधा ॥२६
शृणु यैर्भवतो युद्धे साह्यकार्यमतंद्रितैः ।
आद्यो मदनको नाम दीर्घजिह्वो द्वितीयकः ॥२७
हुबको हुलुमुलुश्च कक्लसः कक्लिवाहनः ।
शुक्लसः पुण्ड्रकेतुश्च चंडबाहुश्च कुक्कुरः ॥२८

वह रथ दशयोजन से सम्पन्न अपने कलेवर की ऊँचाई वाला है। सबके ऊपर एक छत्र पर रहा करता है जो बड़े-बड़े मुक्ताओं से विनिर्मित है और परिशोभित है।२२। वह चार चमरों के द्वारा बार-बार बीज्यमान रहता है अर्थात् चार चमर उस पर ढुराये जाया करते हैं। उस पर एक बहुत ऊँची ध्वजा टंगी रहा करती है जो अम्बुदों के मंडल तक पहुँचती है।२३। ऐसे ही उस रथ पर वह हरिण के समान सुन्दर नेत्रों वाली आया करती है। तुम चुपचाप इसी चिह्न से उसको लक्षित कर लेना और उस पर धावा करके उस दुराचारिणी को जीतकर उसके केश खींचकर मर्दन करना। आगे सत्वशाली सेना चलने पर वह बधू स्त्रियों के ही द्वारा रक्षित है।२४-२५। अतः आपके वश में शीघ्र ही आ जायगी। आपकी सहायता

करने वाले सेनानियों के ये नाम हैं ।२६। सुनिए, आपकी सहायता के कार्य में जो भी हैं वे पूर्ण सावधान होंगे । पहिला मदनक नामक है—दूसरा दीर्घ जिह्व है ।२७। हुबक—हुलुमुलु—कक्लस—कल्कि वाहन—थुक्लस—पुण्ड्र-केतु चण्ड बाहु—कुक्कुर ये सब नामों वाले होंगे ।२८।

जम्बुकाक्षो जंभनश्च तीक्ष्णशृङ्गस्त्रिकंटकः ।
चन्द्रगुप्तश्च पंचैते दश चोक्ताश्चमूवराः ॥२९
एकैकाक्षौहिणीयुक्ताः प्रत्येकं भवता सह ।
आगमिष्यन्ति सेनान्यो दमनाद्या महाबलाः ॥३०
परस्य कटकं नैव यथा जानाति ते गतिम् ।
तथा गुप्तसमाचारः पार्ष्णिग्राहं समाचर ॥३१
अस्मिन्कार्ये सुमहतां प्रौढिमानं समुद्वहन् ।
विषंग त्वं हि लभसे जयसिद्धिमनुत्तमाम् ॥३२
इति मंत्रितमंत्रोऽयं दुर्मंत्री भंडदानवः ।
विषंगं प्रेषयामास रक्षितं सैन्यपालकैः ॥३३
अथ श्रीललितादेव्याः पार्ष्णिग्राहकृतोद्यमे ।
युवराजानुजे दैत्ये सूर्योऽस्तगिरिमाययौ ॥३४
प्रथमे युद्धदिवसे व्यतीते लोकभीषणे ।
अंधकारः समभवत्तस्य बाह्यं चिकीर्षया ॥३५

जम्बुकाक्ष—जंभन—तीक्ष्णभृंग—त्रिकण्टक—और चन्द्रगुप्त ये पन्द्रह श्रेष्ठ सेनानी हैं ।२९। ये सब एक-एक अक्षौहिणी सेना से समन्वित होकर आपके साथ रहेंगे । महान बल वाले दमन प्रभृति भी सेनानी गण आयेंगे ।३०। तुम्हारी गति को शत्रु की सेना जिस तरह से न जान पावे उसी भाँति परम गुप्त समाचरण वाला होकर पार्ष्णिग्राह का समाचरण करो ।३१। इस कार्य में महान पुरुषों की प्रौढ़ता का उद्वहन करते हुए ही हे विषंग ! परम उत्तम जय सिद्धि को प्राप्त करोगे ।३२। दुर्मन्त्रणा वाले उस भंड ने इस तरह से ऐसी मन्त्रणा करते हुए सैन्य पालकों के द्वारा रक्षित करके विषंग को भेजा था ।३३। इसके अनन्तर श्री ललिता देवी के पार्ष्णिग्राह के उद्योग

में युवराजानुज दैत्य के होने पर सूर्य अस्ताचल पर चला गया था ।३४। लोक भीषण प्रथम युद्ध के दिवस में पार्ष्णिग्राह के करने की इच्छा से उसको अन्धकार हो गया था ।३५।

महिषस्कंधधूम्राभ वनक्रोडवपुद्यु ति ।
नीलकण्ठनिभच्छायं निबिडं पप्रथे तमः ।।३६
कु जेषु पिंडितमिव प्रधावदिव सन्धिषु ।
उज्जिहानमिव क्षोणीविवरेभ्यः सहस्रशः ।।३७
निर्गच्छदिव शैलानां भूरि कन्दरमंदिरान् ।
क्वचिद्दीपप्रभा जाले कृतकातरचेष्टितम् ।।३८
दत्तावलंबनमिव स्त्रीणां कर्णोत्पलत्विषि ।
एकीभूतमिव प्रौढदिङ्नागमिव कज्जले ।
आबद्ध मैत्रकमिव स्फुरच्छाद्वलमंडले ।।३९
कृतप्रियाश्लेषमिव स्फुरंतीष्वसियष्टिषु ।
गुप्तप्रविष्टमिव च श्यामासु वनपंक्तिषु ।।४०
क्रमेण बहुलीभूतं प्रससार महत्तमः ।
त्रियामावामनयना नीलकंचुकरोचिषा ।।४१
तिमिरेणावृतं विश्वं न किंचित्प्रत्यपद्यत ।
असुराणां प्रदुष्टानां रात्रिरेव बलावहा ।।४२

अब उस अन्धकार के स्वरूप का वर्णन किया जाता है जो उस समय में वहाँ छाया हुआ था—वह अन्धकार महिष के स्कन्ध के तुल्य धूम्र आभा वाला था। उसकी कान्ति वन क्रोड़ के वपु सदृश थी—नीलकण्ठ पक्षी के समान उसकी कान्ति थी—ऐसा बहुत ही घना अन्धकार छा गया था ।३६। वह तम कुञ्जों में पिण्डित सा हो रहा था तथा सन्धियों में दौड़ सी लगा रहा था वह अन्धकार सहस्रों भूमि के विवरों से बाहिर की ओर निकल सा रहा था ।३७। पर्वतों की कन्दराओं से मानों वह अन्धकार बाहिर निकलकर आ रहा था। कहीं पर वह दीपों की प्रभा के जाल में कातर चेष्टित कर रहा था ।३८। स्त्रियों के कानों के उत्पल की कान्ति में मानों उस तम ने

समाश्रम ग्रहण किया था। प्रौढ़ दिङ्नाग की भाँति कज्जल में वह अन्धकार एकीभूत-सा हो रहा था और स्फुरित शाद्वल के मंडल में मित्रता सी आवद्ध कर रहा था।३६। स्फुरण करती हुई असियष्टियों में प्रिया के आश्लेष सा वह तम कर रहा था। श्याम वनों की पंक्तियों में गुप्त रूप से वह प्रविष्ट-सा हो रहा था। वह अन्धेरी रात्रि सुन्दर नेत्रों वाली रमणी है जो अपनी नीली कंचुकी की कान्ति से समन्वित है। ऐसे अन्धकार से सम्पूर्ण विश्व समावृत हो गया था और कुछ भी सूझ नहीं रहा था। पूरे दुष्ट असुरों को तो रात्रि ही बल देने वाली हुआ करती है।४१-४२।

तेषां मायाविलासोऽयं तस्यामेव हि वर्धते ।
अथ प्रचलितं सैन्यं विषंगेण महौजसा ॥४३
धौतखड्गलताच्छायावर्धिष्णु तिमिरच्छटम् ।
दमनाद्याश्च सेनान्यः श्यामकंकटधारिणः ॥४४
श्यामोष्णीषधराः श्यामवर्णसर्वपरिच्छदाः ।
एकत्वमिव संप्राप्तास्तिमिरेणातिभूयसा ॥४५
विषंगमनुसंचेलुः कृताग्रजनमस्कृतिम् ।
कूटेन युद्धकृत्येन विजिगीषुर्महेश्वरीम् ॥४६
मेघडंबरकं नाम दधे वक्षसि कंकटम् ।
यथा तस्य निशायुद्धानुरूपो वेषसंग्रहः ॥४७
तथा कृतवती सेना श्यामलं कंचुकादिकम् ।
न च दुंदुभिनिस्वानो न च मर्द्दलगर्जितम् ॥४८
पणवानकभेरीणां न च घोषविजृंभणम् ।
गुप्ताचाराः प्रचलितास्तिमिरेण समावृताः ॥४६

उन असुरों का यह माया का विलास उस अँधेरी रात्रि में ही बढ़ा करता है। इसके उपरान्त महान् ओज वाले विषंग के साथ सेना रवाना हुई थी।४३। दमन प्रभृति सेनानीगण श्याम कङ्कट के धारण करने वाले हैं और अन्धकार की छटा धौत खड्ग की कान्ति को बढ़ाने वाला था।४४। वे सब श्याम पगड़ी के धारण करने वाले थे और उनके समस्त परिच्छद भी श्याम वर्ण के ही थे। अत्यधिक अन्धकार से आवृत हुए वे सब एकता को

प्राप्त जैसे हो गये थे।४५। अपने बड़े भाई को नमस्कार करने वाले विषंग के पीछे चल दिये थे। वह विषंग कूट युद्ध के द्वारा महेश्वरी के जीतने की इच्छा वाला था।४६। उसने मेघडम्बर नाम वाले कञ्चुट को वक्षः स्थल पर धारण किया था। उसके वेष का संग्रह भी निशा के युद्ध के ही अनुरूप था।४७। उसी भाँति से सेना ने भी श्याम वर्ण के कंचुक आदि धारण किये थे। उस समय में न तो किसी दुन्दुभि का घोष था और न कोई मर्द्दल की ही गर्जना थी।४८। प्रणव-आनक और भेरियों की भी उस समय में ध्वनि नहीं हुई थी। वे सबके सब गुप्त समाचरण वाले आकार से समावृत होते हुए रवाना हुए थे।४९।

परैरदृश्यगतयो विष्कोशीकृतरिष्टयः ।
पश्चिमाभिमुखं यांति ललितायाः पताकिनीम् ॥५०
आवृतोत्तरमार्गेण पूर्वभागमशिश्रियन् ।
निश्वासमपि सस्वानमकुर्वंतः पदे पदे ॥५१
सावधानाः प्रचलिताः पार्ष्णिग्राहाय दानवाः ।
भूयः पुरस्य दिग्भागं गत्वा मन्दपराक्रमाः ॥५२
ललितासैन्यमेव स्वान्सूचयंत प्रपृच्छतः ।
आगत्य निभृतं पृष्ठे कवचच्छन्नविग्रहाः ॥५३
चक्रराजरथं तुंगं मेरुमंदरसंनिभम् ।
अपश्यन्नतिदीप्ताभिः शक्तिभिः परिवारितम् ॥५४
तत्र मुक्तातपत्रस्य वर्त्तमानामधः स्थले ।
सहस्रादित्यसंकाशां पश्चिमामुखीं स्थिताम् ॥५५
कामेश्वर्यादिनित्याभिः स्वसमानसमृद्धिभिः ।
नर्मालापविनोदेन सेव्यमानां रथोत्तमे ॥५६

ये सब ऐसे वहाँ से चले थे कि दूसरों के द्वारा न देखे जावें। इन्होंने रिष्टियों को म्यानों से निकाल लिया था। ललिता की सेना के पश्चिम की ओर मुह करके ही ये गमन कर रहे थे।५०। आवृत उत्तर मार्ग से इन्होंने पूर्व भाग का समाश्रय ग्रहण किया था। वे पद-पद पर अपने निःश्वासों की ध्वनि को भी चलने में नहीं कर रहे थे।५१। दानवगण बहुत

ही सावधान होकर पार्ष्णिग्राह के लिए चल दिये थे। फिर पुर के दिग्भाग में जाकर मन्द पराक्रम वाले हो गये थे।५२। ललिता देवी की सेना भी अपने लोगों को सूचना दे रही थी। वे कवचों से ढके हुए शरीरों वाले पीछे की ओर चुपचाप आ गये थे।५३। और उन्होंने ऊँचे तथा मेरु गिरि के समान चक्रराज रथ को देखा था जो अत्यधिक प्रदीप्त शक्तियों से परिवारित था।५४। वहाँ पर मुक्ता निर्मित्त आतपत्र (छत्र) के नीचे वह देवी विराजमान थी। सहस्रों सूर्यों के सदृश कान्ति वाली और पश्चिम की मुख किये हुए स्थित थीं।५५। उस उत्तम रथ में अपने ही समान समृद्धि से संयुत कामेश्वरी आदि नित्याओं के साथ नर्म आलाप के विनोद से सेव्यमान हो रहीं थी।५६।

तां तथाभूतवृत्तांतामतादृशरणोद्यमाम ।
पुरोगतं महत्सैन्यं वीक्षमाणं सकौतुकम् ।।५७

मन्वानश्च हि तामेव विषंगः सुदुराशयः ।
पृष्ठवंशे रथेंद्रस्य घट्टयामास सैनिकैः ।।५८

तत्राणिमादिशक्तीनां परिवारवरूथिनी ।
महाकलकलं चक्रुरणिमाद्याः परः शतम् ।।५९

पट्टिशैर्द्रुघणैश्चैव भिंदिपालैर्भुशुण्डिभिः ।
कठोरवज्रनिर्घातनिष्ठुरैः शक्तिमंडलैः ।।६०

मर्दयंतो महासत्त्वाः समरं बहुमेनिरे ।
आकस्मिकरणोत्साहविपर्याविष्टविग्रहम् ।।६१

अकांडक्षुभितं चासीद्रथस्थं शक्तिमंडलम् ।
विपाटैः पाटयामासुरदृश्यैरंध्रकारिणः ।।६२

ततश्चक्ररथेंद्रस्य नवमे पर्वणि स्थिताः ।
अदृश्यमानशस्त्राणामदृश्यनिजवर्मणाम् ।।६३

तिमिरच्छन्नरूपाणां दानवानां शिलीमुखैः ।
इतस्ततो बहु क्लिष्टं छन्नवर्मितमर्मवत् ।।६४

उस प्रकार से वर्त्तमान तथा अताद्दशों की शरणागति के उद्यम वाली को देखा था। उसके सामने महान् सेना कौतुक पूर्वक देख रही थी।५७। बुरे आशय वाले विषंग ने उसी को मान लिया था कि यही वह देवी है। उस रथेन्द्र के पीछे की ओर में सैनिकों द्वारा घट्टन किया था।५८। वहाँ पर अणिमा आदि शक्तियों के परिवार की सेनाओं ने महान् कलकल किया था अणिमा आदिक सैकड़ों से भी अधिक थीं।५९। पट्टिश—द्रुघण—भिन्दिपाल—भुशुण्डी—कठोर वज्र के समान निर्घात से निष्ठुर शक्तियों के मण्डलों से युद्ध हुआ था।६०। महान् सत्त्व वाले असुर मर्दन करते हुए उस समर को बहुत मानने लगे थे। उस रथ में संस्थित शक्तियों का मण्डल अचानक रणोत्साह के विपर्य से आविष्ट विग्रहों वाला हो गया था और अनवसर में क्षोभयुत हुआ था। अन्धकारों ने अदृश्य विपाटों से पाटित कर दिया था।६१-६२। इसके अनन्तर वे नवम चक्र रथेन्द्र के पर्व पर संस्थित थे। अदृश्यमान निजवर्मों वाले—अदृश्य शस्त्रों वाले तथा अन्धकार से छन्न स्वरूपों वाले दानवों के बाणों से शक्तियों का मण्डल छन्नवर्मित की भाँति इधर-उधर बहुत कष्टित हुआ था।६३-६४।

शक्तीनां मंडलं तेने क्रन्दनं ललितां प्रति ।
पूर्वानुक्रमतस्तत्र संप्राप्तं सुमहद्भयम् ।।६६
कर्णाकर्णिकयाकर्ण्य ललिता कोपमादधे ।
एतस्मिन्नंतरे मंडश्चण्डदुर्मंत्रिपंडितः ।।६६
दशाऽक्षौहिणिकायुक्तं कुटिलाक्षं महौजसम् ।
ललितासैन्यनाशाय युद्धाय प्रजिघाय सः ।।६७
यथा पश्चात्कलकलं श्रुत्वाग्रे वर्तिनी चमूः ।
नागच्छति तथा चक्रे कुटिलाक्षो महारणम् ।।६८
एवं चोभयतो युद्धं पश्चादग्रे तथाऽभवत् ।
अत्यन्ततुमुलं चासीच्छक्तीनां सैनिके महत् ।।६९
नक्तसत्त्वाश्च दैत्येन्द्रास्तिमिरेण समावृताः ।
इतस्ततः शिथिलता कंटके निन्युरुद्धताः ।।७०

और उसने ललिता देवी के पास क्रन्दन किया था। वहाँ पर पूर्व अनुक्रम से महान् भय प्राप्त हो गया था।६५। कानों-कानों से ललिता देवी

ने सुना तो बड़ा ही अधिक कोप किया था। इसी बीच में दुष्ट मन्त्रियों से मन्त्रणा करके चण्ड भण्ड ने दश अक्षौहिणी से संयुत—महस् ओज वाले कुटिलाक्ष को ललिता की सेना के विनाश करने के लिये भेजा था।६६-६७। जिस रीति से पीछे की ओर कल-कल ध्वनि को सुनकर आगे वाली सेना न आ सके इसी प्रकार से कुटिलाक्ष ने महान् संग्राम किया था।६८। इसी तरह से पीछे और आगे दोनों ओर था वह युद्ध हुआ था और वह युद्ध शक्तियों के सैन्य में महान् तुमुल हुआ था।६९। रात्रि में सत्व वाले दैत्येन्द्र थे जो तिमित से समावृत थे और उद्धतों ने कण्टक में शिथिलता को प्राप्त कर दिया था।७०।

विषंगेण दुराशेन धमनाद्यैश्चमूवरैः।
चमूभिश्च प्रणहिता न्यपतञ्छत्रुकोटयः ॥७१
ताभिर्दैत्यास्त्रमालाभिश्चक्रराजरथो वृतः।
बकावलीनिबिडतः शैलराज इवाबभौ ॥७२
आक्रांतपर्वणाधस्ताद्विषंगेण दुरात्मना।
मुक्त एकः शरो देव्यास्तालवृंतमचूर्णयत् ॥७३
अथ तेनाव्याहितेन संभ्रान्ते शक्तिमण्डले।
कामेश्वरीमुखा नित्या महांतं क्रोधमाययुः ॥७४
ईषद्भृकुटिसंसक्तं श्रीदेव्या वदनांबुजम्।
अवलोक्य भृशोद्विग्ना नित्या दधुरतिश्रमम् ॥७५
नित्या कालस्वरूपिण्यः प्रत्येकं तिथिविग्रहाः।
क्रोधमुद्वीक्ष्य सम्राज्ञ्या युद्धाय दधुरुद्यमम् ॥७६
प्रणिपत्य च तां देवीं महाराज्ञीं महोदयाम्।
ऊचुर्वाचमकांडोत्थां युद्धकौतुकगद्गदाम् ॥७७

बुरे आशय वाले विषंग ने धमनादि श्रेष्ठ सेनापतियों के और सेनाओं के द्वारा प्रणहित शत्रु की कोटियाँ निपतित कर दी थीं।७१। उन दैत्यों के अस्त्रों की मालाओं से वह चक्रराज रथ ढक गया था और वह बकों की पंक्तियों से ढके हुए शैल राज की ही भाँति शोभित हो गया था।७२। आक्रान्त पर्व के नीचे दुरात्मा विषंग के द्वारा छोड़े हुए एक बाण ने देवी के तालवृन्त का चूर्ण कर दिया था।७३। इसके पश्चात् अव्याहत उसके द्वारा

शक्तियों का मण्डल हो गया तो ऐसा होने पर कामेश्वरी प्रमुख जो नित्याएँ थीं उनको बड़ा भारी क्रोध हो गया था ।७४। थोड़ा-सा भृकुटियों से संसक्त श्री देवी के मुख कमल को देखकर नित्याओं को बहुत ही उद्वेग हो गया था और उन्होंने अत्यधिक श्रम किया था ।७५। नित्याएं काल के ही स्वरूप वाली थीं और प्रत्येक तिथि के विग्रह वाली थीं । उन्होंने साम्राज्ञी के क्रोध को देखकर युद्ध करने का विशेष उद्यम किया था ।७६। उनने महान् उद्यम से समन्विता उस महाराज्ञी को प्रणिपात करके उस समय अनवसर में उत्थित और युद्ध के कौतुक से गद्‌गद वाणी कही थी ।७७।

तिथिनित्या ऊचुः–

देवदेवी महाराज्ञी तवाग्रे प्रेक्षितां चमूम् ।
दंडिनीमन्त्रनाथादिमहाशक्तचभिपालिताम् ।।७८
धर्षितुं कातरा दुष्टा मायाच्छद्मपरायणाः ।
पार्ष्णिग्राहेण युद्धेन बाधंते रथपुङ्गवम् ।।७९
तस्मात्तिमिरसंछन्नमूर्तीनां विबुधद्रुहाम् ।
शमयामो वयं दर्पं क्षणमात्रं विलोकय ।।८०
या वह्निवासिनी नित्या या ज्वालामालिनी परा ।
ताभ्यां प्रदीपिते युद्धे द्रष्टुं शक्ताः सुरद्विषः ।।८१
प्रशमय्य महादर्पं पार्ष्णिग्राहप्रवर्तिनाम् ।
सहसैवागमिष्यामः सेवितुं श्रीपदांबुजम् ।
आज्ञां देहि महाराज्ञि मर्दनार्थं दुरात्मनाम् ।।८२
इत्युक्ते सति नित्याभिस्तथास्त्विति जगाद सा ।
अथ कामेश्वरी नित्या प्रणम्य ललितेश्वरीम् ।
तया संप्रेषिता ताभिः कुण्डलीकृतकार्मुका ।।८३
सा हन्तुं तान्दुराचारान्कूटयुद्धकृतक्षणान् ।
बालारुणमिव क्रोधारुणं वक्त्रं वितन्वती ।।८४

तिथि नित्याओं ने कहा था—हे देवदेवि ! आप तो महाराज्ञी हैं। आपके आगे प्रेक्षित सेना है जो दण्डिनी और मन्त्रनाथा आदि महान्

शक्तियों से अभिपालित हैं ।७८। ये माया के कपट में परायण दुष्ट और कातर दैत्यगण पार्णिग्राह युद्ध के द्वारा इस श्रेष्ठ रथ को धर्षित करने के लिए बाधा पहुँचा रहे हैं ।७९। इस कारण से अन्धकार से संच्छन्न कलेवरों वाले असुरों के घमण्ड को हम एक ही क्षण में शमन करती हैं—आप देखिये ।८०। जो वह्निवासिनी देवी है और दूसरी जो ज्वालामालिनी है, उन दोनों के द्वारा प्रदीपित युद्ध में ये असुर देखे जा सकते हैं ।८१। पार्ष्णिग्राह में अर्थात् पीछे से घेरा डालकर युद्ध करने में प्रवृत्त हुए दैत्यों के महान् दर्प को प्रशान्त कर हम लोग तुरन्त ही आपके श्री चरण कमलों की सेवा करने के लिए वापिस आ जायेंगी । हे महाराज्ञि ! आप हमको आज्ञा दीजिए कि हम उन दुरात्माओं का मर्दन कर डालें ।८२। नित्याओं के द्वारा इस प्रकार से कहने पर उस महादेवी ने कहा था—ऐसा ही करो । इसके पश्चात् नित्या कामेश्वरी ने ललितेश्वरी को प्रणाम किया था और उसके द्वारा भेजी हुई शक्तियों ने धनुष को खींचकर कुण्डलीकृत बना दिया था ।८३। उसने बाल सूर्य के समान क्रोध से लाल अपने मुख करके क्रूर युद्ध करने वाले उन दुष्टात्माओं का हनन करने के लिए धावा बोल दिया था और उनसे कहा था ।८४।

रे रे तिष्ठत पापिष्ठा मायानिष्ठाश्छिनद्मि वः ।
अन्धकारमनुप्राप्य कूटयुद्धपरायणाः ।।८५
इति तान्भर्त्सयंती सा तूणीरोत्खातसायकात् ।
पर्वावरोहणं चक्रे क्रोधेन प्रस्खलद्‌गतिः ।।८६
सज्जकार्मुकहस्ताश्च भगमालापुरः सराः ।
अन्याश्च चलिता नित्याः कृतपर्वावरोहणाः ।।८७
ज्वालामालिनि नित्या च या नित्या वह्निवासिनी ।
सज्जे युद्धे स्वतेजोभिः समदीपयतां रणे ।।८८
अथ ते दुष्टदनुजाः प्रदीप्ते युद्धमण्डले ।
प्रकाशवपुषस्तत्र महांतं क्रोधमाययुः ।।८९
कामेश्वर्यादिका नित्यास्ताः पञ्चदश सायुधाः ।
ससिंहनादास्तान्दैत्यानमृद्नन्नेव हेलया ।।९०

महाकलकलस्तत्र समभूद्युद्धसीमनि ।
मन्दरक्षोभिताम्भोधिवेल्लत्कल्लोलमण्डलः ॥९१

हे पापियो ! ठहरो, माया में संस्थित तुमको मैं कभी छिन्न-भिन्न करे देती तुम लोग अन्धकार को प्राप्त करके इस क्रूर युद्ध में तत्पर हो रहे हो ।८५। इस रीति से उनको फटकारती हुई उससे अपने तूणीर से उत्खात सायक से पर्वारोहण किया था और क्रोधावेश से उसकी गति प्रस्खलित हो रही थी ।८६। वे कार्मुकों को हाथों में सजाये हुई थीं और उनके आगे भगमालायें थीं और अन्य नित्याएं पर्वारोहण करके चल दी थीं ।८७। ज्वाला मालिनी नित्या और वह्निवासिनी नित्या ये दोनों ही युद्ध में सज्जित हुई थी और इन्होंने अपने तेजों से रण में प्रदीपन कर दिया था । ।८८। इसके अनन्तर युद्ध मण्डल के प्रदीप्त होने पर वे दुष्ट दनुज प्रकाशित कलेवरों वाले हो गये थे और उनको बड़ा क्रोध हो गया था ।८९। कामेश्वरी प्रभृति नित्याएं आयुधों से सयुत पन्द्रह थीं । वे सिंहनादों से ही उन दैत्यों का मर्दन सा हो कर रही थीं । इस समय में यहाँ युद्ध में महान् कल-कल हो गया था । वह कलकल ऐसा ही था मानों मन्दराचल से क्षोभित्त सागर के बिलोडन से तरंगों के मण्डल का हो रहा होवे ।९०-९१।

ताश्च नित्यावलत्क्वाणकंकणैर्युधि पाणिभिः ।
आकृष्य प्राणकोदंडास्तेनिरे युद्धमुद्धतम् ॥९२
यामत्रितयपर्यंतमेवं युद्धमवर्त्तत ।
नित्यानां निशितैर्बाणैरक्षौहिण्यश्च संहृता ॥९३
जघान दमनं दुष्टं कामेशी प्रथमं शरैः ।
दीर्घजिह्वं चमूनाथं भगमाला व्यदारत् ॥९४
नित्यक्लिन्ना च भेरुण्डा हुम्बेकं हुलुमल्लकम् ।
कक्लसं वह्निवासा च निजघान शरैः शतैः ॥९५
महावज्रेश्वरी बाणैरभिनत्केकिवाहनम् ।
पुक्लसं शिवदूती च प्राहिणोद्यमसादनम् ॥९६
पुण्ड्रकेतुं भुजोद्दंडं त्वरिता समदारयत् ।
कुलसुन्दरिका नित्या चंडबाहुं च कुक्कुरम् ॥९७

अथ नीलपताका च विजया च जयोद्धते ।
जम्बुकाक्षं जृंभणं च व्यतन्वातां रणे बलिम् ।
सर्वमंगलिका नित्या तीक्ष्णशृङ्गमखंडयत् ।
ज्वालामालिनिका नित्या जघानोग्रं त्रिकर्णकम् ॥९८

उन नित्याओं ने बड़ा ही उद्धत युद्ध किया था। उन्होंने प्राण को दंड को आकर्षित किया था। प्रहार करने के समय में नित्याओं के करों के वलयों और कङ्कड़ों का क्वणन हो रहा था।९२। तीन प्रहर तक ऐसा घोर युद्ध हुआ था। नित्याओं के तीक्ष्ण बाणों से अक्षौहिणियों का संहार हो गया था।९३। सर्व प्रथम कामेशी ने शरों से दुष्ट दमन को निहत किया था भग-माला ने सेनापति दीर्घ जिह्व को मार डाला था।९४। नित्य क्लिन्ना और भेरुण्डा ने हुम्बेक और हुल्लुमल्लक को वह्निवासा ने क्लस को तीक्ष्ण शरों से निहत कर दिया था।९५। महा वज्रेश्वरी ने बाणों से केकि वाहन को मार डाला था और शिव दूती ने पुल्कस को यमपुर भेज दिया था।९४। त्वरिता ने पुण्ड्रकेतु को पैने बाणों से मार डाला था। कुल सुन्दरिका नित्या ने चंड बाहु और कुक्कुर को मार दिया था।९७। इसके अनन्तर नील पताका और विजया दोनों ही जय करने में उद्धत थीं इन्होंने जम्बुकाक्ष और जृम्भण को मार दिया था। सर्वमङ्गलिका नित्या ने तीक्ष्ण भृङ्ग का हनन किया था। ज्वाला मालिनिका नित्या ने उग्र त्रिकर्णक का हनन कर दिया था।९८।

चन्द्रगुप्तं च दुःशीलं चित्रं चित्रा व्यदारत् ।
सेनानाथेषु सर्वेषु निहतेषु दुरात्मसु ॥९९
विषंगः परमः क्रुद्धश्चचाल पुरतो बली ।
अथ यामाव शेषायां यामिन्यां घटिकाद्वयम् ॥१००
नित्याभिः सह संग्रामं विधाय स दुराशयः ।
अशक्यत्वं समुद्दिश्य चक्राम प्रपलायितुम् ॥१०१
कामेश्वरीकराकृष्टचापोत्थैर्निशितैः शरैः ।
भिन्नवर्मा दृढतरं विषंगो विह्वलाशयः ।
हतावशिष्टै र्योधैश्च सार्धमेव पलायितः ॥१०२

ताभिर्न निहतो दुष्टो यस्माद्वध्य: स दानव: ।
दण्डनाथाशरेणैव कालदण्डसमत्विषा ।।१०३
तस्मिन्पलायिते दुष्टे विषंगे भंडसोदरे ।
स विभाता च रजनी प्रसन्नाश्चाभवन्दिश: ।।१०४
पलायितं रणे वीरमनुसर्त्तुं मनौचिती ।
इति ता: समरान्नित्यास्तस्मिन्काले व्यरंसिषु: ।।१०५

चित्रा ने चन्द्रगुप्त को और दुश्शील चित्र का विमर्दन किया था। सभी दुरात्मा सेनापतियों के निहत हो जाने पर विषङ्ग युद्ध के लिये चल दिया था।९९। विषम बड़ा बलवान् था और बहुत क्रुद्ध होकर आगे गया था। इसके बाद रात्रि में एक प्रहर शेष रह गया था जो केवल दो घड़ी का समय था।१००। उस दुष्ट आशय वाले ने नित्याओं के साथ संग्राम किया था किन्तु जब उसने यह देखा था जीत नहीं हो सकती है तो उसने वहाँ से भाग जाने की ही इच्छा की थी।१०१। कामेश्वरी के हाथों से खींचे हुए धनुष से निकले हुए पैने बाणों से विषङ्ग का कवच छिन्न हो गया था और वह बहुत अधिक विह्वल हो गया था। वहाँ पर जो भी मरने से बचे थे उन सभी सैनिकों के ही साथ में भाग खड़ा हुआ था।१०२। उन्होंने उस दुष्ट का वध नहीं किया था क्योंकि वह दानव तो कालदण्ड की कान्ति वाले दण्डनाथा के ही शर से मारे जाने योग्य था।१०३। भण्ड के सहोदर उस दुष्ट विषंग के भाग जाने पर वह रात्रि विभात हो गयी थी और सब दिशाएँ प्रसन्न हो गयी थीं।१०४। रण में भागे हुए के पीछे गमन करना उचित नहीं था अतएव वे नित्याएँ उस संग्राम से उस समय विरत हो गयी थीं।१०५।

दैत्यशस्त्रव्रणस्यंदिशोणितप्लुतविग्रहा: ।
नित्या: श्रीललितां देवीं प्रणिपेतुर्जयोद्धता: ।।१०६
इत्थं रात्रौ महद्युद्धं तत्र जातं भयंकरम् ।
नित्यानां रूपजालं च शस्त्रक्षतमलोकयत् ।।१०७
श्रुत्वोदन्तं महाराज्ञी कृपापांगेन सैक्षत ।
तदालोकनमात्रेण व्रणो निर्व्रणतामगात् ।।१०८
नित्यानां विक्रमैश्चापि ललिता प्रीतिमासदत् ।।१०९

दैत्यों के शस्त्रों से व्रणों से निकलते हुए रुधिर से उन नित्याओं का कलेवर रक्त से समाप्लुत था और उसी दशा में वे जयोद्धत होती हुई श्री ललिता देवी को आकर प्रणाम करने लगी थीं ।१०६। इस प्रकार से वहाँ पर रात्रि में भयकर महान युद्ध हुआ था । श्री ललिता देवी ने नित्याओं के उस स्वरूप को जो शस्त्रों से विक्षत था, देखा था । सम्पूर्ण वृत्तान्त सुनकर महाराज्ञी ने कृपा दृष्टि से उनको देखा था । उनके देखने मात्र से ही समस्त व्रण भरकर ठीक हो गये थे ।१०७-१०८। नित्याओं के उस विक्रम से भी ललिता देवी को बड़ी प्रसन्नता हुई थी ।१०९।

भंडपुत्र वध वर्णन

दशाक्षौहिणिकायुक्तः कुटिलाक्षोऽपि वीर्यवान् ।
दण्डनाथाशरैस्तीक्ष्णै रणे भग्नः पलायितः ।
दशाक्षौहिणिकं सैन्यं तया रात्रौ विनाशितम् ॥१
इमं वृत्तांतमाकर्ण्य भण्डः क्षोभमथाययौ ।
रात्रौ कपटसंग्रामं दुष्टानां निर्जरद्रुहाम् ।
मंत्रिणी दण्डनाथा च श्रुत्वा निर्वेदमापतुः ॥२
अहो बत महत्कष्टं दैत्यैर्देव्याः समागतम् ।
उत्तानबुद्धिभिर्दूरमस्माभिश्चलितं पुरः ॥३
महाचक्ररथेंद्रस्य न जातं रक्षणं बलैः ।
एतं त्ववसरं प्राप्य रात्रौ दुष्टैः पराकृतम् ॥४
को वृत्तांतोऽभवत्तत्र स्वामिन्या किं रणः कृतः ।
अन्या वा शक्तयस्तत्र चक्रुर्युद्धं महासुरैः ॥५
विमृष्टव्यमिदं कार्यं प्रवृत्तिस्तत्र कीदृशी ।
महादेव्याश्च हृदये कः प्रसंगः प्रवर्तते ॥६
इति शंकाकुलास्तत्र दण्डनाथापुरोगमाः ।
मंत्रिणीं पुरतः कृत्वा प्रचेलुर्ललितां प्रति ॥७

अथ प्रथम युद्ध दिवसः—दश अक्षौहिणियों से युक्त वीर्यशाली भी दण्डनाथा के तीक्ष्ण शरों से रण में भग्न होकर भाग गया था। उस देवी ने दश अक्षौहिणी सेना नष्ट कर दी थी।१। भण्डासुर इस वृत्तान्त को सुनकर बड़ा क्षुब्ध हो गया था। रात्रि में कपटयुक्त संग्राम जो दुष्ट असुरों ने किया था, इसको सुनकर मन्त्रिणी और दण्डनाथा दोनों को बड़ा निर्वेद हुआ था।२। दैत्यों के द्वारा देवी का समागमन का होना बहुत ही कष्ट का विषम है। उत्तान बुद्धि वाली हम आगे दूर चल दी थीं।३। महाचक्र रथेन्द्र की रक्षा सैनिकों द्वारा नहीं हुई है। रात्रि में इसी अवसर को पाकर दुष्टों ने पराकरण किया था।४। वहाँ पर क्या वृत्तान्त हुआ था? क्या स्वामिनी ने युद्ध किया था? अथवा अन्य शक्तियों ने असुरों के साथ युद्ध किया?।५। यह कार्य विभ्रष्ट हो गया-वहाँ पर कैसी प्रवृत्ति है और महादेवी के हृदय में कौन सा प्रसंग प्रवृत्त हो रहा है।६। इस रीति से उन शक्तियों ने जिनमें दण्डनाथा अग्रणी थी शंका से बेचैन होकर मन्त्रिणी को अपना अगुआ बनाकर ललिता के समीप में गमन किया था।७।

शक्तिचक्रचमूनाथाः सर्वास्ताः पूजिता द्रुतम्।
व्यतीतायां विभावर्यां रथेंद्रं पर्यवारयन्॥८
अवरुह्य स्वयानाभ्यां मंत्रिणीदण्डनायिके।
अधस्तात्सैन्यमावेश्य तदारुरुहतू रथम्॥९
क्रमेण नव पर्वाणि व्यतीत्य त्वरितक्रमैः।
तत्तत्सर्वगतैः शक्तिचक्रैः सम्यङ् निवेदितैः॥१०
अभजेतां महाराज्ञीं मंत्रिणीदण्डनायिके।
ते व्यजिज्ञपतां देव्या अष्टांगस्पृष्टभूतले॥११
महाप्रमादः समभूदिति नः श्रुतमंबिके।
कूटयुद्धप्रकारेण दैत्यैरपकृतं खलैः॥१२
स दुरात्मा दुराचारः प्रकाशसमरात्त्रसन्।
कुहकव्यवहारेण जयसिद्धिं तु कांक्षति॥१३
दैवान्नः स्वामिनीगात्रे दुष्टानाममरद्रुहाम्।
शरादिकपरामर्शो न जातस्तेन जीवति॥१४

शक्तिचक्र की सेना की सब स्वामिनी शीघ्र ही पूजित हुईं और विभावरी रात्रि के व्यतीत होने पर उन्होंने रथेन्द्र को चारों ओर से परिवारित कर लिया था ।८। मन्त्रिणी और दण्ड नायिका दोनों अपने यानों से नीचे उतरी थीं और नीचे की ओर सेना को आवेशित करके तब रथ पर समारूढ़ हुई थीं ।९। क्रम से नौ पर्वों को व्यतीत करके शीघ्र क्रमों वे चलीं थीं । उन-उनके सर्वगत शक्ति चक्र जो सम्यक् रीति से निवेदित थे वे युक्त थीं ।१०। मन्त्रिणी और दण्ड नायिका दोनों ने महाराज्ञी का सेवन किया था । उन्होंने देवी के आगे भूमि में साष्टाङ्ग प्रणाम किया था और निवेदित किया था ।११। हे अम्बिके ! महान प्रमाद हो गया है ऐसा हमने श्रवण किया है । उन खल दैत्यों ने कूट युद्ध के प्रकार से आपका अपकार किया है ।१२। वह दुष्ट बुरे आचार वाला प्रकाश में युद्ध से डरकर कुहक व्यवहार से जय की सिद्धि चाहता है ।१३। यह तो दैव की गति है कि उन सुरों के द्रोही दुष्टों का हमारी स्वामिनी के शरीर में शर आदि का स्पर्श नहीं हुआ और उसी से जीवित विद्यमान हैं ।१४।

एकावलंबनं कृत्वा महाराज्ञि भवत्पदम् ।
वयं सर्वा हि जीवामः साधयामः समीहितम् ॥१५
अतोऽस्माभिः प्रकर्तव्यं श्रीमत्यंगस्य रक्षणम् ।
मायाविनश्च दैत्येन्द्रास्तत्र मन्त्रो विधीयताम् ॥१६
आपत्कालेषु जेतव्या भंडाद्या दानवाधमाः ।
कूटयुद्धं न कुर्वन्ति न विशंति चमूमिमाम् ॥१७

प्रथमयुद्धदिवसः—

तथा महेंद्रशैलस्य कार्यं दक्षिणदेशतः ।
शिबिरं बहुविस्तारं योजनानां शतावधि ॥१८
वह्निप्राकारवलयं रक्षणार्थं विधीयताम् ।
अस्मत्सेनानिवेशस्य द्विषां दर्पशमाय च ॥१९
शतयोजनमात्रस्तु मध्यदेशः प्रकल्प्यताम् ।
वह्निप्राकारचक्रस्य द्वारं दक्षिणतो भवेत् ॥२०
यतो दक्षिणदेशस्थं शून्यकं विद्विषां पुरम् ।
द्वारे च बहवः कल्प्याः परिवारा उदायुधाः ॥२१

हे महाराज्ञि ! हम तो सब एक मात्र आपका ही चरण का अवलम्बन ग्रहण करके जीवित हैं और आपके समीहित का साधन करती हैं ।।१५। इसलिए हमको श्रीमती के अङ्ग की रक्षा करनी चाहिए ।१६। भंड आदि महान अधम दानव आपत्ति के समय में ही जीतने के योग्य हैं । ये कूट युद्ध नहीं करते हैं और इस सेना में भी प्रवेश नहीं करते हैं ।१७। उसी भाँति से महेन्द्र पर्वत के दक्षिण भाग में एक बहुत विस्तार वाला जिसकी सीमा सौ योजन की होवे शिविर बनाना चाहिए ।१८। उसकी रक्षा के लिए चारों ओर अग्नि का प्राकार बनाना चाहिए । उसमें हमारी सेना का निवेश होगा और यह द्वेषियों के दर्प का शमन करने के लिए भी होगा ।१९। सौ योजन मात्र इसका मध्य भाग प्रकल्पित किया जावे । वह्नि प्राकार चक्र का द्वार दक्षिण की ओर होना चाहिए ।२०। विद्वेषियों के पुर की स्थिति दक्षिण भाग में है जिसका नाम शून्यक है । उसके द्वार पर आयुध लिए हुए बहुत से परिवार कल्पित रहने चाहिए ।२१।

निर्गच्छतां प्रविशतां जनानामुपरोधकाः ।
अनालस्या अनिद्राश्च विधेयाः सततोद्यताः ।।२२
एवं च सति दुष्टानां कूटयुद्धं चिकीर्षितम् ।
अवेलासु च संध्यासु मध्यरात्रिषु च द्विषाम् ।
अशक्यमेव भवति प्रौढमाक्रमणं हठात् ।।२३
नो चेद्दुराशया दैत्या बहुमायापरिग्रहाः ।
पश्यतोहरवत्सर्वं विलुठंति महद्बलम् ।।२४
मंत्रिण्या दंडनाथाया इति श्रुत्वा वचस्तदा ।
शुचिदन्तरुचा मुक्ता वहन्ती ललिताब्रवीत् ।।२५
भवतीनामयं मन्त्रश्चारुबुद्ध्या विचारितः ।
अयं कुशलधीमार्गो नीतिरेषा सनातना ।।२६
स्वचक्रस्य पुरो रक्षां विधाय दृढसाधनः ।
परचक्राक्रमः कार्यो जिगीषद्भिर्महाजनैः ।।२७
इत्युक्त्वा मन्त्रिणीदंडनाथे सा ललितेश्वरी ।
ज्वालामालिनिकां नित्यामाहूयेदमुवाच ह ।।२८

जनों के उपरोधक निर्गमन करें और प्रवेश करे। ये सब बिना आलस्य वाले अनिद्र और निरन्तर उद्यत रखने चाहिए।२२। ऐसा होने पर दुष्टों का अभीष्ट कूट युद्ध नहीं होगा। और शत्रुओं का असमयों में—सन्ध्याओं में और मध्य रात्रियों में हठ से प्रौढ़ आक्रमण नहीं हो सकने के योग्य होता है।२३। यदि ऐसा नहीं किया जावे तो ये दैत्य बहुत बुरे अभिप्राय वाले तथा बहुत-सी माया के परिग्रह वाले हैं और ये स्वर्णकार के ही समान महान बल का विलुण्ठन कर लिया करते हैं।२४। उस समय में मन्त्रिणी और दण्डनाथा के इस वचन का श्रवण करके शुद्ध दांतों की कान्ति से मुक्ताओं का वहन करती हुई श्री ललिता देवी ने कहा—।२५। आप सबका यह मन्त्र बहुत ही सुन्दर बुद्धि से विचारा हुआ है। यह कुशल बुद्धि का मार्ग है और यह सनातन नीति है।२६। जीत की इच्छा वाले महान जनों को चाहिए कि अपने चक्र के आगे रक्षा करके सुदृढ़ साधन वाला होवे। फिर दूसरे शत्रु के चक्र पर आक्रमण करना चाहिए।२७। उस ललितेश्वरी ने मन्त्रिणी और दण्डनाथा से कहा और ज्वाला मालिनिका को जो नित्या थी बुलाकर यह कहा था।२८।

वत्से त्वं वह्निरूपासि ज्वालामालामयाकृतिः।
त्वया विधीयतां रक्षा बलस्यास्य महीयसः ॥२९

शतयोजनविस्तारं परिवृत्य महीतलम्।
त्रिंशद्योजनमुन्नद्धं ज्वालाकारत्वमाव्रज ॥३०

द्वारयोजनमात्रं तु मुक्त्वान्यत्र ज्वलत्तनुः।
वह्निज्वालात्वमापन्ना संरक्ष सकलं बलम् ॥३१

ज्वालामालिनिकां नित्यामित्युक्त्वा ललितेश्वरी।
महेन्द्रोत्तरभूभागं चलितुं चक्र उद्यमम् ॥३२

सा च नित्यानित्यमयी ज्वलज्ज्वालामयाकृतिः।
चतुर्दशीतिथिमयी तथेति प्रणनाम ताम् ॥३३

तथैव पूर्वनिर्दिष्टं महेन्द्रोत्तरभूतलम्।
कुण्डलीकृत्य जज्वाल शालरूपेण सा पुनः ॥३४

नभोवलयजंबालज्वालामालामयाकृतिः।
बभासे दंडनाथाया मंत्रिनाथचमूरपि ॥३५

हे वत्से ! आप तो ज्वाला मालाओं से परिपूर्ण आकृति वाली वह्नि-रूपा हैं। इस महान बल की रक्षा आपको ही करनी चाहिए।२६। इस महीतल को सौ योजन के विस्तार वाला परिवृत करो और तीस योजन ऊँचा बनाओ जो ज्वालाकार वाला हो।३०। एक योजन मात्र द्वार को छोड़कर अन्यत्र जाज्वल्यमान कलेवर वाला होवे। वह्नि की ज्वाला को प्राप्त होकर सम्पूर्ण सेना को रक्षा करो।३१। उस ललितेश्वरी ने ज्वाला मालिनिका से इतना ही कहा था और फिर महेन्द्र गिरि के उत्तर की भूमि के भाग में चलने का उद्यम किया था।३२। और फिर वह नित्यानित्यमयी थी तथा जलती हुई ज्वालाओं से पूर्ण आकृति वाली थी। वह चतुर्दशी तिथि मयी थी। उसने ऐसा ही होगा—यह कहकर ललितादेवी को प्रणाम किया था।३३। उसी भाँति से पूर्व में निर्दिष्ट महेन्द्र के उत्तर भूतल को कुण्डली कृत बनाकर उसने फिर शाल रूप से ज्वलित कर दिया था।३४। दंडनाथा और मन्त्रिणी की चमू भी ऐसी शोभित हुई थी मानो नभोवलय के जम्बाल से ज्वालाओं की माला से पूर्ण आकृति होवे।३५।

अन्यासामपि शक्तीनां महतीनां महद्‌बलम् ।
विशंकटोदरं सालं प्रविवेश गतबलमा ॥३६

राजचक्ररथेन्द्रं तु मध्ये संस्थाप्य दंडिनी ।
वामपक्षे रथं स्वीयं दक्षिणे श्यामलारथम् ॥३७

पश्चाद्भागे सम्पदेशीं पुरस्ताच्च हयासनाम् ।
एवं संवेश्य परितश्चक्रराजरथस्य च ॥३८

द्वारे निवेशयामास विंशत्यक्षौहिणीयुताम् ।
ज्वलद्दंडायुधोदग्रां स्तम्भिनीं नाम देवताम् ॥३६

या देवी दंडनाथाया विघ्नदेवीति विश्रुता ।
एवं सुरक्षितं कृत्वा शिबिरं योत्रिणी तथा ।
पूषण्युदितभूयिष्ठे पुनर्युद्धमुपाश्रयत् ॥४०

कृत्वा किलकिलारावं ततः शक्तिमहाचमूः ।
अग्निप्राकारकद्वारान्निर्जगाम महारवा ॥४१

इत्थं सुरक्षितं श्रुत्वा ललिताशिबिरोदरम् ।
भूयः संज्वरमापन्नः प्रचण्डो भंडदानवः ।।४२

अन्य शक्तियों का भी महान बल जो कि शक्तियाँ बहुत महान थीं गत क्लम होकर विशंकदोदर शाल में प्रविष्ट हुआ था ।३६। दण्डिनी ने राजचक्र रथेन्द्र को मध्य में स्थापित कर दिया था और उसकी बांई ओर अपना रथ रक्खा था तथा दाहिनी ओर श्यामला का रथ स्थापित किया था ।३७। पीछे के भाग में सम्पदेशी और आगे हयासना को नियुक्त किया था । इस रीति से सब ओर में चक्रराज रथ को संवेशित किया था ।३८। द्वार भाग में स्तम्भिनी नाम वाली देवी को नियोजित किया था जो बीस अक्षौहिणी सेना से समन्वित थी और जलते हुए दण्डायुधों से बहुत ही उदग्र थी ।३६। जो दण्डनाथा की देवी विघ्न देवी—इस नाम से प्रसिद्ध थी उसने इस प्रकार से शिविर को सुरक्षित बना दिया था तथा योत्रिणी-पूषणी और उदित भूयिष्ठा ने फिर युद्ध का उपाश्रय लिया था ।४०। किलकिल की ध्वनि करके वह शक्ति की विशाल सेना अग्नि के प्राकार वाले द्वार बड़ा घोष करती हुई बाहिर निकली थी ।४१। ललिता देवी के शिविर के मध्यभाग को इस प्रकार से सुरक्षित हुआ श्रवण करके वह परम प्रचण्ड भंड दानव पुनः बड़े ही सन्ताप को प्राप्त हो गया था ।४२।

मन्त्रयित्वा पुनस्तत्र कुटिलाक्षपुरोगमैः ।
विषंगेण विशुक्रेणासममात्मसुतैरपि ।।४३
एकौघस्य प्रसारेण युद्धं कर्तुं महाबलः ।
चतुर्बाहुमुखान्पुत्रांश्चतुर्जलधिसन्निभान् ।।४४
चतुरान्युद्धकृत्येषु समाहूय स दानवः ।
प्रेषयामास युद्धाय भण्डश्चण्डक्रुधा ज्वलन् ।।४५
त्रिशत्संख्याश्च तत्पुत्रा महाकाया महाबलाः ।
तेषां नामानि वक्ष्यामि समाकर्णय कुम्भज ।।४६
चतुर्बाहुश्चकोराक्षस्तृतीयस्तु चतुःशिरा ।
वज्रघोषश्चोर्ध्वकेशो महाकायो महाहनुः ।।४७
मखशत्रुर्मखस्कन्दी सिंहघोषः सिरालकः ।
लड्डुनः पट्टसेनश्च पुराजित्पूर्वमारकः ।।४८

स्वर्गशत्रुः स्वर्गबलो दुर्गाख्यः स्वर्गकण्टकः ।
अतिमाया बृहन्माय उपमावश्च वीर्यवान् ।।४९

फिर उसने वहाँ पर कुटिलाक्ष जिनमें प्रमुख था उन सबके साथ मन्त्रणा करके तथा विषङ्ग-विशुक्र और अपने पुत्रों के साथ भी मंत्रणा की थी ।४३। उस महान बलवान ने एक हो साथ सामूहिक प्रसार से युद्ध करने के लिए निश्चय किया था और चार समुद्रों के तुल्य जो चतुर्बाहु प्रमुख चार पुत्र ये उनको नियुक्त किया था ।४४। उस दानव ने चारों को बुलाया था और युद्ध के कृत्यों में नियुक्त किया था । भंडासुर बड़े ही प्रचण्ड क्रोध से जलता हुआ होकर उसने हमको युद्ध के लिए भेज दिया था ।४५। उसके पुत्र संख्या में तीस थे । इनके विशाल शरीर थे और इनमें महान बल विद्यमान था । हे कुम्भज ! उनके सबके नाम भी मैं बतलाऊँगा आप सुनिए ।४६। चतुर्बाहु–चकोराक्ष–चतुःशिरा–-वज्रघोष-ऊर्ध्वकेश-महाकाय–महाहनु–मखशत्रु–मखस्कन्दी–सिंहघोष-शिरालक–लड्डुन-पट्टसेन-पुराजित–पूर्वमारक–स्वर्ग-शत्रु-स्वर्गबल–-दुर्गाख्य-स्वर्ग-कण्टक-अतिमाय-बृहन्माय–उपमाय–वीर्यवान ।४७-४९।

इत्येते दुर्मदाः पुत्रा भण्डदैत्यस्य दुर्धियः ।
पितुः सदृशदोर्वीर्याः पितुः सदृशविग्रहाः ।।५०
आगत्य भण्डचरणावभ्यवंदत भक्तितः ।
तानुद्वीक्ष्य प्रसन्नाभ्यां लोचनाभ्यां स दानवः ।
सगौरवमिदं वाक्यं बभाषे कुलघातक ।।५१
भो भो मदीयास्तनया भवतां कः समो भुवि ।
भवतामेव सत्येन जितं विश्वं मया पुरा ।।५२
शक्रस्याग्नेर्यमस्यापि निर्ऋतेः पाशिनस्तथा ।
कचेषु कर्षणं कोपात्कृतं युष्माभिराहवे ।।५३
अस्त्राण्यपि च शस्त्राणि जानीथ निखिलान्यपि ।
जाग्रत्स्वेव हि युष्मासु कुलभ्रंशोऽयमागतः ।।५४
मायाविनी दुर्ललिता काचित्स्त्री युद्धदुर्मदा ।
बहुभिः स्वसमानाभिः स्त्रीभिर्युक्ता हिनस्ति नः ।।५५

तदेनां समरेऽवश्यमात्मवश्यां विधास्यथ ।
जीवग्राहं च सा ग्राह्या भवद्भिर्ज्वलदायुधैः ॥५६

ये इतने भंडासुर के दुष्ट बुद्धि वाले और दुर्मद पुत्र थे। ये सभी अपने पिता के ही समान तो बाहुबल वाले थे और पिता के तुल्य ही इनका कलेवर था ।५०। उन सबने भक्ति की भावना से भण्डासुर के चरणों में प्रणाम किया था । उस दानव ने प्रसन्न लोचनों से उनको देखा था और बड़े गौरव के साथ उनसे यह वाक्य बोला था और यह अपने समस्त कुल का घातक था ।५१। हे मेरे पुत्रो ! इस भूमण्डल में आपके समान कोई भी नहीं हैं । आप लोगों के ही बल-विक्रम से मैंने पहिले यह समस्त विश्व को जीत लिया था ।५२। तुम सबने युद्धस्थल में कोप से इन्द्र का—अग्नि का—यम का—निर्ऋति का और पाशी के कवचों का कर्षण किया था ।५३। आप लोग सब अस्त्रों को भी जानते हैं । अब आप सबके जाग्रत रहते हुए भी यह हमारे कुल का भ्रंश आ गया है ।५४। कोई दुष्टा—मायाविनी और युद्ध करने में दुर्मदा है जो कि अपने ही सदृश स्त्रियों से संयुत होकर हमको मार रही है ।५५। सो अब इसको युद्ध में अपने वश में अवश्य ही तुम कर लोगे । आप सब जलते हुए आयुधों को लेकर उसको जीवित ही पकड़ लेना ।५६।

अप्रमेयप्रकोपांधान्युष्मानेकां स्त्रियं प्रति ।
सम्प्रेषणमनौचित्यं तथाप्येष विधेः क्रमः ॥५७
इममेकं सहध्वं च शौर्यकीर्तिविपर्ययम् ।
इत्युक्त्वा भण्डदैत्येन्द्रस्तान्प्रहैषीद्रणं प्रति ।
द्विशतं चाक्षौहिणीनां तत्सहायतयाऽहिनोत् ॥५८
द्विशत्यक्षौहिणीसेना मुख्यस्य तिलकायिता ।
बद्धभ्रुकुटयः शस्त्रपाणयो निर्ययुर्गृहात् ॥५९
निर्गमे भण्डपुत्राणां भू प्रकम्पमलम्बत ।
उत्पाता विविधा जाता वित्रस्तं चाभवज्जगत् ॥६०
तान्कुमारान्महासत्त्वांल्लाजवर्षैरवाकिरन् ।
वीथीषु यानैश्चलितान्पौरवृद्धपुरंध्रयः ॥६१

वंदिनो मागधाश्चैव कुमाराणां स्तुति व्यधुः ।
मंगलारार्तिकं चक्रुर्द्वारि द्वारे पुरांगनाः ॥६२
भिद्यमानेव वसुधा कृष्यमाणमिवांबरम् ।
आसीत्तेषां विनिर्याणे घूर्णमान इवार्णवः ॥६३

आप सबका प्रकोप तो अप्रमेय है । आप सब ऐसे वीरों को केवल एक नारी की ओर भेजना उचित नहीं है तथापि यह विधाता का ही ऐसा क्रम है ।५७। यह एक आपकी कीर्त्ति का बड़ा भारी विपर्यय है उसको आप लोग सहन कर लीजिए क्योंकि आपकी बहुत बड़ी शूरता है और एक साधारण नारी पर आक्रमण करना है । यह कह कर उस भण्डासुर ने उन सबको युद्ध में भेजा था । तथा उनकी सहायता के लिए दो सौ अक्षौहिणी सेनाएँ भी भेज दी थीं ।५८। वह दो सौ अक्षौहिणी सेना भी सबमें शिरोमणि थी । वे सभी सैनिक क्रोध से अपनी भृकुटियों को ताने हुए थे और हाथों में हथियार लेकर वहाँ से निकले थे ।५९। जब भण्ड के पुत्रों ने निर्गमन किया था उस समय भूमण्डल काँप उठा था । अनेक उत्पात उत्पन्न हुए थे और सम्पूर्ण जगत् भयभीत हो गया था ।६०। उस पुर की प्रौढ़ स्त्रियों ने वीथियों में यानों के द्वारा चलते हुए महान उलवान उन कुमारों के ऊपर लाजाओं की वर्षा की थी ।६१। वन्दीगण ओर मागधों ने उन कुमारों का स्तवन किया था और पुरकी अंगनाओं ने द्वारों पर उनकी मंगल कामना से आरती की थी ।६२। उस समय में यह भूमि विद्यमान सी हो रही थी और आकाश आकृष्यमाण-सा हो रहा था । उनके निकलने के समय सागर घूर्णमान सा हो गया था ।६३।

द्विशत्यक्षौहिणीसेनां गृहीत्वा भण्डसूनवः ।
क्रोधोद्यद्भ्रुकुटीक्रूरवदना निर्ययुः पुरात् ॥६४
शक्तिसैन्यानि सर्वाणि भक्षयामः क्षणाद्रणे ।
तेषामायुधचक्राणि चूर्णयामः शितैः शरैः ॥६५
अग्निप्राकारावलयं शमयामश्च रंहसा ।
दुर्विदग्धां तां ललितां वन्दीकुर्मश्च सत्वरम् ॥६६
इत्यन्योन्यं प्रवल्गन्तो वीरभाषणघोषणैः ।
आसेदुरग्निप्राकारसमीपं भण्डसूनवः ॥६७

यौवनेन मदेनान्धा भूयसा रुद्धदृष्टय: ।
भ्रुकुटीकुटिलाश्चक्रु: सिंहनादं महत्तरम् ॥६८
विदीर्णमिव तेनासीद्‍ब्रह्मांडं चंडिमस्पृशा ।
उत्पातवारिदोत्सृष्टघोरनिर्घातरंहसा ॥६९
एतस्याननुभूतस्य महाशब्दस्य डम्बर: ।
क्षोभयामास शक्तीनां श्रवांसि च मनांसि च ॥७०

दो सौ अक्षौहिणी सेना को साथ में लेकर उस भण्ड के पुत्र नगर से भृकुटियाँ तानकर क्रूर मुखों वाले होते हुए ही निकल कर चल दिये थे ।६४। वे यही कहते हुए चल रहे थे कि हम समस्त शक्तियों की सेनाओं को खा जायेंगे और रण में एक ही क्षण में अपने तीक्ष्ण बाणों से उनके सभी आयुधों का चूर्ण कर देंगे ।६५। उस अग्नि की चहार दीवारी के वलय को भी वेग से शान्त कर देंगे। उस दुर्विदग्धा ललिता को शीघ्र बन्दी बना डालेंगे ।६६। वे भण्डासुर के पुत्र परस्पर में वीर भाषणों के उद्‍घोषों से बातचीत करते हुए उस अग्नि के प्राकार के समीप में प्राप्त हो गये थे ।६७। यौवन से और बढ़े बढ़े हुए मद से अन्धे हो रहे थे और उनकी दृष्टि रुद्ध हो गयी थी । उन्होंने अपनी भौहों को तिरछी करके बड़ा भारी सिंहनाद किया था ।६८। प्रचण्ड स्पर्श वाले उस सैन्य समुदाय से यह सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड विदीर्ण-सा हो गया था । वह सैन्य समुदाय उत्पातजनक मेघों से उत्कृष्ट घोर निर्घात के वेग वाला था ।६९। इस अनुभूत महान् घोष का डम्बर ऐसा था कि उसने शक्तियों के कानों को और मनों को क्षुब्ध कर दिया था ।७०।

आगत्य ते कलकलं चक्रु: सार्धं स्वसैनिकै: ।
विविधायुधसम्पातमूर्च्छद्‍द्वैमानिकच्छटम् ॥७१
चतुर्बाहुमुखान्भूत्वा भण्डदैत्यकुमारकान् ।
आगतान्युद्धकृत्याय बाला कौतूहलं दधे ॥७२
कुमारी ललितादेव्यास्तस्या निकटवासिनी ।
समस्तशक्तिचक्राणां पूज्या विक्रमशालिनी ॥७३
ललितासदृशाकारा कुमारी कोपमादधे ।
या सदा नववर्षेव सर्वविद्यामहाखनि: ॥७४

बालारुणतनुः श्रोणीशोणवर्णवपुर्लता ।
महाराज्ञी पादपीठे नित्यमाहितसंनिधिः ॥७५
तस्या वहिश्चराः प्राणा या चतुर्थं विलोचनम् ।
तानागतान्भण्डसुतान्संहरिष्यामि सत्वरम् ॥७६
इति निश्चित्य बालांबा महाराज्ञयं व्यजिज्ञपत् ।
मातर्भंडमहादैत्यसूनवो योद्धुमागताः ॥७७

अनेक प्रकार के आयुधों के गिराने से विमानों की छटा को मूच्छित करते हुए उन्होंने वहाँ आकर अपने सैनिकों के साथ कलकल ध्वनि कर दी थी ।७१। चतुर्बाहु जिनमें प्रमुख था ऐसे उन भण्डासुर के कुमारों को आये हुए जानकर जो कि युद्ध के ही लिए समागत हुए थे बाला ने अपने मन में कौतूहल किया था ।७२। उस ललिता देवी के निकट में वास करने वाली कुमारी समस्त शक्तियों के चक्रों की पूज्य और विक्रम वाली थी ।७३। कुमारी ललिता के ही तुल्य आकार वाली थी । उसने कोप किया था जो सदा नूतन वर्षा के ही समान समस्त विद्याओं की बड़ी खान थी ।७४। उसकी श्रोणी बालसूर्य के तुल्य लाल वर्ण की थी तथा उसका शरीर भी शोण (रक्त) था । वह महाराज्ञी के पाद पीठ पर ही नित्य सन्निधान करने वाली थी ।७५। उसके बाहिर संञ्चरण करने वाले प्राण जो चौथा नेत्र ही था । उसने कहा था उन समागत भंड के पुत्रों को मैं शीघ्र मार डालूँगी ।७६। उस बालाम्बा ने यह निश्चय करके महारानी से कहा था—हे माता ! भंडासुर के पुत्र युद्ध करने को आ गये हैं ।७७।

तैः समं योद्धुमिच्छामि कुमारित्वात्सकौतुका ।
स्फुरन्ताविव मे बाहू युद्धकण्डूययानया ॥७८
क्रीडा ममैषा हन्तव्या न भवत्या निवारणं ।
अहं हि बालिका नित्यं क्रीडनेष्वनुरागिणी ॥७९
क्षणं रणक्रीडया च प्रीतिं यास्यामि चेतसा ।
इति विज्ञापिता देवी प्रत्युवाच कुमारिकाम् ॥८०
वत्से त्वमतिमृद्वंगी नववर्षा नवक्रमा ।
नवीनयुद्धशिक्षा च कुमारी त्वं ममैकिका ॥८१

त्वां विना क्षणमात्रं मे न निश्वास: प्रवर्तते ।
ममोच्छ्वसितमेवासि न त्वं याहि महाहवम् ॥८२
दण्डिनी मन्त्रिणी चैव शक्तयोऽन्याश्च कोटिश: ।
संत्येव समरे कर्तुं वत्से त्वं किं प्रमाद्यसि ॥८३
इति श्रीललितादेव्या निरुद्धापि कुमारिका ।
कौमारकौतुकाविष्टा पुनर्युद्धमयाचत ॥८४

मैं कुमारी होने से बड़े कौतुक के साथ उनके साथ युद्ध करना चाहती हूँ। इस युद्ध करने की खुजली से मेरी बाहुएँ फड़क रही हैं।७८। आप मुझे इसके लिए निवारित न करें क्योंकि इस निषेध करने से तो मेरी यह क्रीड़ा का हनन ही हो जायगा। मैं तो छोटी बच्ची हूँ सर्वदा ही क्रीड़ाओं में मेरा अनुराग रहा करता है।७९। क्षणभर रण करने की क्रीड़ा से मुझे बड़ी प्रसन्नता होगी और चित्त में आनन्द होगा। जब इस तरह से देवी से कहा गया था तो ललिता देवी ने उस कुमारिका से कहा था।८०। हे वत्से ! तुम तो बहुत ही कोमल अङ्ग वाली हो--नौ ही वर्ष की हो और नूतन क्रम वाली हो और तुमको नये युद्ध की ही शिक्षा मिली है ऐसी कुमारी तुम मेरी एक ही सैनिका हो।८१। तुम्हारे बिना मुझे एक क्षण भी निश्वास नहीं होता है। तुम तो मेरे श्वास ही हो अत: तुम इस महान संग्राम में मत जाओ।८२। दडिनी और मन्त्रिणी ऐसी अन्य करोड़ों ही शक्तियाँ हैं, हे वत्से ! जो इस संग्राम में उपस्थित ही रहती हैं। तुम ऐसा प्रमाद क्यों कर रही हो ? ।८३। इस रीति से ललिता देवी के द्वारा उस कुमारी को रोका भी गया था तो भी कुमारावस्था के कौतुक से समाविष्ट होकर पुन: युद्ध करने की प्रार्थना उसने की थी।८४।

सुदृढ निश्चयं दृष्ट्वा तस्या: श्रीललितांबिका ।
अनुज्ञां कृतवत्येव गाढमाश्लिष्य बाहुभि: ॥८५
स्वकीयकवचादेकमाच्छिद्य कवचं ददौ ।
स्वायुधेभ्यश्चायुधानि वितीर्य विससर्ज ताम् ॥८६
कर्णीरथं महाराज्ञ्या चापदण्डात्समुद्धृतम् ।
हंसयुग्मशतैर्युक्तमारुरोह कुमारिका ॥८७

तस्यां रणे प्रवृत्तायां सर्वपर्वस्थदेवता: ।
बद्धांजलिपुटा नेमुः प्रधृतासिपरम्परा: ॥८८
ताभि: प्रणम्यमाना सा चक्रराजरथोत्तमात् ।
अवरुह्य तले सैन्यं वर्तमानमगाहत ॥८९
तामायांतीमथो दृष्ट्वा कुमारीं कोपपाटलाम् ।
मंत्रिणीदण्डनाथे च सभये वाचमूचतुः ॥९०
किं भर्तृदारिके युद्धे व्यवसाय: कृतस्त्वया ।
अकांडे किं महाराज्ञया प्रेषितासि रणं प्रति ॥९१

श्री ललिता अम्बा ने उस कुमारी का परम दृढ़ निश्चय समझकर अपनी बाहुओं से खूब अच्छी तरह समालिङ्गन करके उसको युद्ध करने की आज्ञा दी थी ।८५। ललिता देवी ने अपने कवच से एक कवच निकाल कर उसको दिया था और अपने आयुधों से आयुध देकर उसको विदा किया था ।८६। चाप और दंड से समुद्धृत महाराज्ञी का कर्णी रथ था जो सैकड़ों हंसों से युक्त था उस पर कुमारिका ने समारोहण किया था ।८७। उसके रण में प्रवृत्त हो जाने पर सभी पर्वों पर स्थित देवता हाथों को जोड़े हुए असियों को प्रधृत करके प्रणाम करने लगे थे ।८८। उनके द्वारा प्रणाम किये जाने पर वह देवी चक्रराज रथोत्तम से नीचे उतर गयी और वहाँ पर जो सेना थी उसका अवगाहन किया था ।८९। इसके अनन्तर उस कुमारी को कोप से पाटल और आती हुई देखा तो मन्त्रिणी और दंडनाथा ने भययुक्त होकर यह वचन कहे थे ।९०। हे भर्तृदारिके ! क्या आपने युद्ध में व्यवसाय किया है ? महाराज्ञी ने अकाण्ड में यह क्या रण की ओर आपको भेज दिया है ? ।९१।

तदेतदुचितं नैव वर्तमानेऽपि सैनिके ।
त्वं मूर्तं जीवितमसि श्रीदेव्या बालिके यत: ॥९२
निवर्तस्व रणोत्साहात्प्रणामस्ते विधीयते ।
इति ताभ्यां प्रार्थितापि प्राचलद्दृढनिश्चया ॥९३
अत्यन्तं विस्मयाविष्टे मंत्रिणीदण्डनायिके ।
सहैव तस्या रक्षार्थं चेलतुः पार्श्वयोर्द्वयो: ॥९४

अथाग्निवरणद्वारा ताभ्यामनुगता सती ।
प्रभूतसेनायुक्ताभ्यां निर्जगाम कुमारिका ॥६५
सनाथशक्तिसेनानां सर्वासामनुगृह्णती ।
प्रणामांजलिजालानि कर्णीरथकृतासना ॥६६
भंडस्य तनयान्दुष्टानभ्यद्रवदरिंदमा ।
तस्याः प्रादेशिकं सैन्यं कुमार्या न हि विद्यते ॥६७
सर्वं हि ललितासैन्यं तत्सैन्यं समजायत ।
ततः प्रववृते युद्धमत्युद्धतपराक्रमम् ॥६८

हे बालिके ! क्योंकि आप तो श्री देवी के मूर्त्तिमान् जीवन ही हैं अतएव यह उचित नहीं है जबकि सेनाएँ विद्यमान हैं ।६२। आप तो इस समय इस रण करने के उत्साह को त्याग कर लौट जाइए । आपको हमारे प्रणाम किये जाते हैं । इस तरह से उन दोनों के द्वारा प्रार्थना भी की गयी थी तो भी दृढ़ निश्चय वाली वहाँ चल दी थी ।६३। मन्त्रिणी और दण्ड नायिका दोनों अत्यधिक विस्मय से समाविष्ट हो गई थीं और उसके दोनों ओर उसी की रक्षा करने के लिए चल दी थीं ।६४। इसके अनन्तर अग्नि के वरण के द्वारा उन दोनों से अनुगता होती हुई जो बहुत सेना से युक्त थीं कुमारिका वह वहाँ से निर्गत हुई थी ।६५। कर्णीरथ पर विराजमान स्वामी के सहित समस्त शक्तियों की सेनाओं पर अनुग्रह करती हुई वह रवाना हुई थी । उसको मार्ग में सभी प्रणामाञ्जलियाँ कर रहे थे ।६६। शत्रुओं का दमन करने वाली ने भंडासुर के पुत्रों पर आक्रमण कर दिया था । उस कुमारी की प्रादेशिक सेना नहीं थी ।६७। समस्त ललिता की ही सेना ही उसकी सेना हो गयी थी । इसके अनन्तर अतीव उद्धत पराक्रम से संयुत महान् युद्ध प्रवृत्त हो गया था ।६८।

ववर्ष शरजालानि दैत्येन्द्रेषु कुमारिका ।
भण्डासुरकुमारैस्तैर्महाराज्ञो कुमारिका ।
यद्युद्धमतनोत्तत्तु स्पृहणीयं सुरासुरैः ॥६९
अत्यन्तविस्मिता दैत्यकुमारा नववर्षिणीम् ।
कर्णीरथस्थामालोक्य किरंतीं शरमंडलम् ॥१००

क्षणे क्षणे वालिकया क्रियमाणं महारणम् ।
व्यजिज्ञपन्महाराज्ञयै भ्रमंत्यः परिचारिकाः ॥१०१
मंत्रिणीदण्डनाथे च न तां विजहतू रणे ।
प्रेक्षकत्वमनुप्राप्ते तूष्णीमेव बभूवतुः ॥१०२
सर्वेषां दैत्यपुत्राणामेकरूपा कुमारिका ।
प्रत्येकभिन्ना दहशे विंबमालेव भास्वतः ॥१०३
सायकैरग्निचूडालैस्तेषां मर्माणि भिंदती ।
रक्तोत्पलामिव क्रोधसंरक्तं बिभ्रती मुखम् ॥१०४
आश्चर्यं ब्रुवतो व्योम्नि पश्यतां त्रिदिवौकसाम् ।
साधुवादैर्बहुविधैर्मन्त्रिणीदण्डनाथयोः ॥१०५

उस कुमारिका ने अपने बाणों के जालों को उन दैत्येन्द्रों पर वर्षा की थी। उन भंडासुर के पुत्रों के साथ उस महाराज्ञी की कुमारिका का जो युद्ध उस समय में हुआ था वह सभी सुरों और असुरों के द्वारा स्पृहा करने के ही योग्य था।९९। कर्णीरथ पर स्थित हुई बाणों के मण्डल की वर्षा करने वाली उस नौ वर्ष की कुमारिका को देखकर दैत्यराज के पुत्र अत्यन्त अधिक विस्मित हो गये थे।१००। प्रतिक्षण उस बालिका के द्वारा किये जाने वाले युद्ध का समाचार परिचारिकाएँ भ्रमण करती हुईं महाराज्ञी को बता रही थी।१०१। मन्त्रिणी और दण्डनाथाओं ने उस कुमारिका को कभी भी युद्ध में साथ नहीं छोड़ा था। ये दोनों प्रेक्षक थीं और चुप ही हो गयी थीं।१०२। सूर्य देव की विम्बमाला के ही तुल्य वह एक ही स्वरूप वाली कुमारी समस्त दैत्य के पुत्रों को प्रत्येक को भिन्न दिखाई दे रही थी।१०३। अग्नि चूडाल बाणों से उनके कर्मों का भेदन करती हुई युद्ध कर रही थी और उसका मुख क्रोध से लाल रक्त कमल के ही समान शोभित हो रहा था।१०४। नभ में देवगण देखते हुए बड़ा ही आश्चर्य प्रकट कर रहे थे। तथा मन्त्रिणी और दण्डनाथा के अनेक प्रकार के साधु वाद भी कहे जा रहे थे।१०५।

अर्च्यमाना रणं चक्रे लघुहस्ता कुमारिका ।
द्वितीयं युद्धदिवसं समस्तमपि सा रणे ॥१०६

प्रकाशयामास बलं ललितादुहिता निजम् ।
अस्त्रप्रत्यस्त्रमोक्षेण तान्सर्वानपि भिंदती ॥१०७

नारायणास्त्रमोक्षेण महाराज्ञीकुमारिका ।
द्विशत्यक्षौहिणीसैन्यं भस्मसादकरोत्क्षणात् ॥१०८

अक्षौहिणीनां क्षयतः क्षणात्कोपमुपागताः ।
आकृष्टगुरुधन्वानस्ते ऽपतन्नेकहेलया ॥१०९

ततः कलकले जाते शक्तीनां च दिवौकसाम् ।
युगपत्त्रिंशतो बाणानसृजत्सा कुमारिका ॥११०

हस्तलाघवमाश्रित्य मुक्तैश्चंद्रार्धसायकैः ।
त्रिंशता त्रिंशतो भंडपुत्राणामाहृतं शिरः ॥१११

इति भंडस्य पुत्रेषु प्राप्तेषु यमसादनम् ।
अत्यन्तविस्मयाविष्टा ववृषुः पुष्पमभ्रगाः ॥११२

लघु हाथों वाली वह कुमारिका पूज्यमान होती हुई युद्ध कर रही थी। उसने युद्ध में दूसरा पूर्ण दिवस भी समाप्त किया था और उस ललिता देवी की पुत्री ने अपने बल को प्रकाशित किया था। वह उन सबको अपने अस्त्रों और प्रत्यस्त्रों से भेदन कर रही थी।१०६-१०७। उस महाराज्ञी की कुमारिका ने नारायणास्त्र को छोड़कर दो सौ अक्षौहिणी सेनाओं को एक ही क्षण में भस्मसात् कर दिया था।१०८। उन अक्षौहिणी सेनाओं के विनाश होने से एक ही क्षण में क्रोध को प्राप्त हुए वे दैत्यराज के पुत्रों ने अपने-अपने धनुषों को खींचा था और वे सब एक ही साथ गिर गये थे।१०९। फिर शक्तियों का और देवगणों का कलकल उत्पन्न हो जाने पर उस कुमारिका ने एक ही साथ तीस बाण छोड़े थे।११०। हाथ की कुशलता का आश्रय लेकर छोड़े हुए अर्ध चन्द्र बाणों से जो सख्या में तीस थे उन तीसों भण्डासुर के पुत्रों का उसने शरीर काट डाला था।१११। इस तरह से भंड के समस्त पुत्रों के मर जाने पर अत्यधिक विस्मय से युक्त होकर देवों ने आकाश में स्थित होकर पुष्पों की वर्षा की थी।११२।

सा च पुत्री महाराज्ञ्याः विध्वस्तासुरसैनिका ।
मन्त्रिणीदण्डनाथाभ्यामालिंग्यत भृशं मुदा ॥११३

तस्याः पराक्रमोन्मेषैर्नृत्यन्त्यो जयदायिभिः ।
शक्तयस्तुमुलं चक्रुः साधुवादैर्जगत्त्रयम् ॥११४
सर्वाश्च शक्तिसेनान्यो दण्डनाथापुरःसराः ।
तदाश्चर्यं महाराज्ञ्यै निवेदयितुमुद्गताः ॥११५
ताभिर्निवेद्यमानानि सा देवी ललितांबिका ।
पुत्रीभुजावदानानि श्रुत्वा प्रीतिं समाययौ ॥११६
समस्तमपि तच्चक्रं शक्तीनां तत्पराक्रमैः ।
अदृष्टपूर्वैर्देवेषु विस्मयस्य वशं गतम् ॥११७

और उस महाराज्ञी की पुत्री ने मंडासुर के सब पुत्रों को विध्वस्त कर दिया था और फिर मन्त्रिणी और दण्डनाथा के द्वारा बार-बार आलिंगन की गयी थी तथा इन दोनों को बड़ी ही प्रसन्नता हुई थी।११३। उस कुमारिका के जो विजय देने वाले पराक्रमों के उन्मेषों से नृत्य करती हुई शक्तियों के साधुवादों के तुमुल घोष से तीनों लोकों को भर दिया था।११४। समस्त शक्तियों के सेनानियों ने जिनमें दण्डनाथा भी थी उस महान आश्चर्य जनक युद्ध की विजय को महाराज्ञी को निवेदन करने के लिए तैयारी की थी।११५। ललिता देवी ने अपनी पुत्री की भुजाओं के अवदानों को जो उन शक्तियों के द्वारा सुनाये गये थे श्रवण करके बहुत ही अधिक प्रसन्नता प्राप्त की थी।११६। वह समस्त चक्र शक्तियों के अदृष्ट पूर्व पराक्रमों से देवों के भी विस्मय करने वाला हो गया था।११७।

—×—

॥ गणनाथ पराक्रम वर्णन ॥

अथ नष्टेषु पुत्रेषु शोकानलपरिप्लुतः ।
विललाप स दैत्येन्द्रो मत्वा जातं कुलक्षयम् ॥१
हा पुत्रा हा गुणोदारा हा मदेकपरायणाः ।
हा मन्नेत्रसुधापूरा हा मत्कुलविवर्धनाः ॥२
हा समस्तसुरश्रेष्ठमदभंजनतत्पराः ।
हा समस्तसुरस्त्रीणामंतर्मोहनमन्मथाः ॥३

दिशत प्रीतिवाचं मे ममांके वल्गताधुना ।
किमिदानीमिमं तातमवमुच्य सुखं गताः ॥४
युष्मान्विना न शोभन्ते मम राज्यानि पुत्रकाः ।
रिक्तानि मम गेहानि रिक्ता राजसभापि मे ॥५
कथमेवं विनिःशेषं हता यूयं दुराशयाः ।
अप्रधृष्यभुजासत्वान्भवतो मत्कुलांकुरान् ।
कथमेकपदे दुष्टा वनिता संगरेऽवधीत् ॥६
मम नष्टानि सौख्यानि मम नष्टाः कुलस्त्रियः ।
इतः परं कुले क्षीणे साहसानि सुखानि च ॥७

इसके अनन्तर अपने समस्त पुत्रों के विनष्ट हो जाने पर महान शोक से परिप्लुत होकर भण्डासुर विलाप करने लगा था और उसने यह मान लिया था कि अब मेरे कुल का नाश हो गया है ।१। वह इस रीति से क्रन्दन करने लगा था—हा ! मेरे पुत्रो ! तुम सब तो बहुत ही उदार गुणों वाले थे—तुम सभी मेरी आज्ञा में तत्पर रहे थे—हा ! आप तो मेरे नेत्रों को सुधा के पूर के ही समान थे और मेरे कुल को बढ़ाने वाले थे ।२। हा ! आप लोग तो सभी देवों के मद का भंजन करने वाले थे—हा ! आप लोग देवाङ्गनाओं के हृदयों को मोहित करने में कामदेव के ही तुल्य थे ।३। मुझे अपनी प्रीति युक्त वाणी सुनाओ—अब मेरी गोद में आकर बैठा—इस समय यह घटना हो गयी है कि आप लोग अपने पिता का त्याग करके सुखी हो गये हो ।४। हे पुत्रो ! आप सबके बिना यह मेरे राज्य शोभित नहीं हो रहे हैं । मेरे घर सब अब सुने हैं और मेरी राज्य सभा भी सूनी हो गयी है । यह क्या हुआ और आप सभी कैसे दुराशयों वाले एक ही साथ निहत हो गये हैं । जिनकी भुजाओं का बल कोई भी दबा नहीं सकता था ऐसे जो मेरे कुल के अंकुर आप सब थे उन सबको एक ही बार में उस दुष्टा नारी ने युद्ध में कैसे मार डाला था ।५-६। मेरी सब सेनाएँ नष्ट हो गयीं और मेरी कुल स्त्रियाँ भी विनष्ट हो गयी हैं । इससे आगे कुल के क्षीण हो जाने पर सब साहस और सुख भी विनष्ट हो गये हैं ।७।

भवतः सुकृतैर्लब्ध्वा मम पूर्वजनुः कृतैः ।
नाशोऽयं भवतामद्य जातो नष्टस्ततोऽस्म्यहम् ॥८

हा हतोऽस्मि विपन्नोऽस्मि मन्दभाग्योऽस्मि पुत्रकाः ।
इति शोकात्स पर्यस्यन्प्रलपन्मुक्तमूर्धजः ।
मूर्च्छया लुप्तहृदयो निष्पपात नृपासनात् ।।६
विशुक्रश्च विषंगश्च कुटिलाक्षश्च संसदि ।
भंडमाश्वासयामासुर्दैवस्य कुटिलकर्मैः ।।१०
विशुक्र उवाच—
देव किं प्राकृत इव प्राप्तः शोकस्य वश्यताम् ।
लपसि त्वं प्रति सुतान्प्राप्तमृत्यून्महाहवे ।।११
धर्मवान्विहितः पंथा वीराणामेष शाश्वतः ।
अशोच्यमाहवे मृत्युं प्राप्नुवंति यदर्हितम् ।।१२
एतदेव विनाशाय शल्यवद्बाधते मनः ।
यत्स्त्री समागत्य हठान्निहंति सुभटान्रणे ।।१३
इत्युक्ते तेन दैत्येन पुत्रशोको व्यमुच्यत ।
भंडेन चंडकालाग्निसदृशः क्रोध आदधे ।।१४

आप लोगों के जन्म मैंने पूर्व पुण्यों के द्वारा ही प्राप्त किये थे आज आप सबका विनाश हो गया है अब तो मैं भी विनष्ट ही हो गया हूँ ।८। हे पुत्रो ! हा ! अब तो मैं मर ही गया हूँ—विपत्ति ग्रस्त हो गया हूँ और खोटी तकदीर वाला हो गया हूँ । इस तरह से वह शोक से ग्रस्त हो गया था और माथे के बालों को खोलकर प्रलाप कर रहा था । उसको मूर्च्छा हो गयी थी और उसकी हृदयगति लुप्त हो गयी थी—वह फिर नृपासन से नीचे गिर पड़ा था ।६। फिर विशुक्र-विषङ्ग और कुटिलकर्मों ने उस संसद में भाग्य के कुटिलाओं को कहते हुए भण्डासुर को आश्वासन दिया था ।१०। विशुक्र ने कहा—हे स्वामिन् ! आप सामान्य मानव के ही समान शोक के वश में क्यों प्राप्त हो गये हैं । महान संग्राम में मरे हुए पुत्रों की ओर क्या बात कर रहे हैं ।११। वीरों का तो यह युद्ध करते हुए मर जाना धार्मिक मार्ग ही है और यह निरन्तर होने वाला है । जो युद्ध में मृत्यु को प्राप्त होते हैं वह तो उनकी मृत्यु शोच करने के योग्य नहीं हुआ करती है प्रत्युत पूजित ही हुआ करती है ।१२। केवल यही बात शल्य के समान मन को

पीड़ा दे रही है कि स्त्री ने आकर युद्ध में बड़े-बड़े योधाओं का हनन किया है ।१३। उस दैत्य के द्वारा ऐसा कहने पर भण्ड ने पुत्रों के शोक का त्याग कर दिया था और फिर भण्ड ने प्रचण्ड कालाग्नि के समान क्रोध किया था ।१४।

स कोशात्क्षिप्रमुद्धृत्य खड्गमुग्रं यमोपमम् ।
विस्फारिताक्षियुगलो भृशं जज्वाल तेजसा ॥१५
इदानीमेव तां दुष्टां खड्गेनानेन खंडश: ।
शकलीकृत्य समरे श्रमं प्राप्स्यामि बंधुभि: ॥१६
इति रोषस्खलद्वर्ण: श्वसन्निव भुजंगम: ।
खड्गं विधुन्वन्नुत्थाय: प्रचचालातिमत्तवत् ॥१७
तं निरुध्य च संभ्रांता: सर्वे दानवपुङ्गवा: ।
वाचमूचुरतिक्रोधाज्ज्वलंतो ललितां प्रति ॥१८
न तदर्थं कार्य: स्वामिन्संभ्रम ईदृश: ।
अस्माभि: स्वबलैर्युक्तै: रणोत्साहो विधीयते ॥१९
भवदाज्ञालवं प्राप्य समस्तभुवनं हठात् ।
विमर्दयितुमीशा: स्म: किमु तां मुग्धभामिनीम् ॥२०
किं चूषयाम: सप्ताब्धीन्क्षोदयामोऽथ वा गिरीन् ।
अधरोत्तरमेवैतत्त्रैलोक्यं करवाम वा ॥२१

उसने यमराज के तुल्य अपने खड्ग को म्यान से निकाल लिया था जो बड़ा ही उग्र था। उसने अपने नेत्रों को फैलाया था और वह तेज से ज्वलित हो गया था ।१५। युद्ध में बन्धुओं के सहित इसी समय में इस खड्ग से उस दुष्टा के खण्ड-२ करके युद्ध में श्रम को प्राप्त करूँगा ।१६। इस तरह से रोष से उसका वर्ण स्खलित हो गया था और वह सर्प के ही तुल्य निःश्वास ले रहा था। वह एक मत्त पुरुष के ही समान अपने खड्ग को हिलाता हुआ वहाँ से चल दिया था ।१७। सभी सम्भ्रान्त दानवों ने उसको रोक दिया था और अत्यधिक क्रोध से जलते हुए उन्होंने ललिता के प्रति वचन कहने का आरम्भ कर दिया था ।१८। हे स्वामिन् ! उसके लिए आपको ऐसा सम्भ्रम नहीं करना चाहिए। हम लोग अपने बलों से समन्वित

होकर रण करने का उत्साह करते हैं ।१६। आपकी सामान्य भी आज्ञा पाकर हम लोग सम्पूर्ण भुवन का मर्दन करने में हठ से समर्थ हैं। उस मुग्ध भामिनी की तो बात ही क्या है। अर्थात वह बिचारी नारी हमारे सामने बहुत ही तुच्छ है।२०। क्या हम सातों सागरों का चूष डालें अथवा समस्त पर्वतों को खोदकर चूर्ण कर देवें और इन तीनों भुवनों को उठाकर अधर देवें। तात्पर्य यह है कि हम असम्भव कार्य को भी आपके आदेश से कर सकने की शक्ति रखते हैं।२१।

छिनदाम सुरान्सर्वान्भिनदाम तदालयान् ।
पिनषाम हरित्पालानाज्ञां देहि महामते ॥२२
इत्युदीरितमाकर्ण्य महाहंकारगर्वितम् ।
उवाच वचनं क्रुद्धः प्रतिघारुणलोचनः ॥२३
विशुक्र भवता गत्वा मायांतर्हितवर्ष्मणा ।
जयविघ्नं महायन्त्रं कर्त्तव्यं कटके द्विषाम् ॥२४
इति तस्य वचः श्रुत्वा विशुक्रो रोषरूषितः ।
मायातिरोहितवपुर्जगाम ललिताबलम् ॥२५
तस्मिन्प्रयातुमुद्युक्ते सूर्योऽस्तं समुपागतः ।
पर्यस्तकिरणस्तोमपाटलीकृतदिङ्मुखः ॥२६
अनुरागवती संध्या प्रयांतं भानुमालिनम् ।
अनुवव्राज पातालकुञ्जे रन्तुमिवोत्सुका ॥२७
वेगात्प्रपततो भानोर्देहसंगात्समुत्थिताः ।
चरमाब्धेरिव पयः कणास्तारा विरेजिरे ॥२८

हम समस्त सुरों को छेद डालेंगे और उनके आलयों को तोड़-फोड़ डालेंगे। हम दिक्पालों को पीस डालेंगे। हे महामते! आप हमको अपनी आज्ञा भर दे दीजिए।२२। इस महान अहंकार से युक्त वचन को सुनकर लाल नेत्रों वाला भण्ड क्रुद्ध होकर बोला था।२३। हे विशुक्र! माया से अपने वर्ष्म को छिपाकर आप वहाँ जाकर कटक में शत्रुओं के जय के विघ्न वाले महामन्त्र को करो।२४। उसके इस वचन को श्रवण करके विशुक्र रोष से भर गया था और माया से अपने शरीर को छिपाकर ललिता की सेना

में गया था ।२५। जब प्रमाण करने को वह उद्यत हुआ था तो सूर्य अस्त हो गया था । पर्यस्त किरणों के समुदाय से दिशाएँ सब पारस वर्ण की हो गयीं थीं ।२६। अनुराग वाली सन्ध्या गमन करते हुए भानुमाली पीछे ही चली गयी मानो पाताल की कुञ्ज में वह सूर्य के साथ रमण करने को उत्सुक हो गयी थी । चरमाब्धि के पथ के ही समान तारे शोभित हो रहे थे । बड़े वेग से प्रयाण करने वाले सूर्य के देह के सङ्ग से ही वे कण समुत्थित हुए थे ।२७-२८।

अथाससाद बहुलं तमः कज्जलमेचकम् ।
सार्थं कर्त्तुमिवोद्युक्तं सवर्णस्यासिदुर्धिया ॥२९
मायारथं समारूढो गूढशार्वरसंवृतः ।
अदृश्यवपुरापेदे ललिताकटकं खलः ॥३०
तत्र गत्वा ज्वलज्ज्वालं वह्निप्राकारमंडलम् ।
शतयोजनविस्तारमालोकयत दुर्मतिः ॥३१
परितो विभ्रमञ्शालमवकाशमवाप्नुवन् ।
दक्षिणं द्वारमासाद्य निदध्यौ क्षणमुद्धतः ॥३२
तत्रापश्यन्महासत्त्वास्सावधाना धृतायुधाः ।
आरूढयानाः संनद्धवर्माणो द्वारदेशतः ॥३३
स्तंभिनीप्रमुखाः शक्तीर्विंशत्यक्षौहिणीयुताः ।
सर्वदा द्वाररक्षार्थं निर्दिष्टा दंडनाथया ॥३४
विलोक्य विस्मयाविष्टो विचार्य च चिरं तदा ।
शालस्य बहिरेवासौ स्थित्वा यन्त्रं समातनोत् ॥३५

इसके अनन्तर काजल के तुल्य एक दम काला बड़ा भारी अन्धकार प्राप्त हो गया था । असिकी दुर्धी से मानों सवर्ण का साथ करने को ही वह उद्युक्त हो गया था ।२९। गूढ शार्वर से संवृत वह दैत्य माया के रथ पर सवार हुआ था और उसने अपना शरीर अदृश्य कर लिया था । फिर वह खल ललिता की सेना में प्राप्त हुआ था ।३०। वहाँ जाकर उस दुष्ट बुद्धि वाले ने अग्नि का प्राकार मण्डल देखा था जो जलती हुई ज्वालाओं वाला था और सौ योजन के विस्तार से समन्वित था ।३१। उसके सब ओर भ्रमण

करते हुए उसने शाल को अवकाश न पाया था । फिर दक्षिण में द्वार पर पहुँचकर क्षण भर उस उद्धत ने सोचा था ।३२। वहाँ पर सावधान-महान बली-हाथों में हथियार उठाये हुए—यानों पर समारूढ़ और संनद्ध वर्मो वाले जो द्वार देश पर स्थित थे, देखे थे ।३३। सर्वदा द्वार की रक्षा के लिए दण्डनाथा के द्वारा निर्दिष्ट विंशति अक्षौहिणी सेना से संयुत स्तम्भिनी प्रमुख शक्तियाँ थीं ।३४। उनको देखकर वह विस्मय से समाविष्ट हो गया था और उस समय में उसने विचार बहुत देर तक किया था । शाल के बाहिर ही स्थित होकर उसने यन्त्र को फैलाया था ।३५।

गव्यूतिमात्रकायामे तत्समानप्रविस्तरे ।
शिलापट्टे सुमहति प्रालिखद्यन्त्रमुत्तमम् ॥३६
अष्टदिक्ष्वष्टशूलेन संहाराक्षरमौलिना ।
अष्टभिर्दैवतैश्चैव युक्तं यन्त्रं समालिखत् ॥३७
अलसा कृपणा दीना नितन्द्रा च प्रमीलिका ।
क्लीबा च निरहंकारा चेत्यष्टौ देवताः स्मृताः ॥३८
देवताष्टकमेतच्च शूलाष्टकपुटोपरि ।
नियोज्य लिखितं यन्त्रं मायावी सममन्त्रयत् ॥३९
पूजां विधाय मन्त्रस्य बलिभिश्छागलादिभिः ।
तद्यन्त्रं चारिकटके प्राक्षिपत्समरेऽसुरः ॥४०
प्राकारस्य बहिर्भागे वर्तिना तेन दुर्धिया ।
क्षिप्तमुल्लंघ्य च रणे पपात कटकांतरे ॥४१
तद्यन्त्रस्य विकारेण कटकस्थास्तु शक्तयः ।
विमुक्तशस्त्रसंन्यासमास्थिता दीनमानसाः ॥४२

उसने आठ देवताओं से युक्त यन्त्र को लिखा था। दो कोश की चौड़ाई में और उतने ही निस्तार में एक शिला पट्ट पर जो महान था उस उत्तम यन्त्र को लिखा था । वह यन्त्र आठ दिशाओं में आठ शूल संहाराक्षर मौलि से ही लिखा गया था ।३६-३७। उन आठ देवताओं के नाम हैं—अलसा-कृपणा-दीना-नितन्द्रा-प्रमीलिका-क्लीवा-निरहंकारा—ये आठ देवता कहे गये हैं ।३८। इन देवताओं के अष्टक को शूलाष्टक पुट के ऊपर नियोजित

कर लिखा गया मन्त्र था उसको उस मायावी ने भली-भाँति मन्त्रित किया था ।३९। यन्त्र की पूजा करके छागल आदि की बलि दी थी । उस असुर ने समर में चारिकटक में उसका क्षेप किया था ।४०। उस प्राकार के बाहिर के भाग में रहने वाले उस दुष्ट धी ने प्रक्षिप्त किया था और उल्लंघन कर कटक के मध्य के रण में गिरा था ।४१। उस यन्त्र के विकार से कटक में स्थित शक्तियाँ शस्त्रों को छोड़कर दीन मानसों वाली हो गयी थीं ।४२।

किं हतैरसुरैः कार्यं शस्त्राशस्त्रिक्रमैरलम् ।
जयसिद्धफलं किं वा प्राणिहिंसा च पापदा ॥४३

अमराणां कृते कोऽयं किमस्माकं भविष्यति ।
वृथा कलकलं कृत्वा न फलं युद्धकर्मणा ॥४४

का स्वामिनी महाराज्ञी का वासी दण्डनायिका ।
का वा सा मन्त्रिणी श्यामा भृत्यत्वं नोऽथ कीदृशम् ॥४५

इह सर्वाभिरस्माभिर्भृत्यभूताभिरेकिका ।
वनिता स्वाजिनीकृत्ये किं फलं मोक्ष्यते परम् ॥४६

परेषां मर्मभिदुरैरायुधैर्न प्रयोजनम् ।
युद्धं शाम्यतु चास्माकं देहशस्त्रक्षतिप्रदम् ॥४७

युद्धे च मरणं भावि वृथा स्युर्जीवितानि नः ।
युद्धे मृत्युर्भवेदेव इति तत्र प्रमैव का ॥४८

उत्साहेन फलं नास्ति निद्रैवैका सुखावहा ।
आलस्यसदृशं नास्ति चित्तविश्रांतिदायकम् ॥४९

उनको ऐसा सन्यास हो गया था कि उनके मनों में ये भाव उत्पन्न हो गये थे कि इन असुरों के मारने से क्या कार्य होगा—यह शस्त्रास्त्रों का क्रम भी व्यर्थ है—जय की सिद्धि से भी क्या फल है । युद्ध में प्राणियों की हिंसा से पाप होगा ।४३। यह देवों के लिए क्या है इससे हमारा भी क्या होगा । कल-२ करना व्यर्थ है और युद्ध के कर्म से क्या फल होगा ।४४। कौन तो महाराज्ञी स्वामिनी है और यह दण्ड नायिका क्या है । वह मन्त्रिणी श्यामा क्या है और हमारा उनका कैसा भृत्य होना है ।४५। यहाँ पर हम सबने जो भृत्य भूता है एक वनिता को स्वामिनी बना रक्खा है । इससे क्या परम मोक्ष होगा ।४६। दूसरों के मर्मों के भेदन करने वाले आयुधों की क्या

आवश्यकता है। यह युद्ध जो देश और शस्त्रों की क्षति करने वाला है अब शान्त हो जाना चाहिए।४७। और युद्ध में मरण होने वाला है तो हमारा जीवन भी वृथा ही है। युद्ध में तो मौत हो होगी वहाँ पर प्रमा ही क्या है ।४८। इस उत्साह से कोई भी फल नहीं है अत-निद्रा ही सुख देने वाली है। आलस्य के तुल्य चित्त को विश्रान्ति देने वाला अन्य कोई भी नहीं है।४९।

एतादृशीश्च नो ज्ञात्वा सा राज्ञी किं करिष्यति ।
तस्या राज्ञीत्वमपि नः समवायेन कल्पितम् ॥५०
एवं चोपेक्षितास्माभिः सा विनष्टबला भवेत् ।
नष्टसत्त्वा च सा राज्ञी कान्नः शिक्षां करिष्यति ॥५१
एवमेव रणारंभं विमुच्य विधुतायुधाः ।
शक्तयो निद्रया द्वारे घूर्णमाना इवाभवन् ॥५२
सर्वत्र मांद्यं कार्येषु महदालस्यमागतम् ।
शिथिलं चाभवत्सर्वं शक्तीनां कटकं महत् ॥५३
जयविघ्नं महायन्त्रमिति कृत्वा स दानवः ॥५४
निर्विघ्न तत्प्रभावेण कटकं प्रमिमंथिषुः ।
द्वितीययुद्धदिवसस्यार्धरात्रे गते सति ॥५५
निस्सृत्य नगराद्भूयस्त्रिंशदक्षौहिणीवृतः ।
आजगाम पुनर्दैत्यो विशुक्रः कटकं द्विषाम् ॥५६
अश्रूयंत ततस्तस्य रणनिःसाणनिस्वनाः ।
तथापि ता निरुद्योगाः शक्तयः कटकेऽभवन् ॥५७

हमको ऐसी जानकर वह राज्ञी क्या करेगी। उसको राज्ञी बना देना भी तो हम ही सबने कल्पित किया है।५०। इस रीति से हमारे द्वारा जब वह उपेक्षित होगी तो वह भी नष्ट बल वाली ही हो जायगी। जब नष्ट बल वाली राज्ञी होगी तो फिर वह हमको क्या शिक्षा देगी।५१। इसी प्रकार से उन शक्तियों ने रणारम्भ को त्याग दिया था और सब हथियार छोड़ दिये थे। वे निद्रा से घूर्णित होती हुईं द्वार पर ही रह गयी थी।५२। सर्वत्र कार्यों में मन्दता आ गयी और मदालस्य छा गया था। वह महान शक्तियों का कटक उस समय में शिथिल हो गया था।५३। यह महायन्त्र

जय विघ्न था जिसको उस दानव ने किया था ।५४। कटक का प्रमन्थन करने की इच्छा वाला वह उसके प्रभाव से निर्विघ्न हो गया था उस समय में फिर नगर से निकलकर फिर तीस अक्षौहिणी सेना से युत होकर विशुक्र दैत्य शत्रुओं के कटक में आ गया था ।५५-५६। फिर रण के निःशाणों के शब्द सुने गये थे तो भी वे शक्तियाँ कटक में उद्योग ही नहीं हो गयी थीं। ।५७।

तदा महानुभावत्वाद्विकारैर्विघ्नयंत्रजैः ।
अस्पृष्टे मंत्रिणीदण्डनाथे चितामवापतुः ।।५८
अहो बत महत्कष्टमिदमापतितं भयम् ।
कस्य वाथ विकारेण सैनिका निर्गतोद्यमाः ।।५६
निरस्तायुधसंरंभा निद्रातन्द्राविघूणिताः ।
न मानयंति वाक्यानि नार्चयंति महेश्वरीम् ।
औदासीन्यं वितन्वंति शक्तयो निस्पृहा इमाः ।।६०
इति ते मंत्रिणींदण्डनाथे चितापरायणे ।
चक्रस्यन्दनमारूढे महाराज्ञीं समूचतुः ।।६१
मंत्रिण्युवाच–
देवि कस्य विकारोऽयं शक्तयो विगतोद्यमाः ।
न शृण्वंति महाराज्ञि तवाज्ञां विश्वपालिताम् ।।६२
अन्योन्यं च विरक्तास्ताः पराच्यः सर्वकर्मसु ।
निद्रातन्द्रामुकुलिता दुर्वाक्यानि वितन्वते ।।६३
का दंडिनी मंत्रिणी का महाराज्ञीति का पुनः ।
युद्धं च कीदृशमिति क्षेपं भूरिवतन्वते ।।६४

उस समय में विघ्नयन्त्र से समुत्पन्न विकारों से महानुभाव होने के कारण से मन्त्रिणी और दण्डनाथा अस्पृष्ट थीं। और उनको बड़ी चिन्ता प्राप्त हो गयी थीं ।५८। अहो ! बड़े खेद का विषय है और महान कष्ट तथा भय आ पड़ा है। अथवा यह किसका विकार है जिसके प्रभाव से समस्त सैनिक उद्योग हीन हो गये हैं ।५६। आयुधों का सरम्भ निरस्त कर दिया है और सब निद्रा तथा तन्द्रा से विघूर्णित हैं। न तो ये वाक्यों को मानतेहैं और

न महेश्वरी का ही अर्चन करते हैं। ये सब शक्तियाँ उदासीनता कर रही हैं और निःस्पृह हो गयी हैं।६०। वे मन्त्रिणी और दण्डनाथा इस प्रकार से चिन्ता मग्न हो गयी थीं और चक्र स्यन्दन पर समारूढ़ होकर उन्होंने महाराज्ञी से कहा था।६१। मन्त्रिणी ने कहा—हे देवि! यह किसका विकार है कि सब शक्तियों ने उद्यम त्याग दिया है। हे महाराज्ञि! विश्वपालिता आपकी आज्ञा को भी वे अब नहीं सुनती हैं।६२। वे परस्पर में सब कर्मों को छोड़ कर विरक्त हो गयीं हैं। वे निद्रा और तन्द्रा से मुकुलित हो रही हैं और दुर्वाक्यों को कहती हैं।६३। वे कहती हैं यह दण्डिनी और मन्त्रिणी कौन और क्या हैं तथा यह महाराज्ञी क्या कौन है और यह युद्ध भी कैसा है—ऐसा ही बहुत क्षेप कर रही हैं।६४।

अस्मिन्नेवांतरे शत्रुरागच्छति महाबलः।
उद्दंडभेरीनिस्वानैर्विभिंदन्निव रोदसी ॥६५
अत्र यत्प्राप्तं रूपं तन्महाराज्ञि प्रपद्यताम्।
इत्युक्त्वा सह दंडिन्या मंत्रिणीं प्रणतिं व्यधात् ॥६६
ततः सा ललिता देवी कामेश्वरमुखं प्रति।
दत्तदृष्टिः समहसदतिरक्तरदावलिः ॥६७
तस्याः स्मितप्रभापुञ्जे कुंजराकृतिमान्मुखे।
कटक्रोडगलद्दानः कश्चिदेव व्यजृम्भत ॥६८
जपापटलपाटल्यो बालचन्द्रवपुर्धरः।
बीजपूरगदामिक्षुचापं शूलं सुदर्शनम् ॥६९
अब्जपाशोत्पलव्रीहिमंजरीवरदांकुशान्।
रत्नकुम्भं च दशभिः स्वकैर्हस्तैः समुद्वहन् ॥७०

इसी बीच में महान बल वाला शत्रु आ जाता है जो उद्दण्ड भेरियों के घोषों से रोदसी (भूमि और आकाश को) का भेदन सा कर रहा है।६५। यहाँ पर जो भी रूप प्राप्त हुआ है हे महाराज्ञि! उसको बतलाइए। इतना कहकर वे दोनों दण्डिनी और मन्त्रिणी ने स्वामिनी को प्रणाम किया था।६६। इसके अनन्तर इस ललिता देवी ने कामेश्वर के मुख की ओर अपनी दृष्टि डाली थी और बहुत हँसी थीं उनके अतीव रक्त रदावलि थी।६७। उनके स्मित की प्रभा के पुञ्ज वाले मुख में कुञ्जर की आकृति वाला कोई

दिखाई दिया था जिसके कुम्भस्थल से मद चू रहा था ।६८। वह जपा पुष्प के समान पाटल था—शिर पर बालचन्द्र को धारण किये था और बीज-पूर-गदा-इक्षुचाप—शूल-सुदर्शन-अब्ज-पाश-उत्पल-व्रीहि मंजरी-वरदांकुश और रत्नकुम्भ—इनको दश करों में उद्वहन कर रहे थे ।६९-७०।

तुन्दिलश्चन्द्रचूडालो मन्द्रबृंहितनिस्वनः ।
सिद्धिलक्ष्मीसमाश्लिष्टः प्रणनाम महेश्वरीम् ॥७१
तया कृताशीः स महान्गणनाथो गजाननः ।
जयविघ्नमहायन्त्रं भेत्तुं वेगाद्विनिर्ययौ ॥७२
अंतरेव हि शालस्य भ्रमद्दन्तावलाननः ।
निभृतं कुत्रचिल्लग्नं जयविघ्नं व्यलोकयत् ॥७३
स देवो घोरनिर्घातैर्दुःसहैर्दंतपातनैः ।
क्षणाच्चूर्णीकरोति स्म जयविघ्नमहाशिलाम् ॥७४
तत्र स्थिताभिर्दुष्टाभिर्देवताभिः सहैव सः ।
परागशेषतां नीत्वा तद्यन्त्रं प्राक्षिपद्दिवि ॥७५
ततः किलकिलारावं कृत्वाऽऽलस्यविवर्जिताः ।
उद्यताः समरं कर्तुं शक्तयः शस्त्रपाणयः ॥७६
स दंतिवदनः कण्ठकलिताकुण्ठनिस्वनः ।
जययन्त्रं हि तत्सृष्टं तथा रात्रौ व्यनाशयत् ॥७७

उनका पेट बड़ा था—चन्द्र चूड़ा में था और वे मन्द्र तथा बृंहित ध्वनि वाले थे । वे सिद्धि लक्ष्मी से समाश्लिष्ट थे । उनने आकर महेश्वरी को प्रणाम किया था ।७१। देवी ने उनको आशीर्वाद दिया था, वह महान गणनाथ गजानन थे और वे जयविघ्न महा यन्त्र का भेदन करने के लिए वेग के साथ निकलकर चले गये थे ।७२। शाल के अन्दर ही भ्रमद्दन्ता बलानन ने चुपचाप कहीं पर लगा हुआ जयविघ्न यन्त्र को देखा था ।७३। उस देव ने घोर निर्घातों वाले और दुस्सह दाँतों के पातनों से एक ही क्षण में उस जयविघ्न महाशिला का चूर्ण कर दिया था ।७४। उन्होंने उसमें स्थित देवताओं के साथ ही जो बड़े दुष्ट थे सबका चूरा करके उस यन्त्र को दिवलोक में फेंक दिया था ।७५। इसके अनन्तर किलकिल की ध्वनि करके सब शक्ति

आलस्य रहित होगयीं थीं और शस्त्र हाथों में लेकर युद्ध करने के लिए उद्यत हो गयी थीं ।७६। उस दन्ति वदन ने जिनके कलित कण्ठ की ध्वनि हो रही थी एक जप यन्त्र का सृजन किया था और रात्रि में विनाश कर दिया था जो बाधक था ।७७।

इमं वृत्तांतमाकर्ण्य भंडः स क्षोभमाययौ ।
ससर्ज च बहुनात्मरूपान्दंतावलाननान् ।।७८
ते कटक्रोडविगलन्मदसौरभचञ्चलैः ।
चञ्चरीककुलैरग्रे गीयमानमहोदयाः ।।७९
स्फुरद्दाडिमकिंजल्कविक्षेपकररोचिषः ।
सदा रत्नाकरानेकहेलया पातुमुद्यताः ।।८०
आमोदप्रमुखा ऋद्धिमुख्यशक्तिनिषेविताः ।
आमोदश्च प्रमोदश्च सुमुखो दुर्मुखस्तथा ।।८१
अरिघ्नो विघ्नकर्त्ता च षडेते विघ्ननायकाः ।
ते सप्तकोटिसंख्यानां हेरंबाणामधीश्वराः ।।८२
ते पुरश्चलितास्तस्य महागणपते रणे ।
अग्निप्राकारवलयाद्विनिर्गत्य गजाननाः ।।८३
क्रोधहुंकारतुमुलाः प्रत्यपद्यंत दानवान् ।
पुनः प्रचण्डफूत्कारबधिरीकृतविष्टपाः ।।८४

इस वृत्तान्त को श्रवण करके भण्ड को बड़ा भारी क्षोभ हुआ था कि जिसने (गणपति ने) अपने ही समान बहुत से दन्तावलाननों का सृजन किया था ।७८। उनके कटस्थल से मद निकल रहा था और उसकी गन्ध से चञ्चल भ्रमरों के समूह आगे मंडरा रहे थे जो गान सा हो रहा था ।७९। उनकी कान्ति स्फुरित दड़िम के किंजल्क के विक्षेपकर रोचि वाले थे जो सदा ही अनेक सागरों को एक ही बार में पान करने के लिए उद्यत थे ।८०। उनमें आमोद प्रमुख था और ऋद्धि जिनमें मुख्य थी ऐसी शक्तियों के द्वारा सेवित थे। ये छं विघ्न नायक हैं और सात करोड़ संख्या वाले हेरम्बों के अधीश्वर थे। इनके नाम—आमोद—प्रमोद—सुमुख—दुर्मुख—अरिघ्न और विघ्न कर्त्ता ये थे ।८१-८२। ये सब उन महा गणपति के युद्ध में आगे चल दिये थे।

उस अग्नि प्राकार के वलय से गजानन निकलकर चले थे ।८३। उनके क्रोध पूर्ण हुङ्कार से वे परम तुमुल थे और ये सब दानवों के समीप में प्राप्त हो गये थे । फिर इनकी बड़ी प्रचण्ड फूत्कार थी जिससे विष्टपों को भी बहिराकर दिया था ।८४।

पपात दैत्यसैन्येषु गणचक्रचमूगण: ।
अच्छिदन्निशितैर्बाणैर्गणनाथ: स दानवान् ॥८५
गणनाथेन तस्याभूद्विशुक्रस्य महौजस: ।
युद्धमुद्धतहुंकारभिन्नकार्मुकनि: स्वनम् ॥८६
भ्रुकुटी कुटिले चक्रे दष्टोष्ठमतिपाटलम् ।
विशुक्रो युधि विभ्राण: समयुध्यत तेन स: ॥८७
शस्त्राघट्टननिस्वानैर्हुंकारैश्च सुरद्विषाम् ।
दैत्यसप्तिखुरक्रीडत्कुट्टालीकूटनिस्वनै: ॥८८
फेत्कारैश्च गजेंद्राणां भयेनाक्रन्दनैरपि ।
ह्रेषया च हयश्रेण्या रथचक्रस्वनैरपि ॥८९
धनुषां गुणनिस्स्वानैश्चक्रचीत्करणैरपि ॥९०
शरसात्कारघोषैश्च वीरभाषाकदंबकै: ।
अट्टहासैर्महेंद्राणां सिंहनादैश्च भूरिश: ॥९१

गण चक्र की सेना का समुदाय दैत्यों की सेना में कूद पड़ा था । उन गणनाथ ने अपने तीक्ष्ण बाणों से दानवों को छेद दिया था ।८५। उस गणनाथ का महान ओज वाले विशुक्र के साथ बड़ा भीषण युद्ध हुआ था जिसमें बहुत उद्धत हुङ्कारें हो रही थीं और धनुषों की टंकार की ध्वनि भी थी। ।८६। विशुक्र ने भौंहें टेढ़ी कर ली थीं और उसके दांत और होठ पाटल वर्ण के थे । ऐसे उसने गणनाथ के साथ युद्ध किया था ।८७। शस्त्रों के घट्टन के शब्दों से और असुरों की हुङ्कारों से तथा दैत्यों की सप्तति की खुरों की क्रीड़ा से कुट्टालियों के कूट घोषों से दिशाएँ क्षुब्ध हो रही थीं। ।८८। गजेन्द्रों के फेत्कारों से तथा भय से आक्रन्दनों से—घोड़ों के हिनहिनाने से और रथों के पहियों की ध्वनियों से भी सब दिशाएँ काँपने लगी थीं ।८९। धनुषों की डोरी की ध्वनियाँ तथा चक्र के चीत्कारें भी उस समय

में हो रही थीं ।६०। वीरों के वचन समूहों से तथा शरों के सात्कारों के घोष एवं महेन्द्रों के अट्टहास और अधिकांश मे सिंहनाद भी हो रहे थे ।६१।

क्षुभ्यद्दिगंतरं तत्र ववृधे युद्धमुद्धतम् ।
त्रिंशदक्षौहिणी सेना विशुकस्य दुरात्मनः ॥६२

प्रत्येकं योधयामासुर्गणनाथा महारथाः ।
दन्तैर्मर्म विभिदंतो वेष्टयंतश्च शुण्डया ॥६३

क्रोधयन्तः कर्णतालैः पुष्करावर्त्तकोपमैः ।
नासाश्वासैश्च परुषैर्विक्षिपंतः पताकिनीम् ॥६४

उरोभिर्मर्दयंतश्च शैलवप्रसमप्रभैः ।
पिषंतश्च पदाघातैः पीनैर्घ्नंतस्तथोदरैः ॥६५

विभिदन्तश्च शूलेन कृत्तंतश्चक्रपातनैः ।
शङ्खस्वनेन महता त्रासयन्तो वरूथिनीम् ॥६६

गणनाथमुखोद्भूता गजवक्त्राः सहस्रशः ।
धूलीशेषं समस्तं तत्सैन्यं चक्रुर्महोद्यताः ॥६७

अथ क्रोधसमाविष्टो निसैन्यपुरोगमः ।
प्रेषयामास देवस्य गजासुरमसौ पुनः ॥६८

उस समय में सब दिशाओं में बड़ा क्षोभ छागया था ऐसा वह उद्धत युद्ध हुआ था । उस दुरात्मा की जो तीस अक्षौहिणी सेना थी । उसमें प्रत्येक से महारथी गणनाथों ने युद्ध किया था । वे दाँतों से मर्मों का भेदन कर रहे थे और सूँड़ से उनका वेष्टन कर रहे थे ।६२-६३। पुष्करावर्त्तक के समान कानों के तालों से क्रोध करते हुए और पुरुष नाक के श्वासों से पताकिनी के अन्दर विक्षेप डालते हुए—पर्वत के वप्रके तुल्य उरः स्थलों से मर्दन करते हुए—पैरों के घात से पीसते हुए—तथा पीन (स्थूल) उदरों से हनन करते हुए—शूल से विभेदन करते हुए और चक्रों के पातन से काटते हुए और महान शंखों की ध्वनि से सेना को त्रास देते हुए ऐसे गणनाथ के मुख से उत्पन्न सहस्रों ही गजवदन वहाँ पर विद्यमान थे । मद से उद्धत उन गजों के समान मुख वालों ने उस सेना को सम्पूर्ण को धूल में मिला दिया था ।६४-६७। इसके अनन्तर अपनी सेना के अग्रणी ने क्रोध में समाविष्ट होकर फिर इसने देव के गजासुर को भेजा था ।६८।

प्रचंचसिंहनादेन गजदैत्येन दुर्धिया ।
सप्ताक्षौहिणियुक्तेन युयुधे स गणेश्वरः ।।९९

हीयमानं समालोक्य गजासुरभुजाबलम् ।
वर्धमानं च तद्वीर्यं विशुक्रः प्रपलायितः ।।१००

स एक एव वीरेंद्रः प्रचलन्नाखुवाहनः ।
सप्ताक्षौहिणिकायुक्तं गजासुरममर्दयत् ।।१०१

गजासुरे च निहते विशुक्रे प्रपलायिते ।
ललितांतिकमापेदे महागणपतिर्मृधात् ।।१०२

कालरात्रिश्च दैत्यानां सा रात्रिर्विरतिं गता ।
ललिता चाति मुदिता बभूवास्य पराक्रमैः ।।१०३

विततार महाराज्ञी प्रीयमाणा गणेशितुः ।
सर्वदेवपूजायाः पूर्वपूज्यत्वमुत्तमम् ।।१०४

उस गणेश्वर ने प्रचण्ड सिंहनाद वाले दुष्टमति सात अक्षौहिणियों से संयुत गजदैत्य के साथ युद्ध किया था ।९९। उस गजासुर की भुजाओं के बल को क्षीण होता हुआ देखकर और उसके बलवीर्य को बढ़ा हुआ देखकर वहाँ से विशुक्र भाग गया था ।१००। मूषक का वाहन वाला वह एक ही वीरेन्द्र प्रचलन करता हुआ सातों अक्षौहिणी सेनाओं से युक्त उस गजासुर को मर्दन करने वाला होगया था ।१०१। उस गजासुर के मरने पर और विशुक्र के भाग जाने पर वह महा गणपति युद्ध स्थल से ललिता देवी के समीप में उपस्थित हो गये थे ।१०२। और दैत्यों की कालरात्रि वह रात समाप्त हो गयी थी । ललिता इस महा गणपति के पराक्रम से बहुत ही प्रसन्न होगयी थी ।१०३। परम प्रसन्न उस महाराज्ञी ने गणेशजी की अर्चना समस्त देवों से पूर्व में होकर उनको पूर्व पूज्यत्व प्रदान किया था जो अतीव उत्तम वरदान था ।१०४।

—×—

विशुक्र विषंग वध वर्णन

समाप्तश्च द्वितीययुद्धदिवसः-

रणे भग्नं महादैत्यं भण्डदैत्यः सहोदरम् ।
सेनानां कदनं श्रुत्वा सन्तप्तो बहुचिन्तया ॥१
उभावपि समेतौ तौ युक्तौ सर्वैश्च सैनिकैः ।
प्रेषयामास युद्धाय भण्डदैत्यः सहोदरौ ॥२
तावुभौ परमक्रुद्धौ भण्डदैत्येन देशितौ ।
विषंगश्च विशुक्रश्च महोद्यममवापतुः ॥३
कनिष्ठसहितं तत्र युवराजं महाबलम् ।
विशुक्रमनुवव्राज सेना त्रैलोक्यकम्पिनी ॥४
अक्षौहिणीचतुः शत्या सेनानामावृतश्च सः ।
युवराजः प्रववृधे प्रतापेन महीयसा ॥५
उलूकजित्प्रभृतयो भागिनेया दशोद्धताः ।
भंडस्य च भगिन्यां तु धूमिन्यां जातयोनयः ॥६
कृतास्त्रशिक्षा भंडेन मातुलेन महीयसा ।
विक्रमेण वलन्तस्ते सेनानाथाः प्रतस्थिरे ॥७

रण में अपने सहोदर महादैत्य को भग्न हुआ देखकर और सेनाओं का रुदन सुनकर भंड दैत्य अधिक चिन्ता से सन्तप्त हो गया था ।१। फिर भंड दैत्य ने दो सहोदरों को जो सब सैनिकों से संयुत थे युद्ध करने के लिए वहाँ पर भेजा था ।२। वे दोनों भाई परमाधिक क्रुद्ध हो रहे थे और भंड दैत्य के द्वारा उन्हें आज्ञा दी गयी थी । फिर विशुक्र और विषंग ने महान उद्यम को प्राप्त किया था ।३। वहाँ पर छोटे भाई के सहित महान बल वाले युवराज को भी पीछे भेजा था । उसकी सेना तीनों लोकों को कम्पन देने वाली थी ।४। वह चार सौ अक्षौहिणी सेनाओं से आवृत था । युवराज महान प्रताप से बढ़ गया था ।५। उलूकजित् प्रभृति उसके दश भानजे थे जो बहुत ही उद्धत थे और भंड की धूमिनी भगिनी में समुत्पन्न हुए थे ।६। महान मातुल भंड के द्वारा ही उनको अस्त्रों की शिक्षा दी गयी थीं । वे विक्रम से बलन करते हुए सेनापति भी रवाना हुए थे ।७।

प्रोद्गतैश्चापनिर्घोषैर्घोषयतो दिशो दश ।
द्वयोर्मातुलयोः प्रीतिं भागिनेया वितेनिरे ॥८
आरूढयानाः प्रत्येकगाढाहंकारशालिनः ।
आकृष्टगुरुधन्वानो विशुक्रमनुवव्रजुः ॥९
यौवराज्यप्रभाचिह्नच्छत्रचामरशोभितः ।
आरूढवारणः प्राप विशुक्रो युद्धमेदिनीम् ॥१०
ततः कलकलारावकारिण्या सेनया वृतः ।
विशुक्रः पटु दध्वान सिंहनादं भयंकरम् ॥११
तत्क्षोभात्क्षुभितस्वान्ताः शक्तयः संभ्रमोद्धताः ।
अग्निप्राकारवलयान्निर्जग्मुर्बद्धपङ्क्तयः ॥१२
तडिन्मयमिवाकाशं कुर्वत्यः स्वस्वरोचिषा ।
रक्ताम्बुजावृतमिव व्योमचक्रं रणोन्मुखाः ॥१३
अथ भंडकनीयांसावागतौ युद्धदुर्मदौ ।
निशम्य युगपद्योद्धुं मंत्रिणीदंडनायके ॥१४

वे प्रोद्गत धनुषों की ध्वनियों से दश दिशाओं को भर रहे थे। उन दोनों मातुलों की प्रीति को उन भानजों ने विस्तृत किया था।८। प्रत्येक गहरे अहंकार वाले यानों पर समारूढ़ हुए थे। उन्होंने धनुषों को चढ़ाकर विशुक्र के पीछे अनुगमन किया था।९। यौवराज्य की प्रभा के चिह्न छत्र और चामरों से शोभित वारण पर समारूढ़ होकर विशुक्र युद्ध भूमि में प्राप्त हुआ था।१०। इसके पश्चात् कलकल के घोष को करने वाली सेना से समावृत विशुक्र ने महान भयंकर सिंहनाद किया था।११। उसके क्षोभ से क्षुब्ध हृदयों वाली शक्तियाँ संभ्रम से उद्धत हो गई थीं और पंक्तियाँ बाँधकर वे उस अग्नि के प्राकार के वलय से निकली थी।१२। अपनी कान्ति से आकाश को विद्युत से परिपूर्ण कर रही थीं। रण को उन्मुख उन्होंने व्योम चक्र को रक्त कमल के सदृश बना दिया था।१३। इसके बाद भंड के दोनों छोटे भाई वहाँ पर समागत हो गये थे जो युद्ध दुर्मद थे। एक ही साथ युद्ध करने के लिए आये हुए उनको मन्त्रिणी और दण्डनायिका ने सुना था।१४।

किरिचक्रं गेयचक्रमारूढे रथशेखरम् ।
धृतातपत्रवलये चामराभ्यां च बीजिते ॥१५
अप्सरोभिः प्रनृत्ताभिर्गीयमानमहोदये ।
निर्जग्मतू रणं कर्तुमुभाभ्यां ललिताज्ञया ॥१६
श्रीचक्ररथराजस्य रक्षणार्थं निवेशिते ।
शताक्षौहिणिकां सेनां वर्जयित्वास्त्रभीषणम् ॥१७
अन्यत्सर्वं चमूजालं निर्जगाम रणोन्मुखी ।
पुरतः प्राचलद्दण्डनाथा रथनिषेदुषी ॥१८
एकयैव कराङ्गुल्या घूर्णयन्ती हलायुधम् ।
मुसलं चान्यहस्तेन भ्रामयन्ती मुहुर्मुहुः ॥१९
तरलेन्दुकलाचूडास्फुरत्पोत्रमुखाम्बुजा ।
पुरः प्रहर्त्री समरे सर्वदा विक्रमोद्धता ।
अस्या अनुप्रचलिता गेयचक्रस्थस्थिता ॥२०
धनुषो ध्वनिना विश्वं पूरयन्ती महोद्धता ।
वेणीकृतकचन्यस्तविलसच्चन्द्रपल्लवा ॥२१

उन दोनों ने रथों में शिरोमणि किरिचक्र और ज्ञेय चक्र रथों पर समारोहण किया था। उन दोनों ने छत्रों को धारण किया था और चमर उन पर डुराये जा रहे थे। वे दोनों ही प्रवृत्त अप्सराओं के द्वारा ले जायी जा रही थीं। वे दोनों ही ललिता देवी की आज्ञा पाकर युद्ध करने के लिए वहाँ से निकल कर चली थीं।१५-१६। श्री चक्रराज रथ की रक्षा के लिए ये निवेशित थीं। इन्होंने सौ अक्षौहिणी सेना और भीषण अस्त्रों को वर्जित कर दिया था।१७। अन्य समस्त चमू का जाल के साथ रण को उन्मुखी वह निकल कर चली थी। आगे रथ पर बैठी हुई दंडनाथा रवाना हुई थी।१८। वह एक ही की अँगुली से हलायुध को घुमाती हुई और दूसरे हाथ से मुसल को बार-२ घुमा रही थी।१९। तरल चन्द्र की कला से स्फुरण करते हुए पोत्र मुखकमल वाली वह युद्धमें सबसे आगे सदा वह विक्रम से उद्धत रहती थी। इसके पीछे गेय चक्र रथ में विराजमान अनुगमन कर रही थी।२०। यह मद से उद्धत धनुष की ध्वनि से सम्पूर्ण विश्व को भर रही थी। उसने अपने

जूड़े की चोटी बनी रक्खी थी। जिसमें चन्द्र की कला शोभित हो रही थी।२१।

स्फुरत्त्रितनेत्रेण सिन्दूरतिलकत्विषा।
पाणिना पद्मरम्येण मणिकंकणचारुणा ॥२२
तूणीरमुखतः कृष्टं भ्रामयन्ती शिलीमुखम्।
जय वर्धस्ववर्धस्वेत्यतिहर्षसमाकुले ।२३
नृत्यद्भिर्दिव्यमुनिभिर्वर्द्धिताशीर्वचोऽमृतैः।
गेयचक्ररथेन्द्रस्य चक्रनेमिविघट्टनैः ॥२४
दारयन्ती क्षितितलं दैत्यानां हृदयैः सह।
लोकातिशायिता विश्वमनोमोहनकारिणा।
गीतिबन्धेनामरीभिर्बह्वीभिर्गीतवैभवा ॥२५
अक्षौहिणीसहस्राणामष्टकं समरोद्धतम्।
कर्षती कल्पविश्लेषनिर्मर्यादाब्धिसंनिभम् ॥२६
तस्याः शक्तिचमूचक्रे काश्चित्कनकरोचिषः।
काश्चिद्दाडिमसंकाशाः काश्चिज्जीमूतरोचिषः ॥२७
अन्याः सिंदूररुचयः पराः पाटलपाटलाः।
काचाद्रिकाम्बराः काश्चित्पराः श्यामलकोमलाः ॥२८

स्फुरित तीन नेत्रों वाली और सिन्दूर के तिलक की कान्ति वाली देवी ने पद्म के तुल्य सुन्दर और मणियों के कंकण की कान्ति से सम्पन्न कर से तूणीर के मुख से खींचे हुए बाण को घुमा रही थी। वहाँ पर वर्धन हो—वर्धन हो—इसकी ध्वनि चारों ओर हो रही थी।२२-२३। दिव्य मुनि-गण प्रसन्नता से नृत्य करते हुए वचनामृतों से आशीर्वाद दे रहे थे। गेय चक्र रथेन्द्र के पहियों का विघटन हो रहा था। इससे दैत्यों के हृदय के साथ ही भूमि को विदीर्ण कर रही थी। उस समय में गीतों का भी बन्ध चल रहा था जो अलौकिक और विश्व के मन को मोहन करने वाला था। बहुत-सी मरीचियाँ गीत का गान कर रही थी।२४-२५। आठ हजार अक्षौ-हिणी सेना समर की उद्धत थी। कल्पान्त में मर्यादा से रहित सागर के

समान ही वह कर्षण कर रही थी ।२६। उसकी शक्तियों की सेना के चक्र में विविध वेषभूषा वाली शक्तियाँ विद्यमान थीं । कुछ की कांति तो सुवर्ण के समान थी—कुछ दाड़िम के तुल्य थीं और कुछ मेघों के तुल्य थीं ।२७। अन्य सिन्दूर जैसी कान्ति वाली थीं—कुछ पाटल वर्ण की थीं—कुछ कांच के अम्बरों की महाद्रि के सदृश थीं और दूसरी श्यामल एवं कोमल थीं ।२८।

अन्यास्तु हीरकप्रख्याः परा गारुत्मतोपमाः ।
विरुद्धैः पञ्चभिर्बाणैर्मिश्रितैः शतकोटिभिः ।।२६
व्यञ्जयंत्यो देहरुचं कतिचिद्विविधायुधाः ।
असंख्याः शक्तयश्चेलुर्दंडिन्यास्सैनिकैस्तथा ।।३०
तथैव सैन्यसन्नाहो मंत्रिण्याः कुम्भसम्भव ।
यथा भूषणवेषादि यथा प्रभावलक्षणम् ।।३१
यथा सद्गुणशालित्वं यथा चाश्रितलक्षणम् ।
यथा दैत्यौघसंहारो यथा सर्वैश्च पूजिता ।।३२
यथा शक्तिर्महाराज्ञया दण्डिन्याश्च तथाखिलम् ।
विशेषस्तु परं तस्याः साचिव्ये तत्करे स्थितम् ।
महाराज्ञीवितीर्णं तदाज्ञामुद्रांगुलीयकम् ।।३३
इत्थं प्रचलिते सैन्ये मंत्रिणीदण्डनाथयोः ।
तद्भारभंगुरा भूमिर्दोलालीलामलंबत ।।३४
ततः प्रववृते युद्धं तुमुलं रोमहर्षणम् ।
उद्धूतधूलिजंबालीभूतसप्तार्णवीजलम् ।।३५

अन्य हीरे के सदृश थीं और कुछ गारुत्मत मणि के समान थीं । विरुद्ध पाँच बाणों से मिश्रित शत कोटियों से कुछ अनेक आयुधों वाली अपनी शारीरिक कान्ति को प्रकाशित कर रही थीं । ऐसी अगणित शक्तियाँ दण्डिनी के सैनिकों के साथ वहाँ पर युद्ध के लिए चली थीं ।२६-३०। हे कुम्भसम्भव ! जैसा उनका भूषण-वेषादि था और प्रभाव का लक्षण था वैसा ही मन्त्रिणी की सेना का भी सन्नाह भी था ।३१। जैसी सद्गुण शालिता थी और जो भी आश्रितों का लक्षण था तथा जैसा भी दैत्यों के

समुदाय का संहार था वैसी ही वे सबके द्वारा पूजित भी हुई थीं ।३२। महाराज्ञी की जैसी शक्ति थी वैसी ही सम्पूर्ण दंडिनी की भी थी किन्तु विशेषता यही थी कि उसके हाथ में साचिव्य था। महाराज्ञी ने उसकी आज्ञा की मुद्रांगुलीयक वितीर्ण कर दी थी ।३३। मन्त्रिणी और दण्डनाथा की सेना इस प्रकार से चली थी। उस सेना के भार से यह भूमि भगुर हो गयी थी और वह झूला की तरह ही हिलने लग गयी थी ।३४। इसके अनन्तर महान तुमुल और रोमहर्षण युद्ध प्रवृत्त हो गया था। उस युद्ध में उठी हुई धूलि में जो जम्बाल के ही समान हो गयी थी सातों सागरों के जल को छा लिया था ।३५।

हयस्थैर्हयसादिन्यो रथस्थं रथसंस्थिताः ।
आधोरणैर्हस्तिपकाः खड्गैः पद्गाश्च सङ्गताः ॥३६
दण्डनाथाविषंगेण समयुध्यंत सङ्गरे ।
विशुक्रेण समं श्यामा त्रिकृष्टमणिकार्मुका ॥३७
अश्वारूढा चकारोच्चैः सहोलूकजिता रणम् ।
सम्पदीशा च जग्राह पुरुषेण युयुत्सया ॥३८
विषेण नकुली देवी समाह्वास्त युयुत्सया ।
कुन्तिषेणेन समरं महामाया तदाकरोत् ॥३९
मलदेन समं चक्रे युद्धमुन्मत्तभैरवी ।
लघुश्यामा चकारोच्चैः कुशूरेण समं रणम् ॥४०
स्वप्नेशी मंगलाख्येन दैत्येन्द्रेण रणं व्यधात् ।
वाग्वादिनी तु जघटे द्रुघणेन समं रणे ॥४१
कोलाटेन च दुष्टेन चण्डकाल्यकरोद्रणम् ।
अक्षौहिणीभिर्दैत्यानां शताक्षौहिणिकास्तथा ।
महांतं समरे चक्रु रन्योन्यं क्रोधमूर्छिताः ॥४२

जो अश्वों पर सवार थे उन्होंने घुड़ सवारों के साथ—एवं हस्तिपकों ने आधोरणों के साथ और पदातियों ने पैदल सैनिकों से सङ्गत होकर खड्गों से युद्ध किया था ।३६। संग्राम में दण्डनाथा ने विषङ्ग के साथ युद्ध था। अपने मणियों के कार्मुक को खींचकर श्यामा ने विशुक्र के साथ युद्ध

किया था ।३७। अश्वारूढ़ा ने बहुत भारी उलूक जित् के साथ रण किया था सम्पदीक्षा ने युद्ध की इच्छा से पुरुष के साथ युद्ध ग्रहण किया था ।३८। नकुली देवी ने युद्ध करने की इच्छा से निष को बुलाया था । माहमाया ने कुंतिषेण के साथ युद्ध किया था ।३६। उन्मत्त भैरवी ने मलद के साथ संग्राम किया था और लघुश्यामा ने कुशूर के साथ रण किया था ।४०। स्वप्नेशी ने मङ्गल के साथ युद्ध किया था । वाग्वादिनी ने दुषण के साथ रण में भिड़न्त की थी ।४१। चण्डकाली ने कोलाट के साथ रण किया था । दैत्यों की अक्षौहिणियों के साथ सौ अक्षौहिणी सेनाओं ने परस्पर में बड़ा भारी युद्ध क्रोध में मूच्छित होकर किया था ।४२।

प्रवर्तमाने समरे विशुक्रो दुष्टदानवः ।
वर्धमानां शक्तिचमूं हीयमानां निजां चमूम् ॥४३

अवलोक्य रुषाविष्टः स कृष्टगुरुकार्मुकः ।
शक्तिसैन्ये समस्तेऽपि तृषास्त्रं प्रमुमोच ह ॥४४
तेन दावानलज्वालादीप्तेन मथितं बलम् ।
तृतीये युद्धदिवसे याममात्रं गते रवौ ।
विशुक्रमुक्ततर्षास्त्रव्याकुलाः शक्तयोऽभवन् ॥४५
क्षोभयन्निन्द्रियग्रामं तालुमूलं विशोषयन् ।
रुक्षयन्कर्णकुहरमंगदौर्बल्यमाहवन् ॥४६
पातयन्पृथिवीपृष्ठे देहं विस्रंसितायुधम् ।
आविर्बभूव शक्तीनामतितीव्रस्तृषाज्वरः ॥४७
युद्धेष्वनुद्यमकृता सर्वोत्साहविरोधिना ।
तर्षेण तेन क्वथितं शक्तिसैन्यं विलोक्य सा ।
मन्त्रिणी सह पोत्रिण्या भृशं चिंतामवाप ह ॥४८
उवाच तां दण्डनाथामत्याहितविशंकिनीम् ।
रथस्थिता रथगता तत्प्रतीकारकर्मणे ।
सखि पोत्रिणि दुष्टस्य तर्षास्त्रमिदमागतम् ॥४६

उस युद्ध के प्रवृत्त होने पर दुष्ट दानव विशुक्र ने जब यह देखा था कि शक्तियों की सेना बढ़ रही है और अपनी क्षीण हो रही है तो क्रोध में भरकर उसने एक बड़ा धनुष खींचा था और उस समस्त शक्तियों की सेना में तृषास्त्र छोड़ दिया था ।४३-४४। उसने जो दावानल की ज्वाला के समान दीप्त था उस बड़ी सेना को मथ दिया था । तीसरे युद्ध के दिन में एक प्रहर मात्र रवि के गत होने पर विशुक्र के द्वारा छोड़े हुए तृषास्त्र से शक्तियां व्याकुल हो उठी थीं ।४५। उन तालु के मूल का शोषण कर रहा था । कानों के छिद्र भी रूक्ष हो रहे थे और अङ्गों में दुर्बलता हो रही थी तथा आयुधों को छोड़कर देहों को भूमि पर गिरा रहा था ।४६-४७। युद्ध में अनुद्यम करने वाले तथा समस्त उत्साह के विरोधी उस तर्ष के द्वारा क्वथित शक्तियों की सेना को देखकर वह मन्त्रिणी पोत्रिणी के साथ बहुत ही चिन्तित हो गयी थी ।४८। अतीव अहित विशंका वाली उस दण्डनाथा से बोली रथ में स्थित और रथगता होकर उसके प्रतिकार कर्म के लिए कहा था हे सखि ! पोत्रिणि ! यह दुष्ट का तृषास्त्र आ गया है । इसका हमारी सेना पर बहुत ही बुरा प्रभाव हो गया है ।४९।

शिथिलीकुरुते सैन्यमस्माकं हा विधेः क्रमः ।
विशुष्कतालुमूलानां विभ्रष्टायुधतेजसाम् ।
शक्तीनां मंडलेनात्र समरे समुपेक्षितम् ।।५०
न कापि कुरुते युद्धं न धारयति चायुधम् ।
विशुष्कतालुमूलत्वादक्तुमप्यालि न क्षमाः ।।५१
ईदृशीन्नो गतिं श्रुत्वा किं वक्ष्यति महेश्वरी ।
कृता चापकृतिर्दैत्यैरुपायः प्रविचिंत्यताम् ।।५२
सर्वत्र द्व्यष्टसाहस्राक्षौहिण्यामत्र पोत्रिणि ।
एकापि शक्तिर्नैवास्ति या तर्षेण न पीडिता ।।५३
अत्रैवावसरे दृष्ट्वा मुक्तशस्त्रा पताकिनीम् ।
रंध्रप्रहारिणो हंत बाणैर्निघ्नंति दानवाः ।।५४
अत्रोपायस्त्वया कार्यो मया च समरोद्यमे ।
त्वदीयरथपर्वस्थो योऽस्ति शीतमहार्णवः ।।५५

तमादिश समस्तानां शक्तीनां तर्षनुत्तये ।
नाल्पैः पानीयपानाद्यैरेतासां तर्षसंक्षयः ॥५६

हा ! विधाता का क्या क्रम है । यह अस्त्र तो हमारी सेना को शिथिल कर रहा है । सबके तालुमूल सूख गये हैं और सबके आयुध भ्रष्ट हो गये हैं । इस युद्ध में शक्तियों का मण्डल उपेक्षित हो गया है ।५०। न तो कोई भी युद्ध करती है और न कोई आयुध ही ग्रहण कर रही है । हे आलि ! तालुमूलों के शुष्क हो जाने से ये तो बोलने में भी असमर्थ हो गयी हैं ।५१। हमारी ऐसी दशा को सुनकर महेश्वरी क्या कहेगी । दैत्यों ने तो हमारा बड़ा ही अपकार किया है । इसका कोई उपाय सोचना चाहिए ।५२। हे पोत्रिणि ! सोलह हजार सर्वत्र यहाँ पर अक्षौहिणी हैं । ऐसी एक भी शक्ति नहीं है जो तर्ष से पीड़ित न होवे ।५३। इसी अवसर सेना को हथियारों को छोड़ने वाली देखकर ये दानव छिद्रों में प्रहार करने वाले हैं और बाणों से निहनन कर रहे हैं । यह बड़े ही खेद की बात है ।५४। यहाँ पर तुमको और मुझको कोई उपाय करना चाहिए । उस समरोद्यम में कुछ करना ही है । तुम्हारे रथ के पर्व में स्थित जो शीत का महार्णव है ।५५। उसको ही शक्तियों की तृषा के छेदन के लिए आदेश दो क्योंकि अल्प पानीय के पानों से उनकी तृषा का क्षय नहीं होगा ।५६।

स एव मदिरासिधुः शक्त्यौघं तर्पयिष्यति ।
तमादिश महात्मानं समरोत्साहकारिणम् ।
सर्वतर्षप्रशमनं महाबलविवर्धनम् ॥५७
इत्युक्ते दण्डनाथा सा सदुपायेन हर्षिता ।
आजुहाव सुधासिधुमाज्ञां चक्रेश्वरी रणे ॥५८
स मदालसरक्ताक्षो हेमाभः स्रग्विभूषितः ॥५९
प्रणम्य दण्डनाथां तां तदाज्ञापरिपालकः ॥६०
आत्मानं बहुधा कृत्वा तरुणादित्यपाटलम् ।
क्वचित्तापिच्छवच्छयामं क्वचिच्च धवलद्युतिम् ॥६१
कोटिशो मधुराधारा करिहस्तसमाकृतीः ।
ववर्ष सिंधुराजोऽय वायुना बहुलीकृतः ॥६२

गुष्करावर्तकाद्यैस्तु कल्पक्षयबलाहकैः ।
निषिच्यमानो मध्येऽब्धिः शक्तिसैन्ये पपात ह ॥६३

वही मदिरा का सिन्धु शक्तियों के समूहों को तृप्त करेगा । समर के उत्साह करने वाले महान आत्मा वाले उसी को आदेश दो । वह समस्त तर्ष का प्रशमन करने वाला है और महान बल के बढ़ानेवाला है ।५७। ऐसा कहने पर वह दण्डनाथा इस समुदाय से परम हर्षित हुई थी चक्रेश्वरी ने रथ में सुधा के सिन्धु को आज्ञा देकर बुलाया था ।५८। वह मद से अलस और रक्त नेत्रों वाला था—हेम के समान उसकी आभा थी माजाओं से वह भूषित था ।५९। उसकी आज्ञा के पालक उसने दण्डनाथा को प्रणाम किया था ।६०। उसने अनेक प्रकार का अपना स्वरूप बना लिया था—कहीं तो तरुण सूर्य के समान वह पाटल था और कहीं पर तापिच्छ के तुल्य श्यामल था और कहीं पर धवल कान्ति वाला था ।६१। इस सिन्धुराज ने वायु के द्वारा अधिक होकर हाथी के सूँड के समान आकार वाली करोड़ों धाराएँ वर्षायी थीं ।६२। कल्प के क्षय के समय पुष्कलावर्त्तक आदि बलाहकों से निषिच्यमान शक्तियों के मध्य में वह सागर गिरा था ।६३।

यद्गन्धाघ्राणमात्रेण मृत उत्तिष्ठते स्फुटम् ।
दुर्बलः प्रबलश्च स्यात्तद्ववर्ष सुरांबुधिः ॥६४
परार्द्धसंख्यातीतास्ता मधुधारापरम्पराः ।
प्रपिबन्त्यः पिपासार्त्तैर्मुखैः शक्तय उत्थिताः ॥६५
यथा सा मदिरासिंधुवृष्टिर्दैत्येषु नो पतेत् ।
तथा सैन्यस्य परितो महाप्राकारमण्डलम् ॥६६
लघुहस्ततया मुक्तैः शरजातैः सहस्रशः ।
चकार विस्मयकरी कदम्बवनवासिनी ॥६७
मर्मणा तेन सर्वेऽपि विस्मिता मरुतोऽभवन् ।
अथ ताः शक्तयो भूरि पिबन्ति स्म रणांतरे ॥६८
विविधा मदिराधारा बलोत्साहविवर्धनीः ।
यस्या यस्या मनः प्रीती रुचिः स्वादो यथा यथा ॥६९

तृतीये युद्धदिवसे प्रहरद्वितयावधि ।
संततं मद्यधाराभिः प्रववर्ष सुरांबुधिः ॥७०

जिसकी गन्ध मात्र से ही मृत प्राणी स्पष्ट उठकर खड़ा हो जाया करता है और जो दुर्बल होता है वह प्रबल हो जाया करता है वह सुराम्बुधि वर्षा था ।६४। परार्ध संख्या से अतीत मधु धाराओं की परम्पराएँ थीं उनका पान करती हुई पिपासा से आर्त्तमुखों से उनने पान किया था और वे शक्तियाँ उठकर खड़ी हो गयी थी ।६५। उस सेना के चारों ओर ऐसा एक प्रकार का मण्डल था कि जिससे वह मदिरा सिन्धु की वृष्टि दैत्यों पर न जाकर पड़ जावे ।६६। कदम्ब वन बासिनी ने लघु हस्तता से छोड़े गये सहस्रों शरों से विस्मयकरी किया था ।६७। उस कर्म से सभी मरुत विस्मित हो गये थे । इसके अनन्तर उन शक्तियों ने रण के मध्य में पान बहुत किया था ।६८। अनेक मदिरा की धाराएँ बल और उत्साह के बर्धन करने वाली थीं । जिस-जिस के मन की जो-जो भी प्रीति थी वैसी-वैसी ही पी थी ।६९। तीसरे युद्ध के दिन में दो प्रहर की अवधि तक सुराम्बुधि ने निरन्तर मद्य की धाराओं से वर्षा की थी ।७०।

गौडी पैष्टी च माध्वी च वरा कादम्बरी तथा ।
हैताली लांगलेया च तालजातास्तथा सुराः ॥७१
कल्पवृक्षोद्भवा दिव्या नानादेशसमुद्भवाः ।
सुस्वादुसौरभाढ्याश्च शुभगंधसुखप्रदाः ॥७२
बकुलप्रसवामोदा ध्वनंत्यो बुदबुदोज्ज्वलाः ।
कटुकाश्च कषायाश्च मधुरास्तिक्ततास्पृशः ॥७३
बहुवर्णसमाविष्टाश्छेदिनीः पिच्छलास्तथा ।
ईषदम्लाश्च कट्वम्ला मधुराम्लास्तथा पराः ॥७४
शस्त्रक्षतरुगाहंत्री चास्थिसंधानदायिनी ।
रणश्रमहरा शीता लघ्व्यस्तद्वत्कबोष्ठकाः ॥७५
संतापहारिणीश्चैव वारुणीस्ता जयप्रदाः ।
नानाविधाः सुराधारा ववर्ष मदिरार्णवः ॥७६
अविच्छिन्नं याममात्रमेकैका तत्र योगिनी ।
ऐरावतकरप्रख्यां सुराधारां मुदा पपौ ॥७७

सुराएँ कितनी ही प्रकार की थीं। अब उनके प्रकारों को बताया जाता है—गौड़ी-पैष्टी-माध्वी-वरा-कादम्बरी-हैताली-लाङ्गलेया—और ताल जाता सुराएँ थी ।७१। कल्प वृक्ष से समुत्पन्न-दिव्या-अनेक देशों में उत्पन्ना थी। ये सुन्दर स्वाद वाली और सौरभ वाली थीं और इनसे शुभ गन्ध निकलती थी ।७२। बकुल के प्रसवा-आमोदा-ध्वनन्ती-बुद्बुदा—उज्ज्वला थी। कटुका-कषाया-मधुरा-तिक्तता के स्पर्श वाली थी ।७३। बहुत वर्णों से समाविष्टा-छेदिनी-पिच्छला-ईषद् अम्ला-कट्वम्ला—तथा मधुराम्ला थी ।७४। शस्त्र से होने वाले क्षत के रोग का हनन करने वाली—अस्थियों के सन्धान को देने वाली-लध्वी और कवोष्टका थी ।७५। सन्ताप का हरण करने वाली तथा वारुणी-जय प्रदान करने वाली—इस तरह से उस सुधार्णव ने अनेक प्रकार की सुराओं की धाराओं की वर्षा की थी ।७६। वहाँ पर एक-एक योगिनी ने एक प्रहर तक अविच्छिन्न रूप से ऐरावत करप्रख्या सुरा की धारा को आनन्द के साथ पान किया था।

उत्तानं वदनं कृत्वा विलोलरसनाञ्चलम् ।
शक्तयः प्रपपुः सीधु मुदा मीलितलोचनाः ॥७८

इत्थं बहुविधं माध्वीधारापातैः सुधांबुधिः ।
आगतस्तर्पयित्वा तु दिव्यरूपं समास्थितः ॥७९

पुनर्गत्वा दण्डनाथां प्रणम्य स सुरांबुधिः ।
स्निग्धगंभीरघोषेण वाक्यं चेदमुवाच ताम् ॥८०

देवि पश्य महाराज्ञि दण्डमण्डलनायिके ।
मया संतर्पिता मुग्धरूपा शक्तिवरूथिनी ॥८१

काश्चिन्नृत्यंति गायंत्यो कलक्वणितमेखलाः ।
नृत्यंतीनां पुरः काश्चित्करतालं वितन्वते ॥८२

काश्चिद्धसंति व्यावल्गद्वल्गुवक्षोजमण्डलाः ।
पतंत्यन्योन्यमङ्गेषु काश्चिदानन्दमन्थराः ॥८३

काश्चिद्वल्गंति च श्रोणिविगलन्मेखलांबराः ।
काश्चिदुत्थाय नंनद्धा घूर्णयन्ति निरायुधाः ॥८४

शक्तियों ने अपने मुख को ऊपर की ओर उठाकर चञ्चल रसना वाली होते हुए अपनी आँखों को मूँदकर आनन्द से उस चल सुरा का पान किया था ।७८। इस रीति से उस सुधाम्बुद्धि ने बहुत तरह के माध्वी की धाराओं के पातों से तृप्त करके दिव्य रूप में समास्थित हो गया था ।७९। फिर वह सुराम्बुधि दण्डनाथा को प्रणाम करके परम स्निग्ध और गम्भीर ध्वनि से उस देवी से यह वाक्य बोला था ।८०। हे महाराज्ञि ! हे देवि ! हे दण्ड मण्डलनायिके ! आप देख लीजिए । मैंने मुग्धरूप वाली शक्तियों की सेना को भली-भाँति तृप्त कर दिया है ।८१। उनमें कुछ तो नृत्य कर रही हैं कुछ कल क्वणित मेखलाओं वाली गान कर रहीं हैं । नृत्य करने वाली शक्तियों के आगे कुछ करों से ताल दे रही हैं ।८२। कुछ व्यावल्गवल्गु उरोजमण्डलों वाली हँस रही है । कुछ आनन्दोद्रेक में मन्थर होती हुई परस्पर में अंगों में पतन कर रही हैं ।८३। कुछ अपनी श्रोणियों पर से गिरते हुए मेखलाम्बरों वाली वल्ग कर रही है । कुछ उठाकर सन्नद्ध हो रही हैं और विना ही आयुधों के घूर्णन कर रही हैं ।८४।

इत्थं निर्दिश्यमानास्ताः भवती मैरेय सिंधुना ।
अवलोक्य भृशं तुष्टा दण्डिनी तमुवाच ह ।।८५

परितुष्टास्मि मद्याब्धे त्वया साह्यमनुष्ठितम् ।
देवकार्यमिदं किं च निर्विघ्नितमिदं कृतम् ।।८६

अतः परं मत्प्रसादाद्द्वापरे याज्ञिकैर्मखे ।
सोमपानवदत्यंतमुपयोज्यो भविष्यसि ।।८७

मन्त्रेण पूतं त्वां यागे पास्यंत्यखिलदेवताः ।
यागेषु मन्त्रपूतेन पीतेन भवता जनाः ।।८८

सिद्धिमृद्धिं वलं स्वर्गमपवर्गं च बिभ्रतु ।
महेश्वरी महादेवो बलदेवश्च भार्गवः ।
दत्तात्रेयो विधिर्विष्णुस्त्वां पास्यंति महाजनाः ।।८९
यागे समर्चितस्त्वं तु सर्वसिद्धिं प्रदास्यसि ।।९०
इत्थं वरप्रदानेन तोषयित्वा सुरांबुधिम् ।।९१

इस तरह से दिखाई गयीं उन शक्तियों को देखकर जो मैरेय सीधु से आनन्दित हो रही थीं दण्डिनी अत्यन्त प्रसन्न हुई थी और उससे कहा था ।८५। हे मद्याब्धे ! मैं बहुत ही यदि तुष्ट हुई हूँ । आपने हमारी सहायता की है । यह देव कार्य है इसको आपने विघ्न रहित कर दिया है ।८६। अब इससे आगे द्वापर युग में मेरे प्रसाद से मख में याज्ञिकों के द्वारा सोम के पान के ही समान आप अत्यन्त उपयोग के योग्य होंगे ।८७। समस्त देवगण याग में मन्त्र से पूत करके इसका पान किया करेंगे । यागों में मन्त्र से पवित्र का पान भक्तजन करेंगे ।८८। इसके प्रभाव से सिद्धि-ऋद्धि—स्वर्ग—अपवर्ग को प्राप्त करेंगे । महेश्वरो—महादेव—बलदेव—भार्गव—दत्तात्रेय—विधि-विष्णु—ऐसे महान सिद्ध जन भी तुम्हारा पान करेंगे ।८९। याग में समर्चित तू सब प्रकार की प्रदान करोगी ।९०। इस प्रकार से वरदान के द्वारा सुराम्बुधि को तुष्ट किया था ।९१।

मंत्रिणी त्वरयामास पुनर्युद्धाय दण्डिनी ।
पुनः प्रववृते युद्धं शक्तीनां दानवैः सह ॥९२

मुदाट्टहासनिर्भिन्नदिगष्टकधरा धरम् ।
प्रत्यग्रमदिरामत्ताः पाटलीकृतलोचनाः ।
शक्तयो दैत्यचक्रेषु न्यपतन्नेकहेलया ॥९३

द्वयेन द्वयमारेजे शक्तीनां समदश्रियाम् ।
मदरागेण चक्षूंषि दैत्यरक्तेन शस्त्रिका ॥९४

तथा बभूव तुमुलं युद्धं शक्तिसुरद्विषाम् ।
यथा मृत्युरवित्रस्तः प्रजाः संहरते स्वयम् ॥९५
संस्खलत्पदविन्यासामदेनारक्तदृष्टयः ।
स्खलदक्षरसंदर्भवीरभाषा रणोद्धताः ॥९६
कदम्बगोलकाकारा हृष्टसर्वांगदृष्टयः ।
युवराजस्य सैन्यानि शक्तयः समनाशयन् ॥९७
अक्षौहिणीशतं तत्र दण्डिनी सा व्यदारयत् ।
अक्षौहिणीसार्द्धशतं नाशयामास मन्त्रिणी ॥९८

मन्त्रिणी और दण्डिनी दोनों ने पुनः युद्ध करने के लिए शीघ्रता की थी और फिर शक्तियों का दानवों के साथ युद्ध प्रवृत्त हो गया था।९२। प्रसन्नता से अट्टहास जो उन्होंने किया था तो आठों दिशाओं को और धरा को हिला दिया था। नवीन मदिरा से मत्त हो गयी थीं और उनके लोचन पाटल वर्ण के थे। वे शक्तियाँ दैत्यों के चक्र में एक ही हल्ला के साथ निपतित हो गयी थीं।९३। मद की श्री से सम्पन्न शक्तियों का युद्ध ऐसा हुआ था कि दो से दो ही भिड़ गयी थीं और शोभित हुई थीं। मद के राग से तो नेत्र लाल हो गयी थीं और दैत्यों के रक्त से शस्त्र रक्त हो गये थे।९४। शक्ति और असुरों का बड़ा तुमुल युद्ध हुआ था जैसे अवित्रस्त मृत्यु स्वयं ही प्रजाओं का संहार करता हो।९५। उनके चरणों के न्यास स्खलित हो रहे थे तथा मद से कुछ रक्त वर्ण के नेत्र हो रहे थे। वीरभाषा भी ऐसी थी कि उनमें अक्षरों का सन्दर्भ स्खलित हो रहा था। ऐसी वे रण में उद्धत हो गयी थीं।९६। कदम्ब गोलक के आकार से युक्त और हृष्ट सर्वाङ्ग दृष्टि वाली शक्तियों ने युवराज की सेनाओं का विनाश कर दिया था।९७। उस दण्डिनी ने वहाँ पर सौ अक्षौहिणियों को विदीर्ण कर दिया था और डेढ़ सौ अक्षौहिणी का विनाश मन्त्रिणी ने कर दिया था।९८।

अश्वारूढप्रभृतयो मदारुणविलोचनाः।
अक्षौहिणीसार्धशतं निन्युरंतकमन्दिरम् ॥९९
अंकुशेनातितीक्ष्णेन तुरगा रोहिणी रणे।
उलूकजितमुन्मथ्य परलोकातिथिं व्यधात् ॥१००
सम्पत्करीप्रभृतयः शक्तिदण्डाधिनायिकाः।
परुषेण मुखान्यन्यान्यवरुद्धा व्यदारयन् ॥१०१
अस्तं गते सवितरि ध्वस्तसर्वबलं ततः।
विशुक्रं योधयामास श्यामला कोपशालिनी ॥१०२
अस्त्रप्रत्यस्त्रमोक्षेण भीषणेन दिवौकसाम्।
महता रणकृत्येन योधयामास मन्त्रिणी ॥१०३
आयुधानि सुतीक्ष्णानि विशुक्रस्य महौजसः।
क्रमशः खंडयंती सा केतनं रथसारथिम् ॥१०४

धनुर्गुणं धनुर्दंडं खंडयंती शिलीमुखैः ।
अस्त्रेण ब्रह्मशिरसा ज्वलत्पावकरोचिषा ।।१०५

मद से अरुण लोचनों वाली अश्वारूढ़ा आदि ने डेढ़ सौ अक्षौहिणी को यमराज के पुर में भेज दिया था ।९९। अत्यन्त तीक्ष्ण अंकुश से अश्वारोहिणी ने युद्ध में उलूक जित् का उन्मथन करके उसे परलोक भेज दिया था ।१००। सम्पत्करी प्रभृति शक्ति दण्डाधिनायिओं ने अपने कठोर प्रहार से परस्पर में अवरुद्धों को विदीर्ण कर दिया था ।१०१। सूर्य के अस्ताचलगामी होने पर समस्त सेना के ध्वस्त होने वाले विशुक्र के साथ कोपशालिनी श्यामा ने युद्ध किया था ।१०२। मन्त्रिणी ने अस्त्र प्रत्यस्त्रों के छोड़ने के द्वारा देवों को भी भीषण महान रण कृत्य से युद्ध किया था ।१०३। महान ओज वाले विशुक्र के परम तीक्ष्ण आयुधों का क्रम से खण्डन करती हुई उसने बाणों के द्वारा ध्वजा रथ के सारथि–धनुष की प्रत्यञ्चा–धनुष का खण्डन करती हुई जलती हुई अग्नि की कान्ति वाले ब्रह्मशिर अस्त्र से विशुक्र का मर्दन किया था ।१०४-१०५।

विशुक्रं मर्दयामास सोऽपतच्चूर्णविग्रहः ।
विषंगं च महादैत्यं दण्डनाथा मदोद्धता ।।१०६
योधयामास चंडेन मुसलेन विनिघ्नती ।
स चापि दुष्टो दनुजः कालदंडनिभां गदाम् ।
उद्यम्य बाहुना युद्धं चकाराशेषभीषणम् ।।१०७
अन्योन्यमंगं मृद्नंतौ गदायुद्धप्रवर्तिनौ ।
चण्डाट्टहासमुखरौ परिभ्रमणकारिणौ ।।१०८
कुर्वाणौ विविधांश्चारान्घूर्णंतौ तूर्णवेष्टिनौ ।
अन्योन्यदंडहननैर्मोहयंतौ मुहुर्मुहुः ।।१०९
अन्योन्यप्रहृतौ रंध्रमीक्षमाणौ महोद्धतौ ।
महामुसलदंडाग्रघट्टनक्षोभितांबरौ ।
अयुध्येतां दुराधर्षौ दंडिनीदैत्यशेखरौ ।।११०
अथार्द्धरात्रिसमयपर्यंतं कृतसंगरा ।

संक्रुद्धा हन्तुमारेभे विषंगं दंडनायिका ॥१११
तं मूर्द्धनि निमग्नेन हलेनाकृष्य वैरिणम् ।
कठोरं ताडनं चक्रे मुसलेनाथ पोत्रिणी ॥११२
ततो मुसलघातेन त्यक्तप्राणो महासुरः ।
चूर्णितेन शतांगेन समं भूतलमाश्रयत् ॥११३
इति कृत्वा महत्कर्म मंत्रिणीदंडनायिके ।
तत्रैव तं निशाशेषं निन्यतु शिविरं प्रति ॥११४

विशुक्र का ऐसा विमर्दन किया था कि वह चूर-चूर होकर भूमि पर गिर गया था । मदोद्धता दण्डनाथा ने महान् दैत्य विषंग के साथ युद्ध किया था और अपने प्रचण्ड मुसल से उस पर प्रहार किया था और वह दुष्ट दानव भी कालदण्ड के समान गदा को लेकर प्रस्तुत हो गया था और उसने बाहु से महान् भीषण युद्ध किया था ।१०६-१०७। परस्पर में एक दूसरे का मर्दन करते हुए महान् गदा युद्ध में प्रवृत्त हुए थे । चण्ड चट्टहास से दोनों शब्दायमान हो रहे थे और उधर-उधर परिभ्रमण करने वाले थे ।१०८। अनेक चारों को करते हुए घूर्णन करते थे और तूर्ण वेष्टी हो रहे थे । परस्पर में प्रहारों से एक दूसरे को बार-बार मूर्च्छित करते हुए दोनों मदोद्धत छिद्रों को देख रहे थे । मूसल के दण्ड के प्रघट्टन से अम्बर को क्षुब्ध करते हुए वे दुराधर्ष दंडिनी और वह दैत्य शिरोमणि युद्ध कर रहे थे ।१०९-११०। आधी रात तक युद्ध करने वाली दण्डनायिका ने अत्यन्त क्रुद्ध होकर विषंग को मारना आरम्भ कर दिया था ।१११। इसके शिर में गढ़े हुए हल से उस शत्रु को खींचकर पोत्रिणी ने मुसल ने खूब ताड़न किया था ।११२। फिर मुसल की चोट से महान् असुर गत प्राण वाला हुआ था और चूर्ण होकर भूमि पर गिर पड़ा था ।११३। उन मन्त्रिणी और दण्डनायिका ने यह महान् कर्म करके वहाँ पर ही शिविर में उस रात्रि को व्यतीत किया था ।११४।

—×—

॥ भंडासुर वध वर्णन ॥

अगस्त्य उवाच–

अश्वानन महाप्राज्ञ वर्णितं मंत्रिणीबलम् ।
विषंगस्य वधो युद्धे वर्णितो दण्डनाथया ॥१
श्रीदेव्याः श्रोतुमिच्छामि रणचक्रे पराक्रमम् ।
सोदरस्यापदं दृष्ट्वा भण्डः किमकरोच्छुचा ॥२
कथं तस्य रणोत्साहः कैः समं समयुध्यत ।
सहायाः केऽभवंस्तस्य हतभ्रातृतनूभुवः ॥३

हयग्रीव उवाच–

इदं शृणु महाप्राज्ञ सर्वपापनिकृन्तनम् ।
ललिताचरितं पुण्यमणिमादिगुणप्रदम् ॥४
वैषुवायनकालेषु पुण्येषु समयेषु च ।
सिद्धिदं सर्वपापघ्नं कीर्तिदं पञ्चपर्वसु ॥५
तदा हतौ रणे तत्र श्रुत्वा निजसहोदरौ ।
शोकेन महताविष्टो भण्डः प्रविललाप सः ॥६
विकीर्णकेशो धरणौ मूर्छितः पतितस्तदा ।
न लेभे किंचिदाश्वासं भ्रातृव्यसनकर्शितः ॥७

अगस्त्यजी ने कहा—हे महाप्राज्ञ ! हे अश्वानन ! आपने मन्त्रिणी के बल का वर्णन कर दिया है और दण्डनाथा ने युद्ध में विषंग वध किया था वह भी वर्णन कर दिया है ।१। अब मैं युद्ध में श्रीदेवी के पराक्रम के श्रवण करने की इच्छा करता हूँ और भण्ड ने भाई के हनन को सुनकर शोक से क्या किया था ? फिर उसका रण में उत्साह कैसे हुआ था और उसने किनके साथ युद्ध किया था । जब उसके भाई पुत्र मर गये तो फिर उसके सहायक कौन हुए थे ।२-३। हयग्रीवजी ने कहा—हे महाप्राज्ञ ! अब यह भी आप सुनिए जो कि सब पापों का छेदन करने वाला है । यह श्री ललिता देवी का चरित परम पुण्यमय है और अणिमादिक आठों महा-

सिद्धियों के प्रदान करने वाला है ।४। वैषुवायन कालों में और पुण्य समयों में यह सिद्धि के देने वाला—सब पापों का विनाशक और पञ्च पर्वों में कीर्त्ति का दाता है ।५। उस समय में रण में अपने सहोदरों को मरे हुए सुनकर भंड महान् शोक से समाविष्ट हो गया था और उस भंडासुर ने बड़ा भारी विलाप किया था ।६। विकीर्ण केशों वाला वह मूर्च्छित होकर भूमि पर गिर गया था और भाइयों के दुःख से कर्शित होकर कुछ भी आश्वासन उसने प्राप्त नहीं किया था ।७।

पुनः पुनः प्रविलपन्कुटिलाक्षेण भूरिशः ।
आश्वास्यमानः शोकेन युक्तः कोपमवाप सः ।।८
फालं बहन्नतिक्रूरं भ्रमद्भ्रुकुटिभीषणम् ।
अंगारपाटलाक्षश्च निःश्वसन्कृष्णसर्पवत् ।।९
उवाच कुटिलाक्षं द्राक्समस्तपृतनापतिम् ।
क्षिप्रं मुहुर्मुहुः स्पृष्ट्वा धुन्वानः करवालिकाम् ।।१०
क्रोधहुंकारमातन्वन्गर्जन्नुत्पातमेघवत् ।।११
ययैव दुष्टया मायाबलाद्युद्धे विनाशिताः ।
भ्रातरो मम पुत्राश्च सेनानाथाः सहस्रशः ।।१२
तस्याः स्त्रियाः प्रमत्तायाः कण्ठोत्थैः शोणितद्रवैः ।
भ्रातृपुत्रमहाशोकवह्निं निर्वापयाम्यहम् ।।१३
गच्छ रे कुटिलाक्ष त्वं सज्जीकुरु पताकिनीम् ।
इत्युक्त्वा कठिनं वर्म वज्रपातसहं महत् ।।१४

वह बार-बार प्रलविलाप कर रहा था तब कुटिलाक्ष ने उसको आश्वासन दिया था । जब बहुत कुछ समझाया तो शोक से युक्त उसने क्रोध किया था ।८। उसने अत्यन्त क्रूर फाल को ग्रहण किया था और अपनी भृकुटियों को तिरछी करके बहुत ही भीषण हो गया था । उसकी आँखें अङ्गारों के समान रक्त हो गयी थीं और वह काले सर्प की तरह फुङ्कारें मार रहा था ।९। फिर सब सेनाओं के स्वामी कुटिलाक्ष से शीघ्र ही बोला था और बार-बार खड्ग को छूकर उसे घुमाता जा रहा था ।१०। वह क्रोध से हुङ्कार-कर रहा था और उत्पात के समय में होने वाले मेघों के समान

गर्ज रहा था ।११। जिस दुष्टा ने माया के बल से युद्ध में मेरे भाइयों और पुत्रों को मार दिया है और सहस्रों सेना पतियों का बिनाश कर दिया है उसी स्त्री के जब वह युद्ध में प्रवृत्त होगी तो उसके कण्ठ से निकले हुए रुधिर से भाई और पुत्रों के शोक की अग्नि को मैं शान्त करूँगा ।१२-१३। रे कुटिलाक्ष ! चले जाओ और सेना को तैयार करो। इतना ही कहकर उसने वज्रपात को भी सहन करने वाले कठिन कवच को धारण किया था ।१४।

दधानो भुजमध्येन बध्नन्पृष्ठे तथेषुधी ।
उद्दाममौर्विनिःश्वासकठोरं भ्रामयन्धनुः ।।१५
कालाग्निरिव संक्रुद्धो निर्जगाम निजात्पुरात् ।
तालजंघादिकैः सार्द्धं पूर्वद्वारे निवेशिते ।।१६
चतुर्भिर्धृतशस्त्रौघैर्धृतवर्मभिरुद्धतैः ।
पञ्चत्रिंशच्चमूनाथैः कुटिलाक्षपुरः सरैः ।।१७
सर्वसेनापतींद्रेण कुटिलाक्षेण स क्रुधा ।
मिलितेन च भण्डेन चत्वारिंशच्चमूवराः ।।१८
दीप्तायुधा दीप्तकेशा निर्जग्मुर्दीप्तकंकटाः ।
द्विसहस्राक्षौहिणीनां पञ्चाशीतिः पराधिका ।।१९
तदेनमन्वगादेकहेलया मथितुं द्विषः ।
भण्डासुरे विनिर्याते सर्वसैनिकसंकुले ।।२०
शून्यके नगरे तत्र स्त्रीमात्रमवशेषितम् ।
आभिलो नाम दैत्येंद्रो रथवर्यो महारथः ।
सहस्रयुग्यसिहाढ्यमारुरोह रणोद्धतः ।।२१

वर्म को भुजाओं के मध्यभाग से धारण करके उसने पृष्ठ में तूणीर कहा था। उद्दाम मौर्वी के निःश्वास से कठोर धनुष को घुमाते हुए कालाग्नि के समान से क्रुध होकर वह अपने नगर से निकलकर चल दिया था और तालजंघादिक उसके साथ थे तथा पूर्व द्वार पर सुरक्षा के लिए भी सेनाओं को निवेशित किया था ।१५-१६। चार शस्त्रों के समूहों को धारण करने वाले—कवचों को पहिन हुए और उद्धत वीर वहाँ पर थे। पैंतीस सेना-

पतियों के सहित जिनमें कुटिलाक्ष भी आगे थे वह चला था ।१७। सब सेना-पतियों का स्वामी कुटिलाक्ष के साथ वह क्रोध से युक्त हुआ था भंड को भी मिलाकर चालीस चमूवर थे ।१८। इनके आयुध परम दीप्त थे और इनके केश भी दीप्त थी ऐसे दीप्त कंकट वाले निकल गये थे दो सहस्र अक्षौहिणी सेना थी और परार्धिक पिचाली थीं ।१९। शत्रु का मंथन करने को एक ही साथ उसके पीछे गये थे । भंडासुर के निकल कर जाने पर जो सभी सेनाओं से संकुल थी ।२०। उस शून्यक नगर में केवल स्त्रियाँ ही रह गयी थीं । आभिल नामक दैत्येन्द्र जो रथवर्य और महारथी था एक सहस्र युग्य सिंहों से युक्त रथ पर रणोद्धत होकर सवार हुआ था ।२१।

तत्वरे विज्वलज्ज्वालाकालाग्निरिव दीप्तिमान् ।
घातको नाम वै खड्गश्चन्द्रहाससमाकृतिः ॥२२
इतस्ततश्चलंतीनां सेनानां धूलिरुत्थिता ।
वोढुं तासां भरं भूमिरक्षमेव दिवं ययौ ॥२३
केचिद्भूमेरपर्याप्तां प्रलेलुर्व्योमवर्त्मना ।
केषांचित्स्कन्धमारूढाः केचिच्चेलुर्महारथाः ॥२४
न दिक्षु न च भूचक्रे न व्योमनि च ते ममुः ।
दुःखदुखेन ते चेलुरन्योन्याश्लेषपीडिताः ॥२५
अत्यन्त सेनासंमर्दाद्रथचक्रं विचूर्णिताः ।
केचित्पादेन नागानां मर्दिता न्यपतन्भुवि ॥२६
इत्थं प्रचलिता तेन समं सर्वैश्च सैनिकैः ।
वज्रनिष्पेषसदृशो मेघनादो व्यधीयत ॥२७
तेनातीव कठोरेण सिंहनादेन भूयसा ।
भंडदैत्यमुखोत्थेन विदीर्णमभवज्जगत् ॥२८

वह जलती हुई ज्वाला वाले कालाग्नि के तुल्य ही दीप्ति वाला था। उसके खड्ग का नाम घातक था जो चन्द्रहास खड्ग के ही समान आकृति वाला था ।२२। इधर-उधर चलने वाली सेनाओं से धूलि उड़कर ऊपर उठ गयी थी । मानों भूमि उन सेनाओं के भार को सम्हालने में असमर्थ होकर ही आकाश में जा रही थी ।२३। उनमें कुछ तो भूमि पर स्थान न पाकर

व्योम के ही मार्ग से चल दिये थे। कुछ महारथी कुछ लोगों के स्कन्ध पर समारूढ़ होकर चले थे।२४। जब उस भंडासुर की सेनाएँ चली थीं तो कहीं पर भी स्थान नहीं रहा था। एक दूसरे से रगड़ खाकर पीड़ित से होते हुए जा रहे थे। न तो दिशाओं में न भूमि में और न नभ में वे समाये थे। बड़े ही दुःख से चल रहे थे।२५। अत्यन्त सेना के संमर्द से और रथों के पहियों से चूर्ण होते हुए जा रहे थे। कुछ हाथियों के पैरों से मर्दित होकर भूमि पर गिर गये थे।२६। इस रीति से उसके साथ सभी सैनिक गमन कर रहे थे और वज्रपात के समान उनने सिंहनाद किया था। उस प्रबल और बड़े भारी सिंहनाद से एवं कठोर से जो भंड के मुख से किया गया था सम्पूर्ण जगत विदीर्ण हो गया था।२७-२८।

सागराः शोषमापन्नाश्चन्द्रार्कौ प्रपलायितौ।
उडूनि न्यपतन्व्योम्नो भूमिर्दोलायिताभवत् ॥२९
दिङ्नागाश्चाभवन्त्रस्ता मूर्च्छिताश्च दिवौकसः।
शक्तीनां कटकं चासीदकांडत्रासविह्वलम् ॥३०
प्राणान्संधारयामासुः कथंचिन्मध्य आहवे।
शक्तयो भयविभ्रष्टान्यायुधानि पुनर्दधुः ॥३१
वह्निप्राकारवलयं प्रशांतं पुनरुत्थितम्।
दैत्येन्द्रसिंहनादेन चमूनाथधनुः स्वनैः ॥३२
क्रन्दनैश्चापि योद्धॄणामभूच्छब्दमयं जगत्।
तेन नादेन महता भंडदैत्यविनिर्गमम्।
निश्चित्य ललिता देवी स्वयं योद्धुं प्रचक्रमे ॥३३
अशक्यमन्यशक्तीनामाकलय्य महाहवम्।
भंडदैत्येन दुष्टेन स्वयमुद्योगमास्थिता ॥३४
चक्रराजरथस्तस्याः प्रचचाल महोदयः।
चतुर्वेदमहाचक्रपुरुषार्थमहाभयः ॥३५

समस्त सागर सूख गये थे। चन्द्र और सूर्य भी भाग गये थे। तारागण आकाश से गिर रहे थे और समस्त पृथ्वी काँप रही थी।२९। दिक्पाल भयभीत हो गये थे और देवगण मूर्च्छित हो गये थे उस समय में शक्तियों

की सेना अकाण्डत्रास से विह्वल हो गयी थीं ।३०। उस युद्ध में मध्य में किसी प्रकार से प्राणों को धारण किया था। शक्तियों ने भय से विभ्रष्ट आयुधों को पुनः धारण किया था ।३१। वह्नि प्राकार वलय प्रशान्त फिर उत्थित हो गया था। उस दैत्येन्द्र के सिंहनाद से और सेना यतियों के धनुषों की टङ्कारों से तथा योद्धाओं के क्रन्दनों से समस्त जगत ही शाकायमान हो गया था। उस महान् नाद से भण्डासुर के समागमन का निश्चय करके ललिता देवी ने स्वयं ही युद्ध करने की इच्छा की थी ।३२-३३। यह महान संग्राम शक्तियों के द्वारा नहीं किया जा सकता है ऐसा विचार करके दुष्ट भण्ड दैत्य के साथ स्वयं ही युद्ध करने के लिए उद्योग में समास्थित हुई थी ।३४। उसका चक्रराज रथ जो महान हृदय वाला था वहाँ से चल दिया था। चारों वेद उसके चक्र थे और पुरुषार्थ महान भय वाला था ।३५।

आनन्दध्वजसंयुक्तो नवभिः पर्वभिर्युतः ।
नवपर्वस्थदेवीभिराकृष्टगुरुधन्विभिः ॥३६
परार्धाधिकसंख्यातपरिवारसमृद्धिभिः ।
पर्वस्थानेषु सर्वेषु पालितः सर्वतो दिशम् ॥३७
दशयोजनमुन्नद्धश्चतुर्योजनविस्तृतः ।
महाराज्ञीचक्रराजो रथेंद्रः प्रचलन्बभौ ॥३८
तस्मिन्प्रचलिते जुष्टे श्यामया दंडनाथया ।
गेयचक्रं तु बालाग्रे किरिचक्रं तु पृष्ठतः ॥३९
अन्यासामपि शक्तीनां वाहनानि परार्द्धशः ।
न सिंहोष्ट्रनरव्यालमृगपक्षिहयास्तथा ॥४०
गजभेरुण्डशरभव्याघ्रवातमृगास्तथा ।
एतादृशश्च तिर्यंचोऽप्यन्ये वाहनतां गताः ॥४१
मुहुरुच्चावचाः शक्तीर्भंडासुरवधोद्यताः ।
योजनायामविस्तारमपि तद्द्वारमंडलम् ।
वह्निप्राकारचक्रस्य न पर्याप्तं चमूपतेः ॥४२

वह रथ आनन्द की ध्वजा से युक्त था और उसमें नौ पर्व थे। नौ पर्वों पर देवियाँ स्थित थीं जिन्होंने बड़े-बड़े धनुषों को चढ़ा रक्खा था ।३६।

परार्द्ध से अधिक संख्या वाले परिवारों की समृद्धियों से समस्त पर्व स्थानों में सब दिशाओं में उसकी सुरक्षा भी थी ।३७। वह रथ दश योजन ऊँचा और चार योजन चौड़ा था। ऐसा वह महाराज्ञी का चक्रराज रथेन्द्र गमन करता हुआ शोभित हुआ था ।३८। श्यामा और दण्डनाथा के द्वारा सेवित वह रथ रवाना हुआ था। उस बाला के आगे गेय चक्र था।३९। अन्य शक्तियों के भी बाहन परार्द्ध के नृसिंह—उष्ट्र—नर—व्याल—मृग—पक्षी और हय थे ।४०। हाथी-भेरुण्ड—व्याघ्र—वात—मृग ऐसे और तिर्यक योनि वाले भी उनके वाहन थे।४१। बार-बार उच्चावच शक्तियाँ भंडासुर के बध करने के लिए उद्यत हुई थीं। उसका द्वारमंडल भी योजन आयाम विस्तार वाला था जो बह्निप्राकार चक्र के सेनापति को पर्याप्त नहीं था। ।४२।

ज्वालामालिनिका नित्या द्वारस्यात्यंतविस्तुतिम् ।
वितताम समस्तानां सैन्यानां निर्गमैषिणी ॥४३
अथ सा जगतां माता महाराज्ञी महोदया ।
निर्जगामाग्निपुरतो वरद्वारात्प्रतापिनी ॥४४
देवदुन्दुभयो नेदुः पतिताः पुष्पवृष्टयः ।
महामुक्तातपत्रं तद्दिवि दीप्तमदृश्यत ॥४५
निमित्तानि प्रसन्नानि शंसकानि जयश्रियाः ।
अभवंल्ललितासैन्ये उत्पातास्तु द्विषां बले ॥४६
ततः प्रववृते युद्धं सेनयोरुभयोरपि ।
प्रसर्पद्विशिखैः स्तोमबद्धान्धतमसच्छटम् ॥४७
हन्यमानगजस्तोमसृतशोणितबिंदुभिः ।
ह्रीयमाणशिरश्छन्नदं त्यश्वेतातपत्रकम् ॥४८
न दिशो न नभो नागा न भूमिर्न च किंचन ।
दृश्यते केवलं दृष्टं रजोमात्रं च मूर्च्छितम् ॥४९

ज्वाला मालिनिका नित्या ने द्वारकी अत्यन्त विस्तुति को विस्तृत किया था। यह समस्त सेनाओं की निर्गम की चाहने वाली थी ।४३। इसके उपरान्त जगतों की माता महोदया महाराज्ञी प्रतापिनी वरद्वार से अग्निपुर

उस नदी में थे। चक्र से कटे हुए करियों के समुदाय ही उसमें कूर्मों की परम्परा थीं ।५१। शक्तियों के द्वारा ध्वस्त महान दैत्यों के गलगण्ड ही उस नदी में शिलोच्चय थे। जिनके काण्ड विलून होगये हैं ऐथ चमर जो उसमें थे वे ही फेन थे ।५२। तीक्ष्ण जो असियाँ थीं वे ही बल्लरी थीं जिनके कारण उस नदी की तटभूमि निविड़ हो रही थी। दैत्यों के नेत्रों के श्रेणियाँ ही मुक्ति सम्पुट थे जिससे वह नदी भासुर थी ।५३। दैत्य वाहनों के समुदाय ही उस शोणित की नदी में सैकड़ों नक्र और मछलियाँ थीं जिनसे वह घिरी हुई थी। दोनों सेनाओं का युद्ध होने पर वहाँ रुधिर की नदी प्रवाहित हो रही थी ।५४। इसके अनन्तर श्री ललिता देवी और भण्ड का युद्ध हुआ था। उसमें अस्त्रों और प्रत्यस्त्र का ऐसा संक्षोभ हुआ था कि समस्त दिशायें तुमुली कृत हो गयी थीं ।५६।

धनुर्ज्यातलटंकारहुंकारैरतिभीषणः ।
तूणीरवदनात्कृष्टधनुर्वरविनिःसृतैः ।
विमुक्तैर्विशिखैर्भीमैराहवे प्राणहारिभिः ।।५७
हस्तलाघववेगेन न प्राज्ञायत किंचन ।
महाराज्ञीकरांभोजव्यापारं शरमोक्षणे ।
शृणु सर्वं प्रवक्ष्यामि कुम्भसंभव सङ्गरे ।।५८
संधाने त्वेकधा तस्य दशधा चापनिर्गमे ।
शतधा गगने दैत्यसैन्यप्राप्तौ सहस्रधा ।
दैत्यांगसंगे संप्राप्ताः कोटिसंख्याः शिलीमुखाः ।।५९
परांधकारं सृजती भिंदती रोदसी शरैः ।
मर्माभिनत्प्रचंडस्य महाराज्ञी महेषुभिः ।।६०
बहुत्कोपारुणं नेत्रं ततो भंडः स दानवः ।
ववर्ष शरजालेन महता ललितेश्वरीम् ।।६१
अन्धतामिस्रकं नाम महास्त्रं प्रमुमोच सः ।
महातरणिबाणेन तन्नुनोद महेश्वरी ।।६२
पाखंडास्त्रं महावीरो भंडः प्रमुमुचे रणे ।
गायत्र्यस्त्रं तस्य नुत्यै ससर्ज जगदम्बिका ।।६३

वह युद्ध धनुष की डोरी की टंकारों और हुङ्कारों से अत्यन्त भीषण हो गया था। तूणीर से निकालकर खीचे हुए धनुषों से छोड़े गये महान् भयंकर बाणों से जो युद्ध में प्राणों के हरण करने वाले थे वह रण बहुत ही भयानक था।५७। शरों के छोड़ने में महाराज्ञी के कर कमलों का व्यापार हाथ की सफाई के वेग से कुछ भी नहीं जाना गया था। हे कुम्भ सम्भव ! संग्राम में जो हुआ था उस सबको मैं बतलाऊँगा—आप श्रवण कीजिए।५८। वे बाण ऐसे थे कि सन्धान के समय में एक ही प्रकार का था-वही चाप से निकलने पर दश प्रकार का हो जाता था—गगन में सौ प्रकार का-दैत्यों की सेना में प्राप्त होने पर सहस्र प्रकार का होता था और दैत्यों के अङ्गों के संगम में सम्प्राप्त होकर करोड़ों प्रकार का हो जाता था।५९। परान्धकार का सृजन करती हुई और रोदसी को शरों से भेदन करती हुई महाराज्ञी ने विशाल बाणों से प्रचण्ड के मर्मों का भेदन कर दिया था।६०। भंड ने क्रोध से लाल नेत्रों को वहन करते हुए उस दैत्य ने बड़े पारीशरों के जालों की ललितेश्वरी के ऊपर वर्षा की थी।६१। उसने अन्ध तामिस्र नाम वाले महास्त्र को छोड़ा था। महेश्वरी ने महातरणि बाण से उसको काट दिया था।६२। महावीर भंड ने रण में पाखण्डास्त्र को छोड़ा था उसके निवारण के लिए जगदम्बा ने गायत्र्यस्त्र को छोड़ दिया था।६३।

अन्धास्त्रमसृजद्भंडः शक्तिदृष्टिविनाशनम् ।
चाक्षुष्मतमहास्त्रेण शमयायास तत्प्रसः ।।६४
शक्तिनाशाभिधं भंडो मुमोचास्त्रं महारणे ।
विश्वावसोरथास्त्रेण तस्य दर्पमपाकरोत् ।।६५
अन्तकास्त्रं ससर्जोच्चैः संक्रुद्धो भंडदानवः ।
महामृत्युञ्जयास्त्रेण नाशयामास तद्बलम् ।।६६
सर्वास्त्रस्मृतिनाशाख्यमस्त्रं भंडो व्यमुञ्चत ।
धारणास्त्रेण चक्रेशी तद्बलं समनाशयत् ।।६७
भयास्त्रमसृजद्भंडः शक्तीनां भीतिदायकम् ।
अभयंकरमैंद्रास्त्रं मुमुचे जगदम्बिका ।।६८
महारोगास्त्रमसृजच्चवितसेनासु दानवः ।
राजयक्ष्मादयो रोगास्ततोऽभूवन्सहस्रशः ।।६९

तन्निवारणसिद्धयर्थं ललिता परमेश्वरी ।
नामत्रयमहामन्त्रमहास्त्रं सा मुमोच ह ॥७०

भंड ने दृष्टि के विनाशक अन्धास्त्र का प्रहार किया था। देवी ने चाक्षुष्मन्महास्त्र के द्वारा उसका शमन कर दिया था ।६४। उस महारण में भंड ने शक्ति नाशक नाम वाले अस्त्र को छोड़ा था उसका दर्प विश्वावसु अस्त्र के प्रयोग से दूर कर दिया था ।६५। भंड दानव ने अन्तकास्त्र को छोड़ा था और बहुत क्रोधित हुआ था। उसके बल को देवी ने महामृत्युञ्जयास्त्र से दूर कर दिया था ।६६। फिर भंड ने सब अस्त्रों की स्मृति के विनाश करने वाले अस्त्र को छोड़ा था, चक्रेशी ने धारणास्त्र के द्वारा उसका विनाश कर दिया था ।६७। शक्तियों को भय देने वाले भयास्त्र का प्रयोग भंड ने किया था और जगदम्बिका ने अभयंकर ऐन्द्रास्त्र को छोड़ दिया था ।६८। दानव ने शक्ति सेनाओं में महारोगास्त्र छोड़ दिया था जिससे राजयक्ष्मा आदि सहस्रों रोग होते थे। उसके निवारण की सिद्धि के लिए परमेश्वरी ललितादेवी ने नाम त्रय महामन्त्र महास्त्र का प्रयोग किया था। ।६९-७०।

अच्युतश्चाप्यनंतश्च गोविन्दस्तु शरोत्थिताः ।
हुंकारमात्रतो दग्ध्वा रोगांस्ताननयन्मुदम् ॥७१

नत्वा च तां महेशानीं तद्भक्तव्याधिमर्दनम् ।
विधातुं त्रिषु लोकेषु नियुक्ताः स्वपदं ययुः ॥७२

आयुर्नाशनमस्त्रं तु मुक्तवान्भंडदानवः ।
कालसंकर्षणीरूपमस्त्रं राज्ञो व्यमुञ्चत ॥७३

महासुरास्त्रमुद्दामं व्यसृजद्भंडदानवः ।
ततः सहस्रशो जाता महाकाया महाबलाः ॥७४

मधुश्च कैटभश्चैव महिषासुर एव च ।
धूम्रलोचनदैत्यश्च चंडमुण्डादयोऽसुराः ॥७५

चिक्षुभश्चामरश्चैव रक्तबीजोऽसुरस्तथा ।
शुम्भश्चैव निशुम्भश्च कालकेया महाबलाः ॥७६

धूम्राभिधानाश्च परे तस्मादस्त्रात्समुत्थिता: ।
ते सर्वे दानवश्रेष्ठा: कठोरै: शस्त्रमण्डलै: ॥७७

उस महेशानी को नमस्कार करके उसके भक्तों ने व्याधि मर्दन को करने के लिए तीनों लोकों में नियुक्त अपने स्थान को चले गये थे । शरों से उत्थित अच्युत-अनन्तर और गोविन्द हुङ्कार मात्र से ही रोगों को दग्ध करके उनको प्रसन्न किया था ।७१-७२। इसके उपरान्त उस महान् भीषण युद्ध स्थल में पराक्रमी फिर भण्ड ने आयुर्नाशन अस्त्र छोड़ा था और राज्ञी ने काल संकर्षणी रूप अस्त्र को प्रयुक्त किया था ।७३। भंड दानव ने उद्दाम महासुरास्त्र को छोड़ दिया था । उससे सहस्रों ही महाकाय और महाबली उत्पन्न हो गये थे । मधु-कंटभ- महिषासुर—धूम्रलोचन और चंड-मुंड प्रभृति असुर थे ।७४-७५। चिक्षुभ—चामर—रक्तबीज—निशुम्भ और महान् बलवान कालकेय थे ।७६। दूसरे धूमाभिधान वाले उस अस्त्र से उत्थित हो गये थे । वे सभी श्रेष्ठ दानव कठोर शस्त्रों के मंडलों से प्रहार कर रहे थे ।७७।

शक्तीसेना मर्दयन्तो नर्दन्तश्च भयंकरम् ।
हाहेति क्रन्दमानाश्च शक्तयो दैत्यमर्दिता: ॥७८
ललितां शरणं प्राप्ता: पाहि पाहीति सत्वरम् ।
अथ देवी भृशं क्रुद्धा रुषाट्टहासमातनोत् ॥७९
तत: समुत्थिता काचिद्दुर्गा नाम यशस्विनी ।
समस्तदेवतेजोभिर्निर्मिता विश्वरूपिणी ॥८०
शूलं च शूलिना दत्तं चक्रं चक्रिसमर्पितम् ।
शंखं वरुणदत्तश्च शक्ति दत्तां हविर्भुजा ॥८१
चापमक्षयतूणीरो मरुद्दत्तौ महामृधे ।
वज्रिदत्तं च कुलिशं चषकं धनदार्पितम् ॥८२
कालदंडं महादंडं पाशं पाशधरार्पितम् ।
ब्रह्मदत्तां कुण्डिकां च घण्टामैरावतार्पिताम् ॥८३
मृत्युदत्तौ खड्गखेटौ हारं जलधिनार्पितम् ।
विश्वकर्मप्रदत्तानि भूषणानि च बिभ्रती ॥८४

वे सब शक्ति सेना का मर्दन कर रहे थे और भयानक नर्दन कर रहे थे। हा-हा-कहकर क्रन्दन करती हुई शक्तियाँ दैत्यों से मर्दित हो रही थीं ।७८। वे सभी शक्तियाँ ललिता देवी की शरण में शीघ्रता से प्राप्त हुई थीं और रक्षा करो-रक्षा करो ऐसा कह रही थीं। इसके पश्चात् वह देवी क्रोध से रुष्ट हो गई थी और उसने अट्टहास किया था ।७९। फिर कोई दुर्गा नाम वाली उत्पन्न हुई थी जो बहुत यशस्विनी थी। यह विश्व रूपिणी सब देवों के तेजों से निर्मित हुई थी ।८०। उसको शूली ने शूल दिया था और विष्णु ने चक्र समर्पित किया था। वरुण ने शंख दिया था और अग्नि ने शक्ति दी थी ।८१। उस युद्ध में मरुत् ने अक्षय चाप और तूणीर किया था। वज्री ने कुलिश दिया था और धनद ने चषक दिया था। पाशधर ने काल-दंड-महादंड और पाश दिया था। ब्रह्मा ने कुण्डिका दी थी और ऐरावत ने घण्टा दिया था ।८२।८३। मृत्यु ने खड्ग और खेट दिया था तथा जल विधि ने हार अर्पित किया था। विश्वकर्मा ने भूषण दिये थे जिनको वह धारण कर रही थी ।८४।

अङ्गैः सहस्रकिरणश्रेणिभासुररश्मिभिः ।
आयुधानि समस्तानि दीपयंति महोदयैः ॥८५
अन्यदत्तैरथान्यैश्च शोभमाना परिच्छदैः ।
सिंहवाहनमारुह्य युद्धं नारायणी व्यधात् ॥८६
तया ते महिषप्रख्या दानवा विनिपातिताः ।
चण्डिकासप्तशत्यां तु यथा कर्म पुराकरोत् ॥८७
तथैव समरं चक्रे महिषादिमदापहम् ।
तत्कृत्वा दुष्करं कर्म ललितां प्रणनाम सा ॥८८
मूकास्त्रमसृजद्दुष्टः शक्तिसेनासु दानवः ।
महावाग्वादिनी नाम ससर्जास्त्रं जगत्प्रसूः ॥८९
विद्यारूपस्य वेदस्य तस्करानसुराधमान् ।
ससर्ज तत्र समरे दुर्मदो भण्डदानवः ॥९०
दक्षहस्ताङ्गुष्ठनखान्महाराज्ञ्या तिरस्कृतः ।
अर्णवास्त्रं महावीरो भण्डदैत्यो रणेऽसृजत् ॥९१

सहस्रों किरणों की श्रेणियां सैनापुर अङ्गों से सहस्रों आयुधों आयुधों को दीप्त कर रही थीं। अन्यों के द्वारा दिये हुए परिच्छदों से यह शोभमान थी और सिंह के वाहन पर आरूढ़ होकर उस नारायणी ने युद्ध किया था। उसने वे महिष मुख्य जो दानव थे वे सब मार गिराये थे। चण्डिका ने सप्तशती में पहिले जो कर्म किया था।८५-८७। उसी भाँति से महिष प्रभृति के मद का अपहारक युद्ध किया था। उस महान दुष्कर कर्म को करके उसने ललिता देवी को प्रणाम किया था।८८। उस दुष्ट दानव ने शक्तियों की सेना में मूकास्त्र छोड़ा था। उसके प्रतिकार के लिए जगदम्बाने महा वाग्वादिनी नामक अस्त्र का प्रयोग किया था।८९। उस दुष्ट दानव ने तस्कर अधम असुरों के ऊपर विद्या रूप वेद का सृजन किया था।९०। महाराज्ञी ने दाहिने हाथ के अँगूठे के नख से उसका तिरस्कार कर दिया था। भण्ड-दैत्य ने अणवास्त्र का रण में प्रयोग किया था।९१।

तत्रोद्दामपयः पूरे शक्तिसैन्यं ममज्ज च।
अथ श्रीललितादक्षहस्ततर्जनिकानखात्।
आदिकूर्मः समुत्पन्नो योजनायतविस्तरः।।९२
धृतास्तेन महाभोगखर्परेण प्रथीयसा।
शक्तयो हर्षमापन्नाः सागरास्त्रभयं जहुः।।९३
तत्सामुद्रं च भगवान्सकलं सलिलं पपौ।
हैरण्याक्षं महास्त्रं तु विजहौ दुष्टदानवः।।९४
तस्मात्सहस्रशो जाता हिरण्याक्षा गदायुधाः।
तैर्हन्यमाने शक्तीनां सैन्ये सन्त्रासविह्वले।
इतस्ततः प्रचलिते शिथिले रणकर्मणि।।९५
अथ श्रीललितादक्षहस्तमध्याङ्गुलीनखात्।
महावराहः समभूच्छ्वेतः कैलाससंनिभः।।९६
तेन वज्रसमानेन पोत्रिणाभिविदारिताः।
कोटिशस्ते हिरण्याक्षा मर्द्यमानाः क्षयं गताः।।९७
अथ भण्डस्त्वतिक्रोधाद्भ्रुकुटीं वितताम ह।
तस्य भ्रुकुटितो जाता हिरण्याः कोटिसंख्यकाः।।९८

वहाँ पर उद्दाम पूर्ण जल के समुदाय में शक्ति सेना को डुबा दिया था इसके अनन्तर श्री ललिता के दाहिने हाथ की तर्जनी के नख से योजन पर्यन्त आयत विस्तार से युक्त आदि कूर्म समुत्पन्न हुआ था ।९२। उस महान प्रधीयान भोग खर्पर से धारण किया था । शक्तियां बहुत हर्षित हुई थीं और उन्होंने सागरास्त्र का भय त्याग दिया था ।९३। उस समुद्र जल को पूर्ण रूप से भगवान कूर्म ने जल का पान कर लिया था । दुष्ट दानव ने हैरण्याक्ष महान् अस्त्र को छोड़ा था ।९४। उससे सहस्रों हिरण्याक्ष गदा लिये हुए थे । उनके द्वारा शक्तियों के हन्यमान होने पर शक्ति सेना में संत्रास से विह्वलता हो गयी और वे रण के कर्म से शिथिल होकर इधर-उधर चलने लग गयीं थीं।९५। इसके उपरान्त श्री ललितादेवी के दक्षिण हाथ की मध्यमा अंगुलि के नख से कैलास के समान श्वेत महान वराह उत्पन्न हुए थे ।९६। उसने वज्र के समान पोत्रि से करोड़ों हिरण्याक्ष विदीर्ण कर दिये थे और मर्दित होते हुए वे सब क्षीण हो गये थे ।९७। इसके पश्चात् भंडासुर ने महान क्रोध से भौंहें तान ली थीं । उसकी भृकुटी से करोड़ों हिरण्य समुत्पन्न हुए थे ।९८।

ज्वलदादित्यवद्दीप्ता दीप्तप्रहरणाश्च ते ।
अमर्दयच्छक्तिसैन्यं प्रह्लादं चाप्यमर्दयन् ।।९९

यः प्रह्लादोऽस्ति शक्तीनां परमानन्दलक्षणः ।
स एव बालको भूत्वा हिरण्यपरिपीडितः ।।१००

ललितां शरणं प्राप्तस्तेन राज्ञी कृपामगात् ।
अथ शक्त्या नन्दरूपं प्रह्लादं परिरक्षितुम् ।।१०१

दक्षहस्तानामिकाग्रं धुनोति स्म महेश्वरी ।
तस्माद् धूतसटाजालः प्रज्वलल्लोचनत्रयः ।।१०२

सिंहास्यः तुरुषाकारः कंठस्याधो जनार्दनः ।
नखायुधः कालरुद्ररूपी घोराट्टहासवान् ।।१०३

सहस्रसंख्यदोर्दण्डो ललिताज्ञानुपालकः ।
हिरण्यकशिपून्सर्वान्भंडभ्रुकुटिसंभवान् ।।१०४

क्षणाद्विदारयामास नखैः कुलिशकर्कशैः ।
अमुञ्चल्ललिता देवी प्रतिभंडमहासुरम् ।।१०५

वे जलते हुए आदित्य के समान दीप्त थे और दीपों के प्रहरणों से उद्धत थे। उसने शक्तियों की सेना का मर्दन किया था और प्रह्लाद का भी मर्दन किया था।९९। जो प्रह्लाद शक्तियों का था वह परमानन्द लक्षण वाला ही था। वह ही एक बालक होकर हिरण्याक्ष के द्वारा परिपीड़ित हुआ था।१००। वह ललिता के शरण में प्राप्त हो गया था। राज्ञी ने उस पर कृपा की थी। इसके पश्चात् शक्तियों के आनन्द स्वरूप प्रह्लाद की रक्षा करने के लिए।१०१। ललिता देवी ने दाहिने हाथ की अनामिका को हिलाया था। उससे जटाओं के जाल को हिलाने वाले—तीन नेत्रों से युक्त जो जाज्वल्यमान थे—सिंह के मुख वाले—पुरुषाकार और कण्ठ के नीचे जनार्दन—कारुद्र के रूप वाले—नखों के आयुधों से संयुत घोर अट्टहास वाले उत्पन्न हुए थे।१०२-१०३। उनकी भुजाएँ सहस्रों की संख्या में थीं और वे ललिता की आज्ञा के पालक थे। जो भण्ड की भौंहों से समुत्पन्न हिरण्यकशिपु थे।१०४। उन सबको क्षणभर में कुलिश के समान कर्कश नखों से विदीर्ण कर दिया था। फिर ललिता देवी ने सब देवों के विनाशक एक महान् घोर बलीन्द्रास्त्र को प्रत्येक भंड महासुर के प्रति छोड़ा था।१०५।

तदस्त्रदर्पनाशाय वामनाः शतशोऽभवन् ।
महाराज्ञीदक्षहस्तकनिष्ठाग्रान्महौजसः ॥१०६

क्षणे क्षणे वर्धमानाः पाशहस्ता महाबलाः ।
बलींद्रानस्त्रसंभूतान्बध्नंतः पाशबन्धनैः ॥१०७

दक्षहस्तकनिष्ठाग्राज्जाताः कामेशयोषितः ।
महाकाया महोत्साहास्तदस्त्रं समनाशयन् ॥१०८

हैहयास्त्रं समसृजद्भंडदैत्यो रणाजिरे ।
तस्मात्सहस्रशो जाताः सहस्रार्जुनकोटयः ॥१०९

अथ श्रीललितावामहस्तांगुष्ठनखादितः ।
प्रज्वलन्भार्गवो रामः सक्रोधः सिंहनादवान् ॥११०

धारया दारयन्नेतान्कुठारस्य कठोरया ।
सहस्रार्जुनसंख्यातान्क्षणादेव व्यनाशयन् ॥१११

अथ क्रुद्धो भंडदैत्यः क्रोधाद्धुंकारमातनोत् ।
तस्माद्धुंकारतो जातश्चन्द्रहासकृपाणवान् ॥११२

फिर महादेवी के दाहिने हाथ की कनिष्ठिका के नख के अग्रभाग से महान् ओज वाले वामन सैकड़ों ही उसके दर्प के विनाश करने के लिए हुए थे जो छोड़े गये थे ।१०६। एक-एक क्षण में बढ़े हुए—हाथों में पाश लिये हुए महा बलवान् अस्त्र से समुत्पन्न बलीन्द्रों को पाशों बन्धनों से बाँधते हुए थे ।१०७। दाहिने हाथ की कनिष्ठा के अग्रभाग से कामेशयोषित उत्पन्न हुई थीं जिनके विशाल शरीर थे और महान उत्साह था अस्त्र का उन्होंने विनाश कर दिया था ।१०८। भंडदैत्य ने फिर उस संग्राम में हैहयास्त्र छोड़ा था । उससे सहस्रों ही सहस्रार्जुन समुत्पन्न हो गये थे ।१०९। इसके पश्चात् ललिता के अंगुष्ठ के अग्रभाग से क्रोधयुत प्रज्वलित सिंहनाद वाले भार्गव राम प्रकट हुए थे ।११०। उन्होंने कठोर परशु की धार से इन सब सहस्रों सहस्रार्जुनों को विदीर्ण करके एक ही क्षण में विनष्ट कर दिया था ।१११। इसके पश्चात् भंड दैत्य ने क्रोध से हुङ्कार की थी । उस हुङ्कार से चन्द्रहास कृपाणवान् उत्पन्न हो गया था ।११२।

सहस्राऽक्षौहिणीरक्षः सेनया परिवारितः ।
कनिष्ठं कुम्भकर्णं च मेघनादं च नन्दनम् ।
गृहीत्वा शक्तिसैन्यं तद्दतिदूरममर्दयत् ॥११३
अथ श्रीललितावामहस्ततर्जनिकानखात् ।
कोदण्डरामः समभूल्लक्ष्मणेन समन्वितः ॥११४
जटामुकुटवान्वल्लीबद्धतूणीरपृष्ठभूः ।
नीलोत्पलदलश्यामो धनुर्विस्फारयन्मुहुः ॥११५
नाशयामास दिव्यास्त्रैः क्षणाद्राक्षससैनिकम् ।
मर्दयामास पौलस्त्यं कुम्भकर्णं च सोदरम् ।
लक्ष्मणो मेघनादं च महावीरमनाशयत् ॥११६
द्विविदास्त्रं महाभीममसृजद्भंडदानवः ।
तस्मादनेकशो जाताः कपयः पिंगलोचनाः ॥११७
क्रोधेनारक्ततास्त्रास्याः प्रत्येकं हनुमत्समाः ।

व्यनाशयच्छक्तिसैन्यं क्रूरकें कारकारिण: ।।११८
अथ श्रीललिताबामहस्तमध्यांगुलीनखात् ।
आविर्बभूव तालांक: क्रोधमध्यारुणेक्षण: ।।११९

वह सहस्रों राक्षसों की सेना से घिरा हुआ था। छोटा भाई कुम्भ कर्ण और नन्दन मेघनाद को लेकर उसने शक्तियों की सेना को दूर तक मर्दित कर दिया था ।११३। इसके अनन्तर ललिता देवी के बाँये हाथ की कनिष्ठिका के अग्रभाग से लक्ष्मण के सहित कोदण्डराम उत्पन्न हुए थे ।११४। वह श्रीराम जटा और मुकुट धारी थे जिनके पृष्ठ पर तूणीर था—वे नीलकमल के समान श्याम वर्ण के थे और बार-बार धनुष को विस्फारित कर रहे थे ।११५। उन्होंने एक ही क्षण में दिव्यास्त्रों से राक्षसों की सेना का विनाश कर दिया। कुम्भकर्ण भाई को और पौलस्त्य को मर्दित कर दिया था। लक्ष्मण ने मेघनाद को जो महान वीर था विनष्ट कर दिया था ।११६। भंड ने फिर द्विविदास्त्र को उत्पन्न किया था। उससे अनेक कपिगण पिङ्गलोचनों वाले उत्पन्न हो गये थे ।११७। वे क्रोध से अत्यन्त ताम्रमुखों वाले थे और सभी हनुमान के तुल्य थे। वे क्रूर केङ्कारकारी थे और उन्होंने शक्तियों की सेना का विनाश किया था ।११८। इसके उपरान्त श्री ललिता के बाँये हाथ की मध्यमा के नख से तालाङ्क आविर्भूत हुआ था जो क्रोध से अरुण लोचनों वाला था ।११९।

नीलांबरपिनद्धांग: कैलासाचलनिर्मल: ।
द्विविदास्त्रसमुद्भूतान्कपीन्सर्वान्व्यनाशयन् ।।१२०
राजासुरं नाम महत्ससर्जास्त्रं महाबल: ।
तस्मादस्त्रात्समुद्भूता बहवो नृपदानवा: ।।१२१
शिशुपालो दन्तवक्त्र: शाल्व: काशीपतिस्तथा ।
पौड्रको वासुदेवश्च रुक्मी डिम्भकहंसकौ ।।१२२
शम्बरश्च प्रलंबश्च तथा बाणासुरोऽपि च ।
कंसश्चाणूरमल्लश्च मुष्टिकोत्पलशेखरौ ।।१२३
अरिष्टो धेनुक: केशी कालियो यमलार्जुनौ ।
पूतना शकटश्चैव तृणावर्तादयोऽसुरा: ।।१२४

नरकाख्यो महावीरो विष्णुरूपी मुरासुरः ।
अनेके सह सेनाभिरुत्थिताः शस्त्रपाणयः ।।१२५
तान्विनाशयितुं सर्वान्वासुदेवः सनातनः ।
श्रीदेवीवामहस्ताब्जानामिकानखसंभवः ।।१२६

नीले वस्त्रसे उसका अङ्गपिनद्ध था और कैलासके समज निर्मल था । द्विविदास्त्र से उत्पन्न समस्त कपियों का उसने विनाश कर दिया था ।१२०। उस महा बलवान ने राजासुर नामक महान अस्त्र को छोड़ा था । उस अस्त्र से बहुत से भूत दानव समुत्पन्न हुए थे ।१२१। उनमें शिशुपाल दन्त वक्त्र- शाल्व—काशीपति—पौण्ड्रक—बासुदेव—रुक्मीडिम्भक हंसक थे ।१२२। शम्बर—प्रलम्ब—बाणासुर भी था । कंस—चाणूर मल्ल—मुष्टिक—उत्पल शेखर थे ।१२३। अरिष्ठ—धेनु—ककेशी—कालिय—यमलार्जुन—पूतना—शकर—तृणावर्त्त आदि असुर सभी थे ।१२४। महावीर नरक और विष्णु-रूपी मुर असुर था । ऐसे बहुत से हथियारों को हाथों में लेकर सेनाओं के साथ आविर्भूत हो गये थे ।१२५। उन सबके विनाश करने के लिए श्री देवी के बाँये हाथ की अनामिका के नख से संभूत सनातन वासुदेव प्रकट हुए थे ।१२६।

चतुर्व्यूहं समातेने चत्वारस्ते ततोऽभवन् ।
वासुदेवो द्वितीयस्तु संकर्षण इति स्मृतः ।।१२७
प्रद्युम्नश्चानिरुद्धश्च ते सर्वे प्रोद्यतायुधाः ।
तानशेषान्दुराचारान्भूमेर्भारप्रवर्तकान् ।।१२८
नाशयामासुरुर्वीशवेषच्छन्नान्महासुरान् ।।१२९
अथ तेषु विनष्टेषु संक्रुद्धो भंडदानवः ।
धर्मविप्लावकं घोरं कल्यस्त्रं सममुञ्चत ।।१३०
ततः कल्यस्त्रतो जाता आंध्राः पुण्ड्राश्च भूमिपाः ।
किराताः शबरा हूणा यबनाः पापवृत्तयः ।।१३१
वेदविप्लावका धर्मद्रोहिणः प्राणिहिंसकाः ।
वर्णाश्रमेषु सांकर्यकारिणो मलिनांगकाः ।

ललिताशक्तिसैन्यानि भूयोभूयो व्यमर्दयन् ॥१३२

अथ श्रीललितावामहस्तपद्मस्य भास्वतः ।

कनिष्ठिकानखोद्भूतः कल्किर्नाम जनार्दनः ॥१३३

वे चारों ने चतुर्व्यूह बनाया था जो फिर हुए थे । उनमें वासुदेव—दूसरे संकर्षण थे ।१२७। तीसरे प्रद्युम्न और चौथे अनिरुद्ध थे । ये सभी आयुधों से समुद्यत थे । इन्होंने उन दुराचारियों को जो भूमि पर भार के प्रवर्त्तक थे ।१२८। वे राजा के रूप में छिपे हुए महासुर थे उन सबका विनाश कर दिया था ।१२६। इन सबके विनष्ट होने पर भण्डासुर बहुत क्रुद्ध हुआ था और फिर उसने धर्म के विप्लावक घोर कलि के अस्त्र को छोड़ा था ।१३०। उससे आन्ध्र और पुण्ड्र राजा उत्पन्न हुए थे । किरात-शबर-हूण और यवन पापवृत्ति वाले उत्पन्न हुए ।१३१। ये सब वेदों के विप्लावक—धर्मद्रोही और प्राणियों के हिंसक थे । इनके अङ्ग मलिन थे तथा वर्णाश्रमों में सांकर्य करने वाले थे । इन्होंने ललिता शक्ति की सेनाओं का बार-बार विमर्दन किया था ।१३२। इसके पश्चात् ललिता के वाम कर कमल से जो प्रज्वलित कनिष्ठका के नख से उत्पन्न कल्कि नामक जनार्दन प्रभु हुए थे ।१३३।

अश्वारूढः प्रदीप्तश्रीरट्टहासं चकार सः ।

तस्यैव ध्वनिना सर्वे वज्रनिष्पेषबन्धुना ॥१३४

किराता मूर्च्छिता नेशुः शक्तयश्चापि हर्षिताः ।

दशावतारनाथास्ते कृत्वेदं कर्म दुष्करम् ॥१३५

ललितां तां नमस्कृत्य बद्धांजलिपुटाः स्थिताः ।

प्रतिकल्पं धर्मरक्षां कर्तुं मत्स्यादिजन्मभिः ।

ललितांबानियुक्तास्ते वैकुण्ठाय प्रतस्थिरे ॥१३६

इत्थं समस्तेष्वस्त्रेषु नाशितेषु दुराशयः ।

महामोहास्त्रमसृजच्छक्तयस्तेन मूर्छिताः ॥१३७

शांभवास्त्रं विसृज्यांबा महामोहास्त्रमक्षिणोत् ।

अस्त्रप्रत्यस्त्रधाराभिरित्थं जाते महाहवे ।

अस्तशैलं गभस्तीशो गन्तुमारभतारुणः ॥१३८

अथ नारायणास्त्रेण सा देवी ललितांबिका ।
सर्वा अक्षौहिणीस्तस्य भस्मसादकरोद्रणे ॥१३९

अथ पाशुपतास्त्रेण दीप्तकालानलत्विषा ।
चत्वारिंशच्चमूनाथान्महाराज्ञी व्यमर्दयत् ॥१४०

यह अश्व पर आरूढ़ थे और इनकी श्री प्रदीप्त थी । इनने अट्टहास किया था । उसकी वज्र के समान ध्वनि से सभी किरात बेहोश हो गये थे ।१३४। सब मूर्च्छित होकर नष्ट हो गये थे और शक्तियाँ हर्षित हो गयी थीं । दशावतारों के नाथों ने इस दुष्कर कर्म को करके सम्पन्न किया था ।१३५। फिर उस ललिता देवी को नमस्कार करके हाथ जोड़कर उसके आगे स्थित हो गये थे । प्रत्येक कल्प में मत्स्य आदि धर्म की रक्षा करने के लिए ललिताम्बा के द्वारा नियुक्त थे वे फिर वैकुण्ठ को चले गये ।१३६। इस रीति से समस्त अस्त्रों के विनाशित होने पर उस दुराशय ने महामोहास्त्र को छोड़ दिया था जिससे समस्त शक्तियाँ मूर्च्छित हो गयी थीं ।१३७। जगदम्बा ने शाम्भक अस्त्र को छोड़कर उस महामोहास्त्र को नष्ट कर दिया था । इस तरह से अस्त्रों और प्रत्यस्त्रों की धाराओं से महान युद्ध हुआ था । गभस्तीश अरुण अस्ताचल को जा रहा था । उस समय में ललितादेवी ने अस्त्र का प्रहार किया था ।१३८। उस देवी ललिताम्बा ने नारायणास्त्र से युद्ध में उसकी समस्त अक्षौहिणी सेनाओं को भस्मीभूत कर दिया था ।१३९। इसके अनन्तर दीप्त कालाग्नि के समान कान्ति वाले पाशुपतास्त्र से चालीस सेनानियों को महाराज्ञी ने विमर्दित कर दिया था ।१४०।

अथैकशेषं तं दुष्टं निहताशेषबांधवम् ।
क्रोधेन प्रज्वलंतं च जगद्विप्लवकारिणम् ॥१४१

महासुरं महासत्त्वं भंडं चंडपराक्रमम् ।
महाकामेश्वरास्त्रेण सहस्रादित्यवर्चसा ।
गतासुमकरोन्माता ललिता परमेश्वरी ॥१४२

तदस्त्रज्वालयाक्रान्तं शून्यकं तस्य पट्टनम् ।
सस्त्रीकं च सबालं च सगोष्ठं धनधान्यकम् ॥१४३

निर्दग्धमासीत्सहसा स्थलमात्रमशिष्यत ।
भंडस्य संक्षयेणासीत्त्रैलोक्यं हर्षनर्तितम् ॥१४४
इत्थं विधाय सुरकार्यमनिद्यशीला श्रीचक्रराज-
रथमंडलमंडनश्रीः ।
कामेश्वरी त्रिजगतां जननी बभासे विद्योतमान-
सैन्यं समस्तमपि सङ्गरकर्मखिन्नं
भंडासुरप्रबलबाणकृशानुतप्तम् ।
अस्तं गते सवितरि प्रथितप्रभावा श्रीदेवता
शिबिरमात्मन आनिनाय ॥१४६
यो भंडदानववधं ललिताबयेमं क्लृप्तं सकृत्पठति
तस्य तपोधनेन्द्र ।
नाशं प्रयांति कदनानि धृताष्टसिद्धेर्भुक्तिश्च
मुक्तिरपि वर्तत एव हस्ते ॥१४७
इमं पवित्रं ललितापराक्रमं समस्तपापघ्नमशेषसिद्धिदम् ।
पठन्ति पुण्येषु दिनेषु ये नरा भजंति ते
भाग्यसमृद्धिमुत्तमाम् ॥१४८

इसके उपरान्त वह दुष्ट एक ही शेष बच गया था और उसके सब बान्धव मर चुके थे। वह भी क्रोध से प्रज्वलित हो रहा था और इस जगत् के विप्लव को करने वाला था ।१४१। महान् प्रचण्ड महान् सत्व युक्त उस महासुर को सहस्र सूर्यों के समान वर्चस् वाले महाकामेश्वरास्त्र से परमेश्वरी ललिता ने भंड को गत प्राण कर दिया था ।१४२। उसके अस्त्र की ज्वाला से उसका शून्यक नगर भी स्त्रियों—बालों—गोष्ठों और धान्यों के सहित तुरन्त ही निर्दग्ध हो गया था। उस भंडासुर के विनाश से तीनों लोक हर्षित हुए थे ।१४३-१४४। इस प्रकार से अनिन्द्यशील वाली देवी देवों के कार्य को करके श्रीचक्रराज रथ के मंडल की श्री वह तीनों जगतों की जननी वह कामेश्वरी विजय श्री से सुसम्पन्न विद्योतमान वैभव वाली शोभित हुई थी ।१४५। समस्त सेना भी युद्ध कर्म में खिन्न हो गयी थी और

भंडासुर के प्रबल बाणों की अग्नि से संतप्त हो गयी थी। सूर्य के अस्त होने पर प्रथित प्रभाव वाली उसने जो श्री देवता थी अपने शिविर में बुला लिया था।१४६। हे तपोधनेन्द्र ! जो भी कोई पुरुष ललिताम्बा के द्वारा किये गये इस भंडासुर के वध को एक बार भी पढ़ता है उसके सब दु:ख विनष्ट हो जाते हैं और उसको आठ सिद्धियों की प्राप्ति होती है तथा भुक्ति और मुक्ति दोनों ही उसके हाथ में होती है।१४७। यह पवित्र ललिता का पराक्रम समस्त पापों का नाशक और अशेष सिद्धियों का दाता है। जो मनुष्य पुण्य दिनों में इसको पढ़ते हैं वे उत्तम भाग्य की समृद्धि को प्राप्त किया करते हैं।१४८।

।। मदन पुनर्भव वर्णन ।।

अगस्त्य उवाच–

अश्वानन महाप्राज्ञ श्रुतमाख्यानमुत्तमम् ।
विक्रमो ललितादेव्या विशिष्टो वर्णितस्त्वया ।।१
चरितैरनघैर्देव्याः सुप्रीतोऽस्मि हयानन ।
श्रुता सा महती शक्तिर्मंत्रिणीदण्डनाथयोः ।।२
पश्चात्किमकरोत्तत्र युद्धानंतरमंबिका ।
चतुर्थदिनशर्वर्यां विभातायां हयानन ।।३

हयग्रीव उवाच–

शृणु कुम्भज तत्प्राज्ञ यत्तया जगदम्बया ।
पश्चादाचरितं कर्म निहते भंडदानवे ।।४
शक्तीनामखिलं सैन्यं दैत्यायुधशतार्दितम् ।
मुहुराह्लादयामास लोचनैरमृताप्लुतैः ।।५
ललितापरमेशान्याः कटाक्षामृतधारया ।
जुहुयुर्द्धपरिश्रांति शक्तयः प्रीतिमानसा ।।६
अस्मिन्नवसरे देवा भंडमर्दनतोषिताः ।
सर्वेऽपि सेवितुं प्राप्ता ब्रह्मविष्णुपुरोगमाः ।।७

अगस्त्यजी ने कहा—हे महान् प्राज्ञ ! हे अश्वानन ! आपने यह उत्तम आख्यान सुन लिया है । आपने जो ललिता देवी के विक्रम को विशेषता से युक्त वर्णन किया है ।१। हे हयानन ! देवी के अनघ चरितों से मैं बहुत प्रसन्न हुआ हूँ और मैंने मन्त्रिणी और दंडिनी की भी बड़ी भारी शक्ति का श्रवण किया है ।२। उस युद्ध के अनन्तर उस अम्बिका ने क्या किया था । हे हयानन ! चौथे दिन की शर्वरी में विभात में क्या किया गया था ।३। हयग्रीव जी ने कहा—हे प्राज्ञ कुम्भज ! आप अब वही सुनिए जो भंडासुर के मरने पर जगदम्बा ने किया था ।४। शक्तियों की सम्पूर्ण सेना को जो दैत्यों के आयुधों से अर्दित हो गयी थी अपने अमृत से प्लुत लोचनों के द्वारा पुनः आह्लादित किया था ।५। परमेशानी ललिता देवी के कटाक्षों की अमृत धारा से शक्तियों ने युद्ध की श्रान्ति का त्याग कर दिया था और वे प्रसन्न मानस वाली हो गयी थीं ।६। इस अवसर में देवगण भंडासुर के मर्दन से प्रसन्न हुए थे । वे सभी जिनमें ब्रह्मा-विष्णु अगुआ थे उस देवी की सेवा करने के लिए समागत हो गये थे ।७।

ब्रह्मा विष्णुश्च रुद्रश्च शक्राद्यास्त्रिदशास्तथा ।
आदित्य वसवो रुद्रा मरुतः साध्यदेवताः ॥८

सिद्धाः किंपुरुषा यक्षा निर्ऋत्याद्या निशाचराः ।
प्रह्लादाद्या महादैत्याः सर्वेऽप्यंबनिवासिनः ॥९
आगत्य तुष्टुवुः प्रीत्या सिंहासनमहेश्वरीम् ॥१०

ब्रह्माद्या ऊचुः—

नमोनमस्ते जगदेकनाथे नमोनमः श्रीत्रिपुराभिधाने ।
नमोनमो भंडमहासुरघ्ने नमोऽस्तु कामेश्वरि वामकेशि ॥११

चिंतामणें चिंतितदानदक्षेऽचिन्त्ये चिराकारतरंगमाले ।
चित्राम्बरे चित्रजगत्प्रसूते चित्राख्यनित्ये सुखदे नमस्ते ॥१२

मोक्षप्रदे मुग्धशशांकचूडे मुग्धस्मिते मोहनभेददक्षे ।
मुद्रेश्वरीचर्चितराजतन्त्रे मुद्राप्रिये देवि नमोनमस्ते ॥१३

क्रूरांतकध्वंसिनि कोमलांगे कोपेषु कालीं तनुमादधाने ।
क्रोडानने पालितसैन्यचक्रे क्रोडीकृताशेषभये नमस्ते ।।१४

ब्रह्मा—विष्णु—रुद्र—शक्रादि सब देवगण—आदित्य—वसुगण—मरुद्गण—साध्य देवता—सिद्ध—किम्पुरुष—यक्ष—निर्ऋति आदि निशाचर—प्रह्लाद आदि महादैत्य–सभी अंड में निवास करने वाले वहाँ आकर उपस्थित हुए थे और उन्होंने प्रसन्नता से सिंहासनेश्वरी की स्तुति की थी ।८-१०। ब्रह्मादिक ने कहा—हे इस जगत की एक मात्र स्वामिनि ! आपको बारम्बार नमस्कार है । हे श्री त्रिपुराभिधाने ! आपको नमस्कार अनेक बार है । हे महान भंडासुर के हनन करने वाली ! हे कामेश्वरि ! हे वामकेशि ! आपकी सेवा में अनेकशः प्रणाम समर्पित हैं ।११। हे चिराकार तरङ्गमाले ! आप तो अचिन्तनीय हैं–आप चिन्तामणि के ही समान हैं तथा जो भी प्राणियों का चिन्तित होता है उसके प्रदान करने में दक्ष हैं । हे चित्राम्बदे ! हे चित्र जगत् प्रसूते ! हे चित्राख्य नित्ये ! आप सुखों के देने वाली है । आपको बारम्बार नमस्कार है ।१२। आप मोक्ष देने वाली हैं—मुग्धशशाङ्क चूडे ! आपका स्मित मोहन करने वाला है और आप मोहन करने वाला है और आप मोहन करने में परम दक्ष हैं। हे मुद्रेश्वरी निन्दित राजतन्त्रे ! आप मुद्राप्रिया हैं। हे देवि ! आपको अनेक बार प्रणाम हैं ।१३। हे कोमलाङ्गे ! आप तो क्रुर अन्तक के ध्वंस करने वाली हैं । आप कोप के अवसरों पर काली का विग्रह धारण कर लेती हैं । आप कोप के अवसरों पर कालो का पालन किया है । हे क्रोड़ी-कृताशेष भये । आपको मेरा नमस्कार है ।१४।

षडंगदेवीपरिवारकृष्णे षडंगयुक्तश्रुतिवाक्यमृग्ये ।
षट्चक्रसंस्थे च षडुर्मियुक्ते षड्भावरूपे ललिते नमस्ते ।।१५
कामे शिवे मुख्यसमस्तनित्ये कांतासनान्ते कमलायताक्षि ।
कामप्रदे कामिनि कामशंभोः काम्ये
कलानामधिपे नमस्ते ।।१६
दिव्यौषधाद्ये नगरौघरूपे दिव्ये दिनाधीशसहस्रकांते ।
देदीप्यमाने दयया सनाथे देवाधिदेवप्रमदे नमस्ते ।।१७
सदाणिमाद्यष्टकसेवनीये सदाशिवात्मोज्ज्वलमञ्चवासे ।

भभ्ये सदेकालयपादपूज्ये सावित्रि लोकस्य नमोनमस्ते ॥१८
ब्राह्मीमुखैर्मातृगणैर्निषेव्ये ब्रह्मप्रिये ब्राह्मणबन्धभेत्रि ।
ब्रह्मामृतस्रोतसि राजहंसि ब्रह्मेश्वरि श्रीललिते नमस्ते ॥१९
संक्षोभिणीमुख्यसमस्तमुद्रासंसेविते संसरणप्रहंत्रि ।
संसारलीलाकृतिसारसाक्षि सदा नमस्ते ललितेऽधिनाथे ।
नित्य कलाषोडशकेन नामाकर्षिण्यधीशि प्रमथेन सेव्ये ॥२०
नित्ये निरातंकदयाप्रपंचे नीलालकश्रेणि नमोनमस्ते ।
अनंगपुष्पादिभिरुन्नदाभिरनंगदेवीभिरजस्रसेव्ये ।
अभव्यहंव्यक्षरराशिरूपे हतारिवर्गे ललिते नमस्ते ॥२१

हे ललिते ! आप षडंगदेवी परिवार कृष्णा है । हे षडंगयुक्त श्रुति वाक्यों के द्वारा आप षट्चक्र में विराजमाना हैं । हे षड्मियुक्ते ! आप षड्भाव रूपों वाली हैं । आपको हम सबका प्रणाम हैं ।१५। हे मुख्ये समस्त नित्ये ! हे कामे ! हे शिवे ! हे कान्तासनान्ते ! आपके नेत्र कमलों के समान हैं । आप कामनाओं के देने वाली हैं । हे कामिनि ! आप कामशम्भु की काम्य हैं । हे कलाओं की स्वामिनि ! आपको नमस्कार है ।१६। हे दिव्यौषधाद्ये ! आप नगरीष रूप वाली हैं । हे दिव्ये ! आप दिनाधीश सहस्रों के समान कान्ति वाली हैं । हे सनाथे ! आप दया से देदीप्यमाना है । हे देवाधिदेव शम्भु की प्रमदे ! आपको हम सबका प्रणाम निवेदित है ।१७। हे सावित्री ! आप सर्वदा अणिमादिक आठों सिद्धियों के द्वारा सेवा करने के योग्य हैं आप सदा शिव के आत्मोज्ज्वल मञ्च पर निवास किया करती है । हे सदेकालय पादपूज्ये ! हे भभ्ये ! आप लोक को रक्षिका है । आप लोक की रक्षिका हैं । आपको बारम्बार नमस्कार है ।१८। ब्राह्मी जिनमें प्रमुख हैं ऐसी मातृ गणों के द्वारा आप सेव्य हैं । आप ब्रह्म प्रिया हैं । हे ब्राह्मण बन्धभेत्रि ! आप तो ब्रह्मामृत की स्रोत हैं । हे राजहंसि ! आप ब्रह्मेश्वरी हैं । हे श्री ललिते ! आपको हमारा प्रणाम है ।१९। संक्षोभिणी जिनमें प्रधान है उन समस्त मुद्राओं के द्वारा संसेवित आप हैं और संसरण का प्रहनन करने वाली हैं । हे संसार लीला कृतिसार साक्षि ! हे संसार लीला कृतिसार साक्षि ! हे अधिनाथे ! ललिते ! आपको हमारा नमस्कार है । हे अधीशि ! आप नित्या हैं और षोडश कला से आकर्षण

करने वाली हैं तथा प्रमथ के द्वारा सेवन करने के योग्य हैं ।२०। हे नित्ये ! आपकी दया का प्रपञ्च निरांतक है । आपके नीले अलकों की श्रेणियाँ हैं । आपको बारम्बार नमस्कार है । अनंग पुष्पादि एवं उन्नदा अनंग देवियों के द्वारा आप निरन्तर सेवन के योग्य रहती हैं । हे अभव हन्त्रि ! हे अक्षर-राशि रूपे ! आपने समस्त शत्रुओं को निहत कर दिया है । हे ललिते ! आपको हमारा नमस्कार है ।२१।

संक्षोभिणीमुख्यचतुर्दशार्चिर्मालावृतोदारमहाप्रदीप्ते ।
आत्मानमाबिभ्रति विभ्रमाढ्ये शुभ्राश्रये
शुभ्रपदे नमस्ते ।।२२
सशर्वसिद्धादिकशक्तिवन्द्ये सर्वज्ञविज्ञातपदारविंदे ।
सर्वाधिके सर्वगते समस्तसिद्धिप्रदे श्रीललिते नमस्ते ।।२३
सर्वज्ञजातप्रथमाभिरन्यदेवीभिरप्याश्रितचक्रभूमे ।
सर्वामराकांक्षितपूरयित्रि सर्वस्य लोकस्य सवित्रि पाहि ।।२४
वन्दे वशिन्यादिकवाग्विभूते वर्द्धिष्णुचक्रद्युतिवाहवाहे ।
बलाहकश्यामकचे वचोऽब्धे वरप्रदे सुन्दरि पाहि
विश्वम् ।।२५
बाणादिदिव्यायुधसार्वभौमे भंडासुरानीकवनांतदावे ।
अत्युग्रतेजोज्ज्वलितांबुराशे प्रसेव्यमाने परितो नमस्ते ।।२६
कामेशि वज्रेशि भगेश्य रूपे कन्ये कले कालविलोपदक्षे ।
कथाविशेषीकृतदैत्यसैन्ये कामेशयांते कमले नमस्ते ।।२७
बिन्दुस्थिते बिन्दुकलैकरूपे बिंद्वात्मिके बृंहितचित्प्रकाशे ।
बृहत्कुचांभोजविलोलहारे बृहत्प्रभावे ललिते नमस्ते ।।२८

आप संक्षोभिणी प्रभृति जिनमें मुख्य हैं ऐसी अर्चि मालाओं से समावृत उदार महान प्रदीप्त वाली हैं हे विभ्रमाढ्ये ! आप आत्मा को आबिभरण करती हैं । आपका शुभ्र आश्रय है । हे शुभ्रपदे ! आपको नमस्कार है ।२२। शम्भु के सहित सिद्ध आदि शक्तियों से आप वन्द्यमान हैं । आपका चरण कमल सर्वज्ञ के द्वारा ही विज्ञात है । आप सबसे बड़ी हैं—आप सबमें विद्यमान हैं और आप सब सिद्धियों के प्रदान करने वाली हैं । हे श्री

ललिते ! आपको प्रणाम है ।२३। आप सर्वत्र से समुत्पन्न प्रथम देवियों के द्वारा आश्रित चक्रभूमि वाली हैं । और सब देवों के मनोरथों को पूर्ण करने वाली हैं । आप सम्पूर्ण लोक की माता हैं । हमारी रक्षा कीजिए ।२४। हे वाशिनी आदि वाग्विभूते ! आप वर्धिष्णु चक्र की वाह वाह हैं । आपके केश वलाहक की द्युति वाले हैं । आप वचनों की सागर हैं । आप वरदान देने वाली हैं । हे सुन्दरि ! आप इस विश्व की रक्षा करें ।२५। बाण के आदि विशेष आयुधों की साम्राज्ञी हैं। आप भंडासुर की सेना के वन लिये दावाग्नि हैं । आप अतीव उग्र तेज से अम्बुराभि को भी ज्वलित करने वाली हैं । आप प्रसंख्यमाना हैं । आपकी सभी ओर से प्रणाम है ।२६। हे कामेशि ! वज्रेशि ! हे भगेशि ! आप रूप रहित हैं । हे कन्ये ! हे कले ! आप काल के विलोप करने में परम दक्ष हैं । आपने दैत्यों की सेनाओं को पूर्णतया समाप्त कर दिया है और अब उनकी केवल कथा ही शेष है । कामेशयान्ते ! हे कमले ! आपको नमस्कार है ।२७। आप बिन्दु में ही संस्थित हैं और आपका रूप बिन्दु कला ही एक है । आप बिन्दु के स्वरूप वाली हैं और आपने ज्ञान के बड़े प्रकाश को किया है । आपके बड़े कुचों पर हार विलुलित हो रहा है । आपका प्रभाव बृहत् है । हे ललिते ! आपको हम सबका नमस्कार है ।२८।

कामेश्वरोत्संगसदानिवासे कालात्मिके देवि कृतानुकम्पे ।
कल्पावसानोत्थितकालिरूपे कामप्रदे कल्पलते नमस्ते ॥२९
सवारुणे सांद्रसुधांशुशीते सारंगशावाक्षि सरोजवक्त्रे ।
सारस्य सारस्य सदैकभूमे समस्तविद्येश्वरि संनतिस्ते ॥३०
तव प्रभावेण चिदग्निजायां श्रीशम्भुनाथप्रकटीकृतायाः ।
भंडासुराद्याः समरे प्रचंडा हता जगत्कंटकतां प्रयाताः ॥३१
नव्यानि सर्वाणि वपूंषि कृत्वा हि सांद्रकारुण्यसुधाप्लवैर्नः ।
त्वया समस्तं भुवनं सहर्षं सुजीवितं सुन्दरि सभ्यलभ्ये ॥३२
श्रीशम्भुनाथस्य महाशयस्य द्वितीयतेजः प्रसरात्मके यः ।
स्थाण्वाश्रमे क्लृप्ततया विरक्तः सतीवियोगेन
विरस्तभोगः ॥३३

तेनाद्रिवंशे धृतजन्मलाभां कन्यामुमां योजयितुं प्रवृत्ताः ।
एवं स्मरं प्रेरितवंत एव तस्यांतिकं घोरतपः स्थितस्य ॥३४
तेनाथ वैराग्यतपोविघातक्रोधेन लालाटकृशानुदग्धः ।
भस्मावशेषो मदनस्ततोऽभूत्ततो हि भंडासुर एष जातः ॥३५

आप कामेश्वर की गोद में ही सदा निवास किया करती हैं और आपका काल ही स्वरूप है । हे देवि ! आपने बड़ी अनुकम्पा की है । आप कल्प के अन्त में उठी हुई काली के स्वरूप वाली हैं । आप कामनाओं के देने वाली हैं और आप साक्षात् कल्पलता हैं । आपको नमस्कार है । आप सवारुणा हैं और सान्द्रशीतांशु के समान शीतल हैं । आपके नेत्र हरिण के बच्चे के तुल्य हैं और आपका मुख कमल जैसा है । आप सार के भी सार की सदा एक भूमि है । आप समस्त विद्याओं की स्वामिनी हैं । आपको हमारा प्रणिपात है ।२९-३०। आपके प्रभाव से श्री शम्भुनाथ के द्वारा प्रकटित अग्निजा में चित् है । समर में महान प्रचण्ड भंडासुर प्रभृति सब जो जगत के कंटक थे, मारे गये हैं ।३१। सब शरीरों को नवीन करके हमको स्वस्थ बना दिया है और आपने सान्द्र करुणा की सुधा से ही कर दिया था । आपने समस्त भुवन को हर्ष के साथ जीवित कर दिया है । हे सभ्यलभ्ये ! आप तो परम सुन्दरी है ।३२। महान् आशय वाले श्री शम्भु के आप द्वितीय तेज के प्रसर के स्वरूप वाली हैं । जो स्थाणु के आश्रम से क्लृप्तता से विरक्त सती के वियोग से विरस्त भोग वाला है ।३३। इससे आद्रि के वंश में जन्म का लाभ प्राप्त करने वाली कन्या उमा को योजित करने के लिए सब प्रवृत्त हुए थे । घोर तपस्या में वर्त्तमान उनके समीप में कामदेव को भेजने की प्रेरणा की थी ।३४। उन्होंने वैराग्य से किये जाने वाले तप के विघात से जो क्रोध हुआ था उससे वह कामदेव ललाट की अग्नि से दग्ध कर दिया था । फिर मदन भस्म मात्र रह गया था । वही मदन फिर भंडासुर होकर उत्पन्न हुआ था ।३५।

ततो वधस्तस्य दुराशयस्य कृतो भवत्या रणदुर्मदस्य ।
अथास्मदर्थे त्वतनुस्सजातस्त्वं कामसंजीवनमाशु कुर्याः ॥३६
इयं रतिर्भर्तृवियोगखिन्ना वैधव्यमत्यंतमभव्यमाप ।
पुनस्त्वदुत्पादितकामसंगाद्भविष्यति श्रीललिते सनाथा ॥३७

तया तु दृष्टेन मनोभवेन संमोहितः पूर्ववदिंदुमौलिः ।
चिरं कृतात्यंतमहासपर्यां तां पार्वतीं द्राक्परिणेष्यतीशः ॥३८
तयोश्च संगाद्भविता कुमारः समस्तगीर्वाणचमूविनेता ।
तेनैव वीरेण रणे निरस्य स तारको नाम सुरारिराजः ॥३९
यो भंडदैत्यस्य दुराशयस्य मित्रं स लोकत्रयधूमकेतुः ।
श्रीकण्ठपुत्रेण रणे हतश्चेत्प्राणप्रष्ठैव तदा भवेन्नः ॥४०
तस्मात्त्वमंब त्रिपुरे जनानां मानापहं मन्मथवीरवर्यम् ।
उत्पाद्य रत्या विधवात्वदुःखमपाकुरु व्याकुलकुन्तलायाः॥४१
एषा त्वनाथा भवतीं प्रपन्ना भर्तृप्रणाशेन कृशांगयष्टिः ।
नमस्करोति त्रिपुराभिधाने तदत्र कारुण्यकलां विधेहि ॥४२

इसके अनन्तर आपने दुराशय का जो रण में बहुत ही दुर्मद था वध किया था और हम लोगों के लिए वह बिना शरीर वाला हो गया है । उस कामदेव के संजीवन को आप शीघ्र ही कर दीजिए ।३६। यह रति बिचारी अपने स्वामी के वियोग से बहुत ही खिन्न है । उसको अत्यन्त बुरा वैधव्य प्राप्त हो गया है । हे श्रीललिते ! फिर आपके द्वारा उत्पन्न किये गये कामदेव के सङ्ग से वह सनाथा होगी ।३७। उसी भाँति उस दुष्ट कामदेव ने फिर इन्दुमौलि को पूर्व की ही भाँति संमोहित किया है वह ईश चिरकाल पर्यन्त अर्चना करने वाली उस पार्वती के साथ शीघ्र ही विवाह करेंगे ।३८। उन दोनों (पार्वती-शिव) के संयोग से कुमार उत्पन्न होगा जो समस्त देवगणों की सेना का सेनानी होगा । उस ही वीर के द्वारा रण में असुरों का राजा वह तारक पराजित किया गया ।३९। वह तीनों लोकों का धूमकेतु परम दुष्ट भंडासुर का मित्र था । वह रण में श्रीकण्ठ के पुत्र के द्वारा ही मारा गया था । उसी समय में हमारे प्राणों की प्रतिष्ठा हुई थी ।४०। इस कारण से हे अम्ब ! हे त्रिपुरे ! जनों के मान के अपहर्त्ता वीरवर कामदेव को उत्पन्न करके विचारी उस व्याकुल कुन्तला रति के विधवापने को आप दूर कर दीजिए ।४१। यह बिचारी अनाथ है और अपने भर्त्ता के प्रणाश होने से अत्यन्त कृश अङ्गों वाली आपकी शरणागति में प्राप्त हुई है । हे त्रिपुराभिधाने ! यह आपको नमस्कार करती है । अतएव इस बिचारी पर आप करुणा करिए ।४२।

हयग्रीव उवाच—

इति स्तुत्वा महेशानीं ब्रह्माद्या विबुधोत्तमाः ।
तां रतिं दर्शयमासुर्मलिनां शोककर्शिताम् ॥४३
सा पर्यश्रुमुखी कीर्णकुन्तला धूलिधूसरा ।
ननाम जगदम्बां वै वैधव्यत्यक्तभूषणा ॥४४
अथ तद्दर्शनोत्पन्नकारुण्या परमेश्वरी ।
ततः कटाक्षादुत्पन्नः स्मयमानमुखांबुजः ॥४५
पूर्वदेहाधिकरुचिर्मन्मथो मदमेदुरः ।
द्विभुजः सर्वभूषाढ्यः पुष्पेषुः पुष्पकार्मुकः ॥४६
आनन्दयन्कटाक्षेण पूर्वजन्मप्रियां रतिम् ।
अथ सापि रतिर्देवी महत्यानन्दसागरे ।
मज्जन्ती निजभर्तारमवलोक्य मुदं गता ॥४७
आनंदितांतरात्मानौ भक्तिनिर्भरमानसौ ।
ज्ञात्वाथ तौ महाराज्ञी मन्दस्मितमुखांबुजा ।
व्रीडानतां रतिं वीक्ष्य श्यामलामिदमब्रवीत् ॥४८
श्यामले स्नपयित्वैनां वस्त्रकांच्यादिभूषणैः ।
अलंकृत्य यथापूर्वं शीघ्रमानीयतामिह ॥४९

हयग्रीवजी ने कहा—उत्तम देव ब्रह्मा आदि ने इस रीति से उस ईशानी की स्तुति की थी और उस रति को बहुत ही मलिन और शोक से कर्शित थी दिखा दिया था ।४३। वह मुख पर आँसू फैलाती हुई बिखरे हुए केशों वाली और धूलि से धूसर और विधवा होने के कारण भूषणों को त्याग देने वाली उस रति ने उस जगदम्बा की सेवा में प्रणाम किया था ।४४। इसके अनन्तर उस बिचारी वैधव्य को प्राप्त हुई रति को ओर देख-कर जगदम्बा के हृदय में करुणा उत्पन्न हो गयी थी और उस परमेश्वरी के कटाक्ष से मुस्कराते हुए मुख वाला कामदेव समुत्पन्न हो गया था ।४५। उसके देह की कान्ति पूर्व के देह से भी अधिक थी और वह मद से मेदुर हो गया था । उसको दो बाहू थीं—वह समस्त भूषणों से सम्पन्न था और पुष्पों के बाणों वाला तथा कुसुमों के धनुष वाला था ।४६। पूर्वजन्म की प्रिया

रति को कटाक्ष के द्वारा आनन्दित कर रहा था। वह रति भी महान आनन्द के सागर में मग्न होकर अपने स्वामी को देखती हुई आनन्द को प्राप्त हुई थी।४७। महाराज्ञी उन दोनों रति और कामदेव को भक्ति से निर्भर मानस वाले तथा परम प्रसन्न अन्तरात्मा वाले देखकर मन्दस्मित मुखकमल वाली हुई थी और लज्जा से नम्रमुखी उस रति को देखकर श्यामला से यह बोली थी।४८। हे श्यामले! इसको स्नान कराकर वस्त्रों और कांची आदि भूषणों से भूषित करके पूर्व की ही भाँति शीघ्र यहाँ लाओ।४९।

तदाज्ञां शिरसा धृत्वा श्यामा सर्वं तथाकरोत्।
ब्रह्मर्षिभिर्वसिष्ठाद्यैर्वैवाहिकविधानतः ॥५०
कारयामास दम्पत्योः पाणिग्रहणमंगलम्।
अप्सरोभिश्च सर्वाभिर्नृत्यगीतादिसंयुतम् ॥५१
एतद्दृष्ट्वा महेन्द्राद्या ऋषयश्च तपोधनाः।
साधुसाध्विति शंसंतस्तुष्टुवुर्ललितांबिकाम् ॥५२
पुष्पवृष्टिं विमुञ्चन्तः सर्वे सन्तुष्टमानसाः।
बभूवुस्तौ महाभक्त्या प्रणम्य ललितेश्वरीम् ॥५३
तत्पार्श्वे तु समागत्य बद्धांजलिपुटौ स्थितौ।
अथ कंदर्पवारोऽपि नमस्कृत्य महेश्वरीम्।
व्यज्ञापयदिदं वाक्यं भक्तिनिर्भरमानसः ॥५४
यद्दग्धमीशनेत्रेण वपुर्मे ललितांबिके।
तत्त्वदीयकटाक्षस्य प्रसादात्पुनरागतम् ॥५५
तव पुत्रोऽस्मि दासोऽस्मि क्वापि कृत्ये नियुंक्ष्व माम्।
इत्युक्ता परमेशानी तमाह मकरध्वजम् ॥५६

उस महाराज्ञी की आज्ञा को शिर पर धारण करके उस श्यामला ने सब कुछ वैसा ही कर दिया था। वसिष्ठ आदि ब्रह्मर्षियों के द्वारा वैवाहिक विधान किया गया था।५०। उन दम्पतियों का पाणिग्रहण का मङ्गल किया गया जो सभी अप्सराओं के द्वारा नृत्य और गीत आदि से समन्वित था।५१। यह सब कुछ देखकर महेन्द्र आदि देवगण तथा तपोधन ऋषियों ने

अच्छा हुआ–अच्छा हुआ—यह कहकर ललिताम्बा की स्तुति की थी।५२। सबने परम सन्तुष्ट होते हुए नभो मंडल से पुष्पों की वर्षा थी। वे दोनों भी बहुत प्रसन्न हुए थे और उन्होंने महा भक्ति से ललितेश्वरी को प्रणाम किया था।५३। वे दोनों-ललितेश्वरी के समीप में समागत होकर दोनों हाथों को जोड़कर समीप में स्थित हो गये थे? इसके अनन्तर कामदेव भी महेश्वरी को प्रणाम करके भक्ति भाव से परिपूर्ण मन वाला होकर इस वाक्य को बोला था।५४। हे ललिताम्बिके! शम्भु के नेत्र से जो मेरा शरीर दग्ध हो गया था वह आपके कृपा कटाक्ष से पुनः प्राप्त हो गया है।५५। मैं आपका ही पुत्र हूँ। किसी भी सेवा में मुझे नियुक्त कीजिए। इस प्रकार से जब परमेशानी से कहा गया था तो उस देवी ने कामदेव से कहा था।५६।

श्रीदेव्युवाच–

वत्सागच्छ मनोजन्मन्न भयं तव विद्यते।
मत्प्रसादाज्जगत्सर्वं मोहयाव्याहताशुग ॥५७
तद्बाणपातनाज्जातधैर्यविप्लव ईश्वरः।
पर्वतस्य सुतां गौरीं परिणेष्यति सत्वरम् ॥५८
सहस्रकोटयः कामा मत्प्रसादात्त्वदुद्भवाः।
सर्वेषां देहमाविश्य दास्यंति रतिमुत्तमाम् ॥५९
मत्प्रसादेन वैराग्यात्संक्रुद्धोऽपि स ईश्वरः।
देहदाहं विधातुं ते न समर्थो भविष्यति ॥६०
अदृश्यमूर्तिः सर्वेषां प्राणिनां भवमोहनः।
स्वभार्याविरह शंकी देहस्यार्द्धं प्रदास्यति।
प्रयातोऽसौ कातरात्मा त्वद्बाणाहतमानसः ॥६१
अद्य प्रभृति कन्दर्प मत्प्रसादान्महीयसः।
त्वन्निदां ये करिष्यन्ति त्वयि वा विमुखाशयाः।
अवश्यं क्लीबतैव स्यात्तेषां जन्मनिजन्मनि ॥६२
ये पापिष्ठा दुरात्मानो मद्भक्तद्रोहिणश्च हि।
तानगम्यासु नारीषु पाययित्वा विनाशय ॥६३

श्री देवी ने कहा–हे वत्स ! आओ, हे मनोजजन्मन् आपको अब कुछ भी कहीं पर भय नहीं है। हे अव्याहत बाणों वाले ! मेरे प्रसाद से आप सम्पूर्ण जगत को मोहित करो।५७। तुम्हारे बाणों के पातन से धैर्य के विप्लव होने से शम्भु पर्वत हिमवान् की सुता पार्वती को शीघ्र ही ब्याह लेंगे।५८। मेरे प्रसाद से तुमसे समुत्पन्न सहस्रों करोड़ कामदेव सबके देहों में प्रवेश करके उत्तम रति को देंगे।५९। मेरे प्रसाद से क्रुद्ध भी भगवान शम्भु जिनको कि वैराग्य हो गया है तुम्हारे देह को दग्ध करने में समर्थ नहीं होंगे।६०। भव को मोहित करने वाला कामदेव सब प्राणियों में अदृश्य मूर्त्ति वाला होकर रहेगा। अपनी भार्या के विरह की आशंका वाला देह के आधे भाग को दे देता। तुम्हारे बाण से आहत मानस वाले यह कातरात्मा होकर प्रयाण कर गये हैं।६१। आज से लेकर हे कन्दर्प ! महान् मेरे प्रसाद से जो तेरी निन्दा करेंगे अथवा तुझसे विमुख विचार वाले होंगे उनको अवश्य ही नपुंसकता जन्म-जन्मों में हो जायगी।६२। जो पापिष्ठ हैं और मेरे भक्तों के द्रोही हैं उनको अगम्या अर्थात् न गमन करने के योग्य नारियों में गिराकर विनाश करदो।६३।

येषां मदीयपूजासु मद्भक्तेष्वादृतं मनः।
तेषां कामसुखं सर्वं संपादय समीप्सितम् ॥६४

इति श्रीललितादेव्या कृताज्ञावचनं स्मरः।
तथेति शिरसा बिभ्रत्सांजलिर्निर्ययौ ततः ॥६५

तस्यानंगस्य सर्वेभ्यो रोमकूपेभ्य उत्थिताः।
बहवः शोभनाकारा मदना विश्वमोहनाः ॥६६

तैर्विमोह्य समस्तं च जगच्चक्रं मनोभवः।
पुनः स्थाण्वाश्रमं प्राप चन्द्रमौलेर्जिगीषया ॥६७

बसंतेन च मित्रेण सेनान्या शीतरोचिषा।
रागेण पीठमर्देन मन्दानिलरयेण च ॥६८

पुंस्कोकिलगलस्वानकाकलीभिश्च संयुतः।
शृङ्गारवीरसंपन्नो रत्यालिंगितविग्रहः ॥६९

जैत्रं शरासनं धुन्वन्प्रवीराणां पुरोगमः।
मदनारेपभिमुखं प्राप्य निर्भय आस्थितः ॥७०

जिनके हृदय मेरी पूजा में और मेरे भक्तों में आदर करने वाले हैं उनको समस्त कार्य का सुख दो और उनका अभीष्ट पूर्ण कर दो ।६४। कामदेव ने इस श्री ललितादेवी के आज्ञा वचन को शिर से ग्रहण करके फिर हाथों को जोड़े हुए वह कामदेव वहाँ से निकल कर चला गया था ।६५। उस कामदेव के समस्त रोमों के छिद्रों से उठे हुए बहुत से परम शोभन आकार वाले कामदेव सम्पूर्ण विश्व को मोहन करने वाले थे ।६६। कामदेव ने उन बहुत से अनङ्गों के द्वारा इस सम्पूर्ण जगत के मंडल को मोहित कर दिया था और फिर भगवान् शम्भु पर विजय पाने की इच्छा से स्थाणु के आश्रय में प्राप्त हो गया था ।६७। अपने मित्र बसन्त के साथ तथा सेनानी शीतांशु के सहित पीठमर्द राग से संयुत एवं मन्द वायु के सहित और पुंस्कोकिल के निकले हुए शब्द की काकलियों से समन्वित-शृङ्गार वीर सम्पन्न रति से आलिङ्गित वपु वाला कामदेव जयशील धनुष को हिलाता हुआ प्रवीरों का अग्रगामी होकर मदन के अरि शिव के समक्ष में पहुँचकर निडर होकर समास्थित हो गया था ।६८-७०।

तपोनिष्ठं चन्द्रचूडं ताडयामास सायकैः ।
अथ कन्दर्पबाणौघैस्ताडितश्चन्द्रशेखरः ।
दूरीचकार वैराग्यं तपस्तत्त्याज दुष्करम् ॥७१
नियमानखिलांस्त्यक्त्वा त्यक्तधैर्यः शिवः कृतः ।
तामेव पार्वतीं ध्यात्वा भूयोभूयः स्मरातुरः ॥७२
निशश्वास बहुच्छर्वः पांडुरं गण्डमंडलम् ।
बाष्पायमाणो विरही संतप्तो धैर्यविप्लवात् ।
भूयोभूयो गिरिसुतां पूर्वदृष्टामनुस्मरन् ॥७३
अनंगबाणदहनैस्तप्यमानस्य शूलिनः ।
न चन्द्ररेखा नो गङ्गा देहतापच्छिदेऽभवत् ॥७४
नन्दिभृंगिमहाकालप्रमुखैर्गणमंडलैः ।
आहृते पुष्पशयने विलुलोठ मुहुर्मुहुः ॥७५
नन्दिनो हस्तमालंब्य पुष्पतल्पान्तरात्पुनः ।
पुष्पतल्पान्तरं गत्वा व्यचेष्टत मुहुर्मुहुः ॥७६

न पुष्पशयनेनेन्दुखण्डनिर्गलितामृते ।
न हिमानोपयसि वा निवृत्तस्तद्वपुर्ज्वरः ॥७७

तपश्चर्या में स्थित भगवान् चन्द्रचूड़ को सायकों से तड़ित करने लगा था। इसके पश्चात् काम के बाणों से शम्भु ताड़ित हुए थे और उन्होंने वैराग्य को दूर कर दिया था तथा दुष्कर तप को त्याग दिया था ।७१। समस्त नियमों को छोड़कर शम्भु धैर्य त्याग देने वाले कर दिये गये थे। अब तो उसी पार्वती का ध्यान करके बारम्बार काम से आतुर हो गये थे। ।७२। शिव निःश्वास ले रहे थे और उनका गंड मंडल पाण्डुर हो गया था। अश्रु निकल रहे थे तथा धैर्य के विप्लव होने से विरही बहुत ही संताप युक्त हो गये थे। बारम्बार पूर्व में देखी हुई गिरि की सुता का अनुस्मरण करने लगे थे ।७३। कामदेव के बाणों की अग्नि से संतप्त होते हुए शिव के दाह को दूर करने में न तो चन्द्ररेखा और न गंगा समर्थ हुए थे ।७४। नन्दी-भृङ्गी—और महाकाल आदि प्रमुखों के द्वारा लाई हुई पुष्पों की शय्या में शिव बार-बार लोट लगा रहे थे ।७५। नन्दी के हाथ का सहारा ग्रहण करके फिर दूसरी पुष्पों की शय्या पर भी पहुँचे थे। दूसरी पुष्पों की शय्या पर पहुँचकर भी बार-बार विशेष चेष्टा शान्ति पाने के लिए की थी ।७६। किन्तु उनके देह का काम ज्वरोत्पन्न सन्ताप पुष्पों की शय्या से—चन्द्रकला से निर्गत अमृत से और हिमानी के जल से भी शान्त नहीं हुआ था ।७७।

स तनोरतनुज्वालां शमयिष्यन्मुहुर्मुहुः ।
शिलीभूतान्हिमपयः पट्टानध्यवसच्छिवः ।
भूयः शैलसुतारूपं चित्रपट्टे नखैर्लिखत् ॥७८
तदालोकनतोऽदूरमनंगार्तिमवर्धयत् ।
तामालिख्य ह्रिया नम्रां वीक्षमाणां कटाक्षतः ॥७९
तच्चित्रपट्टसंगेषु रोमहर्षेषु चाक्षिपत् ।
चिन्तासंगेन महता महत्या रतिसंपदा ।
भूयसा स्मरतापेन विव्यथे विषमेक्षण ॥८०
तामेव सर्वतः पश्यंस्तस्यामेव मनो दिशन् ।
तयैव संल्लपन्सार्धमुन्मादेनोपपन्नया ॥८१

तन्मात्रभूतहृदयस्तच्चित्तस्तत्परायणा ।
तत्कथासुधया नीतसमस्तरजनीदिन: ॥८२

तच्छीलवर्णनरतस्तद्रूपालोकनोत्सुक. ।
तच्चारुभोगसंकल्पमालाकरसुमालिक: ।
तन्मयत्वमनुप्राप्तस्ततापातितरां शिव: ॥८३

इमां मनोभवरुजमचिकित्स्या स धूर्जटि: ।
अवलोक्य विवाहाय भृशमुद्यमवानभूत् ॥८४

वे अपने शरीर की बढ़ी हुई ज्वाला को बार-बार शम भी कर रहे थे और शिला के रूप में जो हिम का जल के पट्ट थे उन पर भी शिव जाकर बैठे थे। वहां पर फिर वे शंल सुता के चित्र को नखों से लिखने लग गये थे ॥७८। उस चित्र के आलोकन से बहुत ही कामार्त्ति बढ़ गयी थी। उसका आलेखन ऐसा किया था जो लज्जा से नीचे की ओर मुख वाली थी और कटाक्ष से देख रही थी ।७९। उस चित्र के पट्ट को शिव ने रोमाञ्चित अङ्गों पर प्रक्षिप्त कर लिया था। उस समय बड़ा भारी चिन्ता का सङ्ग था और बहुत ही अधिक रति करने की सम्पत्ति थी। विषमेक्षण बहुत अधिक मदन के ताप से व्यथित हो गये थे ।८०। शिव पार्वती ही को सब ओर देख रहे थे और उसी में अपना मन लगा लिया था। उन्माद से उप-पन्न उसी के साथ संलाप करते थे ।८१। उनके हृदय में केवल पार्वती ही थी और वे तच्चित्त और उसी में परायण हो गये थे। उस पार्वती की कथा रूपिणी सुधा से सब दिन और पूरी रात व्यतीत की थी ।८२। उसके ही शील स्वभाव के वर्णन में वे निरत थे और उसके ही रूप के अवलोकन में उत्सुक हो गये थे। उसके साथ भोग के संकल्पों की माला कर में लेकर सुमालिक हो गये थे। शिव तन्मयता को प्राप्त होकर बहुत ही अधिक संतप्त हुए थे ।८३। वह धूर्जटि इस कामदेव की बीमारी को जिसकी कोई भी चिकित्सा नहीं थी जब शिव ने देखा था तो फिर वे विवाह करने के लिए बहुत ही अधिक उद्यमवान हुए थे ।८४।

इत्थं विमोह्य तं देवं कन्दर्पो ललिताज्ञया ।
अथ तां पर्वतसुतामाशुगैरभ्यतापयत् ॥८५

प्रभूतविरहज्वालामलिनै: श्वसितानलै: ।
शुष्यमाणाधरदलो भृशं पांडुकपोलभू: ॥८६

नाहारे वा न शयने न स्नापे धृतिमिच्छति ।
सखीसहस्रैः सिषिचे नित्यं शीतोपचारकैः ॥८७
पुनः पुनस्तप्यमाना पुनरेव च विह्वला ।
न जगाम रुजा शांति मन्मथाग्नेर्महीयसः ॥८८
न निद्रां पार्वती भेजे विरहेणोपतापिता ।
स्वतनोस्तापनेनासौ पितुः खेदमवर्धयत् ॥८९
अप्रतीकारपुरुषं विरहं दुहितुः शिवे ।
अवलोक्य स शैलेन्द्रो महादुःखमवाप्तवान् ॥९०
भद्रे त्वं तपसा देवं तोषयित्वा महेश्वरम् ।
भर्तारं तं समृच्छेति पित्रा सम्प्रेरिताथ सा ॥९१
हिमवच्छैलशिखरे गौरीशिखरनामनि ।
चकार पतिलाभाय पार्वती दुष्करं तपः ॥९२
शिशिरेषु जलावासा ग्रीष्मे दहनमध्यगा ।
अर्के निविष्टदृष्टिश्च सुघोरं तप आस्थिता ॥९३

ललिता देवी की आज्ञा से उस कन्दर्प ने इस तरह से शिव को विमोहित करके फिर उसने पार्वती को अपने बाणों से अभितप्त कर दिया था ।८५। बड़े हुए विरह की ज्वाला से मलिन श्वासों की वायुओं से उसके अधर दल सूख गये थे और उसके कपोल पाण्डु वर्ण के हो गये थे ।८६। पार्वती को आहार में—शयन में—स्नान में कहीं भी धैर्य नहीं होता था। सहस्रों सखियाँ नित्य ही शीतल उपचारों से उसका सेचन किया करती थीं ।८७। बार-बार तापमान होती हुई वह फिर-फिर कर बेचैन हो जाती थी। कामाग्नि से जो अधिक थी वह उस रोग की शान्ति नहीं प्राप्त कर सकी थी ।८८। विरह से उप तापित होकर पार्वती को निद्रा भी नहीं आती थी। अपने शरीर के सन्तापन से उसने पिता के भी खेद को बढ़ा दिया था ।८९। जिसका कुछ भी प्रतिकार नहीं था ऐसा शिव के विषय में दुहिता के विरह को देखकर शैलराज को महान दुःख प्राप्त हो गया था ।९०। पिता ने उसको प्रेरणा दी थी कि हे भद्रे ! तुम तप के द्वारा महेश्वर को प्रसन्न करो और उनको अपना भर्त्ता प्राप्त करो ।९१। हिमवान् पर्वत के शिखर पर एक गौरी

शिखर नाम वाली चोटी है उस पर पार्वती ने पति के लाभ प्राप्त करने के लिये बड़ा ही महान दुष्कर तप किया था। शीत में जल में निवास करती थी और ग्रीष्म में अग्नि के मध्य में रही थी। सूर्य में दृष्टि लगाकर उसने घोर तप किया।९२-९३।

तेनैव तपसा तुष्टः सान्निध्यं दत्तवाञ्छिवः।
अङ्गीचकार तां भार्यां वैवाहिकविधानतः ॥९४
अथाद्रिपतिना दत्तां तनयां नलिनेक्षणाम्।
सप्तर्षिद्वारतः पूर्वं प्रार्थितामुदवोढ सः ॥९५
तया च रममाणोऽसौ बहुकालं महेश्वरः।
ओषधीप्रस्थनगरे श्वशुरस्य गृहेऽवसत् ॥९६
पुनः कैलासमागत्य समस्तैः प्रमथैः सह।
पार्वतीमानिनायाद्रिनाथस्य प्रीतिमावहत् ॥९७
रममाणस्तया सार्धं कैलासे मन्दरे तथा।
विन्ध्याद्रौ हेमशैले च मलये पारियात्रके ॥९८
नानाविधेषु स्थानेषु रतिं प्राप महेश्वरः।
अथ तस्यां ससर्जोग्रं वीर्यं सा सोढुमक्षमा ॥९९
भुव्यत्यजत्सापि वह्नौ कृत्तिकासु स चाक्षिपत्।
ताश्च गङ्गाजलेऽमुञ्चन्सा चैव शरकानने ॥१००

उसी तप से तुष्ट होकर शिव ने उसका सान्निध्य किया था। उस पार्वती को शिव ने वैवाहिक विधि से अपनी भार्या बनाना स्वीकार कर लिया था ।९४। इसके पश्चात् शिव ने सप्तर्षियों के द्वारा प्रार्थिता उस अद्रियति के द्वारा प्रदान की हुई नलिनेक्षण पुत्री का उद्वाह कर लिया था ।९५। वह महेश्वर उसके साथ रमण बहुत समय पर्यन्त करते रहे थे और अपने श्वशुर के ही घर में औषधिप्रस्थ नगर में उन्होंने निवास किया था ।९६। फिर कैलास पर आ गये थे और प्रमथों के साथ पार्वती को वहाँ ले आये थे तथा शैलराज की प्रीति भी प्राप्त कर ली थी ।९७। कैलास में तथा मन्दर में उस पार्वती के साथ रमण करते रहे थे। तथा विन्ध्य में—हेमशैल में—मलयाचल में और पारियात्रिक में रमण किया था ।९८। अनेक स्थानों

में महेश्वर ने रति प्राप्त की थी। इसके बाद उसमें अपना उग्रवीर्य छोड़ा था जिसके सहन करने में वह असमर्थ हो गयी थी।६६। इसने भी उस वीर्य को भूमि में—वह्नि में—कृतिकाओं में—क्षिप्त कर दिया था। उन्होंने गङ्गाजल में छोड़ दिया था और उसने शर कानन में छोड़ा था।१००।

तत्रोद्भूतो महावीरो महासेनः षडाननः।
गंगायाश्चांतिकं नीतो धूर्जटिर्वृद्धिमागमत् ॥१०१
स वर्धमानो दिवसे दिवसे तीव्रविक्रमः।
शिक्षितो निजतातेन सर्वा विद्या अवाप्तवान् ॥१०२
अथ तातकृतानुज्ञः सुरसैन्यपतिर्भवन्।
तारकं मारयामास समस्तैः सह दानवैः ॥१०३
ततस्तारकदैत्येंद्रवधसन्तोषशालिना।
शक्रेण दत्तां स गुहो देवसेनामुपानयत् ॥१०४
सा शक्रतनया देवसेना नाम यशस्विनी।
आसाद्य रमणं स्कन्दमानन्दं भृशमादधौ ॥१०५
इत्थं संमोहिताशेषविश्वचक्रो मनोभवः।
देवकार्यं सुसम्पाद्य जगाम श्रीपुरं पुनः ॥१०६
यत्र श्रीनगरे पुण्ये ललिता परमेश्वरी।
वर्तते जगतामृद्धयै तत्र तां सेवितुं ययौ ॥१०७

वहाँ पर महान् सेनानी महावीर षडानन समुत्पन्न हुए थे गङ्गा के समीप में पहुँचाया गया था और धूर्जटि वृद्धि को प्राप्त हुए थे।१०१। वह प्रतिदिन बढ़ने लगे थे और परम तीव्र विक्रम वाले हुए थे। अपने ही पिता के द्वारा उसको शिक्षा दी गयी थी और उसने समस्त विद्याएँ प्राप्त कर ली थीं।१०२। इसके पश्चात् पिता की आज्ञा प्राप्त करके देवों के सेनापति का पद ग्रहण कर लिया था। फिर उनने समस्त दानवों के साथ तारक को मार डाला था।१०३। फिर तारक दैत्य के वध से सन्तोष शाली इन्द्र ने देवों की सैना दी थी और गुह देव सेना को प्राप्त हो गये थे। फिर शुक्र की पुत्री देवसेना नाम वाली यशस्विनी ने स्कन्द को अपना स्वामी प्राप्त करने पर अधिक आनन्द प्राप्त किया था।१०४-१०५। इस रीति से कामदेव ने

सम्पूर्ण विश्व को संमोहित कर दिया था। वह देवों के इस कार्य को पूर्ण करके फिर श्रीपुर में चला गया था।१०६। जहाँ पर परम पुण्य श्री नगर में परमेश्वरी ललिता जगतों की समृद्धि के वर्त्तमान रहती है। उसी की सेवा करने के लिए वह चला गया था।१०७।

।। मतंग कन्या प्रादुर्भाव वर्णन ।।

अगस्त्य उवाच–

किमिदं श्रीपुरं नाम केन रूपेण वर्तते ।
केन वा निर्मितं पूर्वं तत्सर्वं मे निवेदय ।।१
कियत्प्रमाणं किं वर्णं कथयस्व मम प्रभो ।
त्वमेव सर्वसन्देहपङ्कशोषणभास्करः ।।

हयग्रीव उवाच–

यथा चक्ररथं प्राप्य पूर्वोक्तैर्लक्षणैर्युतम् ।
महायागानलोत्पन्ना ललिता परमेश्वरी ।।३
कृत्वा वैवाहिकीं लीलां ब्रह्माद्यैः प्रार्थिता पुनः ।
व्यजेष्ट भण्डनामानमसुरं लोककण्टकम् ।।४
तदा देवा महेन्द्राद्याः सन्तोषं बहु भेजिरे ।
अथ कामेश्वरस्यापि ललितायाश्च शोभनम् ।
नित्योपभोगसर्वार्थं मन्दिरं कर्तुमुत्सुकाः ।।५
कुमारा ललितादेव्या ब्रह्मविष्णुमहेश्वराः ।
वर्धकिं विश्वकर्माणं सुराणां शिल्पकोविदम् ।।६
असुराणां शिल्पिनं च मयं मायाविचक्षणम् ।
आहूय कृतसत्कारानूचिरे ललिताज्ञया ।।७

अगस्त्यजी ने कहा—यह श्रीपुर नाम वाला क्या है और यह किस स्वरूप से होता है। पूर्व में इसका निर्माण किसने किया था—यह सब आप कृपया मुझको बतला दीजिए।१। यह श्रीपुर कितना बड़ा है और इसका क्या वर्ण है—हे प्रभो! यह सभी कुछ बतलाइए। आप ही एक ऐसे हैं जो

सभी प्रकार से सन्देह के पंक को सुखा देने वाले हैं ।२। श्री हयग्रीवजी ने कहा—जिस प्रकार से पूर्व में कहे हुए लक्षणों से युक्त चक्ररथ को प्राप्त करके महाभागानला परमेश्वरी ललिता समुत्पन्न हुई थी ।३। फिर ब्रह्मा आदि के द्वारा प्रार्थना किये जाने पर वैवाहिकी लीला करके उसने लोकों के लिए कण्टक भंडासुर पर विजय प्राप्त की थी ।४। वहाँ पर महेन्द्र आदि देवगण बहुत ही अधिक सन्तुष्ट हुए थे। इसके उपरान्त कामेश्वर का और ललिता का परम शोभन नित्य उपभोग के समस्त अर्थों वाला एक मन्दिर का निर्माण करने के लिए सब देवगण उत्सुक हुए थे ।५। ललिता देवी के कुमार ब्रह्मा-विष्णु और महेश्वर थे। इन्होंने वर्द्धकि विश्वकर्मा को जो कि शिल्प विद्या का पण्डित था ।६। और असुरों का शिल्पी मय को जो माया में बड़ा कुशल था बुलाया था। इनका सत्कार करके ललिता की आज्ञा से उनसे सबने कहा था ।७।

अधिकारिपुरुषा ऊचुः—

भो विश्वकर्मञ्छिल्पज्ञ भोभो मय महोदय ।
भवन्तौ सर्वशास्त्रज्ञौ घटनामार्गकोविदौ ।।८
संकल्पमात्रेण महाशिल्पकल्पविशारदौ ।
युवाभ्यां ललितादेव्या नित्यज्ञानमहोदधेः ।।९
षोडशीक्षेत्रमध्येषु तत्क्षेत्रसमसंख्यया ।
कर्तव्या श्रीनगर्यो हि नानारत्नैरलङ्कृताः ।।१०
यत्र षोडशधा भिन्ना ललिता परमेश्वरी ।
विश्वत्राणाय सततं निवासं रचयिष्यति ।।११
अस्माकं हि प्रियमिदं मरुतामपि च प्रियम् ।
सर्वलोकप्रियं चैतत्तन्नाम्नैव विरच्यताम् ।।१२
इति कारणदेवानां वचनं सुनिशम्य तौ ।
विश्वकर्ममयौ नत्वा व्यभाषेतां तथास्त्विति ।।१३
पुनर्नत्वा पृष्ठवन्तौ तौ तान्कारणपूरुषान् ।
केषु क्षेत्रेषु कर्तव्याः श्रीनगर्यो महोदयाः ।।१४

अधिकारी पुरुषों ने कहा था—हे विश्वकर्मन् ! आप बहुत ही ऊँचे शिल्प कर्म के ज्ञाता हैं। हे महोदय मय ! आप दोनों ही घटना मार्ग के विद्वान् हैं और सभी शास्त्रों के भी ज्ञाता हैं ? ।८। आप लोग तो केवल संकल्प से ही महान् शिल्प कल्प के विशारद हैं। आप दोनों को ही नित्य ज्ञान की सागर ललितादेवी की श्री नगरियाँ बनानी चाहिए जो षोडशी क्षेत्र के मध्य में उसके क्षेत्र की समान संख्या से युक्त होंगी। वे श्री नगरी अनेक रत्नों से विभूषित भी बनानी चाहिए ।९-१०। जहाँ पर सोलह प्रकार से भिन्न परमेश्वरी ललिता इस विश्व की रक्षा के लिए अपना निवास बनायेगी ।११। यह हमारा भी प्रिय होवे और मरुतों का भी प्रिय हो और सर्वलोक का प्रिय होवे ऐसा यह नाम से ही विरचित करो ।१२। यह कारण देवों का वचन उन दोनों ने श्रवण करके दोनों विश्वकर्माओं ने ऐसा ही होगा—यह कहकर स्वीकार किया था ।१३। फिर उनने नमस्कार करके उन कारण देवताओं से पूछा था कि ये श्री नगरियाँ किन क्षेत्रों में बनानी चाहिए ।१४।

ब्रह्माद्याः परिपृष्टास्ते प्रोचुस्तौ शिल्पिनौ पुनः ।
क्षेत्राणां प्रविभागं तु कल्पयन्तौ यथोचितम् ॥१५
कारणपुरुषा ऊचुः—
प्रथमं मेरुपृष्ठे तु निषधे च महीधरे ।
हेमकूटे हिमगिरौ पञ्चमे गन्धमादने ॥१६
नीले मेषे च शृंगारे महेन्द्रे च महागिरौ ।
क्षेत्राणि हि नवैतानि भौमानि विदितान्यथ ॥१७
औदकानि तु सप्तैव प्रोक्तान्यखिलसिन्धुषु ।
लवणोऽब्धीक्षुसाराब्धिः सुराब्धिर्घृतसागरः ॥१८
दधिसिन्धुः क्षीरसिन्धुर्जलसिन्धुश्च सप्तमः ।
पूर्वोक्ता नव शैलेन्द्राः पश्चात्सप्त च सिन्धवः ॥१९
आहृत्य षोडश क्षेत्राण्यंबाश्रीपुरक्लृप्तये ।
येषु दिव्यानि वेश्मानि ललिताया महौजसः ।
सृजतं दिव्यघटनापण्डितौ शिल्पिनौ युवाम् ॥२०

येषु क्षेत्रेषु क्लृप्तानि घ्नन्त्या देव्या महासुरान् ।
नामानि नित्यानाम्नैव प्रथितानि न संशयः ॥२१

ब्रह्मादिक से परिपृष्ट हुए उन दोनों शिल्पियों ने कहा था कि क्षेत्रों का प्रविभाग यथोचित कल्पित कीजिए ।१५। कारण पुरुषों ने कहा—प्रथम तो मेरु के पृष्ठ पर और निषध महीधर पर—हेम गिरि पर—हिम कूट पर और पाँचवे गन्ध मादन पर—नील—मेष—शृंगार और महागिरि महेन्द्र पर ये नौ क्षेत्र भौम विदित हैं ।१६-१७। जलीय सात ही स्थान हैं जो समस्त सिन्धुओं में बताये गये हैं । लवण सागर—इक्षुसार सागर-सुरा सागर—घृत सागर ।१८। दधि सागर-क्षीर सिन्धु है । पूर्व में कहे हुए नौ शैलेन्द्र और पीछे बताये गये सात सिन्धु हैं ।१९। इन सोलह क्षेत्रों का आहरण करके श्री के पुरों की क्लृप्ति के लिए हैं । महान ओज वाली ललिता देवी के जिनमें दिव्य गृह होंगे । आप दोनों ही शिल्पी हैं और दिव्य घटना के महान् पण्डित हैं अतः ऐसा ही निर्माण कीजिए ।२०। जिन क्षेत्रों में असुरों का हनन करने वाली देवी के नाम क्लृप्त हैं वे सब नित्य नाम से ही प्रथित हैं—इसमें लेशमात्र भी संशय नहीं है ।२१।

सा हि नित्यास्वरूपेण कालव्याप्तिकरी परा ।
सर्वं कलयन्ते देवी कलनांकतया जगत् ॥२२
नित्यानां च महाराज्ञी नित्या यत्र न तद्भिदा ।
अतस्तदीयनाम्ना तु सनामा प्रथिता पुरा ॥२३
कामेश्वरीपुरी चैव भगमालापुरी तथा ।
नित्यक्लिन्नापुरीत्यादिनामानि प्रथितान्यलम् ॥२४
अतो नामानि वर्णेन योग्ये पुण्यतमे दिने ।
महाशिल्पप्रकारेण पुरीं रचयतां शुभाम ॥२५
इति कारणकृत्येंद्रैर्ब्रह्मविष्णुमहेश्वरैः ।
प्रोक्तौ तौ श्रीपुरीस्थेषु तेषु क्षेत्रेषु चक्रतुः ॥२६
अथ श्रीपुरविस्तारं पुराधिष्ठातृदेवताः ।
कथयाम्यहमाधार्य लोपामुद्रापते शृणु ॥२७

यो मेरुरखिलाधारस्तु ंगश्चानंतयोजनः ।
चतुर्दशजगच्चक्रसंप्रोतनिजविग्रहः ।।२८

वह देवी परा नित्या के स्वरूप से काल की व्याप्ति करने वाली है। कलनान्तकता से देवी सम्पूर्ण जगत् का कलन करती है ।२२। महाराज्ञी नित्या नाम वाली है जिसमें तद्भिदा भी नित्या नाम ही है । अतएव उसके ही नाम से वह पुरी पहिले सनामा प्रथिता हुई है ।२३। कामेश्वरी पुरी तथा भगमाला पुरी तथा नित्य क्लिन्नापुरी—इत्यादि नाम ही प्रथिता है । वही पर्याप्त है ।२४। इसीलिए नाम वर्ण से योग्य पुण्य दिन में महान शिल्प के प्रकार से उस शुभा पुरी की रचना की थी ।२५। इसलिए कारण कुल्येन्द्र ब्रह्मा-विष्णु-महेश्वरों के द्वारा उन क्षेत्रों में श्री पुरीस्थों में कहे गये थे ।२६। हे लोपामुद्रापते ! आप श्रवण कीजिए—मैं अब उस श्री पुर का विस्तार और पुर के अधिष्ठातृ देवताओं को बतलाता हूँ ।२७। जो मेरु का अखिला-धार है और अनन्तयोजन ऊँचा है चौदह भुवनों के चक्र में संप्रोत विग्रह वाला है ।२८।

तस्य चत्वारि श्रृंगाणि शक्रनैर्ऋ तवायुषु ।
मध्यस्थलेषु जातानि प्रोच्छ्रायस्तेषु कथ्यते ।।२९
पूर्वोक्तश्रृंगत्रितयं शतयोजनमुन्नतम् ।
शतयोजनविस्तारं तेषु लोकास्त्रयो मताः ।।३०
ब्रह्मलोको विष्णुलोकः शिवलोकस्तथैव च ।
एतेषां गृहविन्यासान्वक्ष्याम्यवसरांतरे ।।३१
मध्ये स्थितस्य श्रृंगस्य विस्तारं चोच्छ्रयं शृणु ।
चतुःशतं योजनानामुच्छ्रितं विस्तृतं तथा ।।३२
तत्रैव श्रृगे महति शिल्पिभ्यां श्रीपुरं कृतम् ।
चतुःशतं योजनानां विस्तृतं कुम्भसंभव ।।३३
तत्रायं प्रविभागस्ते प्रविविच्य प्रदर्श्यते ।
प्राकारः प्रथमः प्रोक्तः कालायसविनिर्मितः ।।३४
षड्दशाधिकसाहस्रयोजनायतवेष्टनः ।
चतुर्दिक्षु द्वार्युतश्च चतुर्योजनमुच्छ्रितः ।।३५

उसके चार शिखर शक्र—नैर्ऋत्य—वायु—मध्यस्थलों में हुए हैं। जो ऊँचाई है वह बतलायी जाती है।२९। पूर्व में कहे हुए तीन शृंग शत योजन उन्नत हैं और उनका सौ योजन ही विस्तार है। उनमें तीनों लोक माने गये हैं।३०। ब्रह्मलोक-विष्णु लोक और शिव लोक हैं इनके महान विन्यासों का वर्णन अन्य अवसर में बताऊँगा।३१। मध्य में स्थित शृंग का विस्तार और ऊँचाई श्रवण कीजिए। चार सौ योजन उच्चता और विस्तार है।३२। वहाँ पर ही महान शिखर पर शिल्पियों ने श्रीपुर बनाया था। हे कुम्भ सम्भव! वह चार सौ योजन विस्तार और ऊँचाई वाला है।३३। वहाँ पर यह प्रविभाग है जो आपको विवेचना करके दिखाया जाता है। उसका जो प्रथम प्राकार है कालायस से बनाया गया है।३४। सोलह सहस्र योजन आयत वेष्टन है। चारों दिशाओं में वह द्वारों से युक्त है और चार योजन ऊँचा है।३५।

शालमूलपरीणाहो योजनायुतमब्धिप ।
शालाग्रस्य तु गव्यूतेर्नद्धवातायनं पृथक् ॥३६
शालद्वारस्य चौन्नत्यमेकयोजनमाश्रितम् ।
द्वारे द्वारे कपाटे द्वे गव्यूत्यर्धप्रविस्तरे ॥३७
एकयोजनमुन्नद्धे कालायसविनिर्मिते ।
उभयोरर्गला चेत्थमर्धक्रोशसमायता ॥३८
एवं चतुर्षु द्वारेषु सदृशं परिकीर्तितम् ।
गोपुरस्य तु संस्थाने कथये कुम्भसंभव ॥३९
पूर्वोक्तस्य तु शालस्य मूले योजनसंमिते ।
पार्श्वद्वये योजने द्वे द्वे समादाय निर्मिते ॥४०
विस्तारमपि तावंतं संप्राप्तं द्वारगर्भितम् ।
पार्श्वद्वयं योजने द्वे मध्ये शालस्य योजनम् ॥४१
मेलयित्वा पञ्च मुने योजनानि प्रमाणतः ।
पार्श्वद्वयेन सार्धेन क्रोशयुग्मेन संयुतम् ॥४२

हे अब्धिप! शाल वृक्ष के मूल के समान परिणाम वाला है और योजनायुत है। शालाग्र के गव्यूति का नद्ध्यायत पृथक् है।३६। शाल द्वार

की ऊँचाई एक योजन आश्रित है। आधी गव्यूति के विस्तार वाले प्रति द्वार में दो किवाड़ हैं।३७। वे एक योजन उन्नद्ध हैं तथा कृष्ण लौह के द्वारा बने हुए हैं। उन दोनों में एक अर्गला है जो आधे कोश के बराबर आयत है।३८। इस प्रकार से चारों द्वारों में समान ही कीर्त्तित है। हे कुम्भ सम्भव ! गोपुर का संस्थान मैं कहता हूँ।३९। पूर्व में कहे हुए शाल के मूल में जो योजन समित है। दोनों पार्श्वों में दो-दो योजन लाकर निर्मित किये गये हैं।४०। विस्तार भी द्वारों से युक्त उतना ही सम्प्राप्त है। दोनों पार्श्व मध्य में दो योजन हैं जो शाल का योजन है।४१। हे मुने ! प्रमाण से पाँच योजन मिलाकर दोनों पार्श्व ढाई कोश से संयुत हैं।४२।

मेलयित्वा पञ्चसंख्यायोजनान्यायतस्तथा।
एवं प्राकारतस्तत्र गोपुरं रचितं मुने ॥४३
तस्माद्गोपुरमूलस्य वेष्टो विंशतियोजनः।
उपर्युपरि वेष्टस्य ह्रास एव प्रकीर्त्यते ॥४४
गोपुरस्योन्नतिः प्रोक्ता पञ्चविंशतियोजना।
योजने योजने द्वारं सकपाटं मनोहरम् ॥४५
भूमिकाश्चापि तावन्त्यो यथोर्ध्वं ह्राससंयुताः।
गोपुराग्रस्य विस्तारो योजनं हि समाश्रितः ॥४६
आयामोऽपि च तावान्वै तत्र त्रिमुकुटं स्मृतम्।
मुकुटस्य तु विस्तारः क्रोशमानो घटोद्भव ॥४७
क्रोशद्वयं समुन्नद्धं ह्रासं गोपुरवन्मुने।
मुकुटस्यांतरे क्षोणी क्रोशार्धेन च संमिता ॥४८
मुकुटं पश्चिमे प्राच्यां दक्षिणे द्वारगोपुरे।
दक्षोत्तरस्तु मुकुटाः पश्चिमद्वारगोपुरे ॥४९

मिलाकर पाँच योजन आयत है। इस प्रकार से वहाँ पर हे मुने ! गोपुर की रचना की गई।४३। इस कारण से गोपुर के मूल का वेष्ट बीस योजनों वाला है। उस वेष्ट के ऊपर-ऊपर में ह्रास बताया जाता है।४४। उस गोपुर की ऊँचाई पच्चीस योजन की है ऐसा कहा गया है। एक-एक

योजन पर द्वार हैं जिनमें बहुत सुन्दर किवाड़ लगे हुए हैं ।४५। और भूमिकायें भी उतनी ही हैं जैसी ऊर्ध्व में ह्रास में संयुत हैं । गोपुर के आगे का विस्तार एक योजन समाश्रित है ।४६। उसका आयाम भी वहाँ पर उतना ही है त्रिमुकुट कहा गया है । हे घटोद्भव ! मुकुट का विस्तार एक कोश के मान वाला है ।४७। हे मुने ! गोपुर के ही तुल्य दो कोश समुन्नद्ध ह्रास है । मुकुट के अन्दर की भूमि आधे के बराबर है ।४८। मुकुट पश्चिम—पूर्व—दक्षिण में द्वार गोपुर में है । दक्षोत्तर मुकुट पश्चिम द्वार गोपुर में है ।४९।

दक्षिणद्वारवत्प्रोक्ता उत्तरद्वाः किरीटिकाः ।
पश्चिमद्वारवत्पूर्वद्वारे मुकुटकल्पना ॥५०
कालायसाख्यशालस्यांतरे मारुतयोजने ।
अंतरे कांस्यशालस्य पूर्ववद्गोपुरोऽन्वितः ॥५१
शालमूलप्रमाणं च पूर्ववत्परिकीर्तितम् ।
कांस्यशालोऽपि पूर्वादिदिक्षु द्वारसमन्वितः ॥५२
द्वारेद्वारे गोपुराणि पर्वलक्षणभांजि च ।
कालायसस्य कांस्यस्य योंऽतर्देशः समंततः ॥५३
नानावृक्षमहोद्यानं तत्प्रोक्तं कुम्भसंभव ।
उद्भिज्जाद्यं यावदस्ति तत्सर्वं तत्र वर्तते ॥५४
परसहस्रास्तरवः सदापुष्पाः सदाफलाः ।
सदापल्लवशोभाढ्याः सदा सौरभसंकुलाः ॥५५
चूताः कंकोलका लोध्रा बकुलाः कर्णिकारकाः ।
शिंशपाश्च शिरीषाश्च देवदारुनमेरवः ॥५६

दक्षिण द्वार के समान उत्तर द्वार किरीटिका कही गयी है । पश्चिम द्वार के तुल्य पूर्व द्वार में मुकुट की योजना है ।५०। कालायस शाल के अन्तर में मारुत योजन में कांस्यशाल के अन्तर में पूर्व की भाँति गोपुर अन्वित है ।५१। शाल के मूल का प्रमाण तो पूर्व के ही समान कीर्त्तित किया गया है । कांस्य शाल भी पूर्व आदि दिशाओं के द्वार से समन्वित है ।५२। प्रतिद्वार में पर्व लक्षण वाले गोपुर हैं । कालायस और कांस्य का जो अन्त-

देश है वह माना गया है जो चारों ओर है।५३। हे कुम्भ सम्भव ! वह नाना वृक्षों का महान् उद्यान कहा गया है। उद्भिज्ज आदि जितने भी हैं वे सभी वहाँ पर विद्यमान हैं।५४। सहस्रों से भी अधिक तरुगण जो सदा ही पुष्प और फल देने वाले हैं। वे सर्वदा पत्रों से शोभित हैं और सदा ही सौरभ से संकुल हैं।५५। आम्र—कंकोल—लोध्र—वकुल—कणिकार—शिंशप—शिरीष—देवदारु—नमेरु वृक्ष हैं।५६।

पुन्नागा नागभद्राश्च मुचुकुन्दाश्च कट्फलाः ।
एलालवंगास्तक्कोलास्तथा कर्पूरशाखिनः ॥५७
पीलवः काकतुण्ड्यश्च शालकाश्चासनास्तथा ।
कांचनाराश्च लकुचाः पनसा हिंगुलास्तथा ॥५८
पाटलाश्च फलिन्यश्च जटिल्यो जघनेफलाः ।
गणिकाश्च कुरण्डाश्च बन्धुजीवाश्च दाडिमाः ॥५९
अश्वकर्णा हस्तिकर्णाश्चांपेयाः कनकद्रुमाः ।
यूथिकास्तालपर्ण्यश्च तुलस्यश्च सदाफलाः ॥६०
तालास्तमालहिंतालखर्जूराः शरबर्बुराः ।
इक्षवः क्षीरिणश्चैव श्लेष्मांतकविभीतकाः ॥६१
हरीतक्यस्त्ववाक्पुष्प्यो घोण्टाल्यः स्वर्गपुष्पिकाः ।
भल्लातकाश्च खदिराः शाखोटाश्चन्दनद्रुमाः ॥६२
कालागुरुद्रुमाः कालस्कन्धाश्चिंचा वटास्तथा ।
उदुम्बरार्जुनाश्वत्थाः शमीवृक्षा ध्रुवाद्रुमाः ॥६३

पुन्नाग—नागभद्र—मुचुकुन्द—कट्फल—एलालवंग—तक्कोल—कर्पूरशाली हैं।५७। पीलु—काकतुण्डी—शाल—आसनकांचनार—लकुच—पनस—हिंगुल हैं।५८। पाटल—फलिनी जटिली—जघनेफल—गणिका कुरण्ड—बन्धुजीव—दाड़िम—अश्वकर्ण-हस्तिकर्ण—चाम्पेय—कनकद्रुम—यूथिका—तालपर्णी—तुलसी और सदा फल के वृक्ष हैं।५९-६०। ताल—तमाल—हिन्ताल—खर्जूर—शरबर्बुर—इक्षु—क्षीरी—श्लेष्मातक—विभीतक से वृक्ष हैं।६१। हरीतकी—अवाक्पुष्पी—घोण्टाली—स्वर्ग पुष्पिका—भल्लातक—खदिर—शाखोट—चन्दन द्रुम हैं।६२। कालागुरु द्रुम—काल-

स्कन्ध—चिंचा—वट—उदुम्बर—अर्जुन—अश्वत्थ—शमी वृक्ष—ध्रुवाद्रुम हैं ।६३।

रुचकाः कुटजाः सप्तपर्णाश्च कृतमालकाः ।
कपित्थास्तितिणी चैवेत्येवमाद्याः सहस्रशः ॥६४

नानाऋतुसमाविष्टा देव्याः शृंगारहेतवः ।
नानावृक्षमहोत्सेधा वर्तंते वरशाखिनः ॥६५

कांस्यशालस्यांतराले सप्तयोजनदूरतः ।
चतुरस्रस्ताम्रशालः सिंधुयोजनमुन्नतः ॥६६

अनयोरंतरक्षोणी प्रोक्ता कल्पकवाटिका ।
कर्पूरगन्धिभिश्चारुरत्नबीजसमन्वितैः ॥६७

कांचनत्वक्सुरुचिरैः फलैस्तैः फलिता द्रुमाः ।
पीतांबराणि दिव्यानि प्रवालान्येव शाखिषु ॥६८

अमृतं स्यान्मधुरसः पुष्पाणि च विभूषणम् ।
ईदृशा बहवस्तत्र कल्पवृक्षाः प्रकीर्तिताः ॥६९

एषा कक्षा द्वितीया स्यात्कल्पवापीति नामतः ।
ताम्रशालस्यांतराले नागशालः प्रकीर्तितः ॥७०

रुचक—कुटज—सप्तपर्ण—कृतमालक—कपित्थ—तिन्तिणी—इत्यादि सहस्रों प्रकार के वृक्ष हैं ।६४। ये सभी वृक्ष अनेक जीव-जन्तुओं से समन्वित हैं जो श्रीदेवी के शृंगार के कारण हैं। नाना भाँति के वृक्षों के महान् उत्सेध से युक्त हैं ऐसे श्रेष्ठशाखी हैं ।६५। कांस्यशाल के अन्तराल में सात-योजन दूर चौकोर ताम्र शाल है जो सिन्धु योजन अनुकूल है अर्थात् सात योजन तक पीछे लगा हुआ है ।६६। इन दोनों की भीतर की पृथ्वी है जो कल्पक वाटों वाली कही गयी है वे द्रुम ऐसे हैं जो ऐसे हैं जो ऐसे फलों वाले हैं जिनमें कपूर की गन्ध है और सुन्दर रत्नों के बीजो से संयुत हैं। उनकी छाल सुनहली है और परम सुन्दर हैं। इन वृक्षों में पीताम्बर दिव्य प्रवाल हैं ।६७-६८। अमृत इनका मधुरस है और पुष्प ही विभूषण हैं। इस प्रकार के वहाँ पर बहुत से कल्प वृक्ष कीत्तित किये गये हैं ।६९। यह दूसरी कक्षा है। जिसका नाम कल्पवापी है। फिर उस ताम्रशाल के अन्तराल में नाग शाल कहा गया है ।७०।

अनयोरुभयोस्तिर्यग्देशः स्यात्सप्तयोजनः ।
तत्र संतानवाटी स्यात्कल्पवापीसमाकृतिः ॥७१
तयोर्मध्ये मही प्रोक्ता हरिचन्दनवाटिका ।
कल्पवाटीसमाकारा फलपुष्पसमाकुला ॥७२
एषु सर्वेषु शालेषु पूर्ववद्द्वारकल्पनम् ।
पूर्ववद्गोपुराणां च मुकुटानां च कल्पनम् ॥७३
गोपुरद्वारक्लृप्तं च द्वारे द्वारे च संमितिः ।
आरकूटस्यांतराले सप्तयोजनदूरतः ॥७४
पञ्चलोहमयः शालः पूर्वशालसमाकृतिः ।
तयोर्मध्ये मही प्रोक्ता मन्दारद्रुमवाटिका ॥७५
पञ्चलोहस्यांतराले सप्तयोजनदूरतः ।
रौप्यशालस्तु संप्रोक्तः पूर्वोक्तैर्लक्षणैर्युतः ॥७६
तयोर्मध्ये मही प्रोक्ता पारिजातद्रुवाटिका ।
दिव्यामोदसुसंपूर्णा फलपुष्पभरोज्ज्वला ॥७७

इन दोनों का एक तिर्यग् देश है जो सात योजन वाला है । वहाँ पर एक सन्तानवाटी है जो कल्प वापी के ही सदृश आकृति वाली होती है ।७१। उन दोनों के मध्य में यही बतायी गयी है । जिसका नाम हरि चन्दन वाटिका है । यह भी कल्पवाटी के तुल्य ही आकार वाली है और फलों तथा पुष्पों से घिरी हुई है ।७२। इन समस्त शालों में पूर्व की ही भाँति द्वारों की कल्पना है और पहिली भाँति ही गोपुरों का और मुकुटों का भी कल्पन है ।७३। प्रत्येक द्वार में गोपुर द्वार के ही समान संमिति है आरकूट के अन्तराल में सात योजनों की दूरी वाला एक प्राकार और है ।७४। पञ्च लौह से पूर्ण-शाल है जो पूर्व शाल के समान आकार वाला है । उन दोनों के मध्य में जो मही है वह मन्दार द्रुमों की वाटिका वाली है ।७५। पाँचों लौहों के अन्तराल में सात योजनों की दूरी वाला चाँदी का शाल है जो पूर्व के ही सदृश लक्षणों तथा आकृति वाला है ऐसा बताया गया है । सुवर्ण का शाल पूर्व के ही समान द्वारों से सुशोभित बताया गया है ।७६। उन दोनों के मध्य में जो मही है वह पारिजात के द्रुमों की ही वाटिका है । वह परम दिव्य गन्ध वाली तथा फल पुष्पों से समन्वित है ।७७।

रौप्यशालस्यांतराले सप्तयोजनविस्तरः ।
हेमशालः प्रकथितः पूर्ववद्द्वारशोभितः ।।७८
तयोर्मध्ये मही प्रोक्ता कदम्बतरुवाटिका ।
तत्र दिव्या नीपवृक्षा योजनद्वयमुन्नताः ।।७९
सदैव मदिरास्पंदा मेदुरप्रसवोज्ज्वलाः ।
येभ्यः कादम्बरी नाम योगिनी भोगदायिनी ।।८०
विशिष्टा मदिरोद्याना मंत्रिण्याः सततं प्रिया ।
ते नीपवृक्षाः सुच्छायाः पत्रलाः पल्लवाकुलाः ।
आमोदलोलभृंगालीझंकारैः पूरितोदराः ।।८१
तत्रैव मंत्रिणीनाथामन्दिरं सुमनोहरम् ।
कदम्बवनवाटयास्तु विदिक्षु ज्वलनादितः ।।८२
चत्वारि मंदिराण्युच्चैः कल्पितान्यादिशिल्पिना ।
एकैकस्य तु गेहस्य विस्तारः पञ्चयोजनः ।।८३
पञ्चयोजनमायामः समावरणतः स्थिति ।
एवमन्यविदिक्षु स्युस्सर्वत्र प्रियकद्रुमाः ।
निवासनगरी सेयं श्यामायाः परिकीर्तिता ।।८४

रौप्य शाल के अन्तराल में सात योजनों के विस्तार वाला हेम शाल कहा गया है जो पूर्व की ही भाँति द्वारों से शोभित है ।७८। उन दोनों के मध्य में भूमि जो थी वह ऐसी बतलायी गयी है कि उसमें कदम्बों के द्रुमों की वाटिका बनी है । उसमें परम दिव्यनीपों के वृक्ष हैं जो दो योजन ऊँचाई वाले हैं ।७९। वे सदा ही मदिरा का स्पन्दन करने वाले हैं और मेदुर प्रसवों से परम उज्ज्वल हैं । जिनसे कादम्बरी नाम वाली योगिनी भोग देने वाली है ।८०। वह विशेषता से युक्त मदिरोद्याना वाटिका मन्त्रिणी देवी की निरन्तर प्रिया है । वे नीपों की वृक्षावलियाँ छाया वाली तथा सुरम्य पत्र और पल्लवों से समाकुल रहा करती हैं । उसकी सुरम्य सुगन्ध से परम चञ्चल भ्रमरों की झंकार हुआ करती है जिससे उसका मध्य भाग भरा हुआ रहता है ।८१। वहाँ पर ही मन्त्रिणीनाथा का एक बहुत मनोहर मन्दिर है । कदम्बों के वन की वाटिका के विदिशाओं में ज्वलनादि से युक्त है ।८२। उस आदि

शिल्पी ने चार परमोच्च मन्दिर बनाये थे। एक-एक के घर का विस्तार पाँच योजन का था ।८३। पाँच योजनों का उनका आयाम था और समावरण से उनकी स्थिति थी। इसी रीति से अन्य विदिशाओं में सभी जगह प्रियक के द्रुम वहाँ पर थे। यह श्यामादेवी की परम प्रिय निवास की नगरी थी ।८४।

सेनार्थं नगरी त्वन्या महापद्माटवीस्थले ।
यदत्रैव गृहं तस्या बहुयोजनदूरतः ॥८५
श्रीदेव्या नित्यसेवा तु मंत्रिण्या न घटिष्यते ।
अतश्चिंतामणिगृहोपांतेऽपि भवनं कृतम् ।
तस्याः श्रीमन्त्रनाथायाः सुरत्वष्ट्रा मयेन च ॥८६
श्रीपुरे मन्त्रिणीदेव्या मन्दिरस्य गुणान्बहून् ।
वर्णयिष्यति को नाम यो द्विजिह्वासहस्रवान् ॥८७
कादम्बरीमदाताम्रनयनाः कलवीणया ।
गायन्त्यस्तत्र खेलंति मान्यमातंगकन्यकाः ॥८८
अगस्त्य उवाच—
मातङ्गो नाम कः प्रोक्तस्तस्य कन्याः कथं च ताः ।
सेवंते मन्त्रिणीनाथां सदा मधुमदालसाः ॥८९
हयग्रीव उवाच—
मतंगो नाम तपसामेकराशिस्तपोधनः ।
महाप्रभावसंपन्नो जगत्सर्जनलंपटः ॥९०
तपःशक्त्यात्तश्रिया च सर्वत्राज्ञाप्रवर्त्तकः ।
तस्य पुत्रस्तु मातंगो मुद्रिणीं मन्त्रिनायिकाम् ॥९१

सेना के निवास करने की अन्य नगरी भी थी जो महा पद्माटवी के स्थल में थी और वहाँ पर ही इसका गृह था जो बहुत योजनों तक दूर था ।८५। श्री देवी की नित्य सेवा मन्त्रिणी के द्वारा नहीं होगी। इसीलिए चिन्तामणि गृह के ही समीप में भी उसका भवन बनाया था। उस मन्त्रिणीनाथा का विश्वकर्मा और मय ने ही भवन का निर्माण कराया था ।८६। श्री पुर

में मन्त्रिणी देवी के जो प्रचुर गुण थे उनका वर्णन ऐसा कौन है जो कर सकता है जिसके दो सहस्र जिह्वायें होवें ।८७। कादम्बरी के मद से लाल लोचनों वाली कल वीणा के द्वारा गायन करती हुई वहाँ पर क्रीड़ा किया करती है जो कि मान्य मातंगों की बालिकाएँ हैं ।८८। अगस्त्यजी ने कहा– मतंग नाम वाला यह कौन कहा गया है और उसकी कन्या कैसी थीं जो सर्वदा ही मधु से मदालसा होकर मन्त्रिणी नाथा की सेवा किया करती हैं। ।८९। श्री हयग्रीव ने कहा—मतंग नाम वाला एक तपों का समूह तपस्वी था और यह महान् प्रभाव से संयुत था । यह जगत का सृजन करने में बहुत ही लम्पट था ।९०। तप की शक्ति से इसमें ऐसी बुद्धि हो गयी थी कि सर्वत्र आज्ञा का यह प्रवर्त्तक था । उसका पुत्र मातग हुआ था । इसकी घोर तपस्या से मन्त्र नायिका मुद्रिणी तुष्ट हो गयी थी ।९१।

घोरैस्तपोभिरत्यर्थं पूरयामास धीरधीः ।
मतंगमुनिपुत्रेण सुचिरं समुपासिता ।।९२
मन्त्रिणी कृतसान्निध्या वृणीष्व वरमित्यशात ।
सोऽपि सर्वमुनिश्रेष्ठो मातंगस्तपसां निधिः ।
उवाच तां पुरो दत्तसान्निध्यां श्यामलांबिकाम् ।।९३

मातंगमहामुनिरुवाच–

देवी त्वत्स्मृतिमात्रेण सर्वाश्च मम सिद्धयः ।
जाता एवाणिमाद्यास्ताः सर्वाश्चान्या विभूतयः ।।९४
प्रापणीयन्न मे किंचिदस्त्यंबभुवनत्रये ।
सर्वतः प्राप्तकालस्य भवत्याश्चरितस्मृतेः ।।९५
अथापि तव सांनिध्यमिदं नो निष्फलं भवेत् ।
एवं परं प्रार्थयेऽहं तं वरं पूरयांबिके ।।९६
पूर्वं हिमवता सार्धं सौहार्दं परिहासवान् ।
क्रीडामत्तेन चावाच्येस्तत्र तेन प्रगल्भितम् ।।९७
अहं गौरीगुरुरिति श्लाघामात्मनि तेनिवान् ।
तद्वाक्यं मम नैवाभूद्यतस्तत्राधिको गुणः ।।९८

धीरबुद्धि वाले उसने परमाति घोर तपों के द्वारा पूरित कर दिया था और मतंग मुनि के पुत्र ने उसकी उपासना भली-भाँति से की थी ।९२। मन्त्रिणी के समीप में उपस्थित हो गयी थी और उसने उससे वरदान का वरण करने के लिए कहा था । वह भी समस्त मुनियों में परम श्रेष्ठ था और मातंग तपों की खान था । उसने समीप में उपस्थित श्यामला देवी के आगे यही कहा था ।९३। मातंग महामुनि ने हे देवि मुझे आपकी केवल स्मृति ही से समस्त सिद्धियाँ अणिमा आदि हो जावें और अन्य भी सब विभूतियाँ भी हो जावें ।९४। हे अम्ब ! तीनों भुवनों में मुझे कुछ भी प्राप्त करने के योग्य न रहे । केवल आपके चरित की स्मृति से ही सभी ओर से मुझे सब कुछ की प्राप्ति का समय हो जावे ।९५। और आपका मेरे समीप में उपस्थित हो जाना भी निष्फल न होवे । इस रीति से मैं दूसरा वर माँगता हूँ उसको भी हे अम्बिके ! आप पूर्ण करिए ।९६। पूर्व में मेरा हिमवान् के साथ परिहास वाला सौहार्द था । क्रीड़ा में मत्त उसने कुछ अवाच्य वचन कह डाले थे ।९७। उसने कहा था कि मैं गौरी का गुरु हूँ—ऐसी बहुत आत्म प्रशंसा की थी । उसका वह वाक्य ऐसा था कि मेरे पास कुछ भी उत्तर नहीं था क्योंकि उसमें अधिक गुण था ।९८।

उभयोर्गुणसाम्ये तु मित्रयोरधिके गुणे ।
एकस्य कारणाज्जाते तत्रान्यस्य स्पृहा भवेत् ॥९९
गौरीगुरुत्वश्लाघार्थं प्राप्ताकामोऽप्यहं तपः ।
कृतवान्मंत्रिणीनाथे तत्त्वं मत्तनया भव ॥१००
यतो मन्नामविख्याता भविष्यसि न संशयः ।
इत्युक्तं वचनं श्रुत्वा मातंगस्य महामुनेः ।
तथास्त्विति तिरोधत्त स च प्रीतोऽभवन्मुनिः ॥१०१
मातंगस्य महर्षेस्तु तस्य स्वप्ने तदा मुदा ।
तापिच्छमञ्जरीमेकां ददौ कर्णावतंसतः ॥१०२
तत्स्वप्नस्य प्रभावेण मातंगस्य सधर्मिणी ।
नाम्ना सिद्धिमती गर्भे लघुश्यामामधारयत् ॥१०३
तत एव समुत्पन्ना मातंगी तेन कीर्तिताः ।
लघुश्यामेति सा प्रोक्ता श्यामा यन्मूलकन्दभूः ॥१०४

मातंगकन्यका हृद्याः कोटीनामपि कोटिशः ।
लघुश्यामा महाश्यामामातंगी वृन्दसंयुताः ।
अङ्गशक्तित्वमापन्नाः सेवन्ते प्रियकप्रियाम् ॥१०५
इति मातंगकन्यानामुत्पत्तिः कुम्भसंभव ।
कथिताः सप्तकक्षाश्च शाला लोहादिनिर्मिताः ॥१०६

दोनों में गुणों की समता मित्रों में हो तो ठीक है यदि किसी में भी अधिक गुण होते हैं तो एक के कारण से दूसरे में भी स्पृहा हो जाया करती है ।९९। गौरी गुरुत्व की श्लाघा के लिए प्राप्ति कामना वाले मैंने तप किया था सो हे मन्त्रिणीनाथे ! अब आप मेरी पुत्री हो जावें ।१००। क्योंकि मेरे नाम से आप विख्यात होंगी—इसमें संशय नहीं है । मातंग महामुनि के इस वचन को सुनकर 'ऐसा ही होगा'—यह कहकर वह तिरोहित हो गयी थीं और मुनि बहुत प्रसन्न हुए थे ।१०१। उस समय में मातग मुनि के स्वप्न के प्रसन्नता से कर्णावतंस से एक तापिच्छ की मंजरी प्रदान की थी। ।१०२। उस स्वप्न के प्रभाव से मातंग की सहधर्मिणी ने जिसका नाम सिद्धि मती था गर्भ में लघुश्यामा को धारण किया था ।१०३। उसी से जो समुत्पन्न हुई थी इसी कारण से मातंगी कही गयी है । वह लघुश्यामा भी कही गयी थी क्योंकि उसकी मूलकन्द भू श्यामा थी ।१०४। मातंग की कन्याएँ बड़ी सुन्दर थीं तथा करोड़ों थी । लघुश्यामा–महाश्यामा वृन्द संयुत मातंगी अङ्ग शक्तित्व को प्राप्त हुईं प्रियक प्रिया की सेवा किया करती हैं ।१०५। हे कुम्भसम्भव ! यही मातंग कन्याओं की उत्पत्ति है लोहादि से निर्मित सप्त कक्षा शालाएँ भी कह दी गयी हैं ।१०६।

श्रीनगर त्रिपुरा सप्त कक्षा वर्णन

अगस्त्य उवाच–
लोहादिसप्तशालानां रक्षका एव सन्ति वै ।
तन्नामकीर्तय प्राज्ञ येन मे संशयच्छिदा ॥१
हयग्रीव उवाच–
नानावृक्षमहोद्याने वर्तते कुम्भसंभव ।
महाकालः सर्वलोकभक्षकः श्यामविग्रहः ॥२

श्यामकंचुकधारी च मदारुणविलोचनः ।
ब्रह्मांडचषके पूर्णं पिबन्विश्वरसायनम् ॥३
महाकालीं घनश्यामामनंगार्द्रामपाङ्गयन् ।
सिंहासने समासीनः कल्पांते कलनात्मके ॥४
ललिताध्यानसम्पन्नो ललितापूजनोत्सुकः ।
वितन्वँल्ललिताभक्तेः स्वायुषो दीर्घदीर्घताम् ।
कालमृत्युप्रमुख्यैश्च किंकरैरपि सेवितः ॥५
महाकालीमहाकालौ ललिताज्ञाप्रवर्त्तकौ ।
विश्वं कलयतः कृत्स्नं प्रथमेऽध्वनि वासिनौ ॥६
कालचक्रं मतङ्गस्य तस्यैवासननां गताम् ।
चतुरावरणोपेतं मध्ये बिन्दुमनोहरम् ॥७

श्री अगस्त्यजी ने कहा—लोहादि सात शालाओं के रक्षक भी होंगे ही। हे प्राज्ञ ! अब आप उनके नामों को भी बतला दीजिए जिससे मेरे मन में संशय का छेदन हो जावे।१। श्री हयग्रीव जी ने कहा—हे कुम्भ सम्भव ! अनेक प्रकार के वृक्षों के महान उद्यान में समस्त लोकों के भक्षण करने वाला जिसका श्याम शरीर है वह महाकाल विद्यमान रहा करता है।२। यह श्याम वर्ण की कञ्चुकी के धारण करने वाला था और मद से उसके लाल नेत्र थे। तथा ब्रह्माण्ड के प्याले में वह विश्व रसायन का पान किया करता है। ।३। घन के समान श्याम वर्ण वाली की और जो काम से आर्द्र थी कटाक्षपात कर रहा था। कलनात्मक कल्प के अन्त में वह सिंहासन पर विराजमान रहा करता है।४। यह सदा ललिता देवी के ध्यान में सम्पन्न रहता है और ललितादेवी के पूजन करने में इसकी उत्सुकता रहती है। जो भी ललितादेवी के भक्त हैं उनकी आयु की दीर्घता का विस्तार अधिक किया करता है। कालमृत्यु जिनमें प्रधान है ऐसे अनेक किङ्करों के द्वारा वह सेवित रहता है।५। महाकाली और महाकाल ये दोनों ही ललितादेवी की आज्ञा के प्रवर्तक हैं ये प्रथम मार्ग में वास करने वाले सम्पूर्ण विश्व को कलित किया करते हैं।६। उसी मतंग का यह काल चक्र आसनता को प्राप्त हुआ था। यह चार आवरणों से उपेत था और मध्य में मनोहर बिन्दु था।७।

त्रिकोणं पञ्चकोणं च षोडशच्छदपंकजम् ।
अष्टारपंकजं चैवं महाकालस्तु मध्यगः ॥८
त्रिकोणे तु महाकाल्या महासंध्या महानिशा ।
एतास्तिस्रो महादेव्यो महाकालस्य शक्तयः ॥६
तत्रैव पञ्चकोणाग्रे प्रत्यूषश्च पितृप्रसूः ।
प्राह्णापराह्णमध्याह्ना: पञ्च कालस्य शक्तयः ॥१०
अथ षोडशपत्राब्जे स्थिता शक्तीर्मुने शृणु ।
दिनमिश्रा तमिस्रा च ज्योत्स्नी चैव तु पक्षिणी ॥११
प्रदोषा च निशीथा च प्रहरा पूर्णिमापि च।
राका चानुमतिश्चैव तथैवामावस्यिका पुनः ॥१२
सिनीवाली कुहूर्भद्रा उपरागा च षोडशी ।
एता षोडशमात्रस्थाः शक्तयः षोडश स्मृताः ॥१३
कला काष्ठा निमेषाश्च क्षणाश्चैव लवास्त्रुटिः ।
मुहूर्ताः कुतपाहोरा शुक्लपक्षस्तथैव च ॥१४

एक त्रिकोण है—फिर पञ्च कोण हैं—फिर सोलह दलों वाला पङ्कज है—फिर आठ आरों काल पङ्कज है—और महाकाल मध्यगामी रहता है ।८। त्रिकोण में महाकाल्या—महासन्ध्या और महा निशा—ये तीन महा देवियाँ जो महाकाल की शक्तियाँ हैं विद्यमान हैं ।६। वहाँ पर ही पञ्चकोण के अग्रभाग से प्रत्यूष-पितृ प्रसू-प्राह्णपराह्ण-मध्याह्न ये पाँच काल की शक्तियाँ हैं ।१०। हे मुने ! अब आप सुनिए इसके पश्चात् सोलह दलों वाले कमल में जो शक्तियाँ स्थित रहा करती हैं । तमिस्रा-दिनमिश्रा-ज्योत्स्नी-पक्षिणी-प्रदोषा-निशीथा-प्रहरा-पूर्णिमा—राका-अनुमति और अमावस्यिका हैं ।११-१२। सिनीवाली—कुहू—भद्रा और सोलहवीं उपरागा है । ये सोलह मात्रस्थ षोडश शक्तियाँ कही गयी है ।१३। कला—काष्ठा—निमेषा—क्षणा—लवा-त्रुटि मुहूर्त तथा कुतपा होरा और शुक्ल पक्ष है ।१४।

कृष्णपक्षायनाश्चैव विषुवा च त्रयोदशी ।
संवत्सरा च परिवत्सरेडावत्सरापि च ॥१५

एता: षोडश पत्राब्जवासिन्य: शक्तय: स्मृता: ।
इद्वत्सरा ततश्चेन्दुवत्सरावत्सरेऽपि च ॥१६

तिथिर्वारांश्च नक्षत्रं योगाश्च करणानि च ।
एतास्तु शक्तयो नागपत्रांभोरुहसंस्थिता: ॥१७

कलि: कल्पा च कलना काली चेति चतुष्टयम् ।
द्वारपालकतां प्राप्तं कालचक्रस्य भास्वत: ॥१८

एता महाकालदेव्यो मदप्रहसिताननाः ।

मदिरापूर्णचषकमशेषं चारुणप्रभम् ।
दधाना: श्यामलाकारा: सर्वा: कालस्य योषित: ॥१९

ललितापूजनध्यानजपस्तोत्रपरायणा: ।
निषेवन्ते महाकालं कालचक्रासनस्थितम् ॥२०

अथ कल्पकवट्यास्तु रक्षक: कुम्भसम्भव ।
वसन्तर्तुर्महातेजा ललिताप्रियकिङ्कर: ॥२१

कृष्णपक्ष—अयन–विषुवा और—त्रयोदशी—सम्वत्सरा परि वत्सरा इडा वत्सरा ।१५। ये सोलह पत्राब्ज वासिनी शक्तियाँ कही गयी हैं । इद्वत्सरा—इन्दुवत्सरा—तिथि—वत्सरा—तिथि-वार—नक्षत्र—योग— करण ये शक्तियाँ नाग पत्राम्बु रुह में संस्थित रहती हैं ।१६-१७। कलि—कल्प—कलना—काली—ये चार भास्वात काल चक्र के द्वार पालकता को प्राप्त होते हैं ।१८। ये महाकाल देवियाँ मद से प्रहसित मुखों वाली हैं । उनका चषक अर्थात् प्याला मदिरा से परिपूर्ण रहा करता है और उसकी प्रभा अरुण होती है । ये सब काल की स्त्रियाँ श्यामल आकार वाली हैं ।१९। ये कालचक्र के आसन पर स्थित होती हुई श्री ललितादेवी के ध्यान—पूजन जप और स्तोत्रों के पाठ में ही परायण रहती हैं और महाकाल की सेवा किया करती हैं ।२०। हे कुम्भसम्भव ! कल्पक वटी का रक्षक वसन्त ऋतु होता है जो महान् तेज से युक्त ललितादेवी का परम प्रिय किङ्कर है ।२१।

पुष्पसिंहासनासीन: पुष्पमाध्वीमदारुण: ।
पुष्पायुध: पुष्पभूष: पुष्पच्छत्रेण शोभित: ॥२२

मधुश्रीर्माधवश्रीश्च द्वे देव्यौ तस्य दीव्यत: ।
प्रसूनमदिरामत्तो प्रसून शरलालसे ॥२३

सन्तानवाटिकापालो ग्रीष्मर्तुस्तीक्ष्णलोचनः ।
ललिताकिङ्करो नित्यं तस्यास्त्वाज्ञाप्रवर्तकः ॥२४
शुक्रश्रीश्च शुचिश्रीश्च तस्य भार्ये उभे स्मृते ।
हरिचन्दनवाटी तु मुने वर्षर्तुना स्थिता ॥२५
स वर्षर्तुर्महातेजा विद्युत्पिङ्गललोचनः ।
वज्राट्टहासमुखरो मत्तजीमूतवाहनः ॥२६
जीमूतकवचच्छन्नो मणिकार्मुकधारकः ।
ललितापूजनध्यानजपस्तोत्रपरायणः ॥२७
वर्तते विन्ध्यमथन त्रैलोक्याह्लाददायकः ।
नभःश्रीश्च नभस्यश्रीः स्वरस्वारस्वमालिनी ॥२८

यह वसन्त ऋतु पुष्पों के आसन पर विराजमान और पुष्पों की माध्वी के मद से अरुण वर्ण वाला है । इसके आयुध भी कुसुमों के ही हैं तथा पुष्प ही भूषणों वाला और पुष्पों के छत की भूषा वाला है ।२२। मधु श्री और माधव श्री—ये दो देवियाँ उसकी दीप्त हैं । ये दोनों ही पुष्पों की मदिरा से मत्त हैं और प्रसून शर (कामदेव) की लालसा वाली हैं ।२३। सन्तान वाटिका का पालक ग्रीष्म ऋतु है जिसके लोचन बहुत तीक्ष्ण हैं । यह भी श्रीललिता देवी का सेवक नित्य ही रहता है तथा उसकी आज्ञा का प्रवर्तक है ।२४। शुक्र श्री और शुचि श्री—ये दो उसकी भार्याएँ हैं । हे मुने ! वर्षा ऋतु हरिचन्दन वाटिका में स्थित रहा करती है ।२५। वह वर्षा ऋतु महान् तेज से युक्त हैं और विद्युत् के सदृश उसके पिङ्गल लोचन हैं । यह वज्रपात के समान अट्टहास से शब्दायमान हैं तथा मेघ ही इसका वाहन होता है ।२६। मेघों के कवच से यह ढका हुआ रहता है और मणियों के कार्मुक वाला है । यह भी ललिता देवी के अर्चन ध्यान और स्तोत्र पाठ में तत्पर रहा करता है ।२७। यह विन्ध्य मथन त्रैलोक्य के आह्लाद का देने वाला है । नभः श्री—नभस्य श्री स्वर स्वार स्वरमालिनी उसकी शक्तियाँ हैं ।२८।

अम्बा दुला निरलिश्चाभ्रयन्ती मेघयन्त्रिका ।
वर्षयन्ती चिबुणिका वारिधारा च शक्तयः ॥२९

वर्षर्त्यो द्वादश प्रोक्ता मदारुणविलोचना: ।
ताभि: समं स वर्षर्तु: शक्तिभि: परमेश्वरीम् ॥३०

सदैव संजपन्नास्ते निजोत्थै: पुष्पमंडलै: ।
ललिताभक्तदेशांस्तु भूषयन्स्वस्य सम्पदा ॥३१

तद्वैरिणां तु वसुधामनावृष्ट्या निपीडयन् ।
वर्तते सततं देवकिङ्करो जलदागम: ॥३२

मन्दारवाटिकायां तु सदा शरदृतुर्वसन् ।
तां कक्षां रक्षति श्रीमाँल्लोकचित्तप्रसादन: ॥३३

इषश्रीश्च तथोर्जश्रीस्तस्यर्तो: प्राणनायिके ।
ताभ्यां संजहृतुस्तोयं निजोत्थै: पुष्पमंडलै: ।
अभ्यर्चयति साम्राज्ञीं श्रीकामेश्वरयोषितम् ॥३४

हेमन्तर्तुर्महातेजा हिमशीतलविग्रह: ।
सदा प्रसन्नवदनो ललिताप्रियकिङ्कर: ॥३५

अम्बा—दुला—निरलि—अभ्रयन्ती—मेघयन्त्रिका—वर्षयन्ती—चिबुणिका और वारिधारा—वर्षन्ती ये बारह जो महान नेत्रों वाली हैं इसकी शक्तियाँ हैं ।२९। उस ऋतु की इष श्री और ऊर्ज श्री दो प्राण नायिकाएँ हैं। अपने उठाये हुए पुष्प मण्डलों से उन दोनों के द्वारा जल का भली-भाँति हरण किया जाया करता था। श्री कामेश्वर ही योषित का जो महा साम्रस्तो थी ये अभ्यर्चन करती हैं। उन सबके साथ जो वर्षा ऋतु की शक्तियाँ हैं वे श्रम से उत्थित पुष्पमण्डलों से सदा ही सम्पन्न हैं। जो ललिता के भक्तों के देश हैं उन पर कृपा से सम्पदा के द्वारा भूषित किया करती हैं ।३०-३१। उनके शत्रुओं की वसुधा को अनावृष्टि से पीड़ित करता हुआ देवी का किङ्कर जलदागम वर्तमान रहता है ।३२। मन्दारों की वाटिका में सदा ही शरद ऋतु निवास किया करता है। वह श्रीमान् लोगों के चित्त को प्रसन्न करने वाला उस कक्षा की रक्षा करता है ।३२-३३। हेमन्त ऋतु हिमसे शीतल विग्रह वाला होता है। यह सदा ही प्रसन्न मुख वाला है और ललिता देवी का बहुत ही प्रिय किंकर है ।३४-३५।

निजोत्थैः पुष्पसंभारैरर्चयन्परमेश्वरीम् ।
पारिजातस्य वाटीं तु रक्षति ज्वलनार्दनः ॥३६
सहःश्रीश्च सहस्यश्रीस्तस्य द्वे योषिते शुभे ।
कदम्बवनवाट्यास्तु रक्षकः शिशिराकृतिः ॥३७
शिशिरर्तुर्मुनिश्रेष्ठ वर्तते कुम्भसम्भव ।
सा कक्ष्या तेन सर्वत्र शिशिरीकृतभूतला ॥३८
तद्वासिनी ततः श्यामा देवता शिशिराकृतिः ।
तपःश्रीश्च तपस्यश्रीस्तस्य द्वे योषिदुत्तमे ।
ताभ्यां सहार्चयत्यंबां ललितां विश्वपावनीम् ॥३९
अगस्त्य उवाच–
गन्धर्ववदन श्रीमन्नानावृक्षादिसप्तकैः ।
प्रथमोद्यानपालस्तु महाकालो मया श्रितः ॥४०
चतुरावरणं चक्रं त्वया तस्य प्रकीर्तितम् ।
षण्णामृतूनामन्येषां कल्पकोद्यानवाटिषु ।
पालकत्वं श्रुतं त्वत्तश्चक्रदेव्यस्तु न श्रुताः ॥४१
अत एव वसन्तादिचक्रावरणदेवताः ।
क्रमेण ब्रूहि भगवन्सर्वज्ञोऽसि यतो महान् ॥४२

अपने में समुत्पन्न कुसुमों के संभारों से यह परमेश्वरी की अर्चना किया करता है। ज्वलनार्दन यह पारिजात की वाटिका की सर्वदा रक्षा किया करता है ।३६। सहः श्री और सहस्य श्री—ये दो परम शुभ उसकी पत्नियाँ हैं। उन अपनी उत्तम नारियों को साथ में लेकर यह विश्व पावनी अम्बा ललिता का समर्चन किया करता है। कदम्ब वन की वाटिका की शिशिराकृति रक्षा करता था ।३७। हे मुनिश्रेष्ठ ! हे कुम्भ सम्भव ! यह शिशिर ऋतु है। वह सभी जगह कक्ष्या उसी से शीतल भूतल वाली है ।३८। उसमें निवास करने वाली शिशिराकृति श्यामा देवता है। तपः श्री और तपस्य श्री ये दो उसकी उत्तम स्त्रियाँ हैं। उन दोनों के ही साथ वह विश्व-पावती ललिता देवी का अर्चन करता है ।३९। अगस्त्यजी ने कहा—हे

गन्धर्व वदन ! श्री सम्पन्न अनेक वृक्षों के सप्तक से प्रथमोद्यान का पालक महाकाल मयाश्रित है। चतुरवारण चक्र आपने उसका कीर्त्तित किया है। अन्यों का छै ऋतुएँ कल्पोद्यान वाटिकाओं में पाला है—यह भी सुना है और आप से चक्र की देवियाँ नही सुनी हैं।४०-४१। अतएव वसन्त आदि चक्र के आवरण देवता आप क्रम से बताइए। क्योंकि आप तो महान सर्वज्ञ महापुरुष हैं।४२।

हयग्रीव उवाच—

आकर्णय मुनिश्रेष्ठ तत्तच्चक्रस्थदेवता ॥४३

कालचक्रं पुरा प्रोक्तं वासन्तं चक्रमुच्यते।

त्रिकोणं पञ्चकोणं च नागच्छदसरोरुहम्।

षोडशारं सरोजं च दशारद्वितयं पुनः ॥४४

चतुरस्रं च विज्ञेयं सप्तावरणसंयुतम्।

तन्मध्ये बिन्दुचक्रस्थो वसन्ततुर्महाद्युतिः ॥४५

तदेकद्वयसंलग्ने मधुश्रीमाधवश्रियो।

उभाभ्यां निजहस्ताभ्यामुभयोस्तनमेककम् ॥४६

निपीडयन्स्वहस्तस्य युगलेन ससौरभम्।

सपुष्पमदिरापूर्णचषकं पिशितं वहन् ॥४७

एवमेव तु सर्वर्तुध्यानं विध्यनिषूदन।

वर्षर्तोस्तु पुनर्ध्याने शक्तिद्वितयमादिमम्।

अंकस्थितं तु विज्ञेयं शक्तयोऽन्याः समीपगाः ॥४८

अथ वासन्तचक्रस्थदेवीः शृणु वदाम्यम्।

मधुशुक्लप्रथमिका मधुशुक्लद्वितीयिका ॥४९

श्री हयग्रीवजी ने कहा—हे मुनिश्रेष्ठ ! आप उन-उन चक्रों में स्थित देवताओं को श्रवण कीजिए।४३। पहिले हमने कालचक्र बता दिया है। अब वासन्त बताया जाता है। त्रिकोण पञ्चकोण नागच्छद सरोरुह है। सोलह आर हैं ऐसा सरोज है फिर चौबीस हैं।४४। सात आवरणों से युक्त चतुरस्र जान लेना चाहिए। उसके मध्य में बिन्दुचक्र में स्थित महान् द्युति वाला

वसन्त ऋतु है।४५। उसके एक के साथ दो प्रियाएँ संलग्न रहती हैं जिनके नाम मधु श्री और माधव श्री हैं। दोनों के स्तनों को अपने एक-एक हाथ से ग्रहण किये हुए हैं।४६। उन उरोजों को अपने दोनों हाथों से निपीड़ित करता है और सौरभ से समन्वित है। वह सौरभ वाली मदिरा पुष्पों से संयुत है उसका चषक भरा हुआ है और पिशित भी है इनका वहन कर रहा है।४७। विन्ध्य निषूदन ! इस रीति से सब ऋतुओं का ध्यान करे। वर्षा ऋतु के ध्यान ये फिर दो शक्तियों आदि का ध्यान करे। जो उसके अङ्क में ही स्थित हैं तथा अन्य शक्तियाँ का उसके समीप में स्थित हैं।४८। उसके अनन्तर अब उस वासन्त चक्र में जो देवियाँ वर्तमान रहती हैं उनको भी मैं आपको अभी बतलाता हूँ—आप उनका श्रवण कीजिए। मधु शुक्ला पहली है और मधु शुक्ल द्वितीय हैं।४९।

मधुशुक्लतृतीया च मधुशुक्लचतुर्थिका।
मधुशुक्ला पञ्चमी च मधुशुक्ला च षष्ठिका ॥५०
मधुशुक्ला सप्तमी च मधुशुक्लाष्टमी पुनः।
नवमी मधुशुक्ला च दशमी मधुशुक्लिका ॥५१
मधुशुक्लैकादशी च द्वादशी मधुशुक्लतः।
मधुशुक्लत्रयोदश्यां मधुशुक्ला चतुर्दशी ॥५२
मधुशुक्ला पौणमासी प्रथमा मधुकृष्णिका।
मधुकृष्णा द्वितीया च तृतीया मधुकृष्णिका ॥५३
चतुर्थी मधुकृष्णा च मधुकृष्णा च पञ्चमी।
षष्ठी तु मधुकृष्णा स्यात्सप्तमी मधुकृष्णतः ॥५४
मधुकृष्णाष्टमी चैव नवमी मधुकृष्णतः।
दशमी मधुकृष्णा च विन्ध्यदर्पनिषूदन ॥५५
मधुकृष्णैकादशी तु द्वादशी मधुकृष्णतः।
मधुकृष्णत्रयोदश्या मधुकृष्णचतुर्दशी ॥५६

मधुशुक्ल तृतीया है और मधुशुक्ल चतुर्थिका है। मधु शुक्ला पञ्चमी और मधुशुक्ल षष्ठिका है।५०। मधुशुक्ला सप्तमी और फिर मधुशुक्ला अष्टमी है 'नवमी मधुशुक्ला है।५१। मधुशुक्ला एकादशी और

द्वादशी मधुशुक्ल है मधु शुक्ल त्रयोदशीमें तथा मधुशुक्ला चतुर्दशी है ।५२। मधुशुक्ला पौर्णमासी और मधुकृष्णा प्रथमा है । मधुकृष्णा द्वितीया और तृतीया मधुकृष्णिका है ।५३। चतुर्थी मधुकृष्णा और मधुकृष्णा पञ्चमी। षष्ठी मधुकृष्णा और सप्तमी मधु कृष्ण से है ।५४। मधुकृष्णा अष्टमी मधुकृष्ण से नवमी है । हे विन्ध्यदर्प निषूदन ! दशमी मधुकृष्णा है ।५५। मधुकृष्णा एकादशी है तथा द्वादशी मधु कृष्ण से है । मधु कृष्ण त्रयोदशी से है और मधु कृष्ण चतुर्दशी है ।५६।

मध्वमा चेति विज्ञेयास्त्रिंशदेतास्तु शक्तयः ।
एवमेव प्रकारेण माधवाख्यो परिस्थितिः ॥५७
शुक्लप्रतिपदाद्यास्तु शक्तयस्त्रिंशदन्यकाः ।
मिलित्वा षष्टिसंख्यास्तु ख्याता वासन्तशक्तयः ॥५८
स्वैःस्वैर्मंत्रैस्तत्र चक्रे पूजनीया विधानतः ।
वासन्तचक्रराजस्य सप्तावरणभूमयः ॥५९
षष्टिः स्युर्देवतास्तासु षष्टिभूमिषु संस्थिताः ।
विभज्य चार्चनीयाः स्युस्तत्तन्मंत्रैस्तु साधकैः ॥६०
तथा वासन्तचक्रं स्यात्तथैवान्येषु च त्रिषु ।
देवतास्तु परं भिन्नाः शुक्रशुच्यादिभेदतः ॥६१
शक्तयः षष्टिसंख्याता ग्रीष्मचक्रे महोदयाः ।
एवं वर्षादिके चक्रे भेदान्नभनभस्यजान् ॥६२
षष्टिषष्टिसु शक्तीना चक्रेचक्रे प्रतिष्ठिताः ।
ग्रन्थविस्तारभीत्या तु तत्संख्यानाद्विरम्यते ॥६३

मधु अमा है--ये तीस शक्तियाँ हैं। इसी प्रकार से माधवाख्य के ऊपर में स्थित हैं ।५७। शुक्ल प्रतिपदा आदिक अन्य तीस शक्तियाँ हैं। ये सब मिलकर वासन्त शक्तियाँ साठ विख्यात है ।५८। अपने-अपने मन्त्रों के द्वारा वहाँ चक्र में वासन्त चक्रराज में वासन्त चक्रराज की सात आवरण भूमियाँ विधि से पूजन करने के योग्य हैं ।५९। साठ भूमियों में ये साठ देवता संस्थित हैं। साधकों के द्वारा विभाग करके उन-उन मन्त्रों से पूजन करने के योग्य हैं ।६०। उसी भाँति से वासन्त चक्र तीन अन्यों में है और

शुक्र शुच्यादि के भेद से देवता भिन्न हैं ।६१। शक्तियाँ संख्या में साठ हैं जो महोदया ग्रीष्म चक्र में हैं। इसी तरह से वर्षादिक चक्र में भेद से नभन-भस्यज हैं ।६२। ये साठ-साठ शक्तियाँ प्रतिष्ठित हैं। ग्रन्थ के विस्तार से भय से उनकी संख्या करने से विराम लिया जा रहा है ।६३।

आतेव्याः शक्तयस्त्वेता ललिताभक्त सौख्यदाः ।
ललितापूजनध्यानजपस्तोत्रपरायणाः ॥६४
कल्पादिवाटिकाचक्रे सञ्चरंत्यो मदालसाः ।
स्वस्वपुष्पोत्थमधुभिस्तर्पयंत्यो महेश्वरीम् ॥६५
मिलित्वा चैव संख्याताः षट्युत्तरशतत्रयम् ।
एवं सप्तसु शालेषु पालिकाश्चक्रदेवताः ॥६६
नामकीर्तनपूर्वं तु प्रोक्तस्तुभ्यं प्रपृच्छते ।
अन्येषामपि शालानामुपादानं तु पूरकम् ।
विस्तारं तत्र शक्ति च कथयाम्यवधारय ॥६७

ये शक्तियाँ ललिता देवी के सौख्य के देने वाली हैं इनका आहरण करना चाहिए। जो भी ललिता के पूजन ध्यान जप और स्तोत्र में परायण हैं ।६४। कल्पादि वाटिका के चक्र में मदालसा ये सञ्चरण किया करती हैं। अपने-अपने पुष्पों के मधु से ये महेश्वरी का तर्पण किया करती हैं ।६५। सब मिलकर तीन सौ साठ होती हैं। इसी तरह से सात शालों में चक्र देवता पालिका हैं ।६६। आपने पूछा है तो आपके सामने नामों का कीर्तन कर दिया है। अन्य शालाओं का उपादान पूरक है। उनका विस्तार और शक्ति कहता हूँ, आप अवधारण कीजिए ।६७।

॥ पुष्पराग प्रकारादि मुक्ताकार वर्णन ॥

हयग्रीव उवाच–

कथितं सप्तशालानां लक्षणं शिल्पिभिः कृतम् ।
अथ रत्नमयाः शालाः प्रकीर्त्यंतेऽवधारय ॥१
सुवर्णमयशालस्य पुष्परागमयस्य च ।
सप्तयोजनमात्रं स्यान्मध्येन्तरमुदाहृतम् ॥२

तत्र सिद्धाः सिद्धनार्यः खेलंति मदविह्वलाः ।
रसै रसायनैश्चापि खड्गैः पादांजनैरपि ।।३
ललितायां भक्तियुक्तास्तर्पयन्तो महाजनान् ।
वसन्ति विविधास्तत्र पिबन्ति मदिरारसान् ।।४
पुष्परागादिशालानां पूर्ववद्द्वारक्लृप्तयः ।
पुष्परागादिशालेषु कवाटार्गलगोपुरम् ।
पुष्परागादिजं ज्ञेयमुच्चेन्द्वादित्यभास्वरम् ।।५
हेमप्राकारचक्रस्य पुष्परागमयस्य च ।
अन्तरे या स्थली सापि पुष्परागमयी स्मृता ।।६
वक्ष्यमाणमहाशालाकक्षासु निखिलास्वपि ।
तद्वर्णाः पक्षिणस्तत्र तद्वर्णानि सरांसि च ।।७

श्री हयग्रीवजी ने कहा—शिल्पियों के द्वारा निर्मित सप्त शालाओं का लक्षण बता दिया गया है। इसके अनन्तर रत्नों से परिपूर्ण शालायें अब कीर्त्तित की जाती है उनका आप अवधारण कीजिए।१। सुवर्ण से परिपूर्ण शाल और पुष्प रोगों से परिपूर्ण शाल का जो मध्य में अन्तर है वह सात योजन मात्र कहा गया है।२। वहाँ पर सिद्ध और मद से विह्वल सिद्धों की नारियाँ खेला करती हैं। उनकी क्रीड़ा के साधन रस-रसायन-खड्ग और पादाञ्जन होते हैं।३। ये ललिता देवी में भक्ति से युक्त हैं और महाजनों का तर्पण किया करती हैं। वहाँ पर अनेक प्रकार के वास करते हैं और मदिरारस का पान किया करते हैं।३। पुष्पराज आदि की जो शालाएँ हैं उनके द्वारों की रचनाएँ पूर्व की ही भाँति हैं। पुष्प राग प्रभृति की शालों में कपाट अर्गला और गोपुर हैं। यह सभी पुष्प राग आदि से समुत्पन्न है तथा इन्दु और सूर्य के समान ही परम भास्वर हैं।५। हेम के प्राकार वाले चक्र का और पुष्परागों से परिपूर्ण का जो अन्तर है उसमें जो स्थल है वह भी पुष्परागों से परिपूर्ण है ऐसा ही कहा गया है।६। आगे कहे जाने वाली महा शालाओं की कक्षाओं में समस्तों में भी उनके ही वर्ण वाले सब पक्षी हैं और उनके ही वर्णों वाले सब सरोवर हैं।७।

तद्वर्णसलिला नद्यस्तद्वर्णाश्च मणिद्रुमाः ।

सिद्धजातिषु ये देवीमुपास्य विविधैः क्रमैः ।
त्यक्तवन्तो वपुः पूर्वं ते सिद्धास्तत्र सांगनाः ॥८
ललितामन्त्रजप्तारो ललिताक्रमतत्पराः ।
ते सर्वे ललितादेव्या नामकीर्तनकारिणः ॥९
पुष्परागमहाशालांतरे मारुतयोजने ।
पद्मरागमयः शालश्चतुरस्रः समंततः ॥१०
स्थली च पद्मरागाढ्या गोपुराद्यं च तन्मयम् ।
तत्र चारणदेशस्थाः पूर्वदेहविनाशतः ।
सिद्धिं प्राप्ता महाराज्ञीचरणाम्भोजसेवकाः ॥११
चारणीनां स्त्रियश्चापि चार्वंग्यो मदलालसाः ।
गायन्ति ललितादेव्या गीतिबन्धान्मुहुर्मुहुः ॥१२
तत्रैव कल्पवृक्षाणां मध्यस्थवेदिकास्थिताः ।
भर्तृभिः सहचारिण्यः पिबन्ति मधुरं मधु ॥१३
पद्मरागमहाशालान्तरे मरुतयोजने ।
गोमेदकमहाशालः पूर्वशालासमाकृतिः ।
अतितुङ्गो हीरशालस्तयोर्मध्ये च हीरभूः ॥१४

वहाँ की समस्त नदियाँ भी उसी के वर्ण वाली हैं तथा मणियों के वृक्ष भी उसी वर्णों वाले हैं। अनेक प्रकार के कर्मों से जो सिद्ध जातियों में देवी की उपासना करने वाले थे पूर्व शरीर को त्याग कर अङ्गनाओं के साथ ही थे।८। वे सभी ललितादेवी के मन्त्र का जाप करने वाले और ललिता के ही क्रम में परायण थे। वे सभी ललितादेवी के नाम का कीर्त्तन करने वाले ही थे।९। पुष्पराग के महाशाल के अन्तर में मारुत योजन में पद्मरागमय एक शाल है जो सभी ओर से चौकोर है।१०। वहाँ की जो स्थली है वह भी पद्मरागों से संयुत है और गोपुर आदि भी उसी पद्मराग से परिपूर्ण है। वहाँ पर चारण देश में संस्थित होने वाले अपने देह के विनाश हो जाने से सिद्धि को प्राप्त हो गये हैं क्योंकि वे सभी महाराज्ञी के चरण कमलों के सेवक थे।११। चारणों की स्त्रियाँ भी परम सुन्दर अङ्गों

वाली हैं और मद से अलस । वे सभी ललितादेवी के गीत बन्धों को बार-बार गाया करती हैं ।१२। वहीं पर कल्प वृक्षों के मध्य में जो वेदिकाए थीं उनमें संस्थित होकर अपने भर्त्ताओं के साथ सहचरण करती हुए मधुर मधु का पान किया करती हैं ।१३। पद्मरागों के महाशाल के मध्य में मारुत योजन में गोमेद का महाशाल है और उसका आकार प्रकार भी के पूर्व के ही समान है । अत्यन्त ऊँचा हीरों का पाल है और उन दोनों के मध्य में ही रकों की ही भूमि भी है ।१४।

तत्र देवीं समभ्यर्च्य पूर्वजन्मनि कुम्भज ।
वसन्त्यप्सरसां वृन्दैः साकं गन्धर्वपुङ्गवाः ॥१५
महाराज्ञीगुणगणान्गायन्तो वल्लकीस्वनैः ।
कामभोगैकरसिकाः कामसन्निभविग्रहाः ।
सुकुमारप्रकृतयः श्रीदेवीभक्तिशालिनः ॥१६
गोमेदकस्य शालस्तु पूर्वशालसमाकृतिः ।
तदन्तरे योगिनीनां भैरवाणां च कोटयः ।
कालसंकर्षणीमंबां सेवन्ते तत्र भक्तितः ॥१७
गोमेदकमहाशालान्तरे मारुतयोजने ।
उर्वशी मेनका चैव रम्भा चालंबुषा तथा ॥१८
मन्जुघोषा सुकेशी च पूर्वचित्तिघृताचिका ।
कृतस्तला च विश्वाची पुञ्जिकस्थलया सह ॥१९
तिलोत्तमेति देवानां वेश्या एतादृशोऽपराः ।
गन्धर्वैः सह नव्यानि कल्पवृक्षमधूनि च ॥२०
पिबन्त्यो ललितादेवीं ध्यायंत्यश्च मुहुर्मुहुः ।
स्वसौभाग्यविवृद्ध्यर्थं गुणयंत्यश्च तन्मनुम् ॥२१

हे कुम्भज ! वहाँ पर देवी की भली भाँति अर्चना करके परम श्रेष्ठ गन्धर्वों का समूह अप्सराओं के समुदायों के ही साथ में निवास किया करते हैं ।१५। वे सब वल्लकी वाद्य के शब्दों से महाराज्ञी के गुणगणों का गायन किया करते हैं । ये काम भोग में बड़े रसिक हैं तथा कामदेव के ही समान

शरीरों वाले परमाधिक सुन्दर हैं। ये श्री देवी की भक्ति करने वाले हैं और इनकी प्रकृतियां भी परम सुकुमार होती हैं।१६। गोमेदों का जो शाल है वह भी पहिले शाल के ही सदृश आकार वाला है। उसके मध्य में करोड़ों योगिनियां और भैरवों की श्रेणियां विद्यमान हैं वहां पर वे भक्तिभाव से काल संकर्षिणी अम्बा की सेवा किया करते हैं।१७। गोमेदक शाल के मध्य में बहुत सी प्रमुख परम सुन्दरी अप्सराएं रहा करती हैं जो कि मारुत योजन में है। उर्वशी—मेनका—रम्भा—अलम्बुषा—मन्जुघोषा—सुकेशी—पूर्वचित्ति—घृताचिका—विश्वाची और पुञ्जिका स्थला—ये सभी वहीं पर रहती हैं।१८-१६। देवों की वेश्या तिलोत्तमा भी है और ऐसी अनेक दूसरी भी हैं। वे सब गन्धर्वों के साथ में रहकर कल्प वृक्षों के मधुओं का पान किया करती हैं।२०। तथा ललिता देवी का ध्यान बार-बार करती हैं। सौभाग्य की वृद्धि के लिए ही उस देवी के मन्त्र का गुणन किया करती हैं।२१।

चतुर्दशसु चोत्पन्ना स्थानेष्वप्सरसोऽखिलाः।
तत्रैव देवीमर्चन्त्यो वसन्ति मुदिताशयाः ॥२२

अगस्त्य उवाच—

चतुर्दशापि जन्मानि तासामप्सरसां विभो।
कीर्तय त्वं महाप्राज्ञ सर्वविद्यामहानिधे ॥२३

हयग्रीव उवाच—

ब्राह्मणो हृदयं कामो मृत्युरुर्वी च मारुतः।
तपनस्य कराश्चन्द्रकरो वेदाश्च पावकः ॥२४
सौदामिनी च पीयूषं दक्षकन्या जलं तथा।
जन्मनः कारणान्येतान्यामनंति मनीषिणः ॥२५
गीर्वाणगण्यनारीणां स्फुरत्सौभाग्यसंपदाम्।
एताः समस्ता गंधर्वैः सार्धमर्चंति चक्रिणीम् ॥२६
किन्नराः सह नारीभिस्तथा किंपुरुषा मुने।
स्त्रीभिः सह मदोन्मत्ता हीरकस्थलमाश्रिताः ॥२७

महाराज्ञीमन्त्रजापैर्विधूताशेषकल्मषाः ।
नृत्यंतश्चैव गायंतो वर्तंते कुम्भसम्भव ॥२८

चौदह स्थानों में समस्त अप्सराएं समुत्पन्न हुई हैं। वहीं पर परमानन्द से सुसम्पन्न होकर देवी का अर्चन करती हुई निवास किया करती हैं ।२२। अगस्त्यजी ने कहा—हे विभो ! आप तो समस्त विद्याओं के निधि हैं। हे महाप्राज्ञ ! बन अप्सराओं के चौदहों जन्मों का आप वर्णन कीजिए ।२३। श्री हयग्रीव ने कहा—ब्राह्मण—हृदय—काम—मृत्यु—उर्वी—मारुत—तपन के कर—चन्द्रकर—वेद—पावक—सौदामिनी—पीयूष—दक्ष कन्या—जल—ये ही मनीषी गण जन्म के कारण माना करते हैं ।२४-२५। स्फुरित सौभाग्य की सम्पदा वाली देवगणों में मुख्यों की नारियों की ये समस्त गन्धर्वों के ही साथ में चक्रिणी की अर्चना किया करती हैं ।२६। हे मुने ! अपनी नारियों के साथ किन्नर तथा किम्पुरुष अपनी स्त्रियों के सहित मद से उन्मत्त होते हुए उस हीरों के स्थल में आश्रम लिए हुए हैं ।२७। हे कुम्भ सम्भव ! महाराज्ञी के मन्त्र के जापों से समस्त कल्मषों को दूर कर देने वाले नृत्य करते हुए और गान करते हुए विद्यमान रहा करते हैं ।२८।

तत्रैव हीरकक्षोण्यां वज्रा नाम नदी मुने ।
वज्राकारैर्निबिडिता भासमाना तटद्रुमैः ॥२९
वज्ररत्नैकसिकता वज्रद्रवमयोदका ।
सदा वहति सा सिंधुः परितस्तत्र पावनी ॥३०
ललितापरमेशान्यां भक्ता ये मानवोत्तमाः ।
ते तस्या उदकं पीत्वा वज्ररूपकलेवराः ।
दीर्घायुषश्च नीरोगा भवन्ति कलशोद्भव ॥३१
भंडासुरेण गलिते मुक्ते वज्रे शतक्रतुः ।
तस्यास्तीरे तपस्तेपे वज्रेशीं प्रति भक्तिमान् ॥३२
तज्जवलादुदिता देवी वज्रं दत्त्वा बलद्विषे ।
पुनरंतर्दधे सोऽपि कृतार्थः स्वर्गमेयिवान् ॥३३
अथ वज्राख्यशालस्यांतरे मारुतयोजने ।
वैदूर्यशाल उत्तुंगः पूर्ववद्गोपुरान्वितः ।

स्थाली च तत्र वैदूर्यनिर्मिता भास्वराकृतिः ।।३४
पातालवासिनो ये ये श्रीदेव्यर्चनसाधकाः ।
ते सिद्धमूर्तयस्तत्र वसन्ति सुखमेदुराः ।।३५

हे मुने ! वहीं पर हीरों की भूमि में एक वज्र नाम वाली नदी हैं। उसके तट पर जो द्रुम हैं वे वज्राकार हैं। उनसे वह निविड़ित है ऐसी ही भासमान होती है।२६। वह नदी परम पावनी सदा ही बहती रहती है और सभी ओर उसका बहाव रहता है। उसका जल ही ऐसा प्रतीत होता है कि वज्रों से परिपूर्ण है तथा उसकी सिकत्ता भी वज्र (हीरा) रत्नों का ही मुख्य भाग है।३०। परमेशानी ललिता के जो मानव परम भक्त हैं वे ही उस नदी के जल का पान करके वज्र स्वरूप कलेवरों वाले हो जाया करते हैं। वे दीर्घ आयु वाले नीरोग हे कलशोद्भव ! हुआ करते हैं।३१। भण्डासुर के द्वारा गलित और वज्र के मुक्त होने पर इन्द्रदेव ने बज्रेशी के चरणों में भक्ति भाव से उस नदी के तट पर तपश्चर्या की थी।३२। उसके जल से समुदित हुई देवी ने इनके लिए वज्र दिया था। फिर वह अन्तर्हित हो गयी थीं और वह इन्द्र भी कृतार्थ होकर स्वर्ग को चला गया था।३३। इसके अनन्तर वज्राख्य शाल के अन्तर में मारुत योजन में ठीक बहुत ऊँचा वैदर्य शाल है और उसका भी गोपुर तथा द्वार पूर्व के ही समान है। वहाँ की स्थली भी वैदूर्यों से निर्मित है और उसकी आकृति परम भास्वर है।३४। जो भी पाताल के निवासी श्री देवी के साधक प्राणी हैं वे ही सिद्ध मूर्ति वाले सुख से मेदुर होकर वहाँ पर निवास किया करते हैं।३५।

शेषकर्कोटकमहापद्मवासुकिशंखकाः ।
तक्षकःशङ्खचूडश्च महादन्तो महाफणः ।।३६
इत्येवमादयस्तत्र नागानागस्त्रियोऽपि च ।
बलींद्रप्रमुखानां च दैत्यानां धर्मवर्तिनाम् ।
गणस्तत्र तथा नागैः सार्धं वसति सांगनाः ।।३७
ललितामन्त्रजप्तारो ललिताशास्त्रदीक्षिताः ।
ललितापूजका नित्यं वसन्त्यसुरभोगिनः ।।३८
तत्र वैदूर्यकक्षायां नद्यः शिशिरपायसः ।
सरांसि विमलांभांसि सारसालंकृतानि च ।।३९

भवनानि तु दिव्यानि वैदूर्यमणिमंति च ।
तेषु क्रीडंति ते नागा असुराश्च सहांगनाः ॥४०
वैदूर्याख्यमहाशालान्तरे मारुतयोजने ।
इन्द्रनीपमयः शालश्चक्रवाल इवापरः ॥४१
तन्मध्यकक्षाभूमिश्च नीलरत्नमयी मुने ।
तत्र नद्यश्च मधुराः सरांसि शिशिराणि च ।
नानाविधानि भोग्यानि वस्तूनि सरसान्यपि ॥४२

शेष—कर्कोटक—महापद्म—वासुकि—शंखक—तक्षक—शंखचूड़—महादन्त—महाफण—इत्येवमादिक नाग वहाँ पर तथा उन नागों की स्त्रियाँ भी हैं और बलोन्द्र प्रभृती धर्मवर्ती दैत्यों का गण भी अपनी अङ्गनाओं के साथ वहाँ पर नागों के सहित वास किया करते हैं ।३६-३७। ये सभी ललिता देवी के शास्त्र में दीक्षित हैं और ललिता देवी की पूजा करने वाले वहाँ पर निवास किया करते हैं ।३८। वहाँ पर वैदूर्य मणियों की कक्षा में नदियाँ भी शिशिर जलों वाली हैं । सरोवर भी विमल जलों वाले तथा सारस पक्षियों से विभूषित हैं ।३९। वहाँ पर जो भवन हैं वे परम दिव्य हैं तथा वैदूर्यमणियों के ही द्वारा निर्मित हैं । उन भवनों में नागों के समुदाय और अपनी अङ्गनाओं के साथ लेकर असुरगण क्रीड़ा किया करते हैं ।४०। वैदूर्याख्य महाशाला के अन्तर में मारुत योजन में एक इन्द्रनील मणियों से परिपूर्ण-दूसरे चक्रवाल के ही तुल्य शाल है ।४१। उसके मध्य की कक्षा की भूमि भी हे मुने ! नील रत्नमयी है और वहाँ पर नदियाँ मधुर हैं और सरोवर भी शिशिर हैं । वहाँ पर अनेक प्रकार की परम दिव्य एवं सरस भोगने के योग्य वस्तुएँ भी हैं ।४२।

ये भूलोकगता मर्त्या ललितामन्त्रसाधकाः ।
ते देहांते शक्रनीलकक्ष्यां प्राप्य वसंति वै ॥४३
तत्र दिव्यानि वस्तूनि भुञ्जाना वनितासखाः ।
पिबन्तो मधुरं मद्यं नृत्यतो भक्तिनिर्भराः ॥४४
सरस्सु तेषु सिंधूनां कुलेषु कलशोद्भव ।
लतागृहेषु रम्येषु मन्दिरेषु महर्द्धिषु ॥४५

सदा जपंतः श्रीदेवीं पठन्तश्चापि तद्गुणान् ।
निवसंति महाभागा नारीभिः परिवेष्टिताः ॥४६

कर्मक्षये पुनर्यांति भूलोके मानुषीं तनुम् ।
पूर्ववासनया युक्ताः पुनरर्चंति चक्रिणीम् ।
पुनर्यांति श्रीनगरे नीलमहास्थलीम् ॥४७

तत्स्थलस्यैव संपर्कं गद्वेषसमुद्भवैः ।
नीलैर्भावैः सदा यु वर्तते मनुजा मुने ॥४८

ये पुनर्ज्ञानिनो मर्त्या निर्द्वंद्वा नियतेन्द्रियाः ।
ते मुने विस्मयाविष्टाः संविशंति महेश्वरीम् ॥४९

जो मानव भूलोक के मध्य में हैं और ललितादेवी के मन्त्र की साधना करने वाले हैं वे अपने देहों के अन्त में इन्द्र देव की नील कक्ष्या को प्राप्त करके वहाँ पर ही निवास किया करते हैं ।४३। वहाँ पर अपनी वनिताओं के साथ में दिव्य वस्तुओं का भोग करते हुए मधुर मद्य का पान किया करते हैं और भक्तिभाव में निर्भर होते हुए नृत्य किया करते हैं ।४४। हे कलशोद्भव ! उन सरोवरों में और नदियों के सपुदायों में—लताओं के गृहों में तथा रम्य एवं महान् ऋद्धियों वाले मन्दिरों में वे सदा श्रीदेवी का जाप करते और उसके ही गुणगणों को पढ़ा करते हैं । ये महान भाग वाले पुरुष अपनी नारियों से परिवेष्टित होकर निवास किया करते हैं ।४५-४६। जब इनके पुण्य कर्मों का क्षय हो जाता है तो उस स्वर्गीय सुख का त्याग करके फिर इसी मनुष्य का देह प्राप्त किया करते हैं । पूर्व की वासना उनकी आत्मा में बनी ही रहा करती है और वे पुनः चक्रिणी का अर्चन किया करते हैं । फिर वे श्रीनगर में शक्रनील महास्थली में गमन किया करते हैं ।४७। हे मुने ! उस स्थल के सम्पर्क से ही राग-द्वेष से समुत्पन्न भावों से जो नील होते हैं वे सर्वदा युक्त होते हैं ऐसे ही मनुष्य रहते हैं ।४८। जो ज्ञान वाले मनुष्य होते हैं वे निर्द्वन्द्व और नियत इन्द्रियों वाले हैं । हे मुने ! वे विस्मय युक्त होकर महेश्वरी में प्रवेश किया करते हैं ।४९।

इन्द्रनीलाख्यशालस्यांतरे मारुतयोजने ।
मुक्ताफलमयः शालः पूर्ववद्गोपुरान्वितः ॥५०

अत्यंतभास्वरा स्वच्छा तयोर्मध्ये स्थली मुने ।
सर्वापि मुक्ताखचिताः शिशिरातिमनोहराः ॥५१
ताम्रपर्णी महापर्णी सदा मुक्ताफलोदका ।
एवमाद्या महानद्यः प्रवहंति महास्थले ॥५२
तासां तीरेषु सर्वेऽपि देवलोकनिवासिनः ।
वसंति पूर्वजनुषि श्रीदेवीमन्त्रसाधकाः ॥५३
पूर्वाद्यष्टसु भागेषु लोकाः शक्रादिगोचराः ।
मुक्ताशालस्य परितः संयुज्य द्वारनेशकान् ॥५४
मुक्ताशालस्य नीलस्य द्वारयोर्मध्यदेशतः ।
पूर्वभागे शक्रलोकस्तत्कोणे वह्निलोकभूः ॥५५
याम्यभागे यमपुरं तत्र दण्डधरः प्रभुः ।
सर्वत्र ललितामन्त्रजापी तीव्रस्वभाववान् ॥५६

इन्द्रनील नामक शाल के अन्तर में मरुत योजन में एक मुक्ताफलों से परिपूर्ण शाल है और वह पहिलों भाँति ही गोपुर से समन्वित है ।५०। हे मुने ! उन दोनों के मध्य में अत्यधिक भास्वर स्थली है जो परम स्वच्छ है । वह सब ही मुक्ताओं से खचित है और शिशिर से अतीव मनोहर है ।५१। उस महा स्थल में ताम्रपर्णी—महापर्णी आदि महा नदियाँ हैं जिनका जल मुक्ता फलों के ही समान हैं । ऐसी नदियाँ सर्वदा वहाँ बहा करती हैं ।५२। उनके तटों पर सभी देवलोक के निवासी वास किया करते हैं जो अपने पूर्वजन्म में श्रीदेवी के मन्त्र की साधना करने वाले हैं ।५३। पूर्व आदि आठ भागों में शक्रादि गोचर लोक हैं जो मुक्ता शाल के सब ओर द्वार-देशकों को संयोजित करते हैं ।५४। मुक्ता शाल नील के द्वारों में मध्य देश से पूर्व भाग में इन्द्र लोक है और उसके कोण में वह्निलोक की भूमि है ।५५। याम्य भाग में यम राज का नगर है । वहाँ पर दण्डधर प्रभु निवास किया करते हैं । सर्वत्र ललिता के मन्त्र का जाप करने वाले हैं और तीव्र स्वभाव वाले हैं ।५६।

आज्ञाधरो यमभटैश्चित्रगुप्तपुरोगमैः ।
सार्धं नियमयत्येव श्रीदेवीसमयं गुहः ॥५७

गुहसप्तान्दुराचारांल्ललिताद्वेषकारिणः ।
कूटभक्तिपरान्मूर्खान् स्तब्धानत्यंतदर्पितान् ।।५८
मन्त्रचोरान्कुमन्त्रांश्च कुविद्यानघसंश्रयान् ।
नास्तिकान्पापशीलांश्च वृथैव प्राणिहिंसकान् ।।५९
स्त्रीद्विष्टांल्लोकविद्विष्टान्पाखंडानां हि पालिनः ।
कालसूत्रे रौरवे च कुम्भीपाके च कुम्भज ।।६०
असिपत्रवने घोरे कृमिभक्षे प्रतापने ।
लालाक्षेपे सूचिवेधे तथैवांगारपातने ।।६१
एवमादिषु कष्टेषु नरकेषु घटोद्भव ।
पातयत्याज्ञया तस्याः श्रीदेव्याः स महौजसः ।।६२
तस्यैव पश्चिमे भागे निर्ऋ तिः खड्गधारकः ।
राक्षसं लोकमाश्रित्य वर्तते ललितार्चकः ।।६३

चित्रगुप्त जिनमें अग्रणी है ऐसे यमराज के भटों के साथ आज्ञा के धारण करने वाले गुह श्री देवी के समय को नियमित किया करते हैं ।५७। जो गुह के द्वारा शप्त हैं—दुराचारी हैं—ललिता के साथ द्वेष करने वाले हैं—कूटभक्ति में तत्पर हैं—मूर्ख हैं—स्तब्ध हैं और बहुत ही अधिक दर्प वाले हैं—मन्त्र चोर हैं—कुत्सित मन्त्र वाले हैं—कुविद्या के पाप का संश्रय करने वाले हैं—नास्तिक हैं—पाप कर्मों के करने वाले हैं उनको भिन्न-भिन्न नरकों में डाल दिया जाता है । उन नरकों के नाम ये हैं—कालसूत्र—रौरव—कुम्भीपाक—वह महान ओज वाला उसी स्त्री देवी की आज्ञा से हे घटोद्भव ! इन नरकों में डाल दिया करता है ।५८-६२। उसके ही पश्चिम भाग में खड्ग का धारण करने वाला निर्ऋ ति है । वह भी श्री ललिता का अर्चक राक्षस लोक का आश्रय ग्रहण करके रहा करते हैं ।६३।

तस्य चोत्तरभागे तु द्वारयोरंतरस्थले ।
वारुणं लोकमाश्रित्य वरुणे वर्तते सदा ।।६४
वारुण्यास्वादनोन्मत्तः शुभ्रांगो झषवाहनः ।
सदा श्रीदेवतामंत्रजापी श्रीक्रमसाधकः ।।६५

श्रीदेवतादर्शनस्य द्वेषिणः पाशबन्धनैः ।
बद्ध्वा नयत्यधोमार्गं भक्तानां बन्धमोचकः ॥६६
तस्य चोत्तरकोणेषु वायुलोको महाद्युतिः ।
तत्र वायुशरीराश्च सदानन्दमहोदयाः ॥६७
सिद्धा दिव्यर्षयश्चैव पवनाभ्यासिनोऽपरे ।
गोरक्षप्रमुखाश्चान्ये योगिनो योगतत्पराः ॥६८
एतैः सह महासत्त्वस्तत्र श्रीमारुतेश्वरः ।
सर्वथा भिन्नमूर्तिश्च वर्तते कुम्भसम्भव ॥६९
इडा च पिङ्गला चैव सुषुम्णा तस्य शक्तयः ।
तिस्रो मारुतनाथस्य सदा मधुमदालसाः ॥७०

उसके उत्तर भाग में दोनों के मध्य स्थल में वारुण लोक का आश्रय लेकर सदा वरुण देवता रहा करता है ।६४। यह वारुणी के अस्वादन में मत्त रहता है । इसका परमशुभ्र है और वृष इसका वाहन है । यह भी श्रीदेवी के मन्त्र के जप करने वाला है और स्त्री के क्रम की साधन करने वाला है ।६५। जो भी स्त्री देवता से द्वेष करने वाले हैं उनको पाशों के बन्धनों से बाँधकर भक्तों के बन्धन को छुड़ाने वाला यह अधो मार्ग में पहुँचा दिया करता है ।६६। और उसके उत्तर कोने में महती द्युति वाला वायुलोक है। वहाँ पर वायु के ही शरीरों वाले तथा सर्वदा आनन्द से पूर्ण महोदय सिद्ध-गण और दिव्य ऋषिगण तथा दूसरे पवन के अभ्यास वाले—गो की रक्षा में प्रधान–योग में परायण योगी रहा करते हैं और इन्हीं के साथ महान सत्व वाला श्रीमारुतेश्वर निवास करते हैं । इनकी मूर्ति सर्वथा भिन्न है ।६७-६९। हे कुम्भ-सम्भव ! इडा–पिङ्गला और सुषुम्णा इसकी शक्तियाँ हैं । ये तीन शक्तियाँ मरुतनाथ की सर्वदा मधु के मद से अलस रहा करती हैं ।७०।

ध्वजहस्तो मृगवरे वाहने महति स्थितः ।
ललितायजनध्यानक्रमपूजनतत्परः ॥७१
आनन्दपूरिताङ्गीभिरन्याभिः शक्तिभिर्वृतः ।
स मारुतेश्वरः श्रीमान्सदा जपति चक्रिणीम् ॥७२
तेन सत्त्वेन कल्पान्ते त्रैलोक्यं सचराचरम् ।

परागमयतां नीत्वा विनोदयति तत्क्षणात् ।।७३
तस्य सत्वस्य सिद्ध्यर्थं तानेव ललितेश्वरीम् ।
पूजयन्भावयन्नास्ते सर्वाभरणभूषितः ।।७४
तल्लोकपूर्वभागस्थे यक्षलोके महाद्युतिः ।
यक्षेंद्रो वसति श्रीमांस्तद्द्वारद्वंद्वमध्यगः ।।७५
निधिभिश्च नवाकारैर्ऋद्धिवृद्ध्यादिशक्तिभिः ।
सहितो ललिताभक्तान्पूरयन्धनसम्पदा ।।७६
यक्षीभिश्च मनोज्ञाभिरनुकूलप्रवृत्तिभिः ।
विविधैर्मधुभेदैश्च सम्पूजयति चक्रिणीम् ।।७७

वह मारुतेश्वर श्रेष्ठ सिंह के वाहन पर विराजमान हैं—हाथ में ध्वजा लिए हुए हैं और ललिता देवी के यजन-ध्यान और अर्चन के क्रम में परायण रहते हैं ।७१। आनन्द से पूरित अङ्गों वाली अन्य शक्तियों से समावृत रहते हैं । वह श्रीमान मरुतेश्वर सदा चक्रिणी का जाप किया करते हैं ।७२। उसी के सत्व से चराचर त्रैलोक्य को कल्प के अन्त में परागमयता को प्राप्त करके उसी क्षण में निनोदित किया करते हैं ।७३। उसी सत्व की सिद्धि के लिए उसी ललितेश्वरी की भावना तथा अर्चना करते हुए समस्त आभरणों से भूषित हैं ।७४। उस लोक के पूर्व भाग में यक्षलोक है उसमें महान कान्ति सम्पन्न यक्षराज निवास किया करते हैं । वह श्री सम्पन्न हैं और उसके द्वारों के मध्य में स्थित हैं ।७५। निधियों के द्वारा जो नौ हैं तथा ऋद्धि, वृद्धि आदि शक्तियों के द्वारा ललिता के भक्तों की धन सम्पदा से पूर्ति किया करते हैं ।७६। अनुकूल प्रवृत्ति वाली परम सुन्दरी पत्नियों के सहित अनेक प्रकार के मधु के भेदों से उसी चक्रिणी देवी की सविधि पूजा किया करते हैं ।७७।

मणिभद्रः पूर्णभद्रो मणिमान्माणिकन्धरः ।
इत्येवमादयो यक्षसेनान्यस्तत्र सन्ति वै ।।७८
तल्लोकपूर्वभागे तु रुद्रलोको महोदयः ।
अनर्घ्यरत्नखचितस्तत्र रुद्रोऽधिदेवता ।।७९
सदैव मन्युना दीप्तः सदा बद्धमहेषुधिः ।

स्वसमानैर्महासत्त्वैर्लोकनिर्वाहदक्षिणैः ॥८०
अधिज्यकार्मुकैर्दक्षैः षोडशावरणस्थितैः ।
आवृतः सततं वक्त्रैर्जपञ्छ्रीदेवतामनुम् ॥८१
श्रीदेवीध्यानसम्पन्नः श्रीदेवीपूजनोत्सुकः ।
अनेककोटिरुद्राणीगणमंडितपार्श्वभूः ॥८२
ताश्च सर्वाः प्रदीप्तांग्यो नवयौवनगर्विताः ।
ललिताध्याननिरताः सदासवमदालसाः ॥८३
ताभिश्च साकं स श्रीमान्महारुद्रस्त्रिशूलभृत् ।
हिरण्यबाहुप्रमुखैः रुद्रैरन्यैर्निषेवितः ॥८४

वहाँ पर बहुत से यक्षराज के सेनानी गण भी निवास किया करते हैं जिनके प्रमुख नाम मणि भद्र-पूर्ण भद्र–मणिमान और मणिकन्धर हैं ।७८। उस लोक के पूर्व भाग में महान उदय वाला रुद्रलोक भी हैं। बेशकी मती रत्नों से खचित वहाँ पर रुद्र उसके अधिष्ठाता देव हैं ।७९। वह सदा ही क्रोध से दीप्त रहता है और सर्वदा धनुष को चढ़ाये हुए रहते हैं। अपने ही सदृश–दक्ष–षोडश आवरणों में स्थित वक्त्रों से निरन्तर आवृत श्री देवता के मन्त्र का जाप किया करता है ।८०-८१। श्री देवी के ध्यान से सम्पन्न और श्री देवी के पूजन में समुत्सुक–बहुत सी करोड़ों रुद्राणियों के गणों से मण्डित पार्श्व की भूमि वाले हैं ।८२। वे सभी रुद्राणियाँ भी प्रदीप्त अङ्गों वाली हैं और नवीन यौवन के गर्व से अन्वित है। वे सभी श्री ललिता के ध्यान में निमग्न रहा करती हैं तथा सर्वदा आसव के मद से अलग हैं ।८३। उन सबके साथ में श्रीमान् महान रुद्र त्रिशूल के धारी हैं और हिरण्य बाहु जिनमें प्रमुख हैं ऐसे अन्य अनेक रुद्रों के द्वारा निषेवित हैं ।८४।

ललितादर्शनभ्रष्टानुद्धतान्गुरुधिक्कृतान् ।
शूलकोट्या विनिर्भिद्य नेत्रोत्थैः कटुपावकैः ॥८५
दहंस्तेषां वधूभृत्यान्प्रजाश्चैव विनाशयन् ।
आज्ञाधरो महावीरो ललिताज्ञाप्रपालकः ॥८६
रुद्रलोकेऽतिरुचिरे वर्तते कुम्भसम्भव ।
महारुद्रस्य तस्यैषं परिवाराः प्रमाथिनः ॥८७

ये रुद्रास्तानसंख्यातान्को वा वक्तुं पटुर्भवेत् ।
ये रुद्रा अधिभूम्यां तु सहस्राणां सहस्रशः ॥८८
दिवि येऽपि च वर्तंते सहस्राणां सहस्रशः ।
येषामन्नमिषश्चैव येषां वातास्तथेषवः ॥८६
येषां च वर्षमिषवः प्रदीप्ताः पिङ्गलेक्षणाः ।
अर्णवे चांतरिक्षे च वर्तमाना महौजसः ॥६०
जटावंतो मधुष्मन्तो नीलग्रीवा विलोहिताः ।
ये भूतानामधिभुवो विशिखासः कपर्दिनः ॥६१

ललिता के दर्शन से भ्रष्ट—उद्धत और गुरु के द्वारा धिक्कृत हैं उनको शूल की कोटि से भेदन करके विनष्ट कर देता है। तथा नेत्रों से समुत्पन्न तीक्ष्ण पावक से उनके भृत्य-वधू और सन्तति का दाह करके विनाश कर दिया करता है। यह महावीर आज्ञा का पालक और ललिता का आदेश करने वाला है।८५-८६। हे कुम्भसम्भव ! यह अतीव सुरम्य रुद्रलोक में विद्यमान रहता है। हे ऋषे ! उस महारुद्र के परिवार प्रमाथी हैं।८७। जो भी रुद्र हैं वे अगणित हैं ऐसा कोई भी पटु नहीं है कि उनकी गणना कर सके। जो रुद्र भूमि में है वे भी सहस्रों ही हैं।८८। और जो दिवलोक में हैं वे भी हजारों ही हैं। जिनके अन्नमिष हैं और जिनके वात तथा इषु हैं।८६। और जिनके वर्ष इषु हैं—ये परम प्रदीप्त हैं तथा इनके नेत्र पिङ्गल वर्ण के है। ये महान ओज वाले सागर में—अन्तरिक्ष में भी वर्त्तमान रहा करते।६०। ये जटाजूट धारी हैं—मधुमान हैं—इनकी ग्रीवा नील वर्ण की है और विलोहित हैं। ये भूतों के अधिभू हैं—विशिखा और कपर्दी हैं।६१।

ये अन्नेषु विविध्यंति पात्रेषु पिबतो जनान् ।
ये पथां रथका रुद्रा ये च तीर्थनिवासिनः ॥६२
सहस्रसंख्या ये चान्ये सृकावंतो निषंगिणः ।
ललिताज्ञाप्रणेतारो दिशो रुद्रा वितस्थिरे ॥६३
ते सर्वे सुमहात्मानः क्षणाद्विश्वत्रयीवहाः ।
श्रीदेव्या ध्याननिष्णाताञ्छ्रीदेवीमन्त्रजापिनः ॥६४

श्रीदेवतायां भक्ताश्च पालयंति कृपालवः ।
षोडशावरणं चक्रं मुक्ताप्राकारमंडले ॥९५
आश्रित्य रुद्रास्ते सर्वे महारुद्रं महोदयम् ।
हिरण्यबाहुप्रमुखा ज्वलन्मन्युमुपासते ॥९६

जो अन्नों में विविद्ध होते हैं--पात्रों में जनों को पीते हैं पथों में रथक हैं और जो तीर्थों में निवास करने वाले हैं ।९२। और जो अन्य हैं उनकी भी सहस्रों ही संख्या है । ये सृकावान् हैं और निषङ्गी हैं । सभी ललितादेवी की आज्ञा के प्रणेता हैं । ऐसे रुद्र दिशाओं में प्रस्थित हैं ।९३। वे सभी महान आत्माओं वाले हैं और क्षणभर में तीनों लोकों के वहन करने वाले हैं । ये सभी श्रीदेवी के ध्यान में परम निष्णात रहने वाले हैं तथा श्रीदेवी के मन्त्र का जाप करने वाले हैं ।९४। ये श्रीदेवी में परम भक्त हैं तथा कृपालु उसकी आज्ञा का पालन किया करते हैं । सोलह आवरण वाले चक्र में जो मुक्ताओं के प्रकार मण्डल में है समाश्रय ग्रहण करके सभी महोदय महारुद्र की उपासना करते हैं जो कि क्रोध से जाज्वल्यमान हैं । इनमें हिरण्य बाहु प्रधान हैं ऐसे सब रुद्र हैं ।९५-९६।

—×—

॥ दिग्पालादि शिवलोकान्तर वर्णन ॥

अगस्त्य उवाच—

षोडशावरणं चक्रं किं तद्रुद्राधिदैवतम् ।
तत्र स्थिताश्च रुद्राः के केन नाम्ना प्रकीर्तिताः ॥१
केष्वावरणबिंबेषु किन्नामानो वसन्ति ते ।
यौगिकं रौढिकं नाम तेषां ब्रूहि कृपानिधे ॥२

हयग्रीव उवाच—

तत्र रुद्रालयः प्रोक्तो मुक्ताजालकनिर्मितः ।
पञ्चयोजनविस्तारस्तत्संख्यायामशोभितः ॥३
षोडशावरणैर्युक्तो मध्यपीठमनोहरः ।
मध्यपीठे महारुद्रो ज्वलन्मन्युस्त्रिलोचनः ॥४

सज्जकार्मु कहस्तश्च सर्वदा वर्तते मुने ।
त्रिकोणे कथिता रुद्रास्त्रय एव घटोद्भव ॥५
हिरण्यबाहु सेनानीर्दिशांपतिरथापरः ॥६
वृक्षाश्च हरिकेशाश्च तथा पशुपतिः परः ।
शष्पिञ्जरस्त्विषीमांश्च पथीनां पतिरेव च ॥७

श्री अगस्त्यजी ने कहा--षोडशावरण चक्र क्या वह रुद्र के अधिदैवत वाला है । वहाँ पर संस्थित रुद्र कौन है और किस नाम से प्रकीर्त्तित हैं ।१। ।१। और किन आवरण विश्रों में किस नामों वाले निवास किया करते हैं ? हे कृपानिधे ! उनका यौगिक और रौढिक नाम आप मुझे बतलाइये ।२। श्री हयग्रीवजी ने कहा--वहाँ पर तीन रुद्र कहे गये हैं--मुक्ता जातक में निर्मित हैं । उसकी संख्या और आयाम से शोभित पाँच योजन का विस्तार है ।३। मध्यपीड मनोहर सोलह आवरणों से युक्त है । मध्य में जो पीठ है जो जाज्वल्यमान मन्यु (क्रोध) वाले और तीन लोचनों से समन्वित हैं ।४। हे मुने ! वह सर्वदा सुसज्जित कार्मुक से हाथ में लेकर विद्यमान रहा करते हैं । हे घटोद्भव ! त्रिकोण में तीन ही रुद्र कहे गये हैं ।५। एक तो हिरण्य बाहु हैं--दूसरे सेनानी हैं और तीसरे का नाम दिशांपति है ।६। तथा वृक्ष-हरिकेश और तीसरे पशुपति हैं । शष्पिञ्जर--त्विषीमान् और पथीनां पति है ।७।

एते षट्कोणगाः किं च बभ्रुशास्त्वष्टकोणके ।
विव्याध्यन्नपतिश्चैव हरिकेशोपवीतिनौ ॥८
पुष्टानां पतिरप्यन्यो भवो हेतिस्तथैव च ।
दशपत्रे स्वावरणे प्रथमो जगतां पतिः ॥९
रुद्राततायिनौ क्षेत्रपतिः सूतस्तथापरः ।
अहं त्वन्यो वनपती रोहितः स्थपतिस्तथा ॥१०
वृक्षाणां पतिरप्यन्यश्चैते सज्जशरासनाः ।
मन्त्री च वाणिजश्चैव तथा कक्षपतिः परः ॥११
भवन्तिस्तु चतुर्थः स्यात्पञ्चमो वाग्विदस्ततः ।
ओषधीनां पतिश्चैव षष्ठः कलशसंभव ॥१२

उच्चैर्घोषाक्रन्दयन्तौ पतीनां च पतिस्तथा ।
कृत्स्नवीतश्च धावश्च सत्वानां पतिरेव च ।।१३
एते द्वादश पत्रस्था: पञ्चमावरणस्थिता: ।
सहमानश्च निर्व्याधिरव्यधीनां पतिस्तथा ।।१४

ये तो षट्कोणों में स्थित हैं और अष्ट कोणों में बहुत से हैं। निर्व्याधि—हरिकेश—उपवीती—पुष्टों के पति—भव—हेति हैं। दश पत्र आवरण में प्रथम जगतों के पति हैं।८-९। रुद्र-अततावी—क्षेत्रपति—तथा सूत—अहंतु अन्य पति—रोहित और स्थपति हैं।१०। अन्य वृक्षों का पति—ये धनुष को सुसज्जित रखने वाले हैं। मन्त्री–वाणिज–कक्ष पति–भवन्ति चौथा और पाँचवाँ वाग्विस्तत है। औषधियों के पति–छठवाँ है कलश सम्भव है।११-१२। उच्चैर्घोष-आक्रन्दयन्त तथा पतियों का पति है। कृत्स्न वीत–धाव–सत्वों का पति—ये इतने द्वादश पत्रों में स्थित हैं जो पञ्चम आवरण में वर्तमान रहते हैं। सहमान निर्व्याधि–के पति हैं।१३-१४।

ककुभश्च निषंगी च स्तेनानां च पतिस्तथा ।
निचेरुश्चेति विज्ञेया: षष्ठावरणदेवता: ।।१५
अध: परिचरोऽरण्य: पति: किं च सृकाविष: ।
जिघांसन्तो मुष्णतां च पतय: कुम्भसम्भव ।।१६
असीमंतश्च सुप्राज्ञस्तथा नक्तंचरो मुने ।
प्रकृतीनां पतिश्चैव उष्णीषी च गिरेश्चर: ।।१७
कुलुञ्चानां पतिश्चैवेषुमन्त: कलशोद्भव ।
धन्वाविदश्चातन्वानप्रतिपूर्वंदधानका: ।।१८
आयच्छत: षोडशैते षोडशारनिवासिन: ।
विसृजन्तस्तथास्यंतो विध्यंतश्चापि सिंधुप ।।१९
आसीनाश्च शयानाश्च यन्तो जाग्रत एव च ।
तिष्ठन्तश्चैव धावन्त: सभ्याश्चैव समाधिपा: ।।२०
अश्वाश्चैवाश्वपतय अव्याधिन्यस्तथैव च ।
विविध्यंतो गणाध्यक्षा बृहन्तो विंध्यमर्द्दन ।।२१

ककुभ—निषंग—स्तेनों के पति और निचेरु—छठवें आवरण के देवता हैं ।१५। अध—परिचर—अरण्य—पति—सृकाविष—जिघांसंत—मुष्णतां पति—हे कुम्भसम्भव ! धृत्वाविद—आतन्वान—आतन्वान—असीमन्त—सुप्राज्ञनक्तंचर—प्रकृतियों के पति—उष्णीषी—गिरेश्चर—कुलंचों से पति—इषुमन्त—प्रतिपूर्व दधानक—आयच्छत—ये षोडश सोलह आरों के निवासी हैं—निसृजन्त—आस्यन्त धावन्त—सभ्य—समाधिप—अश्व—अश्वपति—व्याधि—न्यस्त—विविध्यन्त—गणाध्यक्ष—बृहन्त और विंध्यमर्दन हैं ।१६-२१।

गृत्सश्चाष्टादशविधा देवता अष्टमावृतौ ।
अथ गृत्साधिपतयो व्राता व्राताधिपास्तथा ॥२२
गणाश्च गणपाश्चैव विश्वरूपा विरूपकाः ।
महान्तः क्षुल्लकाश्चैव रथिनाश्चारथाः परे ॥२३
रथाश्च रथपत्याख्याः सेनाः सेनान्य एव च ।
क्षत्तारः संग्रहीतारस्तक्षाणो रथकारकाः ॥२४
कुलालश्चेति रुद्रास्ते नवमावृत्तिदेवताः ।
कर्माराश्चैव पुञ्जिष्ठा निषादाश्चेषुकृद्गणाः ॥२५
धन्वकारा मृगयवः श्वनयः श्वान एव च ।
अश्वाश्चैवाश्वपतयो भवो रुद्रो घटोद्भव ॥२६
शर्वः पशुपतिर्नीलग्रीवश्च शितिकण्ठकः ।
कपर्दी व्युप्तकेशश्च सहस्राक्षस्तथापरः ॥२७
शतधन्वा च गिरिशः शिपिविष्टश्च कुम्भज ।
मीढुष्टम इति प्रोक्ता रुद्रादशमशालगा ॥२८

और गृत्स ये अष्टमावृति में अष्टादश नामक देवता हैं। इसके अनन्तर गृत्साधिप तप—व्राता ता व्रातधिपा—गणा—गण्डया विश्वरूपा विरुपका—महान्त—क्षुल्लका—रथित—आरथा—तथा—रथ पत्याख्या—सेना—सेनान्य—क्षत्तार—संग्रहीतार—तक्षाण—रथकारका—कुलाल—ये रुद्र नवमाकृति के देवता है ।२२-२४। कुमार—पुंजिष्ठा—निषादा—इषुकृद्-गणा—धन्वकारा—मृगयव—श्वनय—श्वान—और अश्वा—अश्वय तप—हे

घटोद्भव ! भव और रुद्र—शर्व—पशुपति—बालग्रीव—शिति कण्ठक—कपर्दी—व्युप्तकेश—सहस्राक्ष—शतधन्वागिरिश—शिपि विष्ट—मीढुष्ठम ये इतने रुद्र दशम शाल में से स्थित हैं ।२५-२८।

अथैकादशचक्रस्था इषुमद्ध्रस्ववामनाः ।
बृहंश्च वर्षीयांश्चैव वृद्धः समृद्धिना सह ॥२६
अग्र्यः प्रथम आशुश्चाजिरोन्यः शीघ्रशिभ्यकौ ।
उर्म्यावस्वन्यरुद्रौ च स्रोतस्यो दिव्य एव च ॥३०
ज्येष्ठश्चैव कनिष्ठश्च पूर्वजावरजौ तथा ।
मध्यमश्चावगम्यश्च जघन्यश्च घटोद्भव ॥३१
चतुर्विंशतिराख्याता एते रुद्रा महाबलाः ।
अथ बुध्न्यः सोम्यरुद्रः प्रतिसर्पकयाम्यकौ ॥३२
क्षेम्योवोचवखल्यश्च ततः श्लोक्यावसान्यकौ ।
वन्यः कक्ष्यः श्रवश्चैव ततोऽन्यस्तु प्रतिश्रवः ॥३३
आशुषेणश्चाशुरथः शूरश्च तपसां निधे ।
अवभिदश्च वर्मी च वरूथी बिल्मिना सह ॥३४
कवची च श्रुतश्चैव सेनो दुन्दुभ्य एव च ॥३५

उसके उपरान्त एकादशवें चक्र में स्थित रुद्रों के नाम हैं । इषुमद—ह्रस्ववामन—बृहत्—वर्षीयान्—वृद्ध—स्मृद्धि—अग्र्य—प्रथम—आशु—अजिरोन्य—शीघ्र—शिभ्यक—उर्म्यावसु—अन्य रुद्र—सोतस्य—दिव्य—ज्येष्ठ—कनिष्ठ—पूर्वक—अवरज—मध्यम—अवगम्य—जघन्य—ये चौबीस महाबल रुद्र आख्यात है । इसके उपरान्त बुध्न्य—सोम्य रुद्र—प्रतिसर्पक—याम्यक—क्षेम्य—वोचवखल्य-श्लोक्य—असान्यक—वन्य—कक्ष्य—श्रव—प्रतिश्रव-आशुषेण—आशुरथ—शूर—हे तपसांनिधे ! अवभिन्द—वर्मी—वरूथी—बिल्मी—कवची—श्रुत—सेन—दुन्दुभी इत्यादि रुद्र हैं ।२६–३५।

समाप्त